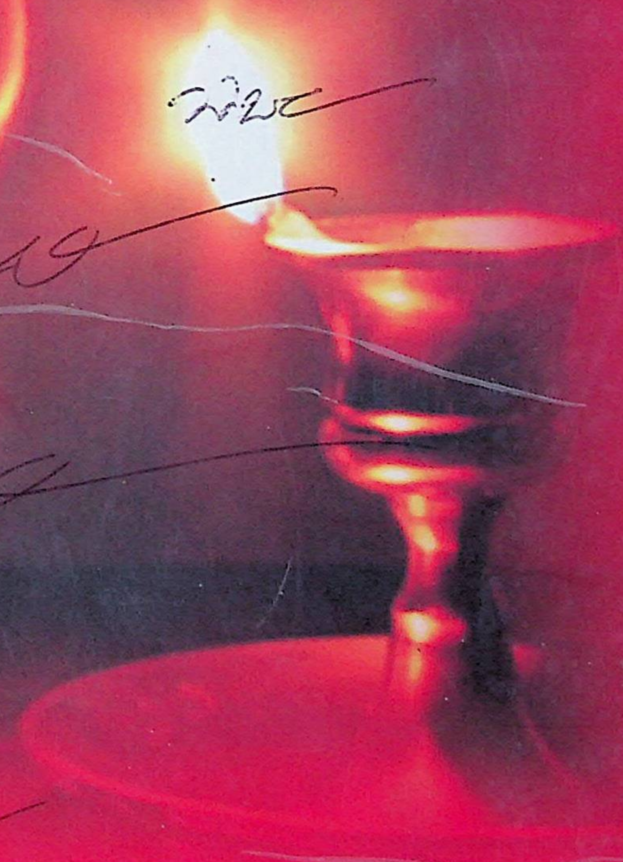
श्री गुरुवंश पुराण



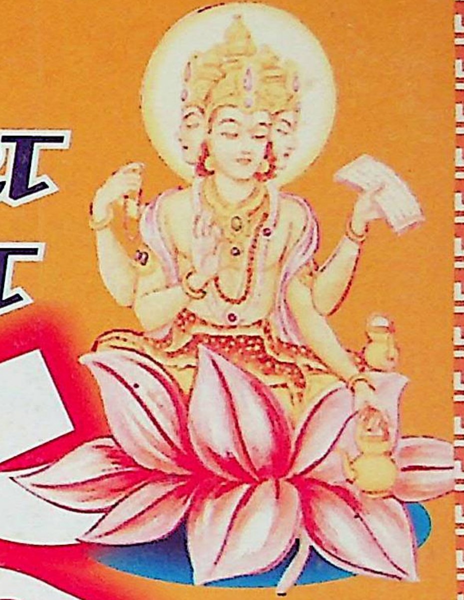


स्वामी शिव बोधाश्रम
(रमेशाश्रम जी महाराज)

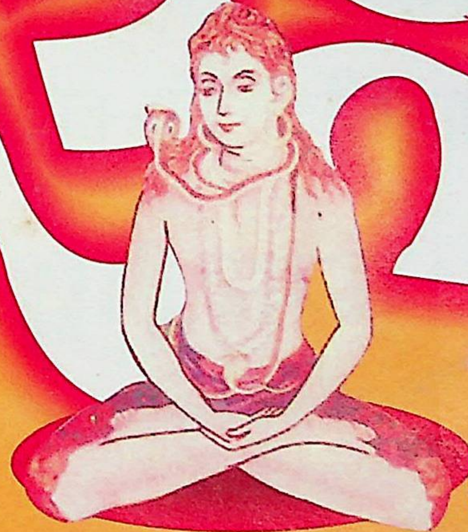
ॐ श्री गुरुवंश पुराण

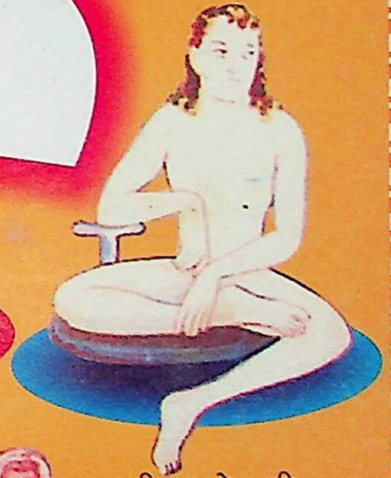
श्री गुरुवंश पुराण


नारायण


बृह्मा


भगवान वेद व्यास


भगवान सदाशिव


श्री शुकदेव जी


बृह्मर्षि वशिष्ठ


श्री पराशर


श्री गौड पादाचार्य


श्री गोविन्द भगवत पादाचार्य


श्री शक्ति देव


श्रीमद आद्य शंकराचार्य जी



श्री हरि:

श्री गुरुवंश पुराण

२००५ गुरुओं के जीवन चरित्र, उपदेश तथा सिद्धान्त
से युक्त अभूत–पूर्व संकलित ग्रन्थ

प्रथम भाग

(सत्ययुग, त्रेता, द्वापर युग के
गुरुओं का जीवन तथा उपदेश)

संशोधित संवर्धित परिवर्तित द्वितीय संस्करण

स्वामी शिव बोधाश्रम
(रमेशाश्रम जी महाराज)

प्रणेता–

श्री अनन्त श्री विभूषित श्री दण्डी स्वामी

श्री शिवबोधाश्रम (श्री रमेशाश्रम) जी महाराज

द्वितीय संस्करण

आषाढ़ शुक्ल गुरुपूर्णिमा, संवत् २०६६ वि० शङ्करशब्द : २४८०

१७–८–२००९ ई०

प्रकाशक :

दण्डी आश्रम प्रभात नगर–जालन्धर (पञ्चनद प्रदेश), पंजाब

मूल्य : ५०० रुपए

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दण्डी आश्रम प्रभात नगर–जालन्धर (पञ्चनद प्रदेश), पंजाब

लेज़र टाइप सैटिंग : सीके ग्राफिक्स, जालन्धर–94173–78415

श्री गुरुवंश पुराण

प्रथम भाग का दूसरा संस्करण

इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् २०६२ वि० शङ्करशब्द: २४६७, १९९७ ई० धर्मसंघ मेरठ से प्रकाशित हुआ था। यह संस्करण अत्यन्त महीन होने के कारण बहुत से श्रद्धालु पाठक इसके पठन पाठन से वंचित रहे। पाठकों की विशेष इच्छा अनुसार इसका द्वितीय संस्करण मोटे अक्षरों में प्रकाशित हो रहा है। इसमें सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर के कुछ ऋषियों का चरित्र सिद्ध अवतारी सिद्ध बाबा बालक नाथ जी के चरित्र के पश्चात् था। अत: इस संस्करण के परिशिष्ट में आए हुए महर्षि ऐतरेय (महीदास), महर्षि ऐलूष कवष, शवरी गुरु मतंग ऋषि, द्वापर के मतंग, मतंग शिष्या शवरी, श्री सत्यकामजावाल, ब्रह्मऋषि कक्षीवान् आदि के चरित्र अवतारी बाबा बालक नाथ से पूर्व कर दिए हैं।

चौदह मनुओं के चरित्र में से तेरहवें तथा चौदहवें मनु के चरित्र में श्री रुचि द्वारा रचित 'पितृ स्तौत्रम्' तथा श्री शांति द्वारा कथित 'अग्नि स्तोत्रम्' ये दोनों स्तोत्र ग्रंथ के अंत में प्रथम में दिए थे। इस संस्करण में उनके चरित्र के साथ ही लिख दिया है।

सत्ययुग के ही ब्रह्मऋषि परमहंस परिव्राजकाचार्य श्वेताश्वर ऋषि का चरित्र तथा उपदेश विस्मृत हो गया था। यह चरित्र भी उपदेश सहित परिशिष्ट में दे दिया।

अत: मैं आशा करता हूं कि पाठकों को इस नवीन संस्करण से विशेष प्रसन्नता होगी।

दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम जी

शंकराचार्य जन्म संवत् २४८०

विक्रमी संवत् २०६६ ई०

सन् २००९ श्री कृष्ण जन्माष्टमी

दण्डी स्वामी आश्रम, प्रभात नगर, जालन्धर (पंजाब)

ॐ **प्रशस्ति-गायन** ॐ

यह प्रशस्तयात्मक कविता अनन्त श्री यतिवर, **दण्डीस्वामी शिवबोध आश्रम जी महाराज** (श्री रमेश आश्रम) के, शान्ति आश्रम- लड़ोई ग्राम (भोगपुर) ज़िला जालन्धर के पीठासनपर अभिषेक के समय चैत्र शुक्ल तृतीया (३), सम्वत् २०५३ तदनुसार 22 मार्च 1997 को शान्तिआश्रम-लड़ोई में ही, उनकी (अ0 श्री शिवबोध आश्रम जी महाराज की) स्तुति में अपार जनसमूह के मध्य सादर पढ़ी गई।

रचियता: दण्डी-स्वामी चिदानन्दाश्रम जी महाराज
-श्री कृष्णबोधाश्रम, शंकराचार्यपथ मेरठ (उ0प्र0)

अंश विष्णु का कहो या व्यास का अवतार हो।
ब्राह्मी-सुत हो बह्मवंशी ब्रह्म-कुल उदार हो।

महादेव का प्रिय पात्र, योगी आदिशंकर भूप हो।
काशाय वस्त्रयोग पट का सच्चिदानंद रुप हो।
अंश विष्णु.................................।

रचयिता 'गुरुवंश' का अद्वैत तत्त्व पुराण हो।
कलिमल-मथन कलि-पावना तुम ब्रह्म का श्रुतिज्ञान हो।
अंश विष्णु.................................।

कौन धर्माचार्य है शिवबोध दण्डीवर यति,
श्रुति-मार्ग का संदेश लेकर जा रहा निर्भय गति।
अंश विष्णु.................................।

अज्ञान-घन का तिमिरनाशक सूर्यसम महाकाल हो।
श्री कृष्ण अच्युत बह्म हो गीता का अर्जुन लाल हो।
अंश विष्णु.................................।

धन्य राही राह उपवन, जहां गये प्रभु के चरण,
धन्य सरिता-सिन्धु-पर्वत सार-गर्भित जहां वचन।
अंश विष्णु...।

धन्य जननी-जनक, बंधु धन्य प्रियजन ग्राम के,
धन्य बचपन, बाल-साथी धन्य क्रीड़ा-धाम के।
अंश विष्णु...।

अनन्त पूजित 'रमेश आश्रम' लड़ोई जनता ग्राम की,
अभिषिक्त दण्डी-पीठ पर श्री महन्त शोभा धाम की।
अंश विष्णु...।

आकाश से बरसे सुमन, बहुशंख-शहनाई बजीं,
बहु अगर बहु धूप चंदन अबीर की होली मची।
अंश विष्णु...।

सूर्य-पथ से एक योगी मैंने देखा था उतरते,
गम्भीर-मुद्रा मौन-वाणी ब्रह्मज्ञानी को विचरते
अंश विष्णु...।

झांकी सुधर मूर्ति मधुर शिव बोध का सिर सूंघते,
विष्णु आश्रम तत्व दर्शी देख करतल चूमते।
अंश विष्णु...।

इतिहास तेरे गर्भ में कितनी समाई पीढ़ियां,
पुराण बन कर आ गई 'गुरुवंश' तेरी सीढ़ियां।
अंश विष्णु...।

व्यासाय विष्णु रुपाय व्यासरुपाय विष्णवे,
व्यास बन कर आप आये विश्व का कल्याण हे।
अंश विष्णु...।

'गुरुवंश' की महिमा अमित, अमित महातम पाठ में,
चारों पदार्थ प्राप्त हों सुन्दर मनोहर घाट में।
अंश विष्णु..।

गुरु संत-शिव अनुकूल हों कितना भी कोई दीन हो,
संसार का सुख भोग कर हरिहर-शरण में लीन हो।
अंश विष्णु..।

सन्यास-तापस-योगीजन ज्ञानी-वैरागी-बुद्धिजन,
प्रारब्ध-संचित कर्म का फल भोगते हैं सृष्टिजन।
अंश विष्णु..।

क्रियमाण कर्मों का फलाफल भावी जग में निष्ठ है,
'गुरुवंश' का पाठ करते मुक्ति निश्चय ईष्ट है।
अंश विष्णु..।

शान्तिआश्रम-पीठ पर कैसे सुशोभित पूज्यवर,
कैलाश पर जैसे विराजें ब्रह्म परत्पर पूज्यवर।
अंश विष्णु..।

जन-समूह अपार था, सब देवता-से नारि-नर
संतजन हर्षित हुये, जय ब्रह्मज्ञानी पूज्यवर।
अंश विष्णु..।

हिमगिरी से भी अचल इस पीठ का आचार्य-आसन,
संदेश देकर चल दिए जप-तप-नियम का योगीजन।
अंश विष्णु..।

इति

श्री गुरुवंश पुराण महत्व

श्री गुरवंश पुराण की महिमा अगम अपार।
संसारी पढ़ि सुख लहैं उदासीन भव पार।।१।।
श्री गुरुवंश पुराण पढ़ि मूढ़ होहि सुज्ञान।
रोम-रोम का तम मिटे दूर होत अज्ञान।।२।।
श्री गुरुवंश पुराण पढ़ि कलिमल होत विनाश।
देह परम पावन बने देही करे प्रकाश।।३।।
आगम निगम पुराण-मय श्री गुरुवंश पुराण।
प्रति दिन अनुशीलन किये करत परम कल्याण।।४।।

घट घट भीतर रहत है चेतन अमल प्रकाश।
बिनु गुरु कृपा न मिलइ सोइ चिदानन्द आभास।।५।।

आगम निगम पुराण हैं कामधेनु के रुप।
दुह करके अमृत दिया श्री गुरुदेव अनूप।।६।।
श्री गुरुवंश पुराण पय जे नित पियहिं सुजान।
सहजहिं तनु तजि ते सकल पद पावहिं निर्वाण।।७।।
श्री गुरुवंश पुराण है पावन परम पुनीत।
जेहिं पढ़ि हरिहर पद मिलै विगत यातना भीत।।८।।

समर्पणम्

यद्धि ब्रह्म वेदादि वेदान्त वेद्यं, निराकारं निराभासं, निरंजनं, निरुपाधि कञ्च कथ्यते। तदेव साकारं, सगुणं साभासं, साञ्जनं, सोपाधिकं माया विशिष्टं सत्, स्वामनिर्वाच्यां, मिथ्या भूतां कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थां, मायां स्वायत्तीकृत्य इव, भक्तानां भावनानुसारेण सदाशिवः, विष्णुः, ब्रह्मा, वशिष्ठात्र्यंगिरसः,-भृगुः-पुलस्त्यः-क्रतुरगस्त्यः, सनक-सनन्दन-सनत्कुमार-सनातन, सनत्सुजाताः, वामदेवः, वाल्मीकिः गौतमः विश्वामित्रः, याज्ञवल्क्यः, भारद्वाजश्शक्तिदेवः, पराशरः, गालवः, लोमशः, औवटायनः, ऋषभदेवः, जड़भरतः, जैगीषव्यः, श्वेतकेतुः श्वेताश्वतरः, व्यासः, पैलः, जैमिनिः, वैशम्पायन-स्सुमन्तुश्शुकदेवः, अन्ये च ये केऽपि तेषां रूपेण नित्य-नैमित्तिकावतारान् स्वीकृत्य अनेकलीलाचिदाभासानां (जीवलोकानां) जन्म मरणादीनामाध्यात्मिकाधि-दैविकाधि-भौतिक त्रयाणां तापानामात्यन्तिकनिवृत्तिं परमानन्दप्राप्तिं विधायाज्ञानान्धकारञ्चापास्य विदेह कैवल्य मुक्तिं च प्रयच्छति। तस्यैव परमात्मनः विभिन्नरूपेष्ववतीर्णानां गुरु प्रवराणां पूतानुपदेशान् सिद्धान्तान् चरित्राणि च तस्यैव करकमलेषुसादरमानत मूर्द्धूना समर्पयतो मे मनसा वाचा कर्मणानेकशः प्रणामाञ्जलयः विलसन्तुतरामितिशम्॥

अस्मिन् पुराणे गुरु-वंश नामके, चित्रं चरित्रं परिकीर्त्यते यत्।
वक्ता त्वमेवाचरितं तवैव, समर्पणं चापि तवैव रूपम्॥१॥
तवैव सर्व खलु वस्तुजातं, ब्रह्माण्ड-भाण्डे परिदृश्यते यत्॥
कृतिर्ममेयमिति चिन्तनं तु, मूलाङ्कुरोगर्वतरोरयं वै॥२॥

शांकर जन्माब्द २४६७
वि०सं० २०५२ रामनवमी

दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रमः
(रामेशाश्रमः)
(दण्डी आश्रम, प्रभातनगर
जालन्धर नगर पंचनदश, प्रदेश

समर्पण (हिन्दी अनुवाद)

जो ब्रह्म वेदादि वेदान्त वेद्य, निराकार, निराभास, निरंजन तथा निरुपाधि कहा जाता है। वही त्रिगुणात्मिका अनिर्वाच्या मिथ्याभूता असम्भव को भी सम्भव करने में समर्थ अपनी माया को अधीन किये हुए के समान भक्तों की भावना के अनुरूप सदाशिव, विष्णु, ब्रह्मा, वशिष्ठ, अत्रि, अंगिरस, भृगु, पुलस्त्य, क्रतु, अगस्त्य, पाँच सनकादि, वामदेव, वाल्मीकि, गौतम, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, शक्ति देव, पराशर, गालव, लोमश, औवटायन, ऋषभदेव, जड़भरत, जैगीषव्य, श्वेतकेतु, श्वेताश्वतर, व्यास, पैल, जैमिनि, वैशम्पायन, शुकदेव आदि अनेक रूपों में नित्य नैमित्तिक अवतार लेकर अनेक प्रकार की लीला करते हुए जीवों के जन्म मरण आदि आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों तापों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति के लिए अनपे ज्ञानोपदेश द्वारा अज्ञानरूपी अंधकार की निवृत्ति पूर्वक विदेह कैवल्य मुक्ति देता है। उन्हीं परमात्मा के विभिन्न रूपों में अवतरित हुये गुरुवरों के पवित्र उपदेशों, सिद्धान्तों तथा चरित्रों को उनके कर कमलों में मनसा वाचा कर्मणा अनेकशः प्रणाम करते हुए समर्पित करता हूँ। इति शम्।

श्लोकार्थ–इस गुरुवंश नामक पुराण में जो चरित्र चित्रण किया है, (हे प्रभो!) इसके वक्ता और चरित्रनायक आप का ही स्वरूप है। इस पूरे ब्रह्माण्ड में जो वस्तु उत्पन्न हुई दिखाई देती है, वह आपका ही स्वरूप है, किन्तु यह मेरी रचना है, यह मेरे गर्व रूपी वृक्ष का मूल है।

शंकर जन्माब्द २४६७

वि०स० २०५२ रामनवमी

आशीर्वादम्

श्री श्री जगद्गुरु शंकराचार्य महासंस्थानम्
दक्षिणाम्नाय श्री शारदापीठ श्रृंगेरी

श्री दण्डी स्वामि शिवबोधाश्रम महाभागेषु
सप्रणतिर्विज्ञप्तिः।

भवद्भिः महता प्रयासेन सङ्कलितस्य गुरुवंशपुराणस्य द्वितीय भागः प्रकाशयिष्यत इति विज्ञाय श्रीचरणाः अमोदन्त। सनातनधर्मानुयायिभिः ज्ञातव्याः बहवोविषया अत्र संगृहीताः। बहुग्रन्थ परिशीलन पुरस्सरं विरचितोऽयं ग्रन्थः भवतां बहुश्रुतततामावेदयति। ग्रन्थान्तरेषु विप्रकीर्णतया स्थितानां एतावतां विषयाणां एकस्मिन्नेव ग्रन्थे सङ्कलनं जिज्ञासूनां नितान्तमुपकारकं भवतीति श्रीचरणा आशायमाविरकुर्वन्।

भगवतो भवानी जानेरनुकम्पापूरेण ग्रन्थोऽयं विशिष्ट प्रचारमेत्विति श्री चरणाः आशासते।

निवेदयिता
एन०एस० दक्षिणामूर्तिः

श्री गुरुवंश पुराण को

समर्पित

धर्म है, कर्म है, ज्ञान है, विवेक है।
गुरुवंश है, राजवंश है, अनेक में एक है॥
वेद है, वेदांग है, वेदान्त के स्वरूप हैं।
इतिहास, भूगोल और खगोल के खण्ड हैं॥
भक्ति है, शक्ति है, सनातन के अर्थ हैं।
जीव है, ब्रह्म है, विज्ञान के सत्यार्थ हैं॥
संग्रहकर्त्ता स्वामी श्री शिवबोधाश्रम हैं।
ऐसे 'श्री गुरुवंश पुराण' को नमस्कार है नमस्कार है॥

शुभम्–प्रेमानन्द गिरि

विक्रमी संवत २०६६

प्रशस्ति

वेदार्थतत्त्वसंवेत्ता वेदाङ्गेषु च कोविदः।
दण्डी स्वामी श्री शिवबोधाश्रमः पण्डितमान्यतां सदा॥
सोत्साहं निर्विरामं च प्राच्य भारतवाङ्मये।
सारान्वेषण संलग्नो रमेशाश्रमो विराजताम्॥
रमेशाश्रमं अग्रगण्यम् सुहृदाम्।
आनन्देनाभिनन्दामि वर्धमानं दिने-दिने॥
विद्याविनीतमुरुकीर्तिमनन्तसत्त्वं।
शान्तस्वभावमभिभूतरुषं प्रसन्नम्॥
ध्यायामि सम्मदरसेन श्री रमेशाश्रमम्।
परमादरेण शिष्यैः सदैव सम्पूज्यमानं तम्॥
एष शान्तश्च दान्तश्च विद्याव्रतो।
श्री 'गुरुवंश पुराणे' भूरि कृत्व श्रमम्॥
या च शैली तदीया मनोहारिणी।
या च विद्या तदीया श्रेष्ठा विचारिणी॥

शुभम्

डॉ० प्रेमानन्द : एम०ए०, पी०एच०डी०, डी० लिट०

श्रावण शु० ११ विक्रमी संवत् २०५६

पठानकोट (गुरदासपुर)

॥ श्री सद्गुरुभ्योनमः ॥

॥ श्री मन्महागणाधिपतये नमः ॥

श्री गुरुवंश महापुराणस्य माहात्ममिदम्

प्रणम्य शारदां शुभ्रवसनां सद्गुरुंस्तथा।
लिखितुं सम्प्रवृत्तोऽस्मि मानवानां हिताय वै॥१॥
श्री गुरुवंश पुराणस्य माहात्म्यमखिलस्य च।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य संसिद्धिं लभते नमः॥२॥
इतिहास पुराणानि वेदोपनिषदस्तथा।
मन्थनात् सारमुद्धृत्य नवनीतं समाहृतम्॥३॥
परिश्रमेण महता गुरुवंश पुराणकम्।
शिवबोधाश्रमेणाथ अनन्त श्री युतेन च॥४॥
गुरुवर्येण विदुषा व्यासेन परमर्षिणा।
प्रयासोऽयं तथास्य स्याद्यथा कश्चित् कमण्डलौ॥५॥
सप्तानां सागर जलं सम्पूरयितुमिच्छति।
पुराणेऽस्मिन् सत्ययुगे शिव विष्णु प्रजापतेः॥६॥
वशिष्टादेश्च चरितं सिद्धान्तमुपदेशकम्।
वर्णितं पठनाद्यस्य सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥७॥
धनं यशः सुसौभाग्यमायुष्यं लभते नरः।
मूर्खोऽनवद्यां विद्याञ्च ह्यपुत्रो पुत्रमाप्नुयात्॥८॥
अपत्नीको लभेत् पत्नीं सतीं साध्वीं पतिव्रताम्।
भर्तारं लभते कन्या रूपौदार्य समन्वितम्॥९॥
शास्त्राध्ययनजं पुण्यं पारणादस्य लभ्यते।
पुराणेऽस्मिन् सत्ययुगस्यादौ लिखितमस्ति यत्॥१०॥

द्विजातेस्तु कृते सन्ध्या गायत्र्यास्तु जपादिकम्।
छन्दर्षि देवतायाश्च पाठेन यत्फलं भवेत्॥११॥
तत्सर्वं लभते सम्यक् पुराण श्रवणेन हि।
निष्काम भावतः पाठं ग्रन्थस्यास्य करोति यः॥१२॥
अन्तःकरण शुद्धेस्तु ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्।
सिद्धिं कामयमानो यः पुराणं श्रद्धया पठेत्॥१३॥
अष्टसिद्धिंश्चोपसिद्धीन् साधको लभते ध्रुवम्।
अधिकारि शिशुक्षुर्यो गुरुभ्यश्चाधिकारिभिः॥१४॥
षट्चक्र भेदन विधिं शिक्षते प्रक्रिया सह।
खेचरीमुद्रया सार्द्धं मूलबन्धादिकं तथा॥१५॥
योगदर्शन सम्प्रोक्तं फलं हि लभते नरः।
पुराणे पठ्यमाने हि कोटिगोदानजं फलम्॥१६॥
घृतकुल्या मधुकुल्या दानजं फलमाप्नुयात्।
धन धान्य युतां भूमिं स्वर्ण रत्नैरलङ्कृताम्॥१७॥
वेदवेदाङ्ग विदुषे ब्राह्मणाय प्रयच्छतः।
तत्फलं लभते सम्यक् पुराणस्यास्य धारणात्॥१८॥
अश्वमेध सहस्त्राणि वाजपेय शतानि च।
कृच्छ्रार्धतप्तकृच्छ्रञ्च प्राजापत्य पराक् कृते॥१९॥
कुरुक्षेत्रादि तीर्थेषु गंगादिषु नदीषु च।
पर्वेषु स्नान दानादौ यत्फलं तल्लभेन्नरः॥२०॥
चन्द्र सूर्योपरागेषु काश्यां च कुरुजाङ्गले।
कार्तिके निवसेत् काश्यां माघे वै तीर्थ राजके॥२१॥
चैत्रेऽयोध्यां द्वारकायां वैशाखे कल्पबासतः।
लभ्यते यत् फलं तत्तदस्यानुष्ठानतो भवेत्॥२२॥

महापुराणस्य पठन्ति सम्यङ्माहात्म्यमेतत् खलु मानवाय।
भुक्त्वा सुभोगान् भुविदीर्घकालमन्ते भवन्ति किल मुक्ति भाजः ॥२३॥
शास्त्रवाणे खनेन्नाब्दगे वैक्रमे, पूर्णिमायां तिथौ मासि चाषाढ़गे।
कीर्तितं ग्रन्थ माहात्म्यमेतद् गुरोः, शास्त्रि विद्येश्वरेणार्पितं पादयोः ॥२४॥

अर्थ–मैं (विद्येश्वर शास्त्री, ग्रन्थ कर्ता का शिष्य) श्वेत वस्त्र धारण करने वाली सरस्वती देवी तथा सद्गुरुओं को प्रणाम करके मनुष्यों के हित के लिए समस्त श्री गुरुवंश महापुराण का माहात्म्य लिखने जा रहा हूं। जिसके पढ़ने और सुनने से मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होती है ॥१-२॥ इतिहास, पुराण, वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों को मथकर श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा उसका सार मक्खन के रूप में महान् परिश्रम से अनन्त श्री विभूषित, व्यास के समान परमर्षि, विद्वान् गुरुदेव श्री शिवबोधाश्रम जी महाराज ने श्री गुरुवंश महापुराण को निकाला है। आपका यह प्रयास वैसा ही है जैसे कि कोई छोटे से कमण्डलु में सातों समुद्रों को भर दिया हो। ('गागर में सागर' वाली उक्ति चरितार्थ की है) इस पुराण के सत्ययुग खण्ड में शिव, विष्णु, ब्रह्मा और वशिष्ठ आदि के चरित्र, सिद्धान्त और उपदेशों का वर्णन किया गया है। जिनको पढ़ने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥३-७॥

धन, यश, सौभाग्य तथा दीर्घायु प्राप्त करता है। मूर्ख उत्तम विद्या, पुत्रहीन पुत्र ॥८॥ अविवाहित को सती, साध्वी, पतिव्रता, पत्नी, कन्या को रूपवान्, उदार पति प्राप्त होता है ॥९॥ इसके पढ़ने से शास्त्रों के अध्ययन का पुण्य प्राप्त होता है। इस पुराण के सत्ययुग के आदि में वर्णित द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए सन्ध्या, गायत्री जप, उसके छन्द, ऋषि, देवता आदि के पाठ से जो फल प्राप्त होता है, वह इस पुराण के विधिपूर्वक, सुनने मात्र से होता है। जो निष्काम भाव से इस ग्रन्थ का पाठ करता है वह अन्तःकरण की शुद्धि होकर ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है। सिद्धियों की प्राप्ति के लिए जो इस पुराण का श्रद्धापूर्वक पाठ करता है ॥१०-१३॥ वह साधक आठ सिद्धियों और दस उपसिद्धियों को निश्चय ही प्राप्त करता है, जो अधिकारी शिष्य सीखने की इच्छा से, अधिकारी गुरुओं से षट् चक्र भेदन की विधि, खेचरी मुद्रा, मूलबंधादि जो कि योग दर्शन में बताये गये हैं, प्रक्रिया सहित सीखता है (वह फल इस पुराण के श्रवण

मात्र से होता है)। पुराण के पढ़ने से करोड़ों गोदानों का फल प्राप्त होता है ॥१४-१६ ॥ घृत कुल्या, मधुकुल्या दान का फल प्राप्त होता है। (जो मनुष्य) धन, धान्य, स्वर्ण, रत्न आदि से अलंकृत भूमि का वेद वेदांग से युक्त ब्राह्मण को दान करता है, वही फल इस पुराण को धारण (हृदयङ्गम) करने से होता है ॥१७-१८ ॥ हजारों अश्वमेध तथा सैंकड़ों वाजपेय यज्ञों को करने से, कृच्छ्रार्द्ध, तप्तकृच्छ्र प्राजापत्य पराक् आदि व्रतों के करने से ॥१९ ॥ पर्वों पर कुरुक्षेत्रादि तीर्थों गंगादि नदियों में स्नान, दानादि करने से जो फल प्राप्त होता है ॥२० ॥ चन्द्र ग्रहण में काशी में, सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में स्नान दान से तथा कार्तिक में काशी, माघ में प्रयाग, चैत्र में अयोध्या, वैशाख में द्वारका में कल्पवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इस महापुराण के अनुष्ठान से होता है ॥२१-२२ ॥

जो मनुष्य इस महापुराण के महात्म्य को ही विधिपूर्वक पढ़ेंगे वे इस पृथ्वी पर दीर्घ काल तक उत्तम भोगों का उपभोग करके अन्त काल में मुक्ति के अधिकारी होंगे ॥२३ ॥

इस माहात्म्य को विक्रमी संवत् २०६६ आषाढ़ पूर्णिमा (गुरु पूर्णिमा) को विद्येश्वर स्वरूप शास्त्री (विद्याधर त्रिवेदी) ने रचना करके ग ुरु चरणों में अर्पित किया ॥२४ ॥

विद्येश्वर स्वरूप

विद्याधर त्रिवेदी

शास्त्री, साहित्य रत्न, एम०ए०

अवकाश प्राप्त प्रवक्ता (संस्कृत)

ग्राम व पो० बछवल जनपद (सीतापुर), उत्तर प्रदेश

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१ ॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, वुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावात्।
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि ॥२ ॥
अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्मया स्खलितं कृतम्।
प्रार्थिताः प्रणताः धीराः क्षमन्तुमर्हन्तु साधवः ॥३ ॥

दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रम्

दत्तात्रेयं त्वां नमामि प्रसीद त्वं सर्वात्मा सर्वकर्त्ता न वेद।
कोऽप्यतं ते सर्वदेवाधिदेव ज्ञाताऽज्ञातान्मेऽपराधान् क्षमस्व ॥१॥
त्वदुद्भवत्वात्त्वदधीनधीत्वात्त्वमेव मे वन्द्य उपास्य आत्मन्।
अथापि मौढ्यात् स्मरणं न ते मे कृतं क्षमस्व प्रियकृन्महात्मन् ॥२॥
भोगापवर्गप्रदमार्तबन्धुं कारुण्यसन्धिुं परिहाय बन्धुम्।
हिताय चाऽन्यं परिमार्गया ते हा मादृशो नष्टदृशो विमूढाः ॥३॥
न मत्समो यद्यपि पापकर्त्ता न त्वत्समोऽथापि हि पापहर्ता।
न मत्समोऽन्यो दयनीय आर्य न त्वमत्समः क्वापि दयालुवर्यः ॥४॥
अनाथनाथोऽसि सुदीनबन्धो श्रीशाऽनुकम्पामृतपूर्णसिन्धो।
त्वत्पादभक्तिंत्व दासदास्यं त्वदीयमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम् ॥५॥
गुरुस्मृतिं निर्मलबुद्धिमाधिव्याधिक्षयं मे विजयं च देहि।
इष्टार्थसिद्धिं वरलोकवश्यं धनान्नवृद्धिं वरगोसमृद्धिम् ॥६॥
पुत्रादिलब्धिं उदारतां च देहीश मे चास्त्वभयं हि सर्वतः।
ब्रह्मा-ऽग्निभूभ्यो नम ओषधीभ्यो वाचे नमो वाक्पतये च विष्णवे ॥७॥
शान्तोऽस्तु भूर्नः शिवमन्तरिक्षं द्यौश्चऽभयं नोऽस्तु दिशश्शिवाश्च।
आपश्च विद्युत्परिपान्तु देवाः शं सर्वतो मेऽभयमस्तु शान्तिः ॥८॥

इति श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीविरचितं दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रम्

यं विज्ञातुं भृगुः स्वं पितरमुपगतः पञ्चवारं यथाव-
ज्ज्ञानादेवामृताप्तेः सततमनुपमं चिद्विवेकादि लब्ध्वा।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥१॥
यस्मान्नश्यस्य जन्म-स्थिति-विलयमिमे तैत्तिरीयाः पठन्ति
स्वाविद्यामात्रयोगाद् सुखशयनतले मुख्यतः स्वप्नवच्च।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥२॥
या वेदान्तैकलभ्यश्रुतिषु नियमिनस्तैत्तिरीयैश्च काण्वै-
रन्यैरप्यानिषेकादुदयपरिमितं चारुसंस्कारभाजाम्।
तस्मै तुभ्यं नमः श्री हरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरुक्तिवतांपाहि मां दीनबन्धो ॥३॥
यस्मिन्नेवावसन्नाः सकलनिगमवाङ्मौलयः सुप्त पुंसि
प्रोक्तं तन्नाम यद्वै निजमहिमगत-ध्वान्त-तत्कार्यरूपे।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥४॥
चित्त्वात्सङ्कल्पपूर्वं सृजति जगदिदं योगिवन्मायया यः
स्वात्मन्येवाद्वितीये परमसुखदृशि स्वप्नवद् भूम्नि नित्ये।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥५॥

इत्यच्युतयतिविरचितं गुरुवरप्रार्थनापंचरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

गुर्वष्टकम्

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं यशश्चारुचित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥१॥
कलत्रं धनं पुत्र-पौत्रादि-सर्वं गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥२॥
षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥३॥
विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु भक्तो च चाऽन्यः।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥४॥
क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥५॥
यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापाज्जगद्वस्तु सर्वं करे यत् प्रसादात्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥६॥
न भोगो न योगे न वा वाजिराजौ न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥७॥
अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥८॥
अनर्घ्याणि रत्नानि भुक्तानि सम्यक् समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥९॥
गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद् वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥१०॥

इति श्री मच्छङ्कराचार्य विरचितं गुर्वष्टकं सम्पूर्णम्।

श्री गुरवंश पुराण का संक्षिप्त परिचय

ॐ नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रापराशरं च।
व्यासं शुकं गौड पदं महान्तं गोविन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥
श्री शङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं व हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्त्तिक कार मन्यानस्मद् गुरून्संततमानतोऽस्मि॥

इस रोदसी त्रिलोकी[१] में भूलोक, उसमें भी जम्बुद्वीप, जम्बुद्वीप में भारतवर्ष इसमें भी भरतखण्ड, भरतखण्ड में आर्यावर्त विशेष रूप से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, कर्म, योग, ब्रह्म विद्या, प्रधान देश रहा है। भारतवर्ष भूमण्डल का केन्द्र नाभि-स्थान है। सृष्टि के आरम्भ में यहीं भगवान् विष्णु की नाभि से 'अज' नाम से प्रसिद्ध ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव हुआ था। अतः वेदों तथा पुराणों में इसे अजनाभ वर्ष के नाम से कहा गया है। कालान्तर में महाराज प्रियव्रत के वंश में भगवान् विष्णु का ऋषभदेव के रूप में अवतार हुआ, उनके सौ पुत्रों में ज्येष्ठ 'भरत' जी हुए, उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारत वर्ष हुआ, यह बात विष्णुपुराण तथा 'श्रीमद्भागवत' से सिद्ध होती है, परन्तु वर्तमान इतिहासकार चन्द्रवंशी महाराज दुष्यन्त के पुत्र के नाम से इसका नाम 'भारत' कहते हैं कल्प भेद से इसे भी मानते हैं।

आनन्दरामायण में श्रीराम जी के भ्राता 'भरत' के नाम से इसका नाम 'भारत' हुआ, ऐसा लिखा है। अथवा **'आत्मज्ञाने प्रकाशे यः रतः सः भारतः'** अर्थात् आत्मज्ञान में रत हो, जो उसे भारत कहते हैं।

१-रोदसी त्रिलोकी

वेदों में भूलोक से लेकर ब्रह्मलोक तक इन सात लोकों में ३ त्रिलोकियां कही गई हैं। हमारा पृथ्वी लोक भू लोक, पहली रोदसी त्रिलोकी का प्रथम लोक है। दूसरा भुवः लोक, तीसरा स्वः लोक-यह पहली त्रिलोकी है। इसमें रुद्र की प्रधानता के कारण इसे रोदसी त्रिलोकी कहते हैं। दूसरी संहती त्रिलोकी रोदसी त्रिलोकी का तीसरा लोक, दूसरी त्रिलोकी का भू लोक है। महलोक इस त्रिलोकी का बीच का लोक है तथा जनः लोक इसका तीसरा लोक है। तीसरी क्रन्दसी त्रिलोकी, दूसरी त्रिलोकी का जनः लोक इस त्रिलोकी का प्रथम लोक है। तपः लोक इसका बीच का लोक है तथा सत्य लोक (ब्रह्म लोक) इसका अन्तिम लोक है। (श्री पं० मोतीलाल शर्मा द्वारा लिखित गीता विज्ञान भाष्य भूमिका से।)

भारत आदिकाल से ही 'जगद्गुरु' रहा है। यहां पर सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलिकाल में कर्म, उपासना, ज्ञानादि का उपदेश करने तथा आचरण करने वाले अनेक तपस्वी, मनस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी, त्यागी, वीतराग, जीवन्मुक्त, ब्रह्मविद्या के अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तकाचार्य हो चुके हैं। उनमें से विशेष रूप से केवलाद्वैत या ज्ञानाद्वैत, शक्ति विशिष्टाद्वैत, शब्दाद्वैत, स्वलीलाद्वैत, विशिष्ठाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत तथा अचिन्त्य भेदाभेद-सिद्धान्त के आचार्य विशेष रूप से हुए हैं। इन ऋषियों, मुनियों तथा आचार्यों के जीवन चरित्र, उपदेश तथा सिद्धान्त वेदों, पुराणों, उपनिषदों, आगम शास्त्रों, तन्त्र ग्रन्थों में तथा इनके शिष्यों द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों में बिखरे पड़े थे। वर्तमान आचार्यों में कुछ का जीवन वृत्त मौखिक रूप में उनके भक्तों से प्राप्त हुआ, कुछ का उनके मौलिक ग्रन्थों एवं दिग्विजयों से प्राप्त हुआ। उन सभी लगभग २००५ गुरुओं के नाम चरित्र, उपदेश तथा सिद्धान्त लिखने की मेरी चालीस वर्ष पूर्व से उत्कृष्ट इच्छा थी, जिससे कि वर्तमान एवं भावी पीढ़ी भी प्रेरणा प्राप्त करके धर्म, अर्थ, काम-इन तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त कर जीवन के अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सके।

सृष्टि के आरम्भ से पूर्ववर्ती आचार्यों, ऋषियों तथा मुनियों ने वेद को विशेष प्रमाण मानकर, अपने पूर्ववर्त्ती ऋषियों का वचन प्रमाण मानकर ही लिखा है। स्वतन्त्ररूप से नहीं। जैसे महर्षि वाल्मीकि जी ने वेद का आश्रय लिया, भगवान् वेदव्यास जी ने वेदसहित वाल्मीकि के आर्षसाहित्य का आश्रय लिया है। अनेक परवर्ती आचार्यों ने वेदव्यास का वचन प्रमाण रूप से स्वीकार किया है। भगवान् आद्य श्री शङ्कराचार्य जी तथा उनके अनुयायियों ने जैसे अपने पूर्ववर्त्ती साहित्य का आश्रय लिया है, वैसे ही मैंने भी लिखा है।

अथवा जैसे एक काष्ठकार (बढ़ई) भगवान् की सृष्टि में उत्पन्न हुए पेड़ की लकड़ी को लेकर विभिन्न प्रकार के सुन्दर तख्त, पाटा, चौकी, मेज, कुर्सी, घड़ी व टी०वी० आदि के खोल बनाता है। एक मूर्तिकार भगवान् द्वारा उत्पन्न पत्थर को सुन्दर मूर्ति के रूप में परिवर्तित करता है, वैसे ही मैंने भी पूर्ववर्ती ऋषियों, आचार्यों के द्वारा रचित मौलिक या व्याख्यान ग्रन्थों के आधार पर तथा वर्तमान आचार्यों के साहित्य का

अध्ययन करके अपनी स्वल्प बुद्धि से जो कुछ समझा है, उसी को लिखने का साहस करके स्वलेखनी को धन्य बनाने की अनधिकार चेष्टा की है।

मुझे हिन्दी, संस्कृत साहित्य तथा व्याकरणादि का किंचित् भी ज्ञान नहीं है, किन्तु १४ वर्ष की आयु से ही संस्कृत के मौलिक तथा भाष्य-सटीक ग्रन्थों के पढ़ने का मुझे व्यसन था। उनमें जो प्रकरण मुझे अच्छा लगा, उसको उसी रूप में या किंचित् परिवर्तित रूप में संग्रह मात्र ही तो मैंने किया है। वैदिक सनातन धर्म में गुरु परम्परा से अनेक सम्प्रदाय हैं, जो अपनी अपनी उपासना पद्धति से अपने अपने इष्ट की आराधना करते चले आये हैं। प्राचीन काल में कट्टरता होने पर भी एक सम्प्रदाय का व्यक्ति दूसरे के इष्ट से द्वेष नहीं करता था, प्रत्युत अपने इष्ट को अङ्गी तथा दूसरे के देवता को अङ्ग मानकर उपासना करते हुए परस्पर सद्भावपूर्वक रहता था, परन्तु वर्तमान समय में एक दूसरे के इष्ट की निंदा करते हुए उपासना करते हैं।

आजकल देश-प्रदेश, भाषा, सम्प्रदाय आदि को लेकर भयंकर फूट पड़ी हुई है। इस फूट को दूर करने के लिए मैंने स्वयं शाङ्कर सम्प्रदाय के परिवार में सौभाग्य से जन्म लिया और इसी सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की है। अतः ब्रह्मविद्या के ब्रह्मात्मैक्य सिद्धान्त के आचार्य-'**ॐ नारायणं......।**' इत्यादि श्लोक में वर्णित आचार्यों सहित आज तक के शङ्करमठों के आचार्यों के चरित्र विशेष रूप में लिखने की इच्छा से अथवा इस मन्त्र का विशेष भाष्य करने के उद्देश्य से ही इस ग्रन्थ की रचना की है। फिर भी सभी सम्प्रदायों के अनुयायी, राग-द्वेष का परित्याग करके, अपने और दूसरे सम्प्रदाय के आचार्यों के जीवन से शिक्षा ग्रहण करके, परम्परानुसार साधन करते हुए इहलौकिक एवं पारलौकिक लाभ प्राप्त करें। इसी सनातन भावना से भावित होकर अनन्त गुरु परम्परा में से जिन आचार्यों का चरित्र, उपदेश तथा सिद्धान्त मुझे उपलब्ध हो सका, उनका वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है और जिनका चरित्र आदि मुझे नहीं मिल सका, केवल उनके पावन नामों का उल्लेख करके ही सन्तोष करना पड़ा है।

ग्रन्थ परिचय

यह ग्रंथ, सत्ययुगखंड, त्रेतायुग खंड, द्वापरयुग खंड तथा कलियुग खंड'-इन चारों खंडों में लिखा गया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन चार भागों में किया जा रहा है।

प्रथम भाग–इसमें तीन युगों–सत्य, त्रेता एवं द्वापर के ऋषियों, अवतारों, मनुओं, इन्द्रों तथा व्यासों की कथाएं वर्णित हैं। इसके आरम्भ में सनातन धर्म के ग्रन्थ, अनुबन्धचतुष्टय, श्री गुरुमहिमा, सद्गुरुओं की आवश्यकता, सद्गुरु का लक्षण, सत्शिष्य लक्षण, असद्गुरु तथा असदशिष्य लक्षण, दीक्षा मुहूर्त्त, दीक्षाओं के प्रकार, निराकार–निर्गुणब्रह्म, साकार–सगुणब्रह्म, जीव ब्रह्म, ईश्वर माया, जगतादि का विचार है।

(1) प्रथम गुरु–शिवतत्त्व शिवावतार, पंचाचार्यों तथा उनके शक्तिविशिष्टाद्वैत का वर्णन हुआ है। शिवगीता तथा शम्भुगीता में शिव उपदेश, शिव प्रसाद तथा चरणोदक की ग्राह्याग्राह्यता पर विचार, शिव पूजन से सम्बन्धित जानकारी दी गई है।

(2) दूसरे गुरु–विष्णु का चरित्र–तत्त्व, उनके कला, काल, युगादि भेद से अवतार, अवतारसंख्या तथा आयु का वर्णन है। शालिग्राम पूजन का अधिकार एवं प्रकार निरूपण का वर्णन इसमें किया गया है।

(3) तृतीय गुरु–ब्रह्मा जी का चरित्र तथा उनका गायत्री रहस्योपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् तथा नारद परिब्राजकोपनिषद् के अनुसार उपदेश, संन्यास तथा उनके अधिकारी, संन्यास के भेद, लक्षण, संन्यासग्रहण विधि, भिक्षा, क्षौर, कर्त्तव्याकर्त्तव्य निरूपण, यति सन्ध्या, यति अन्त्येष्टि, यति पूजा, माहात्म्य, दण्ड, दण्ड लक्षण, दण्ड तथा दण्डियों के भेद, यति के पाठादि का वर्णन, यति धर्मसंग्रह, यति धर्म–प्रकाश, यति धर्म समुच्च, यति धर्म समुच्चयसार, यतिधर्म निर्णय, संन्यासगीतादि के अनुसार किया गया है।

(4) वशिष्ट, शक्ति, पराशर जी की जीवनी, उपदेश योगवाशिष्ठ तथा आनन्द रामायणानुसार, शक्ति–पराशरचरित्र महाभारतानुसार उपदेश विष्णुपुराण च पराशरस्मृति से लेकर प्रस्तुत किये गये हैं।

व्यास तथा शुक चरित्र देवी भागवत या व्यास जी द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों से लिये गये हैं। इसमें–'भागवत व्यास जी की रचना है' यह दो अकाट्य प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है। यह अंश कल्याण के 'श्रीकृष्णांक' में प्रकाशित लेख पर आधृत है।

वाल्मीकि चरित्र, आनन्दरामायण, अध्यात्मरामायण आदि से तथा 'रावण की लंका कहां थी?', 'दशरथ कालीन अयोध्या', 'वाल्मीकि रामायण में मांसाहारा नहीं' इन प्रसंगों को यूं ही साधारणतः पढ़ लेने से पाठक को भ्रान्ति हो जाती है, इस भ्रान्ति का निराकरण कल्याण के 'श्रीरामायणाङ्क' में प्रकाशित प्रामाणिक लेख के आधार पर किया गया है। इसमें शिव सम्बन्धी सामग्री कल्याण–'शिवाङ्क' से, वेदान्त सम्बन्धी सामग्री कल्याण के वेदान्तांक से ली गई है। मैंने गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित 'श्री कृष्णाङ्क', 'श्री वेदान्ताङ्क', 'योगतत्त्वाङ्क', 'रामायणाङ्क' से पर्याप्त सामग्री लेकर इस भाग में प्रस्तुत की है, अतः कल्याण के नित्यलीलालीन सम्पादक भक्त प्रवर भाई श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार इसके प्रकाशक, मुद्रक तथा लेखकों का मैं चिरऋणी रहूंगा, वे मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे।

'श्रीरामायणाङ्क' से रामायणकालीन लंका, उस काल का सम्पूर्ण भारत का तत्कालीन मानचित्र तथा लंका का मानचित्र लिया है। 'श्री कृष्णांक' से उत्तर तथा दक्षिण पथ के मानचित्र भी लिये गये हैं और अति प्राचीन 'श्रीमद्भागवत' पुराण की हस्तलिखित पुस्तक का फोटो लेकर उसे भी यहां प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त 'अत्रि', 'भरद्वाज', 'याज्ञवल्क्य', 'औबटायन' आदि महार्षियों के चरित्र तथा सिद्धान्त भी इस ग्रन्थ में यत्र तत्र दिये गये हैं। श्री 'शुक' चरित्र 'देवी भागवत' के अतिरिक्त मत्स्यपुराणादि से भी संग्रहीत है।

चौदह मन्वन्तरों के मनुओं, सप्तऋषियों, इन्द्रों तथा व्यासों का वर्णन मार्कण्डेय पुराण, 'श्रीमद्भागवत्', 'विष्णुपुराण', 'शिवपुराण' आदि से संग्रहीत किया है। 'भृगु', 'च्यवन', 'शुक्राचार्य', 'बृहस्पति', 'अंगिरा', 'ऋचीक', 'जगदग्नि', 'परशुराम' तथा भीष्मादि के चरित्र 'ब्रह्माण्ड पुराण', 'महाभारत', 'भागवत' आदि ग्रन्थों से लिये गये हैं।

इस प्रथम भाग के द्वापर के अंत में सिद्ध बाबा बालकनाथ, श्री भर्तृहरि या भरथरी की कथा पंजाबी साहित्य से ली गई है। इन कवियों ने इनका जन्म श्री शुकदेव जी के समय में चौरासी सिद्धों तथा नौ नाथों सहित द्वापर के अन्त में होना कहा है, परन्तु

संस्कृत साहित्य में राजा भर्तृहरि कलियुग में हुए। कुछ लोग बाबा बालक नाथ जी को श्री गुरु नानक देव जा का समकालीन बतलाते हैं।

मेरे विचार से इनका जन्म कलियुग में आज से लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व हुआ प्रतीत होता है। यदि यह द्वापर युग में होते तो संस्कृत-साहित्य में इनका वर्णन कहीं-न-कहीं अवश्य होना चाहिए था, परन्तु आज तक मैंने न कहीं देखा है, न सुना ही है। अतः उपलब्ध साक्ष्यनुसार इनका जन्म कलियुग का ही सिद्ध होता है। कुछ भी हो, इनके भक्त इनको द्वापर का ही मानते हैं और कलियुग में भी वे पांच सौ वर्ष तक रहे, बाद में अपनी गुफा में अन्तर्हित हो गये। किसी भी महान् पुरुष का महत्त्व उनके दीर्घ जीवन में नहीं, किन्तु उनके भजन, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य तथा परोपकार में है। यह प्रथम भाग का परिचय है।

द्वितीय भाग कलियुग खण्ड

अद्वैत वेदान्त की एवं विद्यार्णव तन्त्र की दो प्रकार की श्री गुरुपरम्पराएं हैं। प्रथम परम्परानुसार सत्ययुग में भी शङ्कर, विष्णु तथा ब्रह्मा-तीन प्रधानाचार्य हुए। त्रेता में वसिष्ठ तथा शक्ति देव हुए। द्वापर में पराशर, व्यास तथा श्री शुकदेव जी हुए। कलियुग में श्री गौडपादाचार्य, श्री गोविन्द भगवतपादाचार्य तथा उनके शिष्य श्री शङ्कर भगवत पादाचार्य तथा उनके तरेपन प्रधान शिष्यों की परम्परा है। उन शिष्यों में भी प्रधान-श्री पद्मपादाचार्य, श्री सुरेश्वराचार्य, श्री हस्तमलकाचार्य तथा श्री त्रोटकाचार्य जी हुए, जो इस धर्म प्रधान देश की चारों दिशाओं में स्थापित चारों मठों के प्रथमाचार्य हुए। इन चारों आचार्यों की परम्परा आज तक अक्षुण्ण चली आ रही है। जिनमें से केवल ज्योतिर्मठ की परम्परा १६७ वर्ष तक लुप्त रही।

द्वितीय शक्ति पात परम्परा विद्यार्णव तंत्र में आई है। इसमें महागौड़ तथा गौड़-दो गौड़ों का नाम आया है। महागौड़ और गौड़ के बीच में (1) घोर, (2) ध्रुव, (3) दिवाकर, (4) चक्रधर, (5) प्रथमेश, (6) चतुर्भुज, (7) आनन्द भैरव, (8) धीर, (9) गौड़ हैं। भगवान् कपिल से लेकर श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी तक की नामावलि अग्रलिखित है-

(1) कपिल	(2) अत्रि	(3) वशिष्ठ	(4) सनक	(5) सनन्दन
(6) भृगु	(7) सनत्सुजात	(8) वामदेव	(9) नारद	(10) गौतम
(11) शौनक	(12) शक्ति	(13) मार्कण्डेय	(14) कौशिक	(15) पराशर
(16) शुक	(17) अङ्गिरा	(18) कण्व	(19) जाबालि	(20) ब्यास
(21) ईशान	(22) रमण	(23) कपर्दी	(24) भूधर	(25) सुभट
(26) जलज	(27) भूतेश	(28) परम	(29) विजय	(30) मरण
(31) पद्मेश	(32) सुभग	(33) विशुद्ध	(34) समर	(35) कैवल्य
(36) गणेश्वर	(37) सुपाथ	(38) विबुद्ध	(39) योग	(40) विज्ञान
(41) अनङ्ग	(42) विभ्रम	(43) दामोदर	(44) चिदाभास	(45) चिन्मय
(46) कलाधर	(47) वीरेश्वर	(48) मन्दार	(49) त्रिदश	(50) सागर
(51) मृड	(52) हर्ष	(53) सिंह	(54) गौड़	(55) वीर
(56) घोर	(57) ध्रुव	(58) दिवाकर	(59) चक्रधर	(60) प्रथमेश
(61) चतुर्भुज	(62) आनन्दभैरव	(63) धीर	(64) गौडपाद	
(65) गोविन्द भगवत्पादाचार्य		(66) श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्य।		

इस परम्परा में शक्ति तथा पराशर जी के बीच में दो ऋषियों का नाम आता है तथा पराशर एवं शुकदेव के पश्चात् चार शिष्यों के अनन्तर व्यास जी का नाम आश्चर्यजनक है। सम्भवतः कल्प भेद से यह तान्त्रिक परम्परा हो। अस्तु।

श्रीवेदव्यास तथा श्री शङ्कराचार्य जी से पूर्व आचार्यः–ब्रह्मसूत्र में भगवान् वेद व्यास जी ने आचार्य बादरि, कृष्णा जिनि, आत्रेय, औडलोमि, आश्वलायन काशकृत्स्न, जैमिनि, काश्यप आदि के नाम दिये हैं। इनमें जैमिनि ऋषि ने भगवान् वेदव्यास जी से सामवेद पढ़ा था और श्री शङ्कराचार्य जी से पूर्व भर्तृप्रपञ्चाचार्य, भर्तृहरि, उपवर्ष, ब्रह्मानन्दी, बोधायन, टङ्क, ब्रह्मदत्त, भरुचि, द्रविडाचार्य, सुन्दर पाण्डय, श्री गौडपादाचार्य, श्रीगोविन्द भगवत् पादाचार्य आदि हुए हैं।

इन चरित्रों में हमने 'पातञ्जलिचरितं' में से महर्षि पतञ्जलि, कात्यायन, पाणिनी आदि के चरित्र लिये हैं तथा इनमें से पतञ्जलि जी के तीन जन्मों की और उनके शिष्य श्री गौडपादाचार्य जी की दो जन्मों की कथा ली है।

श्री शङ्कराचार्य जी की कथा प्राचीन दिग्विजयों में से यथा वृहच्छङ्करविजय, प्राचीन शङ्करविजय, गोविन्दनाथीय, केरलीय, माधवीय, आनन्दगिरीय, अनन्तानन्दीय, व्यासाचलीय, चिद्विलासीय, ब्रह्मानन्दीय, श्री शङ्कराचार्यचरितम्, श्री गुरुवंश काव्यम्, श्री गुरुरत्नमालिका, पुण्यश्लोक मञ्जरी, कूष्माण्डीय, शिवरहस्य, मार्कण्डेय संहिता, कूर्म पुराण आदि मौलिक, ग्रन्थों उनकी टीकीओं एवं श्री शङ्कर विजय मकरन्द आदि ग्रन्थों के आधार पर लिखी है। विशेषकर माधवीय दिग्विजय की श्री धनपति सूरि द्वारा रचित 'डिण्डिम' और अद्वैतराजलक्ष्मी की टीका से आचार्यपाद का अद्वैत सिद्धान्त, उपदेश और चरित्र संग्रहीत किया है।

श्री शङ्कराचार्य काल निर्णय–भगवत्पाद आद्य श्री शङ्कराचार्य जी के काल सम्बन्धी निर्णय विशेषत: प्राचीन दिग्विजय ग्रन्थों से लेकर द्वारका–शारदा पीठाधीश्वर श्री पूज्य श्री स्वामी राजराजेश्वर शङ्कराश्रम शङ्कराचार्य जी महाराज द्वारा लिखित– 'विमर्श' पुस्तक के अनुसार तथा सुधन्वानरेश के ताम्रानुशासन एवं 'श्रीशङ्कराचार्य समय' नाम पुस्तक के आधार पर आज से २४६६ वर्ष पूर्व सिद्ध किया है। इसमें केवल शारदामठ ही नहीं, अपितु गोवर्धनमठ, ज्योतिर्मठ तथा कामकोटि मठ भी दो सहस्त्र वर्ष पूर्व आचार्यपाद जी का आविर्भाव मानते हैं। श्री शारदा मठ, काञ्ची कामकोटि मठ में जैसे प्रत्येक आचार्य का काल दिया है, वैसे ही गोवर्धनमठ में अनन्त श्री स्वामी 'भारतीकृष्ण तीर्थ' जी के पुराने रिकार्ड के अनुसार आज से २४८७ वर्ष पूर्व कार्त्तिकी शुक्ल पंचमी के दिन गोवर्धन पीठ पर अपने ज्येष्ठ, श्रेष्ठ परम गुरु भक्त श्री पद्मपादाचार्य जी का अभिषेक भगवत् पाद् आद्य श्री शङ्कराचार्य जी द्वारा किया गया था और उनसे लेकर आज तक इस मठ में १४५ आचार्य हो चुके हैं।

श्री शूलपाणि आदि ईसा से पूर्व होने वाले एवं ईसा के बाद में होने वाले गोवर्धन पीठ के सभी आचार्यों का काल क्रमबद्ध रूप से वर्तमान पीठाधीश्वर श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी को प्राप्त हुआ है। इन सब प्रमाणों से आचार्य भगवत्पाद आद्य श्री शङ्कराचार्य जी महाराज का काल आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है।

सर्वज्ञात्ममुनि–आचार्य पाद आद्य श्री शङ्कर के सुप्रसिद्ध प्रधान शिष्य श्री पद्मपादाचार्य, श्री सुरेश्वराचार्य, श्री हस्तमलकाचार्य, श्री त्रोटकाचार्य क्रमानुसार

जगन्नाथपुरी (पूर्वाम्नाय) में गोवर्धनमठ, द्वारका पुरी (पश्चिमाम्नाय) में शारदा मठ, शृङ्गगिरी (दक्षिणाम्नाय) में शृंगेरीमठ, बद्रिकाश्रम (उत्तराम्नाय) के ज्योतिर्मठ में परमाचार्य द्वारा अभिषिक्त हुए। यह चारों मठ तथा आचार्य निर्विवाद रूप से आद्य श्री शङ्कराचार्य के शिष्य सिद्ध होते हैं, परन्तु संक्षिप्त शारीरिक भाष्यकार सर्वज्ञात्ममुनि के विषय में मतभेद पाया जाता है। शृंगेरी की परम्परा में आद्य श्री सुरेश्वराचार्य के उत्तराधिकारी श्री नित्यबोधापाचार्य जी के नाम से कहे जाते हैं।

द्वारका-शारदा मठानुसार श्री सुरेश्वराचार्य जी महाराज के उत्तराधिकारी श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य जी हुए। काञ्चीपुरम् के काम कोटि की परम्परानुसार इन्हें साक्षात् श्रीमदाय शङ्कराचार्य जी का शिष्य कहा गया है। 'प्राचीन', 'वृहत', 'आनन्दगिरीय', 'व्यासाचलीय', 'चिद्विलासीय' दिग्विजयों में कथा आई है, कि चारों मठों में चारों शिष्यों को नियुक्त करके आदिशङ्कर भगवत्पाद काञ्चीपुरम् पहुंचे। वहां कामाक्षी देवी के सर्वज्ञसिंहासन पर आसीन हुए। उस सिंहासन पर सर्वज्ञ विद्वान् ही बैठ सकता था। सिंहासनारूढ़ होते ही सहस्त्रों विद्वानों ने श्री शङ्कराचार्य जी पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उन्होंने सब को सन्तोषजनक उत्तर देकर सबका समाधान कर दिया। विद्वत्मण्डली में वर्धन नामक एक विद्वान् ने शास्त्रार्थ किया। आचार्य श्री ने यथोचित उत्तर देकर उसे शान्त किया। उन पण्डित जी के साथ उनका सात वर्ष का पुत्र था। उस बटुकने श्री शङ्कराचार्य जी से चार दिन तक शास्त्रार्थ किया। चौथे दिन सायंकाल को उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और आचार्य श्री की शरण ग्रहण की। आचार्य उसकी प्रखरबुद्धि से अत्यन्त प्रसन्न हुए और अन्त में उन्हें शंकराचार्य जी ने १४ वर्ष की आयु में संन्यास की दीक्षा दी तथा अपने निजी 'सर्वज्ञासन' पर बिठलाया। वे इस पीठ पर १२० वर्ष तक रहे। संन्यास पूर्व उनका 'महादेव' नाम था। काञ्ची की मान्यतानुसार भारत की चारों दिशाओं में विद्यमान् चारों पीठ शिष्यपीठ हैं तथा काञ्ची कामकोटि पीठ आचार्यपाद का निजी पीठ है। वे अल्पायु में इस आसन पर आसीन हुए थे। अतः उनका संरक्षक श्री सुरेश्वराचार्य जी को नियुक्त किया गया। इसलिए इस पीठ के प्रथम आचार्य श्री सुरेश्वराचार्य तथा द्वितीय श्री सर्वज्ञात्मुनि कहे जाते हैं। उनका यह कथन है कि द्वारका में श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य जी को सर्वज्ञात्म मुनि ने वेद, व्याकरणादि पढ़ाकर

शारदा पीठ में नियुक्त किया था, परन्तु चारों मठों के आचार्य काञ्चीकाम कोटि पीठ की इस मान्यता को स्वीकार न कर इसका खण्डन करते थे इसे कल्पित-पीठ कहते हैं परन्तु अब सभी वहीं ५वां पीठ स्वीकार कर लिया है। कामकोटि के समर्थक दिग्विजयों में आद्य श्री शङ्कर द्वारा कामकोटि मठ में ही शरीर छोड़ने की बात लिखी है, जबकि कुछ ग्रन्थों में वहां शरीर-त्याग न लिखकर केदारनाथ में अथवा त्रिवेन्द्रम के पास आचार्य श्री द्वारा शरीर छोड़ना लिखा है। इस प्रकार की कई मान्यताएं हैं, जिनका विशदवर्णन ग्रन्थ में किया गया है।

श्री शाङ्कर अद्वैत वेदान्त की ब्रह्म, जीव, ईश्वर, माया तथा जगत् के विषय में अनिर्वचनीया ख्याति है, ब्रह्म अकथनीय है। अतः मेरे विचार से उनके उपनयन, पिता की मृत्यु, संन्यास स्थल, तिरोधान भूमि, प्रथमाचार्य का आविर्भाव काल आदि अनेक विषयों में अनिर्वचनीया ख्याति समझनी चाहिये। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि चार मठों के अतिरिक्त पांचवां कोटिकाम मठ के बारे में मतैक्य नहीं है।

इस कामकोटि मठ में भी बड़े-बड़े तपस्वी, त्यागी, वीतराग, जीवन्मुक्त महापुरुष हो चुके हैं। श्री स्वामी शङ्करानन्द जी महाराज, जो श्री विद्यारण्य स्वामी जी के गुरु थे, जिन्होंने 'श्रीमद्भागवत्गीता', 'उपनिषद' एवं 'ब्रह्म-सूत्र' पर टीकाएं की हैं और 'आत्मपुराण' जैसे ग्रन्थ की रचना की है-इसी पीठ के आचार्य थे। इनके अतिरिक्त श्री कृपा शंकर, गंगा धरेन्द्र, सरस्वती, उज्वलशंकर, मूलशंकर, अभिनव विद्याशंकर (तीर्थ) श्री ब्रह्मेन्द्र श्री योगेन्द्र तथा श्री माधवेन्द्र जैसे धुरन्धर आचार्य भी इस पीठ पर हो चुके हैं। इन आचार्यों का जीवन वृत्त, उपदेश तथा सिद्धान्त यथाशक्ति इस ग्रन्थ में दिया गया है।

अद्वैत वेदान्ताचार्यों के अतिरिक्त 'अचिन्त्य भेदाभेद' में अनेक वैष्णवाचार्यों का वर्णन किया है। जिनमें 'रामानुजीय', 'रामानन्दीय', 'बल्लभ', 'मध्व', 'निम्बार्क' आदि के चरित्र हैं। सिखों के दस गुरु, श्री शङ्कराचार्यों के चारों मठों की अनेक शाखाओं का वर्णन है यथा-काशी, हरिद्वार, हृषीकेश, ब्रजघाट, प्रयाग, नासिक, उज्जैन, पंजाब, हरियाणा आदि की शाखाओं को दिया गया है। क्रमानुसार काशी में चौसट्ठीमठ, मछलीबन्दर, पुष्कर मठ, मधुसूदन मठ, समाधि भवन, महेश्वरमठ, श्री स्वामी काशी

आश्रम जी महाराज के पांच मठ, अनन्तविज्ञान, बलदेव, दक्षिणामूर्ति, कामरूप, ईशान, गोघाट, मुमुक्षभवन, रामेश्वर मठ, शाङ्करमठ आदि का वर्णन है।

हरिद्वार के लुप्तदण्डी आश्रम मछली बंदर, भूमानिकेतन का वर्णन है। ऋषिकेश के मायाकुण्ड, दण्डी आश्रम, सद्गुरु सदन, भजनाश्रम, जयरामाश्रम तथा इनकी शाखाओं का वर्णन किया गया है। ब्रजघाट गढ़मुक्तेश्वर में ॐकार मठ, वामनाश्रम, मछलीबंदर, गढ़मुक्तेश्वर का दण्डी आश्रम आदि का वर्णन है।

तीर्थराज प्रयाग में श्री शङ्कराचार्य मठ (ब्रह्मनिवास) का वर्णन प्रधान रूप से किया गया है। लुधियाना वाले परमसिद्ध परमाचार्य श्री अ० स्वामी शङ्कराश्रम जी की डायरी से अवन्तिका, नासिक, मुमुक्षु भवन काशी, चौसट्ठीमठ की परम्परा ली है। उनके गुरुदेव श्री महादेवाश्रम जी का इतिहास, देहरादून के निकट उनके आश्रम चन्द्रबनी में ब्रह्मचारी शिवस्वरूप जी से प्राप्त हुआ है। पंजाब के दण्डी आश्रमों में फम्बियां, लड़ोई, नैनोवाल, लुधियाना, बलाचौर तथा गीगनोवाल, हरियाणा में कुरुक्षेत्र, रामह्रद, जींद आदि का इतिहास है। उत्तर प्रदेश में कानपुर, थीरा, बरुआ, नैमिषारण्य, सीतापुर, शीतलामठ, जि०शाहजांपुर, आगरा श्री गीता ज्ञान भवन, वेदान्तमन्दिर, लालघाट, मेरठ में जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री कृष्णा बोध आश्रम जी द्वारा स्थापित दण्डी आश्रम, उसकी शाखाएं बागपत आदि की अनेक शाखाएं तथा चौसट्ठी की परम्परा में श्री कृष्णा बोध आश्रम जी का जीवन वृत्त 'जगद्गुरुगौरव' उनके स्मृति ग्रन्थ से लिया है।

शृंगेरी मठ के सुप्रसिद्ध परम यति अनन्त श्री अनिरुद्धानन्द जी सरस्वती तथा उनके शिष्य श्री स्वामी कृष्णानन्दसरस्वती एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी का जीवन वृत्त, धर्मसम्राट श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज का तथा अनेक शिष्यों का वर्णन है।

नैमिष में श्री स्वामी एकरसानन्द जी महाराज के शिष्य श्री स्वामी जगदाचार्य, श्री नारदानन्द जी तथा श्री स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन वृत्त है।

भाव यह है कि जहां कहीं गुरु परम्परा का इतिहास मुझे मिला, उनके आश्रमों का, मठों का मैंने संक्षेप या विस्तार से जैसा भी मिला, इस भाग में वर्णन किया है। दशनाम

संन्यासियों के अखाड़ों आदि का तथा प्रधान महामण्डलेश्वरों का भी चरित्र आदि भी दिया गया है।

अत्यन्त वीतराग श्री स्वामी रामदेव जी महाराज, दोनों दयानंद, दो वाल्मीकि, पांच तुलसीदास, तीन कालिदास, तीन श्री रामतीर्थ तथा अद्वैत वेदान्त के विद्वानों में श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती, श्री नीलकण्ठ, श्री धनपतिसूरि, वाचस्पति मिश्र, अमलानन्द, अप्पयदीक्षित, अभिनव गुप्ताचार्य, मुरारिमिश्र, गोविन्दानन्द, श्री दण्डी स्वामी गोपाल तीर्थ, श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द, श्री स्वामी विरजानन्द जी, श्री स्वामी दयानन्द, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि का वर्णन है।

इस ग्रंथ में मैंने यथाशक्ति प्रत्येक विषय को सरल करने का प्रयास किया है, फिर भी जहां सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक विषय आया है, वहां अति गम्भीरता आनी स्वाभाविक है। चारों भागों में सरल तथा कठिन विषय आये हैं। यह संग्रहीत ग्रन्थ प्रत्येक के लिए हितकारी है और परमोपयोगी है, ऐसा मेरा विचार है। यह बात सतत ध्यान में रखी गई है, कि इसे कठिन होने से बचाया जाए कभी कठिन समझकर कोई इसका अध्ययन ही न करे। अतः ग्रन्थ को समझने के लिए सर्वप्रथम सरल विषय तथा गुरुओं का चरित्र पढ़े, फिर उनके उपदेश गुरुमुख से सुनें, तो कठिन भी विषय सरल हो जाएगा। मैंने इस ग्रन्थ में अपने चालीस वर्षों के अध्ययन का सार संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया है। यह एक संग्रहणीय ग्रन्थ है।

मैं शाङ्कर सम्प्रदायानुसार जन्मना जाति मानता हूं। इसमें वर्णाश्रम व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया है, कारण यह सनातन धर्म की रीढ़ है। मेरा किसी भी जाति-सम्प्रदाय से विरोध नहीं है। वैदिक साहित्य, स्मृतियों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों तथा पुराणादि ग्रन्थ में प्रतिपादित वैज्ञानिक स्पर्शास्पर्श का वर्णन आचार्यों के अनुसार किया गया है। मेरा निजी मत नहीं है। परम्परानुसार चला हुआ मत ही मेरा मत है। अतः बिना किसी सम्प्रदाय, मत, वर्ण का विरोध किये, शास्त्र एवं गुरुपरम्परा से प्राप्त शास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन, लोक कल्याण की दृष्टि से इस ग्रन्थ में किया गया है तथा आर्ष सिद्धान्त का मनसा, वाचा, कर्मणा में पूर्णतया समर्थन करता हूं।

इस ग्रन्थ के लेखन कार्य में सहयोग देने वाले महानुभावों का मैं चिरऋणी हूं। साथ ही 'कल्याण', 'श्री शाङ्कर विजय मकरन्द' तथा 'श्री गुरुवंशकाव्य' आदि ग्रन्थों से पर्याप्त सामग्री मैंने मूलतः अक्षरशः ली है; उन लेखों व अंशों के मूल लेखकों, सम्पादकों, प्रकाशकों तथा मुद्रकों को धन्यवाद देते हुए आभार व्यक्त करता हूं। ग्रन्थ लिखने प्रेस कॉपी तैयार करने में सहायक श्री दण्डी स्वामी आनन्दाश्रम जी महाराज, सीतापुर के विनम्र बालक अक्षय कुमार 'नम्मो', ब्रह्मचारी शिव स्वरूप जी महाराज, हृषीकेश (वर्तमान दण्डी स्वामी) तथा विद्येश्वरस्वरूप जी वानप्रस्थी, श्री विद्याधर जी त्रिवेदी आदि को मैं विशेष धन्यवाद देता हूं।

मेरठ धर्मसंघ के पंचप्राण स्वरूप श्री पं० श्यामसुन्दर जी वाजपेयी, श्री पं० कृष्ण प्रसाद जी शर्मा जो 'जगद्गुरुगौरव ग्रन्थ' के ओजस्वी लेखक हैं तथा अन्य सदस्यों एवं श्रोताओं को विशेष धन्यवाद देता हूं, जो इस ग्रन्थ में आर्थिक सहयोग ही नहीं, अपितु शारीरिक सहयोग भी लेखन आदि कार्य में दे रहे हैं। इनमें विशेषकर वयोवद्ध, सनातन धर्म के कर्मठ कार्यकर्त्ता, अति वृद्ध होने तथा पारिवारिक संकटों से ग्रसित होने पर भी दो गृहस्थ संत, जिनमें इस आयु में पच्चीस वर्ष के युवकों के समान, साहस तथा निर्भीकता है और जो जनता को ऐसे कार्यों के लिए विशेष प्रेरणा करते रहते हैं, वे श्री श्याम सुन्दर वाजपेयी तथा श्री कृष्णप्रसाद शर्मा जी का मैं विशेष आभारी हूं।

इस ग्रन्थ के मुद्रक श्री वीरेन्द्र कुमार सिंघल भी धन्यवाद के पात्र हैं; सतत दौड़धूप में लगे रहकर मुद्रण कार्य को सम्पन्न कराया। सम्पूर्ण भारत में मूर्धन्य उन धर्माचार्यों को मैं कोटिशः प्रणाम करता हूं, जिनकी अहैतुकी कृपा से उनके मठों का इतिहास संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, गुजराती आदि भाषाओं में मुझे प्राप्त हुआ है। उनमें से सर्वप्रथम–

(1) अनन्त श्री विभूषित, वैदिक सनातन धर्म तथा गोमाता के परम रक्षक, परमनिर्भीक, पुरी पीठाधीश्वर वरिष्ठ जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजनदेवतीर्थ जी महाराज की असीम अनुकम्पा के सम्बन्ध में मेरे पास ऐसा कोई शब्द नहीं है, जिससे मैं उनकी महती महिमा का गान कर सकूं। इस शरीर पर उनकी सदैव कृपा रही है। उन्होंने इस दीन की प्रार्थना को स्वीकार करके ओयल–सन्त–सम्मेलन में दो दिन

का समय देने का नित्य छह-छह घण्टे प्रवचन करके अमृत वर्षा द्वारा कृतार्थ किया। उन महान् आचार्य श्री के ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो पाउंगा।

(2) परम-सौम्य, सनातन धर्म के परमहित चिन्तक, अहर्निश सनातन धर्म की सेवा में निरत, अनन्त श्री विभूषित द्वारका-शारदा एवं वै० ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री मज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज का मैं आभारी हूं। ब्रह्मीभूत श्री जगद्गुरु ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्त श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज का परम प्रिय शिष्य अनन्त श्रीमद् दण्डी स्वामी वैकल्पिक धर्माचार्य श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज का मैं विशेष रूप से आभारी हूं तथा इनके परम सहयोगी प्रस्थानत्रयी के सभाष्य विद्वान् परम वीतराग एवं परमशान्त श्रीमद् दण्डी स्वामी विमलानन्दतीर्थ महाराज ने भी इस ग्रन्थ में विशेष सहयोग प्रदान किया है। दोनों महापुरुष धन्यवाद के पात्र हैं।

(3) शृंगेरी-शारदा पीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित श्री मज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी भारती तीर्थ जी महाराज जो सर्वशास्त्र मर्मज्ञ हैं, जिनकी वाणी अमृतवत् है, क्रोध-लोभ से जो रहित हैं, सदाप्रसन्न चित्त उन श्री आचार्यचरणों को धन्यवाद देता हूं, आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, श्री दण्डी आश्रम जालन्धर पधार कर अपने दर्शनों एवं अमृतवचनों से कृतार्थ किया और साथ ही शृंगेरी पीठ की ओर से दण्डी आश्रम जालन्धर के निर्माण कार्य में सहयोगार्थ, प्रसाद रूप से आर्थिक सहयोग देने का वचन दिया। मैं धन्यवाद देता हूं।

आप द्वारा शारदा मठ से मुझे संस्कृत तथा अंग्रेज़ी में मठ का इतिहास तथा आदि शंकर से लेकर अब तक गुरुओं के चित्र प्राप्त हुए हैं। कलिकाल की विभीषिका के कारण लगभग डेढ़ अथवा दो सौ वर्षों पूर्व शृंगेरी तथा गोवर्धन मठ को छोड़कर अन्य शाङ्कर मठों में निर्विवाद तथा सविवाद दो प्रकार के शंकराचार्य होते चले आ रहे हैं। उन्हीं के अन्तर्गत ज्योतिर्मठ के ब्रह्मीभूत जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्त श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज निर्विवाद शंकराचार्य हुए परन्तु उनके ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर अनन्त श्री धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज तथा तीनों शंकराचार्यों की एवं काशी विद्वत् परिषद् भारत सनातन धर्म महामंडल तथा धर्म संघ की सहमति से परमवीतराग अनन्त श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज इस पद पर आसीन हुए, परन्तु विरोधियों द्वारा श्री

स्वामी शान्तानन्द जी अभिषिक्त हुए। स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के बाद अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज बहुमत से चुने गये। अतः स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज अभिषिक्त हुए। इसके बाद द्वारिकापीठाधीश्वर श्री अभिनव सच्चिदानन्दजी तीर्थ की वसीयत के अनुसार श्री अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी शारदा पीठ पर शृंगेरी पीठ पर शंकराचार्य श्रीमद् अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज अभिषिक्त हुए।

(4) वर्तमान पुरीपीठाधीश्वर जो श्रीमद्भागवत सहित दर्शन शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं, उन स्नेह के साक्षात् मूर्तिमान् स्वरूप, पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित गोवर्धन पीठाधीश्वर श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती श्री महाराज को धन्यवाद देता हूं।

आचार्यत्रयम्–कामकोटि मठ के ब्रह्मीभूत जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी महाराज का भी इस ग्रन्थ को आशीर्वाद दो वर्ष पूर्व प्राप्त हो चुका है, उनके परमप्रिय शिष्य पूज्यपाद श्री जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज जो नित्य परम प्रसन्न मुद्रा में रहते हैं; उन्होंने मठ का साहित्य देकर महती कृपा की है। उनके शिष्य श्री स्वामी विजयेन्द्र सरस्वती जी महाराज, जो अभी युवा हैं; उन्होंने भी 'शाङ्करविजयमकरन्द', 'परमाचार्य' तथा 'संक्षेप-धर्म-शास्त्रम्' ग्रन्थ मुझे प्रदान कर अनुगृहीत किया है। इन तीनों आचार्यों के प्रति नतमस्तक हूं।

उपमठों के आचार्य–अनन्त श्री विभूषित परमकरुणानिधि, सर्वशास्त्र निष्णात् परम उद्भट् विद्वान् निवर्तमान जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्री स्वामी रामाश्रम जी महाराज का शुभाशीर्वाद इस ग्रन्थ के लिए सर्वप्रथम प्राप्त हुआ था। मैं श्री चरणों को विनम्रतापूर्वक धन्यवाद देता हूं। उनके उत्तराधिकारी शिष्य जो सनातन सिद्धान्तों का वैज्ञानिक, मार्मिक, हृदय स्पर्शी सुन्दर विवेचन करते हैं, श्री स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ जी महाराज को धन्यवाद देता हूं। आपने भी आर्थिक सहयोग का वचन दिया है। अन्य धर्माचार्य श्री मुनीशाश्रम जी महाराज आदि को धन्यवाद देता हूं।

सहस्रों माता-पिताओं के समान वात्सल्य एवं स्नेह करने वाले तथा गुरुओं के समान परममार्ग दर्शक, परम वयोवृद्ध आश्रम-विद्या-ज्ञान तथा अनुभव वृद्ध पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित परम भागवत संत दण्डी स्वामी श्री विष्णु आश्रम जी महाराज (शुकताल वाले) के पादपद्मों में नमन करता हुआ धन्यवाद देता हूं।

अनन्त श्री विभूषित परम-सुहृद, विविधाशास्त्रनिष्णात वेद भवन लुधियाना के आचार्य श्रीमद् दण्डी स्वामी श्री निगम बोध तीर्थ जी महाराज धन्यवाद के विशेष पात्र हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ के संशोधन कार्य में सहायता देकर ही नहीं, अपितु अनेक बार दण्डी आश्रम में पधार कर अविस्मरणीय परामर्श आदि देकर उपकृत किया है; मैं इनकी इस अनुकम्पा का विशेष रूप से आभारी हूं।

परम जीवन्मुक्त, वीतराग, तपस्वी, पदार्थाभाविनि में स्थित, परमगुरुदेव, श्री कमलानाभाश्रम जी महाराज के विषय में धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं; इन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु उत्साहित तो किया ही, आर्थिक सहयोग प्रदान कर कृतार्थ किया है। मैं धन्यवाद देता हूं।

इस ग्रन्थ में जालन्धर, पंजाब तथा अन्यत्र के भक्तों ने आर्थिक सहयोग दिया है यथा शान्ति आश्रम लड़ोई के महन्त अनन्त श्री स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज, जिनके द्वारा तीसरी प्रकार की गुरु परम्परा प्राप्त हुई है, कुरुक्षेत्र के ब्रह्मचारी श्री नारायणस्वरूप जी प्रभृति को धन्यवाद देता हूं। जिन अन्य सन्त, महात्मा, गृहस्थ-भक्तों के नाम इस समय स्मृति पटल पर उभरने से छूट गये हों, वे सभी धन्यवादार्ह हैं।

इस ग्रन्थ के लेखन, प्रकाशन, मुद्रण आदि को यथा सम्मत, यथा सम्भव शुद्ध करके प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है, फिर भी त्रुटियां सहज सम्भाव्य हैं; विद्वान् पाठकगण ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित शुद्धिपत्र से उन अशुद्धियों को शुद्ध कर लें। इस ग्रन्थ में किसी विषय को लेकर कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो अथवा किसी महानुभाव का मन किसी प्रसंग या अंश से असन्तुष्ट हो, खिन्न हो या दुःखी हो, तो मैं तदर्थ क्षमा प्रार्थी हूं। मेरा ऐसा कोई विचार नहीं रहा है।

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का अवलोकन विशेष रूप से दो जीवन्मुक्त महात्माओं ने किया है। प्रथम हैं परम वीतराग, पद-वाक्य, प्रमाणज्ञ पूर्णयति धर्म पालक, पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री दण्डी स्वामी श्री लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज तथा उपर्युक्त समस्त गुणविभूषित श्री दण्डी स्वामी अनन्त श्री विभूषित श्री रामेश्वराश्रम जी महाराज, दण्डी आश्रम, नवाब गंज, कानपुर का मैं परम ऋणी हूं।

अपनी निर्मल दृष्टि के साथ-साथ प्रसाद रूप में ग्रंथ प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग प्रदान कर महती कृपा की है। इनके श्री चरणों में प्रणाम करते हुए धन्यवाद देता हूं।

परम वयोवृद्ध व्याकरण, साहित्य तथा पिंगलशास्त्र के धुरीण विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्त गौड ने अनेक स्तोत्रों का संशोधन तथा मूल्यवान सुझान दिये हैं। स्वनाम धन्यवाद बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री ने अपना अमूल्य समय देकर प्रूफ संशोधन करके इस ग्रन्थ के प्रणयन में सहायता की है। इस कारण यह दोनों विद्वान् धन्यवाद के पात्र हैं। अनन्त श्री स्वामी सदानन्द सरस्वती (वेदान्ती स्वामी) महाराज करपात्रधाम केदारघाट, काशी को धन्यवाद देता हूं। उन्होंने इस ग्रंथ के लिए विशेष आर्थिक सहायता का वचन देकर अनुगृहीत किया।

इनके अतिरिक्त स्वनाम धन्य पिंगल व्याकरण के धुरंधर विद्वान् श्री पं० अयोध्या प्रसाद जी शास्त्री ने संस्कृत में छन्दोवद्ध अपनी सम्मति दी है। मैं धन्यवाद देता हूं, पूज्य पाद अ० श्री स्वामी करपात्री महाराज के परम प्रिय शिष्य अ० श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज जी ने संस्कृत श्लोकवद्ध एवं महामण्डलेश्वर अ० श्री स्वामी प्रकाशनन्द जी महाराज ने भी अपनी सम्मति देकर कृतार्थ किया है।

श्री शिवयोः पादाब्जयोरर्पितः

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा स्खलितंयन्मयाकृतम्।
प्रार्थिताः प्रणताः धीराः क्षन्तुमर्हन्ति साधवः॥

'इत्यलम्'

दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम (रमेशाश्रम)
दण्डी आश्रम, प्रभात नगर,
जालन्धर शहर
(पञ्चनदप्रदेश)

आशीर्वचन तथा सम्मतियाँ

२०५१ होली पूर्णिमा
वाराणसी

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्याणां निगमागम-सार हृदयाणां पुरीपीठाधीश्वराणां वरिष्ठजगद्गुरु शङ्कराचार्याणाम् अनन्त श्री निरञ्जनदेवतीर्थवर्याणां शुभाशीः।

यानि अस्माकं सुचरिमानि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि इतिश्रुतिः तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ, इति महाभारतः।

इन श्रुति स्मृति वाक्यों का तात्पर्य है कि अवतार पुरुष हो या महापुरुष हों इनके भी आचरण वेद मन्वादि धर्मशास्त्रानुमोदित होने पर ही सर्व साधारण जनता के लिए अनुकरणीय आचरणीय होता है।

श्री स्वामी रमेश आश्रम जी महाराज द्वारा अथक परिश्रम अनेक शास्त्रावगाहन करके निर्मित सत्य त्रेता आदि तत् तत् युगों के आचार्यों के इतिवृत्त से उपवृंहित "श्री गुरुवंशपुराण" है। इसमें वर्णित गुरुजनों की पवित्र पावन जीवनी स्वधर्मानुष्ठान में सहायक हो।

क्योंकि मानव जीवन प्राप्ति का चरम लक्ष्य भगवान् की प्राप्ति ही है, अतः ईश्वर तत्त्व प्राप्ति के साधन वर्णाश्रम धर्मनिष्ठापूर्वक शास्त्रीय यज्ञ, दान, तप आदि कर्म, शास्त्रप्रमाणजन्य उपासना (ईश्वर भक्ति) तथा आत्मज्ञान में श्रद्धा उत्पन्न कर सनातन धर्मानुयायी हिन्दू जनता को सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने में यह श्री गुरुवंशपुराण सहायक होगा, यह मेरी शुभकामना है।

लेखक को मेरी शुभाशीः है इसी प्रकार भविष्य में सद्ग्रन्थ का प्रचार प्रसार करते रहें।

श्री चरणानां आज्ञयां-
स्वामी विमलानन्द तीर्थः

श्री मज्जगदगुरु शङ्कराचार्य श्रीकाञ्चीकामकोटि

अनन्त श्री जयेन्द्र सरस्वीत शङ्कराचार्याणामाशीर्वचनम्

नागर कोयिल

अनन्त श्री स्वामि शिव बोधाश्रमाः

मान्याः

भवतां पत्रं तदधिगतम् 'श्री गुरुवंशपुराण का संक्षिप्त परिचयः।'

ग्रन्थ श्रीचरणैः अवलोकितः। भवदीयां तत्त्वमात्र संकलने श्रद्धां तद्वितरणे रीतिम् च दृष्टा तेऽतीव प्रसन्ना।

अयं ग्रन्थः न केवलंचरित्र निरूपणाय, परन्तु अस्मतप्राचीन सम्प्रदाय संस्कृत्योः विषये यथा वा भारतीयानामुत्साहो वर्धेत तथा संकलने सम्प्रतिपन्नोऽयं प्रयत्नः सर्वेषां सतां भूयिसीम् माननार्चाहति।

अनन्त श्री विभूषित श्री मज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य द्वयपीठाधीश्वर श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज जी का आशीर्वचन

हमारे सनातन धर्म में उसी ज्ञान का आदर होता है, जिसकी प्राप्ति गुरु परंपरा से होती है। अनादि अपौरुषेय वेदों में भी जिन विद्याओं का वर्णन है, उनकी भी गुरु परम्परा बताई गई है। इसका अर्थ है कि गुरु परम्परा से प्राप्त विद्या ही फल पर्यवसायिनी होती है। इसीलिए ईशावस्योपनिषद् में भी कहा गया है कि–

'इति शुश्रुम धीराणां मे नस्ताद्विचचक्षिरे'–

अर्थात् हमने यह ज्ञान उन धीर पुरुषों से प्राप्त किया है, जिन्होंने हमें उसका व्याख्यान करके सुनाया था।

यह भी नियम है, कि जो विद्या आचार्यों से प्राप्त होती है, वही कल्याणकारिणी होती है। आचार्य हमें जिस विद्या का उपदेश देते हैं, वह उनको अपने आचार्यों से प्राप्त होती है। इस प्रकार इसकी श्रृंखला भगवान् नारायण और सदाशिव तक पहुंचती है।

वेदान्त के साधक श्रोता और तत्त्वदर्शी उपदेशक अपने अध्ययन के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कहा करते हैं–

'ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या संप्रदाय कर्तृभ्यो वंश ऋषिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः। सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि।' जिसमें ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय के कर्त्ता वंशऋषियों का सादर स्मरण होता है। तत्त्वदर्शी गुरुओं का स्मरण ब्रह्मविद्या की प्राप्ति में सहायक है।

दण्डी स्वामी रमेशाश्रम (शिवबोधाश्रम) जी ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक 'श्री गुरुवंशपुराण' लिखकर साधकों पर उपकार किया है एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं।

धर्म संघ प्रकाशन और उसके कार्यकर्त्ताओं ने जो इसके लिए परिश्रम किया है उनको और ग्रंथ के लेखन को नारायण स्मरणपूर्वक शुभाशीर्वाद देते हुए, ग्रंथ की सफलता की कामना करते हैं।

स्वरूपानन्द सरस्वती

पूर्वाम्नाय श्री मज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामीनिश्चलानन्द सरस्वती का संदेश

॥ श्री हरिः ॥

'धर्म' भाव्य (भव्य) है और 'ब्रह्म' भूत। भाव्यका अर्थ अनुष्ठेय है और भूत का अर्थ सिद्ध। स्वर्ग और यागादि में साध्य-साधन भाव सम्बन्ध का निर्धारण लौकिक बुद्धिगम्य नहीं है। यही कारण है कि अभ्युदय-प्रद और निःश्रेयसप्रद साध्य-साधना स्वरूप धर्म के निर्णय में मन्त्र-ब्रह्मणात्मक वेद और वेदानुकूल शास्त्रों का ही प्रमाण्य मान्य है। तदनुरूप तर्क (युक्ति, ततप्रतिपत्ति, अनुमान) का महत्त्व भी धर्म निर्णय में मान्य है, अनागमिक युक्तियों का महत्त्व धर्म निर्णय में सर्वथा अमान्य है। जैसे रूप नेत्रैकसमधिगम्य है, वैसे ही धर्म वेदादि शास्त्रैकसमधिगम्य है। कहा भी है-

''आर्ष धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मवेद नेतरः॥''

(मनुस्मृतौ १२. १०६)

''भारतं मानवो धर्मोवेदाः साङ्गाश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारिन् हन्तव्यानि हेतुभिः॥''

(महाभारते आश्वमेधिक पर्वणि ९२ दक्षिणात्य)

'ब्रह्म' यद्यपि सिद्ध तत्त्व है, परन्तु प्रकृति से परे होने के कारण वह मन, वाणी से अतीत (अगोचर) है। सगुण ब्रह्म के अचिन्त्य-अनन्त गुणगण भी अप्राकृत ही है। मायावृत्ति व्यङ्ग्य अगुणका नाम ही गुण है। यही कारण है कि सगुणब्रह्म में परिलक्षित साम्यासङ्गादि गुणगण परमात्मस्वरूप ही मान्य हैं-

''मां भजन्ति गुणाः सर्वेनिर्गुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयो गुणाः॥''

(श्रीमद् भागवते ११.१३-४०)

जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्ध रूढ़ि रहित निर्गुण परब्रह्म में प्रत्यक्षादि इतर प्रमाणों की अगति और वेदादिशास्त्रों तथा शास्त्रानुसार युक्तियों की गति तो अत्यन्त स्फुट ही है।

''तत्र-तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते॥
अचिन्त्याःखलुये भावा नस्तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परंयत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥''

(महाभारते भीष्मपर्वाणि ५-११, १२)

''यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह''

(तैत्तिरीयोपनिषत् २.४)

''श्रुत्वा यदुक्तं परमार्थमेव तत्संशयो नात्रततः समस्तम्।
श्रुत्वा विरोधे न भवेत्प्रमाणं भवेदनर्थाय विना प्रमाणम्॥''

(ब्रह्मविद्योपनिषत् ३२)

उक्त रीति से यह तथ्य सिद्ध है कि धर्म और ब्रह्म वेदों के अपूर्व प्रतिपाद्य हैं। ये अभ्युदय और निःश्रेयसके प्रापक हैं। दुर्गम धर्म, ब्रह्म का ज्ञान अनादि अविच्छिन्न गुरु परम्परा से ही सम्भव है, राकेट, वायुयान, कम्प्युटर, दूरदर्शन आदि पौरुषेय यन्त्रों का ज्ञान भी गुरु के बिना सम्भव नहीं है, तब अपौरुषेय वेद और वैदिक तत्त्वों का ज्ञान बिना गुरु के कैसे सम्भव है? जैसे जात्यन्ध को रूपज्ञान सम्भव नहीं, वैसे ही गुरुपदेश के बिना धर्म, ब्रह्मादि तत्त्वों का ज्ञान सम्भव नहीं–

''यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा।
तथागुरुपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्त्वज्ञानं न विद्यते।''

(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् ५/१)

आदि गुरु श्रीहरि और उनके ही तुल्य स्वगुरु की पराभक्ति के बिना दुर्गम धर्म, ब्रह्मादि के उपदेश का अधिकार भी सम्भव नहीं है–

''यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता धर्माः प्रकाशन्ते महात्मन्॥''

(श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.२३)

उक्त अभिप्राय से स्व और पर गुरु परम्परा ज्ञान तथा स्वगुरु, परमगुरु, परमेष्ठिगुरु और परात्पर गुरु तथा आदि गुरु की आराधना का अत्यधिक महत्त्व है। ऐतिह्यदृष्टि से अद्यावधि महापुरुषों के जीवन चरित्र का परिज्ञान भी अत्यावश्यक है।

शास्त्रों में तथा शास्त्रीय परम्परा में गुरुओं का इतना महत्त्व होने पर भी गुरुओं का बृहद् परिचय प्रदान करने वाला कोई ग्रन्थ नहीं था। विविध श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास तथा सम्प्रदाय परम्परा का अन्वेषणकर उसे 'श्रीगुरुवंश पुराण' रूप से गुम्फित कर दण्डी स्वामी श्री शिवबोधाश्रम (रमेशाश्रम) जी महाराज ने श्री हरि-गुरुकरुणा के अमोघ प्रभाव से अद्भुत कार्य किया है। ऐसे सत्यान्वेषी सत्पुरुष से हमारा देश गौरवान्वित है। तपस्वी अन्तर्मुख और सुयोग्य सत्पुरुष से ही इस प्रकार का कार्य सम्पन्न हो सकता है।

श्री स्वामी जी महाराज ने श्री गुरुवंश पुराण का संक्षिप्त परिचय मेरे पास कई महीने पूर्व भेजा। कार्यक्रमों की व्यस्तता के कारण आज उसके अवलोकन का संयोग सधा। कुछ सुझावों को पृथक् से प्रेषित कर 'संदेश' लिखने के लिए उद्यत हुआ।

ग्रन्थ की भाषा सरल है। शास्त्रसम्मत सरस शैली का आद्योपान्त उपयोग किया है।

भगवान् श्री चन्द्रमौलीश्वर लेखक महोदय से इस प्रकार को लोकोपकारक कृत्य सम्पादन कराते रहें, ऐसी भावना है।

निश्चलानन्द सरस्वती

२६-५-९५, पुरी

आशीर्वचन

अनन्त श्री विभूषित वरिष्ठ शंकराचार्य

दण्डी स्वामी श्री रामाश्रम जी महाराज

ज्योतिष, अवान्तर पीठ, भानुपुरा (मध्य प्रदेश)

विविध विषय सम्बलिते नानाभाव समन्विते।
कृतेत्वया निबन्धेऽस्मिन् यत् कल्याणं कुरुताच्छिवः॥

नमो जयति जय भगवद्पाद जगद्गुरु आद्य श्री शंकराचार्य

ज्योतिर्मठ अवान्तर भानपुरा पीठ

जगद्गुरु शंकराचार्य मठ

पो० भानुपुरा जनपद मन्दसौर (मध्य प्रदेश)

संदेश

अनन्त श्री स्वामी रमेश आश्रम जी महाराज द्वारा प्रणीत अभूत पूर्व ग्रन्थ ''श्री गुरुवंश पुराण'' इस युग के लिए अमूल्य निधि होगा।

त्रिदेवों के चरित्र, चारों युगों के आचार्य एवं गुरुओं के चरित्र समाज़ के लिए प्रेरक हैं।

इस ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु नारायणात्मक शुभाशीष प्रदान करते हैं।

स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ

श्री स्वामी रमेशाश्रम जी महाराज प्रभावशाली महापुरुष हैं इनकी स्मरण शक्ति असाधारण है। सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की आप में अपूर्व कला है। गुरुवंश पुराण की रचना करके आपने सनातन धर्म पर महान् उपकार किया। इनकी रहनी-सहनी अत्यन्त सरल है। ऐसे समय में इनकी आवश्यकता है। ये भगवान् की एक विभूति हैं।

श्री अनन्जत श्री विभूषित स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज

शुकताल (मुज्जफरनगर)

श्री गणपतये नमः

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानां समागमे।
यं नत्वा कृत कृत्याः स्युः तं नमामिगजाननम्॥

श्री गुरुभ्योनमः। श्री सरस्वस्त्यै नमः॥

महान् आनन्द का विषय है यह अपूर्व ग्रन्थ देवनागरी भाषा में श्री स्वामी रमेशाश्रम जी ने बड़े परिश्रम बड़ी खोज से प्रस्तुत किया है जो गुरु परंपरा के जिज्ञासुओं के लिए परम उपयुक्त है। प्राचीन और अर्वाचीन हमारे गुरुजन जिन्होंने हमें ईश्वरीय ज्ञान गंगा को प्रदान किया है उनका सत्य युग से लेकर आज तक के इतिहास सप्रमाण सयुक्ति इस ग्रन्थ में बड़ी निपुणता से ग्रंथकार ने वर्णन किया है, कई वर्षों की खोज अनेक ग्रंथों का अध्ययन अनेक विद्वानों-सन्तों का सत्संग इस ग्रंथ की सामग्री के लिए इन्होंने किया है, इनकी गुरु भक्ति, ईश्वर भक्ति, नम्र स्वभाव आदि का यह अद्भुत फल ग्रन्थ के रूप में उपस्थित है, जिसका रसास्वादन अधिकारीजन करेंगे।

इसका नाम परम पवित्र ''श्री गुरुवंश पुराण'' अपने विषय को शब्द गर्भ में रखे है, -श्री ब्रह्मविद्या, गुरु-अविद्यानाशक किरण की वंश-ज्ञान धारा का पुराण-उपब्रंह्मण, इतिहास। इसके अनन्तर सत्ययुगीय ऋषि महानुभाव जिन्होंने समाधि में वे प्राप्त किये, त्रेता के ऋषियों तपः पूत बुद्धि ने उनका अर्जन किया और आगे को उस ज्ञान का प्रकाश दिया, उस ज्ञान राशि को द्वापर के ऋषियों ने संचय किया और संचार प्रचार किया तथा इस चौथे युग में भी तपस्वी ऋषियों ने पधार कर हम लोगों तक पहुंचाया इन सब का बड़ी चतुरता सुचारुता से वर्णन है, आचार्यों की जीवनियों में आये हुए भ्रम और शंका का निवारण प्रमाण और युक्तियों से ग्रंथकार ने दिया है, युगों के आचार्यों का वर्गीकरण रमणीय रीति से किया गया है। ग्रन्थ सरल और अति उपयोगी है। हम आशा और इच्छा करते हैं आस्तिक गुण-ग्राही सज्जन इसको प्रेम और समादर से अपनायेंगे।

आगे ईश्वर की नियति सर्वोपरि है जिसने यह जगत निर्माण किया है वही मंगल विधान करेगी। ''शंभूयात्''

अकिंचन-**लक्ष्येश्वराश्रम**

ज्येष्ठ शु० १/२०५२

सम्मति

वैदिक सनातन परम्परा में पुराणों की सर्वोपरि मान्यता रही है। वेदार्थ के सम्यक् परिज्ञान हेतु पुराणाध्ययन अनिवार्य माना है। विद्वानों का मन्तव्य है कि "इतिहास पुराणाभ्यां वेदम् समुपवृंहयेत्।" पुराण का निर्वचन करते हुए निरुक्तकार यास्क कहते हैं "पुरा नव भवति।" भारतीयवाङ्मय का अति विशाल साहित्य पुराण मूलक है। वर्तमान हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि एवं समृद्धि में पुराणों का विशद ज्ञान ही हेतु है।

ज्ञानावतार श्री वेदव्यास जी की इस दिव्य पुराण परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए वीतराग परम तपस्वी श्री स्वामी शिवबोधाश्रम ने अथक परिश्रम करके यह संग्रह ग्रन्थ गुरुवंश पुराण लिखने का अति सफल प्रयास किया है।

इस विशालकाय ग्रन्थ को पुराण शैली में लिखने का यत्न नवीन परम्परा का जनक हो गया। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का प्रकाशन यथाशीघ्र हो रहा है। सुधीजन इसके अध्ययन से ज्ञानार्जन करेंगे। यह ग्रन्थ प्राचीनता एवं नवीनता का संगम स्थल है। इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषम बड़ा व्यापक एवं रोचक है। पुराण में क्या कहा जाता रहा है, इसके सम्बन्ध में विद्वानों की मान्यता है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचमलक्षणम्

अर्थात् उपरोक्त पांच विषयों का प्रतिपादक ग्रन्थ पुराण माना जाता है।

स्वामी शिवबोध आश्रम जी ने अनादि नारायण से लेकर वर्तमान काल के गुरुओं का पवित्र चरित्र लिखा है। इस ग्रन्थ के अध्येता को यह गरन्थ पढ़कर जहां व्यापक ज्ञान वहां आश्चर्य भी होगा, कि वर्तमान काल में इतनी लग्न, परिश्रम तथा निष्ठा वाले व्यक्ति आज भी विद्यमान हैं। स्वामी जी ने इस ग्रन्थ के संग्रह में जो परिश्रम किया है वह असामान्य है। जो व्यक्ति इस ग्रन्थ का अध्ययन करेगा, उसे प्राचीन ऋषि-महर्षियों के जीवन चरित्र के साथ वर्तमान कालीन वैदिक परम्परा के संन्यासियों की परम्परा का परिज्ञान भी होगा। इस विशाल ग्रन्थ में बड़ी उदारता का परिचय देते हुए सभी वैदिक दार्शनिकों को सम्मानपूर्वक इस ग्रन्थ में उद्धृत किया गया है, चाहे वे आचार्य केवलाद्वैत

के हैं, शक्ति-शब्दाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत तथा अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त के आचार्य हों। इन सभी की संक्षिप्त जीवनी तथा विचारधारा का उल्लेख यहां हुआ है। इस विशालकाय ग्रन्थ में जिन दो हज़ार पांच विभूतियों का उल्लेख किया गया है, वे अनेक सम्प्रदायों के प्रवर्तक माने गये हैं। इस ग्रन्थ में केवल चरित्र ही नहीं लिखा है, बल्कि उन उन चरित्रनायकों की मान्यताओं का अत्यन्त सूक्ष्म, गम्भीर अध्ययन करके लेखक ने बड़ा भारी परिश्रम कर इस ग्रन्थ को पुराण कोटि में सुप्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है, जहां लेखक ही अपनी श्रेष्ठ प्रतिभा के दर्शन पदे-पदे होते हैं। लेखक ने बड़ी व्यापक दृष्टि से यह ग्रन्थ तैयार किया है। इसमें अनेक विषयों पर दोषादोष विवेचन किया है। गुरु की महती महिमा का समुल्लेख करते हुए, किसको, गुरु बनने का अधिकार है, किसको नहीं। गुरु बनाने मात्र से शिष्य का कल्याण हो जाता है अथवा कुछ अन्य बातें भी आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त अनेक विषयों का विशद विवेचन किया गया है, जो वर्तमान काल में कुछ विकृत से दिखाई देते हैं।

स्वामी शिवबोधाश्रम जी ने इस ग्रन्थ की संरचना बड़ी निपुणता, विचारशीलता तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा का समाश्रय लेकर की है। भारतीय मान्यताओं, परम्पराओं एवं बिखरी हुई धार्मिक व्यवस्थाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म समीक्षण करते हुए प्राचीनता के साथ अर्वाचीनता का भी अध्ययन प्रस्तुत किया है। परम्परा प्राप्त अनर्वाचीन परम्परा को अर्वाचीन स्वरूप प्रदान कर भारतीय धार्मिक जनता पर महद् उपकार किया है। ऋषि परम्परा एवं आचार्य परम्परा का प्रामाणिक विवेचन किया है। स्वामी जी स्वयं शांकरी परम्परा में दीक्षित हैं। अतः आपने इस परम्परा को अपने ग्रन्थ में विशेष स्थान दिया है। इस विशालकाय ग्रन्थ का पूरा प्रकाशन होने पर अनेक अज्ञात रहस्यों से परिचित होंगे।

इस पवित्रमय गुरुवंश पुराण से सुधीजन अधिकाधिक लाभान्वित होंगे।

निगमबोधतीर्थ

वेदाचार्य, एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), साहित्याचार्य

वेद मन्दिर, लुधियाना

मान्नीयदण्डी श्री स्वामी रमेश आश्रम जी का यह भूरि-भूरि प्रयत्न निश्चयपूर्वक सराहनीय है। आज वर्तमान में यह अति आवश्यक है कि भारत की ऋषि परम्परा में दीर्घ काल से जो भक्ति ज्ञान का तथा वैदिक परम्परा से कर्म योग का विधिवत् ज्ञान होता रहा है, उसके लिए गुरु परम्परा की व्याख्या अति आवश्यक है। सनातन परिवेश में ऐसा होना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान समय में पंथ रोग में ग्रसित जनता की शास्त्रहीन बुद्धि को गुरुऽम अंधकारमय जीवन बनाने में अति प्रयत्न करते है। जिन्हें गुरु परम्परा का ज्ञान नहीं तथा सनातन विधि से दीक्षा ज्ञान नहीं वे लोग अपने जीवन को घोर अंधकार में ले जा रहे हैं। उससे बचने के लिए महाराज श्री का प्रयास अति सराहनीय है। भारत की जनता को वर्तमान तथा भविष्य में यह पावन ग्रन्थ निश्चय उत्तम दिशा प्रदान करेगा।

भवदीय

महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती, चम्बा

श्री हरि

गुरु-वंश पुराणस्य सङ्क्षिप्तः पठितो मया।
सताम्परिचयश्श्रेष्ठःशिष्य-मानसः तोषदः ॥१॥
इदानीं दुर्लभं ग्रन्थमिमं लब्ध्वा विचक्षणाः।
ब्रह्मतोह्यद्य पर्यन्तं ज्ञास्यन्तीमां परम्पराम् ॥२॥
काशीशः प्रार्थये नित्यं करौ संयोज्य प्रेमतः।
ग्रन्थोऽयंचिरजीवी स्याद् गुरु-वंश-प्रबोधकः ॥३॥
लेखकस्य कृते प्राज्यं दीयते धनयवादनम्।
येनायं संस्कृतो ग्रन्थो बहुशास्त्र-विमर्शतः ॥४॥
मानवस्य स्वभावेन त्रुटयः सम्भवन्ति हि।
यदि दृष्ठि पथं काचिज्जायते क्षम्यतां बुधैः ॥५॥

शिवम्

ब्रह्मनिष्ठ काशीस्थसन्त अनन्त श्री दण्डी स्वामी शिवानन्द सरस्वती

धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

अभिमतम्

अभूत् पूर्वंमहितं महोदयं, महात्म संकीर्तन पूतमदभुतम्।
प्रबोध पाथेयमयं मनोहरं हितानुबन्धि श्रुतिमार्ग गामिनाम्॥१॥
भवाध्व खेदापहरं यतात्मनां, तपोभृतां तत्त्व गवेषिणां नृणाम्।
चतुर्विभक्तं हि चतुर्युगाख्यया, चतुष्पथं सच्चरितोपलक्षकम्॥२॥
कृतादिदानींतनकालवार्तिनां, सतां सहस्त्राधिकं संख्या जुषाम्।
गुरूत्तमानां चरितोपदेशयो-र्निधानमादर्श निदर्शकं शुभम्॥३॥
समस्तवेद स्मृति सार संयुतम्, पुराण संवादि मुनीन्द्र सम्मतम्।
निवेशिताशेष सनातनाशयं, गुरूपदेशामृत चारुचर्चितम्॥४॥
अभिनवमद्भुतमेतत् सद् गुरु-लक्षणे प्रयोजनोपेतम्।
'श्री गुरुवंश पुराण', सततं सत्पथ निदेशकम् भूयात्॥५॥

अयोध्यायप्रसाद शास्त्रीय
(एम०ए०) नव व्याकरण, साहित्याचार्यः, साहित्य रत्नम्



॥ श्रीः ॥

अनन्त श्री विभूषित श्री १००८ परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डिस्वामि श्री रमेशाश्रय महाराजै र्लिखितं गुरुवंश पुराणं मया प्रायः पूर्णरूपेणाधीतम्, ग्रन्थोऽयं श्रुतिस्मृतिपुराणादि शास्त्राणां गुरु परम्परायाश्च प्रकाशकः। अस्मिन् खलु-श्री स्वामिपादैः हिन्दी भाषायामनुवाद रूपेण प्रवचनरूपेण वा यल्लिखितं तत्सर्वं युक्ति युक्त सप्रमाणं शास्त्रानुरूपं च। ग्रन्थेऽस्मिन् सर्वेषां वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्म निर्दिष्टाः। सृष्टेः क्रमवर्णनम्, प्रणवादि व्याख्यानं युगानां वर्णनम् भविष्यपुराणनुसारं कलियुगीन नृपाणां च वर्णनमतिशोभनमकारि। मुमुक्षूणां चतुर्विधानामपि संन्यासिनां कृते विस्तरेणाचाराः प्रतिपादिताः कलौ विशेषरूपेण पाराशरस्मृतेः मान्यतया च तस्याः भाषानुवादः सर्वेषां जनानां हिताय विहितः। अतो ग्रन्थस्यास्याध्येतारः श्रोतारश्चाचार परायणां नूनं लाभान्विता भविष्यन्तीत्याशास्ते-

हरिदत्त शर्मा,
एम०ए० व्याकरणाचार्यः
राष्ट्र पुरस्कृतो भूतपूर्व प्रधानाचार्यः
(श्री विल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ)
२६५ २७, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।
माद्रपद शु० १३ सं० २०५२।

"एक प्राण दो देह इनका अद्‌भुत नेह"

बीसवीं शताब्दी के अप्रतिम सन्तद्वय, युग पुरुष थे और देश की धार्मिक जनता को उचित मार्गदर्शन दिया, दोनों ही यज्ञयुग प्रवर्त्तक थे। इन दोनों का परस्पर भाव आत्मसमर्पण का था साथ ही अनादि गुरु परम्परा के वर्तमान युग में यह दोनों संवाहक थे।

प्रकाशक इसी भाव से-

"श्री गुरुवंश पुराण" को इन दोनों ही महापुरुषों के श्री चरणों में समर्पण करता है।

श्रीधर्म संघ प्रकाशन
मेरठ

दण्डिस्वामिसिद्धेश्वराश्रमः

महावीरघाट, कालाकांकर प्रतापगढ़ (उ० प्र०)

श्री संवत् २०५२, दिनांक २८-६-१९९५

श्री दण्डी स्वामी रमेशाश्रम द्वारा प्रणीत गुरुवंश पुराण नामक गरन्थ प्रकरणशः अवलोकन मैंने किया। यह ग्रन्थ सनातन धर्मावलम्बी जनता के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

बहुत से गूढ़ एवं अप्रसिद्ध तत्त्वों का पूर्णतः स्पष्टीकरण किया गया है। इस लुप्त होती हुई गुरू परम्परा की रक्षा के लिए अल्प शब्दों में सम्पूर्ण गुरुकुलों एवं उनसे सम्बन्धित मठों की शाखाओं की जानकारी कराई है। सनातन धर्म के परम हित चिन्तक वर्ण व्यवस्था के अधिकारानुसार सब लोग सत्यपथ के पथानुगामी हों कर्म, उपासना, ज्ञानादि की नष्ट होती हुई सदाचार परम्परा का संरक्षण करने में यह ग्रन्थ महान् उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसी कृति की आवश्यकता चिरकाल से थी, जिससे आपामर धर्म तत्त्वों का अनायास लाभ प्राप्त कर सके। स्वामी जी ने सद्ग्रन्थ समुद्र का मन्थन कर यह सुधा कुम्भ प्रस्तुत किया है। कहावत है कि गागर में सागर भर दिया है। कितना गम्भीर अध्ययन करके स्वामी जी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। धर्म का ज्ञान वेदादिशास्त्राध्ययन के बिना कठिन है। इस कराल कलिकाल में तो सब के लिए दुष्कर है। अतः यही मेरी दिव्य शुभाशीर्वाद है कि गुरुवंश पुराण उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्तहो एवं भूतभावन भगवान् विश्वनाथ श्री स्वामी जी के करकमलों द्वारा ऐसी ही शुभकृति भी करवाते रहें।

अथ आरती श्री परम गुरु देव जी की

जय गुरु देव हरे स्वामी जय गुरु देव हरे।
तिमिर विनाशन ज्ञान प्रकाशन, मन संशय सब दूर करे॥ जय० ॥१
महा वाक्यउपदेश दियो गुरु समझाकर सारे॥ स्वामी॥
करी लक्षणा वाच्य लक्ष्य की, पद पद सब न्यारे॥ जय० ॥२
ईश्वर जीव अविद्या माया, चिदाभास आदि॥ स्वामी॥
लक्षण भिन्न भिन्न सबके, चैतन्योपाधी॥ जय॥३
माया में प्रतिबिम्ब चेतन का, ईश्वर कहलाता॥ स्वामी॥
सर्वज्ञ समर्थ शुद्ध एक प्रभु, सृष्टि उपजाता॥ जय॥४
सर्वज्ञादि गुण माया युत, त्यागो चिद्भासी॥ स्वामी॥
शुद्ध सच्चिदानन्द भयोब्रह्म, घट घट का वासी॥ जय॥५
अविद्या में प्रतिबिम्ब चेतन का जीव कहलाया॥ स्वामी॥
करे कर्म और सुख दुःख भोगे, जन्म म्रण काया॥ जय॥६
तजो अविद्या अल्पज्ञादिक, धर्म सहित सारी॥ स्वामी॥
भयो एक अखण्ड अजन्मा, साक्षी कूटस्थ अविकारी॥ जय॥७
बाच्य अर्थ में भेद सदा रहे उपाधी युत नाना॥ स्वामी॥
अंश विरोधी जीव ईश के, संसृति भय माना॥ जय॥८
लक्ष्य अर्थ में भेद नहीं है, मिथ्योपाधि जाना॥ स्वामी॥
एक भयो कूटस्थ ब्रह्म, गुरु देव दियो ज्ञाना॥ जय॥९
गुरु कृपा से जान लिया सब मिथ्या संसारा॥ स्वामी॥
रज्जु सर्पवत् जीव ईश सब, मोह माया विस्तारा॥ जय॥१०

मैं एक अखण्ड अनन्त असंग हूं, अभय अविनाशी॥ स्वामी॥
सत्चित्त आनन्द व्यापक वस्तु देश काल वासी॥ जय॥११
हर्ष शोक अरु राग द्वेष, गुरुसकल द्वन्द्व विसरे॥ स्वामी॥
गुरु चरणोदक पान करूं मैं, धरूं ध्यान गुरु देव हरे॥ जय॥१२
करूं आरती परम् गुरु जी की, बोलूं जय जय कारा॥ स्वामी॥
तव शरणं शरणागत वत्सल, करो भव सागर पारा॥ जय॥
यह आरती परम गुरु जी की सुबह शाम गावै॥ स्वामी समझ समझ गावै॥
अनायास चौरासी छूटे अवश्य परम पद पावै॥ जय गुरुदेव हरे॥

– इति आरती श्री परम गुरुदेव जी की सम्पूर्णम् –

श्रीमत परमहंस परिव्राजकाचार्य
अनन्त श्री विभूषित श्रीमद् दण्डी स्वामी
अद्वैताश्रमा: द्वारा विरचित

श्रीमत् परम हंस परिव्राजकाचार्य
अनन्त श्री विभूषित श्रीमद् दण्डी स्वामी
महादेवाश्रम द्वारा प्रकाशित



श्री हरिः

प्रकाशकीय

त्रिगुणात्मक सृष्टि में दैवी और आसुरी पंक्तियों का परस्पर विरोध रहा है। एक दूसरे के दमन की प्रवृत्ति का इतिहास ही देवासुर संग्राम के रूप में पुराणों में वर्णित है। यहां तक समुद्र मंथन के समय अमृत की प्राप्ति उसके विनियोग पर भी विवाद रहा और जगत् पालक श्री विष्णु भगवान् ने युक्ति से देवताओं का बल बढ़ाया। यही संग्राम और दोनों वृत्तियों की जय पराजय का इतिहास, भगवान् के विभिन्न अवतार तथा अनेक मंत्र दृष्टा त्रिकालज्ञ महर्षियों की मानवता की रक्षा में योगदान का इतिहास ही श्री गुरुवंश पुराण के प्रथम खंड में वर्णित है। सत्ययुग, त्रेता व द्वापर ही इसकी कालावधि है।

परम पूज्य श्री स्वामी शिवबोधाश्रम जी महाराज ने वेद, वेदांग, उपनिषद एवं पुराण साहित्य का गम्भीर अध्ययन कर जो कुछ पाया सभी इस ग्रन्थ में भरने की चेष्टा की है। दूसरे खण्ड में केवल कलियुग के पांच हजार वर्ष का विवरण है। इसमें मंत्र दृष्टा ऋषियों के स्थान पर इस काल में अवतरित परमेश्वर की अंश विभूतियों का वर्णन है। अनेक सम्प्रदायों के आचार्यों का वर्णन करते हुए आज से लगभग २५०० वर्ष पहले श्री शंकर के अवतार आद्य शंकराचार्य का अविर्भाव, संन्यास ग्रहण, अद्वैत मत की स्थापना एवं प्रचार वर्णन किया है। इस भाग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अद्यावधि उपलब्ध दण्डी संन्यासी मात्र का परिचय देने की चेष्टा श्री स्वामी जी ने की है। शंकराचार्य के चार पीठों का भी समुचित विवरण दिया है।

आर्य समाज के उद्गम के साथ ही सनातन धर्म के क्षेत्र में चली आ रही आचार्य परम्परा एवं प्रवचन शैली में परिवर्तन आया। शास्त्रार्थ होने लगे और बौद्ध काल की तरह खण्डन मण्डन की परम्परा चल पड़ी। सनातन धर्म सभाओं का संगठन हुआ। भारत धर्म महामण्डल, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, धर्मसंघ आदि संस्थाओं का उदय होता गया। सरकारी हस्तक्षेप धर्म में होने लगा।

अतः स्वामी करपात्रीयुग का उदय हुआ।

सन् १९४० में स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी एवं श्री करपात्री जी ने धर्म संघ की स्थापना की और एक बार यज्ञ युग की झलक दिखाई देने लगी। उन्हीं की आज्ञा से मेरठ में धर्म संघ प्रकाशन की स्थापना की गई और साहित्य प्रकाशन द्वारा सनातन वर्णाश्रम धर्म की रक्षा व प्रसार का प्रयत्न किया जा रहा है।

संक्षेप में श्री गुरुवंश पुराण सनातन वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का विवरण व संघर्ष का इतिहास है। जिसके लेखन में श्री स्वामी जी ने बड़ी तपस्या की है इसके प्रकाशन में धन का समायोजन उनका ही किया हुआ है। धर्म संघ प्रकाशन को तो उन्होंने श्रेय मात्र दे दिया है। प्रकाशन के कार्यकर्त्ताओं ने अपनी ओर से तन, मन, धन से सेवा की है।

वर्तमान में गुरुवंश पुराण का प्रथम खण्ड आपके कर कमलों में है। द्वितीय खण्ड शीघ्र ही आपके समक्ष प्रस्तुत होगा।

इसके लेखन प्रकाशन एवं संशोधन में सहयोग देने वाले विद्वानों के हम आभारी हैं। लेखन व प्रैस की भूलों के लिए क्षमा प्रार्थी हैं।

कृष्ण प्रसाद शर्मा
संपादक एवं कार्यवाहक अध्यक्ष

श्याम सुन्दर वाजपेयी
अध्यक्ष

हरिदत्त शर्मा
व्याकरणाचार्य, एम०ए०
भूतपूर्व प्रधानाचार्य
बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ

डॉ० प्रेम दत्त चमोली
एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी)
डी०फिल०, साहित्याचार्य
भूतपूर्व प्रधानाचार्य
एन०ए०एस० एंटर कॉलेज मेरठ

मुद्रक
वीरेन्द्र कुमार

(दोनों प्रधानाचार्य राष्ट्रीय पुरस्कार से पुरस्कृत हैं।)

श्री हरिः

श्री गुरुवंश पुराण की विषय सूची (प्रथम भाग)

सत्ययुग खण्ड का द्वितीय परिच्छेद

सत्ययुग खण्ड का तृतीय परिच्छेद

सत्ययुग खण्ड का चतुर्थ परिच्छेद

अथ त्रेता युग खण्ड

अथ द्वापर युग खण्ड प्रारम्भ

परिशिष्ट

"ॐ श्री मन्महागणाधिपतये नमः ॥"

"ॐ श्रीगुरुचरणकमलेभ्योनमः ॥"

श्री गुरुवंश पुराण

सत्ययुगखण्ड

प्रथम परिच्छेद का प्रथमोऽध्याय प्रारम्भ

॥ अथ मंगलाचरणम् ॥

सरस्वती अष्टकम्

गणनाथं नमस्कृत्य, शुकतातं नमाम्यहम्।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति, बुधास्तास्तत्त्वं हि शास्त्रजम् ॥१॥
सर्वात्मकं सर्वरूपं, सर्वाधारं च सर्वगम्।
देवेश्वरं महादेवं, साक्षिभूतं नमाम्यहम् ॥२॥
ब्रह्मादिभिस्तुते देवि, सर्वज्ञानप्रदायिनि।
भुक्ति मुक्ति प्रदे देवि, शान्तिं देहि नमोऽस्तुते ॥३॥
सर्व शास्त्रप्रदे देवि, छन्दशास्त्र प्रदायिनि।
गुरोः शास्त्र विवेकार्थं, प्रज्ञां देहि नमोऽस्तुते ॥४॥
अहङ्काराभि भूतोऽस्मि, लोभमोहसमन्वितः।
तद्दोष शमनार्थ मे, शक्तिं देहि नमोऽस्तुते ॥५॥
क्व ब्रह्मभूताः गुरवः, क्व चाहं मन्दधीरधीः।
तेषां चरित्रं वक्ष्यामि, बुद्धिं देहि नमोऽस्तुते ॥६॥
शारदे सारदे देवि, मोक्ष लक्ष्मी प्रदायिनि।
षट् चक्र भेदनं कृत्वा, मोक्षं देहि नमोऽस्तुते ॥७॥

कृपया ते महामाये, गुरुवंशपुराणकम्।
रचयामि यथाबुद्धि, यथाश्रुतं यथाबलम् ॥८ ॥
तस्माद्धि पूर्ण सर्वज्ञे, ब्रह्म विद्ये नमोऽस्तुते॥
कुन्देन्दु शुभ्रवदने, वसाने वसने शुभे।
कच्छपीवीणया युक्ते, ग्रन्थ पाणि नमोऽस्तुते॥९ ॥
सर्वदेवस्तुते मातः, ब्रह्म चिन्तन तत्परे।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च, देहि मातर्नमोऽस्तुते॥१० ॥

अर्थ–श्री गणेश जी को तथा शुकदेव जी के पिता व्यास जी को प्रणाम करता हूं। जिनकी कृपा के बिना विद्वान् भी शास्त्रों के तत्त्व को नहीं जान सकते हैं। सर्वात्मस्वरूप, सर्वरूप, समस्त जगत के आधार सर्वव्यापी, सभी प्राणियों के साक्षी भूत देवेश्वर महादेव को प्रणाम करता हूं॥२॥

सरस्वती अष्टक का अर्थ–ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुत्य हे देवि! सभी प्रकार का ज्ञान देने वाली, भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाली, हे देवि! मुझे शान्ति दीजिये। मैं आपको प्रणाम करता हूं॥३॥

समस्त शास्त्रों का ज्ञान देने वाली, छन्दशास्त्र को देने वाली, गुरु शास्त्र के ज्ञान के लिए, मुझे आप बुद्धि दें। मैं आपको प्रणाम करता हूं॥४॥

मैं अहंकार आदि दोषों से युक्त हूं। लोभ मोह से युक्त हूं। उन दोषों को दूर करने की शक्ति दो। मैं आपको प्रणाम करता हूं॥५॥

कहाँ तो ब्रह्मभाव को प्राप्त गुरुजन और कहां मैं अति मन्द बुद्धि, इन गुरुओं के चरित्र वर्णन करने के लिए मुझे, बुद्धि दो, मैं आपको प्रणाम करता हूं॥६॥

हे शारदे, हे तत्त्व ज्ञान देने वाली हे देवि, मुक्ति रूपी लक्ष्मी देने वाली, हे देवि षट्चक्रों का भेदन करके (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनहद, विशुद्ध, आज्ञाचक्र) मुझे मुक्ति दो। मैं आपको प्रणाम करता हूं॥७॥

हे महामाये! गुरुवंश पुराण नामक इस ग्रन्थ की रचना अपनी बुद्धि सामर्थ्य तथा शास्त्रज्ञानुसार करता हूं॥८॥

इसलिए हे सर्वज्ञे! हे पूर्ण स्वरूपे! हे ब्रह्म विद्या की अधिष्ठातृ देवि, पूर्णज्ञान तथा ब्रह्म विद्या की प्राप्तिके लिए आपके चरणों में मैं प्रणाम करता हूं ॥८॥

कुन्द इन्दु के समान शुभ्र मुख वाली! सुन्दर वस्त्र धारण करने वाली कच्छपी नामकवीणा से युक्त, पुस्तक हाथ में धारण किये हुए सरस्वती देवी को मैं प्रणाम करता हूं ॥९॥

हे मात! समस्त देवताओं द्वारा स्तुति की जाती हुई, ब्रह्म चिन्तन में तत्पर रहने वाली, माता सरस्वती जी मुझे ब्रह्मज्ञान तथा मेधा दो। मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥१०॥

यस्य श्रवणमात्रेण जन्मसंसार बन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै गुरवे विदितात्मने ॥११॥
नमः समस्त भूतानामादि श्री गुरुमूर्तये।
अनेक रूपरूपाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१२॥
पञ्चाननमुखोद्भूतान् पञ्चाक्षरसमुद्भवान्।
पञ्चसूत्रकृतो वन्दे, पञ्चाचार्यान्जगद्गुरून् ॥१३॥
श्रीमच्छिवाचार्य विचार दीक्षं स्वशिष्यसत्प्रीणनपूर्वपक्षम्।
दुर्वार कामादिविदारदक्षं भजाम्यहं रेणुकं कल्प वृक्षम् ॥१४॥
भद्राङ्कुराय भजतामभयङ्कराय मोहांधकाररवये कवये मनूनाम्।
कैवल्यकल्पतरवे गुरवे गुरूणां
श्री रेणुकाय गणपाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥१५॥

टीका–जिन गुरुओं के चरित्र श्रवण मात्र से जीव जन्म मरण रूपी संसार के बन्धन से मुक्त होता है उन विदितात्मा गुरुओं की मैं वंदना करता हूं ॥११॥

समस्त प्राणियों को जन्म देने वाले तथा अनेक रूपों को धारण करने वाले, श्री गुरु देव की साक्षात् मूर्ति, भगवान् दक्षिणामूर्ति शंकर की मैं वंदना करता हूं (भगवान् शंकर के पांच मुखों में जो मुख्य दक्षिण की तरफ है, उसे दक्षिणा मूर्ति कहते हैं।) ॥१२॥

पञ्चानन भगवान् शंकर के पांच मुखों से जो उत्पन्न हुए हैं तथा पञ्चपञ्चाक्षरी से उत्पन्न तथा पञ्चसूत्रों के रचयिता जगत् गुरुपञ्चाचार्यों को मैं प्रणाम करता हूं।

(भगवान् शिव के पांच मुंखों के नाम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशान है इन पांच मुखों से क्रमानुसार श्री रेणुकाचार्य, दारूकाचार्य-चंकुकरणकाचार्य-धेनुकरणकाचार्य-विश्व करणकाचार्य यह पञ्चाचार्य हैं।) ॥१३॥

जो शिवाचार्य सम्प्रदाय की दीक्षा से युक्त है हैं तथा अपने सत्पक्ष के समर्थन में कुशल, पूर्व पक्ष का खण्डन करने वाले तथा कामादि दोषों को दूर करने वाले ऐसे मुक्ति रूपी कल्पवृक्ष श्री रेणुकाचार्य जी की मैं सेवा करता हूं ॥१४॥

कल्याण रूपी अंकुरा देने वाले, सेवा करने वाले भक्तों को जन्ममरणादि भय से मुक्त करने वाले, अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने में सूर्य के समान, कैवल्य मुक्ति देने वाले, कल्प वृक्ष के समान, गुरुओं के भी गुरु तथा गणों के स्वामी रेणुकाचार्य भगवान् के पादपद्मों में प्रणाम करता हूं ॥१५॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यन्निष्कलं निष्क्रियं परम्।
अद्वितीयं निर्विशेषं ब्रह्म तत्समुपास्महे ॥१६॥
अधस्तान्मानवं दिव्यमुपरिष्टाद्गजाकृति।
परस्तात्तमसस्तेजः पुरस्तादस्तु नः सदा ॥१७॥
पञ्चाशद्वर्णरूपेण ययाव्याप्तमिदं जगत्।
शब्दब्रह्ममयीं वाणीं भजे तां परदेवताम् ॥१८॥
असंस्पृश्यैव प्रकृतिं विकृतिं च गुणैः सह।
यः सदाभाति मेऽन्तस्थस्तं सेवे कृष्णमीश्वरम् ॥१९॥
सनन्दनं श्री सनकं सनातनं, सनत्कुमारं च सनत्सुजातम्।
श्री वामदेवं च शुकं महान्तं नमामि भक्त्या निजबोध सिद्धये ॥२०॥
भक्त्याश्री शंकराचार्य तच्छास्त्रं सद्गुरुं मुहुः।
नमामि शिरसा नित्य सम्यग्ज्ञानोपपत्तये ॥२१॥

टीका-जो ब्रह्म सत्य, ज्ञान तथा अनन्त निष्कल (निरंश) तीनों भेदों से रहित हैं उनकी हम उपासना करते हैं ॥१६॥

जो गणेश जी नीचे के भाग से मानवाकार तथा ऊपर दिव्य गजाकार हैं (हाथी के आकार), जो अज्ञानरूपी अंधकार से रहित तेज स्वरूप हैं। वह गणेश जी हमारी रक्षा करें ॥१७॥

वर्णमाला के पचास वर्णों के रूप में जिनसे सारा जगत् व्याप्त है। ऐसी शब्दब्रह्म स्वरूपा वाणी की देवी परदेवता सरस्वती को मैं भजता हूं ॥१८॥

जो भगवान् श्री कृष्ण प्रकृति के गुण दोषों के स्पर्श से रहित तथा तीनों गुणों सहित सात विकृतियों से रहित हैं। मेरे अन्तःकरण में स्थित जो सदा प्रकाश करते हैं। ऐसे श्रीकृष्ण की मैं सेवा करता हूं ॥१९॥

मैं अपने शुद्ध सच्चिदानन्द ज्ञान की सिद्धि के लिए, भक्ति पूर्वक, सनन्दन-सनत्-सनातन, सनत् कुमार-सनत्सुजात-श्री वामदेव जी तथा महान् शुकदेव जी को प्रणाम करता हूं ॥२०॥

भक्त्या प्रणम्य स्वगुरुमानन्दात्मसरस्वतीम्।
क्रियते श्रीमद्भगवद्गीता तात्पर्यबोधिनी ॥२२॥
व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥२३॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्मनिधये वाशिष्ठाय नमोनमः ॥२४॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् वादरायणः ॥२५॥
ॐ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरंच।
व्यासं शुकंपौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥२६॥
श्री शंकराचार्यमथास्य पद्म पादं च हस्तामलकचं शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्या नस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि ॥२७॥

टीका-मैं भक्तिपूर्वक अपने गुरुदेव आनन्दात्म सरस्वती जी को प्रणाम करके श्रीमद्भगवद्गीता की तात्पर्यबोधिनी टीका लिखता हूं ॥२२॥

मैं वसिष्ठ जी के प्रपौत्र, शक्तिदेव के पौत्र, पराशर जी के पुत्र तथा परम तपस्वी, शुकदेव जी के पिता श्री व्यास जी को प्रणाम करता हूं ॥२३॥

व्यास रूप विष्णु, विष्णु रूप व्यास जी को, वेदब्रह्म तथा परब्रह्म ज्ञान की निधि वसिष्ठवंशज श्री व्यास जी को बार-बार प्रणाम करता हूं ॥२४॥

भगवान् वेद व्यास जी एकमुखी ब्रह्मा-दो भुजी विष्णु और दो नेत्रों वाले शंकर हैं ॥२५॥

ॐ के प्रतिपाद्य भगवान् शंकर, विष्णु-ब्रह्मा, वसिष्ठ उनके पुत्र शक्तिदेव जी, पराशर, व्यास, शुकदेव महापुरुष गौड़ पादाचार्य जी तथा उनके शिष्य योगिराज गोविन्दपादाचार्य तथा इनके शिष्य श्री शंकराचार्य, इनके शिष्य पद्म पादाचार्य-हस्तमलकाचार्य, श्री त्रोटकाचार्य, वार्तिककार सुरेश्वराचार्य से लेकर अपने गुरुपर्यन्त समस्त गुरुओं को प्रणाम करता हूं ॥२६-२७॥

श्रुति-स्मृति-पुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकाशंकरम् ॥२८॥
शंकर शंकराचार्य केशवं वादरायणम्।
सूत्रभाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥२९॥
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्ति-भेद-विभागिने।
व्योमवद् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥३०॥
वेदान्तार्थावभास्काय गुरवे शान्ताय संन्यासिने,
नानावादिनगेन्द्रसंघपवये योगीन्द्रवन्द्याय च।
मोह ध्वान्त दिवाकराय भगवत्पादाभिधां विभ्रते
तस्मै भाष्यकृते नमोऽस्तु सततं पूर्णायबोधात्मने ॥३१॥

टीका-श्रुति-स्मृति तथा पुराणों के निधि, करुणा के सागर, सारे संसार के दुःखों को दूर करने वाले भगवत्पाद श्री शंकराचार्य जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥२८॥

शंकर तथा उनके अवतार श्री शंकराचार्य, विष्णु तथा उनके अवतार वेदव्यास जी, ब्रह्मसूत्र तथा भाष्य के रचयिता भगवान् के दोनों स्वरूपों को मैं बार-बार प्रणाम करता हूं ॥२९॥

आकाश के समान शरीर में व्याप्त ईश्वर और गुरु एक ही आत्मा हैं। केवल आकार से भिन्न हैं। ऐसे दक्षिणामूर्ति भगवान् शंकर को मैं प्रणाम करता हूं ॥३०॥

वेदान्तार्थ के वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ के प्रकाश करने वाले, मन सहित इन्द्रियों को वश में करके आत्मानन्द का अनुभव कराने वाले संन्यासी, भाष्य की रचना करे वाले तथा अनेक आस्तिक तथा नास्तिक वेद विरुद्ध प्रचार करने वाले भेदवादी हाथी रूप समूह के लिए जो वज्र के समान हैं। योगीन्द्र-मुनीन्द्रों द्वारा वन्दनीय मोह रूपी अंधकार को दूर करने के लिए जो सूर्य के समान हैं। आत्मा को पूर्णरूपेण जानने वाले, भगवत्पाद के नाम से जो विख्यात हैं। अनेक ग्रन्थों पर भाष्य करने वाले, भगवान् श्रीशंकराचार्य के पाद पद्मों में मैं निरन्तर प्रणाम करता हूं ॥३१॥

वर्तमान गुरु परम्परा

शिवाश्रममहंवन्दे, नारायणं तथैव च।
चतुष्षष्ठे (चौसट्ठी) श्च कर्त्तारं, नमामि मधुसूदनम् ॥३२॥
रामेश्वरं तथा कृष्णमनन्ताश्रममेव च।
शान्तं विश्वेश्वरं चैव भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥३३॥
वेणीमाधवमाचार्यं काश्यां वै दण्डीधारिणम्।
विष्णुमाश्रममप्येतं प्रणमामि पुनः पुनः ॥३४॥
महादेवं गणेशं च गोविन्दं शंकरं तथा।
केशवं श्रीनिवासं च नित्यमेव नमाम्यहम् ॥३५॥
अद्वैताश्रमशास्त्रज्ञमद्वैतस्य प्रकाशकम्।
प्रस्थानानां त्रयी विज्ञं नमामि मधुसूदनम् ॥३६॥
हरदेवं स्वरूपं च गोपालंराघवं तथा।
भौमं विद्यानिधिं वन्दे प्रणमामि पुनः पुनः ॥३७॥
ब्रह्मात्मैक्यस्य वक्तारं गुरुं शंकर रूपिणम्।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं तं महादेवं नमाम्यहम् ॥३८॥

टीका–श्री शिव आश्रम जी महाराज, श्री नारायणाश्रम जी महाराज तथा चौंसट्ठी मठ के संस्थापक स्वामी मधुसूदन आश्रम जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥३२॥

उनके शिष्य रामेश्वराश्रम जी, स्वामी अवधूत स्वामी कृष्णाश्रम जी, अनन्त विज्ञान आश्रम जी, स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी (जो पंडित स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे) को बार-बार प्रणाम करता हूं ॥३३॥ पंजाब के दण्डी स्वामियों की परम्परा पंजाब से जाकर काशी जी में दण्ड धारण करने वाले स्वामी वेणी माधवाश्रम जी को तथा उनके शिष्य विष्णु आश्रम जी को बार-बार प्रणाम करता हूं ॥३४॥

काशी गऊ घाट की परम्परा

शरी महादेवाश्रम जी महाराज, उनके शिष्य गणेशाश्रम जी, गोविन्दाश्रम जी, शंकराश्रम जी, केशवाश्रम तथा श्री निवासाश्रम जी को नित्य प्रणाम करता हूं ॥३५॥ श्री स्वामी अद्वैताश्रम जी, जो अद्वैत वेदान्त के प्रकाशक हैं तथा प्रस्थानत्रयी के वक्ता श्री मधुसूदनाश्रम (गीता ब्रह्मसूत्र उपनिषद्) को प्रणाम करता हूं ॥३६॥ विद्यानिधि भौमाश्रमजी, हरदेवाश्रम, स्वरूपाश्रम जी, श्री गोपालाश्रम जी तथा राघवाश्रम जी तथा ॥३७॥ श्रोत्रीय ब्रह्म निष्ठ जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता का प्रतिपादन करने वाले शंकर स्वरूप श्री गुरुदेव स्वामी महादेवाश्रम जी को प्रणाम करता हूं (यह महादेवाश्रम पहिले महादेवाश्रम से भिन्न मधुसूदन मठ काशी वाले मधुसूदन आश्रम जी के प्रथम शिष्य थे। जालन्धर में रहते थे इन्हीं के पाद्पद्मों में बैठकर मैंने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया था ॥३८॥

इति मंगलाचरणम्

॥ प्रथम अध्याय सम्पूर्णम् ॥



॥ दूसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

वेदों का परिमाण तथा स्वरूप

वैदिक सनातन धर्म का मूल स्रोत वेद है। इस वैदिक सनातन धर्म से समस्त जगत् के अनेक सम्प्रदाय (मत-मतान्तर) हुए हैं अर्थात् वर्तमान काल में जितने सम्प्रदाय हैं वह सनातन धर्म रूपी महावृक्ष की शाखा प्रशाखाएं हैं। सनातन धर्म का लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार से किया है। "**श्रुति स्मृति पुराणप्रतिपादितः धर्मः सनातनधर्मः**" श्रुति-वेद स्मृति तथा पुराण प्रतिपादित धर्म सनातम धर्म है। सनातन धर्म को जन्म देने वाले निर्गुण, निराकार ब्रह्म है। वह अनादि जन्म रहित है। सनातन धर्म भी अनादि है। सनातन धर्म तथा वेदों का प्रादुर्भाव परमात्मा से हुआ। वेद ब्रह्म का श्वास रूप है। ईश्वर रचित वेद में मनुष्य रचित ग्रन्थों के समान भ्रम-प्रमाद-संशय-भय विप्रलिप्सा (लोभ) तथा यथार्थ बात न कहना आदि दोष नहीं हैं। अतः वेद स्वतः प्रमाण हैं। वेदानुसारी ही आस्तिक दर्शन, स्मृतियां, श्रौत-सूत्र, धर्म-सूत्र, पुराण, रामायण, महाभारत तथा तन्त्र ग्रन्थ प्रमाण माने गये हैं। "अज्ञात ज्ञापकं प्रमाणं" अज्ञात का ज्ञान कराने वाले ग्रन्थ (वेद) प्रमाण है। यथा प्रमायाः करणमिति प्रमाणम्!

प्रमा का साधन प्रमाण है।

ऋग्वेद का प्रमाण-इसकी इक्कीस मंत्र संहिताएं हैं। ऋग्वेद के आठ स्थान हैं। (१) चर्चा, (२) श्रावक, (३) चर्चक, (४) श्रवणीय पार, (५) क्रमपार, (६) क्रमचट, (७) क्रमजट, (८) क्रमदण्ड। इसके चार पारायणों की पांच शाखाएं हैं। शाकला, बाष्कला, अश्वलायना शांखायना, माण्डूकायना। इनके अध्ययन, अध्याय ६४ हैं। मण्डल १० हैं। एकर्च, एक वर्ग, एकश्च नवक। दो दोवर्ग, दो दो ऋचाएं। कुल मिलाकर ३०० ऋचाएं हैं।

ऋग्वेद का स्वरूप-ऋग्वेद पद्म पत्राक्षः ग्रीवः, कुंचित केश श्मश्रुः, श्वेत वर्णः, प्रमाप पंच वितस्ति मितम्।

यजुर्वेद स्वरूप-पिंगाक्षः, कृशमध्यः, स्थूलगलकपोलस्ताम्रवर्णः, कृष्ण वर्णाः, प्रादेशषट् दीर्घः।

सामवेद स्वरूप–नित्य स्त्रग्वी, सुप्रीत:, शुचि:, शुचौवासी, शमी, दान्तो, चर्मी बृहच्छरीर:–काञ्चन नयन:, नवरत्निमात्र:।

अथर्ववेद स्वरूप–तीक्षण प्रचण्ड कामरूपी, विश्वात्मा, विश्वकर्त्ता, क्षुद्र कर्मा, सशाखाध्यायी, प्राज्ञो, महाहनु:, नीलोत्पल वर्ण:, स्वदारसन्तुष्ट: दशरत्निमात्र:।

ऋग्वेदस्य आत्रेयगोत्र:, सोमदेवता, गायत्रीच्छन्द:।

यजुर्वेदस्य-काश्यप गोत्र: इन्द्रदेवता त्रिष्टुप् छन्द:।

सामवेदस्य-भारद्वाज गोत्र:, इन्द्रदेवता, जगती छन्द:।

अथर्ववेदस्य-वैखानस गोत्र:, ब्रह्मदेवता, अनुष्टुप्छन्द:।

फल श्रुति–य: एषां वेदानां नाम रूप, गोत्र: प्रमाण छन्दो देवता वर्णादीनि वर्णयति, स सर्व विद्यो भवति, जाति स्मरो जायते, जन्म जन्मनि वेद पारगो भवति, अव्रतीव्रतीभवति, अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति य इदं चरण व्यूहं गर्भिणी श्रृणुयात् स पुत्रान्लभते, इदंश्राद्ध काले पठेत् स अक्षय श्राद्धं पितृणां समर्पयति, य: इदं पठेत्! स पंक्ति पावनो भवति। य इदं पर्व पर्वसु पठेत् स विधूत पाप्मा भवति! ब्रह्मभूयाय गच्छति।

ईति, धृति, शिवा, शक्ति, चत्वारो वेद पत्नय: सन्ति, यज्ञकाले ईशानादि व्यवस्थिता भवन्ति।

ऋग्वेद के कमल के समान नेत्र, सुन्दर गर्दन, घुंघराले केश, दाढ़ी मूछ से युक्त श्वेतवर्ण, पाँच बालिश्त लम्बा शरीर है।

यजुर्वेद के पीले नेत्र, पतली कमर, मोटा गला, तांबे के रंग के गाल, काला वर्ण, छ: बालिस्त का शरीर है।

सामवेद नित्य माला धारण किये हुए, पवित्र मुस्कान, पवित्र स्थान के निवासी, संयतेन्द्रिय, मृगचर्मधारी बड़ा शरीर सुनहरे नेत्र, सूर्य के समान रंग, नवरत्निलम्बाई है।

अर्थववेद-तीक्षण, प्रचण्ड, इच्छानुसार रूपधारी, विश्वात्मा, विश्वकर्त्ता, शूद्रकर्म, अपनी शाखा का पाठ करने वाला, बुद्धिमान् बड़ी ठोढी, नील कमल के समान रंग, अपनी पत्नी में संतुष्ट दशरत्नि लम्बाई है।

ऋग्वेद का आत्रेयगोत्र, चन्द्रमा देवता, गायत्री छन्द है।

यजुर्वेद का कश्यप गोत्र, इन्द्र देवता, त्रिष्टुप छन्द है।

समावेद का भारद्वाज गोत्र, इन्द्र देवता जगती छन्द है।

अथर्ववेद का वैखानस गोत्र, ब्रह्म देवता, अनुष्टुप छन्द है।

फलश्रुति–जो चारों वेदों के नाम, रूप गोत्र, प्रमाण, छन्द, देवता, वर्ण आदि को जानता है। वह सर्वज्ञ, जातिस्मर प्रत्येक जन्म में वेद का पारंगत विद्वान् होता है। इसके पाठ करने वाला अव्रती व्रती, अबह्मचारी, ब्रह्मचारी होता है। इसके चरण ब्यूह आदि को गर्भवती सुनने से पुत्र को प्राप्त करती है। श्राद्ध में इसका पाठ करने से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। जो इस का पाठ करता है, वह पंक्ति पावन होता है। प्रत्येक पर्व में पाठ करने से पवित्र होकर ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। चारों ऋग्वेदादि की क्रमशः ईति, धृति, शिवा शक्ति यह चार पत्नियां हैं। ईशनादि उपदिशाओं में यज्ञादि कार्यों में इनका वास रहता है।

श्रीमद् भागवत के प्रथम श्लोक की श्री वंशीधर जी की व्याख्या के आधार पर।

(तर्क शास्त्र पक्ष में)

चतुर्वेद–वेद चार हैं। ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद–अथर्ववेद प्रत्येक वेद के चार भाग हैं। पहला मन्त्र भाग जिसे मन्त्र संहिता भी कहते हैं। दूसरा ब्राह्मण, तीसरा–आरण्यक और चौथा–उपनिषद्। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १०००, अथर्ववेद की ९ संहिताएं कहीं हैं। सब मिलाकर ११३१ हैं। किन्तु वर्तमान कल्प की संहिताओं के विषय में सीतोपनिषद् में ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०९, सामकी १००० अथर्व की ५० संहिताएं कही हैं।

यह सब मिलाकर ११८० संहिताएं हैं। इतने ही ब्राह्मण–आरण्यक–उपनिषद्, धर्मसूत्र, श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र हैं। इन सब को मिलाकर चारों वेद पूर्ण होते हैं। पतञ्जलि के समय में उपर्युक्त संहिता प्रभृति मिलते थे। किन्तु वर्तमान में बहुत कम उपलब्ध हैं।

शंका–जब वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी मनुष्य देवता ऋषि की रचना नहीं है तो उस शरीर रहित परमात्मा से मनुष्यों को वेदों का ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ बिना अंग प्रत्यंग मुख प्रभृति के कैसे सुनाया या लिखा। अतः वेद पौरुषेय हैं अपौरुषेय नहीं।

समाधान–ऋषियों ने निराकार निर्गुण ब्रह्म से ज्ञान प्राप्त करने के लिए समाधि लगाई। समाधि में ऋषियों के बिना शरीर के भगवान् की वेद वाणी प्राप्त हुई। जिन-जिन ऋषियों ने समाधि में भगवान् से जितने मन्त्र सुने। उन-उन ऋषियों के नाम से उन-उन संहिताओं का नाम हुआ। कहा भी है "**ऋषयो मन्त्र दृष्टारः**" मन्त्र के दृष्टा को ऋषि कहते हैं। उन ऋषियों की सेवा करके जिन शिष्यों ने अपने गुरुओं से श्रवण में मन्त्र को सुना। श्रवण से सुनने के कारण इन्हें श्रुति कहते हैं। यह परम्परा तीनों युगों में चलती रही हैं, किन्तु कलियुग के समीप आने से शिष्यों की स्मृति शिथिल हो गई। वही मन्त्र तब लिखे गये, किन्तु गुरुओं द्वारा ज्यों का त्यों मन्त्र को धारण करने में असमर्थ होने पर उन गुरुओं न उन्हीं मन्त्र के भागों को सरल संस्कृत में श्लोकबद्ध कर दिया। वे स्मरण करके लिखने के कारण स्मृति के नाम से प्रसिद्ध हुए। कालान्तर में उन्हीं ऋषियों ने अथवा अन्य ऋषियों ने भगवान् द्वारा सुने वेद मन्त्रों का अर्थ जानने के लिए समाधि लगाई। तब उनको भगवान् के द्वारा उन मन्त्रों के अर्थों का बोध हुआ। वे महात्मा मुनि कहलाये "**मननात्-इति मुनिः**" इन्हीं चार वेदों के चार उपवेद नीचे लिखे जाते हैं।

॥ दूसरा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ तीसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद, अथर्ववेद का अर्थशास्त्र

१. आयुर्वेद–इसके आठ अंग हैं–सूत्र-शरीर-इन्द्रियां चिकित्सा-निदान-विमान-कल्प-सिद्धि।

इनके उपदेशक प्रजापति ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, धन्वन्तरि, इन्द्र, भारद्वाज, आत्रेय, अग्निवेश्य, पतञ्जलि जी हैं।

२. धनुर्वेद–यह चारों पादों से युक्त हैं। इसके कर्ता विश्वामित्र हैं। (१) दीक्षा पाद, (२) संग्रह पाद, (३) सिद्धि पाद, (४) प्रयोग पाद। पहले पाद में धनुष के

लक्षण और अधिकार का निरूपण है। धनुष को आयुध कहते हैं। धनुर्वेद के चार भेद हैं। (१) मुक्त, (२) अमुक्त, (३) मुक्तामुक्त, (४) यन्त्रमुक्त।

(१) मुक्त जिसका हाथ से प्रहार किया जाता है : जैसे चक्र हथगोला आदि।

(२) अमुक्त जिसको हाथ से नहीं छोड़ा जाता जैसे तलवार आदि।

(३) मुक्तामुक्त शल्य आदि।

(४) यन्त्र मुक्त वाण आदि।

मुक्तों को अस्त्र अमुक्तों को शस्त्र कहते हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र, वैष्णवास्त्र, पाशुपत अस्त्र।

(१) इस पाद में देवताओं का मन्त्रों सहित चारों प्रकार के आयुधों का वर्णन है। इसमें क्षत्रियों का ही अधिकार है।

(२) पाद में शस्त्रों के विशेषण और आचार्यों के लक्षण दिये हैं।

(३) पाद में गुरु परम्परा से मन्त्रों की सिद्धि देवताओं की कृपा तथा अभ्यास का निरूपण है।

(४) पाद में देवताओं की पूजा के अभ्यास से सिद्ध अस्त्र विशेष के प्रयोग का वर्णन है।

इस उपवेद का प्रयोजन दुष्टों का वध तथा प्रजा पालन है।

३. गान्धर्ववेद–इस वेद के रचयिता भरतमुनि हैं। इसमें नृत्य गीत वाद्यादि बहुत से भेदों का विस्तार है। इस उपवेद का प्रयोजन देवताओं की आराधना द्वारा निर्विकल्प समाधि द्वारा मुक्ति की प्राप्ति है।

४. अर्थशास्त्र–इसके अनेकों भेद हैं। उनमें से नीति शास्त्र, अश्व शास्त्र, गजशास्त्र, शिल्पशास्त्र, पाक शास्त्र तथा चौसठ कला शास्त्र है।

॥ तीसरा अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ चौथा अध्याय प्रारम्भ ॥

वेदाङ्ग, वेद के ६ अंग हैं। १. शिक्षा, २. व्याकरण, ३. निरुक्त, ४. छन्द, ५. ज्योतिष, ६. कल्प।

१. शिक्षा–इसमें वेद का शुद्ध पाठ करने के लिए ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, समाहार, स्वरित, अनुनासिक अननासिक आदि भेद से शिक्षा दी गई है। पाणिनीय की शिक्षा प्रसिद्ध है।

२. व्याकरण–वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए, व्याकरण का मुख्य प्रयोजन है। प्राचीन काल में आठ प्रकार के व्याकरण थे। इनका पाणिनि ऋषि ने सारांश अपने अष्टाध्यायी व्याकरण में दिया है। इसके आरम्भ में भगवान् शंकर के डमरू से निकले १४ सूत्रों का वर्णन है। अष्टाध्यायी के सूत्रों पर कात्यायन ऋषि का वार्तिक है तथा पतंजलि ऋषि का महाभाष्यहै। इन तीनों पर कैय्यट ऋषि ने विस्तार से टीका की है।

सूत्र, वार्तिक तथा भाष्य के लक्षण इस प्रकार से हैं–

सूत्र के लक्षण– **''अल्पाक्षरमसंदिग्धम् सारवद् विश्वतोमुखम्॥**
अस्तोभमनवद्यं च, सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥''

जिमसें बहुत थोड़े अक्षर हों, किन्तु अर्थ संदेह रहित हो, विश्वतोमुखी अर्थ (गागर में सागर भरा हुआ) सूत्र के विशेषज्ञों ने उसे सूत्र कहा है।

वार्तिक– **उक्तानुक्त दुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते॥**
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्तिकज्ञाःमनीषिणः॥

अर्थ–मूल में कही हुई बात, न कही हुई बात तथा कठिन कही हुई बात की चिन्ता जहां होती है। वार्तिक के मर्म जानने वाले विद्वानों ने उसे वार्तिक कहा है।

भाष्य– **सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र, वाक्यैः सूत्रानुकारिभिः।**
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदोविदुः॥

अर्थ–सूत्रकार के वाक्यों के अनुसार जहां अर्थ किया जाता है तथा अपने द्वारा कहे शब्दों की व्याख्या की जाती है। भाष्य के जानने वाले विद्वानों ने उसे भाष्य कहा है।

३. निरुक्त–शिक्षा व्याकरण से वर्णों का शुद्ध उच्चारण होने पर भी वैदिक मन्त्रों का अर्थ जानने की इच्छा से जो ग्रन्थ रचा जाता है, उसे निरुक्त कहते है। भगवान् यास्काचार्य ने १३ अध्यायों में निरुक्त की रचना की है। निरुक्त दो प्रकार का है, लौकिक निरुक्त, वैदिक निरुक्त दोनों की रचना इन्हीं की है। लौकिक निरुक्त में महाभारत पुराण रामायण आती है। इसका लौकिक में वर्णन किया है। वैदिक निरुक्त में वैदिक देवता, द्रव्यपदार्थ के पर्यायवाची शब्दों का निरूपण है। इसको वैदिक निघण्टु भी कहते हैं। यह ५ अध्यायों में है। यस्काचार्य के अतिरिक्त अमरकोष, मेदिनी कोष आदि भी निरुक्त के अन्तर्गत आ जाते हैं।

४. छन्द (पिंगल)–इसके कर्ता पिंगल ऋषि हैं। यह शास्त्र भी दो प्रकार का है। वैदिक, लौकिक। वैदिक छन्दों में गायत्री, उष्णिग्, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती आदि सात छन्द हैं। लौकिक छन्दों में शार्दूल विक्रीड़ित सृग्धरा, विराट् आदि अनेक छन्द हैं।

५. ज्योतिष–वैदिक काल के काल ज्ञान के लिए; गर्गाचार्यादि अनेक ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ लिखे हैं।

६. कल्प–शास्त्रीय गुणों के उपसंहार में वैदिक अनुष्ठान का क्रमानुसार ज्ञान प्राप्त करने के लिए, कल्प सूत्रों की रचना हुई है। चारों वेदों के भिन्न-भिन्न कल्प सूत्र हैं। अथर्व वेद से सम्बन्धित के लिए, बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि के सूत्र हैं तथा सामवेदी प्रयोगों के लिए लाटायन-ब्रिहियायन आदि सूत्र हैं। ये वेद के ६ अंग हुए। जैसे हमारे शरीर में मुख, नासिका, नेत्र, पैर, श्रोत आदि अंग हैं। वैसे ही व्याकरण भगवान् वेद का मुख, शिक्षा नासिका, निरुक्तचरण, छन्द श्रोत्र, कल्प हाथ, ज्योतिष नेत्र हैं।

॥ चौथा अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ पाँचवां अध्याय प्रारम्भ ॥

वेदों के उपाङ्ग चार हैं

प्रथम पुराण–पुराण अठारह हैं। जिनके नाम ब्रह्म–पद्म–विष्णु–शिव–भागवत–नारद–मार्कण्डेय–अग्नि–भविष्य–ब्रह्मवैवर्त–लिङ्ग–बाराह–स्कन्द–कूर्म–गरुड़, मत्स्य–ब्रह्माण्ड इसके अतिरिक्त उपपुराण हैं। जिनमें सूर्य–कालिका–नृसिंह–जामदग्नि आदि।

दूसरा उपाङ्ग न्याय–यह दो प्रकार का है कणाद का वैशेषिक, गौतमजी का न्याय दर्शन 5 अध्यायों में है। न्यायदर्शन कणाद द्वारा रचित 10 अध्यायों में है। दोनों को न्यायशास्त्र कहतेहैं। इसे वैशेषिक शास्त्र भी कहते हैं।

तीसरा उपाङ्ग मीमांसा–(विचार) यह दो प्रकार की है। कर्म मीमांसा–ब्रह्म मीमांसा।

कर्म मीमांसा–इसकी रचना जैमिनी जी ने की है। इसको पूर्व मीमांसा के नाम से भी जानते हैं। इसमें १२ अध्याय हैं। एक दूसरी कर्म मीमांसा के कर्ता भारद्वाज हैं। किन्तु यह प्रसिद्ध नहीं है।

ब्रह्म मीमांसा–इसका नाम उत्तर मीमांसा, ब्रह्मसूत्र वेदान्त दर्शन या शारीरिक मीमांसा भी कहते हैं। इसके रचयिता वेदव्यास हैं इस पर श्री कण्ठाचार्य, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य इन सभी ने भाष्य किये हैं। शांकरभाष्य पर आनन्द गिरि, भामती, वेदान्त कल्पतरु, वेदान्त कल्प तरु परिमल, रत्नप्रभा, प्रभृति संस्कृत टीकाएं हैं। आनन्दगिरि जी का न्याय निर्णय, वाचस्पति की भामती, अप्ययदीक्षित का वेदान्त कल्पतरु तथा अमलानन्द का वेदान्त कल्पतरु परिमल है।

इसमें चार अध्याय हैं–प्रत्येक अध्याय में चार–चार पाद हैं।

इसके **पहले अध्याय** के प्रथम पाद में समस्तोपनिषद के वाक्यों का साक्षात् अथवा परम्परा से प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म में तात्पर्य बताया है तथा स्पष्ट रूप से ब्रह्मज्ञान कराने वाले वाक्यों पर विचार किया है।

दूसरे अध्याय के पहले पाद में सांख्य योग, वैशेषिक तथा स्मृतियों में आये हुये विरोधी वचनों का वेदान्त में समन्वय किया है। दूसरे पाद में सांख्यादि अनेकों मतों के

वेदों वेदांगों के चित्र निरूपण

ऋग्वेद



ऋग्वेदः श्वेतवर्णः स्याद्द्विभुजो रासभाननः।
अक्षमालाधरः सौम्य प्रीतो व्याख्यापध्नोद्यतः॥

यजुर्वेद



अजास्यः पीतवर्णः स्याद्यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृत्
वामे कुलिशपाणिस्तु भूतिदो मङ्गलप्रदः॥

सामवेद



नीलोत्पलदलाभासः समावेदो हयाननः।
अक्षमालान्वितो दक्षे वामे कुम्भधरः स्मृतः॥

अथर्ववेद



अथर्वणाभिधो वेदो धवलो मर्कटाननः।
अक्षमालान्वितो वामे दक्षे कुम्भधरः स्मृतः॥

पुराण



न्यायशास्त्र



पुराणं चम्पकाभासं शुकवक्त्रं च तुन्दिलम्।
अक्षसूत्राभयं ज्ञेयं नानाभरण भूषितम्॥

अतसीपुष्पसङ्काशो न्यायो ज्ञेयो विपश्चिता।
सिंहास्यो दक्षिणे सूत्रं ध्वजं वामकरेदधन्॥

मीमांसा



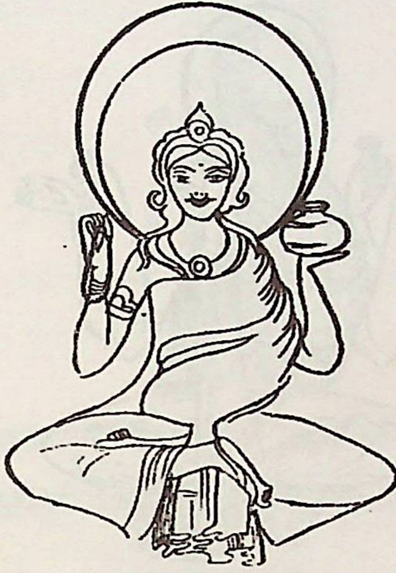
धर्मशास्त्र



सोमकीर्तिसमाभासं मीमांसा शास्त्रामुत्तमम्।
अक्षसूत्रं दधद्दक्षे सुधापूर्ण घटं परे॥

धर्मशास्त्रं सितं शान्तं चारुवक्त्रंकुशासनम्।
मुक्ताजपाक्षधृक्दक्षे तुलाहस्तन्तु बामतः॥

शिक्षा



शिक्षा शुभ्राऽभयकरा ज्ञानमुद्रा समन्विता।
अक्षसूत्रा सकुण्डा च द्विभुजा दण्डपङ्कजा॥

व्याकरण



सितं व्याकरण ज्ञेय मयूराभसटोदरम्।
वीणाकरान्वितं दिव्यं दिव्यवस्त्र विभूषितम्॥

ज्योतिष



ज्योतिषञ्च विडालास्यमिन्द्रगोपनिभंशुभम्।
अक्ष सूत्रं जपां विभ्रद्धस्तयोर्दक्ष वामयोः॥

कल्प



कल्पस्तु कुमुदाभःस्वादवायसास्यो महोदरः।
कुठारदण्डाब्जहस्तो मेखला कुण्डलान्वितः॥

छन्द



जपा कुसुम सङ्काशं छन्दो ज्ञेयं विचक्षणैः।
चकोरास्यं जपापुष्पं शक्ति विभ्रच्छिखान्वितम्॥

निरुक्त



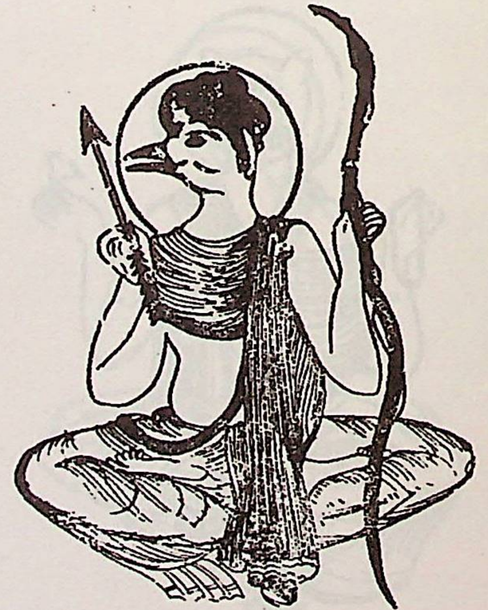
इन्दुवन्निर्मलं शान्तं बकवक्त्रं कृशोदरम्।
पाशपङ्कज संयुक्तं साक्षसूत्रं सपुस्तकम्॥

आयुर्वेद



आयुर्वेदो हरिद्राभोवानरास्यो विशालदृक्।
अक्षसूत्रं सुधाकुम्भं विभ्रदारोग्यदोभृशम्॥

धनुर्वेद



पीतवर्णो धनुर्वेदः पिकवक्त्रो महत्तनुः।
धनुर्वाणधरो रौद्रो मस्तके कपिला जटाः॥

पातञ्जलयोग



सांख्य



पातञ्जलाभिधं रक्तं सर्पवक्त्रे सुतेजसम्।
अक्षसूत्रं पताकाञ्च दधतं कुण्डलान्वितम्॥

साङ्ख्य तत्कापिलबभ्रुवक्त्रमुज्वलकुण्डलम्।
जाप्यदण्डधर दीर्घनखलोम जटाधरम्॥

नाट्यशास्त्र



इतिहास



नृतशास्त्रमिद रम्यं मृगवक्त्रं जटाधरम्।
अक्षसूत्र त्रिशूलञ्च बिभ्राणं च त्रिलोचनम्॥

इतिहास कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रंघटं बिभ्रत्पङ्कजाभरर्णान्वितः॥

चतुःषष्टिकला

हस्तै पद्मं रथाङ्गं गुणमय हरिणं पुस्तकं वर्णमालां।
टंकं शुभ्रं कपालं वरममृतलसद्धेम कुम्भं दधानाम्॥
मुक्ताविद्युत्पयोद स्फटिक नवजपा बन्धुरैः पञ्चवक्त्रै।
स्त्र्यक्षं वक्षोजनमां सकल शशि निभां शारदां तां नमामि॥



दोषों को दिखाकर परपक्ष का खण्डन और अपने पक्ष का समर्थन किया है। तीसरे पाद में पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न हुई सृष्टि के विषय में श्रुतियों के विरोधी वचनों का परिहार किया है। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में पहले असत् से जगत् की उत्पत्ति पुनः सत् से जगत् की उत्पत्ति कही है। कहीं आकाशादि पञ्चीकृत पञ्च महाभूतों से जगत् की उत्पत्ति कही है।

किन्तु सामवेद में अग्नि, जल, पृथ्वी इन तीन से उत्पत्ति कही है। इन सभी शंकाओं का समाधान किया है। तीसरे पाद में जीव विषयक शंकाओं का समाधान है। चौथे पाद में इन्द्रियों से सम्बन्धित श्रुतियों के विरोध का परिहार है।

तीसरे अध्याय में ब्रह्म प्राप्ति के साधन बताये हैं। प्रथमपाद में जीव के परलोक गमन से स्वर्गादि की प्राप्ति का कथन करके वैराग्य का निरूपण किया है। इसके दूसरे पाद के पूर्व भाग में त्वं पदार्थ का शोधन तथा उत्तर भाग में तत् पदार्थ का शोधन है। तीसरे पाद में निर्गुण परमात्मा में अनेक वेद की शाखाओं का तात्पर्य बताया है तथा प्रसंग से प्राप्त सगुण ब्रह्मविद्या के विषय में सगुण ब्रह्म विद्या का प्रतिपादन करने वाले अन्य साधनों का उपसंहार किया है। चौथे पाद में निर्गुण ब्रह्म विद्या की प्राप्ति कराने वाले वहिरङ्ग साधन वर्णाश्रम धर्म तथा यज्ञदानादि का निरूपण है। इसी पाद के अन्त में ब्रह्म ज्ञान तथा ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के अन्तरङ्ग साधन शम दमादि सहित श्रवण मनन निदिध्यासनादि का निरूपण है।

चौथा अध्याय ब्रह्मसूत्र–इस अध्याय में सगुण ब्रह्म विद्या तथा निर्गुण ब्रह्मविद्या के फल विशेष का वर्णन किया है। इसके प्रथम पाद में श्रवण मनन–निदिध्यासन के अभ्यास से निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति तथा सगुणोपासना के अध्याय से इष्ट देव का दर्शन करके, जीवन में ही उपासक द्वारा पुण्य पाप के सम्बन्ध से रहित होकर मुक्ति की प्राप्ति का वर्णन किया है। दूसरे पाद में जीव एक शरीर से निकल कर अन्य शरीर या लोक में कैसे जाता है। इसका विचार है। तीसरे पाद में सगुण ब्रह्मवेत्ता के मरने पर उत्तरायण मार्ग से कौन गति की प्राप्ति होती है। चौथे पाद के आरम्भ में निर्गुण ब्रह्मवेत्ता की विदेह कैवल्य मुक्ति का वर्णन है। इसके अन्त में सगुण ब्रह्मवेत्ता की ब्रह्मलोक में कैसी स्थिति होती है, इसका वर्णन है।

यह वेदान्त दर्शन सर्वशास्त्रों का शिरोमणि है। अन्य शास्त्रों में इसमें कही हुई मुक्ति का अधिकारी बताया है। अतः मुमुक्षुओं को इस शास्त्र का श्रवण, मनन, निदिध्यासन अवश्य करना चाहिए। ऐसा भगवान् शंकराचार्य ने कहा है। इसकी प्रशंसा दूसरे आचार्यों ने भी की है।

श्लोक–कर्मशास्त्रे कुतो ज्ञानं तर्के नैवास्ति निश्चयः।
सांख्य योगौ भिदापन्नो–शाब्दिकाः शब्द तत्पराः॥
अन्ये पाखण्डिनः सर्वे, ज्ञानवार्तासु दुर्बलाः।
एकं वेदान्तविज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते॥

अर्थ–कर्मशास्त्र के पढ़ने से ज्ञान नहीं होता। गौतम तथा कणाद के तर्क से निश्चय नहीं है। सांख्य और योग भेद से युक्त वैयाकरणी शब्द के पीछे लिंग विभक्ति की चिन्ता में रहते हैं। इन पाँचों के अतिरिक्त नास्तिक दर्शन, वेद का खण्डन करने वाले पाखण्डी हैं। अतः इन ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञान नहीं प्राप्त होता। ज्ञान चर्चा में दुर्बल है। अतः एकमात्र वेदान्त विज्ञान ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में समर्थ है।

वेद का चौथा उपाङ्ग धर्मशास्त्र–धर्मशास्त्रों में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-विष्णु-अङ्गिरा-वसिष्ठ-दक्ष-संवर्तक शातातप-पाराशर-गौतम-शंख, लिखित, हारीत-आपस्तम्ब-यम-उशना (शुक्राचार्य) व्यास-कात्यायन-बृहस्पति-देवल-नारद-पैठीनसि आदि स्मृतियाँ कही जाती हैं। इन समस्त स्मृतियों में वर्णाश्रम धर्म के विभागों का निरूपण है। इन धर्म शास्त्रों के अतिरिक्त वाल्मीकि जी तथा व्यास द्वारा रचित रामायण महाभारत-ऐतिहासिक ग्रन्थ भी धर्म शास्त्र के अन्तर्गत हैं। सांख्यादि पांच दर्शनों का धर्म शास्त्र के अन्तर्गत होने पर भी अलग से निर्देश हैं।

॥ पांचवां अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ छठवां अध्याय प्रारम्भ ॥

दर्शन शास्त्र

पहला सांख्य दर्शन इसकी रचना कपिल भगवान् ने की है। यह दो प्रकार का है– निरीश्वरवादी–सेश्वरवादी। निरीश्वरवादी–सांख्या का उपदेश आसुरि नाम के व्यक्ति के प्रति कपिल ने किया। सेश्वरवादी सांख्य माता देवहूति के प्रश्न करने पर भागवत के तीसरे स्कन्ध में किया है। निरीश्वरवादी सांख्य में आध्यात्मिक–आधिदैविक–आधिभौतिक तीन प्रकार के दुखों की आत्यन्तिक निवृत्तिपूर्वक मुक्ति का वर्णन है। इसके पहले अध्याय में विषय निरूपण दूसरे अध्याय में प्रकृति के कार्यों का वर्णन है, तीसरे में विषयों से वैराग्य,चौथे में वैराग्य के लिए पिङ्गला वेश्या की कथा है। पांचवें में पर पक्ष का खण्डन, छठे अध्याय में पांचों का सारांश बताया है। इस शास्त्र का प्रयोजन प्रकृति और पुरुष के विवेकपूर्वक इस लोक तथा परलोक के भोगों की प्राप्ति सहित जीव की मुक्ति है।

दूसरा पातञ्जली योग दर्शन–इसके रचयिता महर्षि पतञ्जलि हैं। इसमें चार पाद हैं।

पहले पाद में चित्तवृत्ति निरोधपूर्वक वैराग्यतथा समाधि के साधनों का वर्णन है। दूसरे पाद में विक्षिप्त चित्त की समाधि के लिए यम नियम आदि योग के आठ अंगों का वर्णन है। तीसरे पाद में योग से प्राप्त होने वाली धारणा, ध्यान, समाधि के संयम से विभूतियों का वर्णन है। चौथे कैवल्यपाद में कैवल्य मुक्ति का वर्णन है। इस शास्त्र का प्रयोजन विषयाकार वृत्ति को रोककर, ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा कैवल्य मुक्ति है।

तीसरा पाशुपत दर्शन–इसकी रचना श्री शंकर भगवान् ने की है। जीव के जन्म मरण रूपी पाश से मुक्ति, प्रयोजन है। इसमें पांच अध्याय हैं। इन पांचों अध्यायों में कार्य, अविद्या उपाधि वाला जीव पशु कहा है तथा कारण माया उपाधि वाला शिव–पशुपति है। कार्यरूपी पशु की चित्तवृत्ति को रोककर जन्म–मरणादि दुःखों का अन्त करके; मुक्ति की प्राप्ति इसका प्रयोजन है। शेष सभी शैव शास्त्र पाशुपत मत के अन्तर्गत हैं।

उपसंहार–जिसप्रकार सम्पूर्ण नदियां सरल तथा कुटिल मार्गों से बहती हुई समुद्र में जाकर मिलती हैं। उसी प्रकार वेदों से लेकर पांचरात्र पर्यन्त अथवा रामचरितमानस पर्यन्त ऊपर के कहे हुये सम्पूर्ण सनातन धर्म के ग्रन्थों का साक्षात् या परम्परा से भगवत् प्राप्ति में प्रयोजन है। इन सभी ग्रन्थों का वेदानुकूल अंश ग्राह्य है तथा वेद विरुद्ध त्याज्य है।

चार वेदों, उपवेदों, उपाङ्गों तथा दर्शनों के सप्रामाणिक चित्र दिये हैं।

॥ छठा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ सातवां अध्याय प्रारम्भ ॥

श्री गुरुतत्त्व तथा श्री गुरु महिमा

उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों को स्वयं पढ़ने से बोध नहीं होता। किन्तु गुरु परम्परा से जिन्होंने अपने श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की सेवा करके अध्ययन किया है अर्थात् इन समस्त ग्रन्थों का अवान्तर तात्पर्य अथवा महातात्पर्य किसमें है। जिन्होंने श्रवण के छः लिङ्गों द्वारा श्रवण, मनन, निदिध्यासन किया है। इन षट्लिङ्गों का वर्णन आत्मा, अनात्मा का विवेक प्रकरण में करेंगे। श्रवण की विधि का वर्णन करते हुए उपनिषद् में भी कहा है–

''गुरुमेवाभिगच्छेत् समित् पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्''

अर्थात् समित् पाणि होकर कोई भेंट लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण ग्रहण करे।

श्रोत्रियगुरु का लक्षण–जिसने श्री गुरुचरणों में बैठकर वेद वेदाङ्ग का अध्ययन किया है तथा जिन्होंने साधन सम्पन्न होकर आत्मानुभूति की है, उन्हें ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं। गुरुओं में दोनों विशेषताएं होनी चाहिए। क्योंकि केवल वेदादि शास्त्र के ज्ञाता गुरु पदपदार्थ का बोध करा सकते हैं। परन्तु अनुभव नहीं बता सकते। केवल ब्रह्मनिष्ठ गुरु अनुभव बता सकते हैं। शास्त्रीय तर्कों का समाधान नहीं कर सकते। अतः गुरुओं में दोनों विशेषताएं होनी चाहिए। गीता में भगवान् कहते हैं, **''तद्विद्धि प्रणिपातेन**

परिप्रश्नेनसेवया उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'' प्रणाम की विधि से दशों अंगुलियों के नाखूनों को पृथ्वी में लगाकर दाहिने हाथ से दाहिना चरण बायें हाथ से बायां चरण स्पर्श करते हुए मस्तक को गुरुचरणों में रखकर साष्टांग दण्डवत् करने से, उनकी सेवा से, प्रसन्न होने पर, जीवात्मा परमात्मा की एकता का अनुभव कैसे होगा? बन्धन से कैसे निवृत्त होंगे? इत्यादि प्रश्न करने पर वे तत्त्वदर्शी महात्मा तुम को ज्ञान का उपदेश करेंगे। प्रश्न होता है कि बहुत से ज्ञानी उपदेश करेंगे कि एक ही? उत्तर–एक ही गुरूपदेश करेंगे। बहुवचन का कर्ता तथा क्रिया आदर के लिये हैं। क्योंकि धर्मशास्त्रों में गुरुओं के लिये एकवचन का प्रयोग उनकी हत्या के समान दोषजनक है। अतः तीन–पांच–सात अथवा बारह वर्ष तक गुरु सेवा करते हुए, प्रस्थान त्रयी का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करे।

शंका–श्रवण, मनन, निदिध्यासन से क्या लाभ है? **समाधान**–श्रवण करने से प्रमाणगता सम्भावना दूर होती है अर्थात् वेदों से लेकर मानस पर्यन्त कोई शंका नहीं रहती। मनन करने से सुने गये ग्रन्थ को वार–वार विचारने से परमात्मा के निराकार निर्गुण, निराकार सगुण तथा सगुणसाकार स्वरूप के विषय में कोई शंका नहीं रहती।

निदिध्यासन, से विषयाकारा वृत्ति को हटा कर ब्रह्मकारवृत्ति को निरन्तर जारी रखने से विपरीत भावना–अज्ञान निवृत्त होता है। यदि साकार का उपासक हो, तो इष्ट देव का दर्शन होता है। निर्विशेष का उपासक हो, तो ब्रह्माकार वृत्ति का अभ्यास करे। इससे जगत् से सत्यत्व की भ्रान्ति तथा जीव ब्रह्म में भेद बुद्धि दूर होती है।

सारांश–सारांश यह है कि प्रस्थानत्रयी वेदान्त के ग्रन्थों को गुरुचरणों में बैठकर पढ़े। अपने आप ग्रन्थ पढ़ना सागर के खारे पानी पीने के समान है। वेद शास्त्रों में लिखा ज्ञान खारे जल के समान है। जैसे खारा जल पीने, कपड़े धोने इत्यादि के काम नहीं आता, किन्तु जब उसी जल को भगवान् भुवन भास्कर सूर्य नारायण किरणों से बादल बनाते हैं तब वह मधुर शीतल जल प्यास को शान्त करता है। वैसे ही गुरुरूपी सूर्य ज्ञानरूपी किरण से वेदशास्त्र के ज्ञानरूपी खारे जल को शोषण करके अनुभूति से मीठे जल की वर्षा करके शिष्य रूपी चातक की ज्ञानरूपी पिपासा को शान्त करते हैं। अतः वेदादि शास्त्रों का अध्ययन गुरु मुख से करना चाहिए।

श्री गुरुतत्त्व

गुरुपद में दो अक्षर हैं दोनों की व्याख्या गुरु गीता में इस प्रकार से है–

श्लोक–गुकारश्चान्धकारस्तु, रुकारस्तन्निरोधकृत्।
अन्धकारविनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥३२॥
गुकारश्च गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः।
गुणरूपविहीनत्त्वात्, गुरुरित्यभिधीयते॥३३॥
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुण भासकः।
रुकारोऽस्ति परब्रह्म, मायाभ्रान्तिविमोचकम्॥३४॥

अर्थ–गुकार अंधकार है और रुकार अज्ञानान्धकार को रोकता है। अंधकार के विनाशी होने से गुरु कहते हैं। गुकार गुणातीत है। रुकार रूपातीत है। गुण तथा रूप से रहित होने के कारण गुरु कहे जाते हैं। गुरुपद का प्रथम अक्षर माया के तीन गुणों का प्रकाशक है। रुकार माया से होने वाली भ्रान्ति का विनाशक परब्रह्म कहा गया है अर्थात् माया इसके तीन गुण तथा जीव भाव से रहित गुरु तत्त्व है। इससे गुरु और परमात्मा में अभेद सिद्ध हुआ। गुरुओं को आचार्य भी कहते हैं। आचार्य से ही ज्ञान प्राप्त होता है। अन्यत्र भी कहा है। 'आचार्यवान् पुरुषो वेद'–आचार्य की सेवा करके वेदाध्ययन करने वाले पुरुष को ज्ञान प्राप्त होता है।

श्लोक–आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारेस्थापयत्यपि।
स्वयमेवाचरेद् यस्तु तस्मादाचार्य उच्यते॥

अर्थ–जो शास्त्र में कहे हुए अर्थ का संकलन करके शास्त्रीयाचार में स्थित हैं। उन्हें आचार्य कहते हैं स्वयं आचरण करते हैं, इसलिए आचार्य कहते हैं।

योगदर्शन में भगवान् पातञ्जलि ने भी ईश्वर की निरपेक्ष सर्वज्ञता का प्रतिपादन करते हुए गुरुओं को ईश्वर के समान कहा है तथा गुरुओं के भी गुरु ईश्वर को देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित कहा है।

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञवीजम्" (योग सा०पा०सू० २५)

यह परमात्मा सनकादिक सातिशय सर्वज्ञों की अपेक्षा सर्वज्ञ है। अर्थात् सभी को सर्वज्ञता की प्राप्ति उसी ईश्वर से हुई है। भाष्य में व्यास जी लिखते हैं-**ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्प प्रलय महाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामि तथा चोक्तम्। आदि विद्वान् निर्माण-चित्तमधिष्ठाय कारुण्यात्-भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाचेति॥२५॥**

अर्थ-वह परमात्मा ब्रह्मा के दिन के अन्त में होने वाले प्रलय में तथा ब्रह्मा की पूर्ण होने वाली आयु के महाप्रलय में भूतों पर परमानुग्रह करने के लिए 'इन प्राणियों पर परमानुग्रह करूंगा'-ऐसा संकल्प करके अपनी सर्वज्ञशक्ति के बल पर अनुग्रह करता है। किस रूप में करता है, इस पर कहते हैं कि वह परमात्मा भगवान् आदि विद्वान् कपिलदेव के रूप में परमदया से युक्त होकर निर्माणचित्त को अधीन करके अपने आसुरि नाम के शिष्य को सांख्य तन्त्र का उपदेश करता है। इस ईश्वर रूपी गुरु को अकारण करुण वरुणालय तथा निरपेक्ष सर्वज्ञ कहा है।

(स) ''पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'' (यो०स०पा०सू० २६)

अर्थ-वह काल के परिच्छेद से रहित होने के कारण गुरुओं का भी गुरु है। व्यास जी इसके भाष्य में लिखते हैं। आरम्भ से आज तक जितने भी गुरु हुए हैं। वह सब काल पाकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। किन्तु परमात्मा में काल की दाल नहीं गलती। क्योंकि वह काल का भी महाकाल है। क्योंकि काल शरीर धारी के शरीर का नाश करता है। ईश्वर शरीर से रहित है। उसमें सञ्चित्, प्रारब्ध, क्रियमाण तीनों प्रकार के कर्म, शरीर की प्राप्ति के हेतु नहीं होते अथवा शुभाशुभ मिश्रित तीनों प्रकार के कर्म, शरीरों के कारण परमात्मा में नहीं होते। कर्म अज्ञान से होते हैं। ईश्वर में अज्ञान लेशमात्र भी नहीं है। ईश्वर में कर्म मान लेने पर उसकी सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होती। काल शरीर का नाश करता है, ईश्वर शरीर से रहित है। इसलिए काल ईश्वर का नाश नहीं कर सकता। इस पर भगवान् श्री शंकराचार्य जी ने भी अपने विवरण भाष्य में युक्ति तर्क प्रमाण तथा अनुभव से सिद्ध किया है। अतः विस्तार से समझने वाले पाठक योग दर्शन पर व्यास भाष्य विवरण भाष्य सहित देखें।

२-ईश्वर को गुरुओं के भी गुरु होने का कारण बताते हुए कहा है-आज तक जितने भी गुरु हुये हैं, उनको ईश्वर से सर्वज्ञता प्राप्त हुई है अथवा गुरुओं को शिष्यों के कठिन से कठिन विषय को सरल-से-सरल करके युक्ति द्वारा हृदय ङ्गम कराने की शक्ति उसी से प्राप्त हुई। अतः परमात्मा वर्तमान भूत-भविष्य तीन काल के गुरुओं के लिए सिद्ध हुये।

॥ सातवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ आठवां अध्याय प्रारम्भ ॥

गुरुमहिमा

श्लोक-कर्मणा मनास वाचा सर्वदाराधयेद्गुरुम्।
दीर्घदण्डं नमस्कृत्य, निर्लज्जो गुरुसन्निधौ ॥३८॥
शरीरमिन्द्रियं प्राण, मर्त्यस्वजनबान्धवान्।
आत्मदारादिकं सर्व, सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥३९॥
गुरुरेको जगत्सर्वं, ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति, तस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम् ॥४०॥
सर्वश्रुतिशिरोरत्न-नीराजित पदाम्बुजम्।
वेदान्तार्थप्रवक्तारं, तस्मात्सम्पूजयेद् गुरुम् ॥४१॥
यस्य स्मरणमात्रेण, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
स एव सर्वसम्पत्तिस्मात्सम्पूजयेद् गुरुम् ॥४२॥
कृमिकीट, भस्म, विष्ठा, दुर्गन्धि मल मूत्रकम्।
श्लेष्म रक्तत्वचा मांसैः नेदं चैतद् वरानने ॥४३॥
संसार वृक्षामारूढ़ाः पतन्ति नराकर्णवे।
यस्मान्नद्धरते सर्वान् तस्मै श्री गुरवे नमः ॥४४॥
गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेकं परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवेनमः ॥४५॥

अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवेनम्॥४६॥
स्थावरं जंगमंजातं यत्किञ्चित्सचराचरम्।
त्वं पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥४७॥
अखण्ड़मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दार्शितं येन-तस्मै श्री गुरवे नमः॥४८॥
चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
असित्वं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥४९॥
निमिषार्धार्ध पाताद्वा यद्वाक्याद्वै विलोक्यते।
स्वात्मानं स्थिरमादत्ते तस्मै श्री गुरवे नमः॥५०॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं, व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादविन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुरवे नमः॥५१॥
निर्गुणं निर्मलं शान्तं जङ्गमं स्थिरमेव च।
व्याप्तं येन जगत्सर्व तस्मै श्री गुरवे नमः॥५२॥

(श्री गुरु गीता)

अर्थ–कर्म, मन, वाणी से शिष्य गुरु की आराधना करें तथा लज्जा त्याग कर गुरु के समीप दण्डवत् प्रणाम करे। शरीरेन्द्रिय प्राण स्वजन बन्धु तथा अपने आप को सद्गुरु को समर्पण करे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सम्पूर्ण जगत् गुरुस्वरूप है। गुरुओं से परे कोई नहीं है। इसलिए गुरुओं की पूजा करे। सम्पूर्ण श्रुतियों के द्वारा नीराजित गुरु के चरण कमल हैं। अतः वेदान्त के वक्ता गुरुओं का पूजन करे। जिनके स्मरण मात्र से ज्ञानोत्पन्न होता है तथा सर्व सम्पत्ति प्राप्त होती है। उन गुरुओं की पूजा करे। कृमि, कीट, भस्म विष्ठा दुर्गन्धि तथा मल-मूत्र, रक्तत्वचादि के नरक में पड़े हुए जीवों को संसार रूपी वृक्ष पर चढ़कर जो तारते हैं। ऐसे गुरुओं को प्रणाम करें। गुरु ब्रह्मा, विष्णु महेश और एकमात्र परब्रह्म हैं उनके लिए प्रणाम है। अज्ञान रूपी अंधकार से युक्त शिष्य को जिन्होंने ज्ञानरूपी अंजन लगाकर नेत्र खोल दिये हैं, ऐसे गुरुओं को प्रणाम है।

स्थावर जंगम में व्याप्त जो परम तत्त्व है, ऐसे त्वं पद के लक्ष्यार्थ को जिन्होंने दिखाया है, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं। जिन्होंने अखण्ड मण्डाकार चराचर जगत् में व्याप्त तत् पद रूपी ब्रह्म का साक्षात्कार कराया है, उन गुरुओं को मैं प्रणाम करता हूँ। तीनों लोकों में व्याप्त चिन्मय असि पद का जिन्होंने दर्शन कराया है। उन गुरुओं को मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके वाक्य से चौथाई निमेष में भ्रम दूर हो जाता है, तथात्मा स्वरूप में स्थिति होती है, ऐसे गुरुओं को प्रणाम करता हूँ जो शान्त, शाश्वत, चैतन्य स्वरूप आकाशादि पंचमहाभूतों से परे, अज्ञानरूपी अंधकार से रहित, नाद बिन्दु, कला से अतीत, गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ, जो परम तत्त्व निर्गुण-निर्मल एवं शान्त हैं तथा जिससे स्थावर जंगम के समस्त प्राणी व्याप्त है। ऐसे गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूं। (३८ से ५२)

इसी प्रकार श्री गुरुदेव जी की महिमा वेदों, रामायणों, महाभारतादि ग्रन्थों में पाई जाती है।

॥ इति आठवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ नवां अध्याय प्रारम्भ॥

अनेकों प्रकार के गुरु

प्रधान रूप से दो प्रकार के गुरु होते हैं। **प्रवृत्ति प्रधान**–कर्म एवं उपासना का उपदेश देने वाले। मरीचि-वसिष्ठ-पुलस्त्य-पुलह-भृगु-अंगिरा-अगस्त्य-विश्वामित्र-ऋचीक-जमदग्नि-वृहस्पति-शुक्राचार्य-शतानन्द-धौम्य-गर्गाचार्य आदि।

दूसरे **प्रकार निवृत्ति**–प्रधान ज्ञान मार्गी। इनमें सनत्-सनातन-सनन्दन-सनत्कुमार-सनत्सुजात-नारद-दत्तात्रेय-दुर्वासा-औबटायन-श्वेताश्वतर-जैगीषव्य-वामदेव-शुकदेव-ऋभु-गौड़पादाचार्य-श्रीगोविन्दभगवत्पादाचार्य-आद्यश्री शंकराचार्य तथा उनकी शिष्य परम्परादि। इन दोनों प्रकार के आचार्यों की परम्परा द्वापर के तीसरे चरण तक चलती रही। किन्तु बीच में लुप्त सी हो गई तथा इसका उद्धार करने के लिए देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवान् ने द्वापर के अंत में वासुदेव-देवकी के घर अवतार लेकर गीता के माध्यम से इसकी रक्षा की। कुछ लोग कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने मात्र से

ज्ञान हो जाएगा। इसमें गुरुओं की क्या आवश्यकता है। अतः गुरुओं की आवश्यकता पर विचार करेंगे।

श्री सद्गुरुदेव की आवश्यकता

संसार में साधारण कार्य सीखने के लिए भी किसी-न-किसी प्रकार के गुरु-आचार्य-उस्ताद वा टीचर की आवश्यकता होती है। ६४ कलाएं-शारीरिक विज्ञान-भौतिक विज्ञान-भूगर्भ शास्त्र, इतिहास-भूगोल आदि ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। जब अनेकों अपरा विद्याओं का ज्ञान बिना गुरु के नहीं होता। तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा का ज्ञान जो शरीर-मन-इन्द्रिय-बुद्धि आदि से परे अत्यन्त सूक्ष्मतम है। उसको प्रत्यक्ष करने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है। अभी हमें स्थूल शरीर के भीतर का भी पूरा ज्ञान नहीं हुआ। फिर इसके भीतर दोनों शरीरों का ज्ञान कैसे हो सकता है। फिर उनके भीतर जो आत्म तत्त्व हैं अति सूक्ष्म तत्त्व है। अणु से भी अणु कहा है। गुरुओं की कृपा बिना इसका बोध नहीं हो सकता। दो प्रकार की विद्या देने वाले दो प्रकार के गुरु होते हैं। एक अपरा-दूसरी परा। अपरा विद्या से स्थूल शरीर से लेकर मूल प्रकृति तक बोध होता है तथा पराविद्या जिसे ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। यह जीव को ज्ञान की प्राप्ति कराती है। अपरा विद्या नहीं, परा विद्या का ज्ञान कराने वाले सद्गुरु कहे जाते हैं। संसार में शिष्य का धन हरण करने वाले गुरु बहुत हैं, किन्तु शिष्य के तीनों दुखों का हरण करके ब्रह्म प्राप्ति कराने वाले गुरु दुर्लभ हैं। वे गुरु अपने दर्शन, स्पर्श, भाषण से शिष्य को जन्म जन्मान्तर के पापों से रहित करके ब्रह्म की प्राप्ति कराते हैं। ऐसे सद्गुरुओं की सेवा अर्चना तथा पादोदक ग्रहण करना चाहिए।

शंका-संसार में शारीरिक कपड़े आदि का मैल साफ करने वाले मेहतरादिकों के छूने से धर्म शास्त्रों में वस्त्र सहित स्नान करने की आज्ञा है। तब मन का मैल छुड़ाने वाले गुरुओं को भी छूने पर स्नान करना चाहिए। फिर उनको क्यों प्रणाम करें, क्योंकि शरीर का मैल हो, चाहे मन का दोनों मैल बराबर हैं?

समाधान-समाज में देखा जाता है कि जो जितनी सूक्ष्म वस्तु का मैल साफ करता है। समाज में उतनी ही उसका सम्मान होता है। जैसे रोगी को औषधि देकर वैद्य-

हकीम या डॉक्टर शरीर के नसों, नाड़ियों की सफाई करता है। समाज में उसका उतना ही सम्मान होता है। कोई कारीगर किसी मशीन की कल पुर्जे की सफाई करने वाले, जैसे घड़ी, साइकिल, रेडियो, टी०वी०, रेल या जहाज़ का इंजन इनके टूटे फूटे कल पुर्जों की मुरम्मत सफाई करने वालों का समाज में सम्मान होता है। ये स्थूल-सूक्ष्म पूर्जे आँखों या दूरबीनादि से दिखाई देते हैं।

किन्तु सद्गुरु तो संसार में किसी यन्त्र से न दिखाई देने वाले मन-बुद्धि आदि को दिव्य दृष्टि से देखकर परम कुशलता से उनकी सफाई करते हैं। अतः उनको प्रणाम पूजा-आरती तथा पाद प्रक्षालन करना चाहिए। इतने मात्र से शिष्य उऋण नहीं होता; किन्तु अनन्त काल तक सद्गुरुओं का ऋणी रहता है। जो शिष्य उनकी आज्ञानुसार साधन करता है वही कृतार्थ होता है। महाभारत में व्यास जी कहते हैं।

अज्ञानां चैव यो ज्ञानं दद्याद्धर्मोपदेशतः।
कृत्स्नां वा पृथ्वीं दद्यात् तेन तुल्य न तत्फलम्॥ (अनुस्मृति)

अर्थ-जो गुरु अज्ञानियों को धर्मोपदेश सहित ज्ञान देते हैं (शिष्य इसके बदले में) सम्पूर्ण पृथ्वी का दान कर दे, तो भी वे धर्मोपदेश सहित आत्मज्ञान के समान वह दान नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि शास्त्र पढ़ने से पद-पदार्थ-वाक्य तथा सन्दर्भ का ज्ञान होता है। किन्तु सद्गुरुओं द्वारा अनेक गुप्त रहस्यों का बोध होता है। अतः दृढ़तम ज्ञान के लिए सद्गुरुओं की परम आवश्यकता है।

त्रिविध दीक्षा

अधिकारी भेद से कई प्रकार की दीक्षा होती है। किन्तु तीन प्रकार की मुख्य है। सद्गुरु रूपी किसान शिष्य के चित्तरूपी भूमि में शुभ कर्म, भक्ति-योग या ज्ञान रूपी बीज डालकर उसकी रक्षा करते हैं। जैसे किसान खेत में बीज बोने से पहले उसकी घासादि निकालकर खेत की सफाई करता है। हल चलाकर नरम करता है। उसके कंकड़-पत्थर निकाल कर खाद डालता है। जब भूमि बोने के योग्य हो जाती है, तब उसमें ऋतु के अनुसार निर्दोष बीज बोता है। फिर समय-समय पर उसकी गुड़ाई-सिंचाई करता है। जब तक फसल नहीं पकती, उसकी हानि पहुँचाने वाले जीव-जंतु

तथा मनुष्यों से रक्षा करता है। पकजाने पर काटता है। वैसे ही सद्गुरु रूपी किसान शिष्य के चित्त रूपी भूमि में कर्म उपासनादि बीज बोने से पहले उसके दुर्व्यसनों को दूर करते हैं यदि उसकी कर्म में रुचि है, संसार के भोगों से वैर्ग्‌य नहीं है, तो कर्म का अधिकारी है तभी उसे कर्म का उपदेश देते हैं। यदि वह संसार में न अधिक अनुरक्त है, न विरक्त है, मध्यम श्रेणी का है, तो भक्ति योग का उपदेश देते हैं। यदि लोक परलोक के भोगों से परम विरक्त है। तो ज्ञान का बीज डालकर; जब तक वह परिपक्व नहीं होता, तब तक कामादि शत्रुओं से रक्षा करते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शिष्य कुछभी न करे। उसे गुरु आज्ञानुसार चलना चाहिए। जीव पर चार कृपा होने से जीव का कल्याण होता है। (१) ईश्वर कृपा, मनुष्य शरीर की प्राप्ति, (२) शास्त्र कृपा शास्त्रानुसार कहे हुए गुरुओं की प्राप्ति, (३) गुरु कृपा रहस्यों सहित दीक्षा की प्राप्ति, (४) आत्म कृपा। इन तीनों प्रकार की कृपा होने पर भी यदि शिष्य शास्त्र और गुरुओं की आज्ञा का पालन नहीं करता तो तीनों कृपा व्यर्थ होती हैं। जैसे कक्षा में विद्यार्थी को पढ़ाना अध्यापक का काम है, किन्तु विद्यार्थी मन लगाकर नहीं पढ़ता, परिश्रम नहीं करता, परीक्षा-काल में प्रश्न पत्र को सही रूप से पढ़कर उसका उत्तर नहीं लिखता, तो अध्यापक का दोष नहीं है। वैसे ही योग्यतानुसार शिष्य को दीक्षा देना गुरुओं के अधीन है। उस पर चलना शिष्य का काम है जो शिष्य गुरु आज्ञा का पालन करता है। उसी का कल्याण होता है। दूसरे का नहीं।

॥ नवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ दसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

समर्थ गुरुओं की समर्थ दीक्षाएं

शक्तिपात करने वाले गुरुओं की तीन प्रकार की दीक्षा होती हैं–(१) स्पर्श दीक्षा, (२) दृग् दीक्षा, (३) वैद्य दीक्षा।

१. स्पर्श दीक्षा–यथा पक्षीसुपक्षाभ्यां, शिशून् सम्वर्धते शनैः।
स्पर्शदीक्षोपदेशश्च, तादृशः कथितः प्रिये ॥१ ॥

अर्थ–हे प्रिये! जैसी पक्षी अपने सुन्दर पंखों से धीरे-धीरे शिशुओं की वृद्धि करता है। इस प्रकार की दीक्षा को स्पर्श दीक्षा कहते हैं। माने शिष्य को छूने मात्र से शिष्य में शक्ति पात करते हैं ॥१ ॥

२. दृग दीक्षा– स्वापत्यानां यथा मत्स्यो वीक्षणेनैवपोषयेत्।
दृष्टि दीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये ॥२ ॥

अर्थ–हे प्रिये! जैसे मछली अपने बच्चों को देखने मात्र से पोषण करती है। इस प्रकार जो गुरु देखने मात्र से शक्तिपात करते हैं उसे दृग दीक्षा कहते हैं ॥२ ॥

३. वैधदीक्षा– यथाकूर्मोस्वतनयान् ध्यानमात्रेणपोषयेत्।
वैध दीक्षोपदेशश्च, तादृशः कथितः प्रिये ॥३ ॥

अर्थ–हे प्रिये! जैसे कछुवा ध्यान मात्र से अपने पुत्रों को पोषण करता है। वैसे ही जो गुरु ध्यान से शिष्यों की दीक्षित करे उसे वैधदीक्षा कहते हैं ॥३ ॥

इन दीक्षाओं के अतिरिक्त मंत्रयोग-हठयोग तथा लययोग से सम्बन्धित अनेकों दीक्षाएं हैं। संन्यास गीता में कहा है–मंत्रयोगस्थूल ध्यान का साधन है। दूसरे हठयोग में ज्योति का ध्यान किया जाता है। लययोग में बिन्दु का ध्यान। राजयोग में ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। हठयोग की व्याख्या में कहा है–

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्य चन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते ॥

अर्थ–हकार से सूर्यनाड़ी, ठकार से चंद्रनाड़ी कही गई है। सूर्यचंद्र नाड़ी का मेल

हठयोग कहा गया है। जिद्दरूपी हठ नहीं। अब गुरुओं तथा शिष्यों के लक्षण लिखे जाते हैं।

गुरुलक्षण– सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुभगो बहुतन्त्रवित्।
असंशयः संशयच्छिन्नः निरपेक्षो गुरुर्मतः ॥१॥
सौलभ्यमप्यगर्वित्वं सन्तोषो बहुतन्त्रता।
असंशयः तत्त्वबोधे, तच्छक्ति प्रतिपादनात् ॥२॥
(कादिमते)

कुलार्णवे– श्री गुरुःपरमेशानि, शुद्धवेशो मनोहरः।
सर्वलक्षणसंयुक्तः, सर्वावयवशोभितः ॥१॥
सर्वागमार्थ तत्त्वज्ञः, सर्वमन्त्रविधानवित्।
लोकसम्मोहनाकरो, देववत्प्रिय दर्शनः ॥२॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छः शुद्धान्तश्छिन्न संशयः।
इङ्गिताकारचेष्टाविद्दूरतः कृतदुर्जनः ॥३॥
अन्त मुंखो वहिर्दृष्टिः सर्वज्ञोदेश कालवित्।
आज्ञासिद्धस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रह क्षमः ॥४॥
वेदवेदान्तविच्छान्तः, सर्वजीव दयापरः।
स्वाधीनेन्द्रियसंचारः, षड्वर्गविजयक्षमः ॥५॥
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित्।
निर्मलो, नित्यसन्तुष्टो, निर्द्वंद्वोऽनन्तशक्तिमान ॥६॥
सद्भक्त वत्सलो धीरः, कृपालुः स्मितपूर्ववान्।
भक्तप्रियः, सर्वसमो, दयालुः, शिष्यशासिता ॥७॥
स्वेष्टनिष्ठो, गुरुः प्राज्ञो, वनितापूजनोत्सुकः।
नित्यनैमित्तिके काम्ये, रतः कर्मण्य निन्दिते ॥८॥
अलोलुपोऽहिंसकश्चापक्षपाती विचक्षणः।
वित्तविद्यादिभिः पूर्णो, मन्त्रयन्त्रादिपारगः ॥९॥

निस्संकल्पविकल्पश्च निर्णीतार्थ विधायकः।
तुल्यनिन्दा स्तुतिर्मौनी, निरपेक्षो नियामकः॥१०॥

अर्थ–हे परमेशानि! सुन्दर मुख वाले, स्वच्छ, भाग्यशाली अनेकों तन्त्रों के ज्ञाता, निःसंशय निष्कामगुरु कहे जाते हैं। सुलभ-अभिमान रहित, सन्तोषी अनेक तन्त्रों के ज्ञाता, तत्त्व बोध कराने में समर्थ तथा शक्ति का प्रतिपादन करने वाले सभी इच्छाओं से रहित, ऐसे गुरुओं से जानना चाहिये। इसके विपरीत दुर्गुणों वाले गुरु शिष्य को दुख देते हैं यह कादिमत से हैं।

कुलार्णव तन्त्र से–शंकर जी कहते हैं। हे परमेशानि! गुरु मन को हरने वाले, सुन्दर वेश वाले, समस्त लक्षण से युक्त, सर्वाङ्गसुन्दर, सम्पूर्ण आगमतत्त्वज्ञ, सभी मन्त्रों की विधि के ज्ञाता, संसार को मोहित करने वाले, देववत् प्रियदर्शी होने चाहिए। अन्तर्मुख होने पर बहिः दृष्टि, सर्वज्ञ, देशकाल के ज्ञाता, सबको आज्ञा देने वाले (सबको वही आज्ञा दे सकते हैं, जिनकी कुण्डलिनी शक्ति आज्ञाचक्र में पहुँच गई है) त्रिकाल दर्शी, वर-शाप देने में समर्थ, वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता, शान्त सब जीवों पर दया करने वाले, इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करने वाले, छः शत्रुओं को जीतने में समर्थ, अग्रगण्य, अति गम्भीर, विशेषरूप से पात्रापात्र का विचार करने वाले, निर्मल-नित्यसन्तुष्ट, द्वन्द्व रहित, अनन्त शक्ति वाले, भक्त की रक्षा करने में समर्थ, धैर्यवान् कृपालु, मन्दमुसकान से बात करने वाले, भक्तप्रिय, सब में ब्रह्म बुद्धि, दयालु, शिष्य पर शासन करने वाले, हे अनिन्दिते! अपने इष्ट के प्रतिनिष्ठावान् बुद्धिमान गुरु, वनिता (कुण्डलिनी शक्ति का पूजन करने के लिए उत्सुक अर्थात् कुण्डलिनी को जागृत करके मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र में ले जाने वाला, नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्मों में लगा हुआ, चंचलता रहित, अहिंसक, पक्षपात रहित, विद्वान्, धन तथा विद्या से परिपूर्ण मन्त्रादि के परम विद्वान्, संकल्प विकल्प से रहित शास्त्र के निर्णायक, निन्दा स्तुति में समबुद्धि, इच्छा रहित सब को नियन्त्रित करने वाले इन लक्षणों से युक्त गुरु को ढूंढकर उनकी सेवा करनी चाहिए॥१ से १०॥

॥ दसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ ग्यारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

सच्छिष्य लक्षण

शरीरमर्थ प्राणांश्च सद्गुरुभ्योनिवेद्य यः।
गुरुभ्यः शिक्षितोयोगः शिष्य इत्यभिधीयते॥

अर्थ–शिष्य शब्द का अर्थ करते हुए कहा है, जो शिष्य गुरुओं को शरीर, धन तथा प्राण निवेदित करके गुरुओं से योग की शिक्षा लेता है। उसे शिष्य कहते हैं। साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रद्धावान् चंचलता रहित, शुद्ध अन्तःकरण वाला, निर्लोभी, स्थिर चित्त वाला, जितेन्द्रिय, गुरु आज्ञाकारी, आस्तिक, गुरु मन्त्र तथा देवता में दृढ़ भक्ति वाला, सच्छिष्य कहा जाता है। इसके विपरीत लक्षण वाला शिष्य गुरुओं को दुःख देता है।

कुलार्णवतन्त्र से–हे कुलेशानि सत् शिष्य के लक्षण कहता हूं। सुनो! सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त क्षमादि साधन सम्पन्न, गुणशील से युक्त, धार्मिक शुद् देह वाले, शुद्ध अन्तः करण, दृढ़व्रती, सदाचारी, श्रद्धा-भक्ति से युक्त, कृतज्ञ, पाप से भयभीत, सज्जनों द्वारा प्रशंसनीय, आस्तिक, दानी, सर्वभूत हितैषी, विश्वास, विनय से युक्त, उदार, कठिन काम को करने में सक्षम, शूर, बल कान्ति से युक्त, गुरु शास्त्रानुकूल क्रिया करने वाला, प्रमाद रहित, विद्वान्, हितमित, सत्य भाषी, दोषों से रहित, चतुर, बुद्धिमान्, निर्विकार, सर्वकार्य करने में कुशल, परोपकारी, परनिन्दा रहित, सुमुख, जितेन्द्रिय, सन्तोषी, विद्वान्, ब्रह्मचारी, चंचलता से रहित, गुरुध्यान स्तुति करने वाला, भजनानन्दी, कुण्डलिनी जागरण में तत्पर, मनसावाचाकर्मणा गुरु सेवक, गुरु आज्ञा पालक, गुरु की कीर्ति बढ़ाने वाला, प्रमाणज्ञ, गुरु सेवा में तत्पर, गुरुओं के समीप अभिमान आदि से रहित, गुरुकृपाकांक्षी, कौल मार्गावलम्बी, मुमुक्षु, हे देवि! इन लक्षणों से युक्त शिष्य को गुरु ग्रहण करे।

असत् शिष्य लक्षण–दुष्ट वंश में उत्पन्न हुआ, स्वभाव से दुष्ट, गुणहीन, कुरूप पहले गुरु को त्यागकर आया हुआ, दूसरे गुरु की इच्छा वाला शिष्य, वेदमत का खण्ड न करने वाला पाखण्डी, धूर्त, अपने को विद्वान् मानने वाला, अंगहीन, विकृत अंग वाला कार्य करने में असमर्थ अंग वाला, बहरा-अंधा-मलिन-रोगी-दुखी-जूठा भोजन करने

वाला, मिथ्याभाषी कुरूप-नट-आँख-मुख हाथ जिसके दग्ध हो गयेहों अर्थात् परस्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाला जीव, आँख जिसके वश में न हो, हाथ से जो प्रतिग्रह लेता हो, वह तीन अंगों से विदग्ध कहा जाता है। बुरी चेष्टा वाला कुटिल, आलसी-तन्द्रा से युक्त, जूए आदि का व्यसनी, दरवाजा, दीवार-खम्भे आदि में शरीर छिपाने वाला, नीच, गुरुओं की भक्ति से रहित, कलंकी, दूतकार्य करने वाला, चंचल-ठग-धन स्त्री की शुद्धि से रहित, विधि निषेध से रहित, शिशु, पागल-चुगलखोर, देवकार्य विनाशक, बन्दर की बुद्धि की तरह चोरी करने वाला, बगुलाभक्त, दूसरों के दोष निकालने वाला, कृतघ्न, विश्वासघाती, देवद्रोही, पापी, अविश्वासी विद्याहीन, आततायी, विष देने वाला, आग लगाने वाला, स्त्री धन खेत मकान को हड़पने वाला, कूटसाक्षी, सर्वत्र मांगने वाला, महाव्यभिचारी, काम सम्बन्धी चर्चा करने वाला, हत्यारा, ऊपर से मधुर भाषी, विद्याचोर, आत्मश्लाघी, दूसरे के गुण न सहने वाला, भयभीत, क्रोधी तथा चार्वाक (वेद, आत्मा को न मानने वाला, शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश मानता है।) दुष्ट का मित्र, सब प्राणियों को भय देने वाला, मित्र द्रोही, अजितेन्द्रिय, पशु स्वभाव वाला, कामी, अति निर्लज्ज, झूठा प्रचारक दम्भी-अहंकरी-कठोर, कृपण, असन्तोषी, अधिक भोजन करने वाला, कपटी। हे प्रिये! भक्ति श्रद्धा-दया-शान्ति आदि सद्गुणों से रहित, माता पिता गुरु विद्वान् महापुरुषों से मज़ाक करने वाला, गुरु सेवाभिमानी, पतिव्रतास्त्री को छोड़कर आने वाला, जो गुरु आज्ञा न मानता हो, इन देषों से युक्त शिष्य को दीक्षा नहीं देनी चाहिए। गुरु उसका त्याग करे। (१ से २१ तक)

स्नेहाद्वा लोभतो वापि, दुश्शिष्यं यदि दीक्षयेत्।
तस्मिन् गुरौ सशिष्ये तु, देवता शापमुत्सृजेत्॥२२॥
तस्मादेवं विधं शिष्यं नगृह्णीयात्कथञ्चन।
यदि गृह्णाति मोहेन, तत्पापैर्व्याप्यते गुरुः॥२३॥
मन्त्रि पापं च राजानं पतिं जाया कृतं तथा।
तथा शिष्यकृतं पापं प्रायो गुरुमपि स्पृशेत्॥२४॥

अर्थ-यदि गुरु स्नेह से, लोभ से दुश्शिष्य को दीक्षा देते हैं। तब देवता उन गुरुओं को शिष्यों सहित शाप देते हैं। अतः ऐसे शिष्य को गुरु कभी स्वीकार न करे। यदि

अज्ञान से गुरु ग्रहण करते हैं तो गुरु को पाप लगता है। मंत्री का पाप राजा को, पति को पत्नी का, शिष्य का पाप गुरुओं को स्पर्श करता है। (२२ से २४ तक) कुलार्णव तन्त्र में कहा है–

गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।
उपदेशं ददद्-गृह्णन्, प्राप्नुयातांपिशाचताम्॥१॥

अर्थ–यदि अज्ञान से गुरु शिष्य दोनों एक दूसरे की बिना परीक्षा मन्त्र लेते हैं तो दोनों पिशाच योनि को प्राप्त करते हैं॥१॥

अशास्त्रीयोपदेशंतु यो गृह्णाति ददाति यः।
भुंजते तावुभौ घोरान्नरकानेकविंशतिः॥१॥
अनर्हे मन्त्रविज्ञानं न तिष्ठति कदाचन।
तस्मात्परीक्ष्य वक्तव्यमन्यथा निष्फलं भवेत्॥३॥
ज्ञानेन क्रियया वापि गुरुः शिष्यं परीक्षयेत्।
सम्वत्सरं तदर्धं वा तदर्धं प्रयत्नतः॥४॥
शिष्योऽपि लक्षणैरेतैः कुर्याद् गुरुपरीक्षणम्।
कादिमते–एकद्वित्रिचतुः पञ्चवर्षाण्यालोच्ययोग्यताम्।
भक्तियुक्तान् गुणांश्चापि-क्रमाद्वर्णेषु संकरे॥१॥
पश्चादुक्त क्रमेणैववदेद्विद्या मनन्यधीः।
अन्यथाचेद् वदेन्नाशं स शिष्यो गुरुराप्नुयात्॥२॥
कुलार्णवेऽपि-एकाब्देन द्विजोयोग्यः क्षत्रियो वत्सर द्वयम्।
वैश्योयोग्यसूत्रिभिर्वर्षैश्चतुर्मिः शूद्रएवच॥१॥
तन्त्रसारे-गुरुता शिष्यता वापि तयोर्वत्सर वासतः।
सारसंग्रहेऽपि-यद्गुरुःस्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्॥२॥

अर्थ–जो गुरु अशास्त्रीय दीक्षा शिष्य को देते हैं और शिष्य ग्रहण करता है। वे दोनों २१ घोर नरकों में दुख भोगते हैं। अयोग्य शिष्य के प्रतिमन्त्र विज्ञान नहीं रुकता। अतः शिष्य की परीक्षा करके गुरु मन्त्र देना चाहिए, नहीं तो मन्त्र निष्फल होता है। ज्ञान से

तथा क्रिया से गुरु शिष्य की प्रयत्न से एक वर्ष ६ महीना या ३ महीना परीक्षा करे। शिष्य की ऊपर कहे हुये लक्षणों से परीक्षा करे। (१ से ४ तक)

कादिमत में भी कहा है–गुरु ब्राह्मण शिष्य की एक वर्ष, क्षत्रिय की दो वर्ष, वैश्य की तीन, शूद्र की चार तथा वर्ण संकर की पांच वर्ष तक भक्ति आदि गुणों की योग्यता की परीक्षा करे। परीक्षा के बाद विद्या का उपदेश करे। यदि गुरु ऐसा नहीं करते, तो शिष्य सहित गुरु का नाश होता है। कुलार्णव–तन्त्र में भी कहा है ब्राह्मण की एक वर्ष, क्षत्रिय की दो, वैश्य की तीन, शूद्र की चार वर्ष परीक्षा के बाद दीक्षा की योग्यता प्राप्त होती है। तन्त्रसार में भी कहा है कि गुरुता तथा शिष्यंता दोनों की एक वर्ष तक वास करने से परीक्षा होती है। **सार संग्रह** में भी कहा है गुरु एक वर्ष तक अपने शिष्य की परीक्षा करें।

॥ ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ बारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार

टीका–हे कुलेशानि! सत् शिष्य के लक्षण कहते हैं। क्षमादि सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, गुण–शील से युक्त, धार्मिक, शुद्ध मन वाला, दृढ़व्रती, सदाचारी, श्रद्धा भक्ति से युक्त, कृतज्ञ, पापभीरू, साधुजनों का सम्मान करने वाला, आस्तिक, दान शील, सब प्राणियों के हित में लगा हुआ विनयी, उदार, कठिन कार्य में समर्थ, शूरता बल–तेज से युक्त, गुरु शास्त्र के अनुकूल कर्म करने वाला, प्रमाद रहित, विद्वान् मधुरभाषी, चतुर, बुद्धि से युक्त, निर्विकार, मानसिक दरिद्रता रहित, दक्ष, स्वार्थ तथा निन्दा से रहित, प्रसन्न चित्त जितेन्द्रिय, संतोषी, बुद्धिमान्, ब्रह्मचारी, आधि–व्याधि से रहित, चंचलता रहित, गुरु ध्यान–स्तुति कथा–सेवा में उत्सुक, गुरु देवता का भक्त, कुण्डलिनी जागरण करने में उत्सुक, नित्य गुरु के समीप में रहने वाले, गुरुओं को सन्तुष्ट करने वाला मन–वचन से गुरु कर्म में युक्त, गुरु कीर्ति को फैलाने वाला, गुरु सेवा में लगा हुआ, हे कुल नायिके! गुरु के इशारे तथा चित्त के भाव को जानने वाला, गुरुओं के समक्ष अभिमान,

लज्जा रहित, निष्काम-कौल धर्म का पालन करने वाला इत्यादि लक्षणों से युक्त शिष्य को देखकर गुरु दीक्षित करें।

गुरुमन्त्र देने के अधिकारी

पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात्, तथा माता महस्य च।
सोदरस्य कनिष्ठस्य, वैरि पक्षाश्रितस्य च।

(योगिनी तन्त्र)

गणेशविमर्शिन्याम्-यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा या दीक्षा वनवासिनः।
विविक्ताश्रमिणो दीक्षा-न सा कल्याण दायिका।

अर्थ-पिता से, नाना से, सगे छोटे भाई से तथा शत्रु पक्ष के आश्रित से, मन्त्र न ले. गणेश विमर्शिनी में कहा है संन्यासी की, पिता की तथा वनवासी (वानप्रस्थ) अनाश्रमी की दीक्षाएं कल्याणदायी नहीं है। यह वचन सिद्ध अतिरिक्त के सम्बन्ध में है।

सिद्धगुरुओं के द्वारा मिला हुआ मन्त्र अयोग्य को भी योग्य बना देता है।

सूतसंहिता में-

उत्तम पञ्चधा प्रोक्तो, गुरुर्ब्रह्मसुवेदिभिः।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः॥१॥
रुद्रयामले-न पत्नीं दीक्षयेत् भर्ता, न पिता दीक्षयेत् सुताम्।
न च पुत्रं तथा भ्राता, भ्रातरं न च दीक्षयेत्।
गणेशविमर्शिन्याम्-प्रमादाच्च तथा ज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरेत्।
प्रायश्चितं तथा कृत्वा पुनर्दीक्षा समाचरेत्॥
अति वर्णाश्रमी चेति, क्रमश्रेष्ठा विचक्षणः।

अर्थ-वेद तथा ब्रह्म को जानने वाले विद्वानों ने पांच प्रकार के उत्तम गुरु बताये हैं। (१) ब्रह्मचारी, (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ, (४) भिक्षुक (संन्यासी) तथा (५) अति वर्णाश्रमी। यह पांचों उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं अर्थात् ब्रह्मचारी की अपेक्षा गृहस्थ, उससे वानप्रस्थ उससे संन्यासी उससे भी गोमुख तथा अवधूत उत्तम हैं।

ऐसा रुद्रयामल तन्त्र में कहा है। पति पत्नी को दीक्षित न करे, पिता पुत्री को न पुत्र को, न भाई-भाई को दीक्षित करे। गणेश विमर्शिनी ग्रन्थ में लिखा है प्रमाद से अथवा

अज्ञान से पिता यदि पुत्र, पुत्री को दीक्षित करे तो वे लोग प्रायश्चित करके दुबारा दीक्षा लें। पिता शब्द से केवल पिता ही नहीं किन्तु नाना भाई आदि आ जाते हैं। अतः प्रायश्चित करके पुनः दीक्षा लें। १०,००० गायत्री मंत्र का जप करे। मत्स्य सूक्त में कहा है। पिता से लिया हुआ मन्त्र शक्ति रहित होता है। किन्तु शिव शक्ति के मन्त्र पिता से लेने में भी कोई दोष नहीं है। योगिनी तन्त्र में कहा है कि शक्ति सम्बन्धित मन्त्र पिता से नहीं लेना चाहिए, किन्तु महातीर्थ में सूर्य चन्द्र ग्रहण में किसी भी प्रकार का मन्त्र पिता आदि से लिया जा सकता है। कोई दोष नहीं है। भगवान् वेदव्यास जी शौनक ऋषि के प्रति वैशम्पायन संहिता में कहते हैं–

ब्रह्मणाकथितं पूर्व वसिष्ठाय महात्मने।
वसिष्ठोऽपि स्वपौत्राय मत्पित्रे दत्तवान् स्वयम्।
प्रसन्नहृदयः स्वच्छः पिता मे करुणानिधिः।
कुरुक्षेत्रे महातीर्थे, सूर्यपर्वणि दत्तवान्॥

अर्थ–हे शौनक जी प्राचीन काल में ब्रह्मा जी ने अपने पुत्र वसिष्ठजी को यह मन्त्र दिया वसिष्ठ जी ने भी अपने पौत्र मेरे पिता पराशर जी को दिया। मेरे प्रसन्न चित्त निर्मल हृदय करुणा सागर पिता जी ने कुरुक्षेत्र महातीर्थ में सूर्य ग्रहण पर मुझे मन्त्र दिया। शास्त्रों में स्त्री और शूद्रों के आचार्यत्व का निषेध किया है–

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव समागमः।
शूद्राद्ज्ञानागमः कश्चित् ज्वलन्तमपि पातयेत्॥

सूतसंहितायामपि-शूद्राणां च तथा स्त्रीणां न गुरुत्वं कदाचन।
योग्यमाद्यं गुरुं त्यक्त्वा, शिष्यः, क्षुद्रक्रियाविदम्॥
गुरुं समाश्रयेदन्यं यः प्रयाति स दुर्गतिम्।
साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया।
सर्वमन्त्रार्थ तत्त्वज्ञा सुशीला पूजने रता॥
गुरुयोग्या भवेत् सापि, कुलटा परिवर्जिता।
स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता, मातुश्चाष्टगुणा स्मृता॥

अर्थ–शूद्र का अन्न, शूद्र का छुआ, शूद्र का लाया हुआ शूद्र से प्राप्त हुआ ज्ञान तेजस्वी को भी पतित करता है। सूत संहिता में भी कहा है–शूद्रों का तथा स्त्रियों का गुरुत्व कभी नहीं हो सकता। जो शिष्य योग्य प्रथम गुरु को छोड़कर क्षुद्र क्रिया जानने वाले दूसरे गुरु का आश्रय करते हैं। वे दुर्गति पाते हैं। किन्तु अगले श्लोकों में सदाचारी, साध्वी, स्त्री की प्रशंसा की है। सती, साध्वी, सदाचारिणी, गुरुभक्ता, जितेन्द्रिया, समस्त मन्त्रों के तत्त्वों को जानने वाली, पूजन में लगी हुई, सुशीला, कुलटा तथा विधवा को छोड़कर गुरु के योग्य कही गई है। ऐसी स्त्री की दीक्षा माता से अष्टगुणी कल्याण कारिणी कही गई है।

यदि किसी ने स्वप्न में मन्त्र किसी से लिया हो, तो जाग कर स्नान करके, सन्ध्यादि कर्म से निवृत्त होकर कलश में प्राण प्रतिष्ठा करे। फिर कुंकुम से मंत्र को बट पत्र पर लिखकर ग्रहण करने से सफलता प्राप्त होती है। अन्यथा निष्फल जाती है। स्वप्न का मन्त्र यदि अशुद्ध हो तो शास्त्र को देखकर ठीक कर ले। यदि गुरुदोष युक्त हो। महापातकी तथा देव निंदक हो, तो ग्रहण किया मन्त्र त्याग देना चाहिए। किन्तु निर्दोष गुरु तथा गुरुमन्त्र त्यागने में यामल तन्त्र में दोष कहा है–

गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्युर्मन्त्र त्यागाद्दरिद्रता।
गुरुमन्त्रपरित्यागद्रौरवं नरकं व्रजेत॥
ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो, मिथ्यावादी विडम्बकः।
स्वविश्रान्तिं न जानाति, पर शान्तिं करोतिकिम्॥
दीक्षा बिना जपस्य दुष्टत्वात्प्रथमं सा निरूप्यते।
दिव्यज्ञानं यतो दद्यात्कुर्यात्पापस्य संक्षयम्॥
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्र वेदिभिः।

अर्थ–योग्य गुरु का त्याग करने से शिष्य की मृत्यु, मन्त्र के त्याग से दरिद्रता, गुरु मन्त्र दोनों का त्याग करने वाला शिष्य रौरव नरक प्राप्त करता है, किन्तु अज्ञानी, मिथ्यावादी, विडम्बक (ठग) गुरु का त्याग करना चाहिए। जिसे स्वयं शान्ति नहीं, जो अपनी शान्ति का उपाय नहीं जानता, वह दूसरे को कैसे शान्त करेगा। बिना दीक्षा के मन्त्र हानिकारक है। अतः दीक्षा कहा है। वह दीक्षा लौकिकी, वैदिकी, तान्त्रिकी तथा

सैद्धान्तिकी चार प्रकार की कही है। चारों वास्तव में आवश्यक हैं। दीक्षा जप-तप का मूल है। दीक्षित जिस किसी आश्रम में रहता है। उसका कल्याण होता है। हे प्रिये! दीक्षा रहित साधक की जपादि की हुई क्रियाएं पत्थर में बीज बोने के समान हैं। अदीक्षित को सिद्धि तथा सद्गति नहीं प्राप्त होती। अतः प्रयत्नपूर्वक दीक्षित होना चाहिए। अदीक्षित मरने के बाद रौरव नरक प्राप्त करता है। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख जप करने से पुरश्चरण हो जाता है। पुरश्चरण करने वाला कम भोजन करे। दुष्ट संग त्याग दे। मन्त्र में निश्चय पूर्ण विश्वास, उत्साह, धैर्य, तत्त्वज्ञान, अल्पाहार, दुष्ट का संग त्यागने से मन्त्र फलीभूत होता है तथा जगह-जगह देश में वास से, बहुत भोजन करने वाला, नियम से जप न करने वाला, दुष्टों का संग करने वाला, चंचल, इनको मन्त्र सिद्ध नहीं होता। वेद पढ़ने में जैसे शूद्र का अधिकार नहीं है वेसे हे कुलेश्वरि अदीक्षितों को अधिकार नहीं है।

मन्त्र लेने के बाद शिष्य अपनी शक्तिके अनुसार गुरुओं को दान, दक्षिणा दे।

पुस्तके लिखितान् मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये।
ब्रह्महत्य समंतेषां पातकं परिकीर्तितम्॥

जो पुस्तक में लिखे मंत्र को देखकर जप करते हैं। उनको ब्रह्म हत्या के समान पातक लगता है।

निश्चयोत्साह धैर्यश्च तत्त्वज्ञानस्य दर्शनात्।
अल्पाशी, त्यक्तसंगश्च षड्भिर्मन्त्रः प्रसिद्ध्यति॥
प्रवासी बहुभक्षी च प्रजपी नियमापहः।
नीच-सङ्गाच्च लौल्याच्च, षड्भिर्मन्त्रो न सिद्ध्यति॥

छः प्रकार से मन्त्र सिद्ध होता है। गुरु, देवता तथा मंत्र में निश्चय बुद्धि, उत्साह धैर्य, तत्त्व ज्ञान दर्शन (तत्त्व साक्षात्कार) कम भोजन करना, दुष्टों का संग त्याग करने से।

प्रदेश भ्रमण से, अधिक भोजन से, नियम रहित जप से, नीच के संग से तथा चंचलता से इन छः प्रकार वालों को मंत्र सिद्ध नहीं होता।

॥ बारहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ तेरहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

मासविचार, दीक्षा मुहूर्त विचार

भैरव तन्त्र सार–मन्त्रारम्भश्च चैत्रेस्यात्समस्तपुरुषार्थदः।
वैशाखे रत्न लाभः स्याज्ज्येष्ठे च मरणं भवेत् ॥१॥
आषाढ़े बन्धुनाशस्स्यात्पूर्णार्थः श्रावणे भवेत्।
प्रजानाशोभवेद्भाद्रे–आश्विने धनसञ्चयः ॥२॥
कार्तिके मन्त्र सिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत्।
पौषे तु शत्रुपीड़ा स्यान्माघे मेधा विवर्धनम् ॥३॥
फाल्गुने सर्वकामाःस्युर्मलमासं विवर्जयेत्।

अर्थ–चैत्र में मन्त्र लेने से चारों पुरुषार्थ देता है, वैशाख में रत्न लाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में बन्धु नाश, श्रावण में सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति, भाद्र में प्रजा नाश, आश्विन में धन वृद्धि, कार्तिक तथा अगहन में मन्त्र सिद्धि पौष में शत्रु पीड़ा, माघ में बुद्धि का विकास, फाल्गुन में सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है। मल मास वर्जित है। **गौतम तन्त्र** के अनुसार कृष्ण मन्त्र दीक्षाचैत्र में कही गई है। क्योंकि अन्य ग्रन्थों में चैत्र की दीक्षा दुखदायी बताई है। आषाढ़ में मन्त्र निषेध है, श्री विद्या के अतिरिक्त विषय में है। श्री विद्या की दीक्षा हो सकती है। क्योंकि योगिनी तन्त्र में ज्येष्ठ की दीक्षा मृत्यु, आषाढ़ में धन सम्पत्ति देती है। पुरश्चरण पद्धति में वैशाख, श्रावण, क्वार कार्तिक फाल्गुन, मार्गशीर्ष में दीक्षा बताई है। अन्य तन्त्र में भी आया है शरदऋतु तथा वैशाख में दीक्षा उत्तम कही है। फाल्गुन, मार्गशीर्ष, ज्येष्ठ की दीक्षा मध्यम है। आषाढ़ श्रवण माघ की दीक्षा कनिष्ठा, चैत्र, पौष भाद्रपद की दीक्षा वर्जित है।

रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत् किल।
आयुरङ्गारकोहन्ति तत्रदीक्षां विवर्जयेत्॥
बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं स्याच्च बृहस्पतौ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशो हानिः शनैश्चरे॥

अर्थ–रविवार को मन्त्र लेने से धन, सोमवार को शान्ति प्राप्त होती है। मंगल आयु की हानि करता है। उस दिन दीक्षा वर्जित है। बुद्धवार सौन्दर्य की, बृहस्पति में ज्ञान, शुक्र में सौभाग्य की प्राप्ति शनि में मन्त्र लेने से यश हानि अतः मंगल शनि छोड़कर शेष पांच दिनों में मन्त्र लेना चाहिए। किन्तु गरुड़तन्त्र में कहा है गुरुवार को मन्त्र लेने से विद्या तथा सुख मिलता है। शक्ति के मन्त्र के लिये रविवार उत्तम है। शिवमन्त्र में गुरुवार रवि तथा सोम प्रशंसनीय है। बुद्धवार में सभी देवता की दीक्षा कल्याणकारी है। किन्तु शनि और मंगल की दीक्षा से मृत्यु प्राप्त होती है। पुरुश्चरण पद्धति में रवि–गुरु–बुध–शुक्र ब्रह्मा की दीक्षा में उत्तम है। ये देवताओं के विशेष दिन कहे गये हैं।

तिथि निर्णयागम कल्पद्रुम से–प्रतिपदा की दीक्षा ज्ञान नाश करती है। द्वितीया में ज्ञान, तृतीया में पवित्रता, चतुर्थी में धन नाश, पंचमी में बुद्धि वृद्धि, षष्ठी में ज्ञानक्षय, सप्तमी में सुखष अष्टमी में बुद्धि नाश, नवमी में शरीर नाश, दशमी में राज्य सौभाग्य की प्राप्ति, एकादशी में पवित्रता, द्वादशी में सर्व सिद्धि, त्रयोदशी में दरिद्रता, चतुर्दशी की दीक्षा से पशु–पक्षियों के जन्म की प्राप्ति, अमावस्या में कृमियोनि, पूर्णिमा में सर्व वृद्धि होती है।

नक्षत्र निर्णय–अश्विनी नक्षत्र में मन्त्र लेने से सुख मिलता है, भरणी में निश्चित मृत्यु, कृत्तिका में दुःख, रोहिणी में मन्त्र लेने से बृहस्पति के सम्मान विद्वान् होता है, मृगशिरा में सुख प्राप्ति आर्द्रा में बन्धुनाश, पुनर्वसु में धन लाभ, पुष्य में शत्रुनाश, आश्लेषा में मृत्यु, मघा में दुःख से छुटकारा, पूर्वाफाल्गुनी में सुन्दरता निश्चय ही प्राप्त होती है, उत्तराफालगुनी में ज्ञान, हस्त में धनी, चित्रा में ज्ञान सिद्धि, स्वाति में शत्रु विनाश, विशाखा में सुख, अनुराधा में बन्धु वृद्धि, ज्येष्ठा में पुत्र हानि, मूल में कीर्ति वृद्धि, पूर्वोत्तराषाढ़ा कीर्ति देने वाली, श्रवण में दुखी, धनिष्ठा में दरिद्रता, शतभिषा में वृद्धि प्राप्ति, पूर्वाभाद्र तथोत्तरा भाद्रपद में सुख प्राप्ति, रेवती में मन्त्र लेने सी कीर्ति वृद्धि होती है।

योग निर्णय, विश्वसार ग्रन्थ से–शुभ सिद्धि–आयुष्मान्–ध्रुव–प्रीति–सौभाग्य–वृद्धि तथा हर्षण ये योग सभी तन्त्रों में कल्याणकारी कहे गये हैं।

करण निर्णय–श्री शंकर जी पार्वती से कहते हैं, हे भाभिनि! सभी तन्त्रों में कौलव–तैत्तिल–बव ये करण शुभ कहे गये हैं।

लग्न निर्णय–वृष, सिंह, कन्या, धन, मीनादि लग्नों में तथा चन्द्र तारानुकूल होने पर दीक्षा लेनी चाहिए। विष्णु मन्त्र स्थिर लग्न में, शिव मन्त्र में चरशक्ति में द्विस्व भाव लग्न, कल्याणकारी हैं।

पक्ष निर्णय–शुक्ल पक्ष की दीक्षा उत्तम होती है। कृष्ण पक्ष में निषिद्धमास तथा दिन को छोड़कर पंचमी तक ली जा सकती है।

विशेष मुहूर्त–विषुवत् में दोनों अयनों के आरम्भ में तथा संक्रान्ति में, गुरु पर्व की दीक्षा उत्तम हैं। आगम कल्प द्रुम में कहा है कि भाद्रपद की षष्ठी, आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, कार्तिक, शुक्ल नवमी, (अक्षय नवमी) मार्ग (अगहन) शुक्ला तृतीया, पौष शुक्ल नवमी माघ श्कुल चतुर्थी, फाल्गुन शुक्ला नवमी, चैत्र में काम चतुर्दशी, वैशाख में अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ में शुक्ला दशमी दशहरा–आषाढ़ शुक्ल पंचमी।

एतानिदेव पर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत्॥

अर्थ–ये तिथियां देव पर्व कही गई हैं। इनमें ली हुई दीक्षा से करोड़ तीर्थों का फल प्राप्त होता है। अन्यत्र भी कहा है, चैत्रशुक्ला त्रयोदशी–वैशाख सुदी एकादशी–ज्येष्ठवदी चौदह–आषाढ़ पंचमी–श्रावण की एकादशी, भाद्रपद की रोहिणी युक्त जन्माष्टमी–दुर्गाष्टमी सभी इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। कार्तिक तथा अगहन की शुक्लानवमी–पौष छठी तथा चतुर्दशी, माघ सुदी एकादशी–फाल्गुन सुदी दशमी ये तिथियां उत्तम हैं। इनके अतिरिक्त योगिनी तन्त्र में दोनों अयनों के आरम्भ में, चन्द्रसूर्य के ग्रहण, सूर्य की संक्रान्ति, युगादि तिथि, महापूजा–दीपावली–शिवरात्रि–जन्माष्टमी–होली कल्याणकारी हैं। गणेश का मन्त्र विशेष कर चतुर्थी को, चौदस को शक्ति विषयक मन्त्र, सोमवती अमावस्या, मंगलवार की चौदस, रविवार की सप्तमी, सैकड़ों सूर्य ग्रहणों का फल देती है। माघ शुक्ला–अष्टमी, रामनवमी ये दोनों तिथियां भी उत्तम कही हैं।

अथवा

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया दीयते यदा।
तदा लग्नादिककिञ्चन्न विचार्य कथंचन॥
सर्वेवारा ग्रहाःसर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः॥
सन्तुष्टे च गुरौ तस्य सन्तुष्टाः सर्वदेवताः।
गुरुं सन्तोषयेद्भक्त्या द्वयमेव तथा भवेत्॥

अर्थ–जब प्रसन्न होकर, गुरुदेव शिष्य को बुलाकर मन्त्र देना चाहे तब लग्नादि का कोई विचार न करें, क्योंकि जिस दिन गुरु सन्तुष्ट हो जाते हैं, सभी वार-ग्रह-नक्षत्र तथा राशियां कल्याणकारी हो जाती हैं।

गुरु जी के सन्तुष्ट होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः शिष्य गुरु को प्रसन्न करे। शिष्य पर गुरु के प्रसन्न होने पर उसको भुक्ति मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाते हैं। मुमुक्षु स्त्रियों के लिए काल सर्वदा उत्तम है। यदि कोई स्त्री मन्त्र लेना चाहे, तो विधवा पुत्र की आज्ञा, कन्या पिता की आज्ञा, पत्नी पति की आज्ञा से मन्त्र ले सकती हैं।

गयायां, भास्करे क्षेत्रे, विरजे, चन्द्रपर्वते।
चत्वरे च मतंगे च तथा कन्याश्रमेषुच॥
न गृहणीयात्ततो दीक्षां तोर्थेष्वेतेषु पार्वति।

इन तीर्थों को छोड़कर (१) गया, (२) भास्कर क्षेत्र, (३) विरजा में, (४) चन्द्रपर्वत पर कन्या कुमारी में चत्वर मतंगाश्रम स्थानों पर-भगवान् शंकर योगिनी तन्त्र में कहते हैं कि मन्त्र ग्रहण न करें। इनके अतिरिक्त सूर्य चन्द्र-ग्रहण तथा महातीर्थों में काल का विचार नहीं करते।

स्थान विचार–मन्त्र सिद्धि की इच्छा वाले को गौशाला, शिव मन्दिर, निर्जन प्रदेश, श्मशान या नदी तट पर मन्त्र लेना चाहिए। गुरु शुक्रास्त तथा मलमास में मन्त्र न ले। किन्तु यदि सूर्य, मेष-वृश्चिक-सिंह राशि में हो तो गुरु शुक्रास्त का दोष नहीं है।

॥ तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ चौदहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अनुबंध चतुष्टयम्

१. अधिकारी–संसार में चौरासी या छियासी लाख योनियों में मनुष्य योनि उत्तम है। शास्त्रीय दृष्टि से संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं–(१) पामर, (२) विषयी, (३) जिज्ञासु या मुमुक्षु, (४) जीवनमुक्त अथवा सिद्ध।

(१) पामर–लोकायतिक चार्वाक आदि आते हैं। जो शरीर को ही आत्मा मानते हैं। उनका कथन है कि शरीर के जन्म के साथ ही आत्मा का जन्म होता है। जैसे-जैसे शरीर बढ़ता है। आत्मा का विकास होता है। शरीर के शिथिल होने पर आत्मा-शिथिल, इसके नाश होने पर नाश यह लोगों का कहना है। जब तक जियो सुख से जियो, स्वर्ग-नरक, पुण्य, पाप, ईश्वर वेद सब मिथ्या हैं। वेदों की रचना अज्ञानी निशाचरों ने की है। इनका वेद, शास्त्र, परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं है। १६ अ० गीता में श्री भगवान् कहते हैं–

आसुरीं योनिमापन्नाः मूढाः जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

अर्थ–हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! वे लोग प्रत्येक जन्म में तमो-प्रधान आसुरी योनि को प्राप्त करते हैं। मुझे प्राप्त न होकर इससे भी अधम सूकर कूकर योनि में जन्मते हैं। इसका अनय शास्त्रों के समान इस गुरुवंश पुराण में अधिकार नहीं है।

(२) विषयी–यह आत्मा परमात्मा को मानते हैं। परलोक ईश्वर तथा वेद में विश्वास रखते हैं। परन्तु पांच विषयों में अत्यन्त आसक्त होने के कारण परलोक तथा शास्त्र की बातें इनको अच्छी नहीं लगतीं। किसी के विशेष दबाव डालने पर नाममात्र के तामसी देवताओं की आराधना करते हैं। कष्टप्रदाराधना करके दुख भोगते हैं।

(३) मुमुक्षु–इनको ईश्वर, वेद, धर्मशास्त्र, गुरु तथा पुनर्जन्म में विश्वास है। आरम्भ में सकाम कर्म उपासना करके, लौकिक कामना पूर्ण होने पर इनका विश्वास दृढ़ हो जाता है, किन्तु बाद में सत्शास्त्रों के पठन पाठन सत्संग करने से विवेक सहित

वैराग्य हो जाने पर अन्तः करण के तीन दोषों को दूर करने के लिए अर्थात् मल-विक्षेप आवरण से छूटने के लिए, निष्काम भाव से कर्म उपासना करते हैं। तीन दोषों में मल का अर्थात् जन्मान्तर का पाप, विक्षेप चंचलता-आवरण पर्दा, ज्ञान को ढंकने वाला। इनसे छूट मुक्ति की इच्छा करते हैं।

(४) जीवन्मुक्त-जो कृतार्थ हो चुके हैं। जिन्होंने कर्मोपासना से अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है। अन्त में विवेक सहित उत्कट वैराग्य हो जाने पर स्त्री, पुत्र, परिवार-धनादि छोड़कर ब्रह्मश्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जा करके, विधिवत् संन्यास लेकर, जीवात्मा परमात्मा की एकता का अनुभव कराने वाले महावाक्यों का तथा प्रस्थानत्रयी का गुरु के द्वारा श्रवण, मनन-निदिध्यासन करके अथवा हठयोग की धारणा, ध्यान, समाधि रूप संयम अर्थात् अंतरङ्ग साधनों द्वारा आत्म दर्शन करके जिन्होंने जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त किया है, उनको जीवन मुक्त कहते हैं।

इन चारों पुरुषों में से श्री गुरुवंश पुराण पढ़ने पढ़ाने में दो का अधिकार नहीं, क्योंकि पापियों को ऐसे ग्रन्थों में श्रद्धा, विश्वास नहीं; विषयी पुरुषों को भोगों में ही आनन्द प्राप्त होता है। उनमें भी श्रद्धा-विश्वास तथा समय का अभाव है। अतः दोनों इस ग्रन्थ के अधिकारी नहीं है। चौथे जीवन मुक्त महात्मा जो देहाध्यास से परे हो चुके हैं। जिन्होंने शीतोष्ण भूख-प्यास-सुख-दुखादि का भान नहीं है। जो ज्ञान की छठी पदार्था-भवानी या सातवीं तुर्यगा में पहुंच कर कृतार्थ हो चुके हैं, उनको कोई कार्य करना शेष नहीं है, ऐसे ब्रह्मकोटि या अवधूतकोटि के महात्मा अधिकारातीत हो जाने के कारण उनको भी इस ग्रन्थ से कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि इस ग्रन्थ के महाफल को चख चुके हैं। अतः तीसरी कोटि के जिज्ञासु या मुमुक्षुओं का ही इसमें अधिकार है। जिनका इष्ट देव के समान गुरुओं में श्रद्धा तथा विश्वास है तथा जो विवेक वैराग्य सम्पन्न हैं। उनको इस ग्रंथ के पढ़ने से वैसे बनने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

२. सम्बन्ध-इस ग्रन्थ के पढ़ने वालों का ग्रन्थ के साथ क्या सम्बन्ध है? यह बताया जाएगा। जिनको इष्टदेव के दर्शन करने की प्रबल इच्छा है। ईश्वर प्राप्ति के समस्त साधन कारण हैं। उनका इस ग्रन्थ के साथ कार्य कारण भाव सम्बन्ध है अर्थात्

गुरुओं के द्वारा बताये हुए अनुष्ठान पूर्वक कार्यभाव सम्बन्ध है। तात्पर्य यह है कि जीव को जन्म-मरण रूपी संसार की प्राप्ति का कारण मूलाविद्या या अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण जीव जन्म-मरण रूपी संसार को प्राप्त न होने पर भी स्वप्नवत् जन्म-मरण को प्राप्त हुआ मानता है। जैसे सोने के पूर्व कोई राजा भोजन करके सुख के साथ राजमहल में सोता है। स्वप्न में देखता है कि दूसरे राजा ने आक्रमण किया। उसको जीतकर लगोटी मात्र शरीर पर रखकर देश निकाला दे दिया। वह वन में भूख-प्यास सर्दी-गर्मी से व्याकुल दुख भोगता है। जब तक उसकी अज्ञान रूपी निद्रा भंग नहीं होती। तब तक उसके दुख का अंत नहीं होता। निद्रा खुलते ही अपने को सोने के पलंग पर राज महल में देखकर प्रसन्न होता है। जैसे राजा को दुख नहीं था। निद्रा दोष से दुख की प्रतीति हुई वैसे ही जीव भी अज्ञान के कारण ब्रह्म स्वरूप को भूल जाता है अथवा उसका ज्ञान रूपी सूर्य अज्ञान रूपी बादलों से ढक जाता है। किन्तु बोध हो जाने पर ब्रह्म स्वरूप का अनुभव करता है। इसी बात को भगवान् गौड़ पादाचार्य जी ने कहा है-

अनादि मायया सुप्तो यदाजीवः प्रवुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतंवुध्यते तदा॥

अर्थ-अनादि अविद्या में सोया हुआ जीव जब जागता है। तब जन्म-निद्रा तथा स्वप्न से रहित एवं तीनों भेदों से रहित अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अज्ञान के कारण ही जीव जीव भाव को प्राप्त न होने पर भी प्राप्त होने के समान अनुभव करता है। यह अज्ञान ही समस्त दुखों का मूल है। इस अज्ञान भ्रान्ति को दूर करना ही जीव का मुख्य प्रयोजन है। यही इस ग्रन्थ का कार्य कारण भाव सम्बन्ध है।

3. विषय-इस ग्रन्थ में सत्ययुग से लेकर अब तक के जो चरित्र प्राप्त हुये हैं, उन समस्त गुरुओं के ज्ञान वैराग्य तपस्या-त्यागमय जीवन से प्रेरणादायक जीवन चरित्र, सिद्धान्त तथा उपदेश इस ग्रन्थ का विषय है।

4. प्रयोजन-समस्त गुरुओं के परम पावन चरित्रों का तथा उनके उपदेश का फल साधन सहित, ज्ञान प्राप्त करना है। क्योंकि क्रिया बिना ज्ञान भार रूप है। अतः सब का

श्रवण मनन करते हुए अपने-अनपे वर्णाश्रमों के अनुसार निष्काम भाव से इष्ट देवता की प्रसन्नता के लिए अभिमान त्याग कर ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म उपासना करके, कारण सहित (अविद्या सहित) आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक-जन्म मरणादि दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति रूप जीवन मुक्ति आनन्द तथा अन्त में तीनों शरीरों के त्याग सहित विदेह कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति इस ग्रन्थ का परम प्रयोजन है। **(इत्यनुबन्ध चतुष्टयम्)**

॥ चौदहवां अध्याय ॥

॥ पन्द्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

निराकार तथा साकार ब्रह्म

माया से कल्पना किये हुए इस संसार में अव्याकृत और व्याकृत, अव्याकृत-विकार रहित बीजस्थानीय, व्याकृत-परिवर्तनशील दो पदार्थ हुए। उनमें व्याकृत पेड़ स्थानीय संसार है। इन्हीं को अन्य ग्रन्थों में अव्यक्त-व्यक्त या अमूर्त-मूर्त नाम से कहा है अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र अखण्ड मण्डलाकार निराकार-निर्गुण ब्रह्म होता है। उसके अतिरिक्त 'नेह नानास्ति किञ्चन' उसके अतिरिक्तकुछ नहीं था। सृष्टि में जो दीखता है, वह माया का विकार अज्ञान कल्पित है। रस्सी में सर्प के समान न होने पर दिखाई देता है। जगत् के प्रलय के बाद भी ब्रह्म ही शेष रहता है। जैसे सिनेमा की दीवार पर दो अढ़ाई गज का लम्बा चौड़ा कपड़ा लगा रहता है। कोरे कपड़े पर कोई वस्तु नहीं रहती। किन्तु जब खेल आरम्भ होता है तो सिनेमा हाल के एक ओर सब के पीछे बैठा हुआ पुरुष बिजली से चलने वाली एक मशीन में चित्र की फिल्म भर कर पर्दे पर विद्युत का प्रकाश डालता है, तब उस मशीन से निकले हुए अनेकों रंग बिरंगे चित्र हंसते, रोते-गाते-खाते-पीते दिखाई देते हैं। अनेक स्थान के दृश्य समुद्र-पर्वत-वन-खेत-बाजार-बगीचे-पशु-पक्षी आदि दिखाई देते हैं। इससे पहले नहीं थे, बीच में दीखते हैं। बाद में भी नहीं रहेंगे, अतः बीच में भी नहीं हैं। क्योंकि छोटे से पर्दे पर पर्वत हवाई जहाज़ आदि नहीं आ सकते। इससे यह सिद्ध है कि बीच में नहीं हैं। ऐसे सिनेमा

की दीवार पर खेलारम्भ होने से पहले बीच में तथा खेल की समाप्ति पर कोई परिवर्तन नहीं होता। वैसे ही सिनेमा की दीवार के स्थान पर कूटस्थ ब्रह्म है। उस पर कूटस्थ ब्रह्म रूपी दीवार पर सफेद पर्दे के समान, सत्त्वगुणी माया का पर्दा पड़ा हुआ है। उस हाल में बैठे हुये पुरुष के समान ईश्वर रूपी पुरुष माया रूपी पर्दे पर सत्व-रज-तम रूपी खेल चलाता हुआ, माया में पड़े हुये चेतन के समान विद्युत रूपी प्रकाश से त्रिगुणात्मका रूपी रील को घुमाते हुए संसार रूपी सिनेमा को दिखाता है। जैसे दीवार में कोई परिवर्तन नहीं होता। वैसे ही कूटस्थब्रह्म में कोई विकार नहीं है अर्थात् जैसे सिनेमा का जगत केवल देखने मात्र के लिए है। उसमें यदि बम्बई वाले बाज़ार का दृश्य दिखाया हो, उस बाज़ार में अनेकों खाने, पीने, ओढ़ने, बिछाने वाली वस्तु रेडियो-टेलीविज़न, बिक रहा हो, उसमें कोई दर्शक यदि कुछ खरीदना चाहे तो खरीद नहीं सकता। केवल देख सकता है। इसी प्रकार सिनेमा के जगत के समान जाग्रत का जगत् मिथ्या है। किन्तु मिथ्या होने पर भी जीव के अज्ञान से वह सत्य सा प्रतीत होता है। निष्कर्ष यह है कि माया के तीन गुणों के अध्यारोप से जगत् की सत्यता प्रतीत होती है। सृष्टि के आरम्भ में माया विशिष्ट ईश्वर ने माया को दासी के समान अपने अधीन करके संकल्प किया, यह मन्त्र पढ़ा "ॐ भूः"। इसके पढ़ते ही पृथ्वी रची। पुनः "ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जन ॐ तपः ॐ सत्यम्" इन मन्त्रों को पढ़कर सात ऊपर के लोक रचे। जैसे एक बीज पृथ्वी में बोने से अनेकत्व प्राप्त करता है। वैसे ही एक से अनेक हो गये। वही ब्रह्म ॐ शब्द के वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ हैं। विलोम क्रम से परम शिव सदाशिव-शिव-विष्णु-ब्रह्मादि अनेक रूपों को प्राप्त हुआ। भगवान् शंकर ही ॐ के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ हैं। भगवान् शंकर के पांच पंचाक्षरी मन्त्र हैं। ॐ पंचाक्षरी है। इसमें अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा तथा बिन्दु यह पांच अक्षर हैं। अ ब्रह्मा, उ विष्णु, म शिव-अर्ध मात्रा सदा शिव, बिन्दु-परम शिव इन पांचों अक्षरों के पांच देवता हैं। जिस समय जगत्-प्रकृति ब्रह्म तीनों होते हैं तो उन्हें शिव कहते हैं। जब जगत प्रकृति में लीन हो जाता है तब सदा शिव कहे जाते हैं। जिस समय जगत् प्रकृति दोनों ब्रह्म में लय हो जाते हैं। तब उनहें परम शिव कहते हैं। इस प्रकार की व्याख्या उपनिषद् में है। इसका विशेष वर्णन प्रणव की व्याख्या में तीसरे परिच्छेद तथा शुकदेव के जीवन चरित्र में किया जाएगा।

शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता में भी 'ॐ' को सूक्ष्म पंचाक्षरी, 'नमः शिवाय' को स्थूल पंचाक्षरी कहा है। उसमें सूक्ष्म पंचाक्षरी की व्याख्या करते हुए अकार के सद्योजात देवता, उकार के वामदेव–मकार के अघोर, अर्धमात्रा के तत्पुरुष तथा बिन्दु के ईशान देवता कहे गये हैं। इसी पुराण की ज्ञान संहिता में भी अगस्त्य ऋषि तथा वामदेव को सम्बोधित करते हुए स्कन्ध स्वामी ने अपनी दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर पांच बार सत्यम् शब्द का प्रयोग करते हुए कहा–

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रव्रवीमि ते।
''सत्यं सत्यं-पुनः सत्यं सत्यं सत्यं न संशयः।
प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तितः॥
श्रुतिषु स्मृति शास्त्रेषु, पुराणेष्वागमेषु च॥''

कैलाश सं अ० १, ५, ६

अर्थ–मैं अपनी दाहिनी भुजा उठाकर शपथपूर्वक कहता हूं। सत्य, सत्य, पुन सत्य, सत्य, सत्य इसमें संदेह नहीं है। वेदों, स्मृतियों, शास्त्रों, पुराणों तथा आगमों में प्रधान रूप से प्रणव के वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ प्रधान रूप से साक्षात् भगवान् शिव हैं।

स्थूल पञ्चाक्षरी–''नमः शिवाय''–इसके पांच अक्षर प्रणव के अकार से 'न' उकार से 'म' मकार से 'शि' अर्धमात्रा से 'वा' बिन्दु से 'य उत्पन्न' हुए। इसका विशेष विवरण आगे किया जाएगा।

पञ्चाक्षरी–(3) कालाय नमः, (4) रूद्रायनमः, (5) वलाय नमः।

॥ पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ सोलहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव में अभेद

हमारे वैदिक सनातन धर्म के सभी ग्रन्थों में ब्रह्मा-विष्णु-शिव में अभेदता कही है। त्रिदेवों की आरती में भी प्रणवाक्षर के मध्ये यह तीनों एक कहे गये हैं। भागवत के चौथे स्कन्ध में कथा आती है कि सती शिरोमणि माता अनुसूया अपने पति अत्रि ऋषि के साथ ऋक्ष पर्वत पर तप के लिए गईं। वहां पर दोनों ने एक पैर पर खड़े होकर सौ वर्ष तक तप किया। केवल वायु सेवन कर अन्त में प्राणायाम द्वारा मन को जीत कर पुत्र प्राप्ति के लिए तप किया, कि हमें पुत्र दें। उन दोनों के अग्निसार प्राणायाम के प्रभाव से अग्नि निकल कर तीनों लोकों को सन्तप्त करने लगी। तब उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर त्रिदेव प्रकट हुए। दम्पती ने गरुड़ पर विष्णु, हंस पर ब्रह्मा, बैल पर बैठे शिव को सामने देखा। विधिवत् दोनों ने उनके चरणों में प्रणाम करके पूजन किया, तीनों के तेज से उनके नेत्र बंद हो गये। दोनों उनकी प्रार्थना करके बोले-हमने तो तुम में से एक को बुलाया है, किन्तु हमारा परम सौभाग्य, जो अब आप तीनों ने दर्शन दिया। तब त्रिदेवों ने कहा हे मुनि श्रेष्ठ! आप जिस परमतत्त्व का ध्यान करते हैं, वहीं हम तीनों हैं। हम शरीर से तीन होने पर भी तत्त्वत: एक हैं। ऐसा कहकर मुनि को वर देकर तीनों अन्तर्धान हो गये। मुनि ने तीनों को पुत्र रूप में मांगा। अत: कालान्तर में ब्रह्मा के वर से चन्द्रमा, विष्णु के वर से दत्तात्रेय, शिव के वर से दुर्वासा का जन्म हुआ। इस प्रसंग से तीनों की एकता सुस्पष्ट होती है।

॥ सोलहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ सत्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिव-विष्णु में ऐक्य

वामन पुराण में कथा आती है कि एक बार देवता असुरों से हारकर भगवान् विष्णु को साथ लेकर कैलाश पर्वतपर गये। वहां शिव पार्वती सहित विराजमान होने पर भी भगवान् विष्णु को छोड़कर और किसी देवता को शिव पार्वती का दर्शन नहीं हुआ। केवल गणों का दर्शन हुआ। भगवान् विष्णु उनकी स्तुति करने लगे। तब देवताओं ने कहा जिनकी आप स्तुति करते हो, वे दोनों यहां नहीं हैं। विष्णु बोले-सामने ही बैठे हैं। देवताओं ने कहा नहीं हैं। भगवान् ने कहा, इनको कहां देखते हो। देवता बोले, बाहर। भगवान् ने कहा कि बहिर्मुख को सदा शिव का दर्शन नहीं होता। उनके दर्शन चाहते हो तो मेरे हृदय में देखो। ऐसा कहकर विष्णु ने विशेष दिव्य दृष्टि दी। तब देवों ने भगवान् के हृदय में शक्ति सहित शिव का दर्शन किया। शिव का दर्शन होते ही भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। अब विष्णु भगवान् को न देखकर देवता घबराये तथा शिव जी से विष्णु दर्शन की प्रार्थना करने पर शिव जी ने भी देवों से यही प्रश्न किया। श्री हरि को कहां देखते हो, देव बोले बाहर। शंकर जी ने कहा, उनका दर्शन मेरे हृदय में करो। तब देवों ने अन्तर्मुख होकर शिव के हृदय में श्रीहरि का दर्शन किया। इस कथा प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि जब तक भक्त योगी या ज्ञानी अन्तर्मुख नहीं होता। उसे इष्ट का दर्शन नहीं होता। शिव तथा विष्णु लक्ष्मी एवं पार्वती चारों परस्पर अभिन्न हैं। यह बात नीचे के कथा प्रसंग से सिद्ध होती है। महाभारत शान्ति पर्व मोक्ष धर्म पर्व में अ० ३४७ के २७वें श्लोक में कहा है-

रूद्रो नारायणश्चैवेत्येकं सत्त्वे द्विधा कृतम्।
लोके चरति कौन्तेय! व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु॥

अर्थ-हे कुन्तिपुत्र! रुद्र तथा नारायण दोनों एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं।

॥ सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अठारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिव विष्णु के अभेद की अन्य कथा—एक बार भगवान् विष्णु क्षीर सागर में सोये थे। स्वप्न में उन्होंने करोड़ों चन्द्रमा के तेज से युक्त त्रिशूलादिकों से युक्त भगवान् शंकर को अपने आगे नाचते देखा। उनको देख कर भगवान् विष्णु उठ गये तथा शिव का ध्यान करने लगे। उन्हें ध्यान में देखकर भगवती लक्ष्मी ने पूछा—हे प्रभो! आप इस प्रकार कैसे बैठे हो? भगवान् ने थोड़ी देर उत्तर नहीं दिया। बाद में बोले—हे देवि! मैंने स्वप्न में शिव का दर्शन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिव ने मेरा स्मरण किया है। चलो—कैलाश में चलकर हम दोनों उनका दर्शन करें। तब दोनों शंकर से मिलने के लिए चल पड़े। उधर शिवलोक में शंकर ने भी भगवान् विष्णु का दर्शन किया। पार्वती के पूछने पर भगवान् शिव ने विष्णु दर्शन की बात कही। शिव पार्वती भी विष्णु दर्शन के लिए चले। आधी दूरी पर विष्णु भगवान् ने देखा कि भगवान् शिव गौरी सहित आ रहे हैं। दोनों को अपार प्रसन्नता हुई। दोनों परस्पर ऐसे मिले जैसे दो प्रेम के सागर मिलते हैं। एक दूसरे को देखकर दोनों के नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगे। शरीर पुलकित हो गया। दोनों मूकवत् खड़े रहे। दोनों ने ही एक दूसरे को अपने-अपने लोक में ले जाने का हठ किया। इतना अपूर्व प्रेम था कि निर्णय करना कठिन था। कौन कहे चलो, समझ में नहीं आता। इतने में नारद जी वीणा बजाते हुए, हरिहर गुण गान करते आ पहुंचे। नारद जी ने चारों को प्रणाम किया। विष्णु तथा शिव ने निर्णय करने को कहा। इनके लोकोत्तर झगड़े का निर्णय करने में असमर्थ हुए नारद जी कुछ नहीं बोल पाये। निर्णय कौन करे? अन्त में दोनों ने उमा से कहा। आप जो निर्णय देंगी, हम दोनों को स्वीकार है। उमा पहले मौन रहीं। अन्त में बोली—

उमोवाच—यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नबसती युवाम् ॥१॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन आत्मैकोऽन्यतनुर्मिथ ॥२॥

या प्रीतिर्दर्शिता देव युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भार्ये आवां पृथङ्नवाम्॥३॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन वेश एकस्य सद्वयोः॥४॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन अपूज्यैकस्य च द्वयोः॥५॥
न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम।
अहेतुकः प्रियोऽ सौ मे स्वकायः प्राणिनामिव॥६॥
स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः।
उभयोरन्तरं नास्ति, घटस्थ जलयो रिव॥७॥
शिवादन्यः प्रियो मे ऽ स्ति भक्तो यः शिवपूजकः।
शिवस्यापूजको लक्ष्मी न कदापि प्रियो मम॥८॥

(वृहद्धर्मपुराण पूर्वखण्ड)

अर्थ–हे नाथ! हे केशव! आप दोनों में जैसी प्रीति है। इस प्रमाण से मैं मानती हूं कि आप दोनों का निवास वैकुण्ठ तथा कैलाश ये दोनों भिन्न नहीं है। हे नाथ! हे केशव! आप दोनों में जैसी प्रीति देखी है। इस प्रमाण से आप दोनों की आत्मा एक शरीर दो हैं। इतना ही नहीं आप दोनों की पत्नियां भी एक हैं दो नहीं। आप दोनों की प्रीति से ऐसा लगता है जो एक से द्वेष करता है वह दोनों से द्वेष करता है। एक की जो पूजा करता है। वह दोनों की करता है। जो एक को पूज्य मानता है। वह दोनों को पूज्य मानता है। आप में जो भेद बुद्धि करता है वह नरक प्राप्त करता है। (१ से ५)

मैं समझती हूं कि आप दोनों मुझे मध्यस्थ बनाकर ठग रहे हैं। अब मैं आप दोनों से प्रार्थना करती हूं कि आप दोनों ही अपने-अपने लोक में चले जाएं। विष्णु यह समझें कि मैं शिव रूप से वैकुण्ठ में जा रहा हूं महेश्वर यह समझें कि मैं विष्णु रूप से कैलाश जा रहा हूं। पद्मपुराण में भी इससे मिलती हुई कथा आई है। उसमें पार्वती के निर्णयानुसार

भगवान् विष्णु शिव रूप धारण करके लक्ष्मी उमा का रूप धारण कर, कैलाश चली गई तथा भगवान् शंकर विष्णु रूप से गौरी लक्ष्मी रूप से वैकुण्ठ में प्राप्त हुए।

इस निर्णय को सुनकर दोनों प्रसन्न चित्त से पार्वती की प्रशंसा करते हुए एक दूसरे का आलिंगन करके, अपने-अपने लोक में चले गये। जब भगवान् विष्णु लक्ष्मी सहित वैकुण्ठ पधारे तब लक्ष्मी जी ने भगवान् के चरण दबाते हुए पूछा हे प्रभो ! आपको सबसे अधिक प्रिय कौन है? तब विष्णु ने कहा-

अर्थ-हे देवि जैसे देहधारियों को देह प्रिय है। इसी प्रकार भगवान् शंकर मुझे प्रिय हैं। एक बार मैं अपने प्रियतम की खोज में निकला, इसी भाव को लेकर जो अपने प्रियतम की खोज करे, वह हमें प्रिय है। थोड़ी देर में शिव जी मिल गये। दोनों की आंखें चार हुईं। एक दूसरे के प्रति पूर्वार्जित विद्या के समान आकृष्ट हो गये।

अर्थ-हे लक्ष्मी वही मैं विष्णु वही शिव हूं। दोनों में दो घड़ों में स्थित जब के समान भेद नहीं है। शिव के अतिरिक्त शिव भक्त मुझे प्रिय है। शिव की पूजा न करने वाला मेरा भक्त मुझे प्रिय नहीं है।

इन कथाओं से शिव द्रोही वैष्णवों और विष्णु द्रोही शैवों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। (कल्याण के शिवांक से)

नोट-जिस स्थान पर हरिहर का मिलन हुआ था। वह आज कल सरयू तट पर दोहरी घाट के नाम से विख्यात है। वहां के लोग कहते हैं कि भगवान् यहां दो रूपों में आकर मिले थे। वे दो रूप शिव-विष्णु के ही होंगे। यह स्थान उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद में जिसका प्राचीन नाम अजमीढगढ़ था। वहीं पर दोहरी घाट नाम का कस्बा है। सरयू के उस पार गोरखपुर की सीमा आरम्भ होती है, जिसका प्राचीन नाम गोरक्षपुर था। यह नगर गुरु गोरखनाथ का बसाया हुआ है।

॥ अठारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ उन्नीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिवलोक या महाकैलाश कहां है

अनेकों पुराणों में विशेष कर काशी–केदार–महात्म्य में, जो कि ब्रह्म वैवर्तपुराण का परिशिष्ट है। उसमें कथा आती है कि इस ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा, विष्णु अपने कर्म से ऊबकर अपना त्याग पत्र लेकर महाकैलाश को गये। मार्ग में सातों ग्रहों–ब्रह्मलोक, सप्तर्षिमण्डल, ध्रुवमण्डल को पार कर ब्रह्मवन को प्राप्त किया। उस वन में अनेकों महाकल्पों के ब्रह्मा जिनमें चारमुखी अष्टमुखी–सोलहमुखी २० मुखी, सौ तथा सहस्रमुखी सेवा से निवृत्त होकर मुक्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञानरूपी तप कर रहे थे। उन वन को पार करके दोनों विष्णुवन को प्राप्त हुये। वहां पर भी अनेकों सेवा निवृत्त विष्णुओं को देखा जो मुक्ति के लिए ज्ञान मय तप कर रहे थे। उसको पार करके रुद्रवन देखा। जिसमें अनेकों रुद्र भी तपस्या कर रहे थे। इन सब को पार करके महाकैलाश के अनेकों स्थलों का दर्शन करते हुए; अनेकों द्वारों से पार होते हुए; शिव दरबार में पहुंचे। दोनों ने प्रणाम करके स्तुति की। शंकर जी ने संकेत में आशीर्वाद देकर परिचय पूछा। विष्णु ने अपने वैकुण्ठ का नाम बताकर अपना नाम बताया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीन पद हैं जैसे राष्ट्रपति–प्रधानमन्त्री पद हैं। उन व्यक्तियों के नाम विशेष होते हैं। व्यक्ति बदलते हैं। पद स्थायी हैं। इस प्रकार त्रिदेव हैं।

जब ब्रह्मा से नाम पूछा तो उन्होंने 'विरञ्चि' नाम बताया। शंकर ने पूछा कि किस ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा हो? ब्रह्मा जी को सुनकर परमाश्चर्य हुआ। वे समझते थे कि एक ही ब्रह्माण्ड है। अपने ब्रह्माण्ड का नाम नहीं बता पाये। विष्णु भगवान् की ओर देखा। मुस्कुराते हुए विष्णु ने कहा–हे महेश्वर! यह रोदसी ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा हैं। इसके अतिरिक्त क्रन्दसी, संहती नाम के ब्रह्माण्ड हैं। जिस ब्रह्माण्ड में मैंने वामन रूप से त्रिविक्रम रूप धारण करके महाराज बलि से तीन पैर पृथ्वी के बहाने त्रिलोकी को नाप लिया था। यह उसी ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा हैं। तब परम शिव ने पूछा। तुम तीनों किस लिये आये हो। क्योंकि मार्ग में इस ब्रह्माण्ड के रुद्र भी साथ थे। वे दोनों को रास्ता बताने गये। ब्रह्मा जी ने कहा मैं सृष्टि रचते हुए ऊब गया हूं। विष्णु भगवान् बोले, मैं भी सृष्टि की

रक्षा के लिए अवतार लेते-लेते ऊब गया हूं। हम दोनों सेवा से निवृत्त होकर आपका भजन करके परम पद प्राप्त करेंगे। आप हम दोनों का त्याग-पत्र स्वीकार करें। परम शिव ने पार्वती की ओर संकेत किया। उन्होंने संकेत से उन दोनों देवों से सामने पड़ी, दो पेटियां लाने को कहा। आज्ञा पाते ही दोनों देवताओं के उठाने पर भी पेटियां नहीं उठीं। तब देवी ने गण को आज्ञा दी। गण ने दोनों पेटियां आगे रख दीं। उसमें से दो कीट निकले, एक पर जल छिड़कते हुए कहा, 'ब्रह्माभव' वह ब्रह्मा हुआ। दूसरे पर जल छोड़कर कहा, 'विष्णु भव' वह विष्णु हो गया। यह लीला देखकर दोनों भय से कांपने लगे। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवती से क्षमा मांगी तथा कहा-कहीं हमें 'कीटो भव' कहकर कीड़ा बनाकर इस पेटी में न रख देना। न जाने कितने महाकल्पों तक इसमें पड़े रहेंगे। तब शिव पार्वती के सामने बड़ी समस्या खड़ी हो गई। पुराने त्रिदेवों को तो उसी ब्रह्माण्ड में नियुक्त कर दिया। अब नये ब्रह्मा विष्णु कहां जाएं, क्या करें? तब देवी ने पेटी से एक और कीड़ा निकाला 'रुद्र भव' कहकर नये रुद्र की रचना की तथा अपने पति शिव की ओर देखने लगीं। इतने में भगवान् शंकर के रोम कूप से एक छोटी सी चिनगारी निकली। वह आकाश में जितनी दूर होती जाती, उतना ही उसका बड़ा रूप होता जाता। आकाश में बहुत दूर जाकर उसने ब्रह्माण्ड का रूप धारण किया। इस प्रकार से नये ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र को, उत्पत्ति, पालन संहार में नियुक्त किया। जितनी देर त्रिदेव शिवलोक में रहे। उन्होंने देखा भगवान् शंकर के रोम कूप से प्रतिक्षण अनन्त चिंगारियां निकलती थीं और प्रत्येक चिंगारी आकाश में ब्रह्माण्ड के रूप में परिवर्तित हो जाती। कोई क्षण ऐसा नहीं गया, जिसमें अनेकों ब्रह्माण्डों में प्रलय होने पर वह छोटी सी चिनगारी के रूप में शिवजी के रोम कूप में लीन न हो जाती हो। शिव शक्ति के सत्य संकल्प के प्रभाव से अनेकों ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति-प्रलय-संहार त्रिदेव सहित लय न होता हो।

निष्कर्ष यह है कि हिमाचल में विद्यमान कैलाश केवल कैलाश कहा जाता है। यह केवल भौतिक कैलाश है, किन्तु शिवलोक महाकैलाश है। यह ब्रह्मा विष्णु के लोकों से ऊपर है।

॥ उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अध्याय बीसवां प्रारम्भ ॥

कथा का तात्पर्य

इस कथा का तात्पर्य ब्रह्मा विष्णु की निन्दा में नहीं है, किन्तु कारण ब्रह्म परम शिव की प्रशंसा में है तथा कार्य ब्रह्म की निन्दा में है।

कारण ब्रह्म–माया विशिष्ट ब्रह्म का सगुण साकार स्वरूप, जो सत्त्वप्रधान माया या प्रकृति को अपने अधीन करके स्वतन्त्र रूप से स्थित है। उसको वेदादि ग्रन्थों में निरपेक्ष ईश्वर, परम ब्रह्म महा विष्णु–परम शिव–महागणेश–महादुर्गा–महासूर्यादि नामों से कहा है। यही जगत का अभिन्न निमित्तोपादन कारण है। आचार्यों का मत है कि जिस तत्त्व या मसाले से जगत बना है, वह भी वही है तथा बनाने वाला भी वही है। जैसे स्वप्न में जीव स्वप्न के जगत के प्रत्येक जड़ चैतन्य वस्तु को रचने वाला अर्थात् क्रिया करने, करवाने वाला, देखने वाला, नगर, ग्राम, मकान, नदी, पर्वत, सागर, रेल, जहाज़, ड्राइवर आप ही बनता है। वह तैजस नाम का अभिमानी जीव ही इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वैसे ही ब्रह्म इस जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है अथवा जैसे मकड़ी जाले को बनाने का तथा बनने का दोनों कारण है। वैसे ही ईश्वर भी इन दोनों का कारण है। वही ईश्वर प्रकृति–महत्तत्व राजस्–तामस्–सात्त्विक तीनों प्रकार का अहंकार सत्त्व–रज–तम, पञ्च तन्मात्राएं, पञ्चमहाभूत, पञ्चमहाप्राण, समष्टि अन्तःकरण, चतुष्टय, इन सब के रूप में ब्रह्म ही है। सर्ग के आरम्भ में इनमें प्रवेश करके जगत् की रचना करता है। प्रलय में लीन कर इनका संहार करता है। ऐसा वेदान्तियों का मत है।

किन्तु अन्य ऋषि आचार्य कहते हैं कि वह परमात्मा प्रकृति के रूप में उपादान कारण है और ईश्वर के रूप में निमित्त कारण है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है। मृत्तिका घड़े का उपादान कारण है कुम्हार निमित्तकारण है। वैसे ही जगत् का उपादान कारण प्रकृति–निमित्तकारण ईश्वर है। वह परब्रह्म त्रिगुणात्मिक अपनी माया को अधीन करे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की रचना करता है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड को रचकर, त्रिदेवों को जन्म देकर, ब्रह्मा को उत्पत्ति, विष्णु को रक्षा, रुद्र को संहार में लगाता है और स्वयं

महेश्वर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के त्रिदेवों का परम शासक है। वही ब्रह्म रूद्राष्टाध्यायी, श्वेताश्वतरोपनिषद्, शिव पुराण, लिंग, स्कन्द पुराण तथा पद्म पुराण की शिव गीतादि ग्रन्थों का परम शिव है। वही परम तत्त्व भागवत तथा विष्णु पुराण का विष्णु है। ब्रह्मवैवर्तपुराण-गर्गसंहिता का कृष्ण है। वही रामायणों के राम तथा तथा ब्रह्मपुराण के ब्रह्मा एक ही तत्त्व को अनेक रूपों में कहा है। जैसे एक लालटेन जिसमें चार रंगों के शीशे लगे हों। उसमें जलने वाला बल्ब का प्रकाश रंग रहित होने पर भी लाल-पीले-हरे-नीले शीशों के कारण चार रंगों का प्रकाश निकालता है। वैसे ही ब्रह्म एक होने पर भी मायोपाधिक होने से अनेक रूपों में दीखता है। वास्तव में एक है।

अब माया पर विचार किया जाता है।

॥ बीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ इक्कीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

माया

माया में दो पद हैं, मा तथा या; मा = नहीं, या = न होने पर जो दिखाई दे। यथा, रस्सी में सर्प न होने पर दीखता है। कहा है-

न सद्रूपानासद्रूपा माया नैवोभयात्मिका।
सदसद्भ्यामनिर्वाच्या मिथ्या भूता सनातनी॥

अर्थ-माया न कारणरूपा है। न कार्यरूपा। न दोनों से युक्त है। किन्तु सद्-असद् कथन से परे मिथ्या तथा सनातनी है। जिसे सत्य या झूठ न कहा जा सके, वह मिथ्या है। सत्य इसलिए नहीं कह सकते कि तत्त्व बोध के अनन्तर नहीं रहती। क्योंकि इसमें "नेह नानास्ति किञ्चन" का उसमें प्रत्यक्ष होता है। निर्विकल्प समाधि में नहीं रहती। झूठी इसलिए नहीं कह सकते। क्योंकि व्यवहार में सच्ची प्रतीत होती है। अतः यह मिथ्या है। वाणी का अविषय होने के कारण अनिर्वाच्या है। सनातनी जन्मादि से रहित है। मिथ्या वस्तु का जन्म नहीं होता।

शंका-जब एक ही ब्रह्म ब्रह्माविष्णु शिवादिरूप में अनेक है तो किसी पुराण में

किसी की निन्दा, किसी की प्रशंसा क्यों की गई? उपनिषदों तथा पुराणों में जिस देवता का उपनिषद् है। उसकी प्रशंसा दूसरे की न्दिा क्यों की गई?

समाधान–रुचियों की भिन्नता का कारण अपने-अपने इष्टदेव में श्रद्धोत्पन्न करने के लिए, उस देव को सर्वोत्तम तथा देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित, उनकी अनन्तता का प्रतिपादन किया है अर्थात् जिस भक्त को जिस देवता का मन्त्र गुरुओं से प्राप्त हुआ है। उसमें अविचल श्रद्धा भक्ति उत्पन्न करने के लिए उसका उत्कर्ष दिखाया है। जैसे–जिस बालक का विवाह हो। उसी के शिर पर मौर बांधा जाता है तथा उसी के गुणगान करते हैं। वैसे ही जिस देवता से सम्बन्धित ग्रन्थ है उसमें उसी का माहात्म्य है।

शंका–यह तो ठीक है। जिसका विवाह हो उसी की स्तुति तथा सम्मान होता है। फिर भी वह पुत्र पिता का पुत्र और बाबा का पौत्र ही रहता है। वह अपने पूर्वजों का पिता या बाबा नहीं होता। किन्तु पुराणों में ऐसा नहीं पाया जाता। शिवपुराण में शिव से ब्रह्मा-विष्णु का जन्म, विष्णु सम्बन्धी पुराणों में विष्णु से, दोनों की उत्पत्ति वैष्णव पुराणों में शंकर जी विष्णु के पौत्र हैं, ऐसा क्यों?

समाधान–पुराणों तथा उपनिषदों में कारण ब्रह्म तथा कार्यब्रह्म के स्वरूप को न समझने के कारण ही विवाद है। कारण के अधीन कार्य है अर्थात् कार्योत्पत्ति-स्थिति-विनाश कारण के अधीन है। जैसे लकड़ी के बने हुए मेज़, कुर्सी आदि का जन्म लकड़ी से है। जब तक लकड़ी है, तब तक मेज है। इनके टूट जाने पर भी मेज कुर्सी जैसे लकड़ी का त्याग नहीं कर सकती, वैसे कारण ब्रह्म को छोड़कर कार्य ब्रह्म स्वतन्त्र नहीं रहता। भाव यह है कि वैष्णव पुराण के विष्णु कारणब्रह्म है और शिव प्रभृति कार्यब्रह्म हैं। इसी प्रकार शैवपुराणों में शिवप्रभृति देवताओँ को कारण रूप से और उनसे उत्पन्न होने वाले देवता कार्यब्रह्म है। ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि कारण कार्य के प्रत्येक परमाणु में विद्यमान है। जैसे खांड के बने खिलौने घोड़े आदि में खांड व्याप्त है। वैसे ही कारणब्रह्म सर्वत्र व्याप्त परिपूर्णाखण्ड मण्डलाकार है। कार्यब्रह्म उसके एक देश काल वस्तु में व्याप्त है। दोनों का परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध है। दैव योग से

जो कारणब्रह्म के नाम-रूप लीलाएं हैं। वही कार्यब्रह्म के नाम रूप तथा क्रियाएं हैं। अतः गुरुमुख से इन ग्रन्थों के श्रवण के छः लिंगों उपक्रमोपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति को समझते हुए पढ़ना चाहिए। तब ग्रन्थों के अवान्तर तात्पर्य तथा महातात्पर्य का ज्ञान होता है, किन्तु वर्तमान काल में यह परम्परा लुप्त हो गई है। अतः अज्ञानी बहिर्मुख लोग अपने आप ग्रन्थ पढ़कर व्यामोह को प्राप्त होते हैं।

कार्यब्रह्म का स्वरूप-काशी-केदार माहात्म्य में आये हुये ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र क्रम से एक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पालन तथा संहार करते हैं। ये तीनों देव कार्यब्रह्म के स्वरूप हैं, किन्तु अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नायक महेश्वर जिनके पास त्रिदेव जाते हैं, कारणब्रह्म का स्वरूप है। जिसे एक ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, किन्तु परम स्वतन्त्र सर्व ब्रह्माण्डेश्वर महेश्वर कारण ब्रह्म हैं। इसी प्रकार से विष्णु पुराण आदिकों के महाविष्णु आदि से त्रिदेव समझना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी मानस में लिखा है कि मनु शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्होंने कई बार शक्तियों सहित ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव का दर्शन किया तथा वर देने का लोभ दिया, किन्तु दोनों विचलित नहीं हुये। लोभ में नहीं आये। अन्त में आदि शक्ति सहित परम तत्त्व स्वरूप विश्ववास भगवान् की आराधना करने लगे। सम्पूर्ण विश्व उनमें वास करने के कारण विश्ववास कहलाये, जिनसे असंख्य त्रिदेव शक्तियों सहित पैदा होते हैं। वही परमात्मा शक्ति के सहित प्रगट हुये। इस प्रसंग में गोस्वामी ने विष्णु के लिये हरि शब्द तथा परात्पर ब्रह्म के लिए भी हरि शब्द दिया है। इसमें पहला हरि शब्द विष्णु के अर्थ में, दूसरा हरि शब्द परात्पर ब्रह्म के अर्थ में है।

भाव है कि जिस ग्रन्थ में जिसकी प्रशंसा है। वह कारण ब्रह्म है। निन्दा कार्य ब्रह्म की है। निन्दीय वस्तु की निन्दा के उद्देश्य से निन्दा नहीं होती, किन्तु इष्ट की प्रशंसा में उसका तात्पर्य है। सोपाधिक कार्य ब्रह्म के नाम, रूप, लीला तथा कारण ब्रह्म की लीलायें एक जैसी हैं। सब को परम तत्त्व एक समझकर भ्रान्ति दूर करनी चाहिए।

॥ इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ बाईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

परम शिव की काल से अनन्तता

भगवान् परम शिव की काल से अनन्ता का वर्णन मत्स्य पुराण में इस प्रकार से हुआ है–

चतुर्युगसहस्राणि दिनमेकं पितामहः।
पितामहः सहस्राणि विष्णोर्घटिकमुच्यते॥
विष्णुरेकसहस्राणि पलमेको महेश्वरः।

अर्थ–एक हजार चतुर्युगी का ब्रह्मा जी का एक दिन होता है तथा एक हजार ब्रह्माओं के बीतने पर विष्णु की एक घड़ी कही गई है। एक हज़ार विष्णुओं के अनन्तर महेश्वर का एक पल होता है।

व्याख्या–मानवी वर्षों से सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्षों का सत्ययुग, बारह लाख छियानवें हजार वर्षों का त्रेतायुग, आठ लाख चौंसठ हजार वर्षों का द्वापर, चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का कलियुग इन चारों का योग ४३,२०,००० हजार वर्ष होता है। इसे एक चतुर्युगी या महायुग कहते हैं। ब्रह्मा जी के दिन में एक हजार चौकड़ी बीत जाती है। इतनी ही ब्रह्मा जी की रात्रि है। ब्रह्मा जी के दिन को सृष्टि और रात्रि को प्रलय कहते हैं। दो हजार महायुगों के ब्रह्मा के दिन-रात्रि को कल्प कहते हैं। एक कल्प में मनुष्यों के आठ अरब चौसठ करोड़ वर्ष बीत जाते हैं। इसी गणना से उनके तीस दिन का महीना, बारह महीनों का वर्ष तथा १०० वर्ष की ब्रह्मा की आयु कही है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में उनकी आयु १०८ वर्ष की कही है। ब्रह्मा जी के दिव्य १०० वर्षों वर्षों में मनुष्यों के एक्कतीस नील, २० खरब, ४० अरब वर्ष बीत जाते हैं। भगवान् विष्णु की आयु में मानवी ९३ पद्म, ३१ नील, २० खरब वर्ष बीत जाते हैं तथा शिव जी की आयु में २२ लाख, 39 हजार, ४०० सौ, ८८ शंख वर्ष बीत जाते हैं।

दैवी मीमांसा भाष्य उत्पत्ति पाद, सूत्र चार में भगवान् शंकर की काल से अनन्तता बताई है।

चर्तुयुग सहस्त्राणि दिनम् पैतामहं भवेत्।

पितामह सहस्त्राणि विष्णोश्च घटिका मता

विष्णो र्द्वादश लक्षाणि कलार्ध रौद्रमुच्यते।

अर्थ–एक हजार चतुयुर्ग का ब्रह्मा का एक दिन होता है। हजार पितामहों की विष्णु की एक घटी होती है। बारह लाख विष्णुओं की शंकर की आधी कला कही है। यही बात शक्ति रहस्य तंत्र में भी कही है। पीछे हमने कल्याण के शिवाङ्क के अनुसार त्रिदेवों की आयु बताई है। यहां पर उपनिषद् अंक के आधार पर तीनों की आयु बताई है। इसमें ब्रह्मा जी की आयु ३१,१०,४०,००,००,००,००० एकतीस नील, दस खरब, चालीस अरब मानवीय वर्ष से; विष्णु की आयु १८,६६,२४,००,००,००,००,००,०० अठारह शंख, छासठ नील, चौबीस पदम वर्ष, भगवान् शंकर की आयु ४४,७८,९६,८०,००, ०००००,०००००००००० चार करोड़, सैंतालीस लाख, नवासी हजार छः सौ अस्सी शंख वर्ष की है। इससे शंकर जी के काल की अनन्ता सिद्ध होती है।

॥ बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ तेईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

परम शिव की सूक्ष्मता तथा व्यापकता

वेद ब्रह्म के विषय में "अणोरणीयान् महतो महीयान्" कहता है अर्थात् वह अणु से भी अणु, महान् से भी महान् है। उसकी सूक्ष्मता का वर्णन करते हुए शास्त्रों में कहा है कि हमारे स्थूल शरीर में ७२ करोड़, ७२ लाख, ७२ हजार, ६७२ नाड़ियां हैं। इन नाड़ियों में से दोनों आंखों से सम्बन्धित साढ़े ३ लाख नाड़ियां हैं। इनके सम्बन्ध में पूज्यपाद महाराज श्री अवधूत स्वामी विद्यारण्य जी महाराज जो कि महातान्त्रिक तथा धुरन्धर विद्वान् होने पर भी अपने को मूर्खानन्द कहते थे। इन्होंने प्राचीन संस्कृत के आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करके इन नाड़ियों के सम्बन्ध में बताया। इनके शिष्य ने अमेरिका रिटर्न्ड अमेरिका से डॉक्टरी पास किया था। उन्होंने ढाई लाख आंख से सम्बन्धित नाड़ियों की खोज की है। एक पुस्तक में इन सब नाड़ियों को दिखाया गया है तथा एक

३ फुट लम्बे चौड़े चार्ट में कौन नाड़ी कहां तक गयी और नाम-काम भी बताये हैं। उपर्युक्त नाड़ियों में से गले के समीप हिता नाम की नाड़ी है। वह सिर के बाल की दस हजार फाड़ के बराबर बारीक है। उस नाड़ी में जब मन स्थित होता है, तब जीव स्वप्न देखता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मन उससे भी सूक्ष्म है, उससे भी सूक्ष्म कारण शरीर है। जो स्थूल सूक्ष्म शरीर का आधार है।

कहा भी है-

बालाग्रशतभागस्य तस्यापि शतधा पुनः।
भागो जीवः स विज्ञेयो सोऽनन्ताय कल्पते॥

अर्थ-बाल के अग्र के सौवां भाग उसका भी सौवां भाग जीव जानना चाहिए। किन्तु वह सूक्ष्म होने पर भी अनन्तता को प्राप्त करने में समर्थ है। इतना तो परमतत्त्व शिव सूक्ष्म हुआ।

महतो महीयान्-वह इतना महानतम है। इस सम्बन्ध में पुराणों में कहा है कि आकाश सहित सम्पूर्ण पृथ्वी साढ़े तीन करोड़ योजन कही है। इससे १० गुणाधिक जल, इससे १० गुणाधिक अग्नि, अग्नि से वायु १० गुणा, वायु से आकाश १० गुणा, आकाश से अहंकार, १० गुणा, इससे महत्तत्त्व १० गुणा, महत्तत्त्व से मूल प्रकृति १० गुणा, इससे सगुण साकार परमात्मा १० गुणा, इससे भी अनन्तगुणा निराकार निर्गुण परमात्मा ब्रह्म है। इसी को छान्दोग्योपनिषद् में भूमा कहा है। 'यद्वैभूमा तत्सुखम्' अल्प में सुख नहीं है। सुखाभास है। इसी को आत्मा, परमशिव कई नामों से कहा है।

॥ तेईसवां अध्याय सम्पूर्णम्॥



॥ चौबीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिवनैवेद्य की तथा पादोदक की ग्राह्याग्राह्यता पर विचार

भगवान् शंकर का चरणोदक तथा प्रसाद लेना चाहिए या नहीं। इस सम्बन्ध में समाज में ऐसी धारणा बन गई है कि शंकर जी का प्रसाद तथा चरणोदक नहीं ग्रहण करना चाहिए। दोनों को शंकर की जंघा से उत्पन्न हुए जंगम ले सकते हैं, किन्तु इस विषय में शिवपुराण, लिङ्गपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, सर्वदेव प्रतिष्ठा प्रकाश, कल्याण का शिवाङ्क तथा संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क, शिव भक्तमाल आदि अनेकों ग्रन्थों के प्रमाण देकर युक्ति तथा तर्क से शिव नैवेद्यादि की ग्राह्यता सिद्ध कई गई है।

भोजन से पहले प्रत्येक द्विजाति तथा संन्यासी आदि को ब्रह्मार्पण करने से पूर्व अन्न दोष की निवृत्ति के लिए यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

अन्नं ब्रह्म रसं विष्णुर्भोक्तादेवो महेश्वरः।
एवं ध्यात्वा द्विजोभुङ्तके अन्न दोषैर्न लिप्यते॥

अर्थ–चार प्रकार का अन्न ब्रह्मा है। छः प्रकार का स्वाद विष्णु है। भोग लगाने वाले भोक्ता शिव हैं। ऐसे ध्यान करके भोजन करने वाला द्विज अन्न दोष से लिप्त नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि भोग लगाने वाले एक मात्र शंकर ही हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में जितने भी जीव हैं। समस्त जीव शिव की कृपा से ही अपने-अपने खाद्य एवं पेय पदार्थ को खाते पीते हैं। शंकर से सब शक्ति प्राप्त करते हैं। संहार के देवता शंकर हैं। भोजन भी संहार क्रिया है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि किसी भी देवी देवता के मन्दिर में ब्रह्मा-विष्णु या उनके अवतार-हनुमान्, भैरव, दुर्गा, महाकाली समस्त देवी-देवता शिवरूप धारण किये बिना भोग नहीं लगाते। वे भोग लगाते समय उस रूप को त्याग कर शिव रूप धारण करते हैं। इसलिए मन्दिरों के पुजारी भोग लगाते समय पर्दा करते हैं। इससे भी सिद्ध हुआ कि प्रत्येक देवता का प्रसाद शिव का ही भोग है। अतः शंकर के भोग से कोई बच नहीं सकता। यदि कोई कहे कि शंकर जी के लाट में चढ़ी हुई वस्तु या जल नहीं ग्रहण करना चाहिए। उनके मस्तक पर जो गंगाजल भी चढ़ा है। अतः उनको गोमुख से लेकर गंगा सागर तक कहीं भी स्नान आदि नहीं करना चाहिए

देवताओं का पूजन जल पान गंगाजल से न करो तथा गंगाजल से जिन प्रान्तों की सिंचाई होती है, उनसे पैदा होने वाले अन्न, फल का सेवन न करें। इतना ही नहीं भागवत के आठवें स्कन्ध में समुद्र मन्थन के बाद अमृत निकलने पर जब विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर अमृत देवताओं को पिलाया। असुरों को मोहित किया। भगवान् अन्तर्धान हो गये। तब शिव की प्रार्थना से भगवान् ने उनको मोहिनी रूप दिखाया। उस रूप को देखकर शंकर के तेज से खनिज–सोना–चांदी आदि उत्पन्न हुए। उनका उपयोग किसी को नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये शंकर से उत्पन्न हुए हैं। अतः स्त्री–पुरुषों को सोने, चांदी के मुकुट, पन्ना पुखराज आदि नहीं पहनने चाहिए। अतः शिव प्रसाद से घृणा करने वालों को इनका सेवन नहीं करना चाहिए। इन समस्त युक्तियों तथा तर्कों से सिद्ध होता है कि शिव जी का जल तथा प्रसाद का परित्याग करके कोई प्राणी जीवन धारण नहीं कर सकता। अब अनेकों शास्त्रीय प्रमाणों से इस बात को सिद्ध किया जाता है। शिव जी के प्रसाद ग्रहण करने की प्रशंसा शिव पुराण, विद्येश्वर संहिता के २२ अध्याय में इस प्रकार की–

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः।
भुक्त्वा तु शिवनैवेद्यं पुण्यान्यायान्ति कोटिशः ।।४ ।।
अलं याग सहस्त्रेण ह्यलं यागार्बुदैरपि।
भक्षिते शिव नैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।५ ।।
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरण पूर्वकम् ।।६ ।।
न यस्य शिव नैवेद्ये ग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम् ।।९ ।।
शिव दीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गाना नैवेद्य भक्षयेच्छुभम् ।।११ ।।

अर्थ–शिव प्रसाद के देखने मात्र से पाप दूर हो जाते हैं तथा सेवन से करोड़ों पुण्य प्राप्त होते हैं। १००० तथा करोड़ों यज्ञादिकों से क्या लाभ है। भक्त एकमात्र शिव प्रसाद के भक्षण से शिव सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ।।४ से ५ ।।

प्राप्त किये हुए शिव नैवेद्या को प्रसन्नचित्त से सिर झुकाकर शिव का स्मरण करते हुए लेना चाहिए ॥८ ॥

जिसकी शिवप्रसाद ग्रहण करने की इच्छा नहीं होती वह पापियों में महापापी नरक को प्राप्त करता है ॥९ ॥

शिव दीक्षा से युक्त भक्त को शंकर के सभी लिङ्गों का नैवेद्य महाप्रसाद समझकर ग्रहण करना कल्याणकारी है।

जिन पुरुषों को शिव मन्त्र की दीक्षा प्राप्त है उनको सभी लिंगों के नैवेद्य भक्षण की आज्ञा है। किन्तु जिनको अन्य देवता की दीक्षा है उनके लिए निषेध है। शिवपुराण, विद्येश्वर संहिता अधायय २२ में कहा है।

अन्य दीक्षा युतां नृणाम् शिव भक्तिरतात्मनाम्।
श्रृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिव नैवेद्यभक्षणे ॥१२ ॥
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रस लिङ्गे तथा द्विजः।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुर सिद्ध प्रतिष्ठते ॥१३ ॥
काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भो नैवेद्य भक्षणम् ॥१४ ॥
ब्रह्महाऽपि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वं पापम् प्रणश्यति ॥१५ ॥

अर्थ–शिव भक्ति में लगे हुए, अन्य देवताओं की दीक्षा से युक्त मनुष्य के लिए, हे ब्राह्मणों! शिव नैवेद्य के भक्षण के विषय में निर्णय देता हूं। सुनो! शालिग्राम की उत्पत्ति स्थान वाले स्थान में उत्पन्न हुए शिवलिङ्ग में, पारे के, पत्थर के, चांदी के, सोने के बने शिवलिंग में, देवता तथा सिद्धों द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग में, केशर, स्फटिक, मणि, रत्नों से बने तथा बारह ज्योतिर्लिङ्गों में शिवप्रसाद का भक्षण, चान्द्रायण व्रत के समान महाफलदायी है। यदि ब्रह्म हत्यारा भी पवित्र होकर शिवजी का प्रसाद ग्रहण करे तो तुरन्त सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥१२ से १५ तक ॥

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि जिनको शिवमंत्र की दीक्षा नहीं है। वे भी ऊपर से कहे हुए लिङ्गों का प्रासद ले सकते हैं, किन्तु मिट्टी के शिवलिंग में जिन लिङ्गों का नाम श्लोक में नहीं आया है, उनका नैवेद्य भक्षण न करें। क्योंकि शिव दीक्षा वाले सभी लिङ्गों का प्रसाद ले सकते हैं। मिट्टी आदि के शिव लिङ्ग में चण्ड का अधिकार है। जिसमें चण्ड का अधिकार है, वह प्रसाद वर्जित है।

शिवलिङ्गों के स्नान जल की महिमा

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रि:पिवेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥

(शि०पु० वि० अ-१२ श्लोक १८)

अर्थ-विश्वेश्वर के स्नान जल को मस्तक पर जो धारण करता है, उसे योगशास्त्र में कहा हुआ देव दुर्लभ जालन्धर वन्ध का फल प्राप्त होता है।

उपर्युक्त शास्क्षीय वचनों से सिद्ध होता है कि शिव नैवेद्य एवं जल ग्रहण करना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत भी शास्त्रों में वचन मिलते हैं। अत: उनके विरोधाभास का निराकरण करते हुए विचार किया जाता है। जैसे वेद के पूर्व भाग में कर्मोपासना का वर्णन, पूर्व मीमांसा का उत्तर मीमांसा वेदान्त दर्शन से विरोध प्राप्त होने पर दोनों दर्शनों का निर्णय किया जाता है। इन दोनों विरोधी वचनों का निर्णय धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु, वाचस्पति मिश्र-शूलपाणि-रघुनन्दन भट्टाचार्यादि विद्वानों ने किया है। निर्णय सिन्धु का निर्णय आजकल के आचार्य मानते चले आये हैं, किन्तु मीमांसा पद्धति को न जानने वाले अज्ञानी भ्रम में पड़ जाते हैं। अत: मीमांसा शैली से निर्णय किया जाता है। शास्त्रों में सामान्य तथा विशेष दो प्रकार के वचन पाये जाते हैं। सामान्य वचन सर्व साधारण के लिए, विशेष वचन विशेष व्यक्ति के लिए। सामान्य वचन विशेष से बाधित हो जाता है। कर्म मीमांसा के वार्तिक कार कुमारिलभट्ट ने कहा-

सामान्यं विधिरस्पष्ट: संह्येत विशेषत:।

अर्थ-अर्थात् सामान्य विधि का विशेष विधि से संकोच करे। जैसे धर्मशास्त्र पति की मृत्यु के बाद पत्नी को सती होने की आज्ञा देता है। पुराणों में भी सती होने की विधि

है। पति के शोक से दुखी पत्नी सती होने से पहले यदि मायिके में हो, तो माता–पिता की और ससुराल में सास–ससुर की आज्ञा लेकर विधिवत सौभाग्यवती वृद्धाओं को वायन (वैया) दान करके अग्नि होत्र करके अग्नि देवता की प्रार्थना करे। हे अग्नि देव! आप सब प्राणियों के अन्त:करण में निवास करते हैं। पति के शोक से दुखी मैं आग में प्रवेश करती हूं। आप मुझे पतिलोक ले जाएं। ऐसी प्रार्थना करके चिता की परिक्रमा करे। शरीर पर नीला वस्त्र धारण करके मुख में मोती और मणियों का फल रखकर पति के वियोग में वह स्त्री सन्तप्त सती हो। किन्तु वर्तमान काल में शास्त्रीय बात को न जानने के कारण जनता में विपरीत प्रचार होता है। राजनैतिक नेता तथा शास्त्रज्ञ विद्वान् भी इन बातों को नहीं मानते। विरुद्ध आचरण की प्रेरणा देते हैं। हमारे देश में अनेकों सतियां हुई हैं। उनमें सती देवी–वृन्दा तथा चित्तौड़ की अनेक स्त्रियां हैं, किन्तु प्रत्येक स्त्री सती नहीं होती, पहले परीक्षा होती है, पहले धर्म दीपक जलाया जाता है। उसकी लौ को अंगुलियों से छूने से जिसका हाथ नहीं जलता। उसको ही सती होने की शास्त्र ने आज्ञा दी है। यदि वह सुयोग्या नहीं है, तो ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, वैधव्य धर्म का पालन करे तथा शिर के बाल बनवाये क्योंकि पति की मृत्यु के बाद यदि स्त्री सिर के बाल बांधती है, तो पति सहित वह नरक को प्राप्त होती है। एक समय भोजन करे। सफेद वस्त्र धारण करे। पान तम्बाकू न खाये। श्रृंगार न करे। तपोमय जीवन बिताये। यह हमारी भारतीय परम्परा है। परन्तु मुसलमान तथा अंग्रेज़ी के शासन में शास्त्रीय ज्ञान से रहित जबरदस्ती स्त्रियं को जलाने लगे। उन पर रोक लगाना चाहिए। सरकार सती प्रथा पर रोक लगाती है, किन्तु निर्धन, कन्याएं धनाभाव के कारण जो विवाह नहीं कर पाते, दहेज बहुत मांगते हैं। ऐसी बालिकाएं दुखी होकर हत्या कर लेती हैं। यदि किसी का जैसे–तैसे विवाह हो भी जाए, तो वर पक्ष की मांग पूरी न होने के कारण वे जला दी जाती है अथवा आत्म–हत्या कर लेती हैं। इसकी ओर जनता या नेताओं का ध्यान नहीं जाता। किन्तु जो शास्त्रानुसार, पातिव्रत्य धर्म से प्रेरित होकर पति का वियोग सहन न करने के कारण यदि कोई सती होती है, तो हाहाकार होता है। हजारों युवतियां मरवाई जाती हैं। उस पर कोई ध्यान नहीं देता। अत: इस देश के नेता–सरकार को, इस प्रथा को रोककर कलंक दूर करना चाहिए, परन्तु महादुर्भाग्य है कि इस ओर ध्यान न देकर

हमारे परम पूजनीयानन्त श्री विभूषित पुरीपीठाधीश्वर जगत् गुरु शंकराचार्य स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी ने जब सती धर्म का समर्थन किया, तब सरकार तथा जनता उनके पीछे पड़ गई। महाभारत में कहा है ७ के द्वारा पृथ्वी धारण की गई है–

गोभिः विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।

यतिभिः दान शीलैश्च सप्तभिः धार्यते मही॥

अर्थ–गौ–ब्राह्मण–वेदों, सतियों, सत्यवादियों, संन्यासियों तथा दानवीरों इन सात के द्वारा पृथ्वी धारण की जाती है, किन्तु इस कराल कलिकाल में इन सातों पर प्रहार हो रहा है। निर्णय सिन्धु में कहा है–

सहानुगमनंनास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।

या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुब्रजेत्॥

सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्।

न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणीशोककर्षिता॥

न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी।

अन्यासां नारीजातीनां धर्मोऽयं प्रशस्यते॥

पृथक् चितिं समारूह्य न विप्रा गन्तुमर्हति।

अर्थ–पति के शोक से दुखी ब्राह्मणी स्त्री ब्रह्मा जी की आज्ञा से पति के साथ सती न हो। जो ब्राह्मणी पति के साथ सती होती है, वह आत्म–हत्या करने के कारण अपने सहित पति को स्वर्ग नहीं ले जाती। वह आत्म हत्यारी स्त्री ब्रह्मगति को नहीं प्राप्त करती।

ब्राह्मण पत्नी अलग चिता बनाकर सती नहीं हो सकती। इससे यह सिद्ध होता है कि वह पति की चिता के साथ ही जले। अन्य वर्ण की स्त्रियों के लिए पृथक् चिता बनाकर जलने का विधान है अथवा पति के साथ है। अन्य स्त्री जाति के लिए यह प्रशंसनीय विधि है।

इस सिद्धान्त में शंकर भट्ट ने मीमांसा बालप्रकाश नाम के ग्रन्थ में तथा वेद भाष्यकार–माधवाचार्य जी ने पराशर भाष्य में तथा कमलाकर भट्ट ने निर्णयसिन्धु में

कहा है। जिससे सामान्य वचनों का विशेष वचन से विरोध का परिहार होता है। यह मीमांसा शैली शिवप्रसाद तथा शिवचरणोदक के सम्बन्ध में भी है।

किसी नैवेद्य को ग्रहण नहीं करना चाहिए। शिव पुराण विद्येश्वर संहिता, २१ अध्याय २२वां श्लोक

अग्राह्यं शिव नैवेद्यं पत्रं पुष्पं तथा जलम्।
शालिग्राम शिला संगात् सर्वं याति पवित्रताम्।
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
मह्यं निवेद्य सकलं कूपे एवविनिक्षिपेत्।
विसर्जितस्य देवस्य गंधं पुष्पं निवेदनम्,
निर्मल्यं तत् विजानीयात् वर्ज्य वस्त्र विभूषणम्।
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत्
(स्कन्द पुराण)

धरा हिरण्य गोरत्नं ताम्ररौप्यां शुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्।

अर्थ–शंकर जी का पत्र, पुष्प, जल ग्रहण के अयोग्य है, किन्तु शालिग्राम शिला के सम्बन्ध से सब पवित्र हो जाता है। यह शिवजी का वचन है। पदम पुराण में शिवजी कहते हैं, मेरा प्रसाद पत्र पुष्प, फल, जल अयोग्य है। मुझे निवेदित करके कुएँ में डाल दें। सूत जी स्कन्ध पुराण में कहते हैं, शंकर जी का विसर्जित किया हुआ, गन्ध पुष्पादि, निर्माल्य को त्याज्य है, किन्तु वस्त्र आभूषण त्याज्य नहीं है। अतः शिवजी को पत्र पुष्पादि अर्पण करके शिवजी के गण विशेष चण्ड आदि को अर्पण कर दें। निर्णय सिन्धु में कहा है। पृथ्वी, सोना, गऊ, रत्न, तांबा, चांदी आदि को छोड़कर शेष चण्डेश को निवेदित कर दे। इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि भूमि को छोड़कर शिव पर चढ़े हुए पत्र पुष्प आदि निर्माल्य अग्राह्य है। अतः चण्डेश को समर्पित कर दें। किन्तु केवल पार्थिव शिवलिङ्ग के सम्बन्ध में है, किन्तु यदि उस लिङ्ग के साथ शालिग्राम शिला का स्पर्श हो, तो ग्राह्य है। इसलिए शिवपुराण में कहा है–

चण्डाधिकारो यत्राऽस्ति तद्भोक्तव्यम् न मानवैः

जिसमें चण्ड का अधिकार है, वहां का प्रसाद मनुष्यों द्वारा नहीं ग्रहण करना चाहिए। परन्तु शिव दीक्षा वालों को तथा शालिग्राम शिला के स्पर्श से चण्ड का अधिकार नहीं रहता। उसका प्रसाद सब ग्रहण कर सकते हैं। किसमें चण्ड का अधिकार है। इसका निर्णय किया जाता है।

शिव निर्माल्य के निषेध का परिहार

नीचे लिखे शिव लिङ्गों में चण्ड का अधिकार नहीं है।

वाण लिङ्गेच, लौहे च, सिद्ध लिङ्गे स्वयं भुवि।
प्रतिमासुचसर्वासु न चण्डाधिकृतो भवेत्॥

शिव० वि० अ० २२

लिङ्गे स्वायंभुवे वाणे, रत्नजे रस निर्मिते।
सिद्ध प्रतिष्ठिते चैवन चण्डाधिकृतो भवेत्॥

निर्णय सिन्धु

अर्थ–वाणासुर द्वारा स्थापित प्रतिष्ठित नर्मदेश्वर में, लोहे के सिद्धों द्वारा स्थापित लिंग में, स्वयं प्रकट लिङ्ग में, सबी देवाकार मूर्ति में, रत्न में, पारे के लिंग में, देवताओं द्वारा स्थापित लिंग में, चण्ड का अधिकार नहीं होता। क्योंकि मंदिरों में अधिकतर नर्मदेश्वर व संगमरमर पत्थर के लिंग रहते हैं। अतः इनके भोग तथा पादोदक में शंका नहीं करनी चाहिए। सुमेरुतंत्र में भी कहा है।

वाण लिंगे न चाशौचम् न च निर्माल्य कल्पना।
सर्व वाणाऽर्पितम् ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा॥
ग्राह्याग्राह्य विचारोऽयं वाण लिंगे न विद्यते।
तदर्पितं जलं पत्रं ग्राह्यम् प्रसाद संज्ञया॥

अर्थ–वाण लिंग में अपवित्रता तथा निर्माल्य की कल्पना नहीं करनी चाहिए। इसलिए ग्राह्य अग्राह्य का विचार त्याग कर उसमें अर्पित पत्र, पुष्प फल को प्रसाद समझ कर ग्रहण करना चाहिए।

निर्माल्य का अर्थ

निर्माल्यम् निर्मलम् शुद्धं निर्मलत्वादनिन्दितम्।
तस्मादभोज्यं निर्माल्यं प्रकृतेरशिवात्मकैः।

अर्थ–निर्माल्य का अर्थ निर्मल शुद्ध है। अर्थात् जो अन्तःकरण को शुद्ध करे उसे निर्माल्य कहते हैं। निर्मल होने के कारण अनिन्दित निर्माल्यकहलाता है। शिव निर्माल्य ग्रहण नहीं करना चाहिए, अपूज्य हैं। कल्याण नहीं करता यह मूर्खों का वचन है। ऋषि देवता आज्ञा नहीं देता।

सिद्ध लिङ्ग तथा स्वयम्भू लिङ्ग

सिद्धों द्वारा स्थापित लिङ्ग सिद्ध लिंग है तथा स्वयं प्रकट हुआ लिंग स्वयंभू कहलाता है। इनका प्रसाद लेने में कोई दोष नहीं है। इतिहास पुराण प्रसिद्ध लिङ्ग इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। कहा भी है। लिङ्ग के ऊपर चढ़ी हुई वस्तु हे मुनीश्वरो! ग्रहण के योग्य नहीं है, किन्तु जो वस्तु लिङ्ग के स्पर्श से रहित बाहर है वह पवित्र एवं ग्राह्य है। इन शास्त्रीय वचनों से सिद्ध होता है कि ऊपर कहे हुए नर्मदेश्वर आदि लिंगों का प्रसाद ग्रहण करने में दोष नहीं है। केवल पार्थिव लिङ्ग का प्रसाद नहीं लेना चाहिए। उसमें चण्डका अधिकार है। यदि लें तो प्रायश्चित अवश्य करना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है, उस प्रसाद में विष्णु का प्रसाद मिलाकर देने पर चण्ड का अधिकार नहीं रहता। उसके खाने में किसी को दोष नहीं है।

अग्राह्य शिव निर्माल्य के ग्रहण करने पर प्रायश्चित करे। इसका प्रायश्चित (प्रायश्चित तत्त्व विवेक) (तिथि तत्त्व निर्णय) तथा (निर्णय सिन्धु) में लिखा है–

स्पृष्ट्वा शिव निर्माल्यं सवासाप्लुतः शुचिः।

अर्थ–शिव का नैवेद्य स्पर्श करने वाला वस्त्र सहित स्नान करने से शुद्धहोता है। इसका अर्थ यह नहीं कि शिव प्रसाद को छूना दोष है, किन्तु अशुद्धावस्था में छूने में दोष कहा है। शुद्ध अवस्था में छूने वाले को महापुण्य की प्राप्ति होती है। यह बात स्कन्ध पुराण में शिव वाक्य से स्पष्ट हो जाती है।

श्लोक–निर्माल्यो यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति।
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः॥
नरके पच्यते घोरे तिर्यग् योनौ च जायते।

अर्थ–मेरे नैवेद्य को जो अपवित्र होकर मर्यादा भंग करके भक्तिपूर्वक धारण करेगा, वह मनुष्य पाप से युक्त घोर नरक में पकाया जाता है। बाद में पशु पक्षी की योनि में जन्म लेता है। इस वचन से यह सिद्ध होता है कि जो भक्ति के अभिमान में शास्त्र मर्यादा के विपरीत चलता है, वह पवित्र नहीं होता। वह दण्डनीय होता है। अतः भक्तों को इस बात का ध्यान देना चाहिए।

॥ चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ पच्चीसवां अध्याय प्रारम्भ॥

नर्मदेश्वर की अपेक्षा शालिग्राम में शिवपूजा का विशेष महत्त्व

यदि किसी के पास नर्मदेश्वर शिवलिङ्ग न हो, परन्तु शालिग्राम हो तो उपनीत द्विजातियों द्वारा उसमें की गई शिवपूजा विशेष फलदायिनी होती है। सूत संहिता में कहा है–

शालिग्राम शिलालिङ्गे यः करोति ममार्चनम्।
तेनार्पिता कार्तिकेय युगानामेकसप्ततिः॥

अर्थ–शंकर जी स्वामी कार्तिक से कहते हैं शालिग्राम शिला में जो मेरी पूजा करता है उसको ७१ चतुर्युगी तक पूजा का फल प्राप्त होता है।

शिव के चरणोदक लेने का फल शिव का चरणोदक ग्रहण करने वाले को गंगा-यमुना-नर्मदा-पुष्कर-प्रयास-वाराणसी-गोदावरी-गोमती-द्वारिका-बदरीविशाल-सिन्धु-सेतुबन्ध रामेश्वर-ब्रह्माण्ड की समस्त नदियों तथा तीर्थों के स्नान से भी करोड़ गुना फल शिव के चरणोदक पीने से प्राप्त होता है।

॥ पच्चीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ छब्बीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

प्रकीर्ण विषय

संसार में प्राय: देखा जाता है कि विवाह के कुछ दिनों बाद अपने क्रोधी स्वभाव के कारण स्त्रियां जन्म पर्यन्त दुखी रहती हैं। शास्त्र में कहा है कि–

स्त्री नश्यति कोपेन तप: क्रोधेन नश्यति।
गावो दूर प्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमा:॥

अर्थ–स्त्री क्रोध से नष्ट होती है। क्रोध से तप नष्ट होता है। गऊएं दूर चली जाने पर तथा द्विजोत्तम शूद्र के अन्न से नष्ट हो जाते हैं। शिव भक्तों में महाराज श्री नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, सगर तथा युयुत्सु, महिलाओं में चित्रा, सावित्री, लक्ष्मी, सीता, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती, मेनका, सती, पराशर की माता दृषद्वती, (दृषन्ती) स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री आदि स्त्रियों ने शिव पूजन किया। यह सभी सौभाग्य से युक्त रहीं। इसलिए जो लोग स्त्री को शिव पूजन में अधिकार नहीं बताते, वे गलत हैं।

लिंग शब्दार्थ–कुछ लोग लिंग शब्द का अर्थ गुप्तेन्द्रिय करते हैं जो कि ठीक नहीं शास्त्र में आया है–

आकाश लिङ्गमित्याहु: पृथ्वी तस्यपीठिका।
आलय: सर्वभूतानां लयाल्लिङ्गमुच्यते॥

अर्थ–आकाश को लिंग कहते हैं। पृथ्वी पीठिका जलहरी है। सब प्राणियों का गृह होने से उसे लिंग कहा है अथवा सब प्राणि उसमें लीन होते हैं अत लिंग कहते हैं अथवा सब प्राणि उसमें लय होते हैं, इसलिए उसे लिंग कहते हैं ब्रह्मसूत्र में भी "आकाशस्तल्लिङ्गात्" आकाश उसका लिंग होने से। शंकर भगवान् की सावयव मूर्ति में भक्तिपूर्वक सौ वर्ष तक पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है वह एक दिन की शिवलिंग पूजन से मिलता है। यह बात शिव रहस्य में कही गई है।

वर्ण भेद से लिंग पूजन का फल–वर्ण भेद से लिंग पूजन पारे का लिंग ब्राह्मणों की सभी कामनाओं को देता है। वाण लिंग (वाणासुर के कुण्ड में प्राप्त होने वाला शिवलिंग क्षत्रियों को महाराज्य देता है। सोने का लिंग वैश्यों को महाधन देता है। पत्थर का शिवलिंग शूद्रों की महाशुद्धि करता है।

युगभेद से लिंग पूजन

सत्ययुग में मणि का लिंग, त्रेता में सोने का, द्वापर में पारे का, कलियुग में पार्थिव (मिट्टी) का लिंग उत्तम है। पद्मपुराण में कहा है कि सधवा स्त्रियां पार्थिव शिवलिंग की विशेष पूजा करें। परन्तु विरक्त विधवाओं को पारे के शिवलिंग की विशेष पूजा करनी चाहिए। गृह में रहने वाली विधवा स्फटिक के शिवलिंग का पूजन करें। किन्तु रजस्वला स्त्रियों को सूतक या पातक में पूजन नहीं करना चाहिए। उतने समय तक मानसिक पूजन करें। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि शिवलिंग का पूजन स्त्रियां कर सकती हैं। किसी के पासपूजन की वस्तु न हो। तो जल से भी कर सकती हैं। गन्ध से किया हुआ शिवपूजन सौ गुणा फल देता है। उससे भी सौ गुणा पञ्चगव्य से, उससे भी सौ गुणा देसी गौ के दूध से तथा उससे भी हजार गुणा कपिला गौ के दूध से, उससे सौ गुणा उसी के घी से पूजन फल देता है। शंकर जी के पूजन में शंख का जल वर्जित है। शूद्र के द्वारा, स्त्री द्वारा तथा बायें हाथ से लाये जल से या दूसरे देवता के लिए लाए जल से, शिव पूजन न करें। विल्वपत्र अमावस्या–चतुर्थी–नवमी–चौदस–सोमवार–बुद्धवार को तोड़ना वर्जित है। यदि तोड़ता है तो नरक की प्राप्ति होती है। उसको शिव–शीश भंजन का पाप लगता है। यदि विल्वपत्र न मिलें तो बासी सूखे भी चढ़ाये जा सकते हैं अथवा दूसरे के द्वारा चढ़ाये हुए, विल्वपत्र धोकर पुनः चढ़ाये जा सकते हैं। माली के घर १ महीने तक तुलसीपत्र, ४० दिन तक बेलपत्र, तीन दिन तक कमल का पुष्प बासी नहीं होता। गंगाजल भी वर्षों बासी नहीं होता। जातीपत्र (जावित्री) इसका पत्र या फल, कुंकम तथा सुगन्धित पुष्पों से शंकर जी का सदैव पूजन करना चाहिए। बर्फीले पहाड़ों में यदि विल्वपत्र न मिलें तो एक वर्ष के पुराने विल्वपत्र से या चूर्ण से भी पूजन हो सकता है।

देवताओं का पूजन कैसे करें?

पद्मपुराण में कहा है कि फूल के मुख को मुख के साथ जोड़कर चढ़ायें, तुलसी बेल पत्रादि उल्टा चढ़ायें, फल शंकर जी के सम्मुख चढ़ायें। चोरी की हुई पूजन-सामग्री से, फल पत्रादि से, पूजन करने से कोई देवता प्रसन्न नहीं होता। स्वयं तोड़कर बेलपत्र चढ़ाने से अधिक लाभ होता है। पूजन-सामग्री किसी से मांगनी नहीं चाहिए।बायें हाथ से पूजन सामग्री लेकर देवता पर न चढ़ावे, पुरुष सिले वस्त्र पहनकर पूजन न करें। ऐसा करने से पूजा निष्फल होती है। हजार धतूरे के पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है वह एक बैंगन के फूल से। हजार बैंगन के फूल के बराबर एक अपामार्ग का फूल होता है। हजार अपामार्ग के फूल के बराबर एक नीले कमल का फूल है। पहले चढ़ी हुई पूजन सामग्री उतारकर तब पूजन करें। अंगूठा तथा तर्जनी से पहले सामग्री उतारें।

तुलसी दल मात्रेण यः करोति शिवार्चनम्।
कुलैकविंशतिमुद्घृत्य हि सादरम् शिवलोके महीयते।

जो केवल तुलसी दल मात्र से शंकर जी का पूजन करता है। वह इक्कीस पीढ़ियों को शिव लोक में ले जाता है।

प्रातः शिवार्चने देवि दशकार्याः प्रदक्षिणाः।
मध्यान्हे द्वादशाथैकादश सायं हि सादरम्।

अर्थ-हे देवि! प्रातःकाल की पूजा में दश परिक्रमा, दोपहर के पूजन में बारह तथा सायंकाल के पूजन में ग्यारह परिक्रमा करनी चाहिए। यह परिक्रमा आधी-आधी करें।

किसी भी देवता को समर्पित की हुई वस्तु, देवनिमित्त आया हुआ धन, नैवेद्य, समर्पित की हुई वस्तु, चण्ड के अधिकार में आई हुई वस्तु, मूर्ति से बाहर डाली गई वस्तु, छः प्रकार का निर्माल्य कहा गया है। देवता के नाम अर्पित किया हुआ धन, मकान-जमीन, जायदाद, दास-दासी, सोना-चांदी, रत्न आदि देव द्रव्य हैं। देवता के लिए संकल्पित किया हुआ पत्र, पुष्प, फल आदि नैवेद्य कहा जाता है। तीन प्रकार का निर्माल्य कहा गया है। शंकर जी के धन की चोरी करने वाला नरक में जाता है।

शिव जी को चढ़ाई हुई अथवा भोग लगाई हुई माला निवेदित वस्तु कही गई है। इनको ग्रहण करने वाला दोषी पाप का भागी होता है अर्थात् शिव का भोग प्रसाद समझकर लेना चाहिए जो सभी पापों को दूर करता है, किन्तु संकल्प जल छोड़कर अर्पण की हुई वस्तु, किसी देवता को अर्पण की हुई वस्तु, ग्रहण करने में दोष है। देवलोक से प्राप्त हुई वस्तु निवेदित है। इसके सेवन से पाप नष्ट होते हैं। शिवलिंग से उतारकर बाहर फेंकी हुई सामग्री में पिशाचों का अधिकार है। वह अग्राह्य है। बाहर डाली हुई वस्तु भी शिव की विशेष भक्ति वाले ले सकते हैं, उसमें चण्ड का अधिकार नहीं है। सामान्य भक्ति में चण्ड का अधिकार है। साधारण भक्त को यह प्रसाद नहीं लेना चाहिए। इति प्रकीर्ण विषयाः।

॥ छब्बीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ सत्ताईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

रुद्राक्ष एवं भस्म धारण विधिः

वैदिक सनातन धर्म में भस्म रुद्राक्ष की बड़ी महिमा आई है। दुराग्रही लोग इसकी निन्दा करते हैं। वे अर्ध नास्तिक हैं। उनके लिए शास्त्र की विधि नहीं है। परन्तु साधक भक्तों के लिए है। वृहज्जावालोपनिषद् में कहा गया है–

तेनाधीतम् श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुड्रं भस्मना धृतम्॥

जिस ब्राह्मण ने मस्तक पर भस्म धारण किया है, उसने सब अध्ययन कर लिया तथा सुन लिया, सबका अनुष्ठान कर लिया अर्थात् वह कृतार्थ हो गया। जिसने वर्णाश्रम का त्याग कर दिया है, सभी क्रियाएं लोप कर दी हैं। वह एक बार भी त्रिपुण्ड्र धारण करने से पूजित होता है। जो मनुष्य भस्म धारण का त्याग करके कर्म करते हैं, उनको करोड़ों जन्मों में भी मोक्ष नहीं होता। इसका यह भाव नहीं है कि वर्णाश्रम का त्याग करके केवल भस्म धारण करने से पूजनीय हो जाएगा, परन्तु जब भस्म धारण करने मात्र का यह फल है तो जो वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला है, विहित कर्मों

का कर्त्ता है। वह कैसे पूजनीय नहीं होगा? अवश्य होगा अर्थात् समस्त वेद विहित कर्मों को करते हुए, भस्म रुद्राक्ष के धारण कराने में शास्त्र का भाव है। जहां-जहां पुराणों में भस्म की निन्दा हुई है, वह चिता भस्म की है, यज्ञादि की नहीं।

साधक शौच स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर संध्या पूजन करने से पहले भस्म धारण करे। प्रात:काल की संध्या में जल मिला करके, दोपहर की संध्या में चन्दन में मिलाकर, सायंकाल की संध्या में सूखी भस्म धारण करे।

ॐ अस्य श्री विभूति धारण मंत्रस्य पिप्पलायन ऋषिः गायत्री छन्दः श्री सदाशिव देवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः, नमः शिवाय इति कीलकम् विभूति धारणे विनियोगः।

इसको पढ़कर जल छोड़ें। फिर ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं हवाइदम् भस्म। मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति।

इन मंत्रों को पढ़ते हुए, दाहिने हाथ से भस्म लेकर बायें हाथ पर रखकर, दाहिने हाथ से भस्म को ढककर ये मंत्र पढ़ने चाहिएं। फिर भस्म में जल मिलाकर सात बार हथेली पर ॐ लिखें तथा नीचे लिखे हुए मंत्रों को पढ़ते हुए शंकर जी का ध्यान करें।

ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि, सद्यो जाताय वै नमो नमः। भवे, भवे नाति भवे भवस्वमां भवोद्भवाय नमः ॥१॥

ॐ वाम देवाय नमो, ज्येष्ठाय नमः, श्रेष्ठाय नमो, रुद्राय नमः। कालाय नमः कलविकरणाय नमो, बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः, सर्व भूत दमनाय नमो-मनोन्मनाय नमः ॥२॥

ॐ अघोरेभ्योऽथघोरभ्यो, घोर घोर तरेभ्यः, सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो, नमस्तेऽस्तु, रुद्ररूपेभ्यः ॥३॥

ॐ तत् पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्र प्रचोदयात् ॥४॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम्, ईश्वरः सर्व भूतानाम्, ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति, ब्रंह्मा शिवो मेअस्तु, सदा शिवो ॐ ॥५॥

इन पांच मंत्रों को पढ़ते हुए, दाहिने हाथ से भस्म को ढक करके अभिमंत्रित करे, तत्पश्चात् आगे दिये हुए मंत्रों को पढ़ें।

ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः मानो वीरान्रुद्र भामिनो व्वधी र्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे।

इन मंत्रों के पढ़ने के बाद में–

ॐ अं नमः मूर्ध्नि इस मंत्र से सिर पर लगाये।

ॐ उं नमः इति ललाटे,

ॐ मं. नमः इति ग्रीवायां, इन दोनों मंत्रों से ललाट और ग्रीवा में लगायें।

ॐ नमः शिवाय। इस मंत्र से सारे अंगों में भस्म लगायें।

इस विधि से भस्म धारण करने में उपनीत द्विजातियों का ही अधिकार है तथा जो मंत्र का शुद्ध उच्चारण कर सकते हों, वे इस विधि से धारण करें। यदि शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते तो विद्वान् गुरुओं से सीखें। स्त्री तथा शूद्र भी भस्म धारण कर सकते हैं, किन्तु वे शिवाय नमः इस मंत्र से अभिमंत्रित करके धारण करें या बिना मंत्र के धारण करें। कम पढ़े अनुपनीत द्विजाति पंचाक्षरी मंत्र से धारण कर सकते हैं, किन्तु उल्टे क्रम से शिवाय पहले नमः बाद में कहें। **(इति भस्म धारण विधि)**

रुद्राक्ष धारण विधिः

एक बार की बात है। भगवान् शंकर एक सहस्रदिव्य वर्ष तक समाधि में रहे। उसके बाद जब नेत्र खोले तो उनके नेत्रों से आंसू गिरे। वही महारुद्राक्ष वृक्ष के रूप में परिणत हुआ। रुद्राक्ष प्रत्येक व्यक्ति धारण कर सकता है। पर धारण करने वाला जितेन्द्रिय सत्यवादी हो। लहसुन, प्याज, मांस, मदिरा इत्यादि अभक्ष्य, अपेय पदार्थों का सेवन न करे। युवा, व्यभिचार, लोभादि का त्याग करे तथा शास्त्रानुसार वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले को ही शास्त्रोक्त फल प्राप्त होता है। मनमाना आचरण करने वाले को फलीभूत नहीं होता। इसके धारण करने से सहस्रों वर्षों के पाप नष्ट होते हैं। दर्शन से लाखों गुणा फल मिलता है। इसकी माला से सभी देवताओं के सभी मन्त्र जपे जा सकते हैं। आंवले के बराबर रुद्राक्ष उत्तम, बेर के बराबर–मध्यम, चने के बराबर

कनिष्ठ, अपने वर्ण के अनुसार रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। ब्राह्मण सफेद-क्षत्री लाल, वैश्य पीला, शूद्र काला धारण करें। यदि अपने वर्ण का रुद्राक्ष न मिल पाये तो सफेदादि धागों में पिरो लेना चाहिए, जिस रुद्राक्ष में अपने-आप छिद्र हो, वह उत्तम है। मनुष्य द्वारा मध्यम है। कीड़े वाला, कई छेदों वाला, टूटा-फूटा, बिना काटों का तथा बिना जोड़े हुए, छः प्रकार का रुद्राक्ष त्याग देना चाहिए। असली रुद्राक्ष की पहचान सोने की कसौटी पर घिसने से यदि स्वर्ण जैसे रेखा हो तो असली, नहीं तो नकली जानना चाहिए। जल में छोड़ने से डूब जाए तो असली। तैरता रहे तो नकली। परन्तु कच्चा रुद्राक्ष भी डूबता नहीं है, तैरता रहता है। तांबे के दो बड़े पैसों के बीच दबाने से नाचने लगे तो असली, न नाचे तो नकली। रुद्राक्ष को रेशमी धागे में पिरोना चाहिए। मुख से मुख जोड़ें, फिर गांठ लगाये। अपने जप माला में स्वयं गांठ नहीं लगानी चाहिए, जपने की माला एक सौ आठ मणिओं की, नवां सुमेरू होता है। गांठ लगाने के बाद माला में प्राण प्रतिष्ठा करके चैतन्य करना चाहिए। तीन के चैतन्य होने पर मन्त्र फलीभूत होता है। (१) मन्त्र चैतन्य, (२) माला चैतन्य, (३) देवता हो करके जपने वाला भी चैतन्य होकर जप करें।

अनेक प्रकार की मालाओं का माहात्म्य

१. कमल के बीज की माला–रुद्राक्ष, शंख, मोती, स्फटिक, रत्न, सोना, विद्रुम, चांदी, कुश के मूल की माला गृहस्थों के लिए उत्तम है। उंगली की माला की अपेक्षा पुत्र जीव की माला से जप १०० गुणा श्रेष्ठ है। शंख की माला से सहस्त्र गुणा, प्रवाल, मणि तथा रत्नों से किया गया जप सहस्त्र गुणा, स्फटिक तथा मोती की माला से लाख गुणा, पद्माक्ष से दस लाख गुणा, सोने की माला से करोड़ गुणा, कुश की ग्रन्थि की माला से शतकोटि गुणा, रुद्राक्ष से किया जप अनन्त गुणा फल देता है। पद्माक्ष की माला शत्रु नाशक है। कुशग्रन्थि की माला पापों का नाश करती है। पुत्र जीव की माला पुत्र तथा सम्पत्ति देती है। प्रवाल की माला विपुल सम्पत्ति देती है। त्रिपुर मंत्र तुलसी की माला से, हस्तिदन्त की माला से गणेश मन्त्र का जप करना चाहिए। जप में सुमेरू लंघन करने से जप निष्फल जाता है। गोमुखी से जप करें तर्जनी अंगुली न लगावें। परन्तु शत्रु

उच्चाटन में अंगुष्ठ तर्जनी का प्रयोग ठीक रहता है तथा मध्यमा के योग से किया गया जप मंत्र सिद्धिदायक है। आलस्य में माला यदि हाथ से छूट जाए तो आचमन करके १०८ मन्त्र अधिक जप करें।

आसन नियम

काम्य कर्म में रक्त कम्बल का आसन, ज्ञान प्राप्ति के लिए काला मृगचर्म, मोक्ष सिद्धि में व्याघ्र चर्म, मंत्र सिद्धि में कुशासन उत्तम कहा है। पृथ्वी पर बिना आसन के जप करने से दुख प्राप्ति, लकड़ी के पाटा आदि पर बिना कुछ बिछाये जप करने से दुर्भाग्यता, बांस के आसन से दरिद्रता, पत्थर पर जप करने से व्याधि, तृणासन पर जप करने से यश हानि, पत्तों पर जप करने से चित्त विभ्रम, अकेले वस्त्र बिछाकर जप करने से जप, ध्यान, तप की हानि होती है। अत: गीता के अनुसार पहले कुशा, फिर मृगचर्म, फिर वस्त्र का आसन बिछायें। तब जप करें, बिना पुरश्चरण के मन्त्र सिद्ध नहीं होता। पुरश्चरण रहित जप निर्जीव शरीर के समान व्यर्थ है। अत: विद्वान् गुरु की आज्ञा प्राप्त करके, उत्तरायण, शुक्ल पक्ष में, चन्द्र तारा शुद्धि में पुरश्चरण आरम्भ करे।

जप विधि

पवित्र स्थान, नदी तट, पर्वत की गुफा या चोटी, समुद्र तट, पवित्र वन में, बगीचा में, बेल, तुलसी, पीपल, आंवला, गोशाला, जल में, देव मन्दिर तथा अनुकूल स्थान पर जप करे। घर की अपेक्षा वेदशाला में 100 गुणा, गोशाला में लक्ष गुणा, देव मन्दिर में करोड़ गुणा, शिव के समीप अनन्त गुणा फल देता है। आतंक रहित देश में, तीर्थ में, सुभिक्ष में, बैठकर जप करें।

भक्ष्याभक्ष्य नियम

पुरश्चरण करने वाला साधक हविष्यान्न, जौ, कन्द-मूल फल तथा जिस देश में जो वस्तु सुलभ हो उसका सेवन करके जप करें। अगस्त्य संहिता में हविष्यान्न में गौ दुग्ध, दही, गुड़ रहित पंचगव्य, सफेद तिल, मूंग, कन्द, नारियल, केला, आम, आंवला, कटहल, हरीतकी, यह सभा पदार्थ गिनाये गये हैं।

मधु, नमक, क्षार, तेल, पान, तम्बाकू, बीडी, सिगरेट, चाय काफी आदि नशीले पदार्थ, कांस्य पात्र में भोजन आदि त्याज्य हैं। साधक निश्चित समय पर, निश्चित संख्या में, निश्चित स्थान पर नियम से जप करें। पृथ्वी पर शयन, ब्रह्मचर्य, मौन, देव पूजा स्तुति प्रतिदिन, नैमित्तिक कर्मानुष्ठान, गुरु सेवा तथा गुरु देव में पूर्ण विश्वास जप में श्रद्धा आदि नियमों का पालन करने से मंत्र सिद्ध होता है। स्त्री, शूद्र, पतित, ब्रात्य (समय पर जिसका विधिवत् उपनयन न हुआ हो) नास्तिक आदि से जप काल में बातचीत न करें। झूट न बोलें। जप, हवन, पूजन आदि में न बोलें। अनुष्ठान काल में नृत्य, गीत, वाद्य देखना व सुनना त्याज्य हैं। साबुन-तेल आदि का प्रयोग न करें। सिले वस्त्र पहनकर जप न करें। एक वस्त्र से जप न करें। जप में छींक, अधोवायु, जम्भाई आदि आने पर प्राणायाम करके, सूर्य दर्शन करके तथा आचमन करके जप करें। जप में जल्दबाजी न करें। अशुद्ध हाथ से, लेटकर या चलते हुए जप न करें। जप में बिल्ली, मुर्गा, कुत्ता, सारस, शूद्र, गधा, बंदर का दर्शन हो जाए तो आचमन करके, दाहिना कान छूकर स्नान करके तब जप करें।

जप के अनन्तर दशांश हवन, दशांश तर्पण तथा दशांश ब्राह्मण भोजन करावें। हवन के अभाव में हवन संख्या का चौगुणा जप ब्राह्मणों के लिए, छः गुणा क्षत्रियों के लिए, आठ गुणा वैश्यों तथा स्त्रियों के लिए करें। ऐसा सनत् कुमार संहिता में कहा है। यदि इतना करने में असमर्थ हों तो योगिनी हृदय में हवन संख्या का दूना ब्राह्मण के लिए तथा तिगुना शेष तीन वर्णों के लिए विहित है। स्त्री तथा शूद्र स्वयं हवन न करके ब्राह्मण द्वारा करावें।

यदि इतने पर भी मंत्र सिद्ध न हो तो महामन्त्रानुसार द्रावण, ग्रन्थन, बोधनं, वश्यं, पीडनं, शोषणं दहन करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। इनकी विधि निम्न प्रकार है-

द्रावण प्रयोग-वरुण के 'वं' बीजमंत्र से युक्त मूल मंत्र चक्र के बीच में लिखकर, कर्पूर, कुंकुम, गोरोचन, मनःशिला, खश आदि से लिखे मंत्र को पात्र में रखकर ऊपर लिखे पदार्थों से पूजन करके दूध, घी, मधु में जल मिलाकर मंत्र को स्नान, पूजा आदि करके जप करने से मंत्र सिद्ध होता है। **ग्रन्थन**-इसकी विधि यह है कि मंत्र जप से पूर्व मंत्र का प्रथम अक्षर फिर नाम का प्रथम अक्षर इसी प्रकार क्रमशः नामाक्षरों तथा

मंत्राक्षरों को मिलाकर 108 बार जप करने से मन्त्र सिद्ध होता है। इसके बाद मूलमंत्र का जप करें। **बोधनम्**–मूल मंत्र को वाणी के 'ऐं' बीज मंत्र से सम्फुटिक करके मूल मंत्र का जप करें। यथा–रां रामाय नमः मंत्र में आदि अन्त में 'ऐं' बीज लगाकर जप करें। यह बोधन क्रिया है। **वश्यम्**–भोजपत्र पर लाल चन्दन, देवदारू, हल्दी, कस्तूरी, मनः शिला आदि की स्याही से मूल मंत्र लिखकर गले में धारण करके जप करें। तब मंत्र सिद्ध होता है। **पीडनम्**–मन्त्र अधर उत्तर भाव से आक के दूध से लिखकर, मंत्र के पदों तथा अक्षरों का जप करके (विपरीत क्रम से) अधरोत्तर भाव से देवता का ध्यान करके, पैर से यन्त्र को ताडित कर अधर उत्तर पठित मंत्र से आहुति दें। **अथ पोषणम्**–वाला मंत्र तृतीय 'सौः' बीज से सम्पुटित करके मधु गौ दुग्ध से भोजपत्र पर लिखकर धारण करें।

अथ शोषणम्–यज्ञ की भस्म से वायु के बीज 'यं' सहित मूलमंत्र को लिखकर कंठ में धारण करें। **विदर्भणं यथा–आदौ मन्त्राक्षर द्वन्द्वमेकं नामाक्षरं ततः। एवं पुनः पुनः प्रोक्तो विदर्भो मन्त्र वित्तमैः।** विदर्भण के तत्त्व को जानने वालों ने कहा है कि आरम्भ में दो मन्त्राक्षर तथा एक नामाक्षर इसी क्रम से मन्त्र को लिखने का नाम विदर्भण है। जैसे किसी का राम नाम हो और मन्त्र के आरम्भ में वायु की बीज मंत्र हो। तो दो बार यंयं यं रां यं यं रां यं यं मा यं यं यं यं यं नं यं यं मः यं यं इति। दहनम्–पलाश के बीज के तेल से अग्नि वीज रं से मंत्र के एक एक अक्षर को मात्रा तथा वर्णों से सम्पुटित करें। मंत्र विद्या में विशेष रूप से कहा है। कुल (कुण्डलिनी) सिद्धि के लिए पहले १०८ मूल मंत्र का जप करें फिर मालाओं से सम्पुटित करके (बीच-बीच में अक्षर लिखें) पूरा मंत्र पढ़ें। यही बोधन है अथवा प्रणव मंत्र से (ॐ) मूल मंत्र को आदि अंत में सम्पुटित करके जप करने से दुष्ट मंत्र भी सिद्ध हो जाता है। विस्तार से दीक्षा प्रकाश तथा दीक्षा प्रकाशिका में देखा जा सकता है।

माला प्राण प्रतिष्ठा विधि

रुद्राक्ष-तुलसी-चन्दनादि किसी भी प्रकार की माला हो, उसमें गांठ लगाने के बाद रविवार को सूर्योदय से पूर्व ही पीपल के नव पत्ते डंडी सहित तोड़े ८ छोटे ९वां

बड़ा। नित्य कर्म के अनन्तर पंचगव्य से धूप दीपोपचार के अनन्तर पुरुष सूक्त तथा सद्यो जातं प्रपद्यामि आदि पांच मन्त्रों से जो कि भस्ण धारण की विधि में दिये जा चुके हैं। इन पांचों मन्त्रों से एक मणि पर पंचगव्य छोड़ता हुए एक-एक मणि में पांचों मंत्रों को पढ़ते हुए सुमेरु सहित स्नान कराने से माला चैतन्य हो जाती है। उस माला से किया हुआ जप निश्चय ही फलदायी होता है। जप माला के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी माला धारण की जा सकती है। शिखा में एक मणि, शिर में तीस या ४० मणियों की माला, गले में ३६ या ३२ का अधिक विधान है। ३३वां सुमेरु क्योंकि मेरुदण्ड के आरम्भ में गर्दन पर्यन्त ३२ गांठ होती हैं। अतः गले में ३२ मणियों की माला धारण करनी चाहिए। दोनों भुजाओं में १६, कलाइओं में १२, यज्ञोपवीत के समान ५० या १०८ का यज्ञोपवीत की तरह धारण करना चाहिए। ५-७ लड़ों की माला गले में धारण करें। इनके अतिरिक्त किसी के मत से मुकुट-कुण्डल-कर्णफूल के समान धारण करें इसको करधनी के समान भी धारण कर सकते हैं। सोते, जागते प्रत्येक स्थिति में रुद्राक्ष होना चाहिए। कुल मिलाकर एक हजार का दानों का शृंगार उत्तम ५०० का मध्यम ३०० का कनिष्ठ कहा है। विद्वान् पुरुष ॐ ईशान सर्व विद्यानां-इस मन्त्र से गले में ॐ तत्पुरुषाय-इस मन्त्र से हृदय में, ॐ अघोरेभ्य:-इस मन्त्र से हाथों में धारण करें मन्त्र ऊपर दिये जा चुके हैं। इसमें मन्त्र ऊपर लिखे न पढ़ सकें तो द्विजाति "ॐ नमो भगवते रुद्राक्षाय" इस मन्त्र से सभी अंगों में रुद्राक्ष धारण कर सकते हैं। स्त्रियां तथा शूद्र ॐ न लगायें "भगवते रुद्राक्षाय नमः" बोलें।

रुद्राक्ष एक से लेकर १४ मुख तक का होता है। इसका फल नीचे दिया जाता है-

रुद्राक्ष जाबालोपनिषद् में शंकर जी भुशुण्डि ऋषि से कहते हैं, कि हे ऋषि श्रेष्ठ, एकमुखी रुद्राक्ष परब्रह्म का स्वरूप है। इसको धारण करने वाले जितेन्द्रिय को अग्नि नहीं जला सकती। अग्नि स्तम्भन कर लेता है। दो मुखी रुद्राक्ष गौरी शंकर का स्वरूप है। इसके धारण करने वाले पर अर्धनारीश्वर भगवान् प्रसन्न होते हैं। तीन मुखी त्रिविध अग्नि का स्वरूप है। उसके धारण करने पर अग्नि देव प्रसन्न होते हैं। चार मुखी दाना चतुर्मुख ब्रह्मा का स्वरूप है। उस पर ब्रह्मा जी प्रसन्न होते हैं। पंच मुखी दाना पंचब्रह्म मन्त्रों का स्वरूप है। इसके धारण करने पर शिव प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होने पर

नर हत्या से शिव मुक्त कर देते हैं। छः मुखी दाना स्वामी कार्तिकेय का स्वरूप है। उसके धारण करने पर महाऐश्वर्य तथा उत्तम स्वास्थ्य मिलता है। ज्ञान-धन की भी शुद्धि इससे होती है। सात मुखी रुद्राक्ष देवी का स्वरूप है। इसके धारण करने से अतुल लक्ष्मी तथा निरोगता प्राप्त होती है। इसको निरन्तर धारण करने से पुरुष महाज्ञानी और पवित्र हो जाता है। अष्ट मुखी रुद्राक्ष अष्ट मात्राओं तथा अष्ठ वसुओं का स्वरूप है। वह गंगा जी को प्रिय तथा अष्ट वसु उससे प्रसन्न हो जाते हैं। नवमुखी दाना दुर्गा का स्वरूप है इसके पहनने से नवदुर्गा प्रसन्न होती है। दस मुखी दाना यमराज का स्वरूप है। उसके दर्शन मात्र से शान्ति प्राप्त होती है। फिर उसके धारण करने से शान्ति में संदेह नहीं रहता। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष ११ रुद्रों का स्वरूप है। उसके धारण करने से रुद्र स्वरूप की प्राप्ति तथा सौभाग्य प्राप्त होता है। बारह मुखी दाना महाविष्णु का स्वरूप है। वह महाआदित्यों के समान रूपवान् होता है। तेरह मुखी दाना सभी सिद्धियों को देता है। चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। परमेश्वर प्रसन्न होता है। १४ मुखी रुद्राक्ष निरोगता देता है।

इन सभी प्रकार के रुद्राक्षों को सूर्य-चन्द्रग्रहण में, मेष संक्रान्ति या अन्य संक्रान्तियों में अमावस्या, पूर्णिमा, दोनों पक्षों की पंचमी, दशमी तिथियों को धारण करने से तुरन्त सर्व पाप से विमुक्त हो जाता है। रुद्राक्ष के पेड़ के मूल में ब्रह्मा, तने में विष्णु, शाखा में रुद्र, उसके बिन्दु-मुख में सब देवता रहते हैं। रुद्राक्ष का नाम लेने से १० गो दान का फल मिलता है। हाथ में लेकर स्पर्श करके धारण करने से २००० गौ का दान फल है तथा ग्यारह रुद्रों की प्राप्ति होती है। सिर पर धारण करने से करोड़ गो दान कर फल मिलता है। ऊपर कहे हुए स्थानों में तथा कानों में धारण का इतना फल है कि भगवान् शंकर फल श्रुति का उपसंहार करते हुए कागभुशुण्डि से कहते हैं कि मैं भी उसका वर्णन नहीं कर सकता। **(इति रुद्राक्ष धारण विधि तथा फल श्रुति)**

॥ सत्ताईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अट्ठाईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

काशी मोक्ष निर्णयः काश्याम् मरणान् मुक्तिः।
असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काशी वासः सतां संगो, गंगाम्भः शिव पूजनम्।

काशी में मरने से मुक्ति होती है। असार इस संसार में चार वस्तुएं सार हैं– (१) काशीवास, (२) सत्संग, (३) गंगा जल सेवन, (४) शिव पूजन सार हैं। श्री काशी जी का दूसरा नाम अविमुक्त है क्योंकि भगवान् शंकर इसे छोड़कर कहीं नहीं जाते। अतः इसे अविमुक्त कहते हैं। काशी तीन प्रकार की है–**(१) भौतिक काशी**– जो भूमि भारत में उत्तर प्रदेश में है। चिन्मय काशी समस्त भूखण्ड से मिली रहने पर भी शंकर जी के त्रिशूल पर स्थित है, क्योंकि प्रलय के जल में डूबती नहीं। छत्राकार जल में तैरती रहती है। जब प्रलय काल का जल काशी को डुबोना चाहता है, तब शिवजी त्रिशूल ऊपर उठा देते हैं। वह दूसरे अंतरिक्ष लोक में चली जाती है। जब जल वहां पहुंचता है, तब त्रिशूल ऊपर और उठा देते हैं तो काशी स्वर्ग में चली जाती है। जब प्रलय की समाप्ति होती है तो त्रिशूल को शंकर जी नीचे करते जाते हैं। वह पूर्ववत् भूखण्ड पर स्थित हो जाती है इसका नाश न होने के कारण इसे अविनाशी कहा है। चार युगों में इसके अर्धचन्द्राकार, धनुषाकार आदि चार रूप हो जाते हैं।

(२) आधिदैविक काशी–जो देवताओं को अधीन करके स्थित हो शंकर जी का महाकैलाश, शिव लोक आधिदैविक काशी है।

(३) आध्यात्मिक काशी–शरीर की अनेक नाड़ियों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना ३ नाड़ियां प्रधान हैं। दाहिनी नासिका से निकलने वाली वायु पिंगला, बायीं से निकलेन वाली इड़ा इन्हें गंगा यमुना के नाम से कहते हैं तथा सूर्यचन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। बीच की नाड़ी सुषुम्ना जिसको सरस्वती भी कहते हैं। इन दोनों के बीच की नाड़ी में संगम होता है। वही आध्यात्मिक काशी है अथवा इसको वाराणसी के नाम से भी कहते हैं। क्योंकि बायीं नाड़ी जीव के समस्त पापों को दूर करती है। इसे वरणा कहा है तथा दाहिनी नाड़ी जीव के सब पापों को भस्म करने के कारण नासी है। जो साधक दोनों

स्वरों को वश करके भृकुटी में स्थित करके शरीर त्यागता है। वह पुनर्जन्म से रहित हो जाता है। उपनिषद् में कहा भी है–

जन्मान्तरकृतान् सर्वान् दोषान् वारयति तेन वरणा भवति इति।
सर्वानिन्द्रिय कृतान् पापान् नाशयति इति नासी भवति इति,
वरणां नाश्यां च मध्ये प्रतिष्ठिता इति वाराणसी।

इसे वाराणसी क्यों कहते हैं। जीव के जन्म जन्मान्तर के सभी दोषों को दूर करती है, इसलिए वरणा तथा असी दोनों के बीच में स्थित होने के कारण इसे वाराणसी कहते हैं।

परन्तु इस घोर कलिकाल में साधक के पास इतना विवेक, वैराग्य, योग, ध्यान आदि नहीं। इसलिए भगवान् शंकर जीवों का कल्याण करने के लिए काशी वास करते हुए मरने वाले पुरुषों के दाहिने कान तथा स्त्रियों के बायें कान में राम भक्तों को राम तारक मंत्र, गणेश भक्तों को गणेश तारक, शक्ति के उपासकों को दुर्गा तारक मंत्र तथा यतियों को प्रणव का उपदेश करके मुक्ति देते हैं। भगवान् शंकर के काशी में आने से पहले, काशी देवी साक्षात् तारक मंत्र का उपदेश देकर जीवों को मुक्त करती थीं, इसका विस्तार से उल्लेख ब्रह्म वैवर्त पुराण के परिशिष्ट काशी रहस्य, स्कन्द पुराण के काशी खण्ड, काशी केदार महात्म्य, सुरेश्वराचार्य कृत–काशी मोक्ष निर्णय आदि ग्रन्थों में दिया है।

शंका–सभी सैद्धान्तिक ग्रन्थों में तो ऋते ज्ञानान्मुक्तिः, 'ज्ञानादेव कैवल्यम् प्राप्यते येन मुच्यते' इत्यादि अनेकों ग्रन्थों में बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं है, फिर काशी में मरने से कैसे मुक्ति हो सकती है?

उत्तर–बिना ज्ञान के मुक्ति कहीं नहीं हो सकती। काशी में मरने वाले प्रत्येक जीव का कान, स्त्री का बायां कान, पुरुष का दाहिना कान ऊपर रहता है। उस जीव के शरीर त्यागने से पूर्व भगवान् शंकर त्रिशूल, डमरु आदि धारण किये हुए उसके समीप जाते हैं। अधिकारी भक्तों ने उनका दर्शन भी किया है। उनके पहुंचते ही उस जीव को दिव्य शरीर प्राप्त होता है। उसको ज्ञानोपदेश करते हुए भगवान् शंकर कहते हैं–''न मैं हूं न

तुम हो, न काशी है, न गंगा है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता असुर भी नहीं है।" तब भक्त पूछता है। यह सब प्रत्यक्ष मुझे दिखाई देता है। आप कैसे कहते हो कुछ नहीं है। उत्तर में शिव जी कहते हैं, "जगत्-स्वप्न के समान मिथ्या है।" चेतन का विवर्त है। अर्थात् ब्रह्म ही जगत् के रूप में न होने पर भी जीवों के अज्ञान से इस रूप में भासता है, किन्तु जो मनुष्य काशी वास करते हैं तथा काशी वास के नियम का पालन करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि अन्य स्थानों में किया हुआ पाप तीर्थों में छूट जाता है। तीर्थों में किया हुआ पाप छः मुक्ति पुरियों में अयोध्या, मथुरा, कांची, हरिद्वार, उज्जैन, द्वारका इन तीर्थों में छूट जाता है। किन्तु इन छः पुरियों में किया हुआ पाप काशी में छूटता है। काशी में किया हुआ पाप कहीं भी किसी भी उपाय से नहीं छूटता है। अतः काशी वास करते हुए जो पाप करते हैं। उनको भैरवी यातना भोगनी पड़ती है। वह थोड़े दिनों की है, किन्तु यम यातना से भयंकर है। उस यातना को भोगने के बाद काशी में जन्म लेकर मुक्त होते हैं। काशी में आत्म हत्या करने वाले की मुक्ति नहीं होती, परन्तु जो केदारखण्ड में शरीर त्यागते हैं। उन पापियों को मरने के बाद भैरवी यातना भी नहीं प्राप्त होती है। भाव यह है कि काशी में मरने वाला चाहे किसी देवता का भक्त हो, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैन, बौद्ध, आस्तिक, नास्ति, मुक्ति चाहे या न चाहे काशी महाक्षेत्र में शंकर जी ने मुक्ति का क्षेत्र खोल रखा है। जबरदस्ती से मुक्ति मिलती है। मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी, कीट, पतंग, मछली, कछुआ, लता, औषधि, वनस्पति सभी काशी में मरने वाले तीनों शरीरों को ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म करके मुक्ति पाते हैं। इसलिए काशी का दूसरा नाम महाश्मशान है। श्मशान में जीव का स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है। परन्तु काशी में तीनों शरीर नष्ट होने के कारण इसे महाश्मसान कहते हैं।

काशी रहस्य नामक ग्रन्थ में तथा शैवागम में कहा है। काशी में मरने वाले यति के पास त्रिशूल, डमरू धारी शंकर आ जाते हैं। तब उसकी मूर्छा दूर होती है। तब उसके कान में तारक मन्त्र सुनाते हैं। मूर्छा काल में जीव भगवान् का रूप देखता है। होश में आने पर वह रूप लुप्त हो जाता है। अतः बुद्धिमानों की बुद्धि काशी सेवन में ही है। काशी रहस्य में व्यास जी कहते हैं। अपने दोनों पैर पत्थर से तोड़कर काशी से बाहर न जाए। काशी का त्याग करने वाला महामूर्ख है। जो काशी वास कर नियम पालन नहीं

करता, उसके लिए काशी मग्ध के समान, शीतल गंगा अंगार वाहनी है। पूर्व पुण्य के बिना काशी वास नहीं होता। कई लोग काशी वास करना चाहते हैं किन्तु नहीं कर पाते। इच्छा होने पर भी काशी के कोतवाल कालभैरव के दूत सम्भ्रम विभ्रम काशी छुड़ा देते हैं।

काशी रहस्य में कथा है कि एक बार ऋषि भगवान् के पास जाकर बोले, हमें गंगा जल के ऊपर छत्र के समान एक प्रकाश पुंज दिखाई देता है। इश समय सम्पूर्ण पृथ्वी जल मग्न है। कोई बचा नहीं है। तब भगवान् विष्णु ने कहा, जब मैंने लोक रक्षणार्थ शंकर जी का स्मरण किया। तो वे प्रभु लिंग रूप धारण करके मेरे हृदय से बाहर आये तथा बढ़ते-बढ़ते पांच कोश के हो गये। यह छत्राकार परम ज्योति आकाश में दिखाई देती है। पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक व्याप्त है। उसी को वेदों में काशी कहा है। ४ युगों में उसका रूप बदलता है। सत्ययुग में छत्राकार, त्रेता में दण्डाकार, द्वापर में लिंगाकार किसी-किसी द्वापर में शंखाकार, कलियुग में अर्ध चन्द्राकार होती है। यद्यपि चर्म चक्षुओं से काशी का पत्थर का भौतिक रूप दीखता है, परन्तु दिव्य दृष्टि से अथवा अन्तःकरण की अन्तर्मुखी ऋतम्भरा प्रज्ञा से देखने पर प्राचीन ऋषियों के समान आधुनिक भगवत् भक्तों तथा योगियों को श्री काशी का चिन्मय स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। प्रलय में भौतिक-काशी पृथ्वी, पर्वतों के साथ जल में डूब जाती है तथा चिन्मय काशी योगदृष्टि से लिंगाकार या छत्राकार दिखाई देती है। यह उत्तर भगवान् विष्णु ने देवताओं को दिया।

अर्वाचीन सन्त श्रीरामकृष्ण परमहंस को काशी का दिव्य शरीर दिखाई दिया। रोलिण्ड ने उनके जीवन चरित्र में लिखा है,

He visited Banaras seed not built on stones but a condense mass of sprituelity. This has also been the experience of other yogies who have visited grand Kashi. (*Life of the Ram Krishan Paramhas by Mr. Romain Roland.*)

इसका अर्थ-जब स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी ने काशी में प्रवेश किया। उन्होंने पत्थर की बनी काशी नहीं देखी। अपितु अध्यात्म काशी का प्रत्यक्ष किया। इसी प्रकार का अनुभव अन्य योगियों को हुआ जिन्होंने काशी में प्रवेश किया (जीवन चरित्र रामकृष्ण परमहंस)।

आचार्यपाद भगवान् शंकर ने भी कहा है–

काश्यां काश्यते काशी काशी सर्व प्रकाशिका येन विदिता काशी तेन प्राप्ता हि काशिका॥

अर्थ–शरीर को प्रकाशित करने वाली काशी है। इस आध्यात्मिक काशी (आत्मा) को जिसने जाना, उसने काशी को प्राप्त किया।

शिव पुराण में भी आता है कि भगवान् शंकर ने जब देखा कि मेरी माया से मोहित जीव मुझे नहीं प्राप्त कर सकते तब उन्होंने त्रिशूल पर टंगी हुई काशी अर्थात् भक्ति-ज्ञान-वैराग्य रूपी त्रिशूल पर टंगी हुई काशी को मृत्यु लोक में स्थापित किया। यह दिव्य काशी जीव के सञ्चित कर्मों को भस्म करती है। इसलिए इसे काशी कहते हैं। कभी-कभी देखा जाता है। पुण्य कर्म वाले बाहर मरते हैं। पापी काशी में ऐसा क्यों?

समाधान–इस विषय में सूक्ष्म विचार करना चाहिए कि कौन पापी है और कौन धर्मात्मा है। जो धर्मात्मा दीखता है। इस जन्म में धर्मात्मा। उसे हम धर्मात्मा कहते हैं जो पापी दीखता है। इस जन्म के पाप को देखते हैं। इस जन्म में भी किसके मन में पुण्य है या पाप उसके हृदय की बात दूसरा नहीं जान सकता। यदि किसी ने किसी साधन से जान भी लिया तो इसी जन्म का जाना, पिछले जन्म का नहीं, क्योंकि जीव में सीमित सर्वज्ञता है। ईश्वर में सीमा रहित। वह अनन्त जन्मों के पुण्य पापों को जानता है। अतः पापी के सञ्चित पुण्यों के अनुसार काशी में मुक्ति होती है। पिछले संचित पापों को लेकर धर्मी की काशी से बाहर मृत्यु होती है। किन्तु सामान्य सिद्धान्त यही है। पुण्य कर्मी की काशी में, पापी की बाहर मृत्यु होती है। जैसे अग्नि में जलाने की शक्ति है। वैसे ही काशी में मोक्ष दायिनी शक्ति है। जैसे स्वातिनक्षत्र की जितनी बूंदें सीपी में गिरती हैं। उतने ही मोती बनते हैं। वैसे काशी में रहने वाले शरीर त्याग से मुक्ति पाते हैं। पञ्च क्रोशी काशी में सुई की नोक के बराबर स्थान नहीं है। जहां मरने से मुक्ति न हो।

शंकर पार्वती से कहते हैं–

श्लोक– योगोऽत्र निद्रा कृतभः प्रचारः स्वेच्छाशनं देवि महानिवेद्यम्।
लीलात्मनो देवि पवित्र दानम्, जपःप्रजल्पं शयनं प्रणामः॥

अर्थ–हे देवि! काशी में निद्रा, योग निद्रा, काशी का चलना-फिरना योग की खेचरी मुद्रा है। स्वेच्छा भोजन नैवेद्य है। अपनी लीला ही पवित्र दान है, बातचीत ही जप है। सोना-बैठना प्रणाम की तरह फलदायी है। अतः मुक्ति को दुर्लभ समझ कर पत्थर से पैर तोड़कर काशी में पड़ा रहे।

काशी रहस्य से–काशी खण्ड में कहा है, काशी की गलियों में घूमना योग की खेचरी मुद्रा है। काशीपति शिव के आश्रित होना जन्म मरण से छूटना है। जिसने अपने कानों से दो-अक्षरों वाला काशी मन्त्र सुना वह लौटकर के नहीं आता।

शिवःकाशी शिवःकाशी काशीकाशी शिवः शिवः।
त्रिवारं यः पठेन्नित्यं काशी वास फलं लभेत्॥

अर्थ–इस मन्त्र का नित्य तीन बार पाठ करने से कहीं भी मरे उसे काशीवास का फल मिलता है अथवा तीन दिन काशीवास करके इस मन्त्र का जप कतरने वाले को कहीं भी मरे, काशीवास का फल प्राप्त होता है। सभी ऊसरों में काशी महान् ऊसर है। जैसे-ऊसर में बोया बीज नहीं उगता। वैसे ही काशी में शुभा-शुभ मिश्रित कर्म रूपी बीज पुनर्जन्म रूपी फल नहीं देता। अतः मुमुक्षुओं को क्षेत्र संन्यास लेकर काशी वास करना चाहिए।

क्षेत्र संन्यास लेने पर काशीवास के सभी विघ्न भगवान् दूर कर देते हैं। क्षेत्र संन्यास की विधि काशी रहस्य तथा काशी खण्ड में आयी है। हे देवि! कैलाश केदारनाथ तथा अन्य स्थान इतने प्रिय नहीं, जितना काशी है। काशी खण्ड में मणिकर्णिका की महिमा कहते हुए शंकर जी पार्वती से बोलते हैं।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यपूर्वमिदं वचः।
मणिकर्मसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्ड गोलके॥

हे देवि! मैं चार बार सत्य की शपथ खाकर कहता हूं। इस पूरे ब्रह्माण्ड में मणिकर्ण के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। काशी, केदार महात्म्य में अ० २८ में कहा है–

अनेक जन्म सुकृत परिपाक वशन्नृणाम्।
वेदान्तश्रवणे श्रद्धा भवतीति श्रुतेर्वचः॥३६॥

श्रवणान्मननेश्रद्धा तन्निदिध्यासने ततः।

आत्मा वाअरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः श्रद्धया पुनः ॥३७॥

मन्तव्यश्च निदिध्यासितव्यः इत्याह वै श्रुतिः।

तदर्थ बोधकः शम्भुरेव नान्यो हि वै गुरुः ॥३८॥

अर्थ–अनेक जन्मों के पुण्य के परिपाक से वेदान्त श्रवण में श्रद्धा होता है। यह श्रुतिवचन है। सुनने से मनन में तथा मनन से निदिध्यासन में, श्रद्धा होती है। अरे! आत्म दर्शन करना चाहिए, कैसे करे, किसी के पूछने पर गुरु उत्तर देते हैं।

श्रद्धा से सुनना, विचार करना तथा निदिध्यासन करना चाहिए। लक्ष्यार्थ का यथार्थ ज्ञान कराने वाले शंकर को छोड़कर दूसरे कोई गुरु नहीं हैं।

प्रश्न–श्रवण, मनन, निदिध्यासन क्या है?

उत्तर–श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरोः सकाशात् श्रुतिविज्ञानं श्रवणं, मननम्ः–साधक-बाधक-प्रमाणयन् स्वरूपयुक्तिभिः तदर्थ चिन्तनम् मननम्।

निदिध्यासनम्–श्रुतार्थस्य, नैरन्तर्येण अनुसंधानम् निदिध्यासनम्।

अर्थ–श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं से, श्रुति के विज्ञान को छः युक्तियों द्वारा सुनना श्रवण है। श्रवण के बाद स्वरूप ज्ञान कराने वाली, साधक बाधक युक्तियों द्वारा, साधक का अर्थ है सिद्धान्त के पुष्टि करने वाले वचनों पर विचार करते हुए श्रुति विज्ञान का चिन्तन मनन है। निदिध्यासनः–श्रवण किये हुए परम तत्त्व की निरन्तर खोज करना निदिध्यासन है। अथवा विषयाकार विजातीय वृत्ति को हटाकर सजातीय ब्रह्माकार वृत्ति का अभ्यास निदिध्यासन है। इन तीनों के एकमात्र गुरू भगवान् शंकर के अतिरिक्त कोई नहीं है। काशी में मरने वाला भगवत् भक्त मुक्त हो जाता है, किन्तु पापी भैरवी यातना भोगता है। तब मुक्त होता है।

इस भैरवी यातना से मुक्त करने के लिए सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने प्रतिदिन अयोध्या से हिमालय जाकर अनेकों वर्षों तक शंकर की अराधना की। बिना दर्शन किये अन्न जल नहीं लेते थे, परन्तु जब वृद्ध हो गये, तब शिवजी को काशी में ले जाने के लिए घोर तप किया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा, वर मांगो। उन्होंने

शिव जी से काशी जाने की प्रार्थना की। शिव ने कहा, मैं तुम्हारी इच्छा से एक कला से यहां रहूंगा। 15 कलाओं से काशीवास करूंगा जिससे बाल वृद्ध, रोगी निर्धन सब का कल्याण होगा तथा काशी केदारखण्ड में मरने वाले महापापियों को बिना भैरवी यातना के मुक्त करूंगा। तब से केदारखम्ड में मरने वाले दुष्टों को भगवान् बिना भैरवी यातना के मुक्त करते हैं। जैसे कोई व्यभिचारी पुरुष या स्त्री को रोग हो जाता है। उपचार के लिए चिकित्सक के पास जाते हैं। चिकित्सक उनको डांटता नहीं, किन्तु हर प्रकार से सहानुभूति देता है। वैसे ही जन्म मरण रूपी महारोग के महाचिकित्सक शिवजी केदारखण्ड में मरने वालों को मुक्त करते हैं। अतः काशीवास करना चाहिए।

काशीवास करने वाले को भावना करनी चाहिए कि भगवान् शिव पिता तथा उमा माता हैं। गंगा जी मौसी हैं। ढुण्डिराज गणेश जी युवराज हैं। काशी में मरने वालों को ढूंढकर मुक्त करने के लिए शिवजी के पास लाते हैं। वहां के कोतवाल भैरव मेरा बड़े भाई हैं। मणिकार्णिका काशी की बहन है। बुद्धि मेरी पत्नी है। सत्कर्म रूपी पुत्र एवं पुत्री हैं। काशी के वासी मेरे परिवार हैं। ऐसे भावना करने वाला अवश्य मुक्त होता है। काशी क्षेत्र संन्यास की विधि नीचे दी जाती है। काशी रहस्य के टीकाकार श्री स्वामी नीलकंठ सरस्वती जी महाराज लिखते हैं–

क्षेत्र संन्यास विधिः

माघ शुक्ला चतुर्दशी को व्रत करके दूसरे दिन ब्राह्मणों को भोजन करा के दक्षिणा दें, फिर मौन होकर ज्ञान वापी में स्नान करें। सफेद वस्त्र धारण कर डुण्डिराज गणेश जी को प्रणाम करें। सफेद वस्त्र तीन आश्रमियों के लिए हैं। संन्यासी काषाय वस्त्र पहनें फिर दण्ड पाणि भैरव जी को प्रणाम करके, विश्वनाथ जी का दर्शन करें फिर मुक्ति मण्डप में आकर संकल्प करें। तीन प्राणायाम करके पंचाक्षरी मंत्र का जप करें। बाद में मैं क्षेत्र संन्यास लूंगा। ऐसा चिन्तन करें। हे अम्बिका पते, पंच कोश से बाहर नहीं जाऊंगा। इन मंत्रों को उच्च स्वर से दो-तीन या पांच बार पढ़ें फिर शिवजी, भैरव को प्रणाम करके, घर आ जायें। काल भैरव को साक्षी करे। फिर भोजन करें। पहले संचित सम्पत्ति का दान कर दें। हे देवि! इस प्रकार माघ या चैत्र में संन्यास लेने वाला निश्चय

ही सब दोषों से छूट जाता है। अन्य स्थानों में करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है। वह काशी में प्रसन्न चित्त से एक ब्राह्मण को भोजन कराने से मिलता है। कलियुग में काशी के अतिरिक्त जीवों का कल्याण और किसी में नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के तीर्थों की यात्रा, दर्शन, स्नान, दान का फल काशीवास से प्राप्त होता है।

॥ अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ उन्नतीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

पंचकोसी यात्रा विधि

यात्री प्रातः उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर डुण्डि गणेश, शिव, पार्वती, काल भैरव, सूर्य, चण्डिकादि को प्रणाम करने के बाद, शौचादि कर्म करें। शिवजी का स्मरण करते हुए पूजन सामग्री सहित ज्ञानवापी में स्नान करके उसकी परिक्रमा दण्डवत् करें फिर आदित्य-द्रौपदी-विष्णु-दण्ड पाणि भैरव-काशीनाथ जगत्गुरु का पूजन करके ३ परिक्रमा करके १५ बार प्रणाम करें, पुनः इन नाम मन्त्रों से स्तुति प्रणाम करें।

विश्वेश्वर, विश्वाधार, विश्वरूप, विष्णुप्रिय, वामदेव, महादेव-देवाधिदेव दिव्यरूप दीनानाथैक शरणागत, वज्रपञ्जर साधिकाखिलकार्य कायातीत कारण कामादि तृणदहन दानवान्त करदारिताखिल दारिद्रयजितेन्द्रिद्रियैकगम्य, काशी स्थावर-

जंगमनिर्वाणदायक त्रिदशानाम् नायक काशिका प्रिय नमस्ते ३

इन नामों से तीन बार प्रणाम करें।

काशीवासी के नियम-काशीवासी प्रतिदिन भगवान् विष्णु का पादोदक धारण करें। जो ऐसा नहीं करता, उसका जीवन पर्यन्त का पुण्य नष्ट हो जाता है। शिवजी पार्वती जी से कहते हैं कि मेरे दर्शन के बिना जो खाता-पीता है। वह पाप खाता है तथा बिना पूजा किये हुए जो पत्र पुष्प-फलादि ग्रहण करता है। वह २१ जन्म तक वीर्य भोजी कीट होता है। काशी वासियों को नीचे लिखे १० दोषों को त्याग देना चाहिए-(१) परान्न सेवन, (२) निन्दा, (३) परस्त्री पर बुरी दृष्टि, (४) पर धन की इच्छा, (५) बिना दिये किसी की वस्तु को ग्रहण करना तथा (६) परदोष दर्शन, (७) द्वेष

न करना, (८) अभक्ष्य भोजन, (९) आलस्य, (१०) दीनता का त्याग। इन सभी दोषों का त्याग करें और चिन्तन शिव का करें। पालन करने योग्य नियम–आहारशुद्धि, मृदुभाषी, शान्तचित्त, सदाचार का पालन, जप, दानादि, करने वालों को काशीवास का फल प्राप्त होता है। अधिक धन का संग्रह न करें। क्षेत्र संन्यासी को विशेष रूप से इन नियमों का पालन करना चाहिए।

दस संस्कार–(१) सत्संग, (२) मुमुक्षता, (३) सत्शास्त्र विचार, (४) विचार शुद्धि, (५) अनुभवजन्यानन्द, (६) विरति, (७) आहार शुद्धि, (८) भगवत्प्रीति, (९) समस्त जगत को इष्टदेव मय देखना, (१०) परमानन्द की प्राप्ति। इन नियमों का पालन करने वाले काशीवासी को जीवन मुक्ति तथा विदेह कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति होती है।

श्लोक–गृहं न काशी सदृशं सुखाय पिता न विश्वेश समं क्वचिद्भवेत्।
माता भवानी सदृशी न शर्मदा, कुटुम्बमत्रान्य जनो जनार्दन ॥९५॥

अर्थ–हे जनार्दन! काशी जी के समान सुखदायी कोई घर नहीं तथा विश्वनाथ के समान कोई पिता नहीं। पार्वती के समान कोई माता नहीं। काशी वासियों के समान कोई कुटुम्ब नहीं है।

मिथ्यावेदान्त निष्ठा का खण्डन

विषय स्नेह संयुक्तो ब्रह्माहमिति यो वदेत्।
गर्भवास सहस्त्रेषु पच्यते पाप कृन्नरः॥

अर्थ–विषय स्नेह से युक्त जो मैं ब्रह्म हूँ। ऐसा कहता है। वह पापी पुरुष हजारों जन्मों तक माता की गर्भाग्नि में पकाया जाता है। बार-बार जन्म-मरण को प्राप्त होता है। इसके विपरीत ऋणभय से युक्त, प्रमाद से जो काशी में मरता है, वह तत्काल मुक्ति प्राप्त करता है। जो काशीवास न कर पाए, वह काशीखण्ड, काशी रहस्य, काशी केदार माहात्म्य आदि ग्रन्थों की कथा करने मात्र से मुक्त हो जाता है। ऊपर बताया जा चुका है। जो मुक्ति आत्म ज्ञान से होती है, वही ज्ञान काशी में प्राप्त होता है। अतः विरोध नहीं है। अतः 'ऋतेज्ञानान्न मुक्ति' यह अकाट्य सिद्धान्त है।

॥ उनतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ तीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अनेकों शिवावतार

अनेकों वेदों, पुराणों, उपनिषदों में भगवान् शंकर के अनेकों अवतार कहे हैं। विशेष करके शिवमहापुराण की विद्येश्वर संहिता में तथा शतरुद्री संहिता में १०० अवतारों का वर्णन मिलता है। विस्तारभय से नहीं दे रहे हैं। भगवान् शंकर का पञ्चाचार्यों के रूप में जो अवतार हुआ है, वह दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है, किन्तु उत्तर भारत में प्रसिद्ध नहीं। अतः जगत् गुरु शिवाचार्यों के विषय में लिखेंगे।

जगत्गुरु पञ्चाचार्य–यह बात वेदों, उपनिषदों, आगमों, पुराणों तथा इतिहास आदि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है कि शिवजी के सद्योजात–वामदेव–अघोर–तत्पुरुष–ईशान नाम के पांच मुख हैं। उन्हीं पांचों मुखों से जगत्गुरु रेणुकाचार्य जो रेवण या रेवा के नाम से विख्यात हुए। दारुक या दारूकाचार्य, घण्टा कर्णकाचार्य (शंकुकर्ण एकोराम), धेनुकर्णकाचार्य (पण्डिताराध्य), विश्वकर्णकाचार्य (विश्वाराध्य) नामक आचार्य अवतीर्ण हुए। सुप्रबोधागम में कहा है।

श्लोक–पञ्चाननमुखोद्भूतान्, पञ्चाक्षरसमुद्भवान्।
पञ्चसूत्रकृतो वन्दे, पञ्चाचार्यान् जगद्गुरुन्॥

अर्थ–पञ्चानन भगवान् शंकर के मुख से उत्पन्न हुए पञ्चाक्षर मन्त्र पञ्चसूत्रों के कर्ता जगत्गुरु पञ्चाचार्यों को मैं प्रणाम करता हूँ। इसी अध्याय के पञ्चाचार्योंत्पत्ति प्रकरण में कहा है–

पूर्वं मम मुखाज्जातः सद्योजाताच्च रेणुकः।
पूर्वं मम् मुखाज्जातः वामदेवाच्च दारुकः॥
पूर्वं मम मुखाज्जातः अघोराच्चंकुकर्णकः।
पूर्वं मम मुखाज्जातः तत्पुरुषाद् धेनुकर्णकः॥
पूर्वं मम मुखाज्जातः ईशानाद्विश्वकर्णकः।

अर्थ–मेरे सद्योजात मुख से रेणुकाचार्य, वामदेव मुख से दारुकाचार्य, अघोरमुख से चंकुकर्णकाचार्य, तत्पुरुष मुख से धेनुकर्णकाचार्य, ईशान मुख से विश्वकर्णकाचार्य

उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त मद्रास ओरिन्टिल पुस्तकालय में अत्यन्त प्राचीन पुस्तक वीरलैंग्योपनिषद् में भी यही कहा है।

''सद्योजात मुखमासीद्रेणुकाचार्याराध्य उद्भवति। वामदेव मुखमासी-द्दारुकाचार्याराध्य उद्भवति। अघोर मुखमासीद् घण्टाकर्ण गणेशाराध्य उद्भवति। तत्पुरुष मुखमासीद्धेनुकर्णगणेशाराध्य उद्भवति। ईशान मुखमासीद् विश्वकर्ण गणेशाराध्य उद्भवति।''

अर्थ–सद्यो जात मुख से आराध्य रेणुकाचार्य उत्पन्न हुए, वामदेव मुख से दारुकाचार्य, अघोर मुख से घण्टा कर्णाकाचार्य, तत्पुरुष मुख से गणेशाराध्य धेनु कर्णकाचार्य, ईशान मुख से गणेशाराध्य, विश्वकर्णकाचार्य उत्पन्न हुए। ये पञ्चाचार्य वीर शैवमत के जगद्गुरु शिवाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अनुयायियों को लिङ्गायत भी कहते हैं। ये अपने गले और भुजाओं में शिवलिंग धारण करते हैं। पांचों जगद्गुरु चारों युगों में रहे। दक्षिण भारत में सोमेश्वर शिवलिङ्ग से कोली पाक नाम के नगर में रेणाकुचार्य जी के नाम से विख्यात हुए तथा सिद्धेश्वर शिवलिङ्ग से वट क्षेत्र में दारुकाचार्य जी हुए। रामनाथ क्षेत्र में द्राक्षा राम नाम के स्थान में रामनाथेश्वर नाम के लिङ्ग से चंकु कर्णकाचार्य जी उत्पन्न हुए तथा सुधा कुण्ड में मल्लिाकार्जुन लिंग से धेनुकर्णकाचार्य जी का प्रादुर्भाव हुआ। काशी में विश्वनाथ शिवलिंग से विश्वकर्णकाचार्य जी का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने पांच शिवलिंगों से प्रकट होकर शिव तत्त्व और वीर शैवमत की स्थापना की। सुप्रबोधागम के पञ्चाचार्य उत्पत्ति प्रकरण में शंकर जी कहते हैं।

मत् पञ्चवदनोद्भूताः सर्व एव गुरूत्तमाः।
तत्सृष्टा च सर्वेषाम् तत्सामर्थ्यम् कथम् भवेत्॥
तस्मात् पञ्च विधाचार्याः पञ्चपीठाधि देवताः।
पञ्च सिंहासनाधीशा जगद् गुरूत्तमाश्चते॥

अर्थ–मेरे पांचों मुखों से पांचों जगद्गुरु उत्पन्न हुए हैं। ये सब को उत्पन्न करने वाले हैं। उनको कौन उत्पन्न कर सकता है। अर्थात् किसी में उनको उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं है। इसीलिए वे पांच प्रकार के आचार्य है। पांच सिंहासनों के स्वामी पांच

पीठों के अधिष्ठातृ देवता हैं। वीरलैंग्योपनिषद् में भी कहा है कि "**वेदागम-सम्प्रदायमाहेश्वरवित् पंचाचार्येभ्योदीक्षित:**" वेद तथा आगम माहेश्वर सम्प्रदाय के जानने वाले समस्त आचार्य इन पांचों से दीक्षित हुए।

इन आचार्यों की कृपा के कारण ही प्रधान रूप से शिव भक्ति तथा शिव तत्त्व का प्रचार हुआ। इन पांचों ने क्रम से रेणुकाचार्य जी ने वीर, दारुकाचार्य जी ने नन्दी, चकुंकर्णकाचार्य जी ने वृषभ, धेनुकर्णकाचार्य जी ने भृङ्गी, विश्वकर्णकाचार्य जी ने स्कन्द नाम के गोत्र को चलाया तथा रेणुकाचार्य जी ने पड़बिड़ी दारुकाचार्य जी ने वृष्टी, चकुंकर्णकाचार्य जी ने लम्बन, धेनुकर्णकाचार्य जी ने मुक्तागुच्छ तथा विश्वकर्णकाचार्य जी ने पञ्चवर्ण नामक महासूत्रों की रचना की। फिर इनके प्रत्येक महासूत्र से बारह-बारह सूत्रों की रचना हुई। इन पञ्चाचार्यों के पञ्चतत्त्व, पञ्चपञ्चाक्षरी, पञ्चकलश, पञ्च दण्ड, पञ्च सिंहासन, पञ्चगोत्र, पञ्चसूत्र, अनेकों पञ्चक हैं। जिनका उल्लेख विस्तारभय से नहीं किया जा सकता। इन पांचों से भगवान् रेणकाचार्य जी सर्वप्रथण हुए।

१. यह महिमा, पांडित्य, अनुग्रह, निग्रह, सम्पूर्ण पूज्य गुणों से युक्त है। इनके सम्बन्ध में अनेकों ग्रन्थ मिलते हैं। इन्होंने अपने वीर सिंहासन की स्थापना दक्षिण भारत के मलयाचल रम्भापुरी में की। यह स्थान, प्राचीन मैसूर राज्य के जिला होन्नूर कण्डूर में है। शिव तत्त्व का प्रचार तथा दिग्वजय करके अन्त में अपने शिष्य रुद्र मुनि शिवाचार्य को सिंहासन देकर उसी शिवलिंग में लीन हो गये। परन्तु समय-समय पर जनता के कल्याण के लिए अवतार लेकर दुष्टों को दण्ड तथा सज्जनों का पालन करते हैं। इनसे लेकर अब तक (सन् १९३३ तक) इस सिंहासन पर १०८ बड़े-बड़े योगी, तपस्वी, विद्वान्, आचार्य हो गये हैं। आज तक (१९९२ तक) दो या तीन आचार्य और हुए होंगे। इस गद्दी के गौरव के लिए मैसूर सरकार ने बहुत कुछ जागीरें दे रखी हैं। सन् १९३३ में इस सिंहासन पर जगद्गुरु शिवानन्द जी, राजेन्द्र शिवाचार्य, महास्वामी थे। जो महान् विद्वान्, तपस्वी, उदार थे। विद्यार्थियों की सहायता करते थे। एक संस्कृत महाविद्यालय भी खोला।

२. दूसरे जगद्गुरु श्री दारुकाचार्य जी ने अपने सद्धर्म सिंहासन को उज्जैन में जिवल्लारी में स्थापित किया, दारुकदिग्विजय नामक ग्रन्थ का पता सिकंदराबाद की प्राचीन सूची में मिलता है। इस पीठ के बगल में एक अत्यन्त प्राचीन मंदिर है। उसके एक लेख से पता चला है कि इस मठका निर्माण प्राचीन काल के किसी पाण्डय राजा ने किया था। सन् १९३३ में इस गद्दी पर श्री १०८ जगद्गुरु सिद्धलिंग शिवाचार्य जी महाराज विराजमान थे। आप महातपस्वी, दिव्य ज्ञानी, चतुरवक्ता, भक्त वत्सल, संस्कृत विद्यानुरागी होने के कारण अनेक पाठशालाओं तथा संघों की सहायता करते थे। इनका पूरा समय शिव चिंतन में बीतता था।

३. तीसरे जगद्गुरु चंकुकर्णकाचार्य ने अपने वैराग्य नामक सिंहासन को हिमालय केदारनाथ के ऊखी मठ में स्थापित किया। ज्योर्तिलिंग केदारनाथ के कई मंदिर, 144 ग्राम इस मठ के अधीन हैं। इस मठ में विक्रमी सम्वत् १९९० तक ३०० आचार्य हो चुके हैं। सुप्रसिद्ध श्री करभाष्य के कर्त्ता, इसी पीठ के शिष्य थे। यह भाष्य सिकंदराबाद में तेलगू लिपि में आधा छपा। इनके भाष्य से पता चलता है कि एकोराम जगद्गुरु जी का एक अधिकरण भाष्य ब्रह्मसूत्र पर भी था सम्वत् १९९० तक इसी पीठ पर रावल साहब जगद्गुरु नीलकण्ठ शिवाचार्य जी महाराज थे। जो योगशास्त्र तथा वैदिक मर्मज्ञ विद्वान् थे। अनेक भाषाओं के विद्वान् होने के कारण आपने संस्कृत आंग्ल महाविद्यालय की स्थापना की। अनेकों संस्थाओं को सुचारू रूप से चलाया। इस पीठ की सहायता के लिए सरकार ने बहुत सम्पत्ति दे रखी है।

४. चौथे जगद्गुरु श्री धेनुकर्णकाचार्य जी ने अपने 'सूर्य' नामक सिंहासन को सुप्रसिद्ध ज्योर्तिलिंग श्री शैल पर्वत पर मल्लिाकार्जुन में स्थापित किया ए क पंडित आराध्य नामक भाष्य आपके द्वारा रचा गया। श्री कर भाष्य के पढ़ने से पता चलता है कि मल्लिाकार्जुन के मंदिर का सारा प्रबन्ध ११९ साल पहले आपके अधीन था, परन्तु अब मन्दिर कानून के अनुसार बोर्ड बन गया है। मठ की ओर से एक पुजारी रहता है। यह पीठ वर्तमान श्रीशैल पर्वत से कुछ दूर जिला कर्नूल में है। सन् १९९० में इस पीठ पर जगद्गुरु वीरभिक्षवर्ति शिवाचार्य जी महाराज थे। वे बड़े तपस्वी, वयोवृद्ध सदा शिवपूजन में लगे रहते थे।

५. पांचवें जगद्गुरु विश्वाराध्य विश्वकर्णकाचार्य जी ने विश्वनाथ शिवलिंग से प्रगट होकर अपने अवतार स्थान काशी में 'ज्ञान' सिंहासन की स्थापना की। यह स्थान जंगमवाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। आपने भी विश्वाराध्य नामक ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना की। जिसका पता कराचार्य के भाष्य से चलता है। आज तक इस गद्दी पर विक्रमी सं० १९९० तक ८२ आचार्य हो चुके हैं। इस मठ से बहुतों का कल्याण हुआ है। विशेष करके वीर शैव मत के विद्वान् यहां से तैयार हुए हैं। उसी सं० १९९० वि० में वर्तमान जगद्गुरु पञ्चाक्षर शिवाचार्य महाराज भी थे। आप परम शान्त त्यागी, तपस्वी, विद्वान् तथा संस्कृत विद्यार्थियों के परम हितैषी थे।

इस प्रकार चारों युगों में इन पञ्चाचार्यों की परम्परा में अनेकों महायोगी विद्वान् हुए। इन सब का जीवन दंभ रहित, मर्यादा युक्त था। इनको इने-गिने विद्वान् ही जानते हैं। कल्याण शिवांक १९९० वि० से उद्धृत है।

॥ तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ इक्कत्तीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

श्रीमद् जगद्गुरु शिवाचार्य भगवान् रेणुकाचार्य जी महाराज का जीवन वृत्त

वृत्त-श्लोक- श्रीमच्छिवाचार-विचार दीक्षं-स्वशिष्यसत्प्रीणन पूर्वपक्षम्।
दुर्वारकामादि-विदार-दक्षं, भजाम्यहं रेवणकल्पवृक्षम्॥
श्री करभाष्य

अर्थ-श्री शिवाचार्य के विचार की दीक्षा से युक्त तथा अपने शिष्य के यथार्थ पूर्व पक्ष का समर्थन करने वाले एवं अत्यन्त कठिन कामादि शत्रुओं का नाश करने में निपुण, कल्पवृक्ष स्वरूप रेणुकाचार्य का मैं भजन करता हूँ।

अनेकों वेदों, आगमों, तामिल, तेलगु, कन्नडादि भाषाओं के ग्रन्थों में भगवान् शंकर के सद्योजातमुख से अवतरित रेणुकाचार्य जी का जीवन चरित्र मिलता है। आपने अवतार लेकर 4 युगों में शक्ति विशिष्ट वीर शैवमत की स्थापना की। अतः इनके

युगानुसार नाम रेवणाराध्य-रेणुकाचार्य-रेणुकगणाधीश्वर आदि अनेक नाम हैं। कलिकाल में आपने आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद नामक राज्य में कोलीपाक गांव में अवतार लिया। स्वायम्भुवागम में कहा है।

श्रीमत्रेवणसिद्धस्य कोलीपाकपुरोत्तमे।
सोमेशलिङ्गज्जननमावासः कदलीपुरे॥
अथ त्रिलिङ्गविषये कोल्लीपाक्यभिधेपुरे।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रादुरासीत् स रेणुकः॥

सिद्धान्त शिखामणि (अ. ४-१)

अर्थ-श्रीमान् रेवण सिद्ध जी का कोलीपाक गांव में सोमेश्वर लिंग से जन्म हुआ। कोलीपाक गांव में जन्म तथा निवास कदलीपुर (रम्भापुर) नामक गांव में हुआ।

१. रेणुकाचार्य जी का तीन लिंगों में प्रसिद्ध कोलीपाक नाम के नगर में सोमेश्वर महालिंग से जन्म हुआ। यद्यपि ऊपर लिखा स्थान कलियुग में प्रादुर्भाव का स्थान बताया जाता है, किन्तु अगली लीलाओं से सिद्ध होता है कि चारों युगों में भगवान् शंकराचार्य के बाद में होने वाले विक्रमादित्य के राज्य तक रहे। यह अगले कथा प्रसंग से सिद्ध हो जाएगा। इन्होंने १८ मठों की स्थापना की जो अभी तक पाये जाते हैं। फिर भी आपका मुख्य वीर सिंहासन मैसूर नामक राज्य के रम्भापुरी नामक ग्राम के अन्तर्गत था। सभी शिवाचार्यों में आप सर्वप्रथम हैं। आपका विशेष जीवन चरित्र सिद्धनाथ शिवाचार्यकृत, रेणुक विजय, जो मैसूर के वेस्लियन मिशन प्रेस से प्रकाशित हुआ है, में मिलता है। इसकी रचना विक्रमी सं० १०१६ में हुई। उसी के आधार पर जगद्गुरु की लीलाएं लिखी जाएंगी।

वैदिक सनातन पद्धति के अनुसार जो महापुरुष प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर अपने मत की स्थापना करते हैं वे जगद्गुरु कहे जाते हैं। इनका शक्ति विशिष्टाद्वैत वीर मत है। इन आचार्यों के अधीन परवर्ती आचार्य केवल शिवाचार्य कहलाते हैं, जगद्गुरु शिवाचार्य नहीं। बहुत समय पूर्व इनका ब्रह्मसूत्र परभाष्य प्राप्त हुआ। इसका पता सिकन्दराबाद वासी पण्डित मार्कण्डेय शास्त्री जी की प्राचीन पुस्तक सूची से चलता है।

किन्तु उपलब्ध नहीं है। सुना जाता है कि आन्ध्र प्रदेश के पण्डितों के पास यह पुस्तक थी। उसे जर्मनी प्रोफेसर ले गये। तब से उसका कोई पता नहीं चला। जर्मन के पुस्तकालय की पुस्तक सूची में रेणुककारिका नाम का ग्रन्थ मिलता है। अनुमान होता है कि यह वही भाष्य है। एक शिवाचार्य महास्वामी के पास भी ताड़पत्र पर लिखी हुई 'रेणुकाभाष्य' की प्रति थी परन्तु अब वह नहीं मिलती। उसे एक पण्डित देखने के बहाने ले गये। लौटाकर नहीं दिया। किन्तु इस सम्प्रदाय में इस भाष्य की चर्चा होती रहती है। इससे अनुमान है कि कहीं-न-कहीं भाष्य अवश्य होगा। इसी मत का 'सिद्धान्त शिखामणि' नामक एक अमूल्य ग्रन्थ है। उसका बहुत प्रचार है। उसमें सत्ययुग के ऋषि अगस्त्य जी के प्रति रेणुकाचार्य जी का उपदेश है। इसका संग्रह शिवनामकयोगी शिवाचार्य ने ऐसे ही किया है। जैसे महाभारत में व्यासजी ने गीता का संकलन किया। यह ग्रन्थ पूर्णप्रामाणिक, अत्यन्त गम्भीर तथा बड़ा उपयोगी है। उसकी तुलना में शिवागमों को छोड़कर और कोई ग्रन्थ नहीं है। अगस्त्य जी का शैवों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। पद्मपुराण में भगवान् राम को भी अगस्त्य जी ने इस मत की दीक्षा देकर अनुष्ठान करा के शैवदर्शन से विजय प्राप्त कराई। 'सिद्धान्त शिखामणि' रेणुक-दिग्विजय-वेदान्तसार-वीर शैवचिन्तामणि आदि ग्रन्थों से सिद्ध है कि रेणुकाचार्य जी ने अगस्त्यमुनि चन्द्र को उपदेश शिव सिद्धान्त का किया था।

अनुमानतः इसी उपदेश के श्रवण के बाद ही अगस्त्य जी ने ब्रह्मसूत्र की शैव वृत्ति लिखी जिसे देखकर श्रीपति पण्डिताराध्य ने श्रीकर भाष्य की रचना की। उन्होंने अपने भाष्य में लिखा है-

श्लोक-अगस्त्यमुनि चन्द्रेण-कृतवैयासिकां शुभाम्।
सूत्रवृत्तिं समालोक्य कृतं भाष्यं शिवंकरम्॥

अर्थ-अगस्त्यचन्द्रमुनि ने व्यास जी के सूत्रों पर वृत्ति लिखी। उस वृत्ति को देखकर मैंने कल्याणकारी भाष्य की रनचा की, परन्तु जैसे अनेकों पुराणादि ग्रन्थों में धूर्तों ने परिवर्तन किया है। उसी प्रकार अगस्त्यवृत्ति में भी परिवर्तन हुआ है। इन प्रमाणों से आचार्यपाद रेणुक का तथा अगस्त्य जी का गुरुशिष्य सम्बन्ध सिद्ध होता है। इस

सम्प्रदाय में आज तक भी जो विधि विधान से दीक्षित होता है। उसमें रेणुकाचार्य जी का कलश पूर्व में स्थापित होता है। उसके लिए आचार्य वही वरण किया जाता है जो रेवण–रूद्र–नीलमुनि–महेश्वर घण्टासिद्धा सारंग–वृद्ध–अगस्त्यादि के वंश का ब्राह्मण हो। इस सम्बन्ध में विशेषोल्लेख 'शिवदत्तरत्नाकर' नामक ग्रन्थ में हुआ है, जो कि मद्रास के बी०एम० नाथ एण्ड कंपनी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ की नौमी कल्लोल की सातवीं तरंग में हुआ है।

यह ग्रन्थ सिकन्दराबाद में सन् १८५३ में छपा था। अगस्त्य जी के प्रति आचार्य ने जो उपदेश दिया था। इसका उल्लेख 'सिद्धान्त शिखामणि' में हुआ था। वह जगद्गुरु जी की सत्ययुग की घटना है।

त्रेता की घटना–आचार्यपाद जी ने रावण की मृत्यु के अनन्तर विभीषण की प्रार्थना को स्वीकार कर लंका में एक समय में ३ करोड़ रूप धारण करके तीन करोड़ शिवलिंगों की स्थापना की। इन त्रिकोटि शिवलिंगों का वर्णन रेणुक दिग्विजय में इस प्रकार है। एक बार रावण ने नौकोटि शिवलिंग स्थापना की प्रतिज्ञा की। परन्तु अपनी मृत्यु पर्यन्त कुल ६ करोड़ शिवलिंगों की स्थापना कर पाये। अर्थात् ८ करोड़, २० लाख, ८० हजार वर्ष रावण की आयु थी। प्राण त्यागने के समय त्रिकोटि शिवलिंगों की स्थापना की आज्ञा विभीषण को दी। विभीषण ने सहर्ष स्वीकार किया। रावण का अन्तिम संस्कार करने तथा राम की आज्ञा से अयोध्या से लौटने के बाद रम्भापुरी में जाकर उन्होंने रेणुकाचार्य को गुरु रूप में प्राप्त किया। उन्हीं से यह कार्य सम्पन्न कराया। इससे सम्बन्धित चित्र भी हैं। प्रत्येक लिंग में आचार्य की प्रतिमा दिखाई पड़ती है।

कलिकुल पावनावतार यति चक्र चूड़ामणि वैदिक सनातन धर्म के परम उद्धारक, अद्वैत मत के परम प्रचारक, समस्त विद्या निष्णात् शिव के ज्ञान कलावतार भगवान् श्री आद्यशंकराचार्य जी महाराज अपने शिष्यों सहित दिग्विजय करते हुए, एक नदी तट पर जा रहे थे। वहीं पर परम गुरुदेव भगवान् गौडपादाचार्य जी का दर्शन हुआ। देखते ही परमाचार्य जी के पादपदमों में उन्होंने सदण्ड साष्टांग प्रणाम किया। परमाचार्य जी ने

अपने चरणों पर गिरे हुए अपने प्रशिष्य को उठाकर हृदय से लगाया तथा आशीर्वाद दिया। शंकराचार्य जी ने प्रस्थान त्रयी के भाष्यों सहित अन्य सबी भाष्य दिखाए। परम गुरु देव जी ने पूर्ण तत्परता से उन भाष्यों को देखा। भाष्यों को देखकर परम प्रफुल्लित होकर, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिये तथा उनकी प्रशंसा करते हुए बोले, हे स्वामी! एक दिन घूमते हुए हमारे परम गुरुदेव भगवान् वेद व्यास जी आये। मैंने विधिवत् प्रणाम, पूजा करने के अनन्तर आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, मुझे ब्रह्म सूत्र की रचना करके बड़ा खेद हुआ। क्योंकि उपनिषदों के विरोधी मंत्रों का समाधान मैंने जो ब्रह्मसूत्र में किया है। इसका रहस्य साधारण मनुष्य नहीं समझ सकता। अत: देवताओं के साथ ऋषियों सहित हमने शिवलोक में जाकर जगद्गुरुओं के भी जगद्गुरु भगवान् शंकर से प्रार्थना की। उन्होंने प्रकट होकर बालक शंकर के रूप में मेरे सूत्रों पर भाष्य करने का आश्वासन दिया। अतः मैं आपके पास आया हूं। उनका अवतार हो चुका है। वे आठ वर्ष की अवस्था में तुम्हारे शिष्य गोविंद भगवत पादाचार्य से संन्यास लेने आएंगे। अतः तुम मेरी आज्ञा से अपने शिष्य गोविन्द स्वामी के पास जाओ और उनसे कहो एक आठ वर्ष का द्रविड़ बालक आप से संन्यास की प्रार्थना करेगा। वह शिवावतार है या नहीं, उसकी दो बातों से परीक्षा करना। पहले उससे विष्णु सहस्त्र नाम का भाष्य लिखवाना। दूसरे जो नर्मदा जी के बाढ़ के जल को अपने कमण्डलु में भर ले। बाढ़ के जल की एक बूंद भी आपकी गुफा में न जाए। वह शंकर का अवतार होगा। उसे आप संन्यास अवश्य दें। गौडपादाचार्य शंकाराचार्य जी से कहते हैं कि मैंने अपने परमगुरु जी से आज्ञा प्राप्त करके अपने शिष्य को यही आदेश दिया। तुम तो साक्षात् शंकर हो, तब शंकराचार्य जी बोले, हे परम गुरु! जिस परम तत्त्व का मैंने प्रस्थानत्रयी में प्रतिपादन किया है, उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना चाहता हूं। उनकी बात सुनकर परम गुरु जी ने कहा, हे पुत्र! तुम मलयाचल पर्वत पर जाकर तपस्या करो। आपको परम तत्त्व का प्रत्यक्ष होगा।

ऐसी आज्ञा देकर परमाचार्य अपने आश्रम में चले गये। आचार्यपाद भी वहां तप करने लगे। एक दिन आकाशवाणी सुनाई दी। हे शंकर! तुम्हारी इच्छा तब पूर्ण होगी जब तुम श्री रेणुकाचार्य जी से चन्द्र मौलीश्वर लिंग प्राप्त करके उसकी पूजा करोगे। इस

वाणी को सुनकर शंकराचार्य जी रम्भापुरी में रेणुकाचार्य जी के पास जाकर उनका दर्शन करके स्तुति करने लगे।

भद्रङ्कुराय भजतामभयङ्कराय, मोहान्धकारखये कवये मनूनाम्।
कैवल्य कल्प तरवे गुरवे गुरूणाम्। श्री रेणुकाय गणपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥

अर्थ–कल्याण के देने वाले, भजन करने वालों के जन्म-मरण के भय को दूर करने वाले, मोह रूपी अंधकार को दूर करने में जो सूर्य के समान हैं। त्रिकालदर्शी कवियों के लिए कैवल्य मुक्ति देने वाले, कल्प वृक्ष के समान गुरुओं के गुरु गणों के स्वामी, रेणुकाचार्य जी को मैं प्रणाम करता हूं। यह श्लोक रेणुकविजय तीसरे अध्याय का १८वां श्लोक है। इस प्रार्थना के साथ ही आचार्य पाद शंकर ने चन्द्रमौलीश्वर लिंग की याचना की तथा **''ययाचे मुदितान्तरात्मा श्री चन्द्रमौलीश्वर नाम लिङ्गम।''**

श्री रेणुकाचार्य जी को भी इनसे बढ़कर और कौन सत्पात्र मिल सकता था। अतः इन्होंने बड़े प्रेम से उन्हें शिवलिंग प्रदान किया।

शंका–किन्तु आज का तार्किक मनुष्य इन बातों पर विश्वास नहीं करता है, क्योंकि उसका तर्क है। कहीं पत्थर के शिवलिंग से कोई पैदा हो सकता है। वह तो ठोस है। किसी के पांच मुख नहीं हो सकते। मुख तो शरीर का एक है। जन्म जीव का होता है, शरीर या शरीर के अंगों का अवतार नहीं होता। अतः यह बातें कपोल कल्पित असम्भव हैं। महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों में इसके प्रमाण नहीं मिलते। अतः यह कवियों की कल्पना मात्र है।

समाधान–आजकल स्कूल, कॉलेजों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह पूर्ण नहींहै तथा असत्य है। इन सब बातों का विचार अगले अध्याय में करेंगे। यहां पर केवल सामान्य रूप से इतिहास पर विचार करने की बात है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात कहां तक सत्य है। इस विषय में श्री निरञ्जनाचार्य कृत वेदान्त सार, वीरशैव चिन्तामणि ग्रन्थ के पूर्व खण्ड में भी रेणुकाचार्य जी के द्वारा श्री शंकराचार्य जी को चन्द्रमौलीश्वर लिंग देने की बात कही है।

शंकराचार्य सन्नाम योगीन्द्राय महोज्ज्वलम्।

चन्द्रमौलीश्वर लिङ्गम् दत्तवानिति विश्रुतः॥

श्रीरेणुकगणेशाख्यं रेवणं सिद्धदेशिकम्।

वीर शैव्यं मताचार्यं वन्देऽहं तम् जगद्गुरुम्॥

श्री शंकराचार्य नाम के योगीन्द्र के लिए महाप्रकाशवान प्रकाश से युक्त चन्द्र मौलीश्वर लिंग को दिया। ऐसा हमने सुना है। श्री रेणुक गणेश नाम के सिद्ध वीर शैवमत के आचार्य रेवण गुरु जगद्गुरु की मैं वन्दना करता हूं। इस प्रमाण के अतिरिक्त 'गुरुवंश महाकाव्य' में जो कि 'श्री रंगम् वाणी विलास प्रेस से' प्रकाशित हुआ है। इसके तीसरे सर्ग में भी चन्द्रमौलीश्वर लिङ्ग देने की बात आई है।

श्री चन्द्र मौलीश्वर लिङ्गमस्मै, सद्रत्लगर्भं गणनायकं च।

स विश्वरूपाय सुसिद्धदत्तम्स दत्त्वान्यगादीच्चिरमर्चयेति ॥३३॥

अर्थ–श्री शंकराचार्य जी ने रेवण सिद्ध महायोगी से प्राप्त चन्द्र मौलीश्वर लिंग तथा रत्लगर्भ गणपति को विश्व रूप नाम वाले शिष्य को देते हुए कहा कि चिरकाल तक इसकी पूजा करो। इस श्लोक की टीका स्वयं ग्रन्थकार ने की है।

सुसिद्धेन रेवण सिद्ध महायोगिना दत्तम् श्री चन्द्र मौलीश्वर लिङ्गम् प्राचाम् सम्मतं लिख्यते। अत्रनचाधिकम्।

अर्थ–चन्द्र मौलीश्वर शिवलिंग सुसिद्ध महायोगी रेवण द्वारा लिया गया। यह बात मैं प्राचीन आचार्यों के मत के विरुद्ध नहीं लिख रहा हूं और अधिक भी यहां नहीं लिखा। अतः इसकी सत्यता में संदेह नहीं करना चाहिए। इस गुरुवंश महाकाव्य की रचना श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की आज्ञा से पं० श्री काशी लक्ष्मण शास्त्री जी ने की थी। जो इस मठ के प्रतिष्ठित विद्वान् थे।

इस ग्रन्थ का सम्पादन मैसूर महाराज के धर्माधिकारी विद्याविशारद पं० कुणीगल राम शास्त्री जी ने किया। इन सब कारणों से गुरुवंश काव्य की प्रामाणिकता सिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'शिव रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में भी पूर्ण विस्तार के साथ इस विषय का वर्णन पृष्ठ १०५ में किया गया है।

ततः स रेवणासिद्ध सम्प्रदाय प्रवर्त्तिनाम्।
रेवणासिद्ध सम्प्राप्तम् चन्द्र मौलीशमप्यदात्,
आख्याच्चानेन लिङ्गेन तवाभीष्टाप्तिरित्यपि॥

अर्थ–तब रेवण सिद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्तक योगी रेवण सिद्ध जी से चन्द्र मौलीश्वर नाम का लिंग प्राप्त किया तथा कहा, इस लिंग का पूजन करने से तुम्हारे मनोरथ की प्राप्ति होगी। इस वृहद् ग्रन्थ के सम्पादक भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय राय बहादुर हो० कृष्णाशास्त्री बी०ए० ने अपने खोजपूर्ण वक्तव्य में इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है।

One very interesting point, which must be particularly drawn attention to in the story of Vidyaranya as given in the tweelfth Taranga or the 4th Kallola is the रेवण सिद्ध सम्प्रदाय which the आचार्य of the शंकराचार्य line that intated our विद्यारण्य were then practising at श्रृंगेरी। The लिंग of चन्द्रमौलीश्वर which is still worshipped as the chief deity by the आचार्य of श्रृंगेरी मठ is also said to have been presented to विद्यारण्य by his direct Guru रेवण सिद्ध। We know is a well know Shaiv teacher whom the lingayats still claim as one of their earliest आचार्य's the Keladi chiefs, who were mostly followers of the lingayat creed were devout adherents of the श्रृंगेरी शंकराचार्यमठ perhaps also for the same reason viz that the शंकराचार्य's where followers of the रेवण सिद्ध सम्प्रदाय। This explains perhaps why? in the अद्वैत मठ of श्रृंगेरी there is still a greater bias towards saivism and siva worship than towards Vaishnavism and Krishana worship. Though the founder, the great शंकराचार्य, was no respector of creeds not of any distinction between शिव and विष्णु।

अर्थ–"शिवातत्त्व ग्रन्थ के चौथे कलोल की १२वीं तरंग में लिखा है कि विद्यारण्य स्वामी जी को संन्यास देने वाले इस पीठ के आचार्य रेवण सिद्ध सम्प्रदाय के शिवाचार्य

थे। कहा जाता है कि श्रृंगेरी मठ में उक्त पीठ के आचार्यों द्वारा जिस चन्द्रमौलीश्वर शिवलिंग की पूजा सदा होती चल आ रही है। वह शिवलिंग विद्यारण्य को अपने गुरु से प्राप्त हुआ था। सुप्रसिद्ध श्री रेवणसिद्ध जी सदाशिव सिद्धान्त के संस्थापक थे तथा वीरशैव के लोग उनको अपना अत्यन्त प्राचीन आचार्य मानते हैं। श्री शंकराचार्य जी भी रेवण सिद्ध सम्प्रदायी थे। इसी कारण से श्रृंगेरी मठ के प्रति वीरशैव केलदी राजाओं की बड़ी श्रद्धा थी। वास्तव में शंकराचार्य जी की शिव-विष्णु में कोई भेद बुद्धि नहीं थी। फिर भी उस अद्वैतमठ में कृष्णोपासना एवं वैष्णव सिद्धान्त की अपेक्षा अब तक लिंग पूजा तथा शैव सिद्धान्त की प्रधानता रही है।'' **नोट**-इसमें विद्यारण्य स्वामी जी को संन्यास देने वाले रेवण सिद्ध संप्रदाय के थे। यह इतिहास तथा श्रृंगेरी की परम्परा के विरुद्ध है। अत: माननीय नहीं। शेषांश मान्य है।

इन सब शंकाओं का समाधान शंकराचार्य जी के जीवन वृत्त में विशेष रूप से किया जाएगा। श्रृंगेरी मठ में आज भी शिवलिंग का पूजन होता है। इसके पूजन का अधिकार भगवान् भाष्यकार जी ने नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को दिया है। यद्यपि इस मठ में सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी शंकराचार्य हुए हैं और सब चन्द्रमौलीश्वर का पूजन करते रहे, किन्तु विश्वरूपाचार्य तथा विद्यारण्य स्वामी जी गृहस्थ से संन्यासी हुए थे। अत: धर्माचार्य होने पर भी इनको लिंग पूजन में अधिकार नहीं दिया गया। यह भी किसी विद्वान् का मत है कि उस समय की मूर्ति रेणुकाचार्य तथा शंकराचार्य जो कि रम्भा मठ में थी। स्वामी वेदतीर्थ जी महाराज कहते हैं कि मैंने उस मूर्ति को देखा है, उस मूर्ति का चित्र भी लिया है।

इस प्रकारलीला करते हुए जगद्‌गुरु रेणुकाचार्य जी कांचीनगर में पहुंचे। वहां के सुप्रसिद्ध मन्दिर भगवान् वरद राज जी (विष्णु) की मूर्ति का मस्तक हिल रहा था। अनेकों उपाय करने पर कोई लाभ नहीं हुआ।उस समय के चोल राजा की आचार्य पर विशेष श्रद्धा थी। वे उनके नाम तथा महिमा से परिचित थे, किन्तु भिक्षु के रूप में वह उन्हें पहचान नहीं सके। बाद में पता चलने पर क्षमा मांगी तथा समस्या बताई। आचार्य प्रवर मन्दिर में पहुंचे। हाथ स्पर्श मात्र से मूर्ति का सिर कम्पन बन्द हो गया। उस समय

जगद्गुरु ने राजा को उपदेश दिया, जो चोल रेणुक सम्वाद के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह ग्रन्थ नहीं मिलता।

एक बार आप भ्रमण करते हुए मानसूर नामक नगर में पहुंचे। उस नगर के बाहर एक मन्दिर था। उसमें एक वट वृक्ष पर एक यक्ष दम्पती रहते थे। ये दोनों सब को कष्ट देते थे। एक दिन श्री रेणुकाचार्य जी वहां पहुंचे। रात्रि में वहीं विश्राम करने लगे। पुजारी के रोकने पर भी आप नहीं माने। रात्रि में सोये हुए आचार्य पर यक्षों ने औरों की भांति आक्रमण किया। आचार्य ने तीसरे नेत्र की अग्नि से उन्हें भस्म करके लोहे के २ गोलों के रूप में परिणत कर दिया जिससे २ तलवारें बनाईं गईं। उन तलवारों में से एक तलवार अपने शिष्य उज्जैन के महाराज विक्रमादित्य को दी। इस खड्ग से उन्होंने दुष्टों का विनाश किया। दूसरी तलवार से कोल्हापुर के राजा गोरक्षनाथ का हनन किया। यह गोरक्षनाथ सिद्ध योगी गोरखनाथ से भिन्न थे। वे तो सिद्ध महान् योगी थे। यह कोल्हापुर का राजा था।

इस कथा का भाव–यक्ष तमोगुण प्रधान देव योनि है। हिंसा प्रधान इनका जीवन है। ये अकारण कष्ट देते हैं। रेणुकाचार्य जी परमात्म तत्त्व के विशेषज्ञ हैं। शास्त्र सम्मत तथा अनुभूति जन्य ज्ञानोपदेश देकर जीवों का कल्याण करते हैं। उन्होंने अज्ञानरूपी रात्रि बिताने के लिए स्वयं प्रकाश रूपी ज्ञान अग्नि से जो समस्त सचित कर्मों को भस्म करती है। उस अग्नि से जन्म–मरण की प्राप्ति कराने वाली अविद्यारूपी यक्षिणी तथा कर्मरूपी यक्ष का संहार किया। "भासयति इति भस्म।" इस व्युत्पत्ति से भस्म के दो गोलों के रूप में परिवर्तित कर दिया। भस्म होकर अविद्या तथा कर्म, दोनों ही आदि, मध्य, अंत से रहित गोलों के रूप में परिणित हो गये, क्योंकि गोल वस्तु आदि मध्य अन्त से रहित होती है। अविद्या कर्म भी आदि अन्त मध्य से रहित है। अन्त में इससे ज्ञान वैराग्य रूपी दो तलवारें बनवायीं। इनमें से एक तलवार अपने पराक्रम से अद्वितीय ब्रह्म को प्राप्त करने वाले राजा को दी जिससे उन्होंने भीतर के काम क्रोधादि शत्रुओं का नाश किया। दूसरी तलवार से शरीर रूपी पुर में रहने वाले देहेन्द्रियों को आत्मा मानने वाले देहाध्यासी जीवरूपी गोरक्ष का विनाश किया।

इस कथा की अध्यात्म के अतिरिक्त ऐतिहासिक सत्यता सिद्ध होती है। इन बातों को अगले अध्याय में बताएंगे। यहां पर केवल संकेत मात्र है।

विक्रमादित्य को तलवार देकर आचार्यपाद कोल्हापुर नगर गये। वहां का राजा गोरक्षनाथ बड़ा अत्याचारी था। इसलिए सारी प्रजा तथा मन्त्रिमण्डल बड़ा दुखी था। कोई साधु संन्यासी नगर में नहीं जा सकता है। आपने जब नगर में प्रवेश किया तब सभी लोग चिन्तित हुए। परन्तु आप अभय गुण से सम्पन्न थे। राजद्वार में पहुंचकर 'भवति भिक्षां देहि', कहकर भिक्षा मांगी। सुनते ही राजा क्रोध से जल उठाष गर्जते हुए उसने अपनी पत्नी से कहा, बड़े आश्चर्य की बात है, मेरे नगर में कोई भिक्षु प्रवेश नहीं कर सकता, किन्तु यह निडर होकर मेरे दरबार में भीख मांगता है। अपनी रानी से कहा, यह तलवार लो, उससे संन्यासी के दोनों हाथ काट डालो। इसके लिए यही भिक्षा है। रानी परमभक्ता थी। धर्मसंकट में पड़ गईं। पति का स्वभाव जानती थी। न करती तो राजा उसको मार देता। कांपते हाथों से रानी तलवार लेकर आचार्य की ओर बढ़ी। तब देखती है कि उसके पति के पेट में एक तलवार पहले से भोंकी है। राजा की मृत्यु हुई। राजदरबार में हाहाकार मचा।

एक बार यह घूमते हुए कांचीपुरी के कामेश्वर मन्दिर पहुंचे। भावी गति को जानकर उन्होंने पृथ्वी का स्पर्श किया। पृथ्वी छूते ही पृथ्वी से छत्र सिंहासन सहित रुद्रमुनि शिवाचार्य का अवतार हुआ। कालान्तर में उनको अपने समान गुणों से युक्त देखकर रम्भापुरी के वीर सिंहासन पर उत्तराधिकारी बनाया। उन्होंने जब समझ लिया कि कारक पुरुष के रूप में मुझे जो कार्य करना था, कर चुका हूं। अब मुझे इस शरीर को छिपा देना चाहिए। ऐसा विचार करके जिस सुप्रसिद्ध सोमेश्वर लिंग से प्रगटे थे, उसी में लीन हो गये। इस घटना के सम्बन्ध में रेणुक जय के कर्ता ५वें सर्ग के ५३वें श्लोक में लिखते हैं–

श्लोक– तपनहिमकराद्याः प्राग्भवाः पश्चिमायां,

दिशितु सततमस्तम् यान्ति नैतद् विचित्रम्।

गुरुरयमुदितोऽभूत्-यत्र-तत्रैव चास्तम्,
गत इति तु विचित्रं शक्तिरेषा क्केषाम्॥

अर्थ–सूर्य और चन्द्रमादि पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम दिशा में अस्त हो जाते हैं। इनके जाने की गति विचित्र नहीं है। किन्तु जगद्गुरु रेणुकाचार्य (सूर्य) जिस सोमेश्वरलिंग से प्रकट हुए। उसी लिंग में लीन हो गए। उनकी इस विचित्र शक्ति को कौन जान सकता है।

शंका–आचार्यपाद सत्ययुग में अगस्त्य ऋषि के, त्रेता में विभीषण के, द्वापर में व्यासादि के, कलिकाल में शंकराचार्य के गुरु हुए। एक ही आचार्य चारों युगों में कैसे रहें?

समाधान–एक तो यह है कि सिद्ध के लिए तो चार युग क्या, वे कई मन्वन्तर कई कल्पतक भी जीवित रहते हैं। लोमश ऋषि के जीवन में करोड़ों ब्रह्मा बीत जाते हैं। अतः आश्चर्य नहीं करना चाहिए। दूसरा समाधान यह है कि शंकराचार्य की गद्दी पर बैठे जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य की गद्दी पर जैसे रामानुजाचार्य कहलाते हैं। इसी प्रकार उनकी गद्दी पर विराजमानाचार्य रेणुकाचार्य के नाम से कहे जाते हैं, परन्तु यह संतोषजनक समाधान नहीं, क्योंकि इनकी गद्दी पर बैठने वाले को शिवाचार्य कहते हैं। रेणुकाचार्य नहीं। अतः एक ही आचार्य चारों युगों में रहे। रेणुकविजय ग्रंथ बहुत सुन्दर है। उसके गद्य-पद्य भी बहुत मनोहर हैं।

बोलो जगद्गुरुभगवान् रेणुकाचार्य जी की जय

कल्याण के शिवाङ्क सन् १९३३ के आधार पर।

॥ इक्कतीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ बत्तीसवां अध्याय आरम्भ ॥

पञ्च शिवाचार्यों की उत्पत्ति का रहस्योद्घाटन

शंका–वीरलैंग्योपनिषद् सुप्रबोधागम पांचों के दिग्विजय ग्रन्थों से क्रमानुसार सोमेश्वर महालिंग से रेणुकाचार्य जी, सिद्धेश्वर महालिंग से दारुकाचार्य जी, राम नाथेश्वर महालिंग से चङ्कुर्णकाचार्य जी, मल्लिाकार्जुन से धेनुकाचार्य जी, काशी विश्वेश्वर महालिंग से विश्व कर्णकाचार्य जी का प्रादुर्भाव हुआ।दूसरी ओर भगवान् शंकर कहते हैं कि पांचों मेरे पंचमुखों से उत्पन्न हुए हैं तथा गुरूत्तम हैं। इन दोनों वचनों में से कौन यथार्थ समझा जाए। यदि दोनों ही वचन प्रामाणिक हैं, तो इन विरोधी वचनों का समन्वय कैसे किया जाए? कोई किसी के मुख से अथवा मुख का अवतार नहीं होता। लिंग तो पत्थर का तथा जड़ है। उससे चैतन्य कैसे उत्पन्न हो सकता है?

समाधान–माया विशिष्ट ईश्वर की अनिवर्चनीय माया से असम्भव भी सम्भव है। वह सत्य संकल्प है। वह अपनी अनिर्वचनीय माया शक्ति को अपने अधीन करके सब कुछ करने में समर्थ हैं। जब उनके संकल्प से उत्पन्न हुए साधारण मनुष्य भी (जादूगर) सात्विक, राजस, तामस देवताओं की आराधना करके, मिट्टी से मिठाई, कपड़े से खरगोश तथा कागज के टुकड़े को जलाकर, उसकी राख को हाथ में मसल कर, कई–सौ सौ के नोट पैदा कर सकता है तो क्या अनन्त शक्ति सम्पन्न परमात्मा नहीं कर सकता। जिसकी शक्ति से अति नन्हेंवट बीज से विशालतम वृक्ष निकल सकता है। अत्यन्त कमजोर तथा पतली सी लता में भारी तरबूज, कुम्हड़े की बेल से कुम्हड़ा तथा तरबूज की वेल से तरबूज पैदा हो जाता है। यह तभी सम्भव है। वह अपनी शक्ति से जड़ को चैतन्य, चैतन्य को जड़ कर देता है। वर्षा ॠतु में गोबर और दही मिलाकर रख देने से रात भर में उन दोनों के संयोग से चैतन्य बिच्छू उत्पन्न होता है। यह जड़ से चैतन्य का दृष्टान्त है तथा मनुष्यों के चैतन्य शरीर से हाथ पैर की उंगलियों के नाखून तथा बाल पैदा हो जाते हैं। इनको काटने से कष्टनहीं होता। इससे यह जड़ सिद्ध हुए। यह चैतन्य से जड़ की उत्पत्ति का उदाहरण है जो परमात्मा माता के उदर में पानी की कुछ बूंदों को स्थित करके उन बूंदों को नौ महीने में हाथ–पैर आदि अंगों से युक्त,

हड्डी खून मांस से युक्त, खाने-पीने, रोने-हंसने आदि विकारों वाला पुरुष या स्त्री को जन्म दे सकता है। वही परमात्मा पत्थर से या किसी अंग से भी किसी को जन्म अवश्य दे सकता है। यह बात युक्ति तर्क प्रमाण से युक्त है। अब दर्शन शास्त्र, वेद आगम के प्रमाण से सिद्ध करेंगे। महर्षि कणाद जी ने वैशेषिक दर्शन में स्थूल शरीर के सात भेद बताये हैं।

१. पार्थिव शरीर–सभी प्राणियों के स्थूल शरीर, आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी इन पंच महाभूतों के पंचीकरण करने पर एक-एक भूत के पांच-पांच भाग हो जाते हैं। उन पच्चीस तत्त्वों से बना हुआ शरीर पार्थिव कहलाता है। यद्यपि इन शरीरों में पांचों तत्त्व रहते हैं। इसलिए इनको पांच भौतिक शरीर कहते हैं, किन्तु इस शरीर में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता होने के कारण इसे पार्थिव कहते हैं।

२. जलीय शरीर–वरुण लोक में पाये जाने वाले मछली मगरमच्छ आदि के शरीर जलीय होते हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति स्थिति तथा विनाश जल में होता है।

३. दिव्य शरीर–अप्सराओं के लोक से लेकर ब्रह्मा जी के लोक पर्यन्त पाये जाने वाले देवताओं के शरीर अग्नि तत्त्व प्रधान होने के कारण दिव्य कहलाते हैं। इनके शरीर में अग्नि तत्त्व की प्रधानता होती है। इसलिए आग्नेय कहते हैं। जुगनू की तरह इनके शरीर से प्रकाश निकलता है। वह प्रकाश चमकने, छिपने वाला नहीं होता। स्थिर रहता है। जिसने मनुष्य शरीर प्राप्त करके शुभ कर्म अधिक किया है, उनके शरीर छूटने के ४८ मिनट बाद एक महूर्त या दो घड़ी में सुगंधि वाले कमल के फूल से देवताओं का शरीर निकलता है। वह पैदा होते ही १६ वर्ष के बालक के समान होता है। उसमें पसीना नहीं आता, छाया नहीं होती। पलकें नहीं गिरतीं। धरती से ४ अंगुल ऊपर रहता है। शरीर में शिथिलता कभी नहीं आती। जन्म से अंत तक १० हजार हाथियों की शक्ति बनी रहती है। कभी बीमार नहीं पड़ता। शरीर से दुर्गन्ध नहीं आती। बल्कि १ योजन तक महासुगन्धि रहती है। स्वर्ग में इन्द्र, अग्नि, वायु आदि का शरीर दिव्य शरीर है।

४. वायवीय शरीर–ये शरीर दिखाई नहीं देते। इन शरीरों में वायु तत्त्व की प्रधानता होने के कारण ये वायवीय शरीर कहलाते हैं। इनके शरीर में हाथ-पैर आदि अंग प्रत्यंग

रहते हैं। जैसे वायु नहीं दीखती, वैसे ही इनका शरीर भी नहीं दिखाई देता। भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्म राक्षस, बेताल आदिकों के शरीर वायवीय हैं।

५. यौगिक शरीर–समर्थ सिद्ध योगियों के द्वारा योग शक्ति से निर्मित शरीर यौगिक शरीर हैं। वे परमात्मा की तरह अपनी संकल्प शक्ति से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, पेड़-पौधों पर जहां भी चाहें, शरीर को रच सकते हैं अथवा अपने एक शरीर को उसी रूप में अनेक दिखा सकते हैं। अथवा अनेक रूपों में प्रकट हो सकते हैं। जैसे शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, राम-कृष्ण, अगस्त्य, रेणुकाचार्य, शंकराचार्य, व्यास, शुकदेव आदि इनकी कथा पुराणों में आती है। ये समर्थ महापुरुष धारणा, ध्यान, समाधि रूपी संयम से अनेकों शरीर धारण करके लीन कर सकते हैं। जैसे दुर्गा सप्तशती में दुर्गा जी ने अपने शरीर से अनेकों शक्तियां उत्पन्न कीं और अपने में लीन कर लीं। ऐसे ही भगवान् राम ने खर, दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों को चौदह हजार राम रूप दे दिया। वे परस्पर एक-दूसरे को राम समझ कर प्रहार करते हुए मारे गये, किन्तु उन्होंने अपने आप तथा अन्य असुरों को असुर के ही रूप में देखा। अगस्त्य जी ने देवताओं के प्रार्थना करने पर विराट रूप धारण करके तीन चुलुओं में समुद्र पी लिया। इन सब के योग शक्ति से निर्मित यौगिक शरीर थे।

६. यातनामय देह–जिस जीव ने मानव शरीर में पाप अधिक किये हैं तथा पापों से छूटने के लिए कोई प्रायश्चित नहीं किया। उनको मरने के ४८ मिनट बाद, नरक का दुःख भोगने के लिए एक विलक्षण शरीर कमल से पैदा होता है जो दुर्गन्धि से युक्त होता है। उसको पाकर जीव, जब तक उसको नरक भोगना है। तब तक कुल्हाड़े से काटने पर, अग्नि में जलाने पर, साग-सब्जी की तरह घी-तेल के खौलते हुए कड़ाहों में डालने पर पर्वत से गिराने पर भी, अपार कष्ट मिलते हुए भी शरीर नहीं छूटता, क्योंकि इस शरीर को पाकर जीव नरक की यातना भोगता है। इसलिए इसे यातनामय शरीर कहते हैं। इस शरीर का रूप रंग लंबाई-चौड़ाई, मोटाई त्यागे हुए स्थूल शरीर के समान होती है।

७. दिव्यातिदिव्य शरीर–यह शरीर पञ्चदेवों में विष्णु-शिव-गणेश-सूर्य प्रभृति का होता है। पांच भौतिक न होकर चिदानन्दमय होता है। मानस में भी कहा है।

चौ०—चिदानन्दमय देह तुम्हारी, विगतविकार जान अधिकारी।

यह नित्य, सर्वव्यापी, निर्विकार होने पर भी माया के कारण अनित्य, परिच्छिन्न आदि रूप में दीखता है। वास्तव में सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। उसमें देहदेही भाव कल्पित है। वह शरीर अन्य सर्वसाधारण जीवों के समान गर्भ में न आने पर भी लोगों को माया के प्रभाव से गर्भस्थ के समान प्रतीत होता है। वह विष्णु के अवतार में वैष्णवी योगमाया, शिवावतारों में माहेश्वरी योगमाया से उनका आदेश प्राप्त करके योगमाया वायु के रूप में माता के गर्भ में प्रवेश करती है। तब देवता ऋषि भगवान् को गर्भस्थ जानकर गर्भ स्तुति करते हैं। जब भगवान् के प्रकट होने का समय होता है, तब योगमाया वायु के रूप में निकल जाती है तथा भगवान् क्रमानुसार पृश्नि–अदिति–कौशल्या–रेणुका–सुमति के आगे पृश्नि गर्भावतार–वामन–राम–परशुराम–कृष्ण–कल्कि के रूप में आने से पूर्व माता–पिता को चतुर्भुज रूप में दर्शन देते हैं। माता के प्रार्थना करने पर दोभुजी बालक के रूप में रुदन करते हैं। यह ब्रह्म वैवर्तपुराण के आधार पर अवतारवाद का समाधान किया है। अब युक्ति तथा तर्क की शैली से विचार किया जाता है। पाठक विचार करें। यदि भगवान् चतुर्भुज रूप में वस्त्राभूषणों आयुधों सहित माता के गर्भ में नवमास रहें, भगवान् के अस्त्रशस्त्रों से माता के चलने, उठने, बैठेन आदि क्रियाओं से भगवान् के अस्त्र–शस्त्रों से माता की मृत्यु होनी चाहिए। संसार में बच्चा जब कहीं भी पैदा होता है, तो वस्त्राभूषणों से रहित होता है। समाचार पत्रों में तथा प्रदर्शनियों में भी देखने–सुनने में आता है। २–३ मुख वाले चतुर्भुजी अद्भुत अद्भुत बच्चे पैदा होते हैं। परन्तु वे वस्त्राभूषणों से रहित होते हैं। इन सब कारणों से सिद्ध है कि भगवान् जन्म नहीं लेते, किन्तु प्रगट होते हैं। परमात्मा अजन्मा है। भगवान् का जन्म नहीं। अतः मृत्यु भी नहीं। वही मरता है, जिसका जन्म होता है। यदि ईश्वर में जन्म मान लिया जाए, तो शुभाशुभ मिश्रित तीन प्रकार के कर्मों की कल्पना करनी पड़ेगी, जो असम्भव है। परन्तु माया के चमत्कार के कारण उनके शरीर में मांस, अस्थि रक्तादि दिखाई देता है। शत्रुओं के प्रहार से रक्त निकलता है। मूर्छा का नाटक भी करते हैं। किन्तु वास्तव में नहीं अर्थात् यह भगवान् की लीला या खेल है।

प्रश्न–राम कृष्णावतार में उनके शरीर त्याग की बात आती है?

उत्तर–इस रूप में वह शरीर नहीं त्यागते, किन्तु २ भुज रूप छिपाकर चतुर्भुज रूप में आ जाते हैं। भागवत एकादश स्कन्ध में इसको स्पष्ट करते हुए शुकदेव जी ने कहा, हे राजन! जो भगवान् गुरु दक्षिणा में कई वर्षों के मरे हुए गुरुपुत्र को लौटा सकते हैं, गुरु दक्षिणा के रूप में दे सकते हैं। जिन्होंने अुर्जन की रक्षा के लिए जन्मते ही मृत्यु को प्राप्त हुए, ब्राह्मण बालक को लाकर अर्जुन की प्राण रक्षा की। जिन्होंने लगभग १०० वर्ष पूर्व माता देवकी के मरे हुए पुत्रों को लाकर माता को दिया। जिनकी आज्ञा से पैर में बाण मारने वाला वहेलिया भी शरीर सहित वैकुण्ठ में गया। उस भगवान् ने दिव्याति दिव्य शरीर त्यागा हो, असम्भव है। चरणों में बाण मारने के अनन्तर दारुक को भगवान् ने द्वारिका जाने की आज्ञा दी तथा भगवान् चारों वेदों, छः शास्त्र तीर्थ, ऋषियों, लक्ष्मी तथा रुक्मिणी सहित ब्रह्मलोक पहुंचे। वहां ब्रह्मा जी ने उनका यथोचित सत्कार किया। ब्रह्मा शिवादि देवता सनकादि ऋषि निर्निमेष नेत्रों से देखते रहे। वे कहां अलक्षित हो गये। जान नहीं पाये। जैसे बादलों में विद्युत् चमक कर अलक्षित हो जाती है। कोई नहीं देख पाता। उसी प्रकार देवताओं के देखते-देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये। कृष्ण के शरीर की मृत्यु नहीं हुई। भागवत विष्णु-पुराण से सिद्ध होता है। भगवान् राम के सम्बन्ध में भी अध्यात्म आदि रामायणों में लिखा है। जिस समय काल के साथ भगवान् बात कर रहे थे, लक्ष्मण जी को द्वार पर नियुक्त किया तथा कहा, मेरे काल के सम्वाद में किसी को अन्दर मत आने देना। यदि मेरी आज्ञा का उल्लंघन हुआ तो मृत्युदण्ड होगा। जिस समय भगवान् काल के साथ बात कर रहे थे, उसी समय दुर्वासा ऋषि आ पहुंचे और लक्ष्मण जी से कहा कि इसी समय मुझे राम के दर्शन कराओ, नहीं तो सम्पूर्ण राज्य भस्म कर दूंगा। लक्ष्मण जी ने उनसे बहुत प्रार्थना की, किन्तु वे नहीं माने। शाप देने लगे। तब लक्ष्मण जी ने विचार किया। सभी की मृत्यु की अपेक्षा मेरी मृत्यु ही उत्तम है। भगवान् के पास दुर्वासा को भेज दिया। उनके विदा होने पर राम ने विचार किया कि ऐसे अनन्य सेवक को कैसे मारे? सेवक का त्याग ही मृत्यु दण्ड है। ऐसा समझ कर लक्ष्मण जी को भगवान् ने त्याग दिया। इसके बाद कुश को राज्य गद्दी देकर दोनों भाइयों सहित संध्या किया। लक्ष्मण जी पहले सरयू का स्पर्श करते ही शेष रूप से चले

गये। स्नान संध्योपासना के अनन्तर भगवान् ने आचमन किया। लक्ष्मी तथा भूदेवी सहित सम्पूर्ण वेदादि ग्रन्थ भगवान् के साथ मूर्तिमान् होकर चल रहे थे। वहीं से चतुर्भुज रूप धारण कर ब्रह्मलोक पहुंचे। ब्रह्मा से सत्कृत होकर वे सान्तानिक लोक को प्राप्त हुए। इन दोनों अवतारों में भगवान् के शरीर त्याग की बात नहीं आई, क्योंकि उनका शरीर अतीन्द्रिय चिन्मयाविनाशी है। देवताओं के शरीर में आंख से देखने की, कान से सुनने की, नासिका से सूंघने की शक्ति होती है, किन्तु भगवान् की प्रत्येक इन्द्रिय प्रत्येक क्रिया कर सकती है। भगवान् आंख से देखने के अतिरिक्त, सुन भी सकते हैं। सूंघ भी सकते हैं। चख भी सकते हैं। प्रत्येक कर्मेन्द्रिय की क्रिया कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्तःकरण चतुष्टय को उन्हीं से शक्ति प्राप्त होती है। यह भगवान् का दिव्यातिदिव्य चिन्मय अविनाशी शरीर मन-वाणी तथा बुद्धि की शक्ति से परे, अनिर्वचनीय, सातवें प्रकार का दिव्यातिदिव्य शरीर है। वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उनमें देह, देही भाव तीनों कालों में नहीं हैं। न होने पर भी जीवों के अज्ञान से ऐसा प्रतीत होता है।

जिस प्रकार विष्णु के अवतारों में राम-कृष्णादि का शरीर दिव्याति दिव्य है। इसी प्रकार शंकर जी के अवतारों में भी रेणुकाचार्य जी, दारुकाचार्य जी, धेनुकरणकाचार्य जी, विश्वकरणकाचार्य जी, गृहपति, भगवान् आद्य शंकराचार्य जी का भी शरीर इसी प्रकार का है। जो संसार के अनन्त शरीरों को रच करके उनमें प्रवेश करके सत्ता स्फूर्ति देता है। वह अपनी सामर्थ्य के बल पर खम्भे से प्रगट होने वाले नृसिंह भगवान् के समान शिवलिंग से भी प्रगट हो सकता है तथा अनेकों लीलीएं करके, उसी में लीन भी हो सकता है। भगवान् पत्थर सै कैसे निकल सकते हैं तथा अपने मुख से कैसे अवतरित हो सकते हैं इसका विस्तार से समाधान किया जाता है।

सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष ईशान इनके सम्बन्ध में शिव पुराण में क्रमानुसार प्राण के, अपान के, समान के, उदान के, व्यान के, देवता कहे गये हैं तथा अन्यान्य आर्ष ग्रन्थों के अनुसार सद्योजात ॐ के अकार विश्व आदि के प्रतीक हैं। वामदेव उकार, तैजस, हिरण्यगर्भ आदि के प्रतीक हैं, अघोर समष्टि व्यष्टि भेद से मकार प्राज्ञ तथा सूत्रात्मा के प्रतीक, तत्पुरुष अर्द्धमात्रा, सदाशिव आदि के प्रतीक, ईशान बिन्दु परमशिव

आदि के प्रतीक हैं, परन्तु रुद्राध्याय में विष्णु सूरि अपने **"ॐ नमो भवाय च रुद्राय च"** इस मन्त्र की आध्यात्मिक व्याख्या में सद्योजात शब्द से कहा है। जाग्रत का अदर्शन (लोप) करके, अल्पकालीन तथा अस्थायी होने से सद्योजात। **वामदेव-वां वसु स्त्रक् चन्दन वनितादि तेन दीव्यतीति वाम् देव**-वाम का अर्थ है स्वर्ण, माला, चन्दन, स्त्री आदि इहलोक की भोग सामग्री वाम शब्द से और इनको प्रकाशित करने वाला देवता वामदेव कहा गया है। **अघोर**-सुषुपति में संशय भ्रान्ति आदि क्लेशों से रहित परमात्मा के शान्त रूप को अघोर कहा है जो नियन्त्रण से परे दुखदायी है वह क्रूर है। अतः सुषुपति के अभिमानी प्राज्ञ को अघोर शब्द से कहा गया है। यह तीनों विश्व, तेजस, प्राज्ञ तथा वामदेव, सद्योजात तथा अघोर चैतन्य के प्रतिबिम्ब रूप मिथ्या हैं। **तत्पुरुष**-बिम्ब स्थानीय असंग, अद्वितीय, स्वयं प्रकाश, परमानन्द स्वरूप आत्मा तत्पुरुष शब्द से कहा है। वही औषनिषद् पुरुष है। **ईशान**-कार्य कारण उपाधियों से रहित पूर्ण चैतन्य, शुद्ध ब्रह्म ईशान शब्द से कहा जाता है।

ऊपर लिखा हुआ सद्योजात से ईशान पर्यन्त यह उद्धरण शंकर जी के पांचों मुखों के सम्बन्ध में विष्णु सूरि जी का आध्यात्मिक भाव यहां पर उल्लिखित किया गया है।

॥ बत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ तैंतीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

पञ्चमुख, पञ्चाचार्य तथा पञ्चमहालिङ्गों के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार

१. रेणुकाचार्य-सद्योजात (सोमेश्वर महालिंग) मुख से रेणुकाचार्य जी उत्पन्न हुए। इससे पहले सद्योजात शब्द पर विचार करते हैं। सद्यः = तत्काल, जात = प्रगट होना। अर्थात् साधक के द्वारा विषयाकार विजातीय वृत्ति का तिरस्कार करते हुए तत्काल ब्रह्माकार वृत्ति का प्रादुर्भाव ही सद्योजात कहा जाता है। जैसे विद्युत् का बटन दबाते ही अंधकार दूर होकर प्रकाश हो जाता है। जीव ब्रह्म की एकता का अनुभव करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति ही सद्योजात तत्त्व है। इसका सोमेश्वर शिवलिंग से सम्बन्ध

है। सोमेश्वर किसे कहते हैं। सोमेश्वर में सा-उमा-ईश्वर तीन पद हैं। सा उमा मिलकर सोम हुआ उमा = ब्रह्मविद्या जीव को ब्रह्म के साथ मिलाने वाली शक्ति सोम है। पार्वती सहित शंकर सोम है। वही सोम सब कुछ समर्थ आकाश परमात्मा का चिन्ह है। अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण, अखण्ड, मण्डलाकार परमात्मा जो दशों दिशाओं में प्रकाशित होता है वह आकाश कहलाता है,परमात्मा को जानने का साधन लिंग है।

आकाश शंकर जी का लिंग है। पृथ्वी जलहरी पार्वती हैं। शक्ति विशिष्ट परमात्मा सोमेश्वरहैं। इस सोमेश्वर से भगवान् रेणुकाचार्य जी प्रकट हुए। रेणु = अणु - अणु - परमाणु में व्याप्त परमात्मा। जो "अणोरणीयान् महतो महीयान्" अणु से अणु अति सूक्ष्मतम है वह रेणुक हैं। आचार्य-जो शास्त्र में कहे हुए वचनों का स्वयं पालन करें और उपदेश दें। उसे आचार्य कहते हैं अर्थात् वह त्रिपुटी स्वरूप है। ज्ञाता रेणुकाचार्य, ज्ञान सद्योजात ज्ञेय सोमेश्वर इन तीनों भावों के ऐक्य को लेकर सद्योजात मुख के अवतार रेणुकाचार्य जी को सोमेश्वर लिंग से प्रकट कहा।

२. द्वितीयाचार्य-दारुकाचार्य-वामदेव तथा सिद्धेश्वर महालिंग का सम्बन्ध एवं भाव

वामदेव-वाम माने वाम मार्ग के प्रवर्त्तकाचार्य के रूप में शंकर का स्वरूप प्रकट होकर जो वाम मार्ग का प्रचार करते हैं वे वामदेव कहे जाते हैं। वे सर्व साधारण लोगों को वाम मार्ग के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति है, परन्तु वाम मार्ग सर्वोत्तम मार्ग है। इस मार्ग की प्रशंसा करते हुए, भगवान् शंकर ने स्वयं पार्वती से कहा है-

अयं सर्वोत्तमो मार्गः शिवोक्तः सर्व सिद्धिदः।
जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यास्यानन्तजन्मभिः।
पर द्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु नपुंसकः।
परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः॥
तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे पदेऽधिकारत।
ब्राह्मणो वेद शास्त्रज्ञः तत्त्वज्ञो बुद्धिमान् वशी॥

अर्थ-यह वाम मार्ग शंकर जी के द्वारा कहा गया सभी सिद्धि देने वाला मार्ग उत्तम है। जितेन्द्रिय को ही सुलभ है। अजितेन्द्रिय को अनन्त जन्मों में भी सफलता नहीं मिल

सकती। जो दूसरों के धन को लेने की दृष्टि से नहीं देखता। पर स्त्रियों में जो नपुंसक है। दूसरे की निन्दा में गूंगा है। सदैव जितेन्द्रिय रहता है। ऐसे वेद तत्त्व के सार को जानने वाले महा बुद्धिमान् ब्राह्मण का ही इसमें अधिकार है। इससे यह सिद्ध होता है कि शास्त्र रूपी सागर को मंथन कर जो सार रूपी तत्त्व ग्रहण करता है, वही अधिकारी है।

शंका–इसमें तो शिव जी ने पंचमकारों के सेवन की आज्ञा की है फिर यह सर्वोत्तम कैसे?

समाधान–जिस ग्रन्थ में पंचमकार की बात कही है। उसमें इसका समाधान नहीं है, किन्तु उससे सम्बन्धित ग्रन्थ में समाधान किया है। जैसे एक ग्रन्थ में शिवजी पार्वती से कहते हैं–

मद्यं, मासं च मीनं च मुद्रा, मैथुनमेव च।
मकारपंचकम् प्राहुर्योगिनाम् मुक्ति दायकम्॥
ऐते पंचमकारःस्युः मोक्षदाहि युगे-युगे।

अर्थ–हे देवि! मदिरा, मांस, मछली, मुद्रा तथा मैथुन ये पांचों मकार योगियों को प्रत्येक युग में मुक्ति देने वाले हैं। इन पांचों मकारों का यथार्थ अर्थ हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार से किया जाता है–

१. मद्य– यदुक्तम् परमं ब्रह्म निर्विकारम् निरंजनम्।
तस्मिन् प्रमदनम् ज्ञानं तद् मद्यं परिकीर्तितम्।
पीत्वा, पीत्वा पुनर्पीत्वा यावत् पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

अर्थ–जो निर्विकार निरंजन यानि स्वयं प्रकाश परमब्रह्म परमात्मा कहा है। उस परमात्मा के ज्ञान में उनमत्त होना ही मद्य कही है। ऐसी मदिरा को तब तक पीता रहे जब तक मूर्छा खाकर अर्थात् देहाध्यास से रहित होकर पृथ्वी पर न गिर जाए। होश में आने पर फिर पी ले। निरन्तर इस ज्ञान रूपी मदिरा का पान करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता।

२. मांस– मा शब्दाद्रसनाज्ञेया तदंशान् रसना प्रियान्।
सदैव भक्षयेद् यस्तु मांसाशी स निगद्यते॥

पुण्यानपुण्यान् पशून्हत्वा ज्ञान खड्गेन योगवित्।

परे लये नयेच्चित्तम् स भवेन् मांस साधकः॥

अर्थ–मांस में मा शब्द से रसना जाननी चाहिए। रसना को प्रिय लगने वाले पदार्थों का जो सदैव भक्षण करते हैं उसे मांसभक्षी कहते हैं। अथवा जो ज्ञानी योग जानने वाले ज्ञान रूपी तलवार से पुण्य-पाप रूपी पशुओं को मारकर अपने चित्त को परमात्मा में लीन करता है, वह मांस पकाने वाला कहा जाता है।

३. मीन– गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ, द्वौ चरतः सदा।

तौ मत्स्यौभक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्य साधकः॥

मनसा चेन्द्रिय ग्रामं संयोजयति योगवित्।

मत्स्याशीः स भवेद्यस्तु शेषाःधीवरवृत्तयः।

अर्थ–गंगा यमुना दो नदियों के बीच में दो मछलियां घूमती हैं। यानि दाहिने और बायें स्वर से इडा पिंगला नाड़ी से जो स्वर निकलते हैं। ये दोनों नदियों के बीच में मछलियां हैं। इन दोनों श्वासों को रोकने वाला योगी मछली खाने वाला कहा गया है। मन सहित इन्द्रियों को विषयों से रोककर जो योगी परब्रह्म परमात्मा में चित्त को जोड़ता है। वह मछली खाने वाला कहा गया है। अन्य लोग धीवर वृत्ति वाले हैं अर्थात् प्राणायाम शील योगी को मछली खाने वाला कहा है।

४. मुद्रा– सत्संगेन भवेन् मुक्तिरसत् संगेन बन्धनम्।

असत् संग मुद्रणं यस्तु सा मुद्रा परिकीर्तिता।

साज्ञेयाधारणा ध्यानं समाधिःस्यात्तु मोक्षदा।

अर्थ–सत्संग से मुक्ति प्राप्त होती है। दुष्ट के संग से जन्म-मरण का बन्धन होता है। असत् पुरुषों का संग त्याग करने से तथा साधन करने से जो परमानन्द की प्राप्ति होती है, वह मुद्रा कही गई है। इसकी प्राप्ति मुक्ति देने वाली धारणा ध्यान समाधि के अभ्यास से होती है। यही योगी की मुद्रा है। धन का संग्रह नहीं।

५. मैथुनम्–कुल कुण्डलिनी शक्तिः देहि नाम् देह धारिणी।

तया शिवस्य संयोगः मैथुनं परिकीर्तितम्।

सहस्त्रारौ पौरबिन्दौ कुण्डल्या मैथुनं शिवे।
मैथुनं शयनम् दिव्यम् मैथुनं प्रकीर्तितम्॥
वीर्य पातस्य समये सुष्मणा क्षोभसम्भवः।
चन्द्रात् स्त्रवति यः सारः मैथुनं परिकीर्तितम्।
एतदेव रतम् प्रोक्तमन्यस्याद् रासभं रतम्॥

अर्थ–शरीर धारियों के शरीर को धारण करने वाली परमात्मा की कुण्डलिनी नाम की शक्ति जो मूलाधार चक्र में सोई हुई है। वह जग करके ऊपर के पांच चक्रों का बेधन करके सहस्त्रदल कमल में स्वयम्भु लिंग रूप शिव के साथ मिलती है। शिव का शक्ति के साथ योग शिव शक्ति मैथुन कहा गया है। दिव्य शयन मैथुन कहा गया है। जैसे साधारण स्त्री पुरुष के मिलने से तथा वीर्यपात से आनन्द प्राप्त होता है। उसी प्रकार सहस्त्र दल कमल में ब्रह्मरन्ध्र स्थित चन्द्रमण्डल से जब अमृत गिरता है, उससे योगी को मैथुन की अपेक्षा सहस्त्र गुना आनन्द प्राप्त होता है। यही योगियों का दिव्य मैथुन है। इसके अतिरिक्त काम्य स्त्री–पुरुष का मैथुन गधे के मैथुन के समान अज्ञान मूलक दुख देता है।

ये वाम मार्गियों के पांच मकारों का दिव्य अर्थ है। लौकिक पंच मकार सेवन करने वाले नर्क को तथा जन्म–मरण के दुख को प्राप्त करते हैं। इन दिव्य मकारों का सेवन करने वाला योगी चारों युगों में विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है। ये वामदेव नाम के मुख का अर्थ है। इस मुख के अधिष्ठातृ देवता वामदेव हैं।

दारुकाचार्य जी का अर्थ या भाव–जन्म मरण के प्रवाह में पड़े हुए जीव को जो दारुण दुखों से ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानोपदेश द्वारा जीव को करुणापूर्वक ब्रह्मानुभूति कराकर परमपद की प्राप्ति करने में समर्थ हो। उन्हीं को दारुकाचार्य कहते हैं अथवा दारु लकड़ी को भी कहते हैं। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि व्याप्त है। उसी प्रकार व्यापक ब्रह्म का उपदेश देकर जीव को परमात्मा की प्राप्ति कराने में जो समर्थ हो। वह दारुकाचार्य हैं। **"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" "ब्रह्मविदाप्नोति परम्"** इन श्रुतियों के अनुसार ब्रह्मवेत्ता होने के कारण वह ब्रह्म स्वरूप हैं। जीव को ब्रह्मभाव की प्राप्ति कराते

हैं। इसलिए उन्हें जगद्गुरु दारुकाचार्य कहते हैं अथवा गुरुमन्त्र, मन्त्रदाता गुरु तथा इष्टदेव इनमें अभेदोपासना के द्वारा तीनों की एकता का अनुभव कराके शिष्य को जन्म-मरण से छुड़ाने के कारण दारुकाचार्य हैं।

सिद्धेश्वर शिवलिंग–इनका प्रादुर्भाव शंकर जी के वामदेव मुख से हुआ है। वामदेव जी सर्वोत्तम वाम मार्ग के प्रवर्तकाचार्य हैं। इनकी प्रधानता होने के कारण सिद्धेश्वर महालिंग से प्रादुर्भाव हुआ। अर्थात् योग से प्राप्त होने वाली अष्ट सिद्धियों पर विजय प्राप्त करके जीव को जीवन मुक्ति तथा विदेह मुक्ति देने वाले कल्याणकारी परमात्मा के ज्ञापक शिवलिंग से हुआ। इससे इन तीनों का ऐक्य सिद्ध हुआ।

३. चंकुकरणकाचार्य, रामनाथेश्वर, शिवमहालिंग तथा अघोर का पारस्परिक सम्बन्ध तथा एकता

चंकु = शब्द का अर्थ तमिल भाषा में चंकु इसका संस्कृत शंकु कांटे को कहते हैं। त्रिताप जन्म-मरण रूपी कांटा जो तीनों प्रकार के दुख जीव को देता है। इसे त्रिशंकु भी कहते हैं। जीव के इस जन्म-मरण रूपी शंकु को जो आचार्य भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का उपदेश देकर सत् शिष्यों को तीनों प्रकार के दुख की आत्यन्तिक निवृत्तिपूर्वक विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त कराने में समर्थ जगद्गुरु शंकुकरणकाचार्य (सम्भवतः तामिल भाषा में शंकु को ही चंकु कहते हैं) का प्रादुर्भाव रामनाथेश्वर शिवमहालिंग से हुआ अर्थात् जो अणु-अणु में रमने वाला परमात्मा का समस्त अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के अनन्त कोटिजीव रूप पशुओं को जन्म-मरण रूपी बन्धन में डालकर नाथता है अर्थात् अपने अधीन करता है। वही सर्व समर्थ सबका परम शासक होने के कारण सबका ईश्वर है। इन समस्त विशेषताओं से युक्त को रामनाथेश्वर कहते हैं। वह कैसे प्रधानता वाले मुख से युक्त है? उसे अघोर कहते हैं। अर्थात् वह परम शान्त घोरता रूप क्रूरता से रहित है। यदि कोई कहे, वह तो क्रूरतापूर्वक दुष्टों को दण्ड देता है। इसलिए घोर है। यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि बाहर से घोर होने पर भी भीतर में अपने हाथ से मरने वालों को सद्गति देता है। अतः अघोर है। जैसे राजा तथा गुरु उत्पथगामी प्रजा तथा शिष्य को दण्डित करके उसको सुधारते हैं। ऐसे भगवान् भी जीवों को दण्ड देकर

उनका कल्याण करते हैं। इस प्रकार शंकु कर्णकाचार्य, रामनाथेश्वर तथा अधोर तीनों स्थूल दृष्टि से भिन्न होने पर भी सूक्ष्म दृष्टि से उसी प्रकार अभिन्न हैं। जैसे किसी खाद्य वस्तु बरफी, गुलाब जामुन, लड्डू आदि में उनका आकार, भार तथा स्वाद तीनों भिन्न होने पर भी तीनों एक हैं। इनका सेवन करने वाले को तीनों की एक साथ प्राप्ति होती है। इन तीनों को कोई भिन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकरा पांच आचार्यों के नाम लिंग तथा मुख अभिन्न है।

४. धेनुकरणकाचार्य–मल्लिकार्जुन तथा तत्पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध

धेनु करणकाचार्य शब्द में धेनु शब्द गौ के अर्थ में प्रसिद्ध है, किन्तु इसके अतिरिक्त और भी अनेकों अर्थ निकलते हैं। पूर्व मीमांसा में धेनु शब्द विश्व का भरम-पोषण धाता के अर्थ में आया है, धाता को धेनु कहा है। गीता में भी भगवान् ने **''पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः''** मैं इस जगत का पिता, माता तथा धाता पितामह तथा मरीचि आदि पिताओं का पिता होने के कारण मैं पितामह ब्रह्मा हूं। गीता के इस प्रमाण से धेनुकरणकाचार्य जी समस्त जगत को धारण करने वाले होने के कारण धेनु हैं। इसलिए धेनुक कहे जाते हैं। उपदेश देने के कारण आचार्य हैं। इसलिए धेनुकरणकाचार्य कहे गये हैं। इनका प्रादुर्भाव मल्लिकार्जुन शिवलिंग से हुआ है अर्थात् काम, क्रोधादि शत्रुओं से जो मल्ल पहलवान् के समान युद्ध करने में समर्थ है अथवा मल्लिका पुष्प की सुगन्धि के समान जिससे ब्रह्मकार वृत्ति निकली है वह मल्लिका है। अर्जुन ऋजु-सरल होने के कारण शरीर वाणी-मन से एक होने के कारण अर्जुन है। पंजाबी में अर्जुन को अर्जन कहते हैं। ''दैवी सम्पत्ति-अर्जनात् इति-अर्जनः'' दैवी सम्पत्ति अर्जन करने के कारण वह अर्जुनः है। यह मल्लिकार्जुन का अर्थ हुआ। इनकी प्रधानता = मुख-तत्पुरुष से निराकार निर्गुण ब्रह्म ही तत्पद से कहा है। वही ब्रह्म जब अपनी माया को अधीन करके समष्टि कारण शरीराभिमानी अव्याकृत शरीर रूपी पुरि में समष्टि सूक्ष्म शरीर के अभिमानी हिरण्य गर्भ के शरीर में तथा समष्टि स्थूल शरीराभिमानी विराट के शरीर में तथा जीव रूप से अविद्योपाधि के अधीन होकर व्यष्टि तीनों शरीरों में विश्व-तैजस-प्राज्ञ के नाम से प्रवेश करने के कारण उसे पुरुष कहते हैं। अतः पूर्ववत् तीनों में अभेद सिद्ध हुआ।

५. विश्वकरणकाचार्य

विश् प्रवेशने धातु से विश्व शब्द बना है। ब्रह्म का वह रूप जो जगत् को रचकर उसमें प्रवेश कर उसकी रक्षा करता है। उसे विश्व कहते हैं। श्रुति ने भी कहा है, **"तत्सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्"** उसने इस जगत् को रचकर इसमें प्रवेश किया। अतः विश्व है। ऐसा विश्व रूपी ईश्वर ही सबका आधार या क्रिया का साधन होने के कारण करण है अथवा १४ इन्द्रियरूपी करण जानने का साधन होने के कारण वह विश्व करण है। इन चौदह करणों का वाध कर देने पर बाधसमानाधिकरण न्याय से ब्रह्म में अन्तर्भाव होता है अर्थात् जिन्होंने दृष्टिगोचर होने वाले कार्य कारणात्मक जगत् को बाध करके जीव के कल्याण का उपदेश दिया। अतः उन्हें विश्व करणकाचार्य कहते हैं। उनका प्राकट्य काशी स्वयं प्रकाश अनन्त कोटि विश्व के स्वामी विश्वनाथेश्वर शिवलिंग से हुआ। किन्तु प्रदान रूप से उनका दर्शन ईशानकोण में सबका शासन करने में सर्व समर्थ प्रभु से हुआ। इस प्रकार पांचों आचार्यों की त्रिपुटी का भाव अपने बुद्धि बल, श्रुति आदि ग्रन्थों के आधार पर किया है। इसमें जो कुछ त्रुटि हो विद्वान् सुधार कर बताने की कृपा करें।

पञ्चाचार्य-पञ्चमुख और पञ्चलिङ्ग सम्बन्धिभाव सम्पूर्णम्।

॥ तैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ चौंतीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

पञ्चाचार्यों का शक्ति विशिष्टाद्वैत

शैव सम्प्रदाय में तीन मुख्य भेद हैं-(१) शैव सम्प्रदाय, (२) वीर शैव सम्प्रदाय, (३) पाशुपत सम्प्रदाय। इन्हीं के अन्तर्गत नाथादि अनेक उपसम्प्रदाय हैं। जैसे वैष्णव सम्प्रदाय में अनेक भेद हैं। कुछ केवल विष्णु के उपासक, कुछ शक्ति सहित विष्णु के,कुछ विष्णु के अवतारों के उपासक हैं। वैसे ही शैव सम्प्रदाय हैं। शक्ति विशिष्ट का प्रतिपादन पंचाचार्यों ने किया है। केवलाद्वैतवादियों के समान इसमें ब्रह्म ही नहीं है। उसके साथ उसकी शक्ति मानी है। जैसे मिश्री से मिठास को, नींबू से खटास को,

अग्नि से दाहकत्व प्रकाशकत्व शक्ति, चन्द्रमा से चांदनी को भिन्न नहीं किया जा सकता। वैसे ही ब्रह्म से उसकी सत्-चित्-आनन्द तथा क्रिया, इच्छा, ज्ञान शक्ति को भिन्न नहीं किया जा सकता है। शिव शब्द का अर्थ केवल ब्रह्म नहीं है, किन्तु चैतन्य शक्ति विशिष्ट ब्रह्म है। शक्ति के साथ ब्रह्म का अभेद बताने वाला मत शिवाद्वैत है। अतः विशिष्ट पद में वि- का अर्थ है। शिव को शेष भी कहते हैं। अर्थात् मुक्ति दशा में भी इन दोनों के अभेद को मानने वाला शक्ति विशिष्टाद्वैत मत है। वद्धदशा में शिव के साथ जीवों के व्यावहारिक भेद को और मुक्त दशा में पारमार्थिकाभेद को जो मानता है, उसका नाम भेदाभेद है।

शिवाद्वैत शास्त्र में लिंगांग सामरस्य के नाम से इसको कहा है। लिंग का अर्थ शिव, उस शिव के साथ जीव के अभेद को सामरस्य कहते हैं। शिव स्वयं प्रकाशरूपा चैतन्य शक्ति से युक्त है। शिव शब्द 'वश् कान्तौ' धातु के अक्षरों के उलटने से शिव शब्द बनता है। जैसे दृश् धातु से कश्यप बना तिथा हिंसि धातु से सिंह शब्द की व्युत्पत्ति हैं **''हिंसि धातोः सिंह शब्दो-वश-कान्तौ शिवः स्मृतः वर्ण व्यत्ययतः सिद्धः पश्यतेः, कश्यपो यथा।''**

अर्थ-जैसे हिंसि धातु के उलट देने से सिंह, वश् धातु जो प्रकाश के अर्थ में है उलट देने से शिव और पश्य को उलट देने से कश्यप बनता है।

अनादिमल संश्लेष प्रागभावात्स्वबावतः।
अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिवउच्यते॥
अथवाशेष कल्याणगुणैक घन ईश्वरः।
आश्रितात्यन्त शिवदः शिव इत्युच्यते बुधैः॥
समाभवन्ति ते सर्वे दानवा मानवाश्च ये।
शिवोऽस्मि सर्वभूतानां शिवत्वं तेन में स्मृतम्॥

अर्थ-स्वभाव से ही जो अनादि जन्म जन्मातर के पापरूपी मल से रहित है। अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा ही शिव के नाम से कहा जाता है। अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुणों के भण्डार ईश्वर ही अपने आश्रित भक्त का कल्याण करते हैं। अथवा मुक्ति देते हैं।

उसे विद्वानों ने शिव कहा है। जितने भी दानव एवं मानव हैं। सब में समरूप से रहने वाले सभी प्राणियों का मैं कल्याण करता हूं। अतः मुझे शिव कहते हैं। ब्रह्मसूत्र में व्यासजी ब्रह्म का लक्षण करते हुए **"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"** साधन चतुष्टय के अनन्तर ब्रह्म को जानने की इच्छा करते हैं। इसमें ब्रह्म शब्द का अर्थ अद्वैतवादियों ने निराकार-निर्गुण ब्रह्म किया है, किन्तु अगले सूत्र से इसकी सिद्धि नहीं होती। **"जन्माद्यस्य यतः"** इसका अर्थ है। जिससे जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार होता है। इससे सिद्ध होता है कि जगत् को उत्पन्न करने वाला जगत् का माता-पिता सगुण साकार ही है निर्गुण-निराकार नहीं। वह ब्रह्म बिना शक्ति के जगत् की उत्पत्ति आदि नहीं कर सकता। चुम्बक में लोहे को खींचने की शक्ति न हो। तो वह चुम्बक नहीं जैसे वट के छोटे से बीज में लाखों पत्तों तना-डालियों से युक्त पेड़ को जन्म देने की शक्ति सूक्ष्म रूप में विद्यमान होने पर भी दिखाई नहीं देती, वैसे ही ब्रह्म में भी शक्ति विद्यमान है। परन्तु दृष्टिगोचर नहीं होती। जैसे अग्नि में जलाने और प्रकाश की शक्ति है, किन्तु वह न भिन्न है न अभिन्न है, किन्तु भिन्नाभिन्न है। इस बात को शिवाद्वैती मानते हैं। अतः भगवान् व्यास जी ने दूसरे सूत्र का तात्पर्य शक्ति विशिष्ट ब्रह्म में कहा है। वेद में भी कहा-

उमासहायं परमेश्वर प्रभु त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तं। अर्थात् त्रिनेत्र धारी नीलकण्ठ भगवान् शंकर सृष्टि की रचना नहीं कर सकते। अतः अद्वैतवाद में रस्सी में सर्प के समान मिथ्या नहीं है। ब्रह्म में रहने वाली शक्ति सत्य है। वेद में कहा है-

परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानवला क्रियाच।

अर्थ-परमात्मा की शक्ति स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया से युक्त अनेक प्रकार की सुनी जाती है। जैसे पावर हाऊस से आने वाली विद्युत् शक्ति एक होने पर भी लट्टू-कूलर, हीटर, दूरदर्शनादि यन्त्रों की उपाधि से अनेक प्रकार की दिखाई देती है। वैसे ही परमात्मा की शक्ति तिनके से लेकर ब्रह्मा तक उपाधि भेद से अनेक प्रकार की है। जैसे पुष्प की कली में रहने वाली शक्ति फूलों को खिलाकर सुगन्धि युक्त करती है। वैसे ही शिव की चैतन्य शक्ति शिवांश के रूप में प्रगट होती है। अतः अन्य लोगों

की भांति शिवाद्वैतवादी जीव को व्यापक न मानकर अणु मानते हैं। जगत् को जन्म देने वाली परमात्मा की शक्ति को न मानने वाले अद्वैतवादी वैसे ही क्षीण हो जाते है, जैसे बिना माँ के बच्चा भूखा प्यासा तड़पता है। रोता हुआ वह बालक जब माँ के लिए रोता है तब ओट में छिपी माता उसको गोद में लेकर सुखी करती है। वैसे ही अज्ञानी जीव भी अज्ञान के कारण अनेकों बन्धनों को प्राप्त हुआ त्रिताप की अग्नि से जलता है। तब जगत् जननी प्रगट होकर उसके दुःखों को दूर करती है। उसके जीवत्व को नष्ट कर शिव के साथ मिला देती है। तब जीव शिवोऽहं की भावना से शुद्ध हो जाता है।

यहां तक शांकर वेदान्त से शक्ति विशिष्टाद्वैत का विरोध प्रतीत होता है, किन्तु विचार करने से यह केवल विरोधाभास है, विरोध नहीं। क्योंकि शंकराचार्य जी ने सौन्दर्य लहरी के पहले श्लोक में कहा है–शिव शक्ति से रहित होकर अपने अंग प्रत्यंग को हिला भी नहीं सकते। वह शवरूप हैं। शिव पद में से इकार निकाल लिया जाए तो शिव भी शव रह जाता है। पञ्चीकरण के आरम्भ में भी कहा है–

''अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्य ते।''

अध्यारोप अपवाद से माया के तीन गुणों से रहित ब्रह्म में तीन गुणों का आरोप करके वर्णन करते हैं। अध्यारोप का अर्थ है। अधिष्ठान में मिथ्या वस्तु का आरोप जैसे सीपी रूपी आधार में चांदी की मिथ्या प्रतीति होती है। वैसे ही शुद्ध ब्रह्म में माया और उसके तीन गुण न होने पर भी उसमें उपाधि से प्रतीत होते हैं। सारांश यह है कि सम्पूर्ण वेद शास्त्र तथा आर्ष ग्रन्थ ज्ञानी की दृष्टि और अज्ञानी की दृष्टि से वर्णन करते हैं। ज्ञानी की दृष्टि ब्रह्ममय है। **''नेह नानास्ति किञ्चन''**, **''आत्मैवेदं सर्वम् ब्रह्मैवेदं सर्वम्''**, **''सर्वंखल्विदं ब्रह्म''** उनकी दृष्टि में शरीर-संसार कुछ नहीं है। वे निर्विकल्प स्थिति में रहते हैं, उन्हें ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरे का भान नहीं होता। परन्तु वही ज्ञानी जब समाधि से उठते हैं तो अनेक तत्त्व देखते हैं। संसारी पुरुष ईश्वर-प्रकृति जगत् को देखते हैं। किन्तु ज्ञानियों को वे आभास रूप से मिथ्या प्रतीत होते हैं। अज्ञानियों की दृष्टि में शांकर वेदान्त में ३ सत्ताएं मानी हैं। (१) व्यावहारिकसत्ता, (२) प्रातिभासिक सत्ता इन दोनों में भेद माना किन्तु (३) पारमार्थिक सत्ता में नहीं। गौड पादाचार्य जी लिखते हैं कि–

न निरोधे न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः।

न मुमुक्षुर्नवैमुक्त इत्येषा परमार्थता॥

अर्थ–परमार्थसत्ता में न उत्पत्ति है, न विनाश न कोई जन्म-मरण के बन्धन में है, न कोई साधक है, न जन्म-मरण से छूटने की इच्छा वाला मुमुक्षु है और न कोई छूटा हुआ मुक्त है। इसी का नाम परमार्थता है। अर्थात् स्वप्न के जगत् के समान जीव का बंध, मोक्ष, उत्पत्ति, स्थिति, विनाश, साधक, साधनता, मुक्त, मुमुक्षुता यह सब मिथ्या है।

जैसे जागने पर स्वप्न का दृश्य नहीं रहता। वैसे तुरीय में कुछ नहीं रहता। यही परमार्थता है। अतः वह ब्रह्म स्थूल सूक्ष्म न होने के कारण न सत् है, न असत् है। न निरवयव है न सावयव है। न उभय है। न भिन्न है, न अभिन्न है, न भिन्नाभिन्न है, किन्तु नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभाव है। भाव यह है कि वह कारण, कार्य दोनों से परे है। जैसे पिता रूप कारण से पुत्र रूप कार्य की उत्पत्ति होती है। वैसे ही कारण से कार्य उत्पन्न होता है, कारण में रहता है, कारण में लीन हो जाता है। परन्तु कौन किसका कारण है और कौन किसका कार्य है। इसका आज तक निश्चय नहीं हुआ, क्योंकि बीज तथा वृक्ष दोनों में कौन किसका कारण है और कौन कार्य है। यदि बीज को कारण मानते हैं तो बिना वृक्ष के बीज नहीं होता और वृक्ष को यदि कारण मानते हैं, तो बिना बीज के वृक्ष नहीं होता। अतः कार्य कारण दोनों मिथ्या सिद्ध हुए। यह तर्क उपस्थित करते हुए गौड़पादाचार्य जी ने दोनों को मिथ्या सिद्ध किया। इसी प्रकार शक्ति पहले थी कि शक्तिमान् पहले था, इस का निश्चय न होने से दोनों ही अनादि हैं। द्वैत तथा अद्वैत का खण्डन करते हुए ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान् शंकर ब्रह्मा जी से कहते हैं–

श्लोक–अद्वैतंकेचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।

मम तत्त्वं न जानन्ति, द्वैताद्वैत विवर्जितम्॥

अर्थ–कुछ लोग अद्वैत की इच्छा करते है। कुछ द्वैत की। परन्तु द्वैताद्वैत से रहित अनिर्वचनीय मेरे तत्त्व को नहीं जानते तात्पर्य है कि व्यवहार में भ्रान्ति है। परमार्थ में नहीं। यह सब ऋषि तथा आचार्यों का मत है।

वीर शैव मत में शिव को शक्ति से भिन्न मान लेने पर ''एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'' इत्यादि अद्वैत का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों से विरोध होता है। यदि कोई कहे कि शिव में उनकी शक्ति को मानना अनुचित है। यह ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्म शक्ति ब्रह्म से उसी प्रकार अभिन्न है। जिस प्रकार पुष्प में गन्ध, चन्द्रमा में चन्द्रिका, सूर्य में प्रभा अभिन्न है वैसे ही शिव में उनकी शक्ति एक है। शक्ति से तात्पर्य जड़माया नहीं। किन्तु माया की अधिष्ठातृ चैतन्य शक्ति, शास्त्रों में उपास्य रूप से कही है। अत: इससे यह सिद्ध हुआ कि ''एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'' इत्यादि श्रुतियों का तात्पर्य केवलाद्वैत में ही न होकर शक्ति विशिष्टाद्वैत में भी है। जैसे किसी ने कहा देवदत्त घर में अकेला है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके हाथ पैरादि अंग नहीं है। जैसे देवदत्त के अवयव लिये जाते हैं। वैसे ब्रह्म एक ही है। इस वाक्य से यह अर्थ नहीं निकलता कि उसकी सहज शक्ति नहीं है। अत: शक्तिविशिष्टाद्वैत की प्रतिष्ठा अनेक श्रुतियों से सिद्ध होती है। ''क्रियासार'' के लेखक श्रीमान नीलकण्ठ शिवाचार्य इसी बात को कहते हैं–

पीछे कहा जा चुका है कि शक्ति विशिष्टाद्वैत का अर्थ लिंगांगसामरस्य है। इसका अर्थ इस प्रकार से है।

''शक्ति श्च शक्तिश्चशक्ती, शक्तिभ्यां विशिष्टौ शक्तिविशिष्टौ, शक्तिविशिष्टयो: अद्वैतं शक्ति विशिष्टाद्वैतम्।''

अर्थ–विशिष्टौ पद से शिव जीव का तात्पर्य है। पहली शक्ति का अर्थ चित्, दूसरी का अर्थ है चित्त। इन दो शक्तियों से युक्त अद्वैत शक्ति विशिष्टाद्वैत है। इसमें विशिष्टौ का अर्थ शिव और जीव में रहने वाली क्रम से चित् शक्ति तथा चित्त शक्ति, इनके अभेद का अर्थ सामरस्य है। शिव और जीव को ही लिंग और अंग कहा है। लिंगांग में जो चित् शक्ति है, वह मोर के अंडे में स्थित रसरूप में परिणत होने वाली शक्ति मोर के बच्चे के पंख वाले रंग के रूप में समय में परिणत होती है।

उक्ति–''मयूराण्ड्रसगतपादपक्ष वर्णवैचित्र्यम्'' इस न्याय से सूक्ष्म जड़ तथा चेतन प्रपंच को अपने में रखने वाली शिव की चैतन्य शक्ति है वैसे ही जीव में ब्रह्म की शक्ति है। इसी को विमर्श या इच्छा शक्ति भी कहते हैं।

ऐसी शक्ति सहित शिव हैं। इस विषय में "चैतन्यात्मा" यह सूत्र प्रमाण है। यह शक्ति फूले हुए बीज की भांति सृष्टि करने में तत्पर होकर घृत काठिन्य न्याय से अपने अन्दर स्थित सामरस्य ज्ञान क्रियाओं का परस्पर भेद करती है। इस भेद बुद्धि को माया कहा है। वह माया प्रवेश करके जीव को सत्व-रज-तम से युक्त करके मोहित करती है। इसी को प्रकृति की चित् शक्ति कहते हैं। **'चितिरेव चेतन पदावरूढा चैत्यसंकोचिनी चित्तं'** यह शक्ति सूत्र प्रमाण है चिति ही चेतनपदारूढ़ होकर चेतनता का संकोच करने वाली शक्ति चित्त है। इस प्रकार चित् शक्ति का अंश शक्ति विशिष्ट शिवांश = जीव ही शिव का अंश है जीव के शिवांश होने के सम्बन्ध में भगवत्पाद जगत्गुरु रेणुकाचार्य जी ने कहा है-

श्लोक- अनाद्यविद्या सम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः।

अर्थ-अनादि अविद्या के सम्बन्ध से उसका अंश जीव है। इसका समर्थन करते हुए श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य जी ने भी कहा-

शिवांशा ब्रह्म विष्णवाद्याअंशी देवः शिवः स्मृतः।

अर्थ-ब्रह्मा-विष्णु आदि शिवांश हैं अंशी भगवान् शिव कहे हैं।

श्लोक-"ममैवांशो जीवलोके" तथा ब्रह्मसूत्र में भी **"अंशो नाना व्यपदेशात्"** यह सूत्र भी प्रमाण है। इस जीव के शिव से भिन्न होने के कारण माया का आक्रमण है। इस आक्रमण से अति सूक्ष्म माया के कर्मों से आवृतहोने के कारण जीव संसारी है। उस शिव की उपासना किये बिना संसार से छूट नहीं सकता। अतः शिवलिंग की उपासना करनी चाहिए। लिंग को स्थल भी कहा है-

स्थलं नाम परमतत्त्वं, शिवरुद्रादि संज्ञकम्, उपास्योपासकत्वेन, स्वयमेव द्विधा भवेत॥

अर्थ-स्थलनाम परम तत्त्व का है। वह शिव रुद्रादि के नाम से कहा जाता है। इष्टदेव तथा भक्त के रूप में स्वयमेव ही दो प्रकार का होता है। वही शिव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, शुभात्मा छः प्रकार का है। लिंग में भक्तों पर कृपा करने के लिए पृथ्वी आदि का अधिष्ठान होने से छः स्थानों में सद्योजातादि नाम वाला आचार्य आदि

वीर शैव मत में शिव को शक्ति से भिन्न मान लेने पर "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि अद्वैत का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों से विरोध होता है। यदि कोई कहे कि शिव में उनकी शक्ति को मानना अनुचित है। यह ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्म शक्ति ब्रह्म से उसी प्रकार अभिन्न है। जिस प्रकार पुष्प में गन्ध, चन्द्रमा में चन्द्रिका, सूर्य में प्रभा अभिन्न है वैसे ही शिव में उनकी शक्ति एक है। शक्ति से तात्पर्य जड़माया नहीं। किन्तु माया की अधिष्ठातृ चैतन्य शक्ति, शास्त्रों में उपास्य रूप से कही है। अतः इससे यह सिद्ध हुआ कि "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों का तात्पर्य केवलाद्वैत में ही न होकर शक्ति विशिष्टाद्वैत में भी है। जैसे किसी ने कहा देवदत्त घर में अकेला है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके हाथ पैरादि अंग नहीं है। जैसे देवदत्त के अवयव लिये जाते हैं। वैसे ब्रह्म एक ही है। इस वाक्य से यह अर्थ नहीं निकलता कि उसकी सहज शक्ति नहीं है। अतः शक्तिविशिष्टाद्वैत की प्रतिष्ठा अनेक श्रुतियों से सिद्ध होती है। "क्रियासार" के लेखक श्रीमान नीलकण्ठ शिवाचार्य इसी बात को कहते हैं–

पीछे कहा जा चुका है कि शक्ति विशिष्टाद्वैत का अर्थ लिंगांगसामरस्य है। इसका अर्थ इस प्रकार से है।

"शक्ति श्च शक्तिश्चशक्ती, शक्तिभ्यां विशिष्टौ शक्तिविशिष्टौ, शक्तिविशिष्टयोः अद्वैतं शक्ति विशिष्टाद्वैतम्।"

अर्थ–विशिष्टौ पद से शिव जीव का तात्पर्य है। पहली शक्ति का अर्थ चित्, दूसरी का अर्थ है चित्त। इन दो शक्तियों से युक्त अद्वैत शक्ति विशिष्टाद्वैत है। इसमें विशिष्टौ का अर्थ शिव और जीव में रहने वाली क्रम से चित् शक्ति तथा चित्त शक्ति, इनके अभेद का अर्थ सामरस्य है। शिव और जीव को ही लिंग और अंग कहा है। लिंगांग में जो चित् शक्ति है, वह मोर के अंडे में स्थित रसरूप में परिणत होने वाली शक्ति मोर के बच्चे के पंख वाले रंग के रूप में समय में परिणत होती है।

उक्ति–"**मयूराण्ड्रसगतपादपक्ष वर्णवैचित्र्यम्**" इस न्याय से सूक्ष्म जड़ तथा चेतन प्रपंच को अपने में रखने वाली शिव की चैतन्य शक्ति है वैसे ही जीव में ब्रह्म की शक्ति है। इसी को विमर्श या इच्छा शक्ति भी कहते हैं।

ऐसी शक्ति सहित शिव हैं। इस विषय में "चैतन्यात्मा" यह सूत्र प्रमाण है। यह शक्ति फूले हुए बीज की भांति सृष्टि करने में तत्पर होकर घृत काठिन्य न्याय से अपने अन्दर स्थित सामरस्य ज्ञान क्रियाओं का परस्पर भेद करती है। इस भेद बुद्धि को माया कहा है। वह माया प्रवेश करके जीव को सत्व-रज-तम से युक्त करके मोहित करती है। इसी को प्रकृति की चित् शक्ति कहते हैं। **'चितिरेव चेतन पदावरूढा चैत्यसंकोचिनी चित्तं'** यह शक्ति सूत्र प्रमाण है चिति ही चेतनपदारूढ़ होकर चेतनता का संकोच करने वाली शक्ति चित्त है। इस प्रकार चित् शक्ति का अंश शक्ति विशिष्ट शिवांश = जीव ही शिव का अंश है जीव के शिवांश होने के सम्बन्ध में भगवत्पाद जगत्गुरु रेणुकाचार्य जी ने कहा है-

श्लोक- अनाद्यविद्या सम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः।

अर्थ-अनादि अविद्या के सम्बन्ध से उसका अंश जीव है। इसका समर्थन करते हुए श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य जी ने भी कहा-

शिवांशा ब्रह्म विष्ण्वाद्याअंशी देवः शिवः स्मृतः।

अर्थ-ब्रह्मा-विष्णु आदि शिवांश हैं अंशी भगवान् शिव कहे हैं।

श्लोक-"ममैवांशो जीवलोके" तथा ब्रह्मसूत्र में भी **"अंशो नाना व्यपदेशात्"** यह सूत्र भी प्रमाण है। इस जीव के शिव से भिन्न होने के कारण माया का आक्रमण है। इस आक्रमण से अति सूक्ष्म माया के कर्मों से आवृतहोने के कारण जीव संसारी है। उस शिव की उपासना किये बिना संसार से छूट नहीं सकता। अतः शिवलिंग की उपासना करनी चाहिए। लिंग को स्थल भी कहा है-

स्थलं नाम परमतत्त्वं, शिवरुद्रादि संज्ञकम्, उपास्योपासकत्वेन, स्वयमेव द्विधा भवेत॥

अर्थ-स्थलनाम परम तत्त्व का है। वह शिव रुद्रादि के नाम से कहा जाता है। इष्टदेव तथा भक्त के रूप में स्वयमेव ही दो प्रकार का होता है। वही शिव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, शुभात्मा छः प्रकार का है। लिंग में भक्तों पर कृपा करने के लिए पृथ्वी आदि का अधिष्ठान होने से छः स्थानों में सद्योजातादि नाम वाला आचार्य आदि

लिंग भेद से छः प्रकार का है। इस प्रकार लिंग का जीव के साथ अभेद ही विशिष्टाद्वैत है। जीव और ईश्वर का अग्नि तथा उसके कणों के साथ भेद जैसा प्रतिपादन करने वाला मंत्र कहता है।

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानम् वृक्षम्परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्ननन्योऽभिचाकाशिति।

"द्वे ब्रह्मणीवेदितव्ये परंचापरंच"

अर्थ–दो सुन्दर पंखों वाले पक्षी समान रूप से मिले हुए सखा रूप से शरीर रूपी वृक्ष पर रहते हैं। इनमें एक इसके फल खाता है। दूसरा देखता है। ब्रह्म के पर और अपर दो रूप जानने चाहिए। इनमें अभेद तथा भेद का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं है। जीव और ईश्वर का भेद वादियों के समान भेद करें, तो अग्नि और चिनगारियों को भी भिन्न कहना पड़ेगा। जैसे इनमें अंशाशी भेद है। वास्तव में नहीं, इसलिए अग्नि और उसके कणों में अग्नि के समान लाल रूप तथा जलाने की शक्ति है। इसलिए भेद नहीं है। अभेद मानना पड़ेगा। उनको यदि अभेद कहा जाए, तो भी ठीक नहीं है। अग्नि जैसे भोजन पकाती तथा ठण्ड दूर करती है। यह विशेषता चिंगारी में नहीं है। अतः केवलाद्वैत में अग्नि और चिंगारी का दृष्टान्त पूरा नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त में घटाकाश महाकाश का दृष्टान्त ठीक है। परन्तु यह घटाकाश महाकाश में उपाधिकृत भेद है। घट उपाधि के न रहने पर घटाकाश महाकाश हो जाता है। व्यवहार में भेद, परमार्थ में अभेद सभी ने माना है। क्रियासार में लिखा है। अग्नि और चिंगारी में जैसे अभेद है। किन्तु अग्नि के कार्य में भेद है। उसी प्रकार अंशीय शिव और अंश जीव में भेदाभेद दोनों मानने उचित हैं। उपनिषदों में ब्रह्म निरंश होने पर भी ब्रह्म में माया शक्ति से कल्पित भेद है। जैसे चक्रवर्ती राजा जब छत्र चामर वाहन आदि से युक्त होने पर चक्रवर्ती है, किन्तु वही टहलने के लिए खुले बगीचे में हरी घास पर पैदल चलता है, तो राजा के दोनों रूपों में भेद हो जाता है। उसी प्रकार अखण्डानन्द से युक्त ब्रह्म जब खण्ड विशेष का आस्वादन करने के लिए रसास्वादन करता है। तब उसका भेद है। जैसे तरल घी का कडे घी के साथ, नरसिंह भगवान् का नर और सिंह रूप में, अर्द्ध नारीश्वर का परस्पर भेद है। इसी प्रकार ब्रह्म भी जब सूक्ष्म मलों से ढक जाता है। तब

शरीर धारी होता है। तीन मलों के कारण शिवांशीय जीव को अपने शिवत्व का वैसे ही ज्ञान नहीं रहता। जैसे पैदल चलने वाले राजा को राजा पने को ज्ञान नहीं रहता, यह केवल युक्ति तथा तर्क से ही बात सिद्ध नहीं होती। किन्तु श्रुति भी कहती है।

'एकाकी न रमते, सतु द्वितीयमैच्छत्' अकेले परमात्मा का मन नहीं लगा। उसने दूसरे की इच्छा की। अतः परम शिव अपनी स्वतन्त्र शक्ति से ही शिव रूप से उपास्य जीव रूप से उपासक हो कर रमण करता है। इस सिद्धान्त का यही अभिप्राय है कि मुक्ति दशा में जीव का सूक्ष्म अज्ञान से उत्पन्न हुआ मल अविद्या के साथ जब लीन हो जाता है। तो उसकी चित्त शक्ति चिद् शक्ति हो जाती है। अद्वैत वेदान्त में उसी को उपाधि कहा है। शब्दों का भेद वास्तव में अभेद है। इस विषय में शक्ति सूत्रों में कहा है। उस ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर चित्त का चेतन में अन्तर्भाव हो जाने से चित्त चेतन पद में लय हो जाता है। जीवात्मा ब्रह्म के साथ अभेद ज्ञान से जीव भाव को छोड़कर ब्रह्म भाव को वैसे ही प्राप्त करता है। जैसे नदियाँ नाम रूप का परित्याग करके सागर में मिलकर सागर रूप हो जाती हैं। इस प्रकार भेद और अभेद का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों का पारस्परिक विरोध शक्ति विशिष्टाद्वैत में नहीं रहता। वैसे ही शांकर मत में विरोध नहीं है। इस बात को लेकर वीर शैवमत तथा अद्वैत में एकता है। कूर्म पुराण में भी कहा है–

कुछ लोग द्वैत की प्रशंसा करते हैं कुछ अद्वैत की दोनों शक्तियां एकदेशीय हैं। अतः मुमुक्षुओं को चाहिए कि भेदाभेद का समन्वय करने वाली श्रुतियों को ग्रहण करे। यह भेदाभेद वीर शैव सिद्धान्त परम वैदिक है। इसी बात को सिद्धान्तागम में कहा है–

द्वैताद्वैत मतम् वीरं शैवं मोक्षैक कल्पकम्।
सर्व वेदान्त सिद्धान्तसारं सर्वार्थसिद्धिदम्॥

अर्थ–समस्त वेदों का सार सिद्धान्त सब प्रकार की सिद्धि देने वाला है। बिना भेद का प्रतिपादक मुक्ति को देने में समर्थ वीर शैव मत है। यह शंका करना व्यर्थ है कि अभेद–भेद दोनों विरोधी कैसे रह सकते हैं। उत्तर लोक शास्त्र के विरुद्ध है, किन्तु दोनों मतों से भेदाभेद सिद्ध होता है। जैसे गणेश जी का सिर हाथी का धड़ देव का है। इसी

प्रकार मत्स्य भगवान् हयग्रीवांवतारादि सभी के ऊपरी तथा नीचे के भाग में भेद होने पर भी अभेद है। इससे भेदाभेद सिद्ध होता है। लोक में शरीर एक होने पर अंगों के साथ भेद, आत्मा के साथ अभेद है। जब कोई बन्दर पेड़ पर बैठता है तब उसका पेड़ के साथ अभेद है और जब पेड़ पर से चला जाए तो पेड़ से भेद है। वैसे ही वद्ध दशा में जीव ईश्वर का भेद है। मुक्ति दशा में अभेद है कहा है–

कीटो भ्रमर योगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम्।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चितम्॥

अर्थ–जैसे साधारण कीड़ा भ्रमर के योग से भ्रमर हो जाता है। वैसे ही मानव शिव योग से निश्चय ही शिव रूप होता है, किन्तु वह कीट कीट स्वभाव की निवृत्ति होने पर भ्रमर होता है। उसी प्रकार जीव भी जीवभाव की निवृत्ति होने पर शिवरूप होता है। मुक्तात्मा शिव का योगाभ्यास करने से चित्त शक्ति का विकास करके चैतन्य शक्ति में मिलकर शिव हो जाता है। **"विश्वात्मकः शिवोऽहम् अस्मिन् प्रकाशेनन्दामि"** इस प्रकार का अनुभव होता है। जब जीव का **"स्थूलोऽहं गच्छामि"** इत्यादि सुख दुःख देने वाला अभिमान दूर हो जाता है। वह मुक्त जीव सारे संसार को शिव स्वरूप होता है। फिर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता। जैसे–कुएं में छोड़े हुए घट में यदि रस्सी बंधी है तो बाहर आ जाता है, किन्तु यदि खुल कर कूएं में गिर जाए तो बन्धन से मुक्त हो जाता है। वैसे ही जीव शिवयोग से तीनों शरीरों में दृढ़ता धारण करके तीन शरीरों में बंधता है। शरीर की अहंता ममता को छोड़कर शिव हो जाता है। 'मैं शिव हूं।'

प्रारब्ध क्षीण होने पर देहपात के अनन्तर सर्वज्ञतादि ६ शक्तियों से युक्त होकर शिवत्व को प्राप्त होता है। श्रुति तथा ब्रह्म सूत्र में भी कहा है, **"न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते"**, **"अनावृत्तिशब्दात्"** वह लौट कर नहीं आता २, अनावृत्ति–तीनों मलों से रहित होकर जन्म-मरण से जीव छूट सकता है। तीन मल–१ चौबिस तत्त्वों का बना हुआ शरीर कर्मों का मल है। २ सूक्ष्म शरीर माया का मल है। इसमें माया से लेकर अविद्या पर्यन्त सभी तत्त्व आ जाते हैं। ३–माया के ऊपर महामाया, यह तीसरा मल है। शुद्ध ज्ञान के नीचे माया तत्त्व से ऊपर रहने वाली महामाया, इन तीन मलों को

आणव मल कहते हैं। सद्‌गुरु देव अधिकारी शिष्य के तीनों मलों को तीन प्रकार की दीक्षा से दूर करते हैं–

श्लोक–देहत्रय गतानादि मल त्रयमसौ गुरुः।
दीक्षा त्रयेण निर्दह्य लिङ्गत्रयमुपादिशत्॥

अर्थ–तीनों शरीरों में विद्यमान् आणवी मल को गुरु तीन दीक्षाओं से जलाकर लिंगत्रय का उपदेश देते हैं। तब जीव मैं शिव हूं, इस प्रकार के अनुभव से मुक्त हो जाता है। यह मुक्ति सद्योनिर्वाण दीक्षा से होती है। अनधिकारी, स्त्री-बालक का इसमें अधिकार नहीं। अतः गुरु शिष्य की मुक्ति के लिए चिरकाल तक पास में रहकर अधिकारी समझ कर तत्त्वमस्यादि महावाक्य का उपदेश देकर इस महामन्त्र का जप करने की आज्ञा देकर, तीनों संध्याओं में शिव पूजन करो शिवलिंग को ब्रह्म समझो, इत्यादि की आज्ञा देकर जीव शिव के भेद को समझाकर लिंगों षडङ्ग योग अभ्यास की आज्ञा देते हैं। शिष्य यदि गुरु की आज्ञा का पालन करता जाएगा, तो मुक्ति अवश्य होगी। मध्यम श्रेणी के साधक को शिव पञ्चाक्षरी मंत्र का श्रवण, मनन-निदिध्यासन करना चाहिए। साथ ही मन्त्र के लक्ष्यादि के अनुकूल पठन-पाठन करना चाहिए। इसके अनुसार शिवतत्त्व का बीज जीव शिव की एकता के रूप में अंकुरित पल्लवित होकर फलीभूत होता है। अतः शिष्यों को चाहिए, कामादि दुर्गुणों को बिना अवसर दिये, सोकर उठने से लेकर रात्रि से सोने तक तथा दीक्षा से लेकर मृत्यु पर्यन्त वेदान्त के श्रवण, मनन, निदिध्यासन में समय बिताये। "**ध्यातव्यः परम शिवः**" इस प्रसंग में अद्वैत वेदान्त से शक्ति विशिष्टाद्वैत का किञ्चित् भी विरोध नहीं है। कल्याण के शिवाङ्क से

॥ चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ पैंतीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

भगवान् गृहपति

स्कन्द पुराण काशी खण्ड में कथा आती है कि दक्षिण भारत में शुचिस्मति नाम के ब्राह्मणदम्पती रहते थे। ब्राह्मण परम वेदज्ञ सदाचारी, अग्नि होत्री, तपोनिष्ठ थे। उनकी पत्नी भी परमसती साध्वी शिव की अनन्य भक्ता थी। घर में सब प्रकार की सुख समृद्धि थी। परन्तु कोई सन्तान नहीं थी। तब दोनों पुत्र प्राप्ति के लिए काशी में आकर वीरेश्वर भगवान् की आराधना करने लगे। काशी के सभी देव स्थानों का दर्शन नित्य करते। गंगा स्नान कर शिवाराधना में लग जाते। उन दोनों ने एक वर्ष तक कठोर तपस्या की। भगवान् शंकर तपस्या से प्रसन्न होकर अति तेजस्वी दिव्य बालक के रूप में प्रकट हुए। दोनों ने प्रेम पूरित अश्रुओं से गद्‌गद् वाणी में भगवान् की स्तुति की। उन्होंने कहा जो चाहो वर मांग लो। दोनों ने उनको पुत्र के रूप में मांगा। वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। कालान्तर में भगवान् गृहपति के रूप में अवतरित हुये। माता पिता को हर प्रकार से सुखी किया। उनका दूसरा नाम विश्वानर हुआ। कालान्तर में विश्वानर अग्नि देव रूप में प्रगट हुए। विश्वानर के पुत्र होने के कारण वे वैश्वानर हुये। यह अग्नि गृहपति के पुत्र होने के कारण गार्हपत्याग्नि के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह चैतन्याग्नि, प्रत्येक प्राणी के शरीर में रहकर खाये पिये हुए अन्न जल को पचाती है। गृहपति के रूप में भगवान् का अवतार भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का उपदेश देकर जीवों का कल्याण करके अन्तर्हित हुआ।

॥ पैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ छत्तीसवां अध्याय प्रारम्भः ॥

क्षेमक कवि पर श्री शंकर जी की कृपा

ब्रह्मवैवर्त पुराण के परिशिष्ट काशी केदार महात्म्य में कथा आती है कि एक बार लक्ष्मी तथा पार्वती का आपस में शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थ में लक्ष्मी जी पार्वती से हार गईं। अत्यन्त दुखी होकर भगवान् विष्णु से कहा, पार्वती ने मेरा अपमान किया। वह अपने पति देव शंकर से अत्यन्त प्राचीनतम कथाएं सुनकर मुझे पराजित करती हैं। जिनका आप को स्वप्न में भी ज्ञान नहीं है। शंकर जी से वार्तालाप के समय वहां कोई नहीं रहता। गणों का कड़ा पहरा रहता है। अतः आप छिपकर उन कथा प्रसंगों को सुनकर मेरे प्रति कहिये। जिससे मैं पार्वती को जीत सकूं। भगवान् विष्णु तथास्तु कहकर शंकर जी के पास चले गये। वहां पर एक गण का पहरा था। उसने अंदर जाने से रोका। अनुनय विनय करके भगवान् विष्णु ने राजी कर लिया। नवीन गुप्त कथा सुनने के अनन्तर लक्ष्मी को सुनाई। पार्वती जिन कथाओं को सुनाना चाहती थी लक्ष्मी ने सुना दिया। फिर पार्वती उससे अधिक नहीं जानती थी। लक्ष्मी जी से पूछा। यह कथा तुमने कहां से प्राप्त की, वह मौन रहीं। पार्वती ने समाधि में विष्णु और गण की करतूत जान ली। क्रोध में आकर कहा, "तेरे पति ने ज्ञान की चोरी की। अतः मैं शाप देती हूं। वह एक मन्वन्तर तक मानव शरीर धारण करके मृत्यु लोक में कृष्णद्वैपायन के रूप में अवतार लें" तथा गण को शाप देते हुए कहा, "तूने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। धोखा दिया है। अतः तुम भी मृत्यु लोक में काशी में क्षेमक कवि के रूप में जन्म ग्रहण करो।" गण तथा विष्णु ने इस शाप को सुनकर पार्वती को प्रणाम, प्रार्थना कर पूछा हम लोगों का शाप से उद्धार कब होगा। विष्णु के प्रति अनुग्रह करते हुए उमा ने कहा, एक मन्वन्तर तक तुम पृथ्वी में रहोगे। अठारह पुराण-महाभारत-वेदान्तादि ग्रन्थों की रचना करके भक्ति ज्ञान वैराग्य का प्रचार करोगे। तब अपने पूर्व रूप को प्राप्त करोगे। पार्वती उस गण से बोली, "तुम काशी में रहकर परिवार सहित हमारी आराधना करो। व्यास की अपेक्षा आप में विद्या-बुद्धि-व्याकरण काव्य शक्ति अधिक होगी। व्यास जी से तुम्हारा शास्त्रार्थ होगा। इसमें उनको हराकर उनसे पूजित होकर हमारे

लोक को प्राप्त करोगे।" कालान्तर में वे दोनों मृत्यु लोक में अवतरित हुए। विष्णु का जन्म गंगा यमुना के द्वीप में पराशर जी के तेज से सत्यवती के गर्भ से हुआ। वह गण भी क्षेमक कवि के रूप में जिसका दूसरा नाम अन्य पुराणों के अनुसार पुष्पदन्ताचार्य कहा जाता है, काशी में रहकर गंगा स्नान करके शिव महिम्न स्तोत्र द्वारा शंकर की आराधना करने लगे। व्यास जी भी काशी वास करने लगे। शास्त्रार्थ में क्षेमक ने व्यास जी को हराया। बाद में व्यास रूप धारी विष्णु की स्तुति करके क्षमा मांगी तथा शाप से मुक्त होकर शिव लोक प्राप्त किया। पुष्प दन्ताचार्य का ही दूसरा नाम क्षेमक कवि है। गंगातट पर एक छोटा सा लाल पत्थर का क्षेमेन्द्र महादेव के नाम से आज भी शिव मन्दिर बना हुआ है। उस क्षेमेश्वर के दर्शन पूजन ध्यानादि से सभी को चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।

॥ छत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ सैंतीसवां अध्याय प्रारम्भः ॥

शिव जी का उपदेश

आशुतोष भगवान् शंकर का उपदेश वेदों, उपनिषदों, रामायणों, तंत्रों में भरा पड़ा है। अतः प्रधान रूप से इनके द्वारा कही हुई शम्भु गीता, जो पितरों को सुनाई है तथा दूसरी शिव गीता जो पद्म पुराण में १६ अध्यायों में भगवान् राम के प्रति कही है। इन दोनों के आधार पर उपदेश होगा।

शम्भु गीता–इसके आरम्भ में सूत–व्यास जी का संवाद है। दूसरा संवाद पितरों के प्रति श्री शिव जी का है।

पितरों ने संसार में अनेक प्रकार के दुखी प्राणियों के दुख से कातर होकर उन जीवों का दुख दूर करने के लिए शंकर की शरण प्राप्त की तथा कहा वर्णाश्रम धर्म लुप्त हो चुका है, अतः हम आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं। जिस ज्ञान से जीवों के दुख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो, वह उपाय हमारे लिये कहें।

उत्तर में सदाशिव बोले, हे पितरो! सामान्य तथा विशेष धर्म का पालन करने से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होता है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह,

अक्रोध आदि सामान्य धर्म है। इन धर्मों का पालन करते हुए ब्रह्मचर्य-गृहस्थादि आश्रम धर्म तथा ब्राह्मणक्षत्रियादि वर्ण धर्म का पालन करना चाहिए। हे पितरो! गुरुओं से विधिवत् दीक्षित होकर मुझ में चित्त लगाकर भाव शुद्ध करके गुरु के दिए मन्त्र का जाप करें। पितरों ने पूछा, हे जगदीश्वर! धर्म का प्रत्यक्ष दर्शन कैसे होगा। जब वर्णाश्रम धर्म के पालन में बाधा पहुंचे, तब धर्म की रक्षा कैसे हो सकती है। सदाशिव बोले, जब तक जीव को आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, तब प्रकाश रूप ज्योति का दर्शन नहीं होता, तब तक धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। अधिदैव ज्ञान भी अध्यात्म ज्ञान में सहायक है। सूक्ष्म शक्ति तथा करण शक्ति के अनुभूति जन्य ज्ञान को अधिदैव ज्ञान कहते हैं। बुद्धि से अतीत तत्त्व बोध ही आध्यात्मिक ज्ञान है। ज्ञानी भक्त ही इसको समझने में समर्थ हैं। संसार में आकर्षण-विकर्षण दो प्रकार की शक्तियां हैं। इसी को स्त्री, पुरुष के नाम से कहते हैं। स्त्री में आकर्षण पुरुष में विकर्षण शक्ति है। इन दोनों की जब तक शुद्धि नहीं होती, धर्मरक्षक सन्तान नहीं हो सकती। शास्त्रानुसार अपने वर्ण की स्त्री से ही कुल-गोत्रादि का विचार करते हुए ही विवाह करना चाहिए। गर्भाधान संस्कार के समय काल तथा दोनों के भाव की शुद्धि होनी चाहिए। इस संस्कार से पूर्व दिन में पति, पत्नी को देव, ऋषि तथा पितरों का श्राद्ध-हवन पिण्डदान तर्पण करना चाहिए। ऐसे करने से तीनों के प्रसन्न होने पर योग्य पुत्र या पुत्री प्रदान करने में समर्थ होते हैं। तब देवता लोग न दिखाई देने वाले अतिवाहिक शरीर से ब्रह्मादि लोकों से जीवों को आकृष्ट करते हैं। वह देवशक्ति रज-शक्ति-तम शक्ति को परास्त कर देती है। रजोधर्म के बाद नारी अवश्य गर्भधारण करती है। उस समय आप लोग दिव्य सूक्ष्म शरीरधारियों को रहने योग्य स्थूल शरीर देते हैं। यदि वहां पर तमोगुण, रजोगुण को न दबा सके तो भाव शुद्धि सहित सत्वगुण बढ़ता है। मेरी उत्तम भक्ति करके दोनों सत्वगुण में लीन हो जाते हैं। वह ऋषि लोग प्रसन्न होकर दम्पती को सन्तान सहित कैवल्य मुक्ति देने में सहायक होते हैं। इसमें संदेह नहीं। इस अधिदैव रहस्य से पूर्ण ज्ञान को पीठ विज्ञान कहते हैं। इस पवित्रता का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही उच्च श्रेणी के जीव का जन्म होगा। इसमें संदेह नहीं। दैवी सम्पत्ति के अधिकारी माता-पिता तथा सन्तान के कल्याण के लिए अब नीचे नर-नारियों के भेद दिये जाते हैं। नर नारी सात्विक-राजस्-

तामस भेद से तीन प्रकार के हैं। सात्विक दम्पती गुण मोहित, राजस् रूप मोहित; तामस् काम मोहित, सत्वगणी नर नारी प्राकृत, रजोगुणी-विकृत, तमोगुणी उन्मादी होते हैं। उन्माद से नरक, विकृत से स्वर्ग, प्राकृत से मुक्ति होती है। देवता लोग ऐसे ही दम्पती की प्रशंसा करते हैं। सात्विक स्त्री-पुरुष अल्प मैथुन से, राजस् अधिक मैथुन से सन्तुष्ट होते हैं। किन्तु विचारवान होते हैं। तामस् घोर कामी तथा विचार रहित होते हैं। हे पितरो! सात्विक स्त्री पुरुष नित्यप्रेमी, राजसी, कुटिल, तामस, दम्पती निर्लज्ज होते हैं। सात्विक दम्पती में आत्मज्ञान तथा धर्म पूर्ण रूप से रहता है। स्त्री पुरुष में पुरुष की प्रधानता है अतः पत्नी की अपेक्षा पति का दायित्व अधिक है। दोनों सात्विक हों। तो चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। ऐसा सम्बन्ध शिव कृपा बिना नहीं हो सकता। ऐसे सम्बन्ध में विघ्न बहुत आते हैं। नर-नारियों के 16 भेद हैं पुरुषों में शश-मृग-वराह-अश्व ये पुरुष की चार जातियां हैं। इन चार के चार भेद हैं। कुल मिलाकर १६ होते हैं। नारी में पद्मिनी-चित्रिणी-हस्तिनी-शंखिनी ये चार जातियां हैं। इनके प्रत्येक के चार-चार भेद से १६ होती हैं। दोनों में से यदि स्त्री की उच्च जाति हो तो सात पीढ़ी तक नारी की प्रकृति सुरक्षित रहती है। यदि पुरुष उच्च जाति का हो तो अभ्युदय तीन पीढ़ी तक चलता है। पश्चात् बाधा पहुंचती है। दोनों अपने धर्म से च्युत हों तो सन्तानें बिगड़ती हैं। श्रुति में नारी को तप प्रधान कहा है और पुरुष को यज्ञ प्रधान कहा है। आदर्श नारियों में लज्जा, श्री, मधुर वचन, मन, वाणी, शरीर का पवित्रता-स्वार्थ राहित्य पातिव्रत्य-वात्सल्य भाव-सेवापरायणता तथा पति के भाव को जानकर सेवा करने वाली होती है। पुरुषों के लिए वर्णाश्रम का आचार ही उत्तम कहा जाता है। स्त्री-पुरुष की परीक्षा अत्यन्त कठिन है। ऋतम्भरा युक्त ज्ञानी भक्त परीक्षा करने में समर्थ है, यद्यपि सामुद्रिक विद्या शिवस्वरोदय तथा ज्योतिष ने दोनों के २५ लक्षण बताये हैं।

कुछ लोग तर्क करते हैं सनातन धर्म में पुरुष अनेक विवाह कर सकता है, स्त्री नहीं। जब पुरुष को बहुविवाह में अधिकार है तो स्त्रियों को भी होना चाहिए। यह अधिकार न देकर नारी जाति पर अन्याय किया है। इस पर शंकर जी कहते हैं, नारी क्षेत्ररूप है। पुरुष बीज रूप है। नारी रूपी क्षेत्र में पुरुष रूपी किसान बीज डालता है। बीज सभी जगह ले जाया जा सकता है। खेत को कोई भी उठाकर नहीं ले जा सकता।

इसलिए स्त्री को बहुविवाह का अधिकार नहीं है। अथवा नारी महामूल्यवान् रत्न है। हीरादि महामूल्यवान वस्तुएं छिपाकर गुप्त रखी जाती हैं। जितनी मूल्यवान वस्तु छिपाकर रखी जाती है उतनी ही उसकी रक्षा होती है। उसके शील की रक्षा होने से कई पीढ़ी पितरों को तारने वाली संतान उत्पन्न होती है। मनु ने भी कहा है, "**पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥**" विवाह से पूर्व पिता, पुत्री की रक्षा करे, विवाहोपरान्त पति, युवावस्था में तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है। स्त्री कभी स्वतन्त्र होने योग्य नहीं है। "**जिमि स्वतन्त्र होई बिगड़े नारी**"

स्त्री के सुरक्षित होने पर उससे धर्मरक्षक-देशरक्षक-भगवत् भक्त योगी, त्यागी, सन्तानोत्पन्न होती है। जिससे माता-पिता दोनों को सुख होता है। अतः भगवान् शंकर पितरों से कहते हैं। हे पितरो! जो दम्पती गर्भाधान रूपी मर्यादा एवं पवित्रता रखते हैं, जिनको दैव जगत् पर विश्वास है। जो सतोगुणी हैं उनकी सन्तान भी अपने तथा प्रजा के धर्म की रक्षा करती है। इन दोनों में वर्णधर्म प्रवृत्ति का रोधक, आश्रम धर्म निवृत्ति का पोषक होकर मनुष्य के अंतःकरण में मेरी पराभक्ति और आत्मज्ञान का विकास करता है। वह मनुष्य जाति निर्जीव होकर नष्ट हो जाती है, जो इस धर्म का पालन नहीं करती है। सन्तान धर्म के बीज की रक्षा आध्यात्मिक उन्नति पर निर्भर है। इससे पितरों को बल मिलता है। देवताओं से सम्बन्ध स्थापित होकर ऊपर के लोक में जाता है। वर्णाश्रम धर्म के आठ प्रधान प्रयोजन कर्म तत्त्व के विद्वानों ने कहे हैं। (१) आर्य जाति के बीज की रक्षा, (२) आध्यात्मिक उन्नति, (३) माता-पिता का भरण पोषण, (४) उनकी विशेष कृपा, (५) देव लोकों के साथ अतिशय सम्बन्ध संस्थापित होना। देवों की प्रसन्नता, (६) स्वाभाविक संस्कारों का उदय, (७) आत्म ज्ञान के बीज की रक्षा, (८) कैवल्य मुक्ति। हे पितरो! रज वीर्य की शुद्धि होने पर ही सब सुरक्षित होता है। इस प्रकार क्रम से तीन प्रकार की सुरक्षा ही वर्णाश्रम धर्म के बीज की सुरक्षा है। अतः वर्णाश्रम का प्रचार अवश्य होना चाहिए। हे पितरो! अनन्त बाधाओं के प्राप्त होने पर भी आप लोगों के सचेष्ट रहने पर सतीत्व धर्म तथा स्त्री पुरुष के रज वीर्य शुद्धि, मेरी भक्ति होने पर ही धर्म के बीज की रक्षा होती है। **(शम्भु गीता का दूसरा अध्याय पूर्ण)**

॥ सैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अड़तीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

चक्र पीठ शुद्धि निरूपणम्

यद्यपि पदम् पुराण में तथा अन्यान्य ग्रन्थों में चौरासी लाख योनियां कहीं हैं। जैसे पद्म पुराण में चौरासी लाख योनि बताते हुए कहा है, **"जलजाः नव लक्षाणि स्थावरा लक्षविंशति। कृमयो रूद्रलक्षाणि, पक्षिणः दशलक्षका। त्रिंशल्लक्षाणि पशव्याः चतुर्लक्षाणि मानवाः।"**

अर्थ–नौ लाख जल में रहने वाले जन्तु, ११ लाख कीट पतंग, ३० लाख पशु, २० लाख पेड़ पौधे, १० लाख पक्षी, ४ लाख मानव ये सब मिलकर चौरासी लाख योनियां होती हैं। किन्तु इस गीता में मनुष्य योनि के २ लाख अनार्य भेद बता कर इस प्रकार से छियासी लाख योनियां बताई हैं।

सदाशिव उवाच–चिज्जड़ ग्रन्थि साहाय्याज्जीवा उत्पद्य भूरिशः,
उद्भिजं लक्ष विंशं हि स्वदेजं रुद्र लक्षकम् ॥२॥
एकोनविंशलक्षञ्च नूनमण्डजमद्भुतम्।
जरायुजं चतुस्त्रिंशलक्षकं पितरस्तथा ॥३॥
अनार्य मानवानाञ्च लक्षद्वय मनुक्षणम्।
अशीतिः षट् चलक्षाणि योनी भ्रान्त्वा मुहुर्मुहुः ॥४॥

अर्थ–चिज्जड़ ग्रन्थि के कारण अर्थात् जड़ चेतन की ग्रन्थि को प्राप्त हुआ देहाध्यासी मानता है कि मैं शरीर हूं या मेरा शरीर है। इस भ्रान्ति को चिज्जड़ की ग्रन्थि कहते है। इसके कारण जीव आर्य भाव को प्राप्त न होकर छियासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए बड़ी कठिनाई से आर्य भाव को प्राप्त करता है। इन छियासी लाख योनियों में उद्भिज २० लाख, पसीने तथा धरती के भाफ से पैदा होने वाले स्वेदज ११ लाख, १९ लाख अंडे से पैदा होने वाले अण्डज तथा हे पितरो! ३४ लाख जरायुज, २ लाख अनार्य मानवों की योनियों में जन्म लेने के बाद बड़ी कठिनाई से आर्य भाव को प्राप्त करता है। इनमें से उत्तम मनुष्य योनि में भी तपस्या, त्याग, ज्ञान, वैराग्य से युक्त उत्तम मानव

शरीर पाता है। इस पद को पाकर चक्र शुद्धि से युक्त होकर जीव भाव को छोड़कर ब्रह्म भाव को प्राप्त करता है। पुनर्जन्म की बार-बार प्राप्ति चक्र है। इस चक्र की २ परिधियां हैं-(१) प्रेतलोक, (२) मृत्युलोक हैं। चक्र की पहली परिधि पितृ लोक तक फैली है। यह परिधि मर्त्य लोक में आई है। इसकी एक शाखा स्वर्ग से होकर छठे तप लोक तक पहुंची है। इस चक्र का अन्त में मुझ में लय हो जाता है। इससे पुनर्जन्म चक्र का शान्त होना बहुत कठिन है। मेरे भक्त ही इस का भेदन कर सकते हैं। जीवों की तीन गतियां हैं। शुक्ल-कृष्ण और सहज। तीनों देवताओं के अधीन हैं। कृष्ण गति दक्षिणायन, शुक्लगति उत्तरायण, शुक्ल गति उग्रपुण्य से मिलती है। ज्योति दिन शुक्लपक्ष 6 महीने उत्तरायण के अभिमानी देवता इस क्रम से सत्यलोक में जाते हैं। वहां से सूर्य मण्डल भेद कर पुनः सायुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। हे पितरो! सहजगति अति विलक्षण है। सहज गति प्राप्त करने वाले जीवन मुक्त ज्ञानी भक्त कुलाल चक्रवत् शरीर धारण करते हैं। जैसे कुम्हार दण्डे से चाक को तेजी से घुमाता है। दण्डा हटा लेने पर भी चाक उस शक्ति से घूमता रहता है। कालान्तर में स्वयं शान्त हो जाता है। वैसे ही जीवन मुक्त भक्त का प्रारब्ध भोग पर्यन्त शरीर रहता है। भोग के अनन्तर जैसे आकाश से गिरने वाली बूंदें समुद्र में लय हो जाती हैं। वैसे ही जीवन मुक्त की वासना क्षय, तत्त्व ज्ञान, मनोनाश के साथ मुक्ति होती है। कर्म ३ प्रकार के होते हैं-(१) जीव का जैवकर्म, (२) ईश्वर का ऐश्वर्य कर्म, (३) सहज कर्म। इन कर्मों में सहज-कर्म से मानव तथा देव शरीर प्राप्त होते हैं। तीन प्रकार के इन कर्मों से मनुष्य के अतिरिक्त ४ प्रकार के प्राणियों में अपने पूर्वकृत कर्मों का फल फोलता है। उसे सहज कर्म कहते हैं। मानव शरीर के उपयोगी कर्म मानव कर्म तथा १४ भुवनों में देव शरीर प्राप्त करके जो कर्मों का भोग है वह दैव कर्म है। सहज पिण्ड पञ्चमहाभूतों से बने देव शरीर सूक्ष्म दैविकोपादानों से अधिकारानुसार प्राप्त होते हैं। हे पितरो! मानव शरीर आप लोगों की विशेष सहायता से प्राप्त होता है। जीव सृष्टि के रहस्यों में मनुष्यों के जन्म मृत्यु के विचित्र गूढ़ रहस्य को कहता हूं। एकाग्र होकर सुनो। हे पितरो! प्राणमय कोश की सहायता से दैवी शक्ति के विकास होने पर देवताओं के आसन के उपयोगी आवर्त बनता है। उसे पीठ कहते हैं। पीठ की उत्पत्ति में स्वाभाविक या अस्वाभाविक क्रिया होती है। उसी क्रिया को योग तत्त्वज्ञों ने

चक्र कहा है। मानव शरीर से पीठ उत्पन्न होती है। जन्म-मरण के चक्र का कारण भी मानव शरीर है। इन पीठों के अनेक भेद होने पर भी प्रधानतया जो कि चार श्रेणियां में बंटे हैं-(१) स्थावरपीठ, (२) सहज पीठ स्त्री पुरुष के संगम से समय-समय में उत्पन्न होता है। (३) दैवीपीठ इन्द्रलोकादि, (४) यौगिक पीठ भगवान् विग्रह यन्त्रादि से मिलता है। चक्र अनेक होने पर भी उनकी चार श्रेणियां हैं-(१) सहज चक्र जो पुनर्जन्म का चक्र है। (२) ब्रह्माण्ड चक्र ग्रहोपग्रह नक्षत्रादि का अधिकार स्थान है। यह दोनों स्वाभाविक चक्र हैं। (३) सगर्भ चक्र यह ब्रह्मचक्र शक्ति चक्र के नाम से कहा जाता है। (४) अगर्भ चक्र यह मन्त्र शुद्धि क्रिया शुद्धि से रहित होता है। सगर्भ चक्र का विधान से अनुष्ठान करने से मुक्ति होती है। अगर्भचक्र का अनुष्ठान करने पर लौकिक उन्नति होती है। इन सभी चक्रों का अनुष्ठान मत परायण होकर करना चाहिए। हे पितृगण! जैसे-जैसे इनके अनुष्ठान से ज्ञान की सप्त भूमिकाओं में आरोहण करता है। वैसे-वैसे आध्यात्मिकोन्नति होती है। अपने-अपने अधिकारानुसार वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से अधिदैव शुद्धि होती है। पितरों की कृपा प्राप्त होने पर सहज पीठ की निरन्तरोन्नति से रज-वीर्य की शुद्धि से पुनर्जन्म की आधिभौतिक शुद्धि होती है। आप लोगों की कृपा से ही सफलता मिलतीहै। क्योंकि आप लोग चक्रेश्वर हैं। पीठ शुद्धि का रहस्य कहता हूं, सुनो हे पितृगण! अनेक पीठों में मेरी उपासना करके मेरे भक्त अपने पिण्ड में विद्यमान पीठ में अनेक विभूतियां प्राप्त करते हैं। तब मेरे तेज की रक्षा होने पर पीठ की आधिभौतिक शुद्धि होती है। जब क्रम से साधक मेरी दैवी शक्ति का लाभ प्राप्त करता है तब पीठ की आधिदैविक शुद्धि होती है। तब पवित्र तत्त्व ज्ञान के विकास में आध्यात्मिक शुद्धि होती है। इन पीठों की शुद्धि के लिए देश शुद्धि, काल शुद्धि, मनः शुद्धि, क्रिया शुद्धि तथा द्रव्य शुद्धि, ५ शुद्धियां मुख्य हैं। इनमें भी द्रव्यशुद्ध बलवान् है क्योंकि वह देह के योग्योपयोगी है। इस प्रकार मेरे ज्ञानी भक्त चक्र पीठ शुद्धि को प्राप्त करते हैं। अन्त में मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। आप लोगों की कृपा से माता-पिता के तेज की शुद्धि से बड़े परिश्रम से पञ्चभूतमण्डल में घूमकर शरीर के तत्त्वों को एकत्रित करके माता के गर्भ में स्थूल शरीरों को बना देते हैं। जन्म से सम्बन्धित गुप्त रहस्य को कहता हूं। सत्व, रज, तम से उत्पन्न आकर्षण-विकर्षण

शक्ति की समता जब तक रहती है, तभी धीर दम्पती के सत्व प्रदान से सत्वगुणी सन्तानोत्पन्न होती है। ज्ञानवान होती है। पीठ जिनता सात्विक योग युक्त होगा उतनी ही सन्तान धार्मिक तथा ज्ञानवान् होगी। गर्भ में ही सन्तान को अष्टावक्र-ज्ञानदेव के समान ज्ञान होता है। जीव के गर्भवास के दु:खों का भागवत-विष्णुपुराण, अध्यात्म-रामायण तथा आत्मपुराण में विस्तार से वर्णन हुआ है। हे पितृ गण! यदि माता-पिता तत्त्व ज्ञान की सहायता से इस सहज पीठ के रहस्य को समझ लें तथा शरीर, प्राण मन का संयम करें, मेरा ध्यान करते हुए गर्भाधान करें तो उत्तम सन्तान पैदा कर सकते हैं। तीनों प्रकार की शुद्धि सम्पादन कर योग में लगें तो निश्चय ही जन्म के बन्धन से छूट कर मुक्ति प्राप्त करें। इस ज्ञान का जितना प्रकाश संसार में होगा, उतना ही सत्व का विकास होगा। संसार में धर्म का पूर्ण ज्ञान होगा। आसुरी शक्ति स्वयमेव क्षीण हो जाएगी। यदि भारतवासी इन कहे हुये आदर्शों पर चलते हुए सन्तानोत्पन्न करें तो भारत स्वर्ग हो जाएगा। निश्चय ही कलियुग सत्ययुग में परिणत हो जाए। सभी को ऐहिक सुख के भोग के अनन्तर परमानन्द के अधिकार की प्राप्ति निश्चय हो जाए। **(शम्भु गीता का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण)**

॥ अड़तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ उनतालिसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्माण्ड निरूपण शम्भु गीता का चौथा अध्याय

पितरों के देव लोक सम्बन्धी प्रश्न करने पर भगवान् शंकर ने पृथ्वी से लेकर ऊपर के अन्तिम लोक ब्रह्मलोक का वर्णन किया। ऊपर के लोकों में सत्वप्रधान देवता निवास करते हैं। पृथ्वी से नीचे तमोगुण प्रधान नाग तथा राक्षस रहते हैं। इन लोकों के वर्णन करने के अनन्तर आया कि पृथ्वी लोक पूरे ब्रह्माण्ड का (१००) सौवां भाग है। इस भूलोक में भी चार लोक हैं। इनमें (१) पितृलोक, (२) मृत्यु लोक, (३) प्रेत लोक, (४) नरक लोक। अत: मरण धर्मा जीव जन्तुओं का मृत्यु लोक, पृथ्वी का चतुर्थांश है। इनमें आप लोगों का पितृलोक भूतल का स्वर्ग है। मृत्यु लोक कर्म भूमि है। प्रेतलोक तथा नरक लोक दुख से परिपूर्ण हैं। इससे ऊपर के लोकों को आप भी

नहीं जानते। इसमें मृत्यु लोक का अधिकार सर्वलोक हितकर है, क्योंकि इस लोक में देव तथा दानव यहां पर ही शुभाशुभ कर्म करके अन्य लोकों को जाते हैं। पुण्य क्षीण होने पर यहीं आते हैं। प्रेतलोक, मृत्युलोक का ही एकांग है। अतः मृत्युलोक की सुव्यवस्था होने पर चौदह लोकों की सुव्यवस्था हो जाती है। इस मृत्युलोक में भी भारत तथा आर्यावर्त की भूमिका आत्मज्ञान में सहायक है। इस आर्यावर्त के सम्बन्ध में वेदों का सार कहता हूं। आप सावधान होकर सुनो। हे पितरो! जिस मनुष्य जाति में माता-पिता का सम्मान होता है, ऋषियों तथा अवतारों और मेरी विभूति की यथा योग्य आराधना होती है। जहां पर सप्त प्रकार के वृद्धों की नित्य पूजा होती है, वह जाति स्वयं समृद्ध होकर आप लोगों से बुद्धि विद्या तथा धन से चार प्रकार की शक्ति प्राप्त करती है। इन चार शक्तियों से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान से पूर्ण धर्मज्ञान प्राप्त होता है। हे पितरो! इसके सम्बन्ध में मैं उपनिषदों का अद्‌भुत रहस्य प्रगट करता हूं।

श्लोक– श्यामायाः प्रकृतेमे स्तो द्वेरूपे परमाद्‌भुते।
यतः सैव जड़ा जीवभूता चैतन्यमय्यपि॥११४॥
अज्ञान पूर्णरूपेणजड़रूपं धरन्त्यसौ।
सृष्टिं प्रकाशयेच्छश्वन्नात्र कश्चन संशयः॥११५॥
असौ चैतन्यपूर्णा च भूत्वास्त्रोतस्विनी मम।
स्वस्वरूपात्मके नित्यं पारावारे विशत्यहो॥११६॥
सरिन्निर्गत्य चिद्‌रूपा सा महाद्रेर्जडात्मकात्।
उद्‌भिजे स्वेदजे चैवमण्डजे च जरायुजे॥११७॥
सलिलंखातारूपेऽलं प्रवहन्ती स्वधाभुजः।
मर्त्यलोकाधित्यकायां निर्वाधं ब्रजति स्वयम्॥११८॥
तस्या अधित्यकाया हि निम्नस्थाश्चैकपार्श्वतः।
उपत्यकामहत्यश्च विद्यन्ते गह्वरादयः॥११९॥
यत्र तस्याः पवित्रायास्तरिङ्गिण्या जलं स्वतः।
स्थाने-स्थाने वहन् नित्यं निर्गच्छति स्वभावतः॥१२०॥

अव्याहतञ्च नीरन्ध्रमविच्छिन्नं निरापदम्।
स्त्रोतस्तन्नितरांकृत्वा नदीधारां धरातले ॥१२१॥
विधातुं सरलां सोम्यामष्टवन्धस्स्वधाभुजः।
धर्मावर्णाश्रमा एवं निर्मिता नात्र संशयः ॥१२२॥
त्रिलोकपावनी दिव्या सा नदी सुगमं हितम्।
पन्थानमवलम्ब्यैव परमानन्द लब्ध्ये ॥१२३॥
मयि नित्यं प्रकुर्वाणा प्रवेशं राजतेतराम्।
नैवात्र विस्मयः कार्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ॥१२४॥
निर्जरा निखिलास्तस्यां नद्यामानन्द पूर्वकम्।
सर्वदैवावगाहन्ते लभन्तेऽभ्युदयञ्च ते ॥१२५॥
उभयोस्तटयोस्तस्याः समासीना महर्षयः।
ब्रह्मध्याने सदामग्ना यान्ति निःश्रेयसंपदम् ॥१२६॥
यूयं दार्ढ्याय बन्धानां तेषाञ्चैव निरन्तरम्।
रक्षितुं तान् प्रवर्तन्ते पार्श्वमेषामुपस्थिताः ॥१२७॥
भवतामत्र कार्येच विश्वमङ्गल कारके।
सदाचारिद्धिजाः सन्ति सत्या नार्यः सहायिकाः ॥१२८॥

अर्थ–मेरी श्यामा प्रकृति के दो रूप हैं। वह जड़ रूपा और जीवभूता चेतनमयी है। वह अज्ञान पूर्ण रूप में जड़रूप धारण करके सदा सृष्टि को प्रकट करती है तथा चेतन में स्त्रोतरूपिणी (झरना) होकर मेरे स्वरूप पारावार रूपी रूप में प्रवेश करती है। वह चेतन नदी जड़मय महापर्वत से निकल कर पहले उद्भिज फिर स्वदेज तदनन्तर अण्डज पुनः जरायुज नामरूपी खड्डे में सरलता से बहती हुई मनुष्य लोक रूपी तलहटी में पहुंचती है। उस तलहटी से नीचे छोटे तथा बड़े गड्ढे विद्यमान हैं। जिसमें उस परम पवित्र नदी का जल स्थान स्थान पर अपने आप बहता है। हे पितरो! उसकी धारा अवाध गति से तथा, अविच्छिन्न रूप से बहने के लिए वर्णाश्रम रूपी बांध रखे गये हैं अर्थात् साधारण नदी को रोकने के लिए जैसे दोनों किनारों को बांधा जाता है, वैसे

ही इस चेतन रूपी नदी के वर्णाश्रम रूपी दो प्रधान बांध है। अतः वर्णाश्रम व्यवस्था घृणामूलक या मनुष्य कल्पित नहीं है, किन्तु वेद वेदान्त प्रतिपादित है। इस कारण से त्रिलोक पावनी दिव्य नदी सरल मार्ग का आश्रय लेकर मुझ परमानन्द स्वरूप सागर में प्रवेश करती है। हे पितृगण! आप लोगों को विस्मय नहीं करना चाहिए। देवता लोग उस नदी में स्नान करके उन्नति को प्राप्त होते हैं तथा ऋषिगण उसके दोनों तटों पर कुटी बनाकर ब्रह्म ध्यान में मग्न होकर कैवल्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। (११४-१२६) हे पितरो! आप लोग इन दोनों वर्णाश्रम रूपी बांधों को सुदृढ़ रखने के लिए उनके पास (बांधों के पास) रहकर रक्षा करने में सदैव तत्पर हो। आप ही जगत् के कल्याण करने वाले हो। वर्णाश्रम बांध की रक्षा करने में सदाचारी ब्राह्म णतथा सती साध्वी नारियां सहायक हैं। (१२७ से १२८ यावत्)

किन्तु असुर लोग जबरदस्ती इस बांध को तोड़ देते हैं। नदी की धारा में छेद कर देते हैं। जिससे यह चेतन रूपी धारा टूटकर सच्चिदानन्द रूपी सागर में न मिलकर नरकों या ८६ लाख योनियों में चली जाती है। **(शम्भु गीता का चौथा अध्याय सम्पूर्णम्)**

॥ उनतालिसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ चालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शम्भु गीता का पांचवां अध्याय

पितरों के प्रति शंकर जी ५ प्रकार की पुस्तकों का उदाहरण देते हुए कहते हैं। नादमयी पुस्तक का उदाहरण श्रुति है। बिन्दुमयी का उदाहरण स्मृति है। ब्रह्माण्डमयी पुस्तक का उदाहरण तंत्र है। पिण्डमय पुस्तक का उदाहरण वैदिक शास्त्र है। इनसे अतिरिक्त पृथ्वी के अन्यान्य ग्रन्थ अक्षरमय पुस्तक के उदाहरण है। ज्ञान नित्य होने के कारण शास्त्र भी नित्य है। प्रलय में सम्पूर्ण शास्त्र वेद में लय होकर मुझ को प्राप्त होते हैं। भ्रान्ति रहित ज्ञान के बिना किसी को भी ऋषि पदवी नहीं मिलती। मंत्र दृष्टा ऋषि कहे जाते हैं। मेरे स्वरूप का बोध कराने वाले को मंत्र कहते हैं। शास्त्रों का मतभेद कथन

शैली के मतभेद से है। द्वैत अद्वैत का भी झगड़ा नहीं है। उपासना शास्त्र के अनुसार तथा व्यवहार में द्वैत है मुक्ति में अद्वैत है। ज्ञान भी अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैव अनन्त शाखाओं से युक्त होने के कारण अति विस्तृत है। अध्यात्म ज्ञान की पूर्णता तभी होती है जब सभी प्राणियों में ब्रह्म दृष्टि हो। इस अध्यात्म ज्ञान को ब्रह्मचारी, गुरु सेवा से, गृहस्थ आश्रमी, आत्म बल को लक्ष्य करके संयमों द्वारा, वानप्रस्थी तप द्वारा, संन्यासी आत्म तत्त्व में त्याग द्वारा प्राप्त कर सकता है। संसार में अधिक धनी या राजा धनवान् नहीं है। क्योंकि यह धन क्षणभंगुर है, किन्तु आत्म बोध रूपी हीरा जिसके पास में है वही महाधनी है। अज्ञान के कारण जीव को प्रेत बुद्धि प्राप्त हुई है। मैं ही अपने आनन्द में मग्न होने के लिए द्वैत की इच्छा करता हूं। यह पहली अवस्था है। मेरी शक्ति माया मुझ से प्रकट होकर द्वैत भाव को जन्म देती है। यह द्वितीय अवस्था है। तीसरी अवस्था–दम्पती से सन्तान की उत्पत्ति तीसरी अवस्था है। जब स्त्री धारा पूर्णता को प्राप्त होती है। तो सतीत्व धर्म के प्रभाव से पुरुष में लीन हो जाती है, यह चौथ अवस्था है। तत्पश्चात् अनुकूल शक्ति प्राप्त करके पुरुष पूर्ण होता है। यह पांचवीं अवस्था है। आचार्यवान् छठी अवस्था है। जाति धर्म का विकास सप्तम अवस्था है तदनन्तर शूद्र धर्म से शरीर की शुद्धि अष्टम अवस्था है। वैश्य धर्म से इन्द्रियों की शुद्धि नवम अवस्था है। तात्पर्य यह है कि शूद्र के बाद वैश्य का जन्म होता है। तदनन्तर क्षत्रिय धर्म द्वारा मनो रज की शुद्धि यह दशम अवस्था है। ब्राह्मण धर्म से बुद्धि राज्य की शुद्धि के द्वारा पवित्र होकर जीव एकादश अवस्था को प्राप्त करता है। हे पितरो आश्रम धर्म के सम्बन्ध से ब्रह्मचर्य आश्रम से ब्राह्मण को, वेद की प्राप्ति बारहवीं अवस्था है। गृहस्थाश्रम में अध्यात्म ज्ञान मूलक वेद के अनुष्ठान से तेरहवीं अवस्था की प्राप्ति होती है। वानप्रस्थ आश्रम द्वारा वैराग्य की प्राप्ति चौदहवीं अवस्था है। तदनन्तर संन्यास आश्रम धर्म के द्वारा आत्मरति यह पन्द्रवीं अवस्था है। अन्त में जो ब्रह्मरन्ध्र विषयानन्द में परिणत हुआ था, वह पुनः अपने स्वरूप में पहुंच कर अद्वितीय सच्चिदानन्द भाव युक्त होकर जीव को परमानन्द रूपी कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति सोलहवीं अवस्था है। हे पितृगणः यह अति दुर्लभ तंत्र वेद वेदान्त का सार है। **(शम्भु गीता का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण)**

॥ चालीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ इकतालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शम्भु गीता का छठा अध्याय–जीवन मुक्त भक्तों के लक्षण

जब भगवान् शंकर ने पितरों के प्रति इस प्रकार से कहा, तब पितरों ने पूछा, जीव अल्पज्ञ, परिच्छिन्न, तीन देहों से युक्त है। आप इन सबसे अतीत हैं। हे भक्त वत्सल आप के अवतारों में, ज्ञानी, जीवन-मुक्त भक्तों में क्या भेद है। आप भी जब अवतार लेकर जन्म, कर्म, बन्धन को प्राप्त होते हैं, तो जीव कैसे मुक्त हो सकता है, इसके उत्तर में–

सदाशिव बोले–जो जीवों की उत्पत्ति, विनाश, गति, अगति विद्या अविद्या को जानता है, उसे भगवान् कहते हैं। वे सभी गुण तत्त्ववेत्ताओं में भी पाये जाते हैं. अतः भगवान् और तत्त्ववेत्ता में कोई भेद नहीं है। जीवन मुक्त महापुरुष दो श्रेणी के हैं। एक ब्रह्मकोटि दूसरी ईशकोटि। ब्रह्मकोटि के जीवन मुक्त निश्चेष्ट होकर आत्मा में रमण करते हैं। जगत् के साथ उनका कुछ संबंध नहीं रहता। ईश कोटि के जीव जीवन मुक्त ईश्वर के प्रतिनिधि होकर जगत् का कल्याण करते हैं। ऐसे जीवन मुक्त महापुरुषों के उपकारों से जगत् कृतार्थ होता है। मेरे ज्ञानी भक्त जब जीवन मुक्त होने की पदवी प्राप्त करते हैं, तो देश काल और कर्म की बाधा नहीं है। वे महापुरुष ब्रह्म भाव की धारणा द्वारा तीनों बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। उनके ऊपर प्रकृति के तीनों गुणों का बारह राशियों का, सत्ताइस नक्षत्रों का, नवग्रहों तथा उपग्रहों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिस प्रकार कोई जलयान जब चुम्बक के पर्वत के निकट होता है तो उसके लोहे की कीलें खुल कर पर्वत में चिपक जाती हैं तथा जलयान समुद्र में डूब जाता है। उसी प्रकार युक्त योगी जीवन मुक्तों के सभी कर्म ब्रह्माण्डाकाश का आश्रय करके क्षीण हो जाते हैं। जीवन मुक्त यति आकाश से गिरी हुई जल की बूंदों के समान मुझ में मिल जाता है। तीनों गुणों से उत्पन्न होने वाली वृत्तियां तथा वासनाएं उन्हें प्रभावित नहीं करती। वे जगद्गुरुओं का पद प्राप्त करते हैं। युग-युग में मेरे अवतार समष्टि कर्माधीन होते हैं। उन अवतारों में मेरी तीन प्रकार की शक्ति की प्रधानता रहती है। उनको मेरी शक्ति की अपेक्षा है, किन्तु जीवन मुक्त संत मेरी शक्ति की अपेक्षा नहीं करते। जिस आत्म ज्ञान

को पाकर जीवन मुक्ति प्राप्त होती है उस आत्मज्ञान की वेद में तीन श्रेणियां कही गई हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म की अपरोक्ष अनुभूति द्वारा जीव बन्धन रहित हो जाताहै, किन्तु कुम्हार के चक्र के समान उनके चित्त के विक्षेप प्रारब्ध की प्रबलता के कारण दूर नहीं होते। समाधि से उठने की अवस्था अधिक रहती है, परन्तु वह भी तीव्र भक्ति योग से मेरे स्वरूप को प्राप्त करता है। अन्तःकरण की चंचलता से युक्त होने पर भी अपरोक्षानुभूति द्वारा मुक्त ज्ञानी की प्रथम श्रेणी है। उनका मन भुने हुए बीज के समान होता है। उस ज्ञानी भक्त में अज्ञान रूपी बादल श्रावण मास के मेघाच्छादित सूर्य के समान बीच-बीच में प्रकाशित होता है। इस प्रथम अवस्था में जीवन मुक्त को परिश्रम अधिक होने पर भी परम पद की प्राप्ति होने पर परम विश्राम मिलता है। जीवन मुक्त की दूसरी अवस्था में मन उन्मुक्त होकर शान्ति दायिनी मेरी चित् सत्ता समस्त ज्योति से युक्त होकर व्यापक आकाश के समान विराजमान होती है। इस दशा में गाढ़ निद्रा के समान अथवा पत्थर की कठिनता के सदृश अथवा आकाशवत् विषयों के प्रति परित्याग करके स्वरूप में निरन्तर अद्वैत सत्यका अनुभव करते हैं। इस दूसरी दशा में पहुंचे हुए योगी की समाधि कम भंग होती है। साथ ही साथ अन्तःकरण रूपी समुद्र की वृत्ति रूपी प्रत्येक तरंग के आदि अन्त में मेरे ज्ञानी भक्त सायुज्य प्राप्त करते हैं। तीसरी दशा को प्राप्त करने वाले जीवन मुक्त क्षीर में मिले नीर के समान चित् प्रधान तीन प्रकार की सत्ता अखण्ड ब्रह्माकार भाव को प्राप्त करके मेरे साथ अभेद से बनी हुई उस समय की सत्ता नाम रूप से परे होने के कारण ब्रह्म आत्मा त्यागी नामों से परे होकर पूर्ण स्वरूप में स्थित होते हैं। यह अवस्था देश, काल, प्रकृति से अतीत स्वरूप में तुरीयातीत आदि अवस्थाओं से भी अतीत होकर अद्भुत परम भाव को प्राप्त करती है। इस तीसरी अवस्था के पथ के पथिक दूर होने के कारण वे विदेह मुक्त होने के कारण, मेरे तुल्य है। हे पितृगण! यह सर्वजीव हितकारिणी उपनिषद् विद्या सनातनी श्रुति का वचन है। **(शम्भु गीता का छठां अध्याय सम्पूर्ण)**

॥ इकतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ बयालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शम्भु गीता का माहात्म्य

श्री शंकर जी का वचन सुनकर पितृगण बोले हे सर्वेश्वर! आपके जीवन मुक्त का रहस्य नहीं समझ पाये, परन्तु आपकी कृपा से इतना अनुभव में आया है कि सर्वजीव हितकारिणी परमशक्तिरूपा अहैतुकी कृपा से ही जीवन मुक्त पद की प्राप्ति होती है तथा ऐसे यति आपका स्वरूप हो जाते हैं। कोई भेद आप में और भक्तों में नहीं है। आपके ज्योतिर्मय लिंग का हम प्रत्यक्ष दर्शन चाहते हैं। पितरों की प्रार्थना सुनकर सदाशिव बोले–हे वर्णाश्रम धर्म रक्षक पितृगण मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूं जिससे आप चिन्मय लिंग विश्वरूप का दर्शन करके कृतार्थ होंगे। ऐसा कहकर श्री शंकर जी ने दिव्य दृष्टि प्रदान करके, लिंग में विश्वरूप दिखाया। शंकर जी की महती कृपा से उनको समझ में न आने वाले जीवन मुक्ति का रहस्य अवगत हुआ तथा उस लिंग रूप की स्तुति करने लगे। अन्त में पितरों ने कहा हे विभो! आपकी हम शरण ग्रहण करते हैं। जिससे हमारा कल्याण हो वही कार्य करिये।

श्री सदाशिव बोले–हे पितृगण! मैं आपकी स्तुतियों से प्रसन्न हूं। ऐसा कह कर शंकर जी ने संक्षेप में मुख्य विभूतियां बताईं, जो श्रीमद्भगवद्गीता तथा भागवत के एकादश स्कन्ध में विभूति योग में कहे हुए अध्याय से मिलती हैं। अन्त में श्री शिव जी ने कहा यह उपनिषदों का सारोपदेश मैंने आप लोगों के प्रति जो सुनाया है। वह शम्भु गीता के नाम से प्रसिद्ध होगा। इस गीता को आप लोग अविश्वासी, देवता गुरुभक्ति से रहित के प्रति तथा नास्तिक को उपदेश न करें, किन्तु जो गुरुओं में, वेद, देवता में विश्वास करते हैं ऐसे सदाचारी भक्तों को सुनाना। जहां यह गीता ग्रन्थ रहता है वहां अज्ञान उसी प्रकार नहीं ठहर सकता जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अंधकार नहीं रहता। इस गीता का पाठ सन्तान हीन को सन्तान देता है। रोगी के लिए इसका पाठ पृथ्वी में धन्वन्तरी के समान है। हे पितृगण! इस गीता के अनुसार विदि विधान से हवन अथवा पाठ शिवयज्ञ का अनुष्ठान समान रूप से करने से चारों पुरुषार्थों को देता है। गृहस्थ नित्य पाठ करने से धन ऐश्वर्य, पुत्र-स्त्री शान्ति के अधिकारी होंगे। निवृत्तिमार्गी

साधकगण इसके नित्यपाठ करने से तत्त्वज्ञान प्राप्त करके कैवल्य मुक्ति प्राप्त करेंगे। इसके पाठ से स्त्री में सतीत्व धर्म, दम्पती में पवित्र प्रेम तथा माता-पिता को ज्ञानवान् पुत्र प्राप्त होता है। हे पितरो! कलियुग में प्राचीन वैदिक कर्म लुप्त हो जाएंगे। उस समय त्रिलोहे से बनी लिंग रूपी विग्रह की स्थापना करके जो साधक ऋग्वेद की संहिता द्वारा विष्णु गीता, सूर्य गीता, दुर्गागीता, श्रीधीश गीता (गणेशगीता) तथा शम्भु गीता के मंत्रों से हवन करके दुर्गा सप्तशती का हवन करता है। सात प्रकार के हवन से युक्त साङ्गोपाङ्ग विश्व कल्याण के लिए जो मेरा भक्त इनका अनुष्ठान करेगा तथा कृपणता त्याग कर ब्राह्मण भोजन विद्वान् ब्राह्मणों का सत्कार, दीनों दरिद्रों को यथा शक्ति दान करके विश्व धारक यज्ञ पूर्ण करेगा उसको उसके सन्दर्भ के अनुसार वैदिक अश्वमेध सभी प्रकार के वैदिक यज्ञों के फल की प्राप्ति होगी। इस अनुष्ठान के बराबर दूसरा कोई यज्ञ, दान, तीर्थ, तत्त्व कलिकाल में नहीं है।

श्लोक- यज्ञोदानं च तीर्थं च तपो वा तादृशंनहि।
विश्वधारक यज्ञस्य यत्फलेन समं कलौ॥११६॥
भवेन्नैवात्र सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः।
माहात्म्यं शम्भुगीतायाः मर्त्यलोकेप्रचार्यवै॥११७॥
लोकद्वयस्य कल्याणं निष्पादयत कल्यदाः।
स्वयं कल्याणभागाश्च यूयं भवत सत्तमाः॥११८॥

इति शम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे सदाशिव पितृसम्वादे शिवलिङ्ग निरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अर्थ-हे श्रेष्ठ पितरो! इस शम्भुगीता के तुल्य मनुष्य लोक में कोई साधन नहीं है। जो इस लोक में शम्भु गीता का प्रचार करके दोनों लोकों का कल्याण करे तथा स्वयं कल्याण को प्राप्त करे। **(शम्भुगीता का सातवां अध्याय सम्पूर्णम्)**

इस प्रकार कलिकाल के जीवों का कल्याण करने की इच्छा से भगवान् शंकर ने पितरों को संबोधित करके वर्णाश्रम धर्म की रक्षा का मार्मिक हृदयग्राह्य तर्क, प्रमाण, युक्ति संगत परमलाभ कराने के लिए उपदेश किया है। चारों वर्णाश्रम के साधकों को

इसका श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते हुए लोक परलोक सुधारना चाहिए। इस पर चलने से नास्तिकता तथा अविश्वास नहीं रहता। जीव तीनों प्रकार के तापों तथा पापों की आत्यन्तिक निवृत्तिपूर्वक निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है। **(शम्भुगीता पूर्ण)**

॥ बयालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ तैतालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अथ शिव गीता

पद्म पुराण में १६ अध्यायों में भगवान् श्री राम के प्रति भगवान् शंकर ने जो उपदेश किया है वह शिव गीता के नाम से प्रसिद्ध है। इस पुराण में भगवान् के अनेकों अवतारों के वर्णन के अनन्तर, रामचरित्र अति विस्तृत है। जिस समय पिता की आज्ञा प्राप्त कर श्री राम वन में पहुंचे। पंचवटी में यति के वेष में रावण ने सीता का अपहरण किया। उस समय सीता के वियोग में अत्यन्त दुखी श्री राम लक्ष्मण जी के प्रति अपना दुख प्रकट करके प्राण त्यागने के लिए तत्पर हुए। उसी समय अगस्त्य जी वहां पहुंचे। उन्होंने श्री राम जी से कहा, हे राम! तुम क्षत्रिय कुल भूषण हो। आपका अवतार तो दुष्टों का दमन करने के लिए हुआ है। शत्रुओं को दुष्टता का दण्ड देकर तुम्हें सीता जी को प्राप्त करना चाहिए। सीता को प्राप्त करने के लिए आप शिवारधना करें। हे राम अनेकों जन्मों के शुभ कर्म से शिव भक्ति प्राप्त होती है। तब निष्काम भाव से नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान होता है। उससे चित्त शुद्ध होता है। तब नित्यानित्य का विवेक और दोनों लोकों के भोगों से वैराग्य पुनः षट् सम्पत्ति, पुनः मुक्ति की तीव्र कामना, तब संन्यास, फिर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति, तब श्रवण-मनन निदिध्यासन, निर्विघ्न होने पर तब आत्मा साक्षात्कार, तब ज्ञानी का जब तक प्रारब्ध कर्म है; तब तक शरीर रहता है। पुनः जीवन मुक्ति की प्राप्ति होती है। प्रारब्ध भोग के अनन्तर तीनों शरीरों को ज्ञानी यहीं छोड़कर कैवल्य मुक्ति पाता है। अतः चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए श्री शंकर जी की आराधना करो। इस आराधना से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष श्री शंकर जी के दर्शन और आशीर्वाद से रावण पर विजय प्राप्त करोगे। उनसे ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाओगे।

भगवान् शिव आशुतोष हैं। शीघ्र प्रसन्न होकर पर्वत के समान महापापों को भस्मकर देते हैं। अतः तुम मुझ से पार्थिव तत्त्व की दीक्षा लेकर शिवाराधन करो। वे भक्तिपूर्वक दिये हुए पत्र, पुष्प, फल, जल आदि वस्तुओं को ग्रहण करते हैं यदि जल भी न मिले तो केवल प्रणाम से प्रसन्न होते हैं। भक्तिपूर्वक दिये हुए जलमात्र को भगवान् ग्रहण करते हैं, परन्तु श्रद्धा, भक्ति, विश्वास से रहित वे तीनों लोकों को भी स्वीकार नहीं करते तथा प्रेमी भक्त के द्वारा दिये हुए जल को त्रैलोक्य के दान के समान स्वीकार करते हैं। तब श्री राम ने कहा, आप मुझे शिव मंत्र की दीक्षा दें। तब अगस्त्य जी ने श्री राम जी को विधि विधान से दीक्षित किया तथा पापों को भस्म करने वाला विरजा होम किया। उनकी आज्ञा से राम जी ने सारे शरीर में भस्म लगाई। रुद्राक्ष धारण करके शिव जी का ध्यान करते हुए स्तुति करने लगे। अनुष्ठान का नियम बताते हुए अगस्त्य जी ने कहा कि हे राम! प्रातः उठकर शौच स्नानादि से निवृत्त होकर सफेद वस्त्र तथा सफेद यज्ञोपवीत धारण करके तब यजुर्वेद के मन्त्रों से आहुति दें। अपने में तीनों अग्नियों का समावेश करके शिव जी का ध्यान करते हुए शरीर त्यागने वाला भक्त शिव सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।

अगस्त्य जी की आज्ञानुसार श्री राम जी ने लक्ष्मण सहित अनुष्ठान किया। इसकी पूर्ति पर भगवान् शशांकशेखर पार्वती तथा गणों सहित प्रकट हुए। पहले तो श्री राम जी उनके तेज से व्याकुल होकर शिव जी को न देख सके। अन्त में बड़ी कठिनाई से देख सके। शिव जी ने उनको दिव्य दृष्टि दी तथा विश्व रूप दिखाया एवं उनकी स्तुति की। स्तुति के अंत में कहते हैं। हे महाप्रभु! यदि आप प्रसन्न होकर अपने भक्त को इस लोक या परलोक की विभूति दे देते हैं अथवा अपना पूरा लोक ही दे देते हैं तो यह आपकी विशेषता नहीं है, क्योंकि ये सब पदार्थ जड़ दुख रूप तथा नाशवान् हैं। परिणाम में जन्म मरण का महा दुख देते हैं। अतः हे महाप्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप अपनी अनपायिनी अभेद भक्ति ज्ञान सहित दें।

स्तुति से प्रसन्न हुए श्री शंकर जी राम जी से बोले, मैं सम्पूर्ण विद्याओं का स्वामी हूं। इसलिए मैं ईशान हूं। मैं ही सर्व रूप हूं। सर्वतोमुख, नेत्र, बाहु चरणों वाला मैं अपनी भुजाओं से पृथ्वी आकाश को व्याप्त करके स्थित हूं। अपने हृदय में जो मेरा दर्शन करते

हैं, उन्हीं को शान्ति प्राप्त होती है। बहिर्मुखों को नहीं, मैं ही कारणों का महाकारण हूं। तुम मन की वृत्तियों को रोककर मन मुझ में लगाओ। जिस को प्राप्त न करके मन सहित वाणी लौट आती है। मैं आनन्द स्वरूप हूं। मुझ को जान कर जीव भयभीत नहीं होता। मेरे वचनों में विश्वास करके मेरे ज्ञानी भक्त मेरा ध्यान करते हुए ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं।

मैं अचिन्त्य शक्ति हूं। बिना पैर के चलता हूं। बिना हाथ के जगत् को रचता हूं। बिना आंखों के देखता हूं। बिना कानों के सुनता हूं। मैं सब को जानता हूं। मुझे कोई नहीं जानता। वेद के द्वारा जानने योग्य मैं ही हूं। वेदान्त का कर्त्ता मैं ही हूं। मुझ में पुण्य, पाप, जन्म, मृत्यु, दस इन्द्रियां, अन्तःकरण चतुष्टय, पंच महाभूत नहीं है। मैं निष्कल हूं। बुद्धि रूपी गुफा में स्थित हूं। ऐसा जानकर सत्-असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। हे महामते! राम! इस प्रकार मुझे जो तत्त्व से जानता है वह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है।

ऊपर के अध्याय में शंकर जी ने अपने विश्व रूप का वर्णन किया है। तब शंका होती है कि यदि ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण है तब जगत् विकारी क्यों हुआ। विकारी होने से जगत् परिणामी सिद्ध हुआ। जैसे दूध का परिणाम दही है। वैसे ही ब्रह्म का परिणाम जगत् है, किन्तु वेदान्त में ब्रह्म को कूटस्थ अर्थात् निर्विकार कहा है तब वेदान्तियों का माना हुआ जगत् ब्रह्म का विवर्त नहीं सिद्ध होता। यह शंका प्राप्त होने पर राम जी शिव जी से कहते हैं, आप में विकार नहीं है। विकार रहित होने पर भी माया के कारण विकारी प्रतीत होते हैं। माया शब्द में मा तथा या दो शब्द हैं मा माने नहीं या माने प्रतीत हो। न होते हुए जो प्रतीत हो। उसका नाम माया है। जैसे रज्जु में सर्प तीनों कालों में न होने पर भी देखने वाले को रज्जु सर्प रूप में दीखती है। वैसे ही ब्रह्म में कोई विकार न होने पर भी माया के कारण ब्रह्म में जगत् प्रतीत होता है। अथवा अल्प वस्तु में जहां बड़ी वस्तु दिखाई दे वहां माया है अर्थात् धोखा है। जैसे एक परमाणु में हिमालय पर्वत नहीं हो सकता भ्रम से दीखता है। यथार्थ में नहीं है। अतः भगवान् शिव की स्तुति करते हुए श्री राम कहते हैं-

हे प्रभो! आपके छोटे से शरीर में यह जगत् जो दिखाई देता है वह सब आप की

माया में है। वास्तव में नहीं है। कहा भी है असम्भव को सम्भव करने वाली का नाम माया है।

यदि शंका करो, कि जब अधिष्ठान में प्रतीत होने वाली वस्तु मिथ्या है। तब तो आप जगत् के अधिष्ठान याने आधार जगत आप में अध्यस्त अथवा आरोपित है। अतः मिथ्या है। इस पर श्री राम कहते हैं। अध्यस्त के मिथ्या होने पर भी, अधिष्ठान मिथ्या नहीं है। जैसे सर्प के मिथ्या होने पर भी रज्जु मिथ्या नहीं है वैसे ही आप की माया तथा जगत् मिथ्या होने पर भी आप मिथ्या नहीं है। सीपी में चांदी मिथ्या है। पर सीपी मिथ्या नहीं है, अतः आपकी माया से प्रतीत होने वाला आपका शरीर भी मिथ्या है किन्तु आप मिथ्या नहीं है। परन्तु यह दुर्घट घटित करने वाली आप की माया का चमत्कार है जिसमें आप का त्रिशूल डमरू आदि अंगों उपागों से युक्त शरीर प्रतीत होता है तथा उस शरीर में जगत् दीखता है। वह भी माया के द्वारा आप के शुद्ध स्वरूप में कल्पित मिथ्या है। अर्थात् कार्य कारण भाव से रहित है। आपका यह शरीर सम्पूर्ण जगत् का आश्रय है। वह भी मेरे अज्ञान से है। वास्तव में आप पूर्ण ज्ञान स्वरूप है।

शंका–सर्व जीव ब्रह्म से अभिन्न होने पर सब के मिथ्या हो जाने पर तीनों काण्डों वाली श्रुतियां (वेद) भी मिथ्या ज्ञान ही बोध कराती हैं।

समाधान–इस पर राम कहते हैं। हे त्रिपुरारे! वेदों में कही हुई इष्टपूर्त्यादि क्रिया मिथ्या होने पर भी आप को छोड़कर और कुछ नहीं है। यह आप का वेद वचन मिथ्या सिद्ध हो जाएगा। भाव यह है कि जब तक अविद्या कृत भेद तथा वासना है, तब तक कर्म काण्ड व्यावहारिक सत्ता में सत्य है। महाभाग्यशाली महानतम पुण्यवान् करोड़ों में किसी एक को आप के तत्त्व का साक्षात्कार होता है। हे हर! आत्म ज्ञानियों के द्वारा पूजोपचार आदि अज्ञान से प्रतीत होते हैं। हे गिरीश! निराकार स्वरूप आप में उनके दिए भोगों को ग्रहण करने की आत्म इच्छा कहां है? वे तो अन्तःकरण की शुद्धि के लिए सब करते हैं। जैसे लोहा लोहे को काटता है, वैसे ही मायिक नाम रूप क्रिया रूपी संसार की निवृत्ति भगवान् के नाम, रूप, क्रिया से होती है। अंतःकरण शुद्ध होने के अनन्तर आप का बोध होता है। अतः यह सब परम्परा आप के ज्ञान कराने में सहायक है। साक्षात् नहीं। जैसे आकाश में प्रकाशित सूर्य एक होने पर भी अनेकों जल के भरे

घड़ों में अनेकों रूप से प्रतिबिंबित होता है। वैसे ही हे देव! आप एक होने पर भी अनेक अंत:करणों के कारण अनेक प्रतीत होते हैं। अत: सच्चिदानन्द स्वरूप आप को मैं प्रणाम करता हूं।

इस प्रकार भगवान् राम स्तुति करके मौन हो गये। तब तीनों शरीरों की अनात्मकता को सिद्ध करने के लिए तीनों से उपरामता के लिए भगवान् शंकर ने स्थूल शरीर से वैराग्य उत्पन्न करने के लिए श्री राम से कहा–

स्थूल शरीर का वर्णन

हे राम! अनेक जन्मों के पुण्यकर्मों से, जीव मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। माता-पिता द्वारा खाये हुए अन्न से शुक्रशोणित बनता है। माता के पेट में मिलकर रज की अधिकता से स्त्री, शुक्र की अधिकता से पुरुष होता है। यदि दोनों का तेज समान हो तो नपुंसक होता है। ऋतुस्नाता पत्नी के ४ दिन बाद पांचवें दिन से लेकर १६ दिन तक ऋतुकाल होता है। विषम रात्रियों में ५, ७, ९, ११, १३, १५ रात्रियों में भोग से कन्या तथा सम रात्रियों में ६, ८, १०, १२, १४, १६ इनमें बालक का जन्म होता है। विषम रात्रियों में पति के शुक्र की अधिकता से बालक होता है, किन्तु आकार बालिका की तरह तथा सम रात्रियों में संयोग में स्त्री की रज की अधिकता में कन्या होती है, किन्तु उसका रूप पुत्र जैसा होता है। लिंगपुराण में कहा है–

श्लोक–चतुर्थ्यां रात्रौ विद्याहीनं, व्रतभ्रष्टं पतितं पर दारिकम् दरिद्रार्णव मग्नं च तनयं सा प्रसूयते॥

पञ्चम्यामुत्तमांकन्यां षष्ठ्या सत्पुत्रम्। सप्तम्यां कन्यां, अष्टम्यां सम्पन्नं पुत्रम्॥

त्रयोदश्यां व्यभिचारिणी कन्या चतुर्दश्यां सत्पुंत्र पञ्चदश्यां धर्मज्ञां कन्यां। षोडश्यां ज्ञानं पारंगपुत्रं प्रसूयते।

अर्थ–चौथी रात्रि में विद्यारहित, व्रतभ्रष्ट, परस्त्री गामी, निर्धनता के सागर में डूबे हुए पुत्र को स्त्री जन्म देती है। पांचवी रात्रि में उत्तमा कन्या, षष्ठी में सत्पुत्र, सातवीं में कन्या, आठवीं में धनवान् पुत्र, तेरहवीं रात्रि में व्यभिचारणी कन्या, चौदहवीं में सत्पुत्र, पन्द्रहवीं में धर्मज्ञा कन्या, सोलहवीं में ज्ञानी पुत्र या चक्रवर्ती सम्राट् को जन्म देती है।

ऋतस्नाता पत्नी इच्छापूर्वक जिसका मुख देखती है उसी रूप की सन्तान होती है। अतः अपने पति का मुख देखना चाहिए। शास्त्र के इस वचन से सिद्ध है कि पहली चार रात्रियों में पति स्त्री का दर्शन, स्पर्श तथा सम्भाषण भी न करे। किन्तु जो इसके विपरीत करता है उसके हाथ का भोजन लाखों रोगों को जन्म देता है। पराशर स्मृति में यहां तक आया है कि रजस्वला ब्राह्मणी-ब्राह्मणी को अथवा क्षत्राणी-क्षत्राणी को, वैश्या-वैश्यो को, शूद्रा-शूद्रा को तथा अपनी विजातीय अथवा अपने से उच्च या नीच जाति के स्त्री का स्पर्श न करें। यदि करती है तो ब्राह्मणी चौगुणा, क्षत्राणी त्रिगुणा, वैश्या दुगुणा, शूद्रा स्त्री को अपेक्षा प्रायश्चित करें। इन सबका विस्तार पराशर जी के जीवन वृत्त में किया जाएगा।

परन्तु पांचवीं से लेकर सोलहवीं रात्रियों के बीच में यदि कोई पर्व आजाए तो स्त्री सम्पर्क नहीं करना चाहिए। पर्वों में पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रान्ति दोनों पक्षों की अष्टमी-एकादशी तथा कोई वार्षिक विशेष पर्वों में, श्राद्ध के दिन को छोड़ कर। प्रथम गर्भाधान संस्कार शास्त्र की विधि से करें। दोनों को मलमूत्र के वेग में, अन्य रुग्ण अवस्था में नहीं करना चाहिए। दिन में भूलकर भी न करें। क्योंकि दिन में स्त्री संग से प्राण शक्ति का ह्रास होता है। अधिक शीतोष्ण में न करें। दोनों का शरीर, मन, जब स्वस्थ ही अच्छे पुत्र की इच्छा वाल दम्पती चौथी तेरहवीं रात्रि में स्त्री संग न करें। किस विधि से किन मन्त्रों द्वारा गर्भाधान होना चाहिए, यह गृहस्थ के कल्याण के लिए प्रथम संस्कार के सम्बन्ध में दशकर्म पद्धति में लिखा है। चौथे दिन पत्नी ऋतु स्नान करके उस दिन मातृका पूजन अभ्युदय के लिए करे।

उपर्युक्त रात्रियों में पुत्र की कामना वाली पत्नी दाहिये हाथ से पति के उपस्थ का सर्प्श कर इस मन्त्र का जप करें-

मन्त्र- ॐ पूषा भगं सविता मे ददातु रूद्राकल्पयतु ललामगुम्।
विष्णुयोनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशंतु॥
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता घर्भं दधातु ते।

अर्थ-सब का पोषण करने वाला पूषा देवता पूषा-भग, सविता-रूद्र देवता मुझे गर्भ प्रदान करे। विष्णु योनि की कल्पना करें अर्थात् जन्म का कारण हों, त्वष्टा सुन्दर

रूप दें। प्रजापति ब्रह्मा सिञ्चन द्वारा मुझे गर्भ दें। इन मन्त्रों को दोनों पढ़ें। फिर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर इन मन्त्रों को पढ़ें–

मन्त्र– ॐ गर्भदेहि सिनीवालि गर्भ धेहि प्रथुष्टुके।
गर्भ ते अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्त्रजौ।

अर्थ–हे प्रथुष्टुके सिनीवालि! मुझे गर्भ दें। कमलों की माला धारण करने वाले दोनों अश्विनी कुमार मुझे गर्भ दें। इस मन्त्र को पढ़ने के अनन्तर स्वस्थ होकर कीटाणु रहित शय्या पर दोनों प्रसन्नचित्त से उतावली न करते हुए धीरे-धीरे क्रिया करें। उस क्रिया के अनन्तर दोनों इस मन्त्र को पढ़ें–

मन्त्र–ॐ रेतो मूलं विजहाति योनि प्रविशदिन्द्रियं गर्भो जरायुणाऽऽआवृत उल्बं जहाति जन्मना।

अर्थ–गुप्त इन्द्रिय मूत्र का परित्याग पूर्वक केवल वीर्य योनि में प्रवेश करे। बच्चा गर्भ से युक्त हो। झिल्ली से ढका हुआ। जन्म के बाद झिल्ली का त्याग करे। इसके बाद पति स्त्री का हृदय स्पर्श करता हुआ इस मन्त्र को पढ़े–

मन्त्र–ॐ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्॥ वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम् शरदः शतम्।

अर्थ–हे सुसीमे सुन्दर मांग वाली तुम्हारा हृदय द्युलोक तथा चन्द्रमा में स्थित हो। मैं वही हूं। उस विद्या से मैं सौ वर्ष तक देखूं। सौ वर्ष तक जीऊं। सौ वर्ष तक सुनता रहूं।

यदि इतने पर भी पत्नी गर्भ न धारण कर पाये। तो पति पुष्य नक्षत्र में व्रत करके सफेद बेरी की जड़ को पीस कर पत्नी की दाहिनी नासिका में उस रस को इस मन्त्र को पढ़ता हुआ छोड़े–

मन्त्र–ॐ इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती अस्या अहं वृहत्याः पुत्रंपितुरिव नामजग्रभम्॥

अर्थ–इस औषधि से रक्षित मेरी पत्नी की सरस्वती रक्षा करे। सरस्वती की महती कृपा से पुत्र पिता के समान उत्पन्न हो। **(इति गर्भाधान संस्कार विधि)**

पुंसवन संस्कार

गर्भ से दूसरे तीसरे महीने में यह संस्कार पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल, श्रवण पु० (पुल्लिंग) नाम वाले नक्षत्रों में तथा चन्द्रादि के अनुकूल होने पर करना चाहिए। इसके एक दिन पहले पत्नी से व्रत करवायें। अगले दिन स्नान करके दम्पती नित्य क्रिया से निवृत्त होकर फिर स्नान करे। आचमन करे। प्राणायाम, संकल्प करके नवग्रह, मातृका पूजन करे। वट वृक्ष के कोमल हरी महीन दाढ़ी लेकर कुश कंटका सहित शीतल जल से इनको पीस कर उसमें शीतल जल मिला कर पत्नी के दाहिने नासिका छिद्र में उसका रस इन मंत्रों को पढ़ते हुए छोड़ें।

मंत्र–ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताऽग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥११॥ ॐ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्व कर्मणः समवर्त्तताग्रे ॥ तस्या त्वष्टा विदधद्रूपमेति तस्य देवत्वमाजानमग्रे।

अर्थ–इन दो मंत्रों से उस रस को छोड़े। समस्त प्राणियों के पति हिरण्य गर्भ ब्रह्मा अथवा समष्टि सूक्ष्माभिमानी विष्णु सृष्टि से पूर्व थे। उन्होंने पृथ्वी आकाश आदि को धारण किया। अतः उस देव को छोड़कर यह हवि किस देवता को समर्पण करें। अर्थात् वही सब का मूल है सृष्टि के पूर्व विश्वकर्मा परमात्मा ने जल रस से युक्त पृथ्वी का भरण पोषण किया। त्वष्टा ने उसका रूप बनाया। उसने मरण धर्मा मनुष्य से पहले देवत्व को रचा।

इस विध से दस कर्म पद्धति में कहे हुए दोनों संस्कारों को करने से उत्तम संतान जन्म लेती है तथा पुत्र का जन्म होता है। जिसके यहां कन्या अधिक होती हो पुत्र न हो। उसको इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड के नवें सर्ग में महारामनवी व्रत की विधि तथा माहात्म्य में एक निर्धन ब्रह्मचारी के कथा प्रसंग में अधिक कन्याओं के कारण का वर्णन किया है। उसमें कहे हुए नियमों का दम्पती द्वारा ठीक–ठीक पालन करने पर निश्चय ही पुत्र का जन्म होता है। इस गूढ़ रहस्य को सभ्य गृहस्थों को उसी रामायण में देख कर करना चाहिए।

॥ तैतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ चौवालिसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

आधुनिक परिवार नियोजन तथा प्राचीन संयम

यहां यह बात विचारने योग्य रही, यदि सद् गृहस्थ, श्रुति-स्मृति पुराण आदिकों की आज्ञाओं में चलें, तो दम्पती के द्वारा संयम का पालन करने से स्वयमेव ही परिवार नियोजन हो जाएगा। इसमें शुद्ध खान-पान रखने से, गंदे दृश्यों के न देखने सुनने से तथा कुसंगियों का संग त्यागने से, भगवत् भक्त, धर्मात्मा, दान शील, शूरवीर, विद्वान्, सदाचारियों के संग से, माता-पिता जैसे चाहें, सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। इसके विपरीत चलने से माता-पिता, परिवार, समाज, देश को दुख देने वाली सन्तान उत्पन्न होगी। अतः नवयुवक दम्पतियों को चाहिए कि इन शास्त्रीय बातों को पढ़कर शास्त्राज्ञानुसार योग्य सन्तान उत्पन्न करके सब को सुखी करें तथा आप भी सुखी रहें। सरकार को भी चाहिए कि पक्षपात का परित्याग करके ऐसे आदर्श शिक्षा का प्रसार करें, जिससे देश, समाज, जनता, स्वयं ऊपर उठे। सबको ऊंचा उठाएं किन्तु वतर्मान काल में परिवार नियोजन की रीति देश, धर्म तथा समाज के अहित में है। चरित्र का भी घोर पतन हो रहा है। यह रीति अनैतिकता बढ़ाने वाली है। इसके अपनाने में व्यभिचार की वृद्धि, वर्णसंकर सन्तान की वृद्धि होती है। जिससे उत्पन्न हुआ वर्ण संकर पुत्र स्वर्ग में गये हुए पितरों को नरक में ले जाता है। उसके हाथ का दिया हुआ पिण्ड दान श्राद्ध तर्पण पितरों को नहीं मिलता। देवता तथा ऋषि भी उसकी वस्तु को ग्रहण नहीं करते। अतः श्रद्धालु भक्तों को इन बातों का विरोध करना चाहिए। ब्रह्मचर्य आदि को प्रोत्साहन दें, तभी हमारे धर्म, देश, जाति का उत्थान होगा। अन्यथा घोर पतन होता जाएगा। अतः शास्त्रों की आज्ञा को अपनाना चाहिए।

अब नीचे लिखे वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार किस मंत्र का किसमें उपयोग करने से कैसा पुत्र उत्पन्न होता है। उसको देखें।

॥ चौवालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ पैंतालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

वृहदारण्यकोपनिषद् में छटे अध्याय चौथे ब्राह्मण से

भूतों का सार पृथ्वी है, पृथ्वी का सार जल, जल का सार औषधि अन्न, औषधि का सार पुष्प, पुष्पों का सार फल, फलों का सार पुरुष पुरुष का सार वीर्य हैं। प्रजापति ने इच्छा की। इस सार तत्त्व की स्थापना योग्य स्थान में करनी चाहिए। तब उसने स्त्री की रचना की। उसकी रचना करके अधोभाग की स्थापना की, मैथुन किया। अतः सन्तान के लिए उसका सेवन सद्गृहस्थ करे। इस प्रकार नीचे लिखी भावना करने योग्य गृहस्थ को वाजपेय यज्ञ के समान फल मिलता है, किन्तु वह उसकी पत्नी सजातीया हो। सगोत्रीया न हो। शास्त्रानुमोदित हो। तब ऐसा निम्नोक्त फल प्राप्त होता है। प्रजापति ने पत्थर के समान कठोर अपनी इन्द्रिय को बनाया तथा स्त्री योनि में प्रवेश किया जैसे यज्ञ में वेदी, कुशाएं, समिधा अग्नि आदि होती है। वैसे ही पति पत्नी की योनि को वेदी समझे तथा उपस्त के लोम को कुशा। उसके बीच में लाल भाग में अग्नि की भावना करे। उसके कठोर जो मांस पिण्ड है उसको चमड़े के बने पात्र समझें। इस रहस्य को समझते हुए वासना की तृप्ति के लिए नहीं, किन्तु योग्यतम सन्तान के लिए धर्म अविरुद्ध क्रिया से वाजपेय यज्ञ के समान पुण्य लोक प्राप्त करता है। जो इस विज्ञान को समझते हुए मैथुन का आचरण करता है, वह विद्वान् स्त्रियों के पुण्य को अवरुद्ध कर लेता है। इस भावना से रहित जो केवल वासना की तृप्ति के लिए स्त्री का सेवन करता है। उस अज्ञानी के पुण्य को स्त्रियां छीन लेती हैं।

इस बात को अरुण के पुत्र उद्दालक ऋषि कहते हैं। इनसे सुनकर मुद्गल के पुत्र कुमार हारित कहते हैं कि बहुत से मरण धर्मा मनुष्य यों नाम मात्र के ब्राह्मण हैं। अजितेन्द्रिय लोग पुण्य कर्म से रहित होकर मैथुन कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इस कर्म में आसक्तिपूर्वक प्रवृत्त होते हैं। वे परलोक से भ्रष्ट हो जाते हैं। अतः गृहस्थ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऋतु काल की प्रतीक्षा करे। यदि स्वप्न में या जाग्रत में वीर्य खण्डित हो जाता है; तो नीचे लिखा प्रायश्चित करे। तब वह उस वीर्य को हाथ से स्पर्श कर यह मन्त्र पढ़े–

मन्त्र– यनमेऽद्यरेतः पृथिवीमस्कान्त्सीद्यदोषधीरप्यसरद्यपः।

इदमहं तद्रेत आददे पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनस्तेजः पुनर्भगः।

पुनरग्निर्धिष्ण्या यथा स्थानं कल्पन्ताम्॥५॥

अर्थ–आज जो मेरा तेज स्खलित होकर पृथ्वी पर गिरा है जो पहले अन्न में तथा जल में गिरा था। उस रेत को मैं ग्रहण करता हूं। ऐसा कहकर अनामिका तथा अंगुष्ठ से उस वीर्य को ग्रहण करें दोनों स्तनौ तथा मस्तक में लगाये उस समय नीचे लिखा मन्त्र पढ़ें–

मन्त्र–अथ यद्युदक आत्मानं पश्येत्तदभिमन्त्रयेत मयितेज इन्द्रियं यशो द्रविणः सुकृतमिति श्रीर्हव एषा स्त्रीणां यन्मलोद्वासास्तस्मान्मलोद्वाससं यशस्विनी-मभिक्रम्योप-मन्त्रयेत॥६॥ तमा इदमहं तद्रेत आददे पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनस्तेजः पुनर्भगः। पुनरग्निधिष्ण्या यथा स्थानं कल्पन्ताम्।

अर्थ–यदि भूल से जल में वीर्य स्खलित हो जाए तो वहां जल में अपनी छाया देखें और 'मयि तेजः' इत्यादि मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करें। हे देवगण! आप मुझ में तेज, वीर्य, यश, धन, सत्कर्म की प्रतिष्ठा करें। उसके बाद पत्नी की स्तुति इस प्रकार से करें। यह पत्नी स्त्रियों में लक्ष्मी स्वरूपा है, क्योंकि रजस्वला होने के कारण इसके वस्त्र रज के चिन्ह से चिन्हित दीखते हैं। तीन रात्रि के अनन्तर स्नान करने पर उसके पास जाकर कहे–आज हमें वही करना है जिससे पुत्रोत्पन्न हो। यदि फिर भी तैयार न हो तो पति उसकी इच्छानुसार जिस वस्त्राभूषण की इच्छा करे, उसकी पूर्ति करे। इस पर यदि तैयार न होवे तो दण्डादि का भय दिखाये। यदि इस पर तैयार न हो तो शाप दें कि तुम वन्ध्या ही रहोगी तथा कहे, मैं अपनी यशरूपी इन्द्रिय द्वारा तेरे यश को सींचता हूं–

"ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति"

उस अभिशाप से वह निश्चित ही वन्ध्या या दुर्भगा शब्द से कही जाने वाली अयशःस्विनी हो जाती है। यदि वह पत्नी समागम का अवसर दे, तो पति उसे

आशीर्वाद देता हुआ कहे, मैं अपनी यश रूप इन्द्रिय से तुम में यश का आधान करता हूं। इससे दोनों संतान के द्वारा यशस्वी होते हैं। वह पुरुष जिस पत्नी से सम्बन्ध में ऐसा चाहे यह मेरे प्रति कामना से युक्त हो, मुझे मन से चाहने लगे उसकी गुप्तेन्द्रिय में गुप्तेन्द्रिय डालकर मुख से मुख मिलाकर स्पर्श करते हुए इस मन्त्र को पढ़े–

मन्त्र– अङ्गाद् अङ्गाद् सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
स त्वामङ्गकषायो ऽसि दिग्धविद्धामि मादयेमाममूं मयीति ॥९ ॥

अर्थ–हे वीर्य! तुम मेरे प्रत्येक अंग से उत्पन्न होकर विशेष रूप से हृदयस्थ नाड़ी द्वारा प्रगट होते हो। तुम मेरे अंगों का सार हो। विषाक्त वाण से घायल हुई मृगी जैसे मूर्च्छित होती है। ऐसे ही तुम मेरी पत्नी को मेरे अधीन करो। पति यदि चाहे कि पत्नी गर्भवती न हो। उसमें अपनी इन्द्रिय डालकर अभिप्राणन कर्म करके अपानन क्रिया के समय ऊपर का मन्त्र न पढ़कर नीचे का मन्त्र पढ़े–

मन्त्र–इन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदद इत्यरेता एव भवति।

अर्थ–इन्द्रिय स्वरूप वीर्य के द्वारा मैं तेरे तेज को खींचता हूं। ऐसा करने पर वह गर्भवती नहीं होती। यह वैदिक परिवार नियोजन की रीति है। यदि पुरुष चाहे पत्नी गर्भवती हो तो उसकी योनि में इन्द्रिय डालकर अपानन क्रिया करते हुए यह मन्त्र पढ़े–

मन्त्र–इन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामि।

मैं इन्द्रिय रूपी वीर्य द्वारा तेरे में रेत को स्थापित करता हूं। ऐसे करने से वह गर्भवती निश्चय ही होती है। जिस गृहस्थ की पत्नी व्यभिचारिणी पर पुरुष से सम्बन्धित हो। उस पर पति को दण्ड देना चाहे। वह मिट्टी के कच्चे बर्तन में पंच भू संस्कारपूर्वक अग्नि की स्थापना करके विपरीत क्रम से सरकण्डों की चटाई बिछावे, क्योंकि अन्य शुभ कर्मों में कुशासन पूर्वाग्र या उत्तराग्र बिछाया जाता है। इसमें उल्टे क्रम से दक्षिणाग्र पश्चिमाग्र बिछाये। फिर बाणाकार उन सीकों को घी से गीला करके उनके अग्रभाग को विपरीत दिशा में रखता हुआ, उस स्थापित अग्नि में अग्नि में निम्न मन्त्र से चार आहुति दें–

मन्त्र—**मम समिद्धेऽहौषीः प्राणापानौ त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषीः पुत्रपशूँस्त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषीरिष्टासुकृते त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषीराशापराकाशौ त आददेऽसाविति॥**

अर्थ—अरे दुष्ट यौवनादि से प्रज्वलित मेरी पत्नी रूप अग्नि में तूने वीर्य रूप आहुति डाली है। अतः तुझ पापी के प्राणापान को मैं समाप्त करता हूं। इस मन्त्र को पढ़कर फट् स्वाहा शब्द बोलकर पहली आहुति दे। फिर असौ समम शत्रु कहकर शत्रु का नाम ले इसी प्रकार चार मंत्रों में पहले से प्राण अपान ले दूसरे मन्त्र से पुत्र पशुओं को, तीसरे से यज्ञ और पुण्य को, चौथे मन्त्र से प्रार्थना एवं प्रतिज्ञा पूर्ति की प्रतिज्ञा नष्ट करने के लिए कहा गया है। इस कर्म को जानने वाला प्राण दर्शी विद्वान् ब्राह्मण जिसे शाप देता है, वह इन्द्रिय रहित एवं पुण्य से रहित, मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः पर स्त्री गमन के भयंकर पाप को जानने वाला पुरुष किसी श्रोत्रिय विद्वान् की पत्नी से मजाक भी न करें, क्योंकि इस अभिचार को जानने वाला विद्वान् उसका शत्रु हो जाता है।

जिस पत्नी को रजोधर्म प्राप्त हो। वह पत्नी तीन दिन तक कांसे के पात्र में भोजन न करे। चौथे दिन स्नान करके स्वच्छ नवीन वस्त्र धारण करे। स्नान से पहले तथा बाद में ऋतुमती शूद्रा या शूद्र का स्पर्श न करें। अपने हाथ से धान कूटे—

मन्त्र—**स य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रवीत् सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिपष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै॥१४॥**

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलः पिङ्गलो जायेत द्वौ वेदानुब्रवीत् सर्वमायुरियादिति दध्योदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित्वै॥१५॥

अथ य इच्छेत् पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत् त्रीन् वेदाननुब्रवीत् सर्वमायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै॥१६॥

अथ य इच्छेद् दुहीतामे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति। तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिषमन्तमश्नीया तामीश्वरौ जनयितवै॥१७॥

य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित्वा औक्षेण वाऽऽर्षभेण वा॥१८॥

अथाभिप्रातरेव स्थाली पाका वृताऽऽज्यं चेष्टित्वा स्थालीपाकस्योपघातं जुहोत्यग्नये स्वाहाऽनुमतये स्वाहा देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य प्राश्नाति प्राश्येतरस्याः प्रयच्छति प्रक्षाल्य पाणी उदपात्रं पूरयित्वा तेनैनां त्रिरभ्युक्षत्युत्तिष्ठातो विश्वावसोऽनयामिच्छ प्रपूर्व्यां सं जायां पत्या सहेति ॥१९॥

अर्थ–जो ब्राह्मण चाहे कि मेरा पुत्र शुक्लवर्णोत्पन्न हो, एक वेद का अध्ययन करे तथा पूर्ण १०० वर्ष जीवित रहे। तो दोनों पति पत्नी गौ दूध में चावल पकाकर उसमें गौ घृत डालकर खीर खाले। वे दोनों समर्थ होकर इच्छित पुत्र को जन्म देते हैं ॥१४॥

जो पुरुष चाहे मेरे पुत्र कपिल या पीले रंग का हो दो वेदों का अध्ययन करे। १०० वर्ष की आयु होवे। तो दोनों देशी गौ के दही में चावल पकाकर देशी घी डालकर खायें। इससे उस योग्यता वाला पुत्रोत्पन्न कर सकते हैं ॥१५॥

जो चाहे कि मेरा पुत्र श्याम वर्ण का, लाल नेत्रवाला, त्रिवेदी हो, पूर्णायु तक जीवित रहे तो दम्पती केवल जल में चावल पकाकर घृत मिलाकर खाये। इससे त्रिवेदी पुत्रोत्पन्न कर सकते हैं ॥१६॥

जो दम्पती चाहें मेरी पुत्री गृहकला में विदुषी होवे। पूर्णायु जीवित रहे। तो वे दम्पती तिल चावल की खिचड़ी बनाकर घी डालकर सेवन करे तो ऊपर कही योग्यता वाली कन्या जन्म लेती है ॥१७॥

जो दम्पती चाहे लोक में मेरा पुत्र विख्यात पण्डित, विद्वानों की सभा में निर्भय होकर जाने वाला, रमणीय, शुद्धवाणी बोलने वाला हो। चारों वेदों का ज्ञाता, पूर्णायु धारण करे। तो वे दम्पती उक्षाऋषभ नाम की औषधि के गूदे को चावल में घी मिलाकर खाये। खाने से चारों वेदों का ज्ञाता पुत्रोत्पन्न होता है। (संस्कृत में उक्षा बछड़े को तथा सांड को ऋषभ कहते हैं तथा पर्वतीया औषधि का भी विशेष नाम है। उसके गूदे को मांस कहते हैं। इसके गूदे के मिलाने का विधान है। सांड या बछड़े का मांस नहीं इस मांस, उक्षा तथा ऋषभ शब्द की व्याख्या शांकर भाष्य तथा आनन्द गिरि की टीका के अनुसार प्राचीन हिन्दी टीकाकार ब्रह्मनिष्ठ पीताम्बर जी ने की है। उसी आधार पर मांस का अर्थ गूदा, ऋषभ तथा उक्षा का अर्थ औषधि विशेष किया है।) इन दोनों ओषधियों की जड़ों का आकार सांड तथा बछड़े के आकार का होता है।

तत्पश्चात् चौथे दिन नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पिछले दिन के कूटे चावलों को लेकर स्थालीपाक की विधि से घी से शुद्ध करके उसमें थोड़ा अन्न लेकर इन मन्त्रों से आहुति करे–"ॐ अग्नये स्वाहा इदं अग्नये न मम", "ॐ अनुमतये स्वाहा इदं अनुमतये न मम", "ॐ देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहा इदं देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय न मम" इन मन्त्रों से तीन प्रधान आहुति दे। आहुति के अनन्तर बचे हुए चरू को एक पात्र में निकाल कर घी मिलाकर पति प्रथम भोजन करे। शेष बचे हुए अन्न उच्छिष्ट को पत्नी को दे। बाद में हाथ पैर धो कर आचमन करके जलपात्र को भरकर उसी जल से अपनी पत्नी का ऊपर लिखे "उतिष्ठात्" मन्त्र को पढ़ते हुए तीन बार मन्त्र से अभिषेक करे ॥१९ ॥

इसके बाद अपनी इच्छानुसार पति पत्नी को खीर खिलाने के पश्चात् उसके साथ शयन करे तथा–

अमोऽहमस्ति सा त्व सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथ्वी त्वं तावेहि सँरभावहै सह रेतो दधवहै पुँसे पुत्राय वित्तय इति ॥२० ॥

अर्थ–उस समय ऊपर लिखे मन्त्र का उच्चारण करके मन्त्र–हे देवि मैं प्राण हूं त्वं वाक् हो। तू वाक् है, मैं प्राण हूं मैं साम हूं तुम ऋक् हो। मैं आकाश हूं तुम पृथ्वी हो। अत: आवो हम दोनों आलिङ्गन करें। एक साथ रेत धारण करें। जिससे हम लोगों को पुरुषत्व विशिष्ट प्राप्त हो ॥२० ॥

मन्त्र–अथास्या उरू विहापयिति विजहीथां द्यावा पृथिवी इति तस्यामर्थ निष्ठाय मुखेन मुखँसंधाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्टि विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिँशतु। आसिंचतु प्रजापति र्धाता गर्भं दधातु। ते गर्भं देहि सिनीवालि गर्भं देहि पृथुष्टुके। गर्भं तेअश्विनौ देवावाधत्ता पुष्करस्त्रजौ ॥२१ ॥ हिरणमयि अरणी याभ्यां निर्मन्थतामश्विनौतं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतये।

यथाग्नि गर्भा पृथ्वी यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी वायु र्दिशां यथा गर्भ एवं गर्भं दधामि तेऽसाविति ॥२२ ॥

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति यथावायुः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु सहावैतु जरायुणा। इन्द्रस्यायं भ्रजः कृतः सार्गलः सपरिश्रयः तमिन्द्र

भगवान् विष्णुको चक्र-दान



सहस पदम पूरे किये नयनकमल करि दान। हर हर्षित ह्वै हरिहिं तब कियो सुदर्शन दान॥



निर्जेहि गर्भेण सावराँ सहेति ॥२३॥ जाते ऽग्निमुपसमाधायाङ्क आधाय कँसे पृषदाज्यँसंनीय पृषदाज्यस्योपघातं जुहोत्य स्मिन्सहस्रं पुष्या समेधमानः स्वे गृहे। अस्योपसंद्यां माच्छैत्सीत् प्रजया चपशुभिश्च स्वाहा। मयि प्राणँस्त्वयि मनसा जुहोमि स्वाहा। यत्कर्मणात्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्स्विष्टँसुहुतं करोतु नः स्वाहेति ॥२४॥ अथास्य दक्षिणं कर्णमभिनिधाय वाग्वागिति त्रिरथ दधिमधु घृतं संनीयानन्तर्हितेन जात रूपेण प्राशयति। भूस्ते दधामि भुवस्ते दधामि स्वस्ते दधामि भूर्भुवः स्वः सर्व दधामीति ॥२५॥ अथास्य नाम करोति वेदोऽसीति तदस्य तदगुदयमेव नाम भवति ॥२६॥ अथैनं मात्रे प्रदाय स्तनं प्रयच्छति यस्ते स्तनः शशयो यो ममोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धावते करिति ॥२७॥ अथास्य मातरमभिमन्त्रयते इलाऽसि मैत्रावरुणी वीरो वीरमजीजनत्। सा त्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतोऽकरदिति। तं वा एतमाहुरतिपिता वताभूरतिपितामहो वताभूः परमां वत काष्ठां प्रापाच्छ्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं विदो ब्राह्मणस्य पुत्रो जायत इति ॥२८॥

उसके बाद पत्नी के दोनों जंघों को इस मन्त्र से पृथक् करे–"**विजिहीथां द्यावापृथ्वी**" इत्यादि मन्त्र पढ़े। अर्थात् हे जंघारूप आकाश पृथ्वी तुम दोनों पृथक् हो जावो। तदनन्तर पत्नी की योनि में इन्द्रिय स्थापित करके मुख से अपना मुख मिलाकर अनुलोम क्रम से पत्नी के अंगों का तीन बार मार्जन करे। उस समय विष्णु योनि कल्पयतु इत्यादि उपरोक्त मन्त्र को पढ़े। अर्थात् व्यापक परमात्मा पुत्र की उत्पत्ति के लिए तुम्हारी गुप्तेन्द्रिय को सार्थक करें, सूर्य नारायण तुझ से उत्पन्न होने वाले बालक के अंगों को विभागपूर्वक पुष्ट तथा दर्शन योग्य बनावें। विराट् प्रजापति तुझ में अभिन्नभाव से स्थित होकर धाता तुम्हारे गर्भ का पोषण करें। तुम सिनीवाली (अमावस्या) इस गर्भ को धारण करो। सूर्य तथा चन्द्रमा रूप अश्विनी कुमार रश्मि रूप कमलों की माला पहन कर अभिन्न भाव से स्थित होकर गर्भ का आधान करे ॥२१॥

प्राचीन काल में अग्नि, तेजोमयी थी। जिसका अश्विनी कुमारों ने मन्थन किया। उसी में प्रगट हुए अमृतरूपी गर्भ को मैं तुम में स्थापित करता हूं। तुम दसवें मास में इसे

उत्पन्न करो। जैसे अग्नि से पृथ्वी, जैसे स्वर्गभूमि इन्द्र से गर्भवती है। जैसे वायु दिशाओं का गर्भ है। वैसे ही तुझ में पुत्र रूपी गर्भ को स्थापित करता हूं। अन्तिम वाक्य के पूर्व पत्नी को नाम से सम्बोधित करे ॥२२॥ इसके पश्चात् सुखपूर्वक पुत्र की उत्पत्ति के लिए इस मन्त्र को पढ़ते हुए 'यथा वायु' इत्यादि पढ़ते हुए जल सींचे। मन्त्र का अर्थ है जैसे वायु तालाब के जल को सभी ओर से चंचल कर देता है। वैसे ही तेरा गर्भ अपने स्थान से चलकर जेर सहित बाहर आये। प्रसूति वायु रूप इन्द्र के लिए यह योनि मार्ग बना है। जो जेर से ढका है। हे इन्द्र! उस मार्ग पर पहुंच जावों गर्भ एवं मांसपेशियों के सहित बाहर आ जाए॥२३॥

बच्चे का जन्म होने पर पिता उसको अपनी गोद में लेकर अग्नि की स्थापना कर कांस्य के कटोरा में दही मिला घी रखकर थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर "**अस्मिन् सहस्त्रं**" इत्यादि मन्त्र द्वारा अग्नि से आहुति डाले। मन्त्र का अर्थ-मैं अपने इस घर में पुत्र रूप से वृद्धि को प्राप्त हुआ। सहस्त्रों मनुष्यों का भरण पोषण करने वाला हूं। मेरे इस पुत्र में पूजा तथा पशुओं सहित सम्पत्ति का कभी विच्छेद न हो। स्वाहा मुझ में जो प्राण हैं। उसे मैं तुम में होम करता हूं। स्वाहा मैंने अनुष्ठान के योग्य जो कर्म न्यूनाधिक किया हो, तो मेरे उस कर्म को जानने वाले अग्नि देव इच्छित फल देकर मेरे उस न्यून अतिरिक्त कर्म को दोष से रहित कर दें स्वाहा॥२४॥

इस "स्विष्ट कृत्" होम के बाद पिता बालक के दाहिने कान पर अपने मुख के पास ले जाकर वाक् तीन बार कहें। अर्थात् तुम्हारी बुद्धि में वेदत्रयी रूप वाणी पुष्ट होवे। इसके अनन्तर कांस्य के कटोरे में गो दूध घृत, मधु लेकर मिलाये पुनः शुद्ध सोने के चम्मच से बालक को इस मन्त्र से चटावे। 'भूस्ते' इत्यादि मन्त्र से। मन्त्रार्थ है-मैं तुम में भूलोक की स्थापना करता हूं। अंतरिक्ष की स्थापना करता हूं। तीनों लोकों की स्थापना करता हूं॥२५॥

इसके बाद पिता शिशु का नामकरण करे। 'वेदोऽसि' इत्यादि मन्त्र से वेद उस बालक का गोपनीय नाम है॥२६॥ तत्पश्चात् पिता बालक को माता की गोद में देकर माता से पुत्र को स्तन पान कराये। पिता इस मन्त्र को पढ़े। 'यस्ते स्तनः' इत्यादि बालक के मुख में स्तन देकर दूध पिलावे इस मन्त्र का अर्थ है कि हे सरस्वती! आपका स्तन

जो दुग्ध का अक्षय भण्डार है तथा जीवन का आधार है जो रत्नों के खान के समान है सम्पूर्ण धन को जानने वाला उदार दाता है। इससे तुम उत्तम वस्तुओं का पोषण करती हो। इस शिशु के जीवन के लिए उस स्तन को मेरी पत्नी के शरीर में प्रविष्ट कर दो। इससे वह बालक के मुख में स्तन देवे॥२७॥

इसके बाद 'इलासि' इत्यादि मन्त्रों से जल लेकर पति बालक की माता को अभिमन्त्रित करे। हे देवि! आप स्तुति योग्य अरुन्धति हो। हे वीरे! तुमने वीर पुत्र को जन्म दिया है। अतः तुम वीरवती हो ऐसे पुत्र से तुमने मुझे भी वीर पिता बना दिया है। इस पुत्र को देखकर दूसरे लोग कहें कि तू तो अपने पिता से भी बढ़कर है। पितामह से भी गुणों में बढ़कर चढ़कर है तुम लक्ष्मी-कीर्ति ब्रह्म-तेज-यश उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गये हो।

उपरोक्त विधियां से गर्भाधान करने से ऐसे विशेष ज्ञान से सम्पन्न पुत्र जिस ब्राह्मण को प्राप्त होता है वह पिता भी पुत्र की भांति प्रशंसनीय होता है॥२८॥

इस वृहदारण्यकोपनिषद् के छठे अध्याय के चौथे ब्राह्मण के अनुसार तीनों संस्कार करने से सत्ययुग की तरह सन्तान उत्पन्न हो सकती है।

॥ पैंतालिसवां अध्याय सम्पूर्णम्॥

॥ छियालीसवां अध्याय प्रारम्भ॥

मातृ गर्भ में जीव की स्थिति

शिव गीता में शिव जी राम से कहते हैं। उपर्युक्त विधि से आधान करने के अनन्तर हे राम! तब पत्नी के पेट में शुक्र शोणित के साथ मिलकर प्रथम मास में तरल, बाद में पेशियों से युक्त होकर, दूसरे महीने में पिण्डाकार, तीसरे में हाथ पैर से युक्त तथा सिर निकल आता है। यद्यपि सामान्य जीव पिता के शुक्र में पहले से रहता है। फिर भी चौथे महीने में विशेष चेतना का संचार होता है। तब बच्चा माता के पेट में घूमता है। पुत्र माता की दाहिने कोख में कन्या बायें कुक्षि में तथा नपुंसक मध्य में घूमता है। उसी मास उसके दांत, दाढ़ी, मूछों को छोड़कर शेष सभी अंग प्रत्यंग बन जाते हैं। हे रघुनन्दन!

यदि पेट में पुत्र हो। तो माता का स्थिर भाव, पुत्री हो तो चंचलता, नपुंसक हो तो मिश्रित भाव होता है। उस समय पति को चाहिए कि पत्नी की इच्छा की पूर्ति करे। माता के हृदय में जैसा क्रोध, लोभ, प्रभृति दुर्भाव अथवा शान्ति सन्तोष प्रभृति सद्भाव होता है वैसी सन्तान होती है। पांचवें मास में प्रबुद्ध होता है तथा गर्भ के दुखों का अनुभव करता है। उस समय वह माता के पेट की अग्नि में भाड़ में डाले गये अन्न के समान सन्तप्त होता है। माता द्वारा खाये हुए तीक्ष्ण लवणादि पदार्थ तथा पेट के कीड़ों से वह दुखी होता है पांचवें मास में उसका मांस तथा रक्त, पुष्ट हो जाता है। छठे मास में उसके हाथ पैर की अंगुलियों के नाखून, शरीर में रोम, सिर पर केश हो जाते हैं। सातवें मास में सभी अंग पूर्ण हो जाते हैं। आठवें में त्वचा, ओज से युक्त होकर माता द्वारा खाये हुए पदार्थों से जीवन धारण करता है। पेट में तड़पता है। तेजी से घूमता है। उस दुख से छूटने के लिए भगवान् से प्रार्थना करता है। अंत में नवां मास पूर्ण होने के बाद रोता हुआ बाहर आता है। बाहर आकर पिता को राक्षस के समान माता को डाकिनी के समान समझ कर डर के मारे रोने लगता है। मल मूत्र में पड़ा रहता है। शरीर में काटने वाले जीव जंतुओं से अपनी रक्षा नहीं कर पाता। बड़ी कठिनाई से अपनी शैशवावस्था को बिताता है। बाल्यावस्था दोषों का भण्डार है। बड़े बालकों से पिटता है। गुरु माता पिता से मार खाता है।

पुनः युवा अवस्था आरम्भ होती है। काम ज्वर से सन्तप्त होकर माता, पिता से झगड़ता तथा हंसता, वृथा बोलता है। दूसरे को दुख देते हुए कामादि, शत्रुओं से पीड़ित होता है। सुन्दर युवती को देखकर उसके रूप यौवन से मोहित हुआ गंदे पदार्थों से बने हुए उसके सुन्दर शरीर को देखकर आकर्षित होकर प्राप्त करने की अनेकों चेष्टाएं करता है। अपनी सती साध्वी पत्नी का परित्याग कर वेश्या में आसक्त होकर पेट के नीचे भाग में लगी बीच में चीरी हुई मेढकी के समान योनि को देखकर मूत्र की दुर्गन्ध से युक्त अन्त में काम से पीड़ित होकर कुचेष्टा करता है। जो साक्षान्नरक कुण्ड है अर्थात् काम रूपी अग्नि उसे भस्म करती है। जैसे गन्ने का रस निकालने वाली चर्खी में गन्ना पेरने से उसका रस निकल जाता है। गन्ना निःसार होकर बाहर गिर जाता है। ऐसा वह कामान्ध पुरुष गन्ने के समान निःसार करने वाली चरखी के समान गुप्तांग में

लिंग डालकर सार हीन हो जाता है। उसके कटाक्ष से पीड़ित, माया से मोहित, जगत् की परवाह नहीं करता। जब उसी रमणी के प्राण निकल जाते हैं तब वह अरमणीय तथा भयानक प्रतीत होती है।

वृद्धावस्था का कष्ट–अन्त में महापराजय देने वाला बुढ़ापा आता है। मुख तथा नासिका से लार टपकती है। अति सुन्दर जगत् को मोहित करने वाला उसका रूप किष्किन्धा के बंदर जैसा हो जाता है। बच्चे देखकर हंसते हैं। बात करते समय मुख से शब्द फटे नगारे के समान निकलता है। आंख, कान, हाथ पैरादि इन्द्रियां जवाब दे देती हैं। टांगें तथा कमर झुक कर हे राम! तुम्हारे धनुष जैसी हो जाती है। अति स्वादिष्ट भोजन की इच्छा होती है किन्तु पचा नहीं सकता। स्त्री–पुरुष–नौकर पौत्रादि तिरस्कार करते हैं। टूटी खाट पर सोता है। अनेक चिन्ताओं के कारण निद्रा नहीं आती। युवावस्था के सुख का स्मरण करके आंसू गिराता है। यदि भयंकर असाध्य रोग अथवा गिर जाने से चोट लगती है तो अत्यन्त दुखी होता है। पाश्चाताप करते हुए कहता है, जीवन पर्यन्त जिनके लिए महाकष्ट उठाया, वे मुझे पूछते नहीं। पं० नवीन जी कवि ने बुढ़ापा नाम की कविता में इसका बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है। "खांसी आवे खुर्खर, छाती वाले घुर्घुर हड्डी बोले चुर्चुर नाक बहे सुर सुर" इत्यादि–

अंत में महापापी जीव पापरूपी बोझ से लदा हुआ बड़े कष्ट के साथ शरीर छोड़ता है। अन्तिम समय में लोग उसे पुकारते हैं। देखता पहचानता है पर बोल नहीं सकता तब यम के दूत पाश में बांध कर ले जाते हैं। श्वास की गति तीव्र, हो जाती है। मुख सूखता, सोचने लगता है कहां जाऊं, क्या करूं। शरीर छोड़ते समय एक ही साथ हिमालय के जहरीले एक ही स्थान में १००० हजार बिच्छू के काटने की जो वेदना होती है। उसको वह प्राप्त होता है। श्री स्वामी शंकरानन्द जी आत्मपुराण में लिखते हैं कि किसी के भयावह फोड़े में १०००० हजार सुई चुभाने से जितनी पीड़ा होती है। उतना ही उसको कष्ट होता है। हे राम! जिस शरीर को माता पितादि मेरा कहते थे। माता से उत्पन्न हुए जगत् में यह किसी का नहीं है। अकेला ही जीव आता है और जाता है। कैसे जाता है इस पर कहते हैं जैसे कोई पक्षी वृक्ष पर अपना घर बनाकर विश्राम कर छोड़कर चला

जाता है। वैसे ही जीव रूपी पक्षी भी शरीर रूपी वृक्ष पर विश्राम करके अंत में छोड़कर चला जाता है। इस सम्बन्ध में कहते हैं।

श्लोक–मृतिवीजं भवेज्जन्म जन्मवीजं भवेन्मृतिः।
घट यन्त्र वदश्रान्तोऽयंभ्रमीत्यनिशंनरः॥
गर्भे पुंसः शुक्रपातात् या युक्तं मरणावधिः।
तदेतस्य महाव्याधेर्मत्तो नान्योऽस्तिभेषजम्॥६०॥

अर्थ–हे राम! मृत्युबीज से जन्म, जन्मरूपी बीज से मृत्युरूपी वृक्ष यन्त्र में बंधे (रहठ) घड़ों के समान जीव जन्म मृत्यु के चक्र में रात्रि दिन घूमता है॥६१॥

अतः वीर्य सेचन से लेकर मृत्यु पर्यन्त इस जन्म मरण चक्र रूपी महारोग की औषधि मुझ से अतिरिक्त नहीं है। अतः हे राम! तुम भी इस रोग से छूटने के लिए एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो। तभी छूटोगे यह भाव है॥७०॥

भगवान् शंकर श्री राम जी के प्रति स्थूल शरीर की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए, मृत्यु आदि का कथन करके इसकी क्षणभंगुरता को दिखाते हुए, यह सिद्ध करते हैं कि इसमें अहंता-ममता का परित्याग करके जीव परमात्मा के चिन्तन से त्रिताप के देने वाले संसार से छूट कर मुक्ति पा सकता है। यही इसका प्रधान तात्पर्य है। **(शिवगीता का आठवां अध्याय सम्पूर्णम्)**

॥ छियालिसवां अध्याय सम्पूर्णम्॥

॥ सैंतालिसवां अध्याय प्रारम्भ॥

शरीर त्यागने के बाद जीव की चार गतियां

(१) सद्योमुक्ति, (२) क्रममुक्ति अथवा उतरायण गति देवयान मार्ग, (३) पितृयान दक्षिणायनगति, (४) जायस्व-म्रियस्व गति इन चारों गतियों का वर्णन वेदों, उपनिषदों, गीताओं, पुराणादिकों में पाया जाता है। उन्हीं के आधार पर नीचे लिखा जाता है–

(१) सद्योमुक्ति–जीवन मुक्त सिद्ध महात्मा, ब्रह्मविद वरिष्ठ अपने जीवन काल में ही अनेक जन्मों के संचित शुभ कर्मों को ब्रह्म ज्ञान रूपी अग्नि से भस्म कर देते हैं। अतः ब्रह्म साक्षात्कार के अनन्तर होने वाले जीव यात्रा निर्वाह सम्बन्धी कर्मों में आसक्ति, ममता न होने के कारण इन कर्मों का उन्हें फल नहीं मिलता, प्रारब्ध कर्मों को भोग करके क्षीण कर देते हैं। इन तीन कर्मों के फलस्वरूप तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन शरीरों के माध्यम से ही, जीव पुनर्जन्म को प्राप्त करता है। अतः ऐसे जीवन मुक्त महात्मा जब स्थूल शरीर को छोड़ते हैं तो तीन कर्मों के नष्ट हो जाने पर भीतर के सूक्ष्म कारण शरीर को त्याग कर किसी दूसरे लोक या शरीर में नहीं जाते तत्काल वहीं उसी समय मुक्त हो जाते हैं। जैसे घट का आकाश का घड़ा फूटने पर महाकाश में लीन होता है। वैसे ही ये महात्मा ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। वेद में भी कहा है–

न स पुनरावर्तते, अनावृत्ति शब्दात्, गीता में भी भगवान् ने कहा है 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।'

अर्थ–वह तत्त्व वेत्ता लौट कर नहीं आता, नहीं आता जिसको प्राप्त करके जीव नहीं लौटता, वहीं मेरा परमधाम है। यहां धाम का अर्थ पत्थर आदि का बना घर नहीं। परन्तु परमात्मा का स्वयं प्रकाश स्वरूप है।

२. देवयान गति–इसे उत्तरायण मार्ग भी कहते हैं। यह योगियों के लिए है। सर्व साधारण जीवों के लिए नहीं। यहां काल से तात्पर्य है। जो योगी धारणा, ध्यान, समाधि के द्वारा ब्रह्मानुभूति के अनन्तर शरीर त्यागते हैं। वे दिन रात्रि, शुक्ल पक्ष व कृष्ण पक्ष, उत्तरायण या दक्षिणायन कभी भी शरीर त्यागें। उनके सूक्ष्म कारण शरीर को ज्योति तथा दिन के अभिमानी देवता ले जाते हैं और वह शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता को सौंपते हैं। उसके अभिमानी देवता उत्तरायण के छः महीनों के अभिमानी देवताओं को सौंपते हैं, उससे उनके शरीर को वर्ष का अभिमानी देवता लेता है। वर्ष का अभिमानी देवता सूर्य मण्डल में ले जाता है। वहां से वह चन्द्र मण्डल को प्राप्त करता है। चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त करता है। चन्द्रमा से अमानव पुरुष ब्रह्म को प्राप्त करता है। वह देवयान मार्ग है। इसको प्राप्त होने वाला योगी पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है। उपनिषद् में कहा है। **छठा अध्याय दूसरा ब्राह्मण पन्द्रहवां मंत्र**

ते य एव मेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धा सत्यमुपासते ते ऽर्चिरभि संभवन्त्य-र्चिषोऽहरहन् आपूर्य माण पक्षमापूर्यमाण पक्षाद्यान्षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देव लोकं देवलोकादादित्य-

मादित्याद्‌वैद्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्म लोकान् गमयति तेषुब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ॥१५॥

अर्थ–जो विद्वान् वन में सत्य श्रद्धा से उपासना करते हैं। वह शरीर त्यागने के बाद ज्योति को प्राप्त करते हैं। ज्योति से दिन के अभिमानी देवता, दिन से शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता उससे उत्तरायण के अभिमानी देवता उत्तरायण से देवलोक को प्राप्त करते हैं। देवलोक से आदित्य को, आदित्य से विद्युत मण्डल को, वहां से मानस पुरुष उनको ब्रह्म लोकों में ले जाता है। उन ब्रह्म लोकों में से फिर जन्म को नहीं प्राप्त करते ॥१५॥

देवयान गति ऐसे ब्रह्मवेत्ताओं की गति है। जिनको पूर्ण ब्रह्म का बोध हो चुका है। किन्तु ब्रह्मलोक का सुख भोगने के अनन्तर ब्रह्म लोक में मुक्त होना चाहते हैं। उन योगियों को ब्रह्म लोक के भोग के अनन्तर ब्रह्म लोक में मुक्ति मिलती है। मंत्र में कहे हुए दिन, पक्ष, मास का अर्थ काल नहीं है, किन्तु काल के अभिमानी देवताओं से तात्पर्य है। इसी बात को गीता के आठवें अध्याय में भगवान् ने कहा है-

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभः ॥२३॥
अग्निज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

अर्थ–हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन जिस काल में गया हुआ योगी पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करता। उस काल को मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा ॥२३॥

ब्रह्म को जानने वाले ब्रह्मवेत्ता अग्नि ज्योति, दिन के अभिमानी देवता शुक्ल पक्ष तथा उत्तरायण के छः महीनों के अभिमानी देवता, इनको प्राप्त करने वाले ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

शंका–उपनिषद् तथा गीता में कहे हुए दिन पक्ष आदि से काल का ज्ञान होता है। यदि काल के अभिमानी देवता होते, तो भीष्म पितामह दक्षिणायन में शरीर छोड़ने वाले थे, किन्तु उन्होंने पिता के वरदान तथा योग शक्ति के प्रभाव से उत्तरायण की प्रतीक्षा की, यदि समय का प्रतिबन्ध न होता तो उत्तरायण की प्रतीक्षा न करते। इससे काल सिद्ध होता है।

समाधान–भीष्म पितामह पूर्व जन्म में आठ वसुओं में अन्तिम द्यु नाम के वसु थे। वशिष्ठ जी का इन वसुओं को शाप था क्योंकि ये आठों भाई वशिष्ठ जी की नन्दिनी गऊ चुराके ले जा रहे थे। पता चलने पर वशिष्ठ जी उनके पीछे पड़ गये, सात वसु तो भागने में सफल हुए किन्तु अन्तिम आठवें वसु पकड़ में आ गए। गुरु वशिष्ठ जी ने सात वसुओं को शाप दिया अगले जन्म में तुम्हारी माता के हाथ से मृत्यु होगी। आठवें वसु से कहा तुम दीर्घ जीवी होगे तथा इच्छा मृत्यु होगी। वहीं आठवें वसु दूसरे जन्म में देवव्रत हुए इनको गुरु वशिष्ठ जी का तथा पिता शान्तनु जी का स्वेच्छा मृत्यु का वरदान था। अत: उन्होंने काल की प्रतीक्षा की ब्रह्म लोक का सुख भोगने के बाद मुक्ति चाहते थे। अत: उन्होंने उत्तरायण की प्रतीक्षा की।

यह कथा महाभारत के आदि पूर्व के सम्भव पर्व में आई है। अत: उत्तरायण काल का योगी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। युक्त योगी, जब भी चाहें दिन में या रात्रि में शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष में दक्षिणायन में उत्तरायण में कभी भी शरीर त्यागें। उन पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु शुक्ल, दक्षिण, उत्तरायण आदि के अभिमानी देवता उनको देव लोक में ले जाते हैं। यदि दिन शुक्ल पक्ष उत्तरायण आदि का नियम होता तो दिन शुक्ल पक्ष आदि में भूमण्डल में न जाने कितने अरबों खरबों जीव शरीर त्यागते हैं। उन सब की मुक्ति हो जानी चाहिए। यह नियम देवयान पितृ यान वाले योगियों के लिए है। सर्व साधारण योगियों के लिए नहीं। यह सिद्ध हुआ।

३. पितृ यान मार्ग–इसी उपनिषद् के छठे अध्याय के दूसरे ब्राह्मण के सोलहवें मंत्र में दक्षिणायन मार्ग से जाने वाले योगियों के विषय में कहा है। वह किस-किस मार्ग से जाते हैं। किस-किस क्रम से जाते हैं। किस लोक में कितने काल रहते हैं। पुण्य क्षीण होने पर किस प्रकार से मृत्यु लोक में आते हैं।

अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममभि संभवन्ति धूमाद्रात्रि रात्रेरपक्षीयमाणपक्षम पक्षीय माण पक्षा द्यान्षण्मासान्द्रक्षिणादित्य एति मासेभ्य: पितृ लोकं पितृलोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति तास्तत्र देवा यथा सोमंरा जनमाप्याय स्वापक्षीय स्वेत्येवमेना:तत्र भक्षयन्ति तेषां यदा तत्पर्य वैत्यथममेंवाऽऽ काशममभिनिष्पाद्यन्त आकाशाद् वायु र्वायोवृष्टिं वृष्टे: पृथिवीं, ते पृथिवीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुन: पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततोयोषाग्नौ जायन्ते लोकान्यत्युत्थायि- नस्त एव मेवानुपरिवर्तन्तेऽथ य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटा: पतङ्गायदिदं दन्द शूकम् ॥१६ ॥

अर्थ–जो सकाम भाव से यज्ञ, दान, तपस्या से लोकों को जीतते हैं। वे शरीर त्यागने के अनन्तर धुएं के रूप को प्राप्त करते हैं। धूम के रात्रि, रात्रि के कृष्ण पक्ष कृष्ण पक्ष से दक्षिणायन के महीने। इन छ: मासों से पितृ लोक को, पितृ लोक से चन्द्र मण्डल को प्राप्त करते हैं। वहां पर बहुत काल तक सुख भोगते हैं। (पुण्य क्षीण होने पर) भाफ, भाफ से कुहरा, कुहरे से बादल, वहां से जल बूंदों द्वारा अन्न होते हैं। वहां पर जैसे देवता सोम का पान करते हैं। राजा प्रजा का सेवन करता है वैसे ही देवता उसको खाते हैं। वहां से वह आकाश को प्राप्त करता है। आकाश से वायु में आता है। वायु से वर्षा में आता है। वर्षा से पृथिवी में अन्न, जल, रस को प्राप्त करता है। अन्न जल के रूप में भावी पिता के पेट में होता है। यदि कच्चा अन्न या फल टूट करके गिर जाता है तो अन्तराल में नष्ट हो जाता है। यदि उस अन्न आदि को नपुंसक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी या संन्यासी सेवन करता है या ऊसर में गिरता है तो नष्ट हो जाता है। यदि पुरुष सेवन करता है, पुरुष के पेट में अग्नि में आता है। पिता के पेट की अग्नि में २८ दिन पकने के बाद क्रमानुसार रक्त मांस, अस्थि, मेद, मज्जा के अनन्तर वीर्य के रूप में होता है। पिता के द्वारा माता के पेट की अग्नि में आता है। उसमें नौ महीने रहकर पुरुष होता है। जो मनुष्य इन दोनों मार्गों को नहीं जानते वे कीट पतंग डॉस मच्छर का जन्म पाते हैं। उस अन्न फल आदि को कोई पशु पक्षी भक्षण करता है तो पशु पक्षी का या कीट पतंग, खटमल का जन्म होता है। पुरुष द्वारा स्त्री के शरीर में रहने के बाद पुरुष

के रूप में जन्म लेकर मनुष्य शरीर में आता है। इसी बात को संक्षेप में गीता के आठवें अध्याय के पच्चीसवें श्लोक में कहा है ॥१६॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षणमासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्यनिवर्तते॥२५॥

अर्थ–सकाम योगी शरीर त्यागने के बाद उसके दोनों शरीरों को धूम का देवता रात्रि, कृष्ण पक्ष तथा दक्षिणायन के छः महीने के देवता को प्राप्त करके, वे देवता चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त करके, योगी फिर लौट कर आ जाता है। यह गति ब्रह्मलोक के महासुख को भोग कर लौटने वाले योगियों की तीसरी गति है। ऊपर कही हुई ये तीनों गतियां योगियों से सम्बन्धित हैं। सर्व साधारण जीवों की जायस्व म्रियस्व गति है। उनको नीचे वर्णन करेंगे।

चौथीगति–जायस्व–म्रियस्व वह गति सर्व साधारण जीवों की है। जो मनुष्य शरीर प्राप्त करके सामान्य रूप से तीन प्रकार के शुभ–अशुभ तथा मिश्रित कर्म करते हैं। वे शरीर त्यागने के बाद शुभ कर्मों से सुख प्रधान देव शरीर प्राप्त करते हैं। जो पाप कर्म करते हैं। वे नरक भोगने के लिए यातनामय देह प्राप्त करते हैं। उसके बाद चौरासी लाख योनियां प्राप्त करते हैं तथा जो मिले–जुले मिश्रित कर्म करते हैं, वह मनुष्य शरीर प्राप्त करते हैं। ये सर्वसाधारण के लिए चौथी गति है।

॥ सैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अड़तालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

भगवान् शंकर श्री राम के प्रति बोले हे नृप! अब तुम्हारे प्रति शरीर का स्वरूप कहूंगा। मुझ से यह जगत् उत्पन्न हुआ, मुझ में ही स्थित है। मुझ में ही उसी प्रकार से लीन हो जाता है। जिस प्रकार सीपी के अज्ञान से रजत उत्पन्न होती है और अज्ञान काल में रहती है। बोध होने पर उसी में ही लय होती है। मैं निर्मल परिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप असंग निरहंकार शुद्ध सनातन हूं। अनादि अविद्या से जगत् की प्रतीति अर्थात् जगत् ब्रह्म का विवर्त तथा माया का परिणाम है। "विवर्तस्य लक्षणम्" विषम सत्ता वाले

दो पदार्थों की विपरीत भाव से प्रतीति विवर्त का लक्षण है। जैसे रस्सी में सर्प की प्रतीति व्यावहारिक सत्ता की रज्जु में ५ दोषों के कारण रस्सी मे सर्प की प्रतीति होती है। इसमें रस्सी की व्यावहारिक सत्ता-सर्प की प्रातिभासिक भ्रान्तिभूलक सत्ता है अर्थात् रस्सी है पर सर्प की प्रतीति भ्रम से होती है।

परिणाम-समसत्ता वाले दो पदार्थों का यथाभाव परिणाम है। जैसे-दूध का परिणाम दही, स्वर्ण का परिणाम आभूषण, जाग्रत अवस्था के दूध में जाग्रत का जामन लगाने से कालान्तर में दुग्ध ही दही के रूप में परिणत हो जाता है। वेदान्तियों ने जगत् को ब्रह्म का विवर्त माना है और सांख्यवादियों ने प्रकृति का परिणाम माना है। अनिर्वाच्या-त्रिगुणात्मिका, परिणामनी महा अविद्या से सत्-रज-तम तीन गुणोत्पन्न होते हैं। सत्व का श्वेत वर्ण है-मनुष्य को सुख आनन्द ज्ञान देता है। रजोगुण रक्तवर्ण दुख रूप चंचल है। तमो गुण कृष्णवर्ण जड़ है। पुरुष सुख दुःखादि से उदासीन है। अधिष्ठान स्वरूप मुझ में माया से रज्जु में सर्पवत् यह जगत् मुझ में अध्यस्त है। उसी कल्पित माया में तीन गुणों से आकाशादि पंच महाभूतों से समष्टि-व्यष्टि तीन शरीर मुझ से उत्पन्न होते हैं। भाव यह है कि माया और उसके कार्य का आधार ब्रह्म ही है। माया परिणामनी है। पिता से जीव के स्नायु हड्डी तथा मज्जा तथा माता से त्वचा मांस, खून, उत्पन्न होते हैं। दाढ़ी-मूंछ-रोम-बाल शिरा-धमनियों-नाखून, दांत-पिता के शुक्र से होते हैं। सूक्ष्मनाड़ी को शिरा तथा स्थूल नाड़ी को धमनी कहते हैं। शरीर की वृद्धि तृप्ति-फल-स्थिति-उत्साह माता से प्राप्त होते हैं तथा इच्छा, द्वेष, दुख, सुख धर्माधर्म-ज्ञानाज्ञान-आयु तथा इन्द्रियां ये वस्तुएं पुत्र पुत्रियों को माता-पिता के मिले तेज से प्राप्त होती हैं। सुख दुख ज्ञानादि मानसिक धर्म है। स्मृति-धैर्य-विकल्प तथा निश्चय-बुद्धि के धर्म हैं। अहंता-ममता अहंकार चित्त के धर्म हैं। चिन्तन चित्त का धर्म है। ये सब अन्तःकरण के धर्म उपाधि से साक्षी द्वारा भास्य सुखदुखादि को चैतन्य की उपाधि से अन्तःकरण तथा इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं।

पञ्चप्राणः-प्राणापान-समान-उदान-व्यान से पांच प्राण क्रमानुसार प्राण हृदय में, अपान गुदा-उपस्थ में कटि-जङ्घा तथा उदर में रहता है तथा यही अपान वायु नाभि

कण्ठ वाणी तथा घुटनों में स्थित है। मलमूत्रादि का त्याग इसका कर्म है। **व्यान वायुः**– यह कान में टखना में जिह्वा प्राणादि में रहती है। प्राणों को रोकना, धृति-त्याग-ग्रहणादि इसके कर्म हैं। **समानवायुः**–सारे शरीर में अग्नि सहित रहती है तथा ७२००० हजार नाड़ी छिद्रों में संचार करती है।

शंकाः– हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि संश्रितः।
उदानः कण्ठकूपस्थो व्यानः सर्व शरीरगः॥

अर्थ–हृदि में प्राण-गुदा में अपान नाभि में समान, कण्ठ में उदान, सारे शरीर में व्यान वायु रहता है। फिर भगवान् शंकर ने विपरीत क्यों कहा इसकी क्या व्यवस्था है।

समाधान–सर्व शरीर में व्यान होने से व्यान का समान से महाभेद होने से समान को ग्रहण किया है, क्योंकि समानवायु खाये पिये अन्न जल को सम्पूर्ण शरीर व्यापी नाड़ियों में पहुंचा कर शरीर को पुष्ट करती है। अतः समानवायु का सर्व शरीर व्यापी कहना अन्याचार्यों से विरोध नहीं है।

उदान–यह वायु दोनों पैरों तथा हाथों में एवं शरीर की सभी सन्धियों में रहता है। इसका कार्य शरीरस्थ वायु को ऊपर ले जाना है।

इन पांच प्राणों के अतिरिक्त इनके सहायक पांच उप प्राण हैं। नाग वायु से वमन कूर्म का कार्य आंखों को खोलना बंद करना, कृकल से छींक-देवदत्त से विजृम्भण-इसी देवदत्ता से भूख-प्यास लगती है तथा तन्द्रा निद्रा-जमुहाई-धनञ्जय से।

तीन महाभूतों के कार्य–पृथ्वी से घ्राणेन्द्रिय (नासिका) इसका गन्ध गुण स्थिरता-धैर्य-गुरुता तथा त्वचा मांस-रक्त-मेद-अस्थि-मज्जा शुक्र इसकी धातुएं हैं।

पुरुष द्वारा खाया हुआ अन्न तीन भागों में पेट की अग्नि द्वारा विभाजित होता है। स्थूल भाग से मल-मध्यम से मांस सूक्ष्म से मन बनता है। जल के स्थूल भाग से मूत्र-मध्यम से रुधिर सूक्ष्म से प्राण बनते हैं। स्वाद-शीतलता-पिण्डीकरण वहना पसीना कोमलता से जल के गुण हैं।

अग्नि ज्वलनशील पदार्थों में रहती है। घी तेलादि के सेवन से स्थूल भाग से हड्डी मध्यम से मज्जा-सूक्ष्म से वाणी बनती है। अतः तेज जल तथा पृथ्वी या अन्न जल से शरीर उत्पन्न हुआ है। रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा तथा

मासं के संघात से नाड़ियां तथा मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है। शरीर में वात, पित्त कफतीन धातुएं कही गई हैं। आयुर्वेद शास्त्र में शरीर में रस, जल आठ अंजुली, मल पुरीष ७ अजंली श्लेष्मा ६ अजंली, पित्त, तीन अंजली मूत्र, चर्बी तथा इतनी ही मज्जा कहीं है आधा अजुंली शुक्र है। इसे ही बल कहा गया है। शरीर में ३६० हड्डियां हैं। पांच प्रकार के शंकु के आकार की भृकुटी तथा कर्ण देश में स्थित कही गई है। २१० हड्जियों के जोड़ शरीर में हैं। साढ़े तीन करोड़ रोम हैं तथा दाड़ी मूंछ तथा सिर के केश मिलाकर तीन लाख है। भगवान् शंकर श्री राम जी से कहते हैं। हे दशरथ नन्दन राम! ब्रह्म चिन्तन करते समय तुम्हारे शरीर में आसक्ति न हो इसलिए मैंने तुमसे स्थूल शरीर की उत्पत्ति तथा इसके रूप का वर्णन किया है। अनात्मा तथा दुख रूप समझ कर इसमें आसक्ति का त्याग करो। **(शिव गीता का नौवां अध्याय सम्पूर्ण)**

॥ अड़तालिसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ उन्चसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिव गीता का दसवां अध्याय प्रारम्भ

उपाधि भेद से चैतन्य

श्री राम जी ने पूछा हे भगवन्! जीव शरीर में कहां रहता है। कहां उत्पन्न होता है। इसके स्वरूप को मेरे प्रति कहिए। मृत्यु के अनन्तर कहां रहता है। जाकर कहां ठहरता है फिर लौट करके आता है या नहीं?

भगवान् शंकर बोले हे राम, मैं सत्य ज्ञान स्वरूप अनन्त परमानन्द स्वरूप हूं। व्यक्त, अव्यक्त का कारण नित्य, विशुद्ध, सर्वात्मा, निर्लेप, ज्ञान स्वरूप, सर्वधर्म रहित, मन से अग्राह्य हूं। किन्तु ऐसा होने पर भी अविद्या अथवा अन्तःकरण से मिलकर शरीर में रहता हूं। पंच कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञान इन्द्रिय तथा अन्तःकरण चतुष्टय से मिलकर मैं जीव भाव को प्राप्त हुआ हूं। मैं अत्यन्त निर्मल होने पर भी मलिन रूप से प्रतीत होता हूं। जिस प्रकार दर्पण मलिन होने पर मुख भी मलिन दीखता है। उसी प्रकार अन्तःकरण रूपी दर्पण में मलिनता के कारण आत्मा मलिन दीखती है। वह शरीर में कहां रहती है।

इसको कहता हूं सुनो हृदय रूपी कमल में एक अधोमुखी सूक्ष्म छिद्र है। उसके दहराकाश में यानी हृदय में स्थित आकाश में जीव रहता है क्योंकि ब्रह्म प्राप्ति का साधन शरीर है। अतः शरीर परब्रह्म है। ब्रह्म ही दहराकाश है। जीव वहीं रहता है। जीव ब्रह्म का अभेद परमार्थ सत्ता में है।

अब सगुण ब्रह्म के उपासकों के क्रम मुक्ति को बताते हुए शंकर जी कहते हैं। नाड़ियों का विस्तार से वर्णन करते हुए कहते हैं। हे राम कदम्ब पुष्प में विद्यमान केसर के समान नाड़ियां हृदय से निकल कर सारे शरीर में फैली हैं। इन नाड़ियों में से अत्यन्त सूक्ष्मतम हिता नाम की नाड़ी है। योगियों ने बहत्तर हजार नाड़ियां बताई हैं।वे सब नाड़ियां हृदय कमल से वैसे ही निकल कर फैलता है। जैसे सूर्य मण्डल में निकली सूर्य की किरणें फैलती हैं। इनमें से १०१ मुख्य नाड़ियां हैं। जैसे नदियों में जल भरा रहता है। वैसे ही इन नाड़ियों में कर्म फल रूपी जल रहता है। इनमे से एक नाड़ी सीधी ब्रह्मरन्ध्र तक गई है। प्रत्येक इन्द्रिय से १०-१० नाड़ियां निकल कर विषयोन्मुख होती हैं। ये नाड़ियां आनन्द प्राप्ति का कारण है तथा स्वप्न आदि का फल भोगने के लिए है। उनमें से एक सुषुम्णा नाम की नाड़ी है। उसमें चित्त वृत्ति को समाहित करने वाला योगी मुक्ति प्राप्त करता है। दोनों की उपाधि से युक्त चैतन्य को विद्वान् जीव कहते हैं।

शंका–यदि सुषुम्ना के निर्गमन से ही मोक्ष होता है तो ज्ञान से मुक्ति का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां तथा स्मृतियां निरर्थक हो जाएंगी, क्योंकि "ज्ञानादेव कैवल्यम् प्राप्यते येन मुच्यते" अर्थात् ज्ञान से ही कैवल्य मुक्ति प्राप्त होती है। जिससे जीव का जन्म मरण का बंध टूट जाता है।

समाधान–इसका उत्तर देते हुए कहा है कि कामादि दोष से रहित अन्तःकरण ही ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ है। जीव दशा में मुक्ति नहीं होती, किन्तु सुषुम्ना के ब्रह्मरन्ध्र में कुण्डलिनी के जाग्रत होने से जीव को ब्रह्मादि लोकों की प्राप्ति मुक्ति गौण होती है। मुख्य कैवल्य मुक्ति नहीं, अतः ज्ञान से मुक्ति का प्रतिपादन करने वाली श्रुति-स्मृति से विरोध नहीं है। जैसे अदृश्य होने पर भी सूर्यचन्द्र ग्रहण पर राहु का दर्शन होता है, प्रथम नहीं। वैसे सर्वव्यापी आत्मा होने पर भी सूक्ष्म शरीर में दीखता है। जैसे घट दर्शन से घटाकाश का दर्शन होता है तथा घट को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने पर

घटाकाश जाता प्रतीत होता है। वैसे ही सूक्ष्म शरीर के चले जाने पर आत्मा जाता प्रतीत होता है। इस विषय को समझने के लिए वेदान्त की प्रक्रिया समझ लेनी चाहिए। एक चैतन्य के होने पर भी उपाधि भेद से चैतन्य अनेक है, किन्तु प्रधान रूप से तीन प्रकार का है।

१. प्रमाता चैतन्य, २. प्रमाण चैतन्य, ३. विषय चैतन्य–**प्रमाता चैतन्य–प्रकर्षेण ज्ञाता इति प्रमाता**–अर्थात् अन्तःकरण से मिला चैतन्य जानने वाला चैतन्य प्रमाता चैतन्य है। प्रमाण चैतन्य–अन्तःकरण की वृत्ति में विद्यमान चैतन्य प्रमाण चैतन्य है। विषय चैतन्य–अन्तःकरण से निकल कर आंखादि इन्द्रियों से मिलकर जब चैतन्य जिस इन्द्रिय से सम्बन्धित होकर देखता, सुनता है, इन्द्रियों से निकल कर विषय तक पहुंची अन्तःकरण की वृत्ति विषय चैतन्य है।

जब समान देशकाल में वृत्यवच्छिन्न चैतन्येन्द्रियों द्वारा विषय के पास जाकर विषय को व्याप्त करके चैतन्याकार होते हैं तब घटादि पदार्थों का ज्ञान होता है। इस प्रकार वेदान्त की प्रक्रिया है।

प्रमाण अनेकों हैं प्रत्यक्ष–अनुमान–अर्थापत्ति। इनमें अनुमान प्रमाण से जैसा पर्वत पर धूआं देखकर अनुमान होता कि यह पर्वत धूमयुक्त है। "धूमत्वात्" धूम युक्त होने से। जहां–जहां धूआं है वहां–वहां अग्नि है। पाकशाला के समान हे राम! जैसे स्वप्न का जगत मिथ्या होने पर भी प्रतीत होता है। ऐसे ही जाग्रत भी तुरीया में मिथ्या प्रतीत होता है। स्वप्न का जगत् स्वप्न व स्वप्न के साक्षी तैजस की वासना मात्र है। जिस प्रकार दिन का थका हुआ पक्षी रात्रि में अपने पंखों को समेट कर विश्राम करता है। उसी प्रकार जाग्रतमें तथा स्वप्न में थका हुआ जीव रूपी पक्षी भी अपनी वृत्ति रूपी पंखों को समेट कर सुषुप्ति में विश्राम करता है। गाढ़ सुषुप्ति अविद्या की वृत्ति से होती है उसमें अनुभव करता है। मैं सुख से सोया कुछ भी नहीं जाना, हे राम! स्वयं प्रकाश देहातीत आत्मा का स्वरूप मैंने तुम्हारे सामने कहा, वह तीन अवस्था, तीन गुण, तीन शरीरों से परे, शुद्ध, सच्चिदानन्द स्वरूप है। वही तुम हम दोनों में अभेद रूप से हैं। **(शिव गीता का दसवां अध्याय सम्पूर्णम्)**

॥ उन्चसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ पचासवां अध्याय ॥

॥ शिव गीता का ग्यारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मानन्द निरूपण

हे राम जी ! जीव इन्द्रियों से विषय भोगों की कामना के अधीन हुआ त्रिताप को भोगता हुआ शुभाशुभ कर्मों के अधीन होकर ऊपर नीचे की योनियों को प्राप्त करता है। मरते समय अन्तिम वासना के अधीन होकर भावी शरीर प्राप्त करता है। मृत्यु के समय अविद्या कामना कर्म के अधीन हुआ, जीव यदि ऊपर के सात छिद्रों से शरीर त्यागता है, तो मनुष्य योनि में जन्म लेता है। नीचे के दो द्वारों से शरीर त्यागने वाला नरक का दुख भोगने के बाद पशु, पक्षी आदि योनि में जन्म लेता है। ब्रह्मरन्ध्र से शरीर त्यागने वाला ब्रह्मलोक में जाता है। किन्तु जीवन् मुक्त महात्मा ऊपर कहे के अनुसार क्रम या सद्योमुक्ति प्राप्त करते हैं। जैसे स्वप्न द्रष्टा का स्वप्न का जगत् निद्रा भंग, होने पर लीन होता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञानी की भी अज्ञान रूपी निद्रा टूटते ही, वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। ज्ञान, कर्म से रहित संसारी जीव नारकीय यातना भोगने के अनन्तर पहले छोटे पंखों वाले मक्खी-मच्छरादि का जन्म लेता है। पसीना या भाफ से उत्पन्न होने वाले खटमल-जुवें का भी जन्म पाते हैं। श्री राम जी ने पूछा, हे भगवन् ! आपने जो ज्ञान कर्म का फल कहा, इनमें ब्रह्मलोक-चन्द्रलोकादि लोकों में देवत्त्व इन्द्रत्व-या ब्रह्मत्व की प्राप्ति कर्म का फल है; कि ज्ञान का। हे गिरिजेपते ! इस विषय में मुझे महान् सन्देह है। उस संदेह को आप दूर करें। भगवान् शिव बोले हे राम ! विद्या तथा कर्म के अनुसार जीव-सुन्दर-युवा निरोग तथा वरिष्ठ शरीर प्राप्त करता है। ऐसा शरीर प्राप्त करके निष्कण्टक सप्त महाद्वीपों का चक्रवर्ति सम्राट् होता है। वह साधारण मनुष्य की अपेक्षा १०० गुणा सुखी होता है। इसकी अपेक्षा क्रमानुसार उत्तरोत्तर १०० गुणा आनन्द देवो, गन्धर्वो-पितृदेव-इन्द्र-बृहस्पति-प्रजापतियों में ब्रह्मा जी को होता है, स्वर्ग में ज्ञान की अधिकता के अनुसार सुख होता है। उतना ही आनन्द भोगता है। आत्म ज्ञान से बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं है। ब्रह्म न किसी शुभ कर्म से बढ़ता है न पाप से क्षीण होता है। ज्ञानाग्नि सब को भस्म करती है। अतः ज्ञानी सर्वोपरि है। वह जो करता है। उसका

अक्षय फल प्राप्त होता है। मनुष्य को करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने का जो फल है वह ब्रह्मवेत्ता को भोजन कराने से होता है। जो नराधम ज्ञानी से द्वेष करते हैं द्वेषी सूखकर मर जाते हैं। अतः हे राजन्! उपासक को चाहिए कि जिससे फिर अधोगति प्राप्त न हों उसे ऐसी उपासना करके सुखी होना चाहिए। **(शिव गीता का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्णम्)**

॥ पचासवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ इक्यानवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिव गीता का बारहवां अध्याय प्रारम्भ

चार प्रकार की उपासना

भगवान् ने उपासना का उपदेश करते हुए श्री राम जी से कहा, उपासना चार प्रकार की है–१. सम्पदा, २. आरोप, ३. सम्पर्ग, ४. अध्यास। उपासना में उप + आसना दो पद हैं। उप माने समीप आसना माने बैठना। इष्ट देव का सान्निध्य प्राप्त करना उपासना है।

१. सम्पदा–थोड़े गुणों का अधिक रूप से चिन्तन करना सम्पदा है। जैसे एक मन होने पर भी वृत्ति भेद से अनन्त है, अतः **'अनन्तम् वै मनः'** कहा है। अनन्त रूप में मन का चिन्तन सम्पदा है।

२. आरोप–यह सम्पदा मूर्ति पूजा के रूप में, लाख, धातु पत्थर आदि की मूर्ति में इष्ट देव की भावना से प्रतीकोपासना कहलाती है। वह भी दो प्रकार की है। १. आरोप प्रदान सम्पत्ति जैसे सगुण मूर्ति का चिन्तन, २. अधिष्ठान प्रधान अभ्यास अर्थात् अधिष्ठान को उद्देश्य करके आरोपित का ध्यान करना। जैसे सगुण ब्रह्म का चिन्तन करते हुए निर्गुण ब्रह्म का अनुसंधान करना आरोप है। इसमें विधि विधान से इष्ट की पूजा, मंत्रों का शुद्ध उचरण तथा मूर्ति में ब्रह्म बुद्धि आरोप कही गई है। जैसे ओंकार उद्गीथ है। अर्थात् प्राणों की उपासना उद्गीथ उपासना है। ओम् का उच्चारण करते हुए की हुई उपासना उद्गीथ है तथा प्रधान रूप से जिसका विधान किया जाए, उसे विधि

कहते हैं। देवता के अंगों में उनकी शक्ति का आरोप जैसे जब भगवती सती ने दक्ष के यज्ञ में योगाग्नि से अपना शरीर जला दिया। भगवान् शंकर उसके शरीर को उठाये हुए रोते घूमने लगे। विष्णु भगवान् ने उनका मोह भंग करने के लिए सुदर्शन से काट कर उनके शरीर के अंग प्रत्यंगों को यत्र तत्र डाल दिया। वे ५२ स्थानों पर गिरे और ५२ शक्तिपीठों के रूप में प्रसिद्ध हैं। किसी ग्रन्थ में १०८ शक्तिपीठ बताये गये हैं। उनके अंगों में शक्ति बुद्धि उपासना है।

३. अध्यास–बुद्धिपूर्वक जो आरोप किया जाता है। उसकी विधि अध्यास विधि है। जैसे वेद आज्ञा देता है। **'आदित्यो वै यूपः'** अर्थात् खैर की लकड़ी के बने हुए खूंटे में जिसको छीलकर, मनुष्य जैसा आकार बनाकर यज्ञशाला में यज्ञ पशु बांधने के लिए गाड़ा जाता है। उसे यूप कहते हैं। वेद आज्ञा करता है। उस यूप की सूर्य बुद्धि से उपासना करें। वह अध्यास उपासना है। वह लकड़ी होने पर भी उसमें सूर्य की भावना का आरोप किया जाता है।

४. सम्वर्ग उपासना–क्रिया योग द्वारा अर्थात् पूर्ण सामग्री से की गई इष्ट की पूजा सम्वर्ग उपासना है। जैसे प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु सभी प्राणियों को अपने वश में करती है। वैसे ही समस्त प्राणियों को वश में करने के लिए अनेकों उपचारों से की जाने वाली इष्ट की उपासना सम्वर्गोपासना कहलाती है। सद्गुरुओं द्वारा प्राप्त ज्ञान से इष्ट में अभेद बुद्धि से इष्ट की पूजा विशेष उपासना है। वह मूर्ति आदि में होने के कारण वहिरंग उपासना कही जाती है।

अन्तरंग उपासना–मल विक्षेप आवरण इन तीन दोषों से रहित बुद्धि द्वारा श्रवण आदि से देवत्व के समीप पहुचं कर मैं ब्रह्म हूं। इस प्रकार की ब्रह्म विषयिणी बुद्धि द्वारा, उपासना (ध्यान), करना अन्तरंग उपासना है। आत्म ज्ञान से विजातीय विषयाकार वृत्ति को हटाकर सजातीय ब्रह्माकार वृत्ति से जीव ब्रह्म की एकता का नाम अन्तरंग उपासना है। इस अन्तरंग उपासना में सफलता सम्पदादि बहिरंग उपासना के सिद्ध होने पर अंतरंग उपासना सिद्ध होती है। मेरा भक्त मेरा ध्यान किस प्रकार करे। इस पर कहते हैं। हे राम जी! मैं अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, अमृत, शिव, उत्पति, स्थिति, नाश से रहित परम शान्त सर्वकारण सर्वव्यापी, चिदानन्द, अरूप, अजन्मा आदि अद्भुत गुणों

से युक्त होने पर भी अपने भक्तों की भावना के अनुरूप कोटि सूर्य के समान तेजस्वी शुभ स्फटिक मणि के समान अर्धनारीश्वर कोटि चन्द्रमाओं के समान शीतल, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि तीन नेत्रों वाले मेरे सगुण साकार स्वरूप का भक्त ध्यान करें। **(शिव गीता का बारहवां अध्याय पूर्ण)**

॥ इक्यावनवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ बावनवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिव गीता का तेरहवां अध्याय प्रारम्भ

स्वरूप ज्ञान

शंकर जी भगवान् श्री राम से कहते हैं। हे राम! जो निष्काम भाव से ज्ञान रहित मेरा भक्त है। सर्वदा मेरी पूजा करता है। मेरे लोक को प्राप्त करके इच्छित भोगों को भोगता है। जो अनेकों प्रकार के दान नित्य, नैमित्तिक, कर्म, भोजन हवन, तपस्या मुझे अर्पण करता है। वह मेरे लोक में ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो शान्ति आदि गुणों से युक्त हैं। आत्म रूप से देखता है। उसके हृदय में अद्वैतब्रह्म का प्रत्यक्ष करने वाली ज्योति प्रज्वलित होती है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप जो मन, वाणी से अगोचर है। उसे प्राप्त करता है।

श्री राम जी ने पूछा, हे प्रभो! आपके शुद्ध स्वरूप का ज्ञान कैसे होता है?

शिव जी बोले हे रघुनन्दन! समस्त वेदों के उपक्रम उपसंहारादि छ: लिंगों पर विचार करने पर अन्तिम तात्पर्य ब्रह्म में है। जैसे एक लोह के ज्ञान से लोहे की समस्त वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार युक्ति संगत वाक्यों का विचार करने पर संग दोष का परित्याग कर अंहता, ममता से रहित, शान्ति आदि गुणों से युक्त, ध्यान योग के द्वारा आत्म दर्शन के अभ्यास रूपी निदिध्यासन से सारा जगत् ब्रह्मरूप में अनुभूत होता है। अत: लौह के अस्त्र-शस्त्र लौह तत्त्व के ज्ञान के समान ब्रह्म बोध होता है। संचित कर्मों के ज्ञानाग्नि में दग्ध होने पर चिरकाल के अभ्यास के करोड़ों जन्मों में करोड़ों मनुष्यों में से किसी एक को आत्मदर्शन होता है। एकमात्र आत्मज्ञान से ज्ञान

होता है। कर्मों से नहीं। जैसे मैल से मैल साफ नहीं होता। वैसे ही कर्मों से कर्मों का नाश नहीं होता। ब्रह्मज्ञान के अनन्तर ज्ञानी पाप पुण्य से लिप्त नहीं होता। जैसे केचुली त्यागे हुए सर्प को केचुली में आत्म बुद्धि नहीं होती, वैसे ही आत्मदर्शियों को भी आत्म बुद्धि शरीर में नहीं होती। हे राम! अधिक क्या कहूं। वैराग्य रहित वेदान्त का पण्डित केवल वैश्य है। वैराग्य सहित दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मबोध होने पर निश्चय ही मुक्ति में विलम्ब नहीं।

श्लोक—मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति, न ग्रामान्तरमेव च।
अज्ञान हृदय ग्रन्थि नाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

अर्थ—हे राम जी! किसी ग्राम-लोकादि में जाकर निवास करने का नाम मुक्ति नहीं है, किन्तु हृदय में चित्-जड़ ग्रन्थि का नाश ही मुक्ति है।

भाव यह है कि मुक्ति न किसी अवस्था विशेष में है, न शिवलोक-वैकुण्ठ आदि में वास करने से मुक्ति है, किन्तु मैं मेरी की गांठ के नाश में मुक्ति है। शरीरादि में आत्म बुद्धि ही बन्धन और उसका नाश मुक्ति है। जैसे वृक्ष के अग्रभाग से गिरा हुआ मनुष्य निश्चय ही नीचे गिरता है। वैसे ही अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करने वाले ज्ञानी की मुक्ति भी निश्चित है। जैसे तीर्थादि में मृत्यु पुण्य का फल है। चण्डालादि के घर मरना पाप का फल है, किन्तु यह वचन ज्ञानी के सम्बन्ध में नहीं है। ज्ञानी किसी भी देशकाल या निमित्त से परे। भूखा या खाकर मरे। रोता या हंसता उसकी मुक्ति निश्चित है। संसार से परम विरक्त महात्मा संसार में रहते हुए भी उसमें किसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे दूध से निकाला घी या मक्खन दूध में छोड़ने पर भी उसमें मिलता नहीं। **(शिव गीता का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण)**

॥ बावनवां अध्याय सम्पूर्ण॥



तरेपनवां अध्याय प्रारम्भ

शिव गीता का चौदहवां अध्याय प्रारम्भ

अज्ञान निवृत्ति का उपाय

श्री राम जी ने पूछा हे शंकर! जो ब्रह्म दिखाई नहीं देता तथा किसी भी प्रकार किसी की पकड़ में नहीं आता। उसको कैसे ग्रहण करें, मैं आप से भिन्न हूं। इस अज्ञान की निवृत्ति का उपाय कहिये।

शिव जी उत्तर देते हुए बोले, हे महावाहो राम! अदृश्य निर्गुणब्रह्म की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम सगुणोपासना द्वारा चित्त को एकाग्र करो। पश्चात् स्थूण सौराम्भिका न्याय से निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय बताऊंगा। **सौरम्भिकान्याय**–वर्षा ऋतु में मरुस्थल में सूर्य की किरणों में मृग जल समझ कर जल प्राप्त करने के लिए दूर निकल जाता है। किन्तु जैसे-जैसे भागता है। जल आगे-आगे दिखाई देता है। अन्त में वर्षा के कारण उसे कहीं-न-कहीं जल अवश्य मिल जाता है, इसी प्रकार साधक भी निराकर निर्विशेष ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए परमात्मा की स्थूल रूप प्रतिमा का पूजन ध्यान करके अन्त में निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसका जन्म सफल हो जाता है। इसे 'सौराम्भिकन्याय' कहते हैं। सौर माने सूर्य किरणें, उनमें अम्भ = अध्यस्त जल सौराम्भ है। न्याय = कथन। उसका कथन सौराम्भिका न्याय है किन्तु जीव शरीरादि को मैं तथा शरीर से सम्बन्धित गृह स्त्री, पुत्रादि में ममता करके राग द्वेष से युक्त होता है। मन से जीव अहंकारादि करता है, किन्तु इस अहंकार की निवृति में दश इन्द्रि प्राणादि मैं नहीं हूं क्योंकि मैं तो इनका द्रष्टा हूं। इस प्रकार पञ्च कोश, तीन अवस्थादि, को बाध कर स्वरूप चिन्तन से मुक्ति प्राप्त करता है। ऊपर कहे पंचकोश, पंचप्राण, तीन अवस्थाओं में, अहंता ममता करने वाले को व्यावहारिक जीव कहते हैं। व्यावहारिक जीव में पंचभूतों के सत्त्वांश से पंच ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। आकाशादि के सात्विक अंश से मन, बुद्धि उत्पन्न हुई। इन सत्रह तत्त्वों वाला सूक्ष्म शरीर है। यह जड़ है। जड़ होने पर जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहा अग्नि के समान लाल तथा जलाने वाला हो जाता है और अग्नि लोहे के रूप को प्राप्त होती है। इसी प्रकार चैतन्य के सम्पर्क से जड़ चैतन्य

और चैतन्य जड़ सा हो जाता है। एक दूसरे के अध्यास को अन्योऽन्या अध्यास कहते हैं। यही जड़ चेतन की गांठ है। इनके पारस्परिक अध्यास से साक्षी चैतन्य से युक्त आनन्दमय कोश कहलाता है। यह कारण शरीर है। यही कर्मों का फल भोगने के लिए सूक्ष्म देह देहान्तर को तथा लोक लोकान्तर में जाता हुआ, जीव सुख दुख भोगता है। जब तीन शरीरों में अहंबुद्धि रूपी अध्यास निवृत्त होता है। तब ये मेरे नहीं, मैं उनका नहीं हूं। ऐसा चिन्तन करके सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित होता है। तब इसे साक्षी आत्मा कहते हैं। जब अन्तःकरण चतुष्टय के साथ मिलकर सुखी-दुखी होता है तब भोक्ता जीव कहा जाता है, किन्तु जब मैं सुख का साक्षी हूं, ऐसा समझता है, तब उसे साक्षी आत्मा कहते हैं। अतः सुख-दुख में आसक्त होने वाला भोक्ता जीव तथा द्रष्टा-मात्र साक्षी आत्मा दो प्रकार से कहा जाता है। जैसे सूर्य के रूप में गर्मी, छाया तथा प्रकाश रहता है। वैसे ही एक कर्मों के भुक्ताने वाला ईश्वर दूसरा भोक्ता जीव, तीसरा शुद्ध निरूपाधिक ब्रह्म, जब भेद उत्पन्न करने वाले अज्ञान का नाश हो जाता है। तब भेद बुद्धि मिथ्या होती है। चैतन्य एक होने पर भी उपाधि से तीन प्रकार का प्रतीत होता है। वास्तव में ब्रह्म में एकता है। जैसे एक पुरुष जब छाता लगाता है। तब उसे छत्री पुरुष कहते हैं। जब त्याग देता है तब अछत्री कहलाता है। जैसे उस पुरुष में छाते की उपाधि से भेद है। पुरुष में नहीं। वैसे ही जीव और ईश्वर में अन्तःकरण तथा मायाकृत भेद है किन्तु माया तथा अन्तःकरण से रहित शुद्ध ब्रह्म है। अतः समाधि साधन सम्पन्न सगुण ब्रह्म का आश्रय लेकर निष्काम कर्मोपासना करता है। तब उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। तब परमार्थ चिन्तन करते हुए निर्गुण ब्रह्म के साथ ऐक्य अनुभव करता है। हे राम! जैसे केले में से कपूर प्राप्त करने के लिए उसके छिलके को अलग उतार देने पर अन्त में केले के सार कपूर को प्राप्त कर लेता है। वैसे ही मुमुक्षु भी पंच कोषों को अपने से भिन्न करके सार रूप आत्मा को प्राप्त करता है।

श्री राम जी ने पूछा, हे त्रिपुरारे! कुछ लोग आपकी माया से मोहित होकर सार तत्त्व को नहीं सुनना चाहते। कुछ सुनकर भी नहीं जानते। कुछ वेद शास्त्र के अर्थों को जानते हुए भी मनन नहीं करते। कुछ जान करके भी इसको मिथ्या नहीं समझते, इन सब का कारण क्या है?

शिव भगवान् बोले, हे राम जी! नराधम लोग मेरे तत्त्व को बिना जाने कर्म करते हैं तथा माता के गर्भ को प्राप्त करते हैं। मेरी माया से मोहित हुए मेरी शरण को नहीं प्राप्त करते। जो मेरी शरण को प्राप्त करते हैं वे माया से तर जाते हैं। अनेकों योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त जीवों को मेरी भक्ति प्राप्त होती है। श्रद्धावान भक्त ही ज्ञान प्राप्त करता है। मेरी भक्ति के अतिरिक्त करोड़ों जन्मों में ज्ञान नहीं हो सकता तथा ज्ञान बिना मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिए हे राम!

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो: मोक्षयिष्यामि, माशुचः।

हे राम! सर्व धर्मों के अभिमान का परित्याग करके मेरी एकमात्र शरण ग्रहण करो। मैं तुमको सब पापों से मुक्त करूंगा। शोक मत कर। श्री लक्ष्मी नरहरि सुनू हरिदीक्षित अपनी वालानन्दिनी व्याख्या में कहते हैं कि मैं इस कामना से कर्म करता हूं। इस कर्त्तापन के अध्यास तथा फल की इच्छा के त्यागपूर्वक सर्व धर्मों को त्याग कर यानी धर्म के फलों को त्याग कर, धर्म को नहीं, एकमात्र सर्वेश्वर सभी जगत् के एकमात्र नियन्ता मेरे शरण में जाओ। भगवान् की शरणागति भी तीन प्रकार की है।

तस्यै वाहं ममै वासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वम् स्यात् साधनाभ्यास पाकतः॥

अर्थ–मैं भगवान् का हूं। मेरा वही परमात्मा भगवान् है। मैं वही हूं। साधन अभ्यास के परिपाक से भगवत् शरणागति तीन प्रकार की है। इस प्रकार हे राम! मेरी शरण में आये हुए तुमको मैं **''सर्व पापेभ्यो शरीरत्रयाध्यासतत्कार्य जननमरण नानागति रूपेभ्यो मोक्षयिष्यामि। मा शुचः वृथा शोकं मा कृथा इत्यर्थः अथवा सर्वपापवासनाजालेभ्यो मुक्तं करिष्यामि मा शुचः कथम् मुक्तो भविष्यामि इति वृथा शोकं मा कृथाः।''**

अर्थ–शरीर तीन के अभ्यास तथा उसके कार्य जन्म मरण रूपी प्राप्ति करने वाली अनेकों दुर्गतियों से तुमको मुक्त कर दूंगा अथवा पाप में लगाने वाली पाप की सम्पूर्ण वासनाओं के जाल से तुमको मुक्त कर दूंगा। तुम शोक मत करो मैं कैसे मुक्त होऊंगा।

इस व्यर्थ के शोक को छोड़ दो। हे नरोत्तम! तुम जो भोजन करते हो, जो हवन करते हो, जो दान देते हो, जो तपस्या करते हो, मेरे अर्पण कर दो। क्योंकि इससे बढ़कर मेरी और कोई भक्ति नहीं है। **(शिव गीता का पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण)**

॥ तरेपनवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ चौवनवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शिव गीता का सोलहवां अध्याय प्रारम्भ

अधिकारी निरूपण

भगवान् श्री राम ने पूछा, हे प्रभु! चारों आश्रमियों तथा चारों वर्णों में से इस गीता को पढ़ने, पढ़ाने का किस को अधिकार है। उपनयन से रहित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को है, या नहीं। इसकी टीका में श्री हरिदीक्षित लिखते हैं कि अनुपनीत द्विजों को तथा स्त्री, शूद्र आदि को, साक्षात्, अधिकार नहीं है, किन्तु ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को सुनने में अधिकार है। स्मृतियों में अधिकार है। श्रुतियों में नहीं। यह शास्त्र का सिद्धान्त है। जिस शूद्र की ब्राह्मण में श्रद्धा नहीं है। उसको अधिकार नहीं है। गृहस्थ का अधिकार है। इस प्रकार भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य जी ने कहा, परन्तु श्री स्वामी नरसिंह पादाचार्य जी ने यतियों का ही वेदान्त ग्रन्थों में अधिकार प्रतिपादित किया है, गृहस्थों का नहीं। विरक्त गृहस्थों का अधिकार है। क्योंकि वृहदारण्यक उपनिषद् में–

"अभयं वै जनकः प्राप्नोति तदात्मानम् वेदाऽहम् ब्रह्मास्मि।"

अर्थ–"आत्म ज्ञान प्राप्त करके महाराज जनक अभय को प्राप्त हुए। मैं ब्रह्म हूं। आत्मा को जानता हूं।" ऐसा अनुभव किया। उपनयन से रहित योग्य द्विजाति का भी अधिकार है। यदि वह तीक्ष्ण बुद्धि है, तो शिक्षा के लिए गीता शास्त्र पढ़ना पढ़ाना चाहिए।

यदि अपने आप को प्रत्यक्ष मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार जानते हो। उपनयन से रहित तीक्ष्ण बुद्धि युक्त द्विजाति हैं। तो वह उपनीत होकर श्रवण कर सकता है। इस गीता शास्त्र को शिक्षा के लिए पढ़ना चाहिए, किन्तु जड़, अन्धा, बहरा, लूला, शौच से रहित,

वेद शास्त्रादि का उपहास करने वाला, भस्म, रुद्राक्ष तथा शिवलिंग से द्वेष करने वाला, अनधिकारी है। हे राजन्! जो मुझ से, गुरुओं से पाशुपत व्रत से, विष्णु से द्रोह करते हैं। वह सौ करोड़ जन्मों में भी मुक्त नहीं हो सकते। जन्म मृत्यु से रहित विष्णु और शिव से द्वेष करने वाले पापी लोग अज्ञान सागर में पड़े रहते हैं। यह बृहत् नारद पुराण में कहा है। कल्प भेद से कभी ब्रह्मा से विष्णु तथा रुद्र का जन्म है। किसी कल्प में विष्णु से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। किसी कल्प में नारायण से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा से रुद्र उत्पन्न हुए। अनेकों कल्पों में ब्रह्मा विष्णु तथा शिव एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं, किन्तु तीनों के भक्त आपस में लड़ते हुए, यह उत्तम है, यह नहीं। इस प्रकार एक दूसरे को जीतने की इच्छा से भजते हैं। इन तीनों के भक्त जो एक-दूसरे से द्वेष करते हैं। वे मरने के बाद निश्चय ही राक्षस होते हैं। इसमें संदेह नहीं है। वायु पुराण में कहा है–

ब्रह्म नारायणौ पूर्वम्रुद्र कल्पान्तरे पुरा।
कल्पान्तरे तथा ब्रह्म रुद्र विष्णू जजानह॥
विष्णुः कल्पान्तरे तद्वद् ब्रह्माणमसृजत् पुनः।
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्राह्मणं च पुनर्भवः।
एवं कल्पेषु बहुषु ब्रह्म विष्णु, महेश्वराः।
परस्परस्माज्जायन्ते परस्पर जयैषिणः।
अयं परस्त्वय नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचाश्च न संशयः।

इन श्लोकों का अर्थ ऊपर दिया जा चुका है। बृहद् नारद पुराण में भी कहा है।

युगान्ते जगदत्त्येतद्रुद्र रूपधरो हरिः।
रुद्रो वै विष्णु रूपेण पालयत्यखिलं जगत्।
हरि रूपधरो लिङ्गो लिङ्ग रूपधरो हरिः।
ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृत्यापमश्नुते॥
हरि वंशे-अहंत्वं सर्वगोदेवस्त्वमेवाहं जनार्दन।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैजगत्पते॥

त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तां मम गोपते।
यश्च त्वां द्वेष्टि गोबिंद स मां द्वेष्टि न संशयः॥

युग के अंत में भगवान् रुद्र हरि का रूप धारण कर जगत् का संहार करते हैं। रुद्र भी विष्णु रूप से जगत् का पालन करते हैं। हरि शिव का रूप तथा शिव हरि का रूप धारण करते हैं। इन दोनों में थोड़ा भेद करने वाला भी पाप को प्राप्त करता है। हम दोनों में ऐसा भेद नहीं है। जैसे शब्दार्थ में भेद नहीं है। ऐसे हम दोनों में भेद नहीं है। हे गोविन्द! संशय नहीं। इस प्रकार के करोड़ों प्रमाणों से विष्णु, शिव में अभेद सिद्ध होता है, किन्तु मध्व, वैष्णव, काटर, माठर आदि श्रुति स्मृतियों की कल्पना करके शिव की निंदा करते हैं। वैसे ही वेद सिद्धान्त का खण्डन करने वाले शैव, विष्णु की निन्दा करते हैं। एक दूसरे के इष्ट की निंदा करने वाले वैष्णव तथा शैव दोनों ही नरक को प्राप्त करते हैं। इन प्रमाणों के अतिरिक्त भविष्य पुराण के भविष्य पर्व के अन्त में कलियुग के अन्त में भगवान् कल्कि के रूप में अवतार लेकर कलियुग तथा दुष्टों का विनाश करेंगे। महाराज देवापि, मरुत, सप्त ऋषियों देवताओं दण्डी स्वामी के रूप में आए, सत्य युग तथा धर्म, हनुमान, परशुराम जी, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि को सम्बोधित करते हुए कहेंगे। हे देवो! तथा ऋषियों जिस कल्प में विष्णु भगवान् परम पुरुष के आसन पर बैठतेहैं तब विष्णु से सम्पूर्ण देवताओं की उत्पत्ति होती है। जब शिव बैठते हैं,तब शिव से जिस कल्प में ब्रह्मा बैठते हैं उस कल्प में ब्रह्मा से। जिस कल्प में देवी बैठती है, उस कल्प में देवी से। उसी प्रकार गणेश, अग्नि, सूर्य, शक्ति जो-जो परम पुरुष के आसन पर होता है, उसी से जगत् उत्पन्न होता है। उसी में रहता तथा लीन होता है।

अनेकों कर्मों में आसक्त तथा शिव ज्ञान से रहित संसारी जीव मुक्त नहीं होते। पंच देवोपासक, शाक्त देवी के उपासक, शैव शिव भक्त, वैष्णव विष्णु भक्त, सौर सूर्य तथा गाणपत्य गणेश भक्त, यह सब दो प्रकार के होते हैं-१. वैदिक २. अवैदिक। वैदिक भक्त वेद मंत्रों के विधि विधान से पूजन करते हैं। सात्विक पदार्थों से पूजन करते हैं। किन्तु जिन को वेद मंत्रों का अधिकार नहीं है। शूद्र तथा वर्ण संकर वे मद्य मांस आदि

से पूजन करते हैं, किन्तु द्विजातियों को रजो गुणी, तमोगुणी पदार्थों से पूजन नर्क का साधन है। पाशुपत शैव, विभूति, रुद्राक्ष धारण करें। पंचाक्षरी मंत्र का जप करें। शिव तथा विष्णु दोनों की भक्ति-मुक्ति दायिनी है। यदि इसके विपरीत विष्णु भक्त शिव निन्दा करता है या शिव भक्त विष्णु निन्दा करता है, तो दोनों नर्क को प्राप्त करते हैं। यह निश्चित सिद्धान्त है। क्षेत्रों में वास भी मुक्ति का साधन कहा है। अविमुक्त क्षेत्र काशी, पुण्डरीकपुर, श्री शैल पर्वत, व्याघ्रपुर, इन चारों क्षेत्रों में अधिकारी भेद से संन्यासियों के प्रति प्रणव तथा चारों वेदों के महावाक्यों का उपदेश करते हैं (ऋग्वेद का प्रज्ञानं ब्रह्म, शुक्ल यजुर्वेद का अहं ब्रह्मस्मि, कृष्ण यजुर्वेद का सोऽहमस्मि, सामवेद का तत्त्वमसि, अथर्व का अयमात्मा ब्रह्म) ये तारक मंत्र हैं। राम भक्तों के लिए राम मन्त्र, शाक्तों के लिए नर्वाण मन्त्र, शैवों के लिए पंचाक्षरी आदि जैसा कि पीछे विस्तारपूर्वक उल्लिखित है। काशी में मरने वाले पापियों को भैरवी यातना के बाद उपदेश प्राप्त होता है। **''यातनान्ते दिशेन् मतिम्''** किन्तु निष्पापों को प्राण निकलने के समय उपदेश प्राप्त होता है। किन्तु किसको तीर्थ यात्रा या क्षेत्र वास का फल प्राप्त होता है इस पर कहते हैं-

यस्य हस्तौ च पादौच मनश्चैव सु संयतम्,
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥

जिसके दोनों हाथ पैर और मन संयत हैं, विद्या तप तथा कीर्ति युक्त है अर्थात् दम्भ रहित है। उन्हें तीर्थ का फल प्राप्त होता है। पापियों के लिए काशी देश कीकट देश के समान तथा गंगा अंगार वाहिनी है। (काशी खण्ड)

उपनीत ब्राह्मण का ही वैदिक कर्मों में अधिकार है क्योंकि व्याघ्रपाद ने कहा है, **''कृत चौलस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च। स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत्''** जिसका मुण्डन संस्कार हो गया है। वे जलदान, पिण्डदान तथा स्वधाकार का प्रयोग तो कर सकते हैं, किन्तु वेदाध्ययन नहीं कर सकते। उक्त वचनानुसार, ऐसे अनुपनीतों का वैदिक कर्म में अधिकार नहीं है, किन्तु नाम संकीर्तन तथा ध्यान के अधिकारी हैं। ध्यान करने वाला समस्त पापों से छूट जाता है शोक, भय, अथवा किसी भी परिस्थिति में नाम चिंतन करने वाला समस्त पापों से छूट जाता है। अन्त काल में

रुद्राक्ष विभूति धारण करने वाले के पास यमदूत नहीं आते। बिल्ब मूल की मिट्टी को शरीर में लगाकर जो प्राण त्याग करता है। उसे भी यम यातना नहीं भोगनी पड़ती है।

भगवान् राम ने पूछा, हे विभो! कहां कहां पूजा करने से आप प्रसन्न होते हैं? शिव जी ने उत्तर दिया, मिट्‌टी, गोबर, भस्म, चन्दन, लकड़ी, पत्थर, लोहा, कांस्य आदि की शिवलिंग की प्रतिमा बनाकर पूजन करने से कोटि गुणा फल होता है। मिट्टी, लकड़ी, लोहा, कांस्य, पत्थर की प्रतिमा इच्छित फल देती है। आयु, लक्ष्मी, कुल वृद्धि, धर्म की प्राप्ति, बिल्ब वृक्ष में उसके फल से पूजन करने से होती है–"**परां श्रियमिह प्राप्य मम लोके महीयते। बिल्व वृक्षं समाश्रित्य यो मंत्रान् विधिनाजपेत्. एकेन दिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भेवत्।**" जो बिल्व वृक्ष का आश्रय लेकर विधिपूर्वक मंत्र का जप करता है। वह परम लक्ष्मीवान् होकर मेरे लोक को प्राप्त करता है। यह केवल एक दिन के जप से पुरश्चरण का फल प्राप्त होता है–जिस मन्त्र में जितने अक्षर होते हैं उतने लाख जप करने से पुरश्चरण होता है। जो बिल्व वन में कुटी बनाकर मंत्र जप करता है। उसे जप मात्र से ही मंत्र सिद्ध हो जाता है। अर्थात् उसे दशांश हवन, तर्पण, मार्जन आदि की आवश्यकता नहीं रहती।

उपसंहार–भगवान् शंकर कहते हैं कि किसी भी मंत्र का जप ब्राह्य मुहूर्त से लेकर मध्यान्ह पर्यन्त करना चाहिए। इससे अधिक करने से पुरश्चरण निष्फल हो जाता है। यह काम्य कर्म की विधि है। किन्तु निष्काम कर्म में सदैव जप करने से भी कोई दोष नहीं होता। जो मनुष्य अधिकारी भेद से षडक्षर मंत्र प्रणव सहित (उपनीत द्विज) जितेन्द्रिय होकर निष्काम जप करता है तथा अथर्वशीर्ष का पाठ करता है। हे रघुत्तम! वह इस शरीर में रहते हुए शिव रूप ही है और अन्त में कैवल्य प्राप्त करता है इस शिव गीता का जो नित्य पाठ करता है, या सुनता है, वह संसार से मुक्त हो जाता है। इस गीता को सुनकर भगवान् राम ने विधिपूर्वक शिव का पूजन किया और श्री राम के देखते-देखते ही भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये।

सूत जी कहते हैं हे ऋषियो! इस शिव गीता को जो पढ़ता या सुनाता है वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

व्यास जी कहते हैं कि इस प्रकार सूत पुत्र ऋषियों के प्रति शिव गीता सुनाकर मौन हो गये। ऋषि भी सन्तुष्ट होकर सूत जी की प्रशंसा करते हुए गोमतीतट पर सन्ध्योपासना करने चले गये।

इस प्रकार पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में शिव गीता के रूप में सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।

॥ चौवनवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ पचपनवां अध्याय प्रारम्भ ॥

सूत विषयक शंका–क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न सन्तति सूत कही जाती है। इस जाति के लोग राजाओं की विरुदावली का बखान करते थे। एवं सारथि का कार्य करते थे। यह शूद्र जाति में माने गये। इनका व्यास गद्दी पर बैठकर ऋषियों को पुराण सुनाने का अधिकार नहीं; किन्तु इन्होंने व्यास जी से इतिहास पुराण का अध्ययन करके व्यासासन पर बैठ कर ऋषियों को पुराण सुनाये; इससे सिद्ध होताहै कि प्रत्येक जाति का व्यासासन पर बैठकर पुराण सुनाने का अधिकार है। यदि कहो कि यह दिव्य सूत थे इसलिए इनका व्यासासन पर अधिकार है, तो यह कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि साधारण सूत समझ कर ही बलराम ने उन्हें मारा। यह कथा प्रसंग श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में है। इससे सिद्ध होता है कि सभी व्यास गद्दी पर बैठ सकते है। **समाधान**–वेदादि ग्रन्थों में दो प्रकार के सूत कहे गये हैं। एक दिव्य सूत, जो कि इन्द्रलोक या ब्रह्मलोक में यज्ञकुण्ड से प्रकट हुए। यह असाधारण सूत थे। विष्णु पुराण के अनुसार यह १. महाराज पृथु के यज्ञ में हवन कुण्ड से प्रकट हुए थे। हरिवंश पुराण में लिखा है, **"अग्निकुण्ड समुद्भूतः सूतो निर्मल मानसः।"** निर्मल मन वाले पौराणिक सूत अग्नि कुण्ड से उत्पन्न हुए। इसकी टीका में स्वामी नीलकण्ठ जी लिखते हैं, **"पौराणिकप्रसिद्धे रग्निजोलोमहर्षणः। तस्य पुत्रः सौतिः उग्रश्रवा, नतु ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतः। इति स्मृत्युक्तः। तद्धितानर्थक्या पत्तेः।"** प्रसिद्ध पौराणिक सूतलोमहर्षण नाम वाले अग्नि से पैदा हुए। उनके पुत्र उग्रश्रवा सौति कहे गये। यह सूत क्षत्रि द्वारा ब्राह्मणी से उत्पन्न नहीं हुए। इसमें सौति शब्द से जातीय सूत

सिद्ध नहीं होते। जैसे ब्राह्मण का पुत्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय का क्षत्रिय, वैश्य का वैश्य कहलाता है। ब्राह्मण पुत्र को कोई ब्राह्मणि नहीं कहता। यदि यह सूत जाति के होते, तो सूत ही कहे जाते। किन्तु महाभारत में लोम हर्षन के पुत्र उग्रश्रवा के लिए। 'सूत उवाच' न आकर 'सौतिरुवाच' आया है। इस सूत की दिव्य उत्पत्ति, ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के ब्रह्म, खण्ड में, शिव पुराण की वायवीय संहिता में वायु पुराण में भी कही है।

वैन्यस्यतु पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः।
सुत्यायामभवत् सूतः प्रथमं वर्ण वैकृतम्॥
ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः युक्तं बृहस्पतेः।
जुहावैन्द्राय देवेन तथा सूतोव्यजायत॥
शिष्य हब्येन संपृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः।
अधरोत्तर चारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम्॥

(१-३३ से ३६ तक)

वेन के पुत्र पृथु के यज्ञ में प्रथम वर्ण की विकृति होने से सूत जी का जन्म हुआ। इस यज्ञ में शिष्य इन्द्र की हवि से बृहस्पति गुरु की हवि दब गई। यहां पर सुत्या का अर्थ यज्ञ कुण्ड है। आहुति विलोम हो जाने से वर्ण की विकृतता हुई। भाव है कि देवलोक में भी चार वर्ण हैं। बृहस्पति ब्राह्मण इन्द्र क्षत्रिय माने गये हैं।

"स वाएष ब्राह्मस्यैव यज्ञः। यद्एतेन बृहस्पतिरयजत्। ब्रह्म हि बृहस्पतिः। ब्रह्म हि ब्राह्मणः। अथो राजन्यः (क्षत्रियस्य) (यज्ञः) यदेतेन इन्द्रोऽयजत्। क्षत्रंहि इन्द्रः। क्षत्रं राजन्यः।" (५/१/१/११)

तब क्षत्रिय वर्ण इन्द्र के चरु से, बृहस्पति के चरु के दब जाने से, उसकी संकरता से उत्पन्न सूत क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत के समान हो गया। सूत जाति की उत्पत्ति इस प्रकार से कही गई है। इन प्रमाणों से लोमहषर्ण सूत लौकिक सूत न होकर दिव्य सूत सिद्ध होते हैं। ऊपर के संस्कृत गद्यांश का अर्थ। ब्राह्मण का इस ब्राह्मण के यज्ञ से बृहस्पति का यजन हुआ। यहां बृहस्पति ही ब्राह्मण है। ब्राह्मण को ब्रह्म भी कहते हैं। राजा को क्षत्रि भी कहा है। क्षात्र यज्ञ से इन्द्र का यजन किया। श्री सनतानधर्मालोक तृतीय पुष्प पृ० सं० ३००-३०१॥

एक बार देव लोक में देवर्षियों ने मिलकर यज्ञानुष्ठान किया, उस यज्ञ में दो प्रकार की समिधाएं रखकर अरणी मन्थन किया गया। एक शमी की, दूसरी पीपल की समिधा में वेद मंत्रों द्वारा ब्रह्म तेज का तथा शमी में क्षात्र तेज का आधान किया जाता है; किन्तु प्रारब्ध वशात् विपरीत हो गया अर्थात् पीपल में क्षत्रिय तेज और शमी में ब्रह्मतेज का आधान किया गया। उस याज्ञिक अग्नि से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। यह यज्ञ से प्रसूत होने के कारण सूत कहलाये। उसी वंश परंपरा में उग्रश्रवा तथा लोम हर्षण सूत हुए, क्योंकि वेदों में भगवान् के मुख से ब्राह्मण और अग्नि प्रकट हुए। अतः असाधारण सूत ब्राह्मण जाति में ही गिने जाते हैं। यदि वे साधारण सूत होते हैं ८८,००० कट्टर वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को मानने वाले ऋषिगण व्यास गद्दी पर कभी नहीं बिठलाते, परन्तु बलराम जी इस रहस्य को नहीं जानते थे। अतः धोखे में कुशों के प्रहार से नैमिषारण्य में उनकी हत्या कर दी। ऋषियों में हाहाकार मच गया, बलराम जी को समझाया कि वह दिव्य सूत हैं साधारण नहीं, तब उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ और उन्होंने कहा कि मैं इन्हें फिर से जीवित कर सकता हूं। उत्तर में ऋषियों ने कहा, पिता ही पुत्र रूप में अवतरित होता है। उनके पुत्र को व्यास गद्दी पर बिठाया। सूत जी की हत्या आषाढ़ शुक्ल द्वादशी को हुई थी। अतः द्वादशी को पुराण का वाचन नहीं होता है। ऋषियों की आज्ञा पाकर बलराम जी ने ब्रह्म हत्या की निवृत्ति के लिए उन्होंने फिर से तीर्थ यात्रा की, इसका विस्तार महाभारत, स्कन्द पुराण एवं पद्म पुराण में किया गया है।

पौराणिक सूत असाधारण सूत थे। यह बात भी पद्म पुराण के द्वादश स्कन्धात्मक भागवत पुराण के माहात्म्य में विष्णु ब्रह्मा के संवाद रूप में कही गई है। सूत जी शौनकादिक ऋषियों से कहते हैं अर्थात् भागवत का माहातम्य पद्म पुराण में दो बार आया है। पहला उत्तर खण्ड में छः अध्यायों में, तथा दूसरा ब्रह्मा विष्णु और सूत शौनक सम्वाद रूप में कहा गया है। इसमें ब्रह्मा जी ने भगवान् विष्णु से व्यास के लक्षण पूछे, उत्तर में भगवान् ने कहा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न उत्तम ब्राह्मण को ही कथा कहने का अधिकार दिया। विद्वान् होने पर भी अन्य जाति को अधिकार नहीं है। इसके सम्बन्ध में एक सूर्यरश्मि नामक राजा की कथा आई है। यह राजा सूर्य के समान तेजस्वी थे। इसलिए इनका नाम सूर्य रश्मि था।

वे देवगुरु तथा ब्राह्मणों के अनन्य भक्त थे। अनेकों निर्धन ब्राह्मणों की कन्याओं के विवाह में सहयोग दिया। किन्तु इन्हें अपनी विद्या का बड़ा अभिमान था। इन्होंने एक बार एक ब्राह्मण को व्यास गद्दी पर बिठाकर स्वयं नीचे बैठकर भागवत सुनना प्रारम्भ किया, परन्तु उस ब्राह्मण की कथा से इनको तथा अन्य श्रोताओं को संतोष नहीं हुआ और इन्होंने व्यासासन से उस ब्राह्मण को उतार दिया, स्वयं व्यास गद्दी पर बैठकर आरम्भ से अंत तक सम्पूर्ण भागवत सुनाया सभी को परम आनन्द प्राप्त हुआ। परन्तु व्यास रूप ब्राह्मण का अपमान करने के कारण मरने के बाद वह दूसरे जन्म में वैश्य हुए, पिछले जन्म के शुभ संस्कारों से उन्हें पिछले जन्म की याद बनी रही। जीवन पर्यन्त वह पेट का रोगी रहा, अनेकों उपचार करने पर भी उसका उदर विकार ठीक नहीं हुआ। ऋषियों से उपाय पूछने पर उन्होंने आज्ञा दी कि तुमने पूर्वजन्म में ब्राह्मण का अपमान किया था। अत: व्यास गद्दी पर ब्राह्मण को बैठाकर आद्योपान्त श्रीमद्भागवत का श्रवण करो, उन्होंने ऐसा ही किया। तब कथा के श्रवण से रोग मुक्त हुआ और वैकुण्ठ की प्राप्ति हुई। इसी प्रकरण में आगे कहा, सूत जी कहते हैं हे ऋषिगण ब्राह्मण से ही कथा सुननी चाहिए, ब्राह्मणेतर से सुनी हुई सार गर्भित कथा भी प्रहेलिका मात्र ही है अर्थात् जैसे पहेली मनोरंजन मात्र के लिए होती है। वैसे ही वह कथा भी है। सूत संहिता में भी कहा है। शूद्र के सम्बन्ध में कहते हैं कि कपिला गऊ का दूध पीने से, ब्राह्मणी से सम्पर्क करने से शालग्राम का पूजन करने तथा व्यासासन पर बैठकर कथा सुनाने से सत् शूद्र भी असत् शूद्र हो जाता है अर्थात् शास्त्रों में तीन प्रकार के शूद्र कहे गये हैं। १.सत् शूद्र, २. मध्यम शूद्र, ३. असत् शूद्र। सत् शूद्रों में बढ़ई, लोहार, स्वर्णकार, कहार आदि आते हैं। मध्यम शूद्रों में नाई, कुम्भकार आदि तथा असत् शूद्रों को अस्पृश्य शूद्र भी कहा जाता है। जिनके स्पर्श से वस्त्र सहित स्नान का विधान है। वे असत् शूद्र कहलाते हैं। सनातन धर्म में छुआछूत घृणा मूलक नहीं अपितु विज्ञान मूलक है, जैसे प्लेग, हैजा, टी०वी० आदि अछूत के रोगों के परमाणु वाले रोगी को छूने से, वस्त्र बर्तन आदि के छूने से रोग के कीटाणु निरोग व्यक्तियो में चले जाते हैं। वैसे ही काम, क्रोध, लोभ आदि आसुरी सम्पत्ति के परमाणु, जो कि किसी भी वैज्ञानिक यन्त्र से नहीं देखे जा सकते हैं, किन्तु ऋषियों ने उन परमाणुओं को अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा रूपी आध्यात्मिक यंत्र द्वारा देखा था।

आसुरी सम्पदा के परमाणुओं के समान ही शम, दम, तितिक्षा, दया, सन्तोष भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के परमाणुओं का भी संक्रमण सत्पुरुषों के शरीर के सम्पर्क से होता है। इसलिए विष्णु पुराण के तीसरे अंश में पराशर जी ने मैत्रेय से कहा है कि तीन वर्ष तक निरन्तर सत्पुरुषों का साथ करने वाला भी सत्पुरुष ही बन जाता है तथा तीन वर्ष तक दुर्जन का संग करने वाला दुर्जन हो जाता है। इससे स्पर्शास्पर्श वैज्ञानिक सिद्ध होता है। पौराणिक सूत ब्राह्मण सिद्ध होते हैं, ब्राह्मण जन्म से ही जगद्‌गुरु हैं।

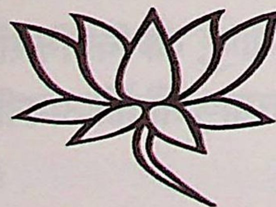
जिन ग्रन्थों में क्षत्रियों ने ब्राह्मण को उपदेश दिया है। उन्होंने व्यास गद्दी पर बैठकर गुरु बन कर नहीं, क्योंकि ब्राह्मण दान ले सकता है, क्षत्रिय दे सकता है। अतः उन्होंने ब्रह्मविद्या का दान ब्राह्मणों को किया है। इसकी पुष्टि बृहदारण्यक उपनिषत् में अजात शत्रु राजा तथा वालाकि ब्राह्मण के सम्वाद से तथा देवी भागवत में जनक शुकदेव संवाद से तथा योगवाशिष्ठ के मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण से स्पष्ट हो जाती है। इन ग्रन्थों में शुकदेव जी के आने पर महाराज जनक के अपने गुरु पुत्र शुकदेव जी को आया हुआ देखकर उनका गुरुवत् सम्मान किया एवं व्यावहारिक ज्ञानोपदेश किया पारमार्थिक नहीं।

महाराज पृथु ने अपने पुत्रों तथा प्रजा को खड़े होकर उपदेश दिया, बैठकर नहीं, उनके उपदेश में ब्राह्मण भक्ति कूट-कूट कर भरी है।

उपसंहार–हमने इस ग्रन्थ के सत्ययुग खण्ड के शिव चरित्र तथा उपदेश में अपनी मति गति के अनुसार वर्णन किया है। अब दूसरे परिच्छेद में दूसरे जगद्‌गुरु भगवान् विष्णु का जीवन चरित्र तथा उपदेश संक्षिप्त रूप में लिखेंगे।

इति श्री गुरुवंश पुराण शिवचरित्र प्रथम सत्ययुग खण्ड का ५५ अध्याय समाप्त हुआ।

॥ इति प्रथम परिच्छेद सम्पूर्णम् ॥



॥ अथ द्वितीयः परिच्छेदः ॥

प्रथमोऽध्याय–अथ विष्णु चरितम्

"मङ्गलाचरणम्"

यस्य स्मरणमात्रेण जन्म संसार बन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥१॥
नमः समस्त भूतानामादि भूताय भूभृते।
अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥२॥

अर्थ–जिनके स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य जन्म मरण रूपी संसार बंधन से छूट जाता है। उन प्रकर्षता पूर्वक जगत् को उत्पन्न करने वाले भगवान् विषणु को प्रणाम है।

समस्त प्राणियों के आदिभूत, सब का भरण पोषण करने वाले, अनेकों रूपों को धारण करने वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम करता हूं ॥२॥

कल्प भेद से, रुद्राष्टाध्यायी, नील लोहित रुद्रोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, अथर्वशीर्ष रुद्रोपनिषद्, शिव पुराण लिङ्ग पुराण, स्कन्द पुराणष शिव धर्मोत्तर पुराण, महाभारत तथा अनेक आगम ग्रन्थों में जिसे परम शिव कहा है, उसी को नारायणोपनिषद् में त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद्, महोपनिषद्, नृसिंहोपनिषद्, विष्णु पुराण, श्रीमद् भागवत पुराण, विष्णु धर्मोत्तर तथा महाभारत आदि ग्रन्थों में 'महाविष्णु' कहा गया है। उसी महाविष्णु को व्यास जी ने ब्रह्म वैवर्त पुराण में महाविराट् और विष्णु को (चतुर्भुजी रूप) क्षुद्र विराट् कहा है। उसी परमतत्त्व को अध्यात्म रामायण, महारामायण, अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण, वाल्मीकीय रामायण तथा रामचरित मानस में राम कहा गया है। उसी परमतत्त्वको ब्रह्माण्ड पुराण तथा गर्ग संहिता आदि ग्रन्थों में गोलोकवासी श्री कृष्ण कहा गया है। यह तत्त्व एक ही है। परन्तु तत्त्ववेत्ता एक ही तत्त्व के अनेक नाम, रूप तथा लीला में होने से अनेक रूपों में वर्णन करते हैं। **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** एक ही ब्रह्म को सद्ब्राह्मण बहुत प्रकार से वर्णन करते हैं। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति– विष्णु शब्द "विश् प्रवेशने" धातु से बना है अर्थात् जो जगत् की सृष्टि करके उसके

अणु अणु में व्याप्त है। उसे विष्णु कहते हैं, क्योंकि उपनिषदों में आया है कि परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में एक से अनेक होने का संकल्प किया, **''एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय'' ''स: तपोऽतप्यत् स: तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत् यस्य ज्ञान मयं तप:, यदिदं, किञ्च तद् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।''**

व्याख्या–उस सोपाधिक ब्रह्म ने सत्व प्रधान माया को अपने अधीन करके इच्छा की कि मैं एक से अनेक हो जाऊं। इच्छा–निराकार निर्गुण शुद्ध ब्रह्म में इच्छा नहीं हो सकती, किन्तु उसने सद् असद् से विलक्षण अनिर्वचनीय माया को अपने अधीन करके निष्काम होने पर भी सकाम के समान कार्य किया। किसने इच्छा की ऐसी शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि जिससे आकाशादि पंच महाभूत उत्पन्न हुए हैं। एक से अनेक कैसे हुआ? इस पर कहते हैं–जैसे जीव सोने से पूर्व जाग्रत अवस्था में एक होता है किन्तु स्वप्न में अनेक हो जाता है। तब उसने ज्ञान मय तप किया, शरीर इन्द्रियों को तपाने वाला तप परमात्मा का नहीं; किन्तु सृष्टि रचने से पूर्व पिछले कल्प के प्राणियों के शुभाशुभ मिश्रित कर्मों को ज्ञान रूप समाधि से प्रत्यक्ष किया कि किस प्राणी का पूर्व जन्म का कैसा कर्म है। नई सृष्टि के रचने से पूर्व विचार किया कि किस प्राणी को मुझे, देव, मनुष्य तिर्यक् तथा स्थावर योनियों में जन्म देना है। यही परमात्मा का ज्ञान रूपी तप है। ऐसा तप करके उसने इन सब की रचना की और उसमें प्रवेश किया। ईश्वर ने जगत् में ऐसे प्रवेश नहीं किया। जैसे हम एक कमरे से दूसरे कमरे में प्रवेश करते हैं। परन्तु जैसे कुम्हार मिट्टी का घड़ा बनाता है। घट की दीवारों की उपाधि से महाकाश घटाकाश में प्रवेश करता है; इस प्रकार उस सर्वव्यापी परमात्मा का सृष्टि में प्रवेश होता है; क्योंकि ब्रह्म देश काल वस्तु तीनों के परिच्छेद से रहित है। अणु, परमाणु में व्याप्त परम तत्त्व को ही विष्णु कहा गया है।

जैसे आकाश उपाधि भेद से भिन्न होने पर भी उपाधि रहित होने पर एक ही रह जाता है, वैसे ही सर्वव्यापी विष्णु भी एक होने पर भी उपाधि भेद से अनेक प्रतीत होते हैं। उसी विष्णु को समष्टि, स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों की उपाधि से प्रागभिन्न चैतन्य कहते हैं अर्थात् समस्त जड़ चैतन्य पदार्थों के बाहर अखण्ड–मण्डलाकार चैतन्य को प्रागभिन्न चैतन्य कहा है। वही जब माया को अधीन करके अष्टभुजी महाविष्णु के रूप

में तथा अपनी सच्चिदानन्द स्वरूपा अष्टभुजी महालक्ष्मी क रूप में महावैकुण्ठ में भक्तों को दिखाई देता है, वह कारण ब्रह्म कहा जाता है। कभी भक्तों की भावना के अनुरूप वैकुण्ठ में चतुर्भुजी विष्णु के रूप में, चतुर्भुजी लक्ष्मी के रूप में, कभी श्वेत द्वीप में, कभी क्षीर सागर में, कभी धरातल पर अपनी लीलीओं से मोहित करते हुए राम कृष्ण आदि के रूप में अवतरित होता है।

वही ब्रह्म जब जीव के अन्त:करण में पूर्व संस्कार, कर्म वासना एवं पूर्व प्रज्ञा के अधीन होकर जीव या चिदाभास के रूप में भासता है, उसे प्रत्यगभिन्न चैतन्य कहते हैं। 'ध्यान बिन्दूपनिषद्' में उसका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है–

"हृदि स्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूप ज्योतीरूपणुमात्रं वर्तते अस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं भवतिसर्वंजानाति, सर्वं करोति, सर्वमेतच्चरितमहं कर्त्ता, अहं भोक्ता, सुखी दु:खी काण:, खञ्जो, वधिरो मूक:कृश:, स्थूलो अनेन प्रकारेण स्वतन्त्र वादेन वर्त्तते, यदा पूर्वं दले विश्रमते, पूर्व दलं श्वेत वर्णतदा भक्ति पुरस्सरं धर्मे मतिर्भवति, यदा आग्नेय दले विश्रमते, तदा आग्नेय दलं रक्तं, वर्णं, तदा निद्रालस्ये मतिर्भवति॥ यदा दक्षिण दले विश्रमते तद् दक्षिण दलं कृष्ण वर्णं, तदा द्वेष कोपमतिर्भवति॥ यदा नैर्ऋत्य दले विश्रमते तद्वन्नैर्ऋत दलं नीलवर्णं तदा पाप कर्म हिंसा मतिर्भवति॥ यदा पश्चिम दले विश्रमते तत्पश्चिम दलं स्फटिक वर्णे तदा क्रीडा विनोदे मतिर्भवति॥ यदा वायव्य दले विश्रमते वायव्य दलं माणिक्यवर्ण तदा गमन चलन वैराग्य मतिर्भवति॥ यदोत्तर दले विश्रमते तदुत्तर दलं पीत वर्णं तदा सुख श्रृंगार मतिर्भवति॥ यदेशान दले विश्रमते तदीशान दलं वैडूर्य वर्णं तदा दानादि कृपा मतिर्भवति॥ यदा संधिसन्धिषु मतिर्भवति तदा वात पित्तश्लेष्मा महा व्याधि, प्रकोपो भवति॥ यदा मध्ये तिष्ठति तदा सर्व जानाति, गायति, नृत्यति, पठत्यानन्दं करोति॥ यदा नेत्र श्रमोभवति श्रमनिर्भरणार्थ प्रथम रेखा वलयं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते प्रथमरेखा वन्धूक पुष्प वर्ण तदा निद्रावस्था भवति। निद्रावस्था मध्ये स्वप्नावस्था भवति॥ स्वप्नावस्था मध्ये दृष्टं, श्रुतमनुमान, संभववार्त्ता इत्यादि कल्पनां करोति तदादिश्रमो भवति। श्रम निर्हरणार्थ द्वितीय रेखावलयं

कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते, द्वितीय रेखा इन्द्र कोप वर्ण तदा सुषुप्त्यवस्था भवति, सुषुप्तौ, केवल परमेश्वर सम्बन्धनी बुद्धिर्भवति, नित्य बोध स्वरूपा भवति पश्चात् परमेश्वर रूपेण प्राप्तिर्भवति॥ तृतीय रेखा वलयं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते तृतीय रेखा पद्मराग वर्णं तदातुरीयावस्था भवति तुरीये केवल परमात्म सम्बन्धिनी भवति, नित्यबोधस्वरूपा भवति तदा। शनैः शनैरुपरमे बुद्ध्या घृति गृहीतमात्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्तदा प्राणपानयौरैक्यं कृत्वा सर्व विश्वमात्मरूपेण लक्ष्यं धारयति। यदातुरीयातीतावस्था तदा सर्वेषा-मानन्द स्वरूपोभवति, द्वन्द्वातीतोभवति यावद्देह धारणा वर्त्तते तावत्तिष्ठति पश्चात्परमात्मस्वरूपेण प्राप्तिर्भवति इत्यनेन प्रकारेण मोक्षो भवतीदमेवात्म-दर्शनोपाया भवति॥ चतुष्पथसमायुक्तमहाद्वारगवायुना। सहस्थित-त्रिकोणार्ध-गमने दृश्यतेऽच्युतः॥ इत्यात्म निर्णयस्य्व्याख्या॥"

व्याख्या–हृदय में अष्ट दल कमल है। उसके बीच में गोलाकार रूप ज्योतिः स्वरूप अणुमात्र है। उसमें सब प्रतिष्ठित है। वह सबको जानता है, सब कर्मों का कर्त्ता है, यह सब उसी का चरित्र है, वह अन्तःकरण, इन्द्रिय, शरीर प्राणादि के धर्मों को अपने में मान कर मैं कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी हूं, काना, गंजा, बहिरा, गूंगा, कमजोर तथा बलवान् हूं। इस प्रकार स्वतन्त्र वाणी में प्रवृत्त होता है। वह जब पूर्वदल में विश्राम करता है। तब वह दल सफेद वर्ण का हो जाता है तब भक्ति सहित धर्म में बुद्धि होती है। जब वह आग्नेय दल में विश्राम करता है। तब वह दल लाल हो जाता है और निद्रा आलस्य में बुद्धि होती है। जब वह दक्षिण दल में विश्राम करता है। तब वह काले रंग का हो जाता है और तब द्वेष, क्रोध आदि की बुद्धि होती है। जब वह नैऋत्य दल (दक्षिण पश्चिम का कोना) में विश्राम करता है। तब वह दल नीले रंग का होता है और तब जीव की पाप हिंसा कर्म में बुद्धि होती है। जब पश्चिम दल में विश्राम करता है तब उसका रंग स्फटिक मणि के समान स्वच्छ हो जाता है तब खेल और विनोद में रुचि हो जाती है। जब वायव दल (पश्चिमोत्तर का कोना) में विश्राम करता है। तब दल माणिक्य वर्ण का हो जाता है और तब घूमने फिरने और वैराग्य में रुचि होती है। जब जीव उत्तर दल में विश्राम करता है, तब वह पीला हो जाता है, तब उसकी सुखोपभोग और शृंगार में रुचि

होती है। जब ईशान कोण (पूर्व उत्तर का कोना) में विश्राम करता है तब उसका रंग वैदूर्य वर्ण का होता है और तब जीव की इच्छा दान आदि करने की ओर कृपा करने की होती है। जब जीव की इन दलों की संधियों में मति होती है, तब वात, पित्त, कफ आदि महाव्याधियों से पीड़ित होता है। जब जीव मध्य कर्णिका में स्थित होता है। तब त्रिकाल दर्शी (सर्वज्ञ) होता है, तब गाता, नाचता, पढ़ता तथा आनन्द भोगता है। जब नेत्र देखते देखते थक जाते हैं, विश्राम करने के लिए प्रथम गोलाकार रेखा के बीच में स्थित होता है, तब उसका रंग बंदूक पुष्प के समान लाल हो जाता है। तब निद्रावस्था होती है। निद्रा के बीच में स्वप्नावस्था होती है। स्वप्नावस्था के बीच में देखे सुने अनुमान किये गये, विषयों का तथा कर्ता आदि की कल्पना करता है। तब इसे परिश्रम होता है। परिश्रम को दूर करने के लिए जब दूसरी गोल रेखा के बीच में लीन हो जाता है, तब दूसरी रेखा सात रंगों वाली हो जाती है और तब सुषुप्ति अवस्था होती है। यह (योगियों की) सुषुप्ति है। साधारण जीवों की सुषुप्ति से भिन्न है, क्योंकि सर्वसाधारण जीवों की सुषुप्ति जब वृत्ति अज्ञान में लीन होती है, तब होती है, किन्तु योगियों की सुषुप्ति योग निद्रा से होती है, केवल परमेश्वर सम्बन्धिनी बुद्धि से होती है। इस योग निद्रा में सोये हुए योगियों को नित्य बोध स्वरूप की प्राप्ति द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार होता है। इस योग निद्रा में ईश्वर कोटि के तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश चारों सनकादि ऋषि, देवर्षि, व्यासादि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि शयन करते हैं।

तात्पर्य यह है कि निद्रा दो प्रकार की होती है–१. साधारण निद्रा, २. असाधारण निद्रा।

१. साधारण निद्रा–इस निद्रा में सम्पूर्ण दृश्य का लय अज्ञान में हो जाता है।

२. असाधारण निद्रा–इस निद्रा को तुरीय के नाम से भी कहा जाता है, इसमें ज्ञान स्वरूप परमात्मा में दृश्य का लय हो जाता है। इसे योग निद्रा भी कहते हैं। यति धर्म निर्णय ग्रन्थ में कहा गया है कि, "**मोहेन विस्मृते दृश्ये सुषुप्तिरनुभूयते। बोधेन विस्मृते दृश्ये तुरीयमनुभूयते॥**" इस योग निद्रा में पांच का सोना प्रसिद्ध है यथा–

"अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दोमहाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥८॥"

इस योग निद्रा का लक्षण आगे दिया गया है।

न सन्ति यस्या निद्रायां जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तयः।
अवस्था त्रयरूपिण्यः सर्व द्वन्द्व विसर्जनात् ॥९॥
गुणातीततया तत्र तमोलेशो न विद्यते।
स्वयं प्रकाशरूपत्वादप्रकाशोऽपि नास्ति हि ॥१०॥
यत् प्राप्तये महापुण्यास्तपस्यन्ते तपस्विनः।
विचारयन्ति विद्वान्सो वेदान्तवचनानि च ॥११॥
न प्रयोजकता तत्र महदेतत्प्रयोजनम्।
पुरुषार्थस्वरूपत्वान्न कालक्षेपरूपिणी ॥१२॥
सुलभा शुद्धबोधानां दुर्लभां विषयात्मनाम्।
सहजामाधवादीनां सा निद्रा सुखदायिनी ॥१३॥

व्याख्या–यह निद्रा जीव को परमानन्द दायिनी है, इस निद्रा का लक्षण क्या है, इस पर कहते हैं, कि जिस निद्रा में तीन अवस्था रूपिणी (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) नहीं हैं तथा जो सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित है, तीन गुणों से अतीत है, जिसमें तमो गुण लेशमात्र भी नहीं है स्वयं प्रकाश रूप है, अप्रकाश रूप नहीं है, यह निद्रा किसको प्राप्त होती है इस पर कहते हैं, जिस निद्रा को प्राप्त करने के लिए महापुण्यशाली तपस्वी तपस्या करते हैं तथा विद्वान् वेदान्त के महावाक्यों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हैं। जिस योग निद्रा रूप प्रयोजन को प्राप्त करके अन्य पुरुषार्थ रूप प्रयोजन की आवश्यकता नहीं रह जाती। मोक्ष रूपी पुरुषार्थ स्वरूपा है, समय नष्ट करने वाली नहीं। यह निद्रा शुद्ध बोध वालों के लिए सुलभ और विषयी लोगों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। विष्णु आदि देवता और ऋषियों को अत्यन्त सुलभ है; यह निद्रा जीव का कल्याण करती है। (यति धर्म निर्णय, उत्तर भाग पृ० सं० ४३१)

अब पुनः ध्यान बिन्दूपनिषत् से उद्धृत किये गये अवशिष्ट अंश की व्याख्या प्रस्तुत है–

जब जीव तीसरी गोलाकार रेखा के बीच में लीन होता है तो वह रेखा लाल रंग की होती है। तब तुरीय अवस्था प्राप्त हो जाती है। तुरीय में केवल परमात्मस्वरूपिणी, नित्य, बोध स्वरूपा वृत्ति होती है और तब धीरे-धीरे आत्मा में मन को एकाग्र करके शनैः-शनैः बुद्धि को उपरत करके अनात्म-चिन्तन न करे। तब प्राण अपान को एक करके (कुम्भक प्राणायाम करके) सारे विश्व को आत्म स्वरूप में अनुभव करके देखता है। जब तुरीयातीत अवस्था होती है, तब सभी आनन्द स्वरूप का अनुभव करते हैं तथा द्वन्द्वातीत हो जाते हैं। उनका स्थूल शरीर जब तक रहता है, तब तक संसार में रहते हैं। स्थूल शरीर के साथ ही सूक्ष्म, कारण, शरीर का परित्याग कर देने से उन्हें परमात्म स्वरूप की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। यह योग दर्शन से मोक्ष के उपाय बताये गये हैं। चार महाद्वारों में स्थित वायु के द्वारा साढ़े तीन वलों से युक्त कुण्डलिनी शक्ति सहित परमपद को प्राप्त योगी फिर लौट कर नहीं आता। इस प्रकार ध्यान बिन्दूपनिषद् में आत्मा का निर्णय करते हुए आत्म दर्शन का उपाय बताया गया। अतः यदि मुमुक्षु चाहे कि विषयों में मन न जाये तो काले, नीले, लाल आदि रंगों द्वारा उत्पन्न काम, क्रोध, अभिमान, मनोरंजन आदि से मन को रोक कर ज्ञान वैराग्य द्वारा मध्य में स्थित पराग केसर में अवस्थिति प्राप्त होने पर जीव तुरीयातीत अवस्था का अनुभव करता है। इसका अभ्यास योग की सम्पूर्ण भूमिकाओं को प्राप्त हुए सिद्ध योगीश्वर के सान्निध्य में रह कर करना चाहिए, अन्यथा हानि की सम्भावना है। अपने आप हठ योग का अभ्यास अनाड़ी शिकारी द्वारा सिंह के शिकार के समान है, जैसे वह शिकारी सिंह को न मार कर सिंह द्वारा मारा जाता है। वही गति अपरिपक्व साधक की होती है।

क्योंकि जीव ईश्वर के प्रतिकूल स्वभाव वाला होने के कारण 'प्रत्यक् चैतन्य' कहलाता है। ऊपर निरूपाधिक तथा सोपाधिक ब्रह्म का वर्णन किया। माया से रहित निरूपाधिक ब्रह्म तथा माया विशिष्ट सोपाधिक ब्रह्म है। यह रूप रहित होने पर भी रूपवान् जैसा दीखता है। उसी ब्रह्म के काल की दृष्टि से अवतारों का वर्णन नीचे किया जाता है।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ द्वितीय अध्याय आरम्भ ॥

काल दृष्टि से विष्णु के अवतार

समय की दृष्टि से भगवान् के पांच प्रकार के अवतार होते हैं–१. परार्द्धावतार, २. कल्पावतार, ३. मन्वन्तरावतार, ४. युगावतार, ५. अष्टाविंशति युगावतार।

१. परार्द्धावतार पीछे बताया जा चुका है कि ब्रह्मा जी के वर्षमान से उनकी १०० या १०८ वर्ष की आयु होती है। वर्तमान ब्रह्मा का नाम विरिञ्चि है। इस समय यह पचास वर्ष के हो चुके हैं। इनकी आधी आयु को परार्द्ध कहते हैं। **"तत्पराख्यंतदर्द्ध परार्द्धमभिधीयते"** और पूरी आयु को पराख्य कहते हैं। इन दोनों परार्द्धों में भगवान् वराह के दो अवतार हुए। प्रथम परार्द्ध के आदि में ब्रह्मा की उत्पत्ति के अनन्तर नील वाराह कल्प में **नीलवाराह** का अवतार हुआ। ब्रह्मा की नासिका के छिद्र से नीलवाराह शिशु का अवतार हुआ और उनके देखते–ही–देखते पर्वताकार हो गया और हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी को जल पर स्थापित किया। इन्हीं की ऋषियों ने यज्ञवाराह के रूप में स्तुति की, यह ग्राम सूकर नहीं थे, किन्तु जंगली शूकर थे।

शंका–विष्णु ने सर्वशक्तिमान् होकर भी ऐसी योनियों में क्यों अवतार लिया?

समाधान–ईश्वर सत्य संकल्प हैं, अपनी शक्ति से जैसा चाहे वैसा रूप बना सकते हैं. अथवा ज्ञानशक्त्यवतार भगवान् वेद व्यास जी ने मन्द बुद्धि वाले द्विजातियों, स्त्री तथा शूद्रों का कल्याण करने के लिए वेद के गूढ़ रहस्यों का वर्णन रोचक कथाओं के माध्यम से किया है। वेदों में अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत तीन प्रकार के अर्थ हैं। वेदों में वाराह नाम की एक वायु कही है। योगियों ने समाधि में उसका आकार शूकर के समान प्रत्यक्ष किया है। वह पृथ्वी के दसों दिशाओं में स्थित होकर पृथ्वी की रक्षा करती है। इस वायु के द्वारा सृष्टि के आरम्भ से अंत तक उसकी रक्षा होतीहै, वायु के न रहने से पृथ्वी मुट्ठी भर मिट्टी के समान जल में घुल जाएगी, क्योंकि पृथ्वी की अपेक्षा जल दस गुणा है और इस प्रकार वाराह वायु भूमण्डल को धारण किये हैं। अथवा आजकल के वैज्ञानिक पृथ्वी को आग का गोला कहते हैं। इसका भीतरी भाग आज भी गरम है, जो लावा के रूप में निकल कर ज्वालामुखी के रूप में देखे जाते हैं।

पृथ्वी जल जानी चाहिए, किन्तु वाराह वायु जलने से पृथ्वी की रक्षा करती है। हमारे पुराण आदिशास्त्रों की तीन प्रकार की भाषा है–१. समाधि भाषा, २. आध्यात्मिक भाषा, ३. लौकिक भाषा। भगवान् का सर्वप्रथम अवतार नील वाराह के रूप में होने के कारण प्रथम–कल्प नीलवाराह कल्प कहा गया है। २. श्वेत वाराह अवतार–जब ब्रह्मा जी पचास वर्ष के हो चुके। इक्यावनवें वर्ष का प्रथम दिन आरम्भ हुआ। तब उनकी प्रार्थना से भगवान् ने श्वेत वाराह के रूप में अवतार धारण किया। अतः यह कल्प श्वेत वाराह कल्प के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रह्मा जी के पूरे दिन का नाम कल्प है इसमें १४ मनु १४ इन्द्र और १४ सप्तर्षि बीत जाते हैं, इस समय सातवें वैवस्वत मनु हैं। सूर्य का नाम विवस्वान् है, उनके पुत्र होने के कारण मनु को वैवस्वत कहते हैं। इस मन्वन्तर के २७ महायुग बीत चुके हैं और अट्ठाइसवां कलियुग चल रहा है। चारों युग के समूह को महायुग कहते हैं। चूंकि यह दोनों अवतार कल्प भर में दो ही होते हैं। अतः इसे परार्द्धावतार कहते हैं। कुछ पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य कल्पों, मन्वन्तरों या युगों में वाराहावतार नहीं होता है, क्योंकि भगवान् की लीला इदमित्थं, निश्चित रूप से किसी ने नहीं कही है। यह अत्यन्त दुर्ज्ञेय विषय है। अनेकों कारणों से पुराणों में मतभेद है।

२. कल्पावतार–पुराणों में कई जगह 'कल्प भेदानुसारतः' कहा है, तुलसीदास जी ने मानस में भी **"कल्प भेद हरिचरित सुहाये भांति अनेक मुनीसन गाये, कल्प कल्पप्रतिप्रभु अवतरहीं"** आदि प्रमाणों के अनुसार भगवान् के कुछ कल्पावतार होते हैं, जैसे नर नारायण का अवतार, कल्प पर्यन्त तपस्या करने के लिए हुआ। कल्प का परिमाण प्रथम परिच्छेद शिवचरित्र में बता चुके हैं। राम के कल्पावतार के सम्बन्ध में एक कल्प में स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की तपस्या से दशरथ और कौशल्या के रूप में दूसरे जन्म में हुए। किसी कल्प में कश्यप अदिति की तपस्या से, किसी कल्प में धर्मदत्त ब्राह्मण की वर प्राप्ति से रामावतार हुआ। ऐसी अनेकों कथाएं रामायणादि ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

३. मन्वन्तरावतार–एक मनु की आयु को मन्वन्तर कहते हैं। भागवत तथा विष्णु पुराणादि में भगवान् के मन्वन्तरावतार की कथाएं आती हैं, जैसे भागवत के आठवें

स्कन्ध में भगवान् ने हिरणी के गर्भ से हरि का अवतार लिया, पांचवें मन्वन्तर में उन्होंने अजित अवतार लेकर सागर मन्थन किया, छठे मन्वन्तर में गज ग्राह का उद्धार किया, सातवें में वामन के रूप में अवतार लिया और इस प्रकार अनेकों मन्वन्तरावतार भगवान् ने धारण किये।

४. युगावतार–२८वां युगावतार–काल भेद से भगवान् का एक अवतार अट्ठाइसवें चतुर्युगी के द्वापर के अन्त में कृष्ण के रूप में होती है। प्रत्येक द्वापर के अन्त में बलराम ही अवतार लेकर पृथ्वी का बोझ उतारते हैं। जैसे पच्चीसवें, छब्बीसवें और सत्ताईसवें द्वापर के अन्त में तथा आगे आने वाले उन्तीसवें द्वापर के अन्त में भगवान् बलराम जी ने ही अवतार लेकर भूभार हरण किया तथा अवतार लेकर पृथ्वी भार उतारेंगे, किन्तु अट्ठाइसवें द्वापर में कृष्ण सहित बलराम का अवतार होता है। भागवत में कहा है, **"एते चांशकलाः प्रोक्ताः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"** शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं हे राजन्! यह सब भगवान् के अंश या कला के अवतार हैं। श्री कृष्ण स्वयं भगवान् हैं अर्थात् पूर्णावतार हैं। इन्हीं से अवतारों का प्राकट्य होता है। लीला करके उसी में लीन हो जाते हैं। इन्हें अवतारी या अंशी कहा गया है। इसी मन्वन्तर के छप्पनवें द्वापर के अन्त में फिर कृष्णावतार होगा। जब पूर्ण ब्रह्म कृष्ण के रूप में अवतरित होता है। तभी भगवान् विष्णु श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास के रूप में अवतरित होते हैं। अन्य द्वापरों के अंत में ब्रह्मा, वशिष्ठ, वाल्मीकि वेद व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों का विभाजन, महाभारत की रचना, पुराणों की संक्षेप और ब्रह्मसूत्र की रचना करते हैं।

५. युगावतार–प्रत्येक युग में भगवान् के अवतार होते हैं। सत्ययुग में ४, त्रेता में ३, द्वापर में २, कलियुग में १

सत्ययुग के प्रथम चरण में मत्स्य, द्वितीय चरण में कूर्म, तीसरे में वाराह और चौथे में नृसिंह अवतार होता है। त्रेतायुग में १. वामन, २. परशुराम, ३. रामावतार। द्वापर युग में १. बलराम, २. कृष्ण। कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार।

दशो अवतारों की जन्म तिथियां–आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड के तीसरे सर्ग के आधार पर–चैत्र शुक्ल पंचमी को अपराह्न काल में भगवान् का मत्स्य का अवतार। ज्येष्ठ श्रेष्ठ शुक्ल द्वादशी–कूर्मावतार। चैत्र कृष्ण नवमी अपराह्न काल–

वराहावतार। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी सायं काल–नृसिंह अवतार। भाद्रपद शुक्ल द्वादशी मध्यान्हकाल–वामन अवतार, वैशाख शुक्ल तृतीय मध्यान्हकाल–परशुराम अवतार। अयोध्या में महाराज दशरथ के यहां चैत्र शुक्ल नवमी दोपहर में श्री रामावतार हुआ। श्रावण कृष्ण अष्टमी–दाक्षिणात्य पंचागों के अनुसार तथा उत्तर भारत के पंचांगों के अनुसार–भाद्रपद कृष्ण अष्टमी मध्यरात्रि–कृष्णावतार। पौष शुक्ल सप्तमी सायं बौद्धावतार–बुद्ध दो हुए हैं एक भगवान् बुद्ध और दूसरे गौतम बुद्ध। भगवान् बुद्ध देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर असुरों की वैदिक यज्ञों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने के लिए हुआ था, क्योंकि इसका अनुचित लाभ उठाकर वे देवताओं को त्रस्त करते थे। अत: देवताओं का कल्याण करने के लिए तुरन्त ही विष्णु भगवान् मुख पर पट्टी बांधे, सफेद वस्त्र धारण किये, मोर पंख का झाड़ू तथा चामर लिये हुए फूंक-फूंक कर पैर रखते हुए असुरों के बीच प्रकट हुए तथा वेद विरुद्ध उपदेश देकर तुरन्त अन्तर्धान हो गये।

किन्तु महात्मा बुद्ध का जन्म इस अवतार के कई वर्ष बाद अयोध्या के समीप कपिलवस्तु नामक नगरी में महाराज शुद्धोदन की पत्नी मायावती के गर्भ से हुआ। इनका जन्म वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को हुआ और इनका नाम सिद्धार्थ था। इनकी गणना विष्णु के अवतारों में नहीं आती है। पाली भाषा में लिखे अनेक बुधों के चरित्रों के अनुसार हिन्दी टीका सहित काशी से प्रकाशित है। इनके अनुसार वैशाख पूर्णिका को बुद्ध को वन बोधि वृक्ष के नीचे बोध हुआ था। अत: यह बोध जयन्ती है, बुद्ध जयन्ती नहीं।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद का द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का तृतीय अध्याय प्रारम्भ ॥

कल्कि अवतार कब होगा

माघ शुक्ला तृतीया सायं काल के समय जब कलियुग ८०० वर्ष शेष रहेगा तब देवताओं की प्रार्थना से भगवान् विष्णु सम्भल ग्राम में जो कि मुरादाबाद जिले में मुरादाबाद से २० मील की दूरी पर है में-ब्रह्मयशः के पुत्र विष्णु यशः की सुमति नाम की पत्नी से चौथे पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। इनसे पूर्व रवि कवि और हरि यह तीन भाई और होंगे। जन्म लेते ही इनके दर्शन के लिए आठ चिरंजीवी ऋषिगण पधारेंगे। परशुराम तथा कृपाचार्य जी अस्त्र-शस्त्र तथा वेदों का अध्ययन कराएंगे। शंकर जी की आराधना से उनके प्रसन्न होने पर नौ हाथ लम्बी तलवार, दत्तक नामक घोड़ा एवं तोता प्राप्त करेंगे। इनकी दो पत्नियां होंगी पहली पत्नी पद्मा, सिंहल देश के महाराज पद्माक्ष की पुत्री लक्ष्मी का अवतार होंगी और दूसरी पत्नी भूमि का अवतार जो पूर्व जन्म में सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा जन्म लेंगी। सत्राजित् दूसरे जन्म में हिमालय पर्वत पर विद्यमान भल्लाट नगर के राजा शशिध्वज होंगे तथा उनकी पत्नी सुशान्ता के गर्भ से सत्यभाम रमा नाम की कन्या के रूप में होगी। जब कलियुग को जीतकर अनेकों म्लेच्छों तथा यवनों का संहार करते हुए राजा पर आक्रमण करेंगे तब युद्ध में भगवान् के हाथ से राजा मूर्च्छित हो जाएंगे, सुशान्ता भगवान् की प्रार्थना करेगी-

"मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो, यदि तवाप्रियं कर्मणाचरेत्।
जहि तदात्मनःशत्रुमुद्यतं, कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वर॥४॥"

हे ईश्वर! सब के लिए दुर्जेय मेरे पति यदि कर्मों के द्वारा आपका अप्रिय करें, तो इस प्रकार शत्रुता का व्यवहार करने के लिए उद्यत मेरे पति को आप क्षमा न करें, बल्कि वध करें, अन्यथा आपके अनुकूल व्यवहार करने पर आप कृपा करें।

तब भगवान् कृपा दृष्टि से निहार कर उन्हें स्वस्थ कर देंगे और फिर वह राजा शशिध्वज अपनी कन्या को भगवान् कल्कि के साथ वैवाहिक विधि से दान कर देंगे। तब भगवान् सप्त ऋषियों नारदादि देवर्षियों के साथ कलाप ग्राम में पहुंचेंगे। वहां पर सूर्यवंशी महाराज मरुत् तथा चन्द्रवंशी महाराज देवापि को तप करते हुए देखकर उन्हें

दण्डवत् प्रणाम करेंगे। महाराज मरुत् भगवान् द्वारा परिचय पूछने पर वे अपने वंश का परिचय देते हुए उन्हें रामायण सुनाएंगे। महाराज देवापि अपने वंश का परिचय देंगे। उसी समय सत्ययुग तथा धर्म, दण्डी संन्यासी के रूप में प्रकट होंगे और अपना परिचय देंगे। दोनों राजाओं को अर्थात् मरुत् को अयोध्या में और देवापि को हस्तिनापुर में अभिषिक्त करके चले जाएंगे। भगवान् का यह अवतार ८०० वर्ष कलियुग में तथा २०० वर्ष सत्युग तक इस भूतल पर रहकर परम धाम सिधारेगा। इनके दो पुत्र जय और विजय होंगे, जो कि दिग्विजय में साथ ही रहेंगे।

यह चरित्र कल्कि पुराण से उद्धृत किया गया है।

शंका—बहुत लोग कहते हैं कि कल्कि अवतार हो चुका है और कुछ लोग कहते हैं आगे बहुत शीघ्र होने वाला है। अपने को भगवान् का अवतार मानने वाले कई लोग भगवान् होकर मर चुके हैं। कई अभी जीवित हैं, किन्तु उन भगवानों में भगवान् तो दूर रहे, भक्तों के लक्षण भी नहीं है। इन लोगों का कहना है कि कलियुग समाप्त होने वालाहै। शीघ्र ही सत्ययुग आने वाला है। उनका कहना है पाप कर्म करने से जैसे मनुष्य की आयु कम होती है वैसे ही कलियुग में पाप अधिक होने से आयु शीघ्र समाप्त हो जाएगी, कई मनचले लोग तो कल्प का प्रमाण केवल ५००० वर्ष ही मानते हैं। इत्यादि अनेकों भ्रामक तथा पुराण विरोधी प्रचार किये जा रहे हैं।

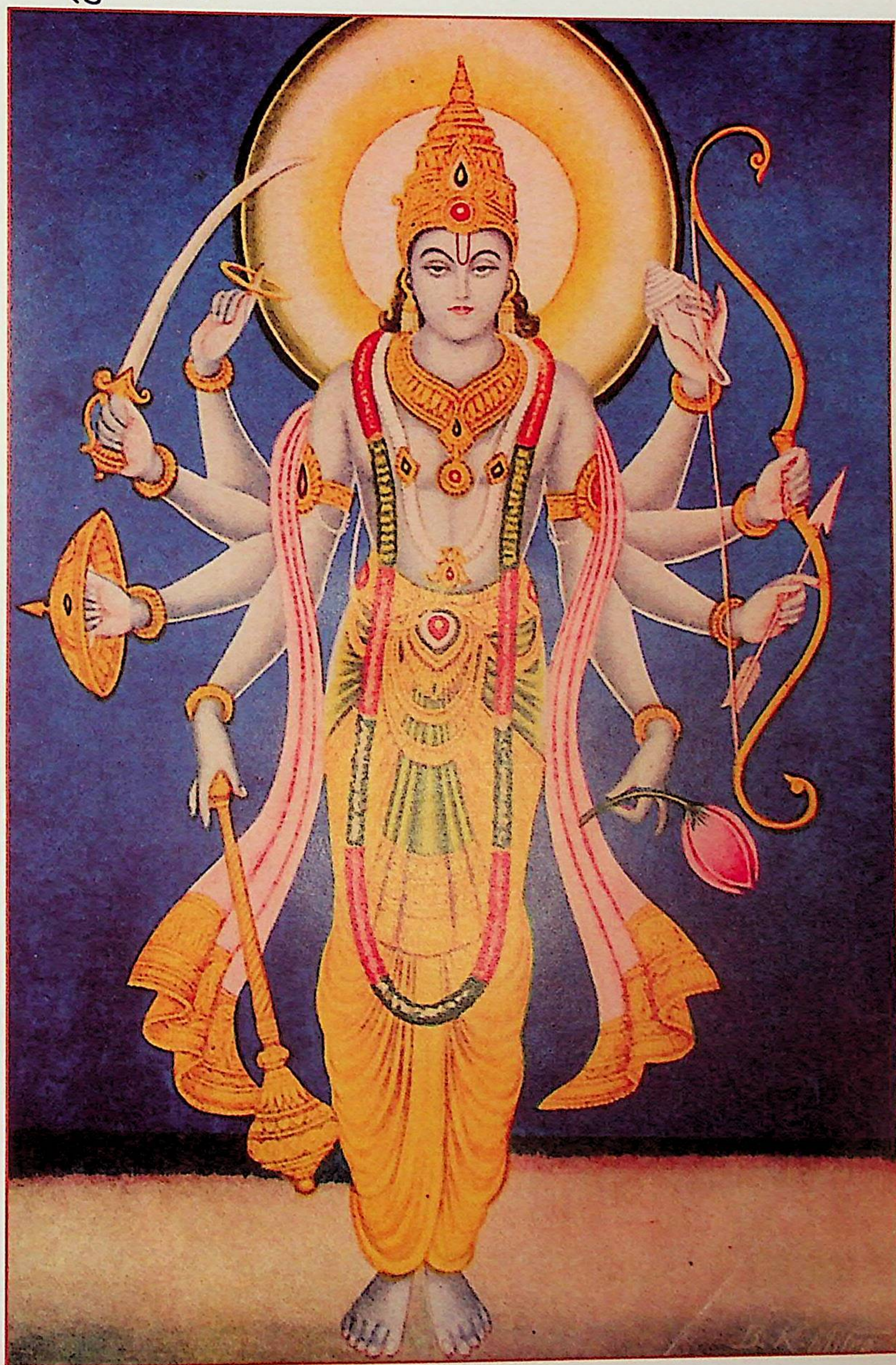
समाधान—व्यास जी द्वारा रचित पुराणों के पढ़ने से पता चलता है कि सत्ययुग १७,२८,००० हजार वर्ष, त्रेतायुग १२,९६,०००, द्वापर युग ८,६४,००० तथा कलियुग ४,३२,००० वर्ष का होता है। पाप होने पर भी कलियुग की आयु इतनी कम नहीं हो सकती, क्योंकि कलियुग एक बार ही नहीं आया। इसी मन्वन्तर में २७ कलियुग बीत चुते हैं। यदि प्रत्येक बार कलियुग इतना कम होता जाएगा तो मन्वन्तर का भी परिमाण कम हो जाएगा। एक मन्वन्तर जीवी मनु, सप्तऋषि तथा इन्द्र की आयु भी कम हो जाएगी। तब ब्रह्मा इत्यादि की आयु भी कम हो जाएगी। पाप कर्म करने से मनुष्य की आयु तो क्षीण होती है, किन्तु युगों की आयु कम नहीं हो सकती। यदि ऐसा होगा तो सृष्टि की व्यवस्था ही अस्त व्यस्त हो जाएगी।

२. कलियुग कब आरम्भ हुआ और अन्त कब होगा? जिस दिन भगवान् कृष्ण ने इस धराधाम का परित्याग करके परम धाम को गमन किया तभी से कलियुग का प्रवेश हुआ। अर्थात् महाभारत युद्ध की समाप्ति के ३६ या ३७ वर्ष बाद ईसा के ३१०२ वर्ष पूर्व। यह प्रमाण जगद्गुरु रत्न मालिका के सुषमा टीका में उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय के २३ से २८ श्लोक में भी देखा जा सकता है। यथा–

यदावतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरिः।
कृतभविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्विकी ॥२३॥
यदाचन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पती।
एकाराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत्कृतम् ॥२४॥
आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद्वर्ष सहस्त्रंतु शतं पंचदशोत्तरम् ॥२६॥
सप्तर्षीणांतु यौ पूर्वो दृश्येते उदितौ दिवि।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥२७॥
तेनैत ऋषयोयुक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतंनृणाम्।
तेत्वदीये द्विजाः काले अधुनाचाश्रिता मघा ॥२८॥
यदा मघाभ्योयास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः।
तदानन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिंगमिष्यति ॥३२॥

व्याख्या–जब धर्म पति भगवान् हरि कल्कि रूप में अवतरित होंगे तब सत्ययुग आएगा और प्रजा सात्विक होगी ॥२३॥

जब चन्द्रमा सूर्य तथा बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र के साथ योग होगा, तब सत्ययुग का आरम्भ होगा। यद्यपि प्रति बारह वर्ष बाद कर्क राशि पर बृहस्पति तथा सूर्य चन्द्रमा का पुष्य नक्षत्र के साथ योग रहता है, किन्तु यहां समेष्यन्ति इस वचन से तीनों का एक साथ प्रवेश होना इच्छित है ॥२४॥ हे राजन्! आपके जन्म से लेकर नन्द राजा के अभिषेक पर्यन्त एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष होगा इस पर श्रीधर स्वामी लिखते हैं कि



ब्रह्मलीन जगद्गुरु जी के इष्टदेव-श्री महाविष्णु



वास्तव में परीक्षित से लेकर नन्द तक का समय एक हजार पांच सौ वर्षों से कुछ न्यून होता है, क्योंकि परीक्षित के समकालीन मगध वंश के राजा मार्जारिसे लेकर रिपुंजय पर्यन्त बीस राजा एक हजार वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेंगे। जो वृहद्रथ राजा के वंश के भावी राजा एक हजार वर्ष तक राज्य करेंगे, तदनन्तर प्रद्योतन के वंशज एक सौ अड़तीस वर्ष तक तथा शिशु नाग के वंशज तीन सौ साठ वर्ष तक पृथ्वी का शासन करेंग। इसी स्कन्ध के पहले अध्याय से सिद्ध होता है कि परीक्षित से लेकर नन्दि वर्द्धन तक का राज्य काल दो हजार छः सौ तेराह वर्ष का होता है ॥२६ ॥

आकाश में सप्तर्षि मण्डल में स्थित पूर्व दिशा में उदित जो दो तारे दिखाई देते हैं। इन दोनों नक्षत्रों के बीच रात्रि में जो तीसरा तारा दिखाई देता है, अरुन्धती नामक है। यह सप्तर्षि मनुष्यों के एक सौ वर्षों तक एक नक्षत्र पर रहते हैं। तुम्हारे जन्म से लेकर आज तक मघा नक्षत्र पर है। इस पर श्रीधर स्वामी लिखते हैं रात्रि में शकटाकार सात तारों का समूह (सप्तर्षि मण्डल) में दिखाई देता है। इनमें जो सबसे ऊपर अग्रभाग में है वह मरीचि है, इसके बाद कुछ झुके हुए कंधे के समान दो तारे हैं। वे अरुधन्ती सहित वशिष्ठ हैं। उसके कुछ ऊपर मूलस्थानीय अंगिरा हैं। इसके बाद चतुष्कोणाकृति नक्षत्र मण्डल है। इसमें ईशान कोण में अत्रि, उससे दक्षिण में पुलस्त्य, उसके पश्चिम में पुलह तथा उत्तर में क्रतु हैं। इस प्रकार सप्त ऋषियों की स्थिति होने पर उनके बीच में उदय काल के पहले जो दो तारे पुलह और क्रतुनाम वाले दिखाई देते हैं। इन दोनों के पूर्व में दक्षिण उत्तर रेखा में समान देश में स्थित है। अश्विनी आदि नक्षत्रों में जो अन्यतम है। उससे युक्त यह नक्षत्र मनुष्य वर्षों के अनुसार एक सौ वर्ष रहते हैं। यह सप्तर्षि नक्षत्र तुम्हारे जन्म से लेकर आज तक मघा नक्षत्र में है, तात्पर्य यह है कि कलियुग का प्रवेश जब सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे तभी हुआ था ॥२८ ॥ यह सप्तर्षि जब मघा से पूर्वाषाढ़ में जाएंगे तब महाराज नन्द के राज्य काल से कलिवृद्धि को प्राप्त होगा ॥३२ ॥ उपर्युक्त वचनों से सिद्ध होता है कि जब से भगवान् श्री कृष्ण ने इस धराधाम का त्याग किया तब से ही कलियुग का प्रवेश हुआ और जब भगवान् कलिक का अवतार होगा तब कलियुग की समाप्ति होगी।

३. व्यास जी द्वारा रचित पुराणों में नवां भविष्यत् पुराण है, इसके भविष्य पर्व में (प्रतिसर्ग पर्व) में चारों युगों के राजाओं का वर्णन है। किसने कितने वर्ष राज्य किया तथा कौन राज्य कर रहा है और कौन करेगा, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। यद्यपि प्रत्येक पुराण में कलियुग के राजाओं का वर्णन आता है। परन्तु इस पुराण में विस्तार से चार लाख बत्तीस हजार वर्ष में होने वाले राजाओं का पूर्व जन्म की कथाओं सहित वर्णन हुआ है। इस पुराण में कही हुई घटनाएं आज तक अक्षरश: सही उतरी हैं। जैसे– महाराणा सांगा, महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान, शिवाजी, विक्टोरिया, पार्ल्यामेण्ट, मुहम्मद साहब, ईसा मसीह आदि का वर्णन आता है। इन्दिरा गांधी का नाम तो नहीं है, किन्तु लक्षणों से इनका भी परिचय मिलता है, प्राचीन काल में एक किन्नर पुत्री ने शिव जी की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया, उसने वर मांगा कि मैं अपने पुत्र पौत्रों सहित सुख समृद्धि से युक्त राज्य सुख भोगूं। तब शंकर जी ने कहा, "**इति श्रुत्वा शिव: प्राह गुरुण्डान्ते चभूतले। मध्यदेशे च ते राज्यं भविष्यति सुख प्रदम्।**" उनका वचन सुनकर शंकर जी ने कहा हे देवि! अंग्रेज़ों के शासन के अन्त में मध्य देश (भारत) में सुख देने वाला तेरा राज्य होगा।

इतना ही नहीं त्रिकाल दर्शी भगवान् व्यास की दृष्टि आधुनिक भाषाओं से भी ओझल नहीं हुई, वे कहते हैं कि कलिकाल का मानव रसना के वशीभूत हो जाएगा, मीठा तथा खटाई अधिक खाने से संस्कृत के शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पावेगा। अत: अठराह यवन भाषाओं की उत्पत्ति होगी। इनमें अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी, उर्दू ब्रज इत्यादि का नामोल्लेख किया है। प्रथम हिन्दी का उदाहरण दिया है–"**पानीयं च स्मृतं पानी, वुभुक्षा भूख उच्यते। पानीयं पापडी भाषा, भोजनं कक्वनं स्मृतम्॥ पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका। रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैवफर्वरी। षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया**" इत्यादि का प्रयोग भविष्य पुराण में देखा जा सकता है। इसी में आगे कहा है कि भारत के स्वतन्त्र होने के बाद विक्रमी सम्वत् २००५ से २२०५ तक दो सौ वर्षों में संसार को सुख नहीं मिलेगा। २०० वर्षों तक गणतन्त्र पद्धति रहेगी। उसके बाद फिर से राज्य तन्त्र आरम्भ होगा। उन सभी राजाओं के नामों का भी उल्लेख आता है। ये राजा लोग बारह सौ वर्षों तक शासन करेंगे। इनमें दो राजवंश होंगे, जिनमें एक के वंशज सात सौ वर्ष

और दूसरे के पांच सौ वर्ष राज्य करेंगे। इन बारह सौ वर्षों में महाराज परीक्षित के राज्य काल में जैसा समय तथा वर्णाश्रम व्यवस्था थी। वैसा ही सुकाल होगा। इसके पश्चात् इस समय से भी कई गुणा भयंकर कलियुग आयेगा।

कलियुग के चतुर्थ चरण में एक साल की मां तथा तीन साल की नानी होगी, मनुष्य ह्रस्व काय हो जाएंगे। आयु की चरम सीमा १५ या २० वर्ष होगी। मनुष्य इतना विचार हीन हो जाएगा कि जैसे पशुओं की नाद में (खुरली) चाराभर दिया जाता है और सभी पशु उसी में खाते हैं। उसी प्रकार सभी मनुष्य एक ही पात्र में भोजन करेंगे, उच्छिष्ट का कोई विचार नहीं करेंगे। किसी के पास किसी देवता की मूर्ति या चित्र नहीं मिलेगा तथा रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों का लोप हो जाएगा। एकमात्र सम्भल ग्राम वासी विष्णुयशः के यहां ही भगवान् शालग्राम की मूर्ति तथा चित्र गुप्त रूप से रहेंगे। तब कहीं भगवान् कल्कि का अवतार होगा।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कलियुग की समाप्ति में अभी ४,२७,००० वर्ष शेष हैं। किन्तु लोग मिथ्या प्रचार करके जनता को धोखा देते हैं, क्योंकि भविष्य पुराण में कहे हुये अनेकों राजा होंगे। भवगान् के लक्षण–विष्णु पुराण के छठे अंश में पराशर जी ने मैत्रेय के प्रति कहा है–

उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतनामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च सवाच्योभगवानिति॥

जो प्राणियों की उत्पत्ति तथा विनाश, प्राणियों की गति, अगति, सुगति, दुर्गति, परमगति आदि को जानता है अर्थात् कौन जीव कहां पर कब कैसे पैदा होगा, जन्म लेकर कैसा कर्म करेगा। सुख या दुख भोगेगा, मरने के बाद वह किस योनि में जाएगा। मनुष्य शरीर की प्राप्ति गति। नरक तथा पशु पक्षी, पेड़ पौधे में जन्म लेना, दुर्गति। स्वर्ग ब्रह्मलोकादि की प्राप्ति सुगति। परमपद की प्राप्ति–परमगति अथवा अगति जो ब्रह्म विद्या–अविद्या सांसारिक विद्या, वेदादि शास्त्रों से लेकर आज तक सम्पूर्ण कला कौशल अविद्या के अन्तर्गत आता है अथवा अज्ञानोपहित चैतन्य या अज्ञान विशिष्ट चैतन्य को अविद्या कहा है अथवा–भगवान् राम कृष्णादि का अवतार लेकर साधारण

बालकों के समान बाल लीला करते हुए अपने ही प्रतिबिम्ब के साथ खेलते खेलते डर जाना। यद्यपि भगवान् में तीनों कालों में अविद्या नहीं है। जैसे सूर्य में तीनों कालों में अंधकार नहीं है। फिर भी अज्ञानी जैसा नाटक करते हैं, जैसे सीता के वियोग में विलाप करते हुए राम का पशु पक्षियों, पेड़ लता तथा औषधियों से सीता का पता पूछना। इन विरहजन्य लीलाओं में भी भगवान् ने **''आत्मैवेदं सर्वम्, ब्रह्मैवेदम् सर्वम्''** ऐसा विलाप के ब्याज से ब्रह्म की सर्वरूपता का उपदेश किया है। ऊपर कहे गये लक्षण जिसमें पाये जाते हैं। उसे भगवान् कहते हैं।

भगवान् अजन्मा होने पर भी जन्मधारी के समान प्रतीत होते हैं। वेद कहता है, **''अजायमानो बहुधा विजायते''** भगवान् जन्म रहित होने पर भी वैष्णवी माया से जन्मधारी के समान प्रतीत होते हैं। यदि भगवान् वास्तव में जन्म लेते तो भगवान् में तीनों प्रकार (शुभ, अशुभ, मिश्रित) के कर्मों का भी आरोप करना पड़ेगा। अतः भगवान् माता-पिता के गर्भ में नहीं आते, अवतार होने से पूर्व ही वे अपनी योग माया को आज्ञा देते हैं। योग माया वायु के रूप में माता के गर्भ में प्रवेश करती है। तब क्रमानुसार अदिति रेणुका, कौशल्या, देवकी तथा सुमति के गर्भ में वायु भर जाती है। तब देवर्षि तथा देवता भगवान् की गर्भ स्तुति करते हैं। प्रकट होने के समय वह माया वायु के रूप में निकल जाती है और भगवान् चतुर्भुजी रूप से माता पिता को दर्शन देते हैं, यदि सर्व साधारण बच्चों की तरह भगवान् भी इसी रूप में नौ महीने माता के गर्भ में रहते, तो माता के उठते बैठने और कार्य करने में भगवान् के सुदर्शन , कौमुदकी, गदा, शंख तथा मुकुट की नोक आदि से माता के उदर में घाव हो जाता और माता की मृत्यु हो जाती। इसलिए इस रूप में भगवान् माता के उदर में प्रवेश नहीं करते वैसे तो निराकार रूप से भगवान् अणु अणु में व्याप्त हैं। यही भगवान् के अवतार की विशेषता है। वास्तव में भगवान् में देह देही भाव नहीं है। किन्तु माया के कारण प्रतीत होता है। इससे सिद्ध हुआ कि भगवान् का जन्म नहीं होता, किन्तु अवतरण होता है। जन्म लेने वाले की मृत्यु होती है चूंकि भगवान् का जन्म नहीं होता इसलिए मृत्यु भी नहीं होती है।

नकली भगवान्-आजकल के पैदा होकर मरे हुए भगवानों में तथा वर्तमान भगवानों में किसी में भी ये लक्षण नहीं पाये जाते। वे माता के उदर से नग्न पैदा हुए तथा

राम कृष्ण जैसा कोई चमत्कार नहीं दिखाया। किसी अवतार के जीवन में कहीं भगवान् को खांसी, जुकाम इत्यादि किसी प्रकार का कोई रोग नहीं हुआ, किन्तु आज के भगवान् सैंकड़ों रोगों से ग्रस्त पाये जाते हैं। भगवान् ने भक्तों की रक्षा की। आज के भगवान् अंगरक्षकों की सुरक्षा में चलते हैं। जो अपनी रक्षा नही कर सकता, वह देश धर्म तथा भक्तों की रक्षा कैसे करेगा। आधुनिक भगवानों में तो भगवद् भक्तों के भी लक्षण नहीं पाये जाते। उनके भक्तों में, व्यास, वाल्मीकि, पराशर, पाण्डव आदि कभी बीमार नहीं पड़े, किन्तु आज के भगवान् रोगी ही रहते हैं। अतः वे भगवान् नहीं हो सकते।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद में कालभेद से भगवद् अवतारों की पूर्णता नामक तृतीय अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ द्वितीय परिच्छेद का चतुर्थ अध्याय प्रारम्भ॥

कला भेद से भगवान् के अवतार–कला भेद से भगवान् के छः प्रकार के अवतार कहे गये हैं–

१. पूर्णतमावतार, २. पूर्णावतार, ३. विभूत्यवतार, ४. कलावतार, ५. अंशांशावतार, ६. आवेशावतार

१. पूर्णतमावतार–सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर जीव, ईश्वर तथा शुद्ध ब्रह्म सभी पूर्ण हैं, उतना ही नहीं बल्कि तिनके से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी पूर्ण हैं जैसा कि वेद में कहा गया है–

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥''

अदः का अर्थ होता है ईश्वर (परोक्ष) पूर्ण है। इदं = प्रत्यक्ष जीव यह भी पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जगत भी पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म की पूर्णता को लेकर जगत् की रचना के अनन्तर जो शेष बचता है। वह भी पूर्ण है। वह ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान के सम्बन्ध में कहा है, **''ज्ञानमेकंसदा भाति सर्वावस्थासु निर्मलम्। मन्दभाग्याः न**

जानन्ति स्वरूपं केवलं वृहत्।'' ज्ञान एक है वह सदा सभी अवस्थाओं में निर्मलता से प्रकाशित होता है। किन्तु मन्द भाग्य वाले पुरुष, अर्थात् मल विक्षेप आवरण से युक्त अन्तःकरण वाले परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप को नहीं जानते।

भाव यह है कि ब्रह्म का अविनाशित्व, ज्ञानत्व तथा परमानन्दत्व देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित, अनन्त, अपार है। इसी का नाम सच्चिदानन्दत्व है, किसी भी प्राणी में कम अधिक नहीं, जैसे महाकाश किसी में कम अधिक नहीं है। मेघाकाश में बादल के परिमाण का, मठाकाश में मकान के परिमाण का तथा घटाकाश में सीमित प्रतीत होता है। किन्तु सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने पर घट, मठ की दीवारों में तथा उनके अणु परमाणुओं के अन्तराल में जो खाली स्थान है वहां भी आकाश है। अर्थात् वह ठोस चट्टान तथा लोहे के गोले के अन्दर और बाहर भी व्याप्त है। इसी प्रकार ब्रह्म भी बाहर तथा भीतर व्याप्त है वह प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति से पहले तथा बाद में भी रहता है। ब्रह्म का बाध तथा नाश नहीं होता। जैसे उत्पन्न हुई या बनाई गई वस्तु का टूट फूट जाने पर नाश हो जाता है, परन्तु वस्तु के रहते भी वस्तु का बाध होता है। जैसे घोड़ा, विचार करके देखने पर उसके शरीर में कहीं भी घोड़ा पना नहीं है। कहीं उसका सिर, कहीं पीठ, कहीं कान आदि अंग है। सभी अंगों के मेल का नाम घोड़ा रखा गया है।

२. सीपी में चांदी की प्रतीति भ्रान्ति से होती है। आप जाकर ध्यान से देखने तथा उठाने पर सीपी में चांदी नहीं रहती, यह सीपी में चांदी का बाध है, परन्तु उतनी ही दूरी पर सूर्य की किरणें पड़ने पर चांदी के समान फिर चमकती है; किन्तु फिर वही व्यक्ति चांदी समझ कर लेने को नहीं दौड़ता। उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता को बोध हो जाने पर व्यवहार में जगत् में रहने पर भी जगत् की भ्रान्ति नहीं रहती। वास्तव में ब्रह्म ही वस्तु है। अन्य सब अवस्तु है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म जगत् जीव ईश्वर तथा माया के रूप में भी पूर्ण है। उसकी पूर्णता में कभी कमी नहीं होती, जैसे–महाकाश में अरबों खरबों बादल आ जाने पर बरसने या न बरसने पर महाकाश पूर्ण बना रहता है। इनकी उत्पत्ति तथा नाश में महाकाश में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि पूर्ण बना रहता है। इसी प्रकार चिदाकाश

रूपी ब्रह्म में माया से जगत् की उत्पत्ति तथा विनाश में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि पूर्ण बना रहता है।

अथवा जैसे अरबों खरबों शून्यों में अरबों खरबों शून्य जोड़ने-घटाने, गुणा या भाग करने पर शून्य ही रहता है। कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसी प्रकार ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होने से पूर्व सृष्टि काल में तथा जगत् के विनाश होने पर शुद्ध ब्रह्म में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म बौद्धों का शून्य है। यह तो समझाने के लिए दृष्टान्त दिया है। ब्रह्म पूर्ण है। अथवा ब्रह्म की पूर्णता के सम्बन्ध में इस प्रकार समझना चाहिए। ब्रह्म जादू की ऐसी अक्षय निधि पिटारी है, जिसमें पद्मों, नीलों, रुपये पद्मोंनीलों, बार निकलाने पर भी उतने ही बने रहते हैं। उनमें न्यूनाधिकता नहीं होती। अतः ब्रह्म तीनों कालों, सभी देशों तथा सभी वस्तुओं की सीमा से परे पूर्ण ही बना रहता है। यह सिद्ध हुआ।

जीव, जगत् ब्रह्म, पूर्ण होने पर भी जिस जीव को जितना बड़ा अन्तःकरण रूपी पात्र मिला है। उसमें उतनी मात्रा में ब्रह्म प्रकाशित होता है। जैसे गंगा जी में अथाह जल होने पर भी जिसके पास एक, दो, पांच, दस, चालीस आदि जितने लीटर का पात्र हो, उतना ही जल आ सकता है। वैसे ही ब्रह्म पूर्ण होने पर जिस जीव के पास जितना बड़ा अन्तःकरण है, उसमें उतनी मात्रा में ब्रह्म की चेतनता प्राप्त होती है। यह ब्रह्म परम ज्ञान स्वरूप तथा स्वयं प्रकाश है। उसका अंश होने के कारण जीव में भी वह सामर्थ्य है।

उसी ब्रह्म को वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में अनन्त कोटि नायक परात्पर विष्णु कहा है। वह परिपूर्णतम है। उसी के राम कृष्णादि अवतार पूर्णतम अवतार हैं। अर्थात् जिस कल्प में महाविष्णु ही जब राम कृष्ण के रूप में अनादि शक्ति सहित अवतार लेते हैं। वे राम कृष्ण के अवतार पूर्णतम हैं। उनके इशारे से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अनन्त कोटि ब्रह्मा, विष्णु, महेश जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हैं। ऐसा कोई क्षण खाली नहीं जाता, जिस क्षण में उनके रोम कूप से एक चिनगारी के समान प्रकाश पुञ्ज न निकलता हो और अति दूर जाकर ब्रह्माण्ड का रूप धारण न करता हो। कई ब्रह्माण्ड प्रलय के अनन्तर छोटी सी चिनगारी के रूप में उनके शरीर में लीन न होते हों। उन्हीं

विष्णु की अनादि शक्ति, महालक्ष्मी, सीता तथा राधा के रूप में अवतरित होती हैं। जिनके अंश से अनन्त श्री राम, कृष्ण, लक्ष्मी ब्रह्माणी तथा रुद्राणी उत्पन्न होती हैं। वह श्री राम कृष्ण का पूर्णतमावतार है। राम कृष्ण दोनों की कलाओं में कोई भेद नहीं है, क्योंकि भागवत में व्यास जी ने नवम स्कन्द में श्री राम के सम्बन्ध में कलेश शब्द का प्रयोग किया है तथा भगवान् कृष्ण को **"एते चांशकला: प्रोक्ता: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"** अन्य अवतार कलावतार है, किन्तु श्री कृष्ण भगवान् स्वयं अवतारी हैं। उनसे अवतार उत्पन्न होते और उनमें लय हो जाते हैं।

प्रश्न–आप का यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि कई ग्रन्थों में श्री राम को बारह कला तथा श्री कृष्ण को सोलह कला का अवतार कहा है। इस प्रकार कलाओं की दृष्टि से न्यूनाधिक प्रतीत होते हैं।

समाधान–ऐसी बात नहीं दोनों अवतार समान हैं, क्योंकि रामावतार सूर्य वंश में हुआ। सूर्य बारह कलाओं में पूर्ण होता है। अत: राम को बारह कला का अवतार कहा और कृष्ण का अवतार चन्द्र वंश में हुआ। चन्द्रमा सोलह कलाओं से पूर्ण होता है। अत: कृष्ण को सोलह कला का कहा गया। अत: इन कलाओं की न्यूनाधिकता में कोई पूर्णावतार और कोई अंशावतार नहीं हो सकता बल्कि दोनों ही पूर्णतमावतार सिद्ध होते हैं।

दूसरा युक्ति संगत समाधान–बाजार में कोई भक्त तौलकर मौसमी (मुसम्मी) या संतरा आदि खरीदे जो दोनों तौल में बराबर हो छीलने पर दोनों के भीतर एक में बारह एक में सोलह फांकें निकली हैं। बारह वाली में फांके बड़ी हैं सोलहवाली में छोटी हैं, किन्तु दोनों में रस बराबर मात्रा में है। छोटी या बड़ी फांके होने पर भी मौसमी दोनों बराबर ही है वैसे ही राम में बारह कला और श्री कृष्ण में सोलह कलाएं होने पर भी दोनों ही पूर्णतम हैं। अथवा जैसे कोई कहे कि रुपये में १६ आने होते हैं या रुपए में १२ माशे हैं। १२ या १६ न्यूताधिक होने पर भी रुपया छोटा बड़ा नहीं होता। वैसे ही राम १२ कला तथा श्री कृष्ण को १६ का अवतार कहने पर भी दोनों में कोई छोटा या बड़ा नहीं हो जाता।

२. पूर्णावतार–ऊपर कहे गये कल्प भेद से राम कृष्ण कारण ब्रह्म के पूर्णतमावतार हैं, किन्तु कहीं कहीं कला भेद, मन्वन्तर भेद तथा युग भेद से कार्य ब्रह्म, विष्णु, राम तथा कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। वे कहीं पूर्णावतार, कहीं विभूत्यवतार कहे जाते हैं। जैसे नारद जी के शाप से तथा सनकादि के शाप से वही वैकुण्ठ बिहारी विष्णु, श्वेत द्वीपवासी नारायण, क्षीरशायी विष्णु जब राम कृष्ण के रूप में होते हैं तो वे पूर्णावतार कहे जाते हैं।

३. विभूत्यवतार–कुछ विद्वानों के मत से बारह कला से लेकर चौदह पन्द्रह कला का अवतार विभूत्यवतार होता है। कुछ आचार्यों ने बारह से चौदह तक को विभूत्यवतार माना है इनमें नृसिंह और वामन अवतार आते हैं।

४. अंश या कलावतार–अंशावतारों में मत्स्य, कूर्म, बाराह, सनकादि नारद तथा व्यास आदि आते हैं।

५. अंशांशावतार–भगवान् के अंशावतारों के अवतार को अंशांशावतार कहते हैं। जैसे भागवत् आदि ग्रन्थों में अत्रि तथा अनुसूया की तपस्या से प्रकट हुए भगवान् दत्तात्रेय अंशावतार हैं। भविष्य पुराण के अनुसार उन्होंने ही कलियुग में देवताओं के प्रार्थना करने पर पश्चिमी पंजाब के लाहौर ज़िला के तलवंडी ग्राम में गुरु नानक देव के रूप में अंशावतार लिया यह दत्तात्रेय के अंशावतार तथा विष्णु के अंशांशावतार हुए। कलियुग में श्री कृष्ण भगवान् के अंशांशावतार चैतन्य महाप्रभु तथा महाप्रभु वल्लभाचार्य हुए। ब्रह्मवैवर्त पुरण में श्री कृष्ण के अंशावतार गणेश जी तथा विष्णु के अंशावतार स्वामी कार्तिकेय जी हुए।

६. आवेशावतार–जैसे सामान्य व्यक्तियों में कुछ काल के लिए भूत, प्रेत, चण्डी, हनुमान तथा भैरव आदि का आवेश आ जाता है। उन्हीं के समान सर्वज्ञ हो जाता है। इसी प्रकार पिता जमदग्नि की मृत्यु के अनन्तर जब माता रेणुका इक्कीस बार छाती पीटक रोई, तब सान्त्वना देते हुए परशुराम जी ने माता से कहा, तुम चिन्ता मत करो मैं भगवत् शक्ति प्राप्त करके इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करूंगा। इसके बाद आप विष्णु की आराधना में लग गये भगवान् विष्णु ने दर्शन दिया, इन्होंने भगवान् की स्तुति

करके शक्ति मांगी, भगवान् ने शार्ङ्ग धनुष उन्हें दिया तथा अपनी सम्पूर्ण शक्तियां उनमें निहित की और कहा कि त्रेता के अन्त में जब तुम्हारे ही नाम से अवतार लूंगा। तब धनुष के सहित शक्ति का अपहरण कर लूंगा, क्योंकि भगवान् विष्णु ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उनमें आवेशित (प्रवेश) की थी। इसीलिए उन्हें आवेशावतार कहते हैं।

श्री कृष्ण की कलाओं (सोलह) के नाम–**१. अमृतदा**–जीवात्मा तथा परमात्मा का साक्षात्कार कराकर, ज्ञान रूपी अमृत पिलाकर मुक्त करने वाली कला अमृतदा है।

२. मानदा–मानवती स्वाभिमानिनी गोपिकाओं को मान देने वाली है। भगवान् की रास क्रीड़ा के समय दो प्रकार की गोपिकाएं थीं, उनमें एक निरभिमानिनी दूसरी मानिनी थी। उनमें राधा सहित उनकी आठ सखियां मानिनी थीं। बात बात में रूठ जाती थीं। तब भगवान् उन्हें अनुनय विनय द्वारा मनाया करते थे। यह भगवान् की कला इसी कारण मानदा कही गई।

३. पूषा–अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का भरण पोषण करने वाली

४. पुष्टि–गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान् ने कहा है–

"पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः।"

मैं रस स्वरूप चन्द्रमा होकर सभी औषधियों को पुष्ट करता हूं। अर्थात् औषधि शब्द का प्रयोग यहां पर इसका प्रयोग सभी स्थावर जंगम प्राणियों को पुष्ट करने के अर्थ में है। ऐसी भगवान् की कला पुष्टि नाम की है।

५. तुष्टि–प्रारब्धानुसार जो प्राप्त हो जाए उसी में सन्तोष देने वाली शक्ति तुष्टि कही जाती है।

६. रति–भगवान् के प्रति अभेद तथा स्वार्थ रहित अनुरागात्मक भक्ति रति है।

७. धृति–अनुकूल पदार्थों के मिलने पर उनकी शीघ्र न भोगने की सामर्थ्य, तथा प्रतिकूल दुख देने वाले पदार्थों के मिलने पर मन बुद्धि को स्थिर रखने वाली का नाम धृति है।

८. शीर्षणी–विदेह कैवल्य मुक्ति देने वाली शक्ति शीर्षिणी है।

९. चण्डिका–बाहर तथा भीतर के शत्रुओं को दण्डित करने वाली शक्ति चण्डिका है।

१०. कान्ति–भगवान् की स्वयं प्रकाशिनी कला कान्ति है।

११. ज्योत्स्ना–शम, दम आदि के द्वारा शीतल प्रकाश देकर अन्तःकरण की ज्योति को जलाकर परमात्मा की दिव्य ज्योति से मिलाने वाली कला ज्योत्स्ना है।

१२. मोक्षदा–ब्रह्म विद्या के द्वारा जीव के तीनों कर्म, तीनों शरीरों को ज्ञान रूपी अग्नि से दग्ध करके, ब्रह्म के साथ मिलाने वाली कला मोक्षदा है।

१३. प्रीति–अपने इस लोक परलोक के अपयश या नरक के भय की चिन्ता से रहित भगवान् के प्रति सच्चा अनुराग कराने वाली कला प्रीति है। जैसे भगवान् ने सभी रानियों तथा गोपियों की प्रेम परीक्षा के लिए पेट में दर्द का बहाना किया। अनेकों उपचार करने पर भी भगवान् ठीक न हुए, नारद जी उस समय वहीं थे, उन्होंने पूछा आपका दर्द कैसे दूर होगा, उन्होंने कहा कोई मेरा प्रेमी भक्त अपने चरणों की धूलि या चरणोदक दे दे, तब पीड़ा दूर होगी। नारद जी कमण्डलु लेकर ब्रह्मा विष्णु शिव के पास गये सनकादिकों से मिले। गोलोक से लेकर पाताल तक किसी ने भी चरणोदक नहीं दिया। सभी कानों पर हाथ रखने लगे और कहा कि इतना बड़ा पाप करके कौन अनन्त काल तक नरक भोगेगा। अन्त में ब्रज में पहुंचे। ब्रज की गोपियां सकुचा गईं, किन्तु जब राधा ने सुना तो परम प्रसन्न चित्त से बोली। यदि मेरे इष्ट को चरण रज तथा पादोदक से सुख मिल सकता है, तो मुझे भले ही नरक जाना पड़े, किन्तु मेरे प्रियतम को रंच मात्र भी कष्ट नहीं होना चाहिए। प्रसन्नता से चरणोदक दे दिया। इस प्रकार स्वार्थ रहित सच्ची भक्ति का नाम प्रीति है।

१४. अंगदा–भगवान् के प्रत्येक अंग प्रत्यंग के समान सारूप्य मुक्तिदेने वाली कला अंगदा है।

१५ पोषणा–अष्टांग योग के द्वारा या नवधा भक्ति के द्वारा साधन चतुष्टय द्वारा अथवा वेदान्त के महावाक्यों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा जीव की संसाराकार वृत्ति को हटाकर ब्रह्माकार या भगवदाकार वृत्ति का पोषण करने वाली कला पोषणा है।

१६. पूर्णा–जिस प्रकार घटाकाश महाकाश में फूटने पर लय हो जाता है, दूध दूध में, जल सागर में मिलकर पूर्णता को प्राप्त करता है। उसी प्रकार भगवान् की वह शक्ति जो जीव की सम्पूर्ण उपाधियों को दूर करके सच्चिदानन्द रूपी महासागर में जीव को लीन कर भगवान् के पूर्ण पद को प्राप्त कराने वाली कला पूर्णा है।

ये सोलह कलाएं भगवान् श्री कृष्ण में पाई जाती हैं।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद का चतुर्थ अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का पंचम अध्याय प्रारम्भ ॥

अवतार संख्या–निराकार, निर्गुण, निर्विशेष ब्रह्म जैसे सत्य, ज्ञान तथा अनन्त है। वैसे ही सगुण साकार सोपाधिक ब्रह्म भी अनन्त होने के कारण उनके नाम रूप लीलाधाम भी अनन्त हैं। तुलसीदास जी ने राम चरितमानस में कहा है–

''राम अनन्त अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार।
सुनिआचरज न मानहीं जिनके विमल विचार॥
हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता॥''

इसलिए परमात्मा के कितने अवतार हुए यह प्रश्न ही उचित नहीं प्रतीत होता। इसलिए भागवत में शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा है कि हे राजन्! कोई पृथ्वी के कणों को, आकाश के तारों को तथा जल की बूंदों को कई जन्म लेकर भले ही गिन ले, किन्तु उनके नाम और अवतारों की गणना नहीं की जा सकती। श्री गीता के दशम अध्याय में भी अर्जुन ने जब विस्तार से भगवान् की विभूतियों को जानने की इच्छा की तब भगवान् ने संक्षेप में बताने के बाद अंत में कहा कि–

न तदस्ति बिना यत्स्यान्मयाभूतंचराचरम्॥३९॥
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप॥
एषत्तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥४०॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जित मेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तोजोंऽश सम्भवम्॥४१॥

अथवा बहुनैतेन किंज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

अर्थ–हे परंतप! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, क्योंकि चराचर जगत् में मेरे बिना कोई नहीं है। यह मैंने तुम्हें संबोधित करके विस्तार से कहा। जो विशेष विभूति भी, ऐश्वर्य से युक्त है, वह सब मेरे अंश से ही उत्पन्न हुई जानो। अथवा हे अर्जुन! आपको बहुत जानने से क्या लाभ, यह सम्पूर्ण जगत् मेरे अंश से ही उत्पन्न हुआ और मैं ही इसमें प्रविष्ट हूं ॥३९ से ४२ तक॥ अथवा मैं इस जगत् में प्रवेश करके एक अंश से स्थित हूं।

वेद में भी कहा है, "**पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि॥**" ब्रह्म के एक पाद में प्राणियों सहित सम्पूर्ण विश्व है, तीन पाद अमृत स्वरूप हैं और परम वैकुण्ठ है। ब्रह्म के अमृत रूपी तीन पादों की व्याख्या विष्णु के उपदेश के अन्तर्गत 'त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद्' के आधार पर आगे की जाएगी। भागवत के दूसरे स्कन्द में भगवान् के अवतारों के सम्बन्ध में शुकदेव जी ने कहा है, जैसे एक बड़े विशाल सरोवर में लाखों नालियां हों, उनमें जैसे निरन्तर अहर्निश जल प्रवाहित होता रहता है वैसे ही महासर्ग के आरम्भ से महाप्रलय पर्यन्त भगवान् के नित्य असंख्य अवतार होते रहते हैं, क्योंकि तिनके से लेकर ब्रह्मा तक सब ब्रह्मस्वरूप है। फिर भी अवतारों को हम दो श्रेणियों में बांट सकते हैं–१. नित्यावतार, २. नैमित्तिकावतार।

ऊपर नित्य अवतारों के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है।

नैमित्तिकावतार–किसी कारण विशेष को लेकर विशेष कार्य के लिए जो भगवान् के अवतार होते हैं। वे नैमित्तिकावतार होते हैं जैसे–वेद, ब्राह्मण, गौ, पृथ्वी तथा भक्तों की रक्षा के निमित्त तथा अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना करने के लिए होते हैं। वे अवतार हैं–नृसिंह, वाराह, कल्कि आदि कुछ ज्ञान देने के लिए अवतार जैसे–दत्तात्रेय, कपिल, ऋषभ देव, वेद व्यास आदि ज्ञानकलावतार कहे जाते हैं। कुछ ज्ञान शक्त्यवतार राम कृष्ण आदि हैं।

आनन्दरामायण के मनोहर काण्ड के तीसरे सर्ग में भगवान् के ४२ अवतारों के नाम आये हैं, परन्तु भागवत में २४ अवतारों के चरित्र संक्षिप्त तथा विस्तार से वर्णित हैं।

उनमें भी दस प्रधान हैं। इन अवतारों के सम्बन्ध में पीछे लिखा जा चुका है। यहां एक दोहा दृष्टव्य है–

"दो जलचर दो वनचर दो प्रि दो शूर।
दो वनमाही करैं तपस्या, भक्ति हृदय भरपूर॥"

अर्थ–जलचर दो (मत्स्य और कूर्म) वनचर दो (बाराह, नृसिंह) दो ब्राह्मण (परशुराम–वामन) दो शूर (राम, कृष्ण) दो तपस्वी (नर–नारायण)।

भागवत में तीन चार बार चौबीस अवतारों का वर्णन हुआ है तथा उनके स्तोत्रों में दशावतारों का भी वर्णन है, जैसे जब अक्रूर भगवान् को लेकर मथुरा जाने लगे मार्ग में ब्रह्म हद में स्नान करके सन्ध्योपासना का विचार किया, गोता लगाने में उनको शेषशायी भगवान् का दर्शन हुआ तब उन्होंने दशों अवतारों की स्तुति की।

भगवान् के २४ अवतार–सृष्टि के आरम्भ में भगवान् का प्राकट्य विराट के रूप में होता है, उसमें भगवान् के अनन्त सिर, हाथ, आंखें, कान, पैर, अंग प्रत्यंग आदि होते हैं। यह स्वरूप सभी अवतारों का मूल है। इन्हें महावतार या अवतारी कहते हैं।

१. नरनारायण, २. सनक, सनन्दन, सनातन सनत्कुमार के रूप में तथा महाभारत के अनुसार सनत्सुजात को मिला कर सनकादि पांच कहे जाते हैं, सनत्सुजात ऋषि ने महाभारत के उद्योग पर्व में धृतराष्ट्र को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था। इस पर शंकराचार्य जी का भाष्य है।

३. नारद जी, ४. हयग्रीव, ५. कपिल देव, ६. ऋषभदेव, ७. हंसावतार, ८. हरि इस अवतार में भगवान् हरिणी के गर्भ से अवतरित हुए और गजग्राह का उद्धार किया।

९. दत्तात्रेय, १०. धन्वन्तरि, ११. मत्स्य, १२. कूर्म, १३. वाराह, १४. नृसिंह, १५. मोहिनी, १६. वामन, १७. परशुराम, १८. श्रीराम, १९. गरुडध्वजावतार ध्रुव को ज्ञानोपदेश देने के लिए, २०. पृथु, २१. वेदव्यास, २२. श्री कृष्ण, २३. बलराम, २४. कल्कि। किसी किसी के मत से बलराम के स्थान पर बुद्ध को ग्रहण किया गया है।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद का पंचम अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का छटा अध्याय प्रारम्भ ॥

भगवान् के कल्पावतारों की संख्या–ब्रह्मा जी के एक दिन में चारों युग (महायुग) एक हजार बार बीत जाते हैं और इतनी ही उनकी रात्रि भी होती है। इसी को कल्प कहते हैं। एक कल्प में मनुष्य के ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष होते हैं। ऐसे तीस कल्पों का ब्रह्मा का एक मास होता है इसी प्रमाण से बारह मास का एक वर्ष तथा सौ वर्ष की ब्रह्मा की आयु होती है। सब मिलाकर ब्रह्मा जी के दिन मान से उनकी पूरी आयु में छत्तीस हजार दिन (कल्प) हुए। क्योंकि इस समय ब्रह्मा जी पचास वर्ष के हो चुके हैं। इक्यानवा वर्ष चल रहा है। अतः अठारह हजार दिन बीत चुके हैं। भगवान् के भी उनके जन्म से लेकर अठारह हजार कल्पावतार हो चुके हैं। वर्तमान में भी एक अवतार हो चुका है। इसलिए कुल १८,००१ अवतार हुए तथा शेष आयु में १७,९९९ सत्तरह हजार नौ सौ निन्यानवे अवतार और होंगे। इस प्रकार ब्रह्मा के जीवन में छत्तीस हजार कल्पावतार सिद्ध हुए।

मन्वन्तरावतार–ब्रह्मा जी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर बीत जाते हैं अर्थात् १४ मनु होते हैं। उतनी ही उनकी रात्रि होती है। ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार अट्ठाईस मनु तथा इतने ही अवतार सिद्ध होते हैं, परन्तु ब्रह्मा जी की रात्रि या प्रलय में सृष्टि नहीं होती। अतः उसकी रक्षा का प्रश्न ही नहीं होता। अतः एक कल्प में चौदह मन्वन्तरावतार हुए। अब चौदह को अठारह हजार एक से गुणा करने पर २,५३,०१४, अवतार हुए क्योंकि इस समय आधाकल्प बीत चुका है अर्थात् इस कल्प के सातवें मनु चल रहे हैं। इस प्रकार सात अवतार और जोड़ देने से दो लाख तिरपन हजार इक्कीस अवतार अब तक हो चुके हैं।

अष्टाविंशति युगावतार–कुछ पुराणों के अनुसार प्रत्येक द्वापर युग में कृष्णावतार नहीं होता है केवल बलराम जी ही अवतरित होकर पृथ्वी का भार उतारते हैं। २८वें द्वापर में ही कृष्णावतार हुआ क्योंकि ब्रह्मा जी पचास वर्ष के हो चुके हैं। इक्कावनवें वर्ष में सातवें मनु के अट्ठाइसवें कलियुग तक भगवान् कृष्ण के पूर्णतमावातार एक लाख तिरपन हजार एक सौ बत्तीस अवतार ब्रह्मा जी के जन्म से लेकर अब तक हुये हैं।

मुख्य १० महायुगावतारों की संख्या–चूंकि एक महायुग में १० मुख्य अवतार होते हैं, तो हजार महायुग में १० से गुणा करने से पूरे कल्प में १०,००० दस हजार मुख्यावतार हुए और १८००० कल्पों में, इतने से गुणा करने पर अठारह अरब अवतार हुए हैं। चूंकि इस कल्प में भी छः मनुबीत चुके हैं, एक मन्वन्तर में लगभग ७१ महायुग होते हैं। इसको साठ से गुणा करने पर ४२६० हुए। अठाईस शेष महायुगों में २८० हुए। इस प्रकार कुल योग अठारह अरब चार हजार पांच सौ चालीस हुआ। चूंकि कल्कि अवतार अभी नहीं हुआ है। अतः एक घटाने पर अब तक के अवतारों की शुद्ध संख्या अठारह अरब चार हजार पांच सौ उन्तालीस हुई।

महायुग के पच्चीस अवतार–प्रत्येक महायुग में २५ अवतारों के अनुसार इसी संख्या को ढाई से गुणा कर देने पर गुणनफल, पैंतालीस अरब ग्यारह हजार तीन सौ अवतार ब्रह्मा के जन्म से आज तक हो चुके हैं। यह हमने अनेकों पुराणों के आधार पर भगवान् के काल तथा कला भेद से संख्या बताने की चेष्टा की है। संभव है गणित में कोई त्रुटि हो गई हो, तो विद्वज्जन सुधार कर हमें सूचित करेंगे। भगवान् के अवतारों का वर्णन करने में विद्या की देवी सरस्वती, गणेश, चतुरानन, ब्रह्मा, पंचानन शिव तथा शेष भी अनन्तकाल तक वर्णन नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्मा की आयु में इतने अवतार हो जाते हैं। अतः यह नहीं समझना चाहिए कि ब्रह्मा की अपेक्षा विष्णु न्यून हैं क्योंकि विष्णु की आयु में असंख्य ब्रह्मा हो जाते हैं। यह अवतार शरीर रहित होने पर भी माया से शरीरधारी प्रतीत होते हैं।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद का छठा अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ द्वितीय परिच्छेद का सातवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शालिग्राम तथा विष्णु में अभेद

पिछले प्रकरण में अवतारों के सम्बन्ध में बताया गया। विष्णु चरित्र, विष्णु पुराणादि १८ पुराणों महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों में भरा पड़ा है। सर्वत्र प्रसिद्ध होने के कारण नहीं लिखा। अब यहां पर शालिग्राम तथा विष्णु में अभेद सिद्ध करते हुए इनके पूजन के अधिकारी, पूजन विधि तथा शालिग्रामों के भेद बताए जाएंगे।

जैसे शिवलिंग निराकार निर्गुण शिव का प्रतीक है, उसी प्रकार शालिग्राम भी निराकार विष्णु का प्रतीक है। जैसे शिवलिंग के दर्शन, नमस्कार आदि से समस्त देवी देवताओं के पूजन प्रणाम दर्शन आदि का फल प्राप्त होता है, वैसे ही शालिग्राम के भी दर्शन आदि से फल प्राप्त होता है। जैसे शंकर जी की सावयव मूर्ति का पूजन करने से केवल शिव पूजन का फल मिलता है, किन्तु लिंग पूजन से सभी का फल मिलता है वैसे ही विष्णु का चतुर्भुजी मूर्ति के पूजन से केवल विष्णु पूजन का ही फल मिलता है, किन्तु शालिग्राम के पूजन से सबके पूजन का फल मिलता है। नर्मदा नदी में सभी कंकड़ शंकर हैं गंडकी नदी में सभी कंकड़ शालिग्राम हैं।

शालिग्राम के भेद तथा पूजन का अधिकार–भविष्योत्तर पुराण में कथा आती है कि एक बार धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्री कृष्ण से पूछा कि शालिग्राम कितने प्रकार के होते हैं। तब भगवान् ने कहा कि हे धर्मपुत्र! हिमालय के दक्षिण में तथा गण्डकी के उत्तर में दशयोजन विस्तृत क्षेत्र है। वहां पर शालिग्राम पाये जाते हैं। जहां शालिग्राम तथा द्वारिका की शिला का संगम है। वहां निश्चय ही मुक्ति है, जो जन्म भर के पापों से मुक्त होना चाहता है। वह शालिग्राम का चरणोदक **''अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्। विष्णोःपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते''** इस मन्त्र से ग्रहण करता है, वह सभी रोगों से मुक्त होकर मुक्त हो जाता है। चरणोदक पीकर बचे हुए जल को शिर पर धारण करे। इनके पूजन में शंख में से जल को विष्णु भगवान् पर घुमाकर भक्तों पर डालने से ब्रह्म हत्यादि पाप छूट

जाते हैं। हजारों अग्नि होत्र आदि यज्ञ करने से, सैंकड़ों वाजपेय यज्ञों से जो फल होता है। वह भगवान् के नैवेद्य, भक्षण से प्राप्त होता है। नैवेद्य सहित तुलसी मिश्रित भगवान् का पादोदक पीने से अनन्त कोटि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। शालिग्राम की खण्डित या अग्निदग्ध शिला भी कल्याणकारिणी है। इसके पूजन में मन्त्र आवाहन, तीर्थ की भावना तथा स्तुति की आवश्यकता नहीं है। यदि जानता हो तो करे न जानता हो तो भी कोई हानि नहीं है। इसके पूनज से तीनों प्रकार के शरीर, वाणी तथा मन के पाप नष्ट हो जाते हैं।

शालिग्राम के भेद–काली शिला में जहां सूक्ष्म चक्र दिखाई देता है। वह शिला सौभाग्य, सन्तान तथा सर्वसुख देती है। यह वासुदेव के नाम से कही जाती है। इसके दर्शन से जीव सब पापों से रहित हो जाताहै। जिस शिला के बाईं ओर हरा रंग हो वह श्रीधर कहलाती है। जिस शिला में गऊ का चरण चिन्ह हो तथा कछुवे का चिन्ह हो, वह बाराह कहलाती है। पीले रंग की शिला देवताओं को भयभीत करने वाली, मुक्ति देने वाली, नृसिंह के नाम वाली होती है। जिस शिला में शंख चक्र गदा एवं कूर्म का चिन्ह हो वह सफेद रंग की शिला देव शिला कहलाती है। इसे दामोदर भी कहते हैं। जो आगे से तीखी तथा जिसमें पीली रेखा दिखाई दे और छत्र का चिन्ह हो, गोल हो वह राज्य लक्ष्मी देती है। चिपटे शालिग्राम का पूजन नहीं करना चाहिए। उससे महादुख होता है। त्रिशूल के समान तीक्ष्ण शालिग्राम के पूजन से युद्ध होता है। जिसके ललाट में शेष का चिन्ह हो तथा शिर पर सुनहरे चक्र की रेखा हो उसे वामदेव कहते हैं। जिसके बाईं ओर चक्र हो, काली शिला हो, किन्तु बाईं ओर पीली रेखा हो वह लक्ष्मी नृसिंह कही जाती है। दरार से युक्त शालिग्राम का पूजन नहीं करना चाहिए। इसके पूजन से निश्चित ही मृत्यु हो जाती है। भगवान् विष्णु का पादोदक पीने से करोड़ों जन्म के पाप नष्ट होते हैं, किन्तु पादोदक पीते तथा लेते समय यदि बूंद पृथ्वी पर गिर जाती है तो आठ गुणा पाप होता है।

अधिकार निर्णय–पद्म पुराण पातालखण्ड रामाश्व मेधीय खण्ड के बीसवें अध्याय में भगवान् राम के प्रति गुरु वशिष्ठ जी अश्वमेध यज्ञ की सामग्री का वर्णन करते हुए

कहते हैं कि शालिग्राम का पूजन कैसे तथा किसे करना चाहिए। नारियों तथा दोनों प्रकार के शूद्रों को शालिग्राम का स्पर्श भी वर्जित है–

न जातु चित् स्त्रिया कार्यम्शालग्रामस्यपूजनम्।
भर्तृहीनाथ, सुभगा स्वर्ग लोक हितैषिणी॥२३॥
मोहात्स्पृष्ट्वापि महिला जन्म शील गुणान्विता।
हित्वापुण्यसमूहं सा सत्वरनरकं व्रजेत्॥२४॥
स्त्री पाणि मुक्त पुष्पाणि शालग्रिाम शिलोपरि।
पवेरधिक पातानि वदन्ति ब्राह्मणोत्तमाः॥२५॥
चन्दनं विष संकाशं कुसुमं वज्रसन्निभम्।
नैवेद्यं कालकूटाभं भवेत् भगवतः कृतम्॥२६॥
तस्मात् सर्वात्मनात्याज्यः स्त्रियः स्पर्शः शिलोपरि।
कुर्वती याति नरक यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥२७॥
अपिपाप समाचारो ब्रह्महत्यायुतोऽयित्वा।
शालिग्राम शिलातोयं पीत्वा याति परां गतिम्॥२८॥

अर्थ–पतिहीना, सधवा, स्वर्गलोक प्राप्त करने की इच्छा किसी भी स्त्री को शालिग्राम का पूजन कदापि नहीं करना चाहिए। अच्छे गुण, जन्म तथा स्वभाव वाली नारी यदि अज्ञान से स्पर्श कर लेती है, तो अपने किए हुए पुण्यों का नाश करके नरक जाती है। उत्तम ब्राह्मण कहते हैं कि शालिग्राम शिला पर स्त्री केहाथ से छोड़े हुए पुष्प वज्र से भी अधिक चोट करते हैं, चन्दन विष के समान, पुष्प वज्र के समान तथा नैवेद्य चढ़ाना कालकूट विष के समान है। इसलिए स्त्रियों का शालिग्राम का स्पर्श सर्वथा त्याज्य है। यदि हठवश करती हैं तो चौदह मन्वन्तर (१४ इन्द्र) तक नरक भोगती है। किन्तु भगवान् का प्रसाद तथा चरणोदक सभी ले सकते हैं। इसलिए कहा है, अति पापी तथा ब्रह्म हत्यारा भी शालिग्राम का जल पीकर परम गति प्राप्त करता है॥२३ से २८ तक॥

भगवान् का सात प्रकार का पादोदक जिसमें तुलसी, चन्दन, शंखस्पर्शजल, घण्टा, चक्र, शिला, ताम्रपात्र में रखा हुआ नौ प्रकार के पापों को नष्ट करता है। ऐसा शास्त्रवेता महात्माओं ने कहा है। भगवान् के पादोदक पीने वाले को सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का तथा सभी यज्ञों के पूजन का फल प्राप्त होता है।

शाग्रिामः समः पूज्यः समेषु द्वितयं नहि।
विषमा एव सम्पूज्या विषमेषुत्रयंनहि ॥३३॥

शालिग्राम शिला में दो को छोड़कर समसंख्या में तथा तीन को छोड़कर विषम (१, ५, ७, ९ आदि) संख्या में पूजनीय हैं। भगवान् विष्णु ने अम्बरीष से कहा कि बुद्धिमन्! ब्राह्मण, संन्यासी तथा शालिग्राम तीनों मेरे स्वरूप हैं।

ऊपर के वचनों से सिद्ध होता है कि श्रुति, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थों को मानने वाले आस्तिकों को शास्त्र मर्यादा तथा अधिकार के अनुसार पूजन करने चाहिए, स्वेच्छा से नहीं।

॥ इति द्वितीय परिच्छेद का सातवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का आठवां अध्याय प्रारम्भ ॥

वैष्णव सम्प्रदाय तथा आचार्य

वैदिक सनातन संस्कृति में एकत्व में अनेकत्व, सन्तरे के समान पाया जाता है, जैसे सन्तरा बाहर से एक होने पर भी भीतर से अनेक है। हमारा स्थूल शरीर और जीव एक होने पर भी सिर से पैर तक विभिन्न अंगों से युक्त है। वह जीव आंख के साथ मिलकर द्रष्टा, कान से सम्बन्धितहोकर श्रोता, हाथ से कर्त्ता पैर से गन्ता आदि कहलाता है। इनसे सम्बन्धित होने पर जीव जैसे अनेक नहीं होता, वैसे ही हमारे समाज में वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, कापिल आदि विभिन्न सम्प्रदाय हैं, विभिन्न होने के कारण इनकी उपासनाएं तथा ब्रह्म का निरूपण करने वाली शैलियां भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु ब्रह्म एक है। अतः परस्पर मतभेद होने पर भी लक्ष्य सब का एक ही है जैसे कोर्ट में वकील विवाद करते हुए कट्टर शत्रु से प्रतीत होते हैं। किन्तु जलपान समय में घनिष्ठ मित्रों के समान हंसते, खेलते हैं। वैसे ही कपिल, कणाद, गौतम पतंजलि,

जैमिनि तथा भगवान् वेद व्यास सभी त्रिकालदर्शी महात्मा हैं। सभी को पारमार्थिक सत्ता में अभेद ज्ञान हो चुका है। इनके ग्रन्थों के भाष्यकर्त्ता आचार्य भी अपने अपने पक्ष का समर्थन करते हुए अन्त में एक ही लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं।

जैसे अद्वैत वेदान्त के प्रधान आचार्य पूज्य पाद भगवान् श्री शंकराचार्य जी ने गीता, ब्रह्मसूत्र तथा उपनिषदों पर भाष्य करते हुए जीव, ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया, उसी गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य जी ने विशिष्टाद्वैत जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत, श्री निम्बर्काचार्य जी ने द्वैताद्वैत तथा मध्वाचार्य जी ने द्वैत मत का प्रतिपादन किया। इन आचार्यों के सिद्धान्त तथा जीवन चरित्र कलियुग खण्ड में विस्तार से दिया जाएगा। अब नीचे विष्णु भक्ति का स्वरूप, भक्तों के लक्षण आदि लिखे जाएंगे।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराण के
द्वितीय परिच्छेद में आठवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का नवमं अध्यांय प्रारम्भ॥

भगवद् भक्ति

भक्ति शब्द भज् सेवायाम् धातु से क्तिन्, प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है। मनसा, वाचा, कर्मणा इष्ट देव की आज्ञा का पालन करते हुए सेवा करना ही भक्ति है। दूसरे शब्दों में जैसे कलश, कुम्भ तथा घट एक ही वस्तु के तीन नाम हैं। वैसे ही इष्टदेव, गुरु तथा मन्त्र इन तीनों में एकत्व बुद्धि से ध्यान करते हुए मन्त्र का जाप करने का नाम भक्ति है। इसके सम्बन्ध में भक्त माल के मंगलाचरण में श्री नाभादासजी ने भी लिखा है-

भगती, भगत, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किये, मेटत विघ्न अनेक॥

भगवान् श्री शंकराचार्य ने भी अभेद भक्ति का प्रतिपादन करते हुए कहा है, "**स्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते**" अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप का अनुसन्धान करना ही भक्ति है।

श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती जी महाराज अपने **''भगवद्भक्तिरसायनम्''** नामक ग्रन्थ में , **''भजमन्तः करणस्य भगवदाकाररूपतां भक्तिः''**, **''भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियते अनया इति भक्तिः''**, **''द्रवीभावपूर्विका हि मनसो भगवदाकारता सविकल्पवृतिरूपा भक्ति''** भक्ति की परिभाषा की है। वे कहते हैं कि अन्तःकरण की भगवत् आकार वाली वृत्ति को भक्ति कहते हैं। अथवा भगवदाकार अन्तःकरण से सेवा करना भक्ति कही जाती है अथवा द्रवीभाव (लाख के समान पिघली) पूर्वक मन की भगवदाकार को प्राप्त हुई सविकल्प वृत्ति ही भक्ति है।

भक्ति के साधन–''भगवद्गुणगरिमाग्रन्थनरूपग्रन्थश्रवणं भक्तिसाधनम्'' भगवान् की गुण गरिमा का वर्णन करने वाले ग्रन्थों का श्रवण ही भक्ति का साधन है।

भक्ति के अधिकारी–प्राणि मात्र का भगवद् भक्ति में अधिकार है। भगवद् विषयक प्रेम की पराकाष्ठा ही भक्ति है, वह जिसमें है, वही मुख्य रूप से अधिकारी है।

सात्त्विक भक्त के लक्षण–अश्रुपात, पसीना आना, रोमांच होना, स्वर भंग, शरीर कांपना, शरीर का विवर्ण होना, भगवान् में तल्लीन होकर संसार और शरीर को भी भूल जाना, स्तम्भिता (शरीर का स्तंभित होना) यह आठ सात्त्विक भक्त के लक्षण हैं।

प्रेमा भक्ति की ग्यारह भूमिकाएं–१. महापुरुषों की सेवा, २. महापुरुषों की दया का पात्र होना, ३. महापुरुषों के धर्म में श्रद्धा, ४. हरिगुणश्रवण, ५. प्रेमाभक्ति का अंकुर, ६. स्वरूप ज्ञान, ७. प्रेम में परमानन्द की वृद्धि, ८. प्रेम का छलकना, ९. भगवद्धर्म में निष्ठा, १०. भगवद्गुणों से युक्त होना, ११. प्रेम की पराकाष्ठा।

द्रवी भाव पूर्विका की व्याख्या–जिस प्रकार अग्नि में तपायी हुई लाख इतनी पतली हो जाए कि वह मलमल के सात परत वाले वस्त्र से निकल जाए फिर उसमें श्याम रंग डाल दिया जाए, बाद में लाख ठंडी हो जाने पर लाखों यत्न करने पर भी लाख उस श्यामता का परित्याग नहीं कर सकती, वैसे ही भगवद् भक्त का मन गोपांगनाओं के समान भगवान् की वियोगाग्नि के ताप से पिघलकर लाख के समान भगवदाकार हो

गया है। उसी द्रवीभूत भगवदाकार हुए अन्तःकरण में भगवान् की श्यामता रूपी रंग डाल देने पर उस भक्त का मन उस श्यामता का त्याग नहीं करता, ऐसी भक्ति गोपियों की थी, वे भोजन बनाते हुए बच्चों को खिलाते हुए आदि घर के कार्य करते हुए भी उनका मन श्री श्याम सुन्दर के श्याम रंग में ऐसा रंगा हुआ था कि लाखों यत्न करने पर भी उनका चित्त श्री कृष्ण से एक क्षण भी नहीं हटता था। अतः उन्होंने कहा है, "**जित देखौं तित श्याममयी है।**"

नारद जी ने भक्ति सूत्र में कहा है, "**सा परै पुंसिपरमप्रेमरूपा**" परम पुरुष परमात्म में परम प्रेम का होना ही भक्ति है। इसी के सम्बन्ध में मानस में भी कहा है, "**भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछुभेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥**" भक्ति और ज्ञान में केवल इतना ही अन्तर है, भक्ति द्रवीभूत अन्तःकरण की भगवदाकार सविकल्प वृत्ति है तथा ज्ञान द्रवीभूत अन्तःकरण की अद्वितीय आत्म गोचरा निर्विकल्प वृत्ति है। इसको ब्रह्म विद्या कहते हैं। भागवत में नवधा भक्ति का वर्णन इस प्रकार आता है। यथा–

"श्रवणंकीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥"

भगवान् की कथाओं का श्रवण, भगवान् विष्णु का स्मरण, भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन, भगवान् के चरणों की सेवा, भगवान् की पूजा, भगवान् के विग्रह को प्रणाम, दास्य भक्ति, सख्य और आत्मनिवेदन यह नव प्रकार की भक्ति है। श्रवण भक्ति के उदाहरण पृथु और परीक्षित, स्मरण के भरत जी, कीर्तन के प्रह्लाद, चैतन्य महाप्रभु, पादसेवा के भरत जी, पूजा के प्राचीनबर्हि आदि वन्दन के अक्रूर, दास्य के हनुमान जी, सख्य के अर्जुन, उद्धव, आत्म निवेदन के उदाहरण बलि हैं।

संन्यास गीता में तीन प्रकार की भक्ति है, गौणी, रागात्मिकता, परा कही गई है। गौणी में भगवान् के गुणों का गान, रागात्मिका में प्रेमस्वरूपा है, परा–ज्ञान मिश्रित भक्ति पराभक्ति है। इसके उदाहरण सनकादि, व्यास, काकभुशुण्डि, भगवान् शंकराचार्य आदि हैं।

भक्ति की सात भूमिकाएं–संन्यास गीता के अनुसार भक्ति की सात भूमिकाएं कही गई हैं। १. नाम परा–नाम जप की प्रधानता, २. रूप परा–स्वरूप का ध्यान, ३. विभूति परा–भगवान् की विभूतियों का चिन्तन, ४. शक्ति परा–भगवान् की अनेक शक्ति का चिन्तन, ५. गुण परा–भगवान् के गुणों का चिन्तन, ६. भावपरा–सर्वत्र उपास्य की भावना रखना, ७. स्वरूप परा–सर्वत्र ब्रह्म स्वरूप की भावना।

॥ द्वितीय परिच्छेद का नवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का दसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

उपदेश उपकरण

भगवान् विष्णु का जगद्गुरुत्व–चारों युगों के चारों आचार्यों के सम्बन्ध में माधवीय श्री शंकर दिग्विजय के डिण्डिम टीकाकार धन पति सूरिजी ने लिखा है–

"कृते तु भगवान् सत्यः, त्रेतायां दत्तएव च।
द्वापरे भगवान् व्यासः, कलौ श्री शंकर स्वयम्॥"

सत्ययुग में भगवान् सत्यनारायण अथवा कपिल जी, त्रेता में दत्तात्रेय, द्वापर में भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास तथा कलियुग में भगवान् शंकर स्वयं शंकराचार्य के रूप में अवतरित हुए। इन सब का जीवन चरित्र अगले खण्ड में लिखा जाएगा। यद्यपि भगवान् विष्णु का उपदेश वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा विष्णु गीता में पाया जाता है। किन्तु यहां पर नारनायण से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई और कैसे उपदेश किया इन दोनों का नारायणोपनिषद्, महानारायणोपनिषद् तथा त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् के आधार पर लिखा जा रहा है।

१. नारायणोपनिषद्–महाप्रलय के जल में शयन करने वाले नारायण ने कामना की, मैं संसार तथा प्रजा की रचना करूं। यह संकल्प करते ही पंच प्राण, मन, सभी इन्द्रियां, वायु, ज्योति तथा जगत् को धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई, उन्हीं से ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, प्रजापति, बारह आदित्य, चारों वेद तथा आठ वसु उत्पन्न हुए। उनसे प्रेरणा तथा आज्ञा प्राप्त करके उपर्युक्त सभी अपने–अपने कार्यों में लगते हैं और अन्त में उन्हीं

में लीन हो जाते हैं। जैसे मिट्टी का घड़ा मिट्‌टी से उत्पन्न होकर कुछ काल के अनन्तर उसी में लीन हो जाता है। तीनों काल में ही नारायण हैं, नारायण के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। सारा जगत् उनसे वैसे ही उत्पन्न होता है, जैसे अग्नि से चिनगारियां उत्पन्न होती हैं। इस उपनिषद् में नारायण की सर्वव्यापकता तथा सर्वरूपता बताई गई है।

॥ द्वितीय परिच्छेद का दसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का ग्यारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् इस उपनिषद् में "**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्या मृतं दिवि**" इस मंत्र में वर्णित तीन पादों की अति सरल, अतिरोचक, सारगर्भित तथा विस्तृत व्याख्या की गई है। ब्रह्म के एक पाद में विश्व है तथा तीन पाद अविनाशी, दिव्य लोक में हैं। एक बार ब्रह्मा जी ने भगवान् के नाभि कमल से जन्म लेने के पश्चात् सच्चिदानन्द स्वरूप महाविष्णु की दस सहस्र दिव्य वर्षों तक तपस्या की। भगवान् ने उनको दर्शन दिया। ब्रह्मा जी ने वैदिक स्तोत्रों से स्तुति की। तब ब्रह्मा जी ने भगवान् के निरूपाधिक तथा सोपाधिक स्वरूप को समझने के लिए प्रश्न किया। भगवान् ने साधन चतुष्टय सम्पन्न ब्रह्मा जी से कहा, हे ब्रह्मन्! पूर्व महाकल्प के आरम्भ में तुम्हारी तरह चार साधन सम्पन्न शिष्यों ने गुरुओं की सेवा करके उनके अनुकूल होने पर पूछा, "हे गुरुदेव! ब्रह्म एक है। एक होने पर भी अनेक रूपों में क्यों प्रतीत होता है।" गुरु बोले हे शिष्य! ब्रह्म एक होने पर भी उपाधि भेद से अनेक हैं। जैसे आकाश के एक होने पर भी लाखों घटों तथा उनमें भरे जल की उपाधि से अनेकों सूर्य भासित होते हैं। वैसे ही ब्रह्म एक होने पर भी शरीर तथा अन्तःकरणों की उपाधि से अनेक प्रतीत होता है। जैसे उनमें से जल निकाल देने पर या जल सूख जाने पर प्रतिबिम्ब बिम्ब में लय हो जाता है। वैसे ही जीव शरीरों तथा अन्तःकरण की उपाधि से रहित होने पर चिदाभास सजीव सर्वव्यापी ब्रह्म हो जाता है। अतः वास्तव में ब्रह्म निरुपाधिक है। किन्तु माया के कारण सोपाधिक प्रतीत होता है।

वह सोपाधिक ब्रह्म भी तीन प्रकार का है–१. ज्ञान शवल (युक्त) ब्रह्म, २. आनन्द शवल ब्रह्म, ३. ज्ञानानन्द शवल ब्रह्म। तीसरे प्रकार के ज्ञानानन्द शवल ब्रह्म के ही

चारपाद कहे हैं। उसके पहले पाद में माया है। उस माया से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। उस सोपाधिक ब्रह्म में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों सहित माया वैसी ही दिखाई देती है। जैसे किसी गोरे पुरुष के भीतर में काला तिल। यह माया सोपाधिक सगुण ब्रह्म का प्रथमपाद है। ब्रह्म का दूसरा पाद महावैकुण्ठ है। तीसरा महाविष्णु। चौथी तुरीय पाद। यह तीनों पाद नाश रहित अविनाशी होने के कारण अमृत रूप कहे गये हैं।

शिष्य ने पूछा, हे गुरुदेव! आपका यह वचन अकाट्य, अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त के विरुद्ध है, क्योंकि "**यद्दृष्टं तन्नष्टं, गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमिच्छति। यतु दृष्टि पथं प्राप्तं तन्मायैव, सा तुच्छत्वं**" जो नेत्रों से दिखाई देता है, वह नाशवान है। गुणों का परम रूप अर्थात् त्रिगुण रहित परमात्मा, मन वाणी तथा कर्म से अगोचर है। जो नेत्रों का विषय है। वह तुच्छ है। (नाशवान् है) भगवान् भाष्यकार श्री शंकराचार्य जी ने आत्मानात्मक विवेक ग्रन्थ में कहा है, "**दृश्यं सर्वमनात्मं स्यात् दृगेवात्मा विवेकिनः।**"

विवेकियों ने दृश्य को नाशवान् जड़ तथा दुःख वाला होने के कारण अनात्मा कहा है। आत्मा को इस के विपरीत सच्चिदानन्द स्वरूप होने के कारण निरपेक्ष द्रष्टा कहा है।

त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् द्वितीय अध्याय

गुरुजनों के प्रति शिष्य ने पूछा, हे भगवन्! आपने महावैकुण्ठ नारायण तथा तुरीय पाद को अमृत स्वरूप कहा है। वैकुण्ठ तथा नारायण सगुण साकार होने के कारण अमृत स्वरूप कैसे हो सकते हैं? तुरीय निराकार होने के कारण अविनाशी है। यह दोनों सगुण साकार होने के कारण अविनाशी कैसे? सगुण साकार सावयव है। निराकार निरवयव है वह अविनाशी है। आपने साकार को अविनाशी कैसे कहा, आपका यह वचन श्रुति, प्रत्यक्ष तथा अनुमान तीनों प्रमाणों के विरुद्ध है। अतः आपको महाविष्णु तथा वैकुण्ठ को नाशवान् कहना चाहिए। श्रुति ने तुरीय को नित्य कहा है। नित्य और अनित्य दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

गुरु जी उत्तर देते हैं, तुम्हारा वचन अर्द्ध सत्य है। साकार दो प्रकार का है–सोपाधिक साकार, निरूपाधिक साकार। यदि पूछते हो कि सोपाधिक साकार कैसा है। उत्तर है–

सोपाधिक अविद्या और उसके कार्य रूपी तीन गुण तथा समष्टि, व्यष्टि तीनों शरीर से युक्त हैं। निरुपाधिक साकार में नहीं है। इसलिए सोपाधिक साकार अविद्या उपाधि से युक्त सावयव है। अतः नाशवान् ही है। यह सोपाधिक साकार का वर्णन हुआ। निरुपाधिक साकार कैसा है। इसके उत्तर में, निरुपाधिक साकार के तीन भेद हैं–१. ब्रह्मविद्या साकार, २. आनन्द साकार, ३. ब्रह्म विद्यानन्द साकार। इस त्रिविधसाकार के भी दो भेद हैं–१. नित्य साकार, २. मुक्त साकार। नित्य साकार का लक्षण–उत्पत्ति विनाश रहित अविनाशी, उपासना से मुक्ति को प्राप्त करने वालों को जिस मुक्ति की प्राप्ति होती है। वह मुक्त साकार है। उनसे अखण्ड ज्ञान का अविर्भाव होता है। वे अविनाशी हैं। मुक्त साकार ऐच्छिक है। नित्य साकार का लक्षण बताते हुए कहते हैं–अद्वैत, अखण्ड, परिपूर्ण निरवयव, परमानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वरूप ब्रह्म, चैतन्य साकार निरवयव होने के कारण सोपाधिक साकार से जो अधिक समझते हैं। उनका मत दूर से खण्डित किया गया। ब्रह्म की निरवयव चैतन्यता सभी उपनिषदों तथा सभी शास्त्रों के सिद्धान्तों में सुनी जाती है। अतः जो ऊपर विद्या तथा आनन्द ब्रह्म का जो विष्णु और वैकुण्ठ स्वरूप है। इन तीनों का अभेद श्रुति में सुना जाता है। शिष्य ने पूछा, विद्या तथा साकार ब्रह्म में अभेद कैसे है? गुरु जी उत्तर देते हैं, तुम्हारा कथन सत्य है। जैसे सर्वगत निराकार वायु रूप रहित होने पर भी त्वचा पति के रूप में प्रसिद्ध है। साकार त्वचा का महावायु के साथ सर्वत्र अभेद है। वैसे ही निराकार का साकार से अभेद है। जैसे शरीर में स्थित पंच महाभूतों का इनके देवताओं के साथ अभेद है। ऐसे ही निराकार साकार का अभेद है। विचित्र अनन्त शक्ति पर ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान में विरोध नहीं है। इसके अभाव में विरोध प्रतीत होता है। अद्वैत परमानन्द लक्षण ब्रह्म में तथा राम कृष्ण आदि अवतारों में परम तत्त्व का अनुसन्धान करने से दोनों में सर्वत्र अभेद सुना जाता है।

तात्पर्य यह है कि शुद्ध ब्रह्म में देह देही भाव तीनों कालों में नहीं है। न होने पर भी भगवान् की माया से देह देही भाव की प्रतीति होती है। वास्तव में महाविष्णु, राम, कृष्ण आदि का शरीर पंच महाभूतों से नहीं बना, किन्तु दिव्यातिदिव्य अविनाशी है। राम चरितमानस के अयोध्या काण्ड में तुलसीदास जी राम की स्तुति करते हुए कहते हैं–

''चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥''

आपका यह शरीर पंच महाभूतों का विकार नहीं है, किन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप है। अर्थात् आपका स्थूल शरीर सत् सूक्ष्म शरीर, चित् तथा कारण शरीर आनन्द तत्त्व से बना है, इस तत्त्व को जिसका आपकी अन्तरंग लीला में प्रवेश हो चुका है। वह अधिकारी पुरुष ही आपके सच्चिदानन्द स्वरूप विकार रहित शरीर के सम्बन्ध में जान सकता है। हे रघुनन्दन! जानने वाला साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ही होता है। भागवत के दशम स्कन्ध में चौदहवें अध्याय में ब्रह्मा भी भगवान् श्री कृष्ण के प्रति कहते हैं कि ''आपका यह शरीर पांच भौतिक नहीं है किन्तु दिव्यातिदिव्य है। चिन्मय अविनाशी है।'' वैशेषिक दर्शन में कणाद जी ने छः प्रकार के स्थूल शरीरों का वर्णन किया है। १. सर्वसाधारण प्राणियों के पार्थिक शरीर, २. वरुण लोक के जल तत्त्व प्रधान जलीय शरीर, ३. इन्द्र तथा ब्रह्मादिलोकों के अग्नि तत्त्व प्रधान दिव्य शरीर, ४. वायु तत्त्व की प्रधानता वाले भूत प्रेत बेताल, कूष्माण्ड, ब्रह्म राक्षस आदिकों के स्थूल नेत्रों से न दिखाई देने वाले वायु तत्त्व प्रधान वायवीय शरीर, ५. युक्त योगियों की सत्य संकल्पता से युक्त यौगिक शरीर अर्थात् योगी जब अपने प्रतिबिम्ब में धारणा, ध्यान, समाधि का संयम करते हैं, तब अनेक रूप धारण कर लेते हैं। जैसे भगवान् कृष्ण ने रास क्रीड़ा में अनेक रूप धारण किये। भगवान् राम ने दण्डक वन में खरदूषण त्रिशिरा से युद्ध करते समय सब को राम रूप दे दिया। भगवान् रेणुकाचार्य जी ने रावण की मृत्यु के बाद विभीषण के प्रार्थना करने पर तीन करोड़ शिव लिंगों में एक साथ ही तीन करोड़ रूप धारण करके प्राण प्रतिष्ठा की। योगियों की योग शक्ति से निर्मित 'यौगिक' शरीर कहे जाते हैं। दिव्यातिदिव्य शरीर महाविष्णु, परम शिव, परम स्वरूपा दुर्गा, महागणपति एवं राम कृष्णादि अवतारों के शरीर दिव्यातिदिव्य कहलाते हैं। देवताओं के शरीर दिव्य हैं। उनके शरीरों से पसीना नहीं निकलता। बुढ़ापा नहीं आता। पुण्य कर्म करने वाले मनुष्यों के शरीर मृत्यु के ४८

मिनट बाद उनके सूक्ष्म कारण सहित शरीर सुगन्धि युक्त कमल से उत्पन्न होते हैं। पैदा होते ही सोलह वर्ष के नवयुवक हो जाते हैं। लाखों करोड़ों वर्ष की अवस्था होने पर भी रोग और बुढ़ापा आदि नहीं होते। मल, मूत्र से दुर्गन्धि के बजाय सुगन्धि निकलती है। यह दिव्य शरीर होते हैं, परन्तु देवता आंख से देखते कान से सुनते हैं अर्थात् उनकी प्रत्येक इन्द्रिय एक प्रकार का कर्म तथा ज्ञानेन्द्रिय द्वारा एक प्रकार का ज्ञान होता है, किन्तु दिव्यातिदिव्य राम कृष्णादि के शरीरों में यह विशेषता है कि उनकी प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय में पांचों प्रकार की ज्ञान शक्ति रहती है, देवताओं में यह विशेषता नहीं है। अतः मनुष्य तो क्या ब्रह्मवेत्ता महर्षि तथा देवता भी उनका नित्य वैकुण्ठ तथा गोलोक धाम और भगवान् का श्री विग्रह अविनाशी अमृत रूप कैसे है, नहीं समझ सकते किन्तु भगवान्, की विशेष कृपा तथा सद्‌गुरुओं की महती कृपा से प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। यतिधर्म में कहा है–

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्‌गुरोः करुणां विना॥२०॥

सद्‌गुरुओं की कृपा के बिना आसक्ति सहित विषयों का त्याग कठिन है, परमतत्त्व दर्शन दुर्लभ है तथा सहजभाव स्थायी अत्यन्त कठि नहै। सहजावस्था का लक्षण बताते हुए कहते हैं–

सर्वेन्द्रियगुणरहिता रूपातीता निरंजना शान्ता।
भावाभाव विदूरा सहजावस्थेति सा कथिता॥

सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुण तथा विषयों से रहित, रूप रहित, परम प्रकाश स्वरूप शान्त, भाव अभाव से रहित को सहजावस्था कहा है। निष्कर्ष यह निकला कि समर्थ गुरुओं की अक्ष्य दीक्षा के बिना यह विषय हृदयंगम नहीं हो सकता। अतः भगवान् का वह रूप बड़े-बड़े देवताओं के लिए समझना भी कठिन है। इन छः शरीरों के सम्बन्ध प्रथम परिच्छेद पंचाचार्यों के जीवन चरित्र में विस्तार से कहा जा चुका है। पाठकगण वहीं देखें।

॥ द्वितीय परिच्छेद का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का बाहरवां अध्याय प्रारम्भ ॥

द्विविधजगत् (प्रपंच)–शिष्य के पूछने पर गुरु दो प्रकार का जगत् बताते हुए कहते हैं–१. विद्या प्रपंच, २. अविद्या प्रपंच। विद्या प्रपंच–नित्य आनन्द स्वरूप परमात्मा का कार्य होने से नित्य सिद्ध है। जैसे वैकुण्ठ महाविष्णु आदि। अतः वह शुद्ध बुद्ध मुक्त, सत्य आनन्द स्वरूप हैं।

अविद्या प्रपंच–यह नित्य और अनित्य है, शिष्य ने पूछा कैसे? उत्तर देते हैं कि प्रवाह से नित्य है, कितनी बार सृष्टि प्रलय हुए किसी को पता नहीं। इसलिए नित्य कहा। वेदादि ग्रन्थों में प्रलय सुनी जाता है। इसलिए अनित्य है। माया के संकुचित होने पर प्रलय तथा विकसित होने पर सृष्टि होती है। परमार्थ दृष्टि में कुछ भी नहीं है। भगवान् गौड़ पादाचार्य जी ने कहा है–

न निरोधो न चोत्पत्तिः न बद्धो नैव साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तः इत्येषा परमार्थता॥

जगत् की उत्पत्ति और प्रलय जिसमें नहीं है न जन्मादि के बन्धन है, न मुक्त है, न मुमुक्षु है इसे परमार्थता कहते हैं अर्थात् एक ब्रह्म के अतिरिक्त जिसमें दूसरा है ही नहीं, परमार्थतः एकमात्र केवल ब्रह्म ही है।

ब्रह्म में एकत्व कैसे?–शिष्य ने पूछा, हे भगवन्! जब ब्रह्म सजातीय, विजातीय स्वगत भेद से रहित है तथा पंच भ्रान्तियों से रहित है, तो फिर ब्रह्म चतुष्पाद कैसे। यदि वह वास्तव में चार पादों से युक्त है तो फिर ब्रह्म अद्वितीय नहीं रहा। गुरु जी उत्तर देते हैं हे शिष्य! इसमें विरोध नहीं है। ब्रह्म एक ही है। जैसे एक रुपये में चार चवन्नियां होती हैं किन्तु रुपया एक की है। उसी प्रकार ब्रह्म एक है। ब्रह्म में भेद तो तब सिद्ध होता, जब पशु के समान ब्रह्म में चार पाद होते। विषय को सरलता से समाझाने के लिए ब्रह्म के चार पादों की कल्पना की है। अन्य शाखा की उपनिषदों में भी उसका स्वरूप बताया है। **तमस्तुपरंज्योतिः परमानन्द लक्षणम्। पादत्रयात्मकं ब्रह्म इति। वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। सर्वेषां ज्योतिषांज्योतिः तमसः परमुच्यते॥ सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्य वर्णं**

परमज्योतिः तमसः उपरि विभाति ॥ येदकमव्यक्तमनन्त रूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात्। तदेव ऋतं तदसत्माहुः। तदेव सत्यं, तदेव ब्रह्म परमं विशुद्धं कथ्यते ॥ तमः शब्देन अविद्या कथ्यते ॥

अर्थ–वह परमात्मा परमानन्द लक्षण परमज्योति है। अर्थात् स्वयं प्रकाश है। तीन पाद से युक्त ब्रह्म केवल अविनाशी है, सूर्य के समान प्रकाशमान, अज्ञान से परे, उसे महान् पुरुष को मैं जानता हूं। उसको जानकर विद्वान् इसी लोक में या शरीर में मुक्त हो जाता है अर्थात् जीवन मुक्त होता है। ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का दूसरा मार्ग नहीं है। वह अज्ञान से परे प्रकाशों का भी प्रकाश है। वह सूर्य के समान अविद्या के ऊपर प्रकाशित होता है। वह एक अव्यक्त अनन्त रूप है। विश्व रूप, पुराण पुरुष अज्ञान से परे है। वह परमार्थिक सत्य स्वरूप है। वह समस्त दोषों से रहित परम ब्रह्म कहा जाता है। यहां तमः शब्द से अविद्या कही गई है।

छात्र ने गुरु जी से पूछा, हे गुरुदेव! आत्मराम, अनादि नारायण का निमेषोन्मेष (आंख का खोलना बन्द करना) कैसे होता है। गुरु जी उत्तर देते हैं–प्राग् दृष्टि उनका उन्मेष है प्रत्यक् दृष्टि निमेष है अर्थात् अन्तःकरण से मिले चैतन्य जीव उसका निमेष है। प्राग् दृष्टि से (समष्टि सर्व व्यायापि चैतन्य) उन्मेष है। जितनी देर उन्मेष रहता है उतनी देर निमेष रहता है। अविद्या की स्थिति काल उन्मेष है और प्रलय काल निमेष है। भगवान् के आंख खोलते ही सृष्टि और आंख बंद करते ही प्रलय हो जाता है। सृष्टि काल में चिरकाल तक सोये हुए जीव अपनी वासना सहित अविद्या से उत्पन्न होते हैं। जब तक कार्य सहित अविद्या रहती है। तब तक जीव, जन्म मरण को प्राप्त करता है। कार्य का अर्थ है अन्तःकरण और कारण का अर्थ है माया। इन दो उपाधियों से जीव ईश्वर का भेद दीखता है। कार्य उपाधि वाला जीव है। कारण उपाधि वाला ईश्वर है। ईश्वर की आज्ञाकारिणी तथा वशवर्तिनी महामाया है। यह ईश्वर के संकल्प के अनुसार उनकी आज्ञा प्राप्त करके भगवान् महाविष्णु के क्रीड़ा मन्दिर शरीरों का निर्माण करती है। भगवान् विष्णु का जो भजन करते हैं। वे महामाया के द्वारा निर्मित संसार सागर से तरते हैं। अन्य लोग नहीं। उसी माया का सतोगुण का परिमाण अन्तःकरण है। जीवों के उन अन्तःकरणों में उनके संस्कार तथा वासना सहित जब प्रतिबिम्ब पड़ता है उन

प्रतिबिम्बों को जीव कहते हैं। **(त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् का पूर्व काण्ड पूर्ण हुआ।)**

महानारायणोपनिषद् उत्तरकाण्ड प्रारम्भ

शिष्य पूछता है कि हे भगवन्! सर्वथा नष्ट हुई अविद्या कैसे उत्पन्न होती है? गुरु जी उत्तर देते हैं–जैसे गर्मी की ऋतु में नष्ट हुए मेंढक वर्षा के आरम्भ में पैदा हो जाते हैं, वैसे ही नष्ट हुई अविद्या सृष्टि के आदि में फिर उदित होती है। अविद्या नष्ट न होकर नष्टवत् प्रतीत होती है।

शिष्य ने फिर पूछा कि किस कारण जीव को संसार का भ्रम है? इसकी निवृत्ति कैसे होगी? मोक्ष का लक्षण, साधन कहिये। सायुज्य मुक्ति कैसी है? इन सबका तत्त्व मुझ से बताने की कृपा करें।

शिष्य का प्रश्न सुनकर प्रसन्न होकर अति आदर पूर्वक गुरु जी ने कहा, सावधान होकर सुनो, अनादि वासना तथा कुसंस्कारों के कारण अनन्त जन्मों से जीव संसार चक्र में भ्रमण करता आ रहा है। आत्मा-अनात्मा का ठीक विवेक न होने के कारण इसकी शरीर में आत्मबुद्धि हो गई है। मैं अज्ञानी तथा अल्पज्ञ हूं। इस भ्रम जाल में पड़े हुए जीव की जन्म मरण से छूटने की इच्छा नहीं होती, स्वप्नवत् इस संसार में पड़ा हुआ जीव अनेकों सुख दुखों को भोगते हुए कष्ट पाता है। अनन्त जन्मों के पुण्य से इसमें भगवद् भक्ति उत्पन्न होती है। व्यास जी ने महाभारत अनुस्मृति में कहा है–

जन्मान्तरसहस्त्रेषु तपोध्यान समाधिभिः।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते॥

हजारों जन्मों की तपस्या ध्यान तथा समाधि से तीन प्रकार के पापों के क्षीण हो जाने पर भगवान् कृष्ण की अभेद भक्ति उत्पन्न होती है। गीता के छठे अध्याय में भगवान् ने भी कहा है, **"अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्।"** अनेक जन्मों के शुभ कर्मों के परिपाक से जीव ज्ञान द्वारा परागति को प्राप्त होता है। अन्तिम जन्म में जब ज्ञान वैराग्य सहित भक्ति का उदय होता है। गुरु जी शिष्य से कहते हैं कि तब सत्संग मिलता है, उनसे विधि मुख, निषेध मुख जानकर ज्ञान प्राप्त करता है।

विधि मुख–ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, अनन्त सर्वव्यापी, परिपूर्ण है। इन वचनों से भगवान् के स्वरूप का ज्ञान होता है। इसे विधि मुख कहा गया है।

निषेध मुख–'नेति नेति' के द्वारा ब्रह्म का वर्णन निषेध मुख है। जैसे परमात्मा के तीन शरीर, मन, इन्द्रियां, प्राण, अन्तःकरण नहीं हैं। नहीं, नहीं द्वारा सबका निषेध करके जो शेष अधिष्ठान बचता है। वही ब्रह्म है। यह विवेक है उससे सदाचार में प्रवृत्त होता है। सदाचार का पालन करने से पाप नष्ट होते हैं। तब अन्तःकरण शुद्ध होता है। तब शिष्य का अन्तःकरण सद्गुरुओं के कृपा कटाक्ष की इच्छा करता है। गुरुओं की कृपा से सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। सभी बन्धन निवृत्त होते हैं। मुक्ति मार्ग के विघ्न दूर होते हैं। तब जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। जैसे जन्मांध को रूप ज्ञान नहीं हो सकता। वैसे ही बिना गुरु के उपदेश के करोड़ों कल्पों में तत्त्व ज्ञान नहीं हो सकता। शिष्य को शास्त्राध्ययन से अक्षर ज्ञान भले ही हो जाए, किन्तु ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे हाथ से छोड़ी हुई बंदूक की गोली अथवा तोप का गोला लक्ष्य भेद नहीं कर सकता, वैसे ही पुस्तक में लिखा हुआ मन्त्र केवल अक्षर वर्ण मात्र रूप ही है। मन्त्र के दश संस्कार तथा अक्षरों में देवता की शक्ति का आवाहन करने से मंत्र, चैतन्य होकर फलीभूत होताहै। भाव यह है कि पुस्तक का मंत्र हाथ से फेंकी हुई गोली के समान निरर्थक है तथा गुरु मुख से निकला मंत्र, बंदूक की गोली के समान, ब्रह्म प्राप्ति कराने में समर्थ होता है। गुरुओं की कृपा कटाक्ष होने पर शीघ्र तत्त्व ज्ञान होता है। जब गुरुओं की कृपा होती है। तब श्रवण, मनन तथा ध्यान आदि में श्रद्धा उत्पन्न होती है और दुर्वासना ग्रन्थि का नाश होता है। सभी कामनाएं नष्ट हो जाती हैं और हृदय कमल में परमात्मा का आविर्भाव होता है और दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति के बाद वैराग्य उदय होता है। पतंजलि जी ने योग दर्शन में दो प्रकार का वैराग्य कहा है–१. अपर वैराग्य, २. पर वैराग्य।

ऊपर वैराग्य भक्ति ज्ञान सहित जो वैराग्य कहा गया है वह अपर वैराग्य है और यहां पर वैराग्य है। अतः पुनरुक्ति दोष नहीं है।

उस वैराग्य से अनुभूतिजन्य ज्ञान होता है। उसके दृढ़ अभ्यास से विज्ञान परिपक्व होता है और तब जीवन्मुक्ति आनन्द मिलता है और उस विज्ञान रूपी अग्नि में शुभाशुभ

मिश्रित तीनों प्रकार के कर्म वासना सहित नष्ट हो जाते हैं। उसके बाद ज्ञानोत्तर कालीन भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति की अतिशयिता से सम्पूर्ण जगत् नारायण रूप में भासता है। उस जीवन्मुक्त ज्ञानी की जब शरीर त्यागने की इच्छा होती है और वे क्रम मुक्ति चाहते हैं। तब भगवान् विष्णु के पार्षद उन्हें लेने आते हैं।

क्रम मुक्ति का लक्षण तथा स्वरूप–वेदों में दो प्रकार की मुक्ति कही गई है। १. क्रम मुक्ति, २. सद्यो मुक्ति। क्रम मुक्ति वाले ज्ञानी इस शरीर को त्यागने के अनन्तर यदि देवयान मार्ग से होते हुए मुक्त होना चाहते हैं, तो वे इष्टदेव के लोक में जाकर वहां का सुख भोगने के अनन्तर मुक्त होते हैं। सद्यो मुक्ति–जिन ज्ञानियों की कहीं जाने वाली की इच्छा नहीं होती। यहीं पर स्थूल शरीर के साथ ही अन्य दोनों शरीरों का त्याग करके उनका चैतन्य ब्रह्म में लीन हो जाता है। उनके शरीर में इन्द्रियां, मन, प्राण आदि तत्त्व समष्टि तत्त्व में लीन हो जाते हैं। यहां तक सद्योमुक्ति कही। आगे फिर क्रम मुक्ति है। तब वह योगी भगवान् का हृदय में ध्यान करते हुए नौ द्वारों को संयमित करके मन को रोककर, ऊपर को चलने वाली प्राण वायु सहित प्रणव का ध्यान करते हुए धीरे-धीरे वायु को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाते हैं। वहां पर सोऽहम् मंत्र का जप करते हुए जीव और परमात्मा की एकता अनुभव करते हुए, फिर सोऽहम् मन्त्र से सोलह दल कमल में आत्मा का एकीकरण करते हुए, उपचारों से फिर से पूजन कर पांच भौतिक शरीर को त्याग कर कल्पित ब्रह्ममय शुद्ध तेजोमय, निरतिशय आनन्दमय, भगवान् विष्णु का शरीर ग्रहण करके, सूर्य मण्डलान्तर्गत अनन्त दिव्य चरणारबिन्द के अंगूठे से निकली हुई गंगानदी में भावना से स्नान करके, दिव्य वस्त्राभूषणों से अपनी पूजा करके और गुरुओं को नमस्कार करके, प्रणव रूप गरुड़ का ध्यान करके, ध्या नमें प्रकट हुए प्रणव रूपी गरुड़ की पंचोपचार से आराधना कर, गुरु आज्ञा से उनकी प्रदक्षिणा नमस्कारपूर्वक प्रणव रूपी गरुड़ पर बैठकर महाविष्णु के असाधारण चिन्हों से चिन्हित होकर, सम्पूर्ण असाधारण भूषणों से भूषित होकर, सुदर्शन पुरुष को आगे करके, विष्वक्सेन आदि द्वारा रक्षित, भगवान् के पार्षदों से घिरे हुए, आकाश मार्ग से अनेक लोकों का अतिक्रमण करके पुण्य पुरुषों से पूजित ब्रह्मा के सत्यलोक में जाते हैं। ब्रह्मा की पूजा करके तथा सत्यलोकवासियों सहित ब्रह्मा से पूजित होकर शिव लोक में पहुंचते हैं। वहां शिव जी

का ध्यान तथा पूजा करके, शिव गणों सहित शिव जी द्वारा पूजित होकर, सप्तर्षि मण्डल का अतिक्रमण करके सूर्य मण्डल का भेदन कर, त्रिलोकी के कील भूत कीलक नारायण का ध्यान करके, ध्रुव मण्डल में पहुंचते हैं। ध्रुव का दर्शन करके उनसे पूजित होकर शिशुमार चक्र का भेदन कर उनसे पूजित होकर शिशुमार चक्र में विद्यमान सर्वाधार सनातन महाविष्णु की आराधना करके उनसे पूजित होकर ऊपर जाकर परमानन्द को प्राप्त करते हैं। वहां वैकुण्ठवासी दर्शन स्वागत के लिए आते हैं। उन सब का पूजन करके और उनसे पूजित होकर विरजा नदी को प्राप्त कर भगवान् का ध्यान करते हुए, सूक्ष्म भोगों के साधन, अपंची कृत पंचभूतों के सूक्ष्म शरीर को वहां छोड़कर केवल मंत्रमय दिव्य शरीर से विष्णु के सारूप्य विग्रह को धरण कर उनके प्रदक्षिणा नमस्कार के बाद ब्रह्ममय वैकुण्ठ में प्रवेश करके वहां, स्नान तथा पूजा के अनन्तर उस लोक के दिव्य राज भवन, तोरण, विमान, उपवन आदि का ब्रह्मानन्दमय ही हैं, वहां की प्रत्येक वस्तु उपमारहित, नित्य, निर्दोष तथा अचल है, वहां पर कुछ काल निवास कर आगे जाते हैं। उसके ऊपर निर्विषय आनन्द स्वरूप दिव्य तेज है। उसके भीतर शुद्ध बोधानन्द प्रकाशित होता है। उसके भीतर चिन्मयानन्द वेदिका है। उस वेदिका में परमतेज से युक्त, परम मंगलमय आसन है। उस कमल की कर्णिका में शुद्धबोध स्वरूप शेष जी का आसन हैं। उसके ऊपर सबका परिपालन करने वाले भगवान् नारायण विराजमान है। योगी उनका ध्यान करके उनकी अनेक उपचारों से आराधना प्रदक्षिण नमस्कार करके उनकी आज्ञा प्राप्त कर पांच वैकुण्ठों का अतिक्रमण करके विराट् कैवल्य को प्राप्त कर उपासक परमानन्द को प्राप्त करते हैं। **(इति श्री त्रिपाद विभूति महा नारायणोपनिषद् में संसार सागर के संतरण के उपाय कथन द्वारा परममोक्ष का निरूपण करने वाला पांचवा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।)**

॥ इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का तेरहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

विद्या तथा अविद्या प्रपंच का विस्तृत वर्णन

वह उपासक परमानन्द को प्राप्त करके ब्रह्माण्ड के सप्त आवरणों का भेद नकरके उनके स्वरूप को देखकर परमानन्द स्वरूप का अनुभव करके आगे चलते हैं। सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थ ब्रह्मादि देवताओं का तथा सप्तर्षि मण्डल का जो ब्रह्माण्ड के भीतर हैं, एक भाग का ही वर्णन करते हैं। पूरे ब्रह्माण्ड को नहीं जानते तथा ब्रह्माण्ड के बाहर जगत् का भी उन्हें ज्ञान नहीं, क्योंकि उनको ब्रह्माण्ड के बाहर और भीतर का भी ज्ञान नहीं। फिर मोक्ष का ज्ञान होना तो बहुत दूर की बात है। भाव यह है कि ब्रह्माण्ड के भीतर का ज्ञान तो अविद्या प्रपंच है तथा भगवान् की नित्य लीला का अन्तरंग जगत् विद्या प्रपंच है। पहले ब्रह्माण्ड के स्वरूप को बताते हैं। यह ब्रह्माण्ड मुर्गी के अण्डे के आकार का सोने के समान, करोड़ों सूर्यों के समानप्रकाशमान, चार प्रकार की सृष्टि से युक्त, पंच महाभूतों से ढका हुआ तथा तमोगुण से उत्पन्न महत्तत्व तथा अहंकार से घिरा हुआ है। इस अण्डे की दीवार सवा करोड़ योजन विशाल है। यह इसका पहला आवरण है। अण्डे का प्रमाण सभी दिशाओं में बीस करोड़ योजन का है। इन ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति करने वाला कोई चतुर्मुख, पांच, छः, सात, आठ मुख आदि की संख्या क्रम से, नारायण के रजोगुण से उत्पन्न अनेक कोटि ब्रह्मा दिखाई देते हैं। तब नारायण के सत्व, तमोगुण से उत्पन्न हुए, विष्णु और रुद्र विद्यमान है। सारांश यह है कि यह साधक नौ वैकुण्ठों का अतिक्रमण करने के अनन्तर तुलसी वैकुण्ठ में प्रवेश करते हैं। तदनन्तर अन्तिम वैकुण्ठ में रहने के बाद विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। पितामह ब्रह्मा जी ने भगवान् विष्णु से पूछा हे भगवन्! शुद्ध अद्वैत परमानन्द स्वरूप ब्रह्म में अनेकों वैकुण्ठ राजमहल विमान आदि के अनन्त भेद कैसे है—महा विष्णु ने कहा जैसे-एक ही शुद्ध स्वर्ण से कड़ा, मुकुट, कुण्डल आदि सोने के अनेक भेद हो जाते हैं। जैसे समुद्र का जल ही स्थूल, सूक्ष्म भेद से फेन, बुद बुद, तरंग तथा पत्थर के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे पृथ्वी के पर्वत, वृक्ष, लता आदि अनन्त भेद हैं। जैसे ब्रह्मा

के द्वारा बछड़ों तथा बालकों का हरण हो गया। तब अद्वैत परमानन्द भगवान् कृष्ण ही बछड़े, बछड़ियां, उनके गले के घुंघरू आदि के रूप में परिणत हुए। भगवान् ही गोपबालक बन गए। उनके जैसे वस्त्र, छड़ी आदि उनके पास थे। भगवान् ही उन सब के रूपों में परिणत हुए थे। वैसे ही अद्वैत परमानन्द लक्षण ब्रह्म ही मेरा पारमार्थिक स्वरूप है। मुझ से अतिरिक्त अणु मात्र भी नहीं है। ब्रह्मा जी ने पूछा, हे भगवन्! परम वैकुण्ठ ही परम मोक्ष है। ऐसा वेद में सुना जाता है, किन्तु आपने तो अनन्त, समुद्र तथा मूर्तियों का वर्णन किया तब भगवान् ने कहा हे ब्रह्मन्! एक ही अविद्या अन्त में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड आवरणों सहित सुनी जाती है। उस एक ब्रह्माण्ड में कई लोक, वैकुण्ठ तथा अनन्त विभूतियां हैं। फिर तीन पादों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या। निरतिशय आनन्द स्वरूप हैं। इसी का नाम मोक्ष है। वह तीन पादों में रहता है। तीन पाद ही परम वैकुण्ठ और परम कैवल्य है।

फल श्रुति–अंत में भगवान् ब्रह्मा से कहते हैं कि भक्ति के बिना ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता। अतः तुम सभी उपायों को छोड़कर भक्ति का आश्रय ग्रहण करो। भक्ति से असाध्य की प्राप्ति भी होती है। इस उपनिषद् का पाठ करने वाले के जन्म मरण के बन्धन कट जाते हैं। देवता रात दिन उसकी सेवा करते हैं। उसके पाठ से सभी ज्ञाताज्ञात पापों से छूट जाता है। सब लोकों को जीत लेता है। सात करोड़ मन्त्रों के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है। सम्पूर्ण वेदान्त के रहस्यों का मर्मज्ञ हो जाता है। वह अद्वैत परमानन्द स्वरूप ब्रह्म हो जाता है। इस उपनिषद् को गुरु भक्ति से रहित को न सुनाये। गुरु भक्त होने पर भी जो गुरु सेवा नहीं करता, उसे भी न सुनाये। तपहीन, नास्तिक, ढोंगी, मेरी भक्ति से रहित, द्वेषी, मेरी निन्दा करने वाले को उपदेश न करे। गूढ रहस्य से भरी हुई इस उपनिषद् को जो मेरे भक्तों को सुनाता है, मेरी भक्ति करके वह मुझे प्राप्त करता है। हम दोनों के सम्वाद को जो पढ़ेगा, वह मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त करेगा।

ऐसा कहकर महाविष्णु मौन हो गये, ब्रह्मा जी ने उन्हें प्रणाम, स्तुति, पूजन तथा परिक्रमा की तब भगवान् अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा जी ब्रह्म लोक में चले गये। भगवान्

के सदुपदेश के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से ब्रह्मा ने जीवन्मुक्ति प्राप्त की। आयु की समाप्ति पर तीनों शरीरों से रहित होकर विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करेंगे।(**इस त्रिपाद विभूति महानारायण उपनिषद् का परम सायुज्य मुक्ति निरूपण करने वाला आठवां अध्याय पूरा हुआ–उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण।**)

॥ इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद का चौदहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

गरुड़ पुराण का तेरहवां अध्याय–गरुड़ पुराण के अन्तर्गत भगवान् का गरुड़ जी को उपदेश। गरुड़ जी ने पूछा, हे दयासिन्धो अज्ञानी जीवों की दुर्गति मैंने सुनी। अब सनातन मोक्ष का उपाय सुनना चाहता हूं। भगवान् बोले, जिसके सुनने से तुम संसार से पार हो जाओगे, उसे कहता हूं। जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद मनुष्य के बिना तत्त्व ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। उन मनुष्यों में कोई एक पुण्य की अधिकता से मुक्ति का अधिकारी होता है, क्योंकि मनुष्य शरीर को प्राप्त करके ग्राम नगर, क्षेत्र तो बार-बार प्राप्त होता है, किन्तु भक्ति, ज्ञान दुर्लभ है। ज्ञान से ध्यान करते हुए जीव शीघ्र मुक्त होता है। इस मनुष्य शरीर में नरक व्याधि की चिकित्सा यदि नहीं करता तो औषधि रहित दूसरे पशु पक्षी आदि के शरीर में जाकर क्या कर सकेगा। इस शरीर में जब तक दुख या आपत्ति प्राप्त न हो, तभी तक साधन कर लेना चाहिए। जब तक शरीर है तब तक तत्त्व ज्ञान का अभ्यास करे, क्योंकि घर के एक कोने में आग लग जाने पर कुवां खोदने से कोई लाभ नहीं। जल के फेन के समान शरीर को क्षण भंगुर जान कर मोक्ष मार्ग में जुट जाए। संसार के भोगों में आसक्त व्यक्ति "**ब्रह्मज्ञोऽहमस्मि**" ऐसा वाचिक ज्ञानी कर्म तथा ज्ञान मार्ग दोनों से अन्त्यज के समान भ्रष्ट हो जाता है। गृहस्थ तथा वानप्रस्थ इन दोनों में जब घर छोड़कर वनवासी हो जाता है, किन्तु घर की आसक्ति यदि नहीं छूटती तथा गधों के समान जो नंगे घूमते हैं वे गधों के समान ही हैं। यदि मृत्तिका या भस्म शरीर पर लगाने से मुक्ति होती है तो कुत्ते गधे भी भस्म में लेटते हैं उन्हें भी मुक्ति मिल जाती है। जो निरन्तर वन में वास करते शाक जल का ही आहार करते हैं, ऐसा आहार करने वाले चूहे गीदड़ आदि भी मुक्त हो जाने चाहिए। जो लोग

कहते हैं कि गंगा के किनारे रहकर स्नान करने से मुक्ति मिल जाएगी। जो जीवन पर्यन्त गंगा में रहने वाले मछलियां तथा मेंढक क्या मुक्त हो जाते हैं। हे खगेश्वर! जितने भी कर्म हैं। मनोरंजन करने वाले हैं। ज्ञान साक्षात् मुक्ति का कारण है। जो षट् दर्शन के विद्वान् दर्शन रूपी कूप में पड़े रहते हैं। जिन्हें केवल वाचिक ज्ञान है। यथार्थ नहीं वे जन्म मरण के पाश में पशुओं के समान जकड़े हुए हैं। कुतार्किक लोग छः उर्मियों से ग्रसित शास्त्र रूपी घोर सागर में डूबे रहते हैं, वेद तथा पुराण के जानने वाले विद्वान् परमार्थ तत्त्व को यदि नहीं जानते उनकी शास्त्रों की व्याख्या काक भाषण के समान है। परम तत्त्व से विमुख विद्वान् यह ज्ञान है यह ज्ञेय है रात दिन शास्त्र पढ़ते हैं वे लोग उन्मनी अवस्था का कथन करते हैं, किन्तु स्वरूप का यदि अनुभव नहीं करते। तो उनका वह ज्ञान वैसा है, जैसे करछीखीर, हलुवा आदि के अन्दर रहती हुई भी उसके स्वाद को नहीं जानती। पूजनीय पुरुष का अथवा देवता का मस्तक पुष्प के भार को ढोता है, किन्तु उसकी गन्ध को नासिका जानती है। इसी प्रकार विद्वान् वेद शास्त्र को पढ़ते हैं, किन्तु तत्त्व बोध अति दुर्लभ है। अपने हृदय में आत्म तत्त्व को न जानकर मूढ शास्त्रों में उसे खोजते हैं। जैसे ग्वाला अपने बगल में दबे हुए बकरे के बच्चे को कुएं में परछाई देकर उसे खोजता है। संसार के अज्ञान का नाश शब्द ज्ञान से उसी प्रकार नहीं हो सकता। जैसे दीपक बत्ती की केवल चर्चा करने से अंधकार दूर नहीं हो सकता। बुद्धिहीन का शास्त्र अंधे के दर्पण के समान है और बुद्धिमानों का शास्त्र का पठन तत्त्व ज्ञान के लिए है।

इदं ज्ञानंमिदं ज्ञेयं, सर्वतच्छ्रोतुमिच्छति। दिव्यवर्ष सहस्त्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥५५॥ अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुः विध्न कोटयः। तस्मात्सारं विजानीयात् क्षीरं हंस इवाम्भसि ॥५६॥ अभ्यस्य वेद शास्त्राणि तत्त्व ज्ञात्वाथ बुद्धिमान्। पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्रणिसन्त्यजेत् ॥५७॥ यथामृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्। तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य न शास्त्रेण प्रयोजनम् ॥५८॥ न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्र पठनादपि। ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ॥५९॥ नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम्। तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥६०॥ मुक्तिदा गुरुवागेका विद्या सर्वाविडम्बिका। काष्ठ

भार सहस्त्रेषु ह्येकं संजीवनं परम् ॥६१॥ अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं क्रियायास विवर्जितम्। गुरु वक्त्रेण लभ्येत नाधीतागम-कोटिभिः ॥६२॥ आगमोत्थं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते। शब्द ब्रह्मागाममयं, परब्रह्मविवेकजम् ॥६३॥ अद्वैत केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे। मम तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैत-विवर्जितम् ॥६४॥ द्वे पदेबन्ध मोक्षाय न ममेति ममेतिच। ममेति वद्ध्यते जन्तुर्नममेतिप्रमुच्यते ॥६५॥ तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥६६॥ तावत् कर्माणिदीयन्ते यावत् संसार वासना यावदिन्द्रिय चापल्यं तावत्तत्त्व कथा कुतः ॥६७॥ यावद्देहाभि-मानश्च ममता यावदेवहि। यावत् प्रयत्न वेगोस्ति यावत्संकल्प कल्पना ॥६९॥ यावन्नोमनसः स्थैर्य न यावच्छास्त्र चिन्तनम्। यावन्नगुरु कारुण्यं तावत्तत्त्व कथा कुतः ॥७०॥ तावत्तपो व्रतं तीर्थ जपहोमार्चनादिकम् वेद शास्त्रागम कथा यावत्तत्वं न विन्दति ॥७१॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा। तत्त्व निष्ठोभवेत्ताक्ष्र्य्यदिच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥७२॥ धर्म ज्ञान प्रसूनस्य, स्वर्ग मोक्षफलस्य च। तापत्रयादि संतप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत् ॥७३॥ तस्माद्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्री गुरोर्मुखात्। सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोर संसार बन्धनात् ॥७४॥ तत्त्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं श्रृणु वक्ष्यामि तेऽधुना। येनमोक्षमवाप्नोति ब्रह्म निर्वाण संज्ञकम् ॥७५॥ अन्त काले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः। छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहांदेहेन चेतसम् ॥७६॥ गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्य तीर्थजलाप्लुतः। शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥७७॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्। मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्म वीजमविस्मरन् ॥७८॥ अहं ब्रह्मं पर धाम ब्रह्माहंपरमं पदम्। एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥८०॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मव्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥८१॥ न यत्र दाम्भिकाः यान्ति ज्ञान-वैराग्य-वर्जिताः। सुधियस्तां गतिं यान्ति तानहं कथयामि ते ॥८२॥ निर्मान मोहा जितसंग दोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः द्वन्द्वै र्विमुक्ता सुख दुःख संज्ञै र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत ॥८३॥ ज्ञानह्रदे सत्यजले, राग द्वेष मलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे सवै मोक्ष मवाप्नुयात् ॥८४॥ प्रौढ

वैराग्यमास्थायभजते मामनन्यभाक्। पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा सवैमोक्ष मवाप्नुयात्॥८५॥ व्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः। म्रियते मुक्ति क्षेत्रेषु सवैमोक्षमवाप्नुयात्॥८६॥ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्चीह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः॥८७॥

यह ज्ञान है। यह जानने योग्य है। इन दोनों के सम्बन्ध में यदि जानने की इच्छा करता है तो हजार दिव्य वर्ष की आयु पाकर भी शास्त्र का अन्त नहीं पा सकता क्योंकि शास्त्र अनेक हैं, आयु कम है, करोड़ों विघ्न आते हैं। अतः जिस प्रकार हंस जल में मिले हुए दूध को ले जाता है, उसी प्रकार सार का ग्रहण करे। वेद शास्त्रों का अभ्यास करके बुद्धिमान पुरुष तत्त्व का ग्रहण करके सभी शास्त्रों को वैसे ही त्यागे। जैसे धान चाहने वाला पलाल को कूट कर धान लेकर पलाल का त्याग कर देताहै। हे गरुड़! जैसे अमृत से तृप्त हुए को भोजन की आवश्यकता नहीं रहती वैसे ही तत्त्व ज्ञानी को शास्त्र की आवश्यकता नहीं रहती। वेद शास्त्रों के पढ़ने मात्र से मुक्ति नहीं मिल सकती, किन्तु हे वैनतेय! केवल ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति का कारण आश्रम, दर्शन शास्त्र तथा कर्म नहीं, किन्तु ज्ञान ही मुक्ति का कारण है॥९०॥ मुक्ति, सद्गुरु की वाणी से ही मिल सकती है। अन्य सभी विद्याएं ठगी ही हैं जैसे हजारों मन लकड़ी में एक संजीवनी ही जीवन दान करने में समर्थ है। क्रिया तथा कर्म से रहित अद्वैत कल्याणकारी शिव ही परम तत्त्व है। उसकी प्राप्ति गुरु वचन से ही होती है। हजारों ग्रन्थों के पढ़ने से नहीं। ज्ञान दो प्रकार का है–१. शास्त्र पढ़ने से ज्ञान, २. स्वाभाविक विवेक ज्ञान। शब्द का ज्ञान शास्त्र से होता है और विवेक जन्य ज्ञान परमात्मा की अनुभूति से होता है। कुछ लोग अद्वैत का समर्थन करते हैं, कुछ लोग द्वैत का किन्तु वे दोनों आपस में झगड़ने वाले अज्ञानी परम तत्त्व को जो द्वैताद्वैत से रहित है, उसका अनुभव नहीं करते। अर्थात् वे शब्द ब्रह्म तक ही सीमित रहते हैं। परब्रह्म तक नहीं पहुंचते। दो पद जीव को बन्धन और मोक्ष देने वाले हैं। यह मेरा है। यह बन्धन में डालने वाला है और यह मेरा नहीं है यह मोक्ष देने वाला है॥९५॥ इन ऊपर के श्लोकों में श्लोक ४२ से लेकर ९४वें श्लोक तक वेदादि शास्त्रों की निन्दा सी प्रतीत होती है। वास्तविक नहीं है, किन्तु उन वाचिक

ज्ञानियों के लिए है। शब्द ब्रह्म के ऊपर, पर ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बोध जन्य ज्ञान की प्रशंसा की गई है। क्योंकि गौतम का सूत्र है–

''नहि निन्दनीयं निन्दयितुं प्रवर्त्तते किन्तु विधेयंस्तोतुम्''

निंदनीय की निंदा के लिए निंदा नहीं की जातीहै, बल्कि इष्ट वस्तु की प्रशंसा की जाती है। जैसे दो बजाज अथवा दो पंसारी अपनी वस्तु की प्रशंसा के लिए दूसरे दुकानदार के माल की निंदा करते हैं। उसकी निंदा का प्रयोजन केवल अपने माल को बेचना है। जैसे शिव पुराण में शिव की प्रशंसा तथा विष्णु की ब्याज से निंदा और विष्णु पुराण आदि में इसके विपरीत देखा जाता है, क्योंकि शिव पुराण में शिव कारण ब्रह्म और विष्णु कार्य ब्रह्म है। कारण से कार्य की उत्पत्ति देखी गई है। उसी में उसका लय होता है। कार्य सदैव कारण के अधीन रहता है। अत: इस पुराण में कार्य ब्रह्म की निन्दा है। विष्णु की नहीं। इसी प्रकार विष्णु पुराण के विष्णु कारण ब्रह्म और शिव कार्य ब्रह्म हैं। संयोगवशात् कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म के नाम रूप लीला तथा धाम एक जैसे हैं। अत: गुरु परम्परा से अध्ययन न करने वाले पुराणों के अवान्तर एवं महातात्पर्य को न समझने के कारण, श्रवण के छः लिंगों को न जानने के कारण, भ्रान्ति में पड़ जाते हैं। अत: ऊपर के वचनों से शास्त्र को पढ़कर जीवन में न उतारने वालों की निंदा की गई, शास्त्र की नहीं। इसी प्रकार कर्म, तप, जप, व्रत, तीर्थ, हवन, पूजन आदि की निंदा के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

तब तक कर्म करे, जब तक संसार की वासना तथा इन्द्रियों की चंचलता समाप्त न हो जाए, इनके बिना तत्त्व ज्ञान नहीं हो सकता। जब तक देहाभिमान है, जब तक ममता है, जब तक संकल्प है, जब तक प्रयत्न का वेग है, तब तक मन स्थिर नहीं होता, जब तक शास्त्र का चिन्तन नहीं करता, जब तक गुरुजनों की कृपा नहीं होती, तब तक तत्त्व ज्ञान नहीं हो सकता ॥७०॥ तपस्या, व्रत, तीर्थ, जप, हवन पूजा आदि वेदादि शास्त्रों की कथा तब तक करे जब तक तत्त्व ज्ञान न हो। अत: हे गरुड़! सभी अवस्थाओं में पूर्ण प्रयत्न से तीनों अवस्थाओं तथा कालों में तत्त्व निष्ठ हो। उस मोक्ष रूपी वृक्ष की छाया का आश्रय ले। धर्म ज्ञान जिसके फूल हैं, स्वर्ग मोक्ष रूपी फल हैं। तीन ताप से

रक्षा करने वाले जिसके पत्ते हैं। ज्ञान के द्वारा श्री गुरु के मुख से अनुभूति जन्य ज्ञान प्राप्त करके जीव सुखपूर्वक संसार बन्धन से छूट जाता है। तत्त्व ज्ञानी का अन्तिम कृत्य कहूंगा, जिससे ब्रह्म निर्वाण रूप मोक्ष प्राप्त होता है। अन्तिम समय साधक असंग रूपी शस्त्र से इच्छाओं का त्याग करके धीर पुरुष गृहस्थी से संन्यास लेकर पुण्य तीर्थ में वास करे। स्नान करके एकान्त स्थान में बैठे। मन तथा प्राणों को जीतकर पवित्र मन से तीन मात्रा वाले प्रणव का अभ्यास करे। बुद्धि रूपी सारथी की सहायता से, विषयों में तथा कर्म में स्थित मन के द्वारा इन्द्रियों को विषयों से हटाकर शुभ मार्ग में लगावे। फिर चिन्तन किसका करे। इस पर कहते हैं। मैं ही परब्रह्म, स्वयं प्रकाश, ब्रह्म तथा परम पद हूं, ऐसा चिन्तन करके अपने अन्तःकरण को निर्गुण ब्रह्म में लगावे तथा ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए और मेरा स्मरण करते हे यति शरीर त्याग करता है। वह परागति को प्राप्त करता है। जिस गति को ज्ञान वैराग्य रहित ढोंगी लोग नहीं प्राप्त कर सकते। किन्तु तीनों गुणों से रहित आत्मवेत्ता प्राप्त करते हैं। उसे मैं तुमसे कहता हूं ॥८२॥ निरभिमानी अज्ञान तथा संग दोष से रहित, सभी कामनाओं से रहित, नित्य अध्यात्म का चिन्तन करने वाले, सुख-दुख आदि द्वन्द्वों से रहित, विवेकी महात्मा अविनाशी पद को प्राप्त करते हैं ॥८३॥ ऐसे ज्ञानी किस तीर्थ में स्नान करते हैं। उसे कहते हैं ज्ञान रूपी सरोवर जिसमें राग द्वेष रूपी मल को नष्ट करने वाला सत्यरूपी जल भरा है। ऐसे मानस रूपी तीर्थ में जो स्नान करता है। वह निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त करता है ॥८४॥ अनन्य भाव से मेरा भजन करने वाला, दृढ़ वैरग्य का आश्रय लेकर सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म को जो सर्वत्र देखता है। ऐसे निर्मल चित्त वाले यति निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो घर छोड़कर मरने की इच्छा से तीर्थ वास करता है। मुक्ति क्षेत्रों में मरता है। वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है। वे मुक्ति क्षेत्र हैं अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार (मायापुरी), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जैन) तथा द्वारिकापुरी यह सात पुरी मुक्तिको देने वाली हैं ॥८७॥

इति कथितं ताक्ष्र्य मोक्ष धर्म सनातनम्।
ज्ञान वैराग्य सहितं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥८८॥

हे गरुड़! यह अनादि परम्परा से चला आया हुआ मोक्ष धर्म मैंने तुम्हें बताया। ज्ञान वैराग्य युक्त मनुष्य इसे सुनकर निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है ॥८८॥ **(इस प्रकार गरुड़ पुराण के प्रेत कल्प के अन्तर्गत नारायण गरुड़ सम्वाद के रूप में तेरहवां अध्याय पूर्ण हुआ।)**

॥ इति द्वितीय परिच्छेद में चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय परिच्छेद में पन्द्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

प्रकीर्ण विषय

१. मातृतीर्थम्– नास्ति मातृ समं तीर्थं पुत्राणां तारणाय च।
हितायात्र परत्रार्थं यैस्तु माता प्रपूजिता ॥१॥

२. पितृ तीर्थ– वैदैरपि च किं पुत्र पिता येन प्रपूजितः।
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह ॥२॥

३. गुरु तीर्थ– अज्ञान तिमिरान्धत्वं गुरूः शीघ्रं प्रणाशयेत्।
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणां हितचिन्तकः ॥३॥

४. भक्त तीर्थम्– तीर्थभूतोहरेर्भक्तः स्वयं पूतश्च पावकः।
येन भस्मी कृतो लोके पापपुंजो हि सुव्रत ॥४॥

५. पतितीर्थम्– प्रयाग पुष्कर समौ पत्युः पादौ स्मृतावतः।
स्नातव्यं सततं स्त्रीभिस्तीर्थ भूतो सरोवरे ॥५॥

६. पत्नीतीर्थम्– नास्ति पत्नी समंतीर्थ भूतले तारणाय तु।
यस्य गेहे सती नारी सधन्यः पुरुषोमतः ॥६॥

७. मित्रतीर्थम्– सम्पत्तौ च विपत्तौ च यस्तिष्ठति सदात्रवै।
मित्रतीर्थं परलोके मुनिभिः परिभाषितम् ॥७॥

८. विप्रतीर्थम्– जंगमं विप्रतीर्थं तद्वेद पूतं च निर्मलम्।
यस्य वाक्सलिलेनैव शुद्ध्यन्तिमलिनोजनाः ॥८॥

तीर्थाष्टकमिदं पुण्यं श्री द्विजेन्द्र विनिर्मितम्।
सेवितव्यं सदा भक्त्या भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ॥९ ॥

अर्थ–जिसने माता की सेवा की उसके लिए इस लोक और परलोक में हित करने वाला तथा संसार सागर से तारने वाला माता के समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं है ॥१ ॥

हे पुत्र! जिसने पिता की पूजा की है। उसे वेद पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्यों में पिता की पूजा ही धर्म तथा तीर्थ है। अर्थात् माता-पिता की सेवा करने वाले का ही वेद पाठ फलीभूत होता है ॥२ ॥

शिष्यों का हित चिन्तक गुरु ही परम तीर्थ है। अज्ञान रूपी अंधकार का शीघ्र नाश करते हैं ॥३ ॥

हे सुव्रत! तीर्थ मूर्ति हरि भक्त स्वयं अग्नि के समान पवित्र हैं लोक में जिसने पापों को भस्म कर दिया है ॥४ ॥

स्त्रियों के लिए पति देव के चरण कमल प्रयाग तथा पुष्कर के समान हैं। अतः पति के चरण रूपी सरोवर में निरन्तर स्नान करना चाहिए ॥५ ॥

जिसके घर में पतिव्रता नारी है। वह पुरुषों में धन्य है। पृथ्वी पर संसार से तारने के लिए पत्नी के समान दूसरा तीर्थ नहीं है ॥६ ॥

सम्पत्ति तथा विपत्ति में जो सदा सहायता करता है। मुनियों के द्वारा ऐसे मित्र को सदा परम तीर्थ कहा गया है ॥७ ॥

ब्राह्मण को जंगम तीर्थ कहा गया है। जो वेद की निर्मल वाणी रूपी जल से मनुष्यों के मन में मैल को धोता है ॥८ ॥

इस प्रकार श्री द्विजेन्द्र द्वारा रचित इस पवित्र तीर्थाष्टक का भक्तिपूर्वक सदा सेवा करना (पाठ करना) चाहिए। यह भुक्ति और मुक्ति को देने वाला है ॥९ ॥

॥ रात्रि शयन स्तुति ॥

रात्रि में सोने से पूर्व नीचे लिखे मंत्रों को पढ़ना चाहिए, इससे रात्रि मंगलमय बीतती है। चोर सर्प आदि का भय नहीं होता। मंगलमय स्वप्न होते हैं।

जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः।
अटव्यां नार सिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ॥१॥

(१. वन में)

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महावलः।
कपिल मुनिरास्तीकः पंचैते सुखशायिनः ॥२॥
सर्पापसर्प भद्रन्ते दूरं गच्छ महाविष!।
जन्मेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीक वचनंस्मर ॥३॥
आस्तीक वचनं श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशयवृक्ष फलं यथा ॥४॥
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति संहार कारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसःप्रभुः ॥५॥
तिस्रोभार्याःकफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।
तासां स्मरण मात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः ॥६॥

तीसरे और चौथे श्लोक की अन्तर्कथा

परीक्षित की मृत्यु के अनन्तर अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए जन्मेजय ने सर्प यज्ञ किया। आवाहन मंत्रों के प्रभाव से तीनों लोकों के सर्प खिंच खिंचकर हवन कुण्ड में गिरने लगे। तब भयभीत होकर तक्षक इन्द्र की शरण में गया। इन्द्र ने उसे अभयदान दिया। तक्षक के न आने पर जनमेजय ने आचार्य से पूछा कि तक्षक क्यों नहीं आ रहा है। दिव्य दृष्टा आचार्य ने कहा कि वह इन्द्र के सिंहासन से लिपटा है। तब राजा ने प्रार्थना की कि इन्द्र को सिंहासन सहित आकर्षण मंत्र से हवन कुण्ड में होम कर दो। अथर्ववेद के अभिचार मंत्रों से इन्द्र तक्षक तथा सिंहासन सहित खिंचे हुए बड़े वेग से नीचे आने लगे। तब इन्द्र ने आत्म रक्षा के लिए ब्रह्मा जी से प्रार्थना की। ब्रह्मा जी आस्तीक को लेकर यज्ञ स्थल में गये। आस्तीक ऋषि ने राजा से सर्पों को अभय दान देकर सर्प यज्ञ को बन्द करने के लिए आग्रह किया। आगे फिर तक्षक

किसी को न काटे, यह वरदान लेकर सर्प यज्ञ बन्द कर दिया। तब आस्तीक ने सर्पों के प्रति कहा हे सर्पो! आज से अगर कोई मेरा नाम लेवे तो तुम उसे मत काटना यदि काटोगे तो तुम्हारे सिर के सैंकड़ो टुकड़े हो जाएंगे। तब उक्त दोनों मन्त्रों के पढ़ने से सर्प का भय नहीं रहता।

हे महा विषैले सर्पो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम यहां से शीघ्र दूर चले जाए। जन्मेजय के यज्ञ में आस्तीक के वचनों का स्मरण करो, आस्तीक के वचनों को सुनकर जो सर्प वापस नहीं जाता है। शीशम के वृक्ष के फल के समान उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। इन दोनों मंत्रों को पढ़कर अपने घर तथा बाहर नित्य प्रति तथा रविवार के दिन गाय के कच्चे दूध का जो छींटा देताहै। उस घर में कभी सर्प का भय नहीं रहता। यदि मंत्र कण्ठ न हो तो आस्तीक का बार बार नाम लेकर छींटा देने से सर्प का भय नहीं रहता। यदि घर से बाहर भी सांप मिले, तो आस्तीक का नाम लेने से सर्प भाग जाता है।

चोर डाकू की निवृत्ति का मंत्र–पूर्वोक्त छः संख्या वाले मंत्र को पढ़ने से चोर डाकुओं से भय नहीं रहता। ताला बंद करते समय यही मंत्र पढ़कर ताला बंद करने से ताला नहीं टूटता। यदि टूट भी जाता है, तो चोर चोरी करने में निष्फल हो जाता है और ऐसा देखने में आया है कि सामने रहने पर भी वह वस्तु उसे दिखाई नहीं देती।

कफल्ल की तीन पत्नियां हैं। दाहिनी मोहिनी और सती इन तीनों का स्मरण करने से चोर निष्फल हो जाता है॥६॥

दीपक या बिजली जलाने का मंत्र

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं सन्ध्या दीपं नमोऽस्तुते॥१॥
शुभं करोतु कल्याणमारोग्यं सुख सम्पदाम्।
मम बुद्धि प्रकाशं च दीप ज्योतिर्नमोऽस्तुते॥२॥
शुभं भवतु कल्याणमारोग्यं पुष्टि वर्द्धनम्।
आत्म तत्त्व प्रवोधाय दीप ज्योति र्नमोऽस्तुते॥३॥

सरलार्थ है।

तुलसी की स्तुति–

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः।
नमोनमस्तेतुलसि पापं हर हरिप्रिये ॥१॥
यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः।
यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसि त्वां नमाम्यहम् ॥२॥
स्पष्टार्थः।

जन्म भूमि दर्शन का फल–जो फल एक हजार कपिला गऊ का नित्य प्रतिदान करने से प्राप्त होता है। वह फल श्रद्धा व भक्तिपूर्वक जन्म भूमि के दर्शन से होता है। हजारों जन्म का संचित पाप जन्म भूमि के दर्शन से नष्ट हो जाता है। जन्म भूमि के दर्शन से पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन तथा मुमुक्षु को मुक्ति प्राप्त होती है।

प्रातः वन्दनीय तथा अर्चनीयजन–प्रातःकाल माता, पिता, बड़े भाई, आचार्य तथा वृद्ध जनों को नित्य प्रणाम करना चाहिए।

प्रातः दर्शनीय पदार्थ–नित्य प्रति कालः काल उठकर कपिला गाय, तुलसी, दर्पण, भगवान्, राजा, गुरु, अन्नदाता, श्रोत्रिय विद्वान् पतिव्रता स्त्री, सती स्त्री, अग्नि, यज्ञशाला इन सब का दर्शन सभी विपत्तियों को दूर करता है।

प्रातः शयन के बाद भगवान् को जगाने के मन्त्र–

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द, उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज।
उत्तिष्ठ कमला कान्त, त्रैलोक्य मगलं कुरु ॥१॥
मंगलं भगवान् विष्णुर्मगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुण्डरी काक्षः मङ्गायतनो हरिः ॥२॥
मूकं करोति वाचालं पंगुलंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहंवन्दे परमानन्द माधवम् ॥३॥
नमो ब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हितायच।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥४॥
कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च।
नन्दगोप कुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ॥५॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणंत्वमेव, त्वमेवसर्व मम देव देव!

तुलसी तोड़ने का मन्त्र–

तुलस्यमृत जन्मासि सदा त्वं केशव प्रिये।
केशवार्थे विचिन्वामि, वरदाभव शोभने।
मोक्षैक हेतुर्धरणीधरस्य, विष्णोः समस्तस्य गुरोः प्रियस्य।
आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य, छिन्द्यो दलं ते तुलसि, क्षमस्व॥

हे तुलसी! मुक्ति के एकमात्र कारण, पृथ्वी को वाराह रूप से धारण करने वाले भगवान् विष्णु जो समस्त जगत् के गुरु हैं उनकी प्रिया हो। भगवान् की आराधना के लिए तुम्हारे दल को तोड़ता हूं। क्षमा करो।

सफलतादायक तुलसी मंत्र–

यः स्मरेत् तुलसीं सीतां रामं सौमित्रिणा सह।
विनिर्जित्य रिपून् सर्वान् पुनरायाति कार्यकृत्॥

जो तुलसी जी का राम लक्ष्मण सीता सहित स्मरण करता है। वह सभी शत्रुओं को जीतकर और अपना कार्य पूरा करके लौट आता है।

दशधा मंगलदायिनी तुलसी–दर्शन मात्र से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करती है। छूने से शरीर को पवित्र करती है। प्रणाम से रोगों को दूर करती है। सींचने से सभी विपत्तियों से रक्षा करती है। भगवान् श्री कृष्ण ने इनको लगाया है। उस तुलसी के सेवा करने से मुक्ति रूपी फल मिलता है।

वर्तमानकाल में मानव राक्षस हो गया है। मद्य मांस आदि का सेवन करता है। श्रद्धापूर्वक सेवन करने से तुलसी पापियों को भी पापों से रहित करती है। यह आगे के श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है।

मांस खाने, मद्य सेवन तथा अन्त्यज आदिकों के सम्पर्क से भी वह व्यक्ति पवित्र हो जाता है, जो कि कान आदि अंगों में तुलसी धारण करता है। चार तुलसी दल कानों

में, एक नाभि में, एक मुख में, एक सिर पर, तीन तीर्थ में, तीर्थ के जल में, अन्न के ऊपर पांच और भोजन के अन्त में तीन दलों को ग्रहण करे इस प्रकार दस प्रकार की तुलसी मंगल देने वाली है।

उपसंहार–मैंने अपनी गति मति के अनुसार भगवान् विष्णु का वेद पुराण आदि शास्त्रों के आधार पर चरित्र चित्रण किया तथा उनके पूजन का विधान भी संक्षेप में दिया है। ऊपर कहे गये ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है। पूजन विधान तथा उपदेश आदि वहीं देखा जा सकता है, आगे तीसरे परिच्छेद में जगद्गुरु भगवान् ब्रह्मा का जीवन चरित्र तथा उपदेश लिखा जाएगा।

॥ इति श्री द्वितीय परिच्छेद में पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

श्री गुरुवंश पुराण के प्रथम सत्ययुग खण्ड

में दूसरा वैष्णव परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।



तृतीय परिच्छेद

प्रथम अध्याय प्रारम्भ

॥ अथ ब्रह्म चरित्रम्॥

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तमहं देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ब्रह्मा की उत्पत्ति–जो परमात्मा सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी को चार वेदों की रचना स्मरण करके उपदेश करते हैं। उस स्वयं प्रकाश, बुद्धि को प्रकाशित करने वाले, आत्मदेव की मुमुक्षु मैं शरण लेता हूं। तीन प्रकार के तापों (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) की शान्ति हो। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक, निराकार, निर्गुण, ब्रह्म ही, अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मिका माया को अपने अधीन करके ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु के रूप में अनेक लीलाएं करता है। सृष्टि से पूर्व कारण कार्यात्मक जगत नहीं था, परन्तु स्वयं प्रकाश परमात्मा ही परिपूर्ण व्याप्त था। उस समय न स्थूल था, न सूक्ष्म था। न शीत था, न ऊष्म थी। निर्गुण ब्रह्म रूपी बिन्दु से रेखा स्थानीय माया अनुभव में आई।

उस रेखा रूपी प्रकृति से महत्तत्व रूपी ऊपर नीचे की रेखाएं बनीं, उससे तीन गुण (सत, रज, तम) उत्पन्न हुए। उससे तीन गुणों का प्रतीक ब्रह्म का वाचक तीन गुण, तीन अवस्था, तीन देव रूपी प्रणव की उत्पत्ति हुई। प्रणव के रहस्य को जानने वाला जन्म मरण के भय से छूट जाता है। उसी ओम् रूपी परमात्मा ने माया के साथ मिलकर कुछ काल के पश्चात् इच्छा प्रकट की, उससे सात्विक, राजस तामस तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर उस अहंकार से शब्द तन्मात्रा, उससे आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इन पंच महाभूतों के लिए हुए सत्त्व से अन्तःकरण चतुष्टय, राजस अंश से पंच प्राण तथा कर्मेन्द्रियां तथा मिश्रित सतोगुण से पंच ज्ञानेन्द्रिया तथा शुद्ध सत्त्व से ज्ञान विज्ञान उत्पन्न हुए। इनको रचकर

परमात्मा ने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सगुण होकर बुद्धि तथा जीव के साथ प्रवेश किया। वह पूर्वार्द्ध से निर्गुण तथा उत्तरार्द्ध से सगुण हुआ। उसने समष्टि स्थूल शरीर में प्रवेश करके विराट् संज्ञा प्राप्त की। उसी से सनातन विष्णु हुए।

गायत्री रहस्योपनिषद् से भविष्य पुराण से–विराट् रूपी विष्णु की नाभि से कालान्तर में चार सौ कोस वाला कमल उत्पन्न हुआ। उस कमल में एक योजन के विस्तार वाली पंखुड़ी थी, उस पंखुड़ी पर चार मुख और दो भुजाओं, दो चरणों से युक्त ब्रह्मा जी हुए। उन्होंने सोचा कि मैं कौन हूं, किससे उत्पन्न हूं, कहां से आया हूं, मेरे माता-पिता कौन हैं? जब ऐसा विचार कर रहे थे, तब आकाशवाणी हुई। कि हे विधे! इस सन्देह की निवृत्ति के लिए तुम तप करो। उन्होंने ज्ञान रूपी तप एक हजार दिव्य वर्ष तक विष्णु का ध्यान करते हुए किया। समाधिस्थब्रह्मा जी के समक्ष बालक रूप धारी चतुर्भुज श्याम रूप वाले भगवान् प्रकट हुए। भगवान् की माया से मोहित ब्रह्मा जी ने उस बालक को गोद में बिठा लिया। ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् को पुत्र कहा। तब हंसकर विष्णु ने कहा हे ब्रह्मन्! मैं तेरा पिता हूं। अपने को पिता दूसरे को पुत्र कहते हुए दोनों झगड़ने लगे, इतने में भगवान् रुद्र अनन्त कोटि योजन विस्तृत ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हुए, दोनों से इस लिंग का पता लगाने के लिए कहा जो पता लगा लेगा वही बड़ा होगा। तब ब्रह्मा हंस रूप से ऊपरी भाग का पता लगाने चले। विष्णु वाराह रूप से नीचे भाग का पता लगाने चले। दोनों सौ वर्ष तक ऊपर नीचे चलते रहे, किन्तु पता न लग सका। तब दोनों लज्जित होकर शिव की स्तुति करने लगे। जिस समय ब्रह्मा जी ऊपर उड़े जा रहे थे। उसी समय मार्ग में उन्हें केतकी का फूल तथा कामधेनु मिली। उनसे ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम मेरी झूठी गवाही दे देना। दोनों ने समर्थन किया। विष्णु के पास वापस आये। इधर विष्णु भी अनेकों वर्षों तक नीचे जाते रहे। लिंग का अन्त नहीं पाया। निराश होकर वापस लौट रहे थे। दोनों की भेंट हुई ब्रह्मा के पूछने पर विष्णु ने कहा कि मैं पता नहीं लगा सका। विष्णु के पूछने पर ब्रह्मा जी ने कहा अपने दाहिने हाथ की तर्जनी से संकेत करते हुए कहा कि मैंने पता लगा लिया है जिस समय ब्रह्मा जी झूठ बोल रहे थे। उनके दाहिने पैर का अंगूठा कांप उठा उसने

समर्थन नहीं किया। इसलिए ब्राह्मण तथा गुरुओं के दाहिने पैर का अंगूठा धोकर पिया जाताहै। विष्णु भगवान् ने केतकी से पूछा, उसने झूठी गवाही देकर कहा कि ब्रह्मा जी पता लगा चुके हैं। भगवान् ने काम धेनु से पूछा उसने भी समर्थन किया। तब तीनों झूठ बोल रहे थे। उसी समय भगवान् शंकर सगुण साकार रूप में प्रकट हुए। ब्रह्मा जी से कहा तुम झूठ बोले हो। अतः पुष्कर के अतिरिक्त तथा वैदिक यज्ञों के अतिरिक्त तुम्हारी कहीं पूजा नहीं होगी। केतकी से कहा तूने झूठा समर्थन किया। इसलिए मुझ पर नहीं चढ़ोगी। उसके विशेष विनय करने पर भगवान् ने कहा मेरे ऊपर तने हुए चंदोवे पर तुम चढ़ सकती हो। फिर कामधेनु से बोले, तुमने मुख से झूठ का समर्थन किया, अतः तुम विष्ठा भोजी होगी। जिस समय गाय झूट बोल रही थी, उस समय उसका पिछला भाग कांप रहा था। उसको वरदान देते हुए कहा कि तेरा मल मूत्र पवित्र रहेगा। अतः धर्मशास्त्रों में लिखा है कि जिस वर्तन में गाय पानी या चारा खा ले वह पंच गव्य या अग्नि में तपाने से शुद्ध होता है। उस पात्र को घोड़ा घोड़ी को चटाने से भी शुद्ध होता है। वैज्ञानिकों का कथन है कि गऊ के मुख में अनेकों रोगों को पैदा करने वाले परमाणु होते हैं। किन्तु उसके पंचगव्य में उन सभी परमाणुओं को नष्ट करने की क्षमता है। हमारे ब्रह्मीभूत शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्त श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज ने एक बार बम्बई के गोहत्या बन्दी आन्दोलन में भाषण करते हुए कहा कि गो घृत से किये हुए हवन का धुआं जिस घर में भरा रहेगा उस घर में एटम बम, नाइट्रोजन बम आदि भयंकर अस्त्रों का प्रभाव नहीं पड़ेगा तथा जो कच्चा मकान उसकी दीवारें छत तथा फर्श गऊ के गोबर से लिपी होगी उस मकान पर भी बमों का प्रभाव नहीं पड़ सकता। यह रहस्य अमरीका के डॉक्टरों ने परीक्षण करके सिद्ध किया है।

भाव यह है कि गऊ के पृष्ठ भाग में तथा घोड़े के मुख में अमृत भरा है। यह वरदान तथा शाप देकर शंकर जी अन्तर्धान हो गये। विष्णु भगवान् से कहा कि मैं तुम्हें अपनी पूर्ण शक्ति तथा ऐश्वर्य प्रदान करूंगा तथा प्रत्येक अवतार में आपका दर्शन करके लीला गुणों का गान करूंगा। अनेक रूपों में तुम्हारी सहायता करूंगा। मेरे द्वारा तुम्हारी भक्ति का प्रचार होगा। तब से विष्णु ब्रह्मा से बड़े माने गये। यह कथा भविष्य पुराण के कल्प

भेद से कही गई। शिव पुराण तथा लिंग पुराण में इससे कुछ भेद है इस कथा का रहस्य प्रथम परिच्छेद में दिया जा चुका है।

जिस समय दोनों देवता लिंग की खोज में गये हुए थे। उस समय भगवान् शंकर कैलाश पर्वत पर निर्विकल्प समाधि में स्थित हुए। उनकी समाधि देवताओं के पांच युगों के पश्चात् भंग हुई उस समय दिति माता के गर्भ से हिरण्याक्ष हिरण्य कशिपु का जन्म हो चुका था। भगवान् ने नृसिंह रूप से हिरण्य कशिपु को मार दिया था। दोनों पुत्रों के वध से माता दिति बड़ी दुखी थीं। अपने पति प्रजापति कश्यप से इन्द्र को मारने वाले पुत्र की प्राप्ति का उपाय पूछ रही थी। तब कश्यप जी ने कल्प भेद से एक वर्ष में पूर्ण होने वाला अथवा सौ वर्ष में पूर्ण होने वाला पुंसवन व्रत का उपदेश दिया। बड़े कठिन नियम बताये और अन्त में कहा यदि तुम नियमों का पूर्ण पालन करोगी, तो इन्द्र को मारने वाला पुत्र होगा। यदि नियम खण्डित होगा, तो वह पुत्र महेन्द्र का मित्र हो जाएगा। दिति पति की आज्ञानुसार नियमों का पालन करते हुए व्रत करके अनुष्ठान में लग गई। इन्द्र भयभीत हो गये। वे उनके आश्रम में आकर सेवक के रूप में उनकी त्रुटि देखते हुए सेवा करने लगे। व्रत पूर्ण होने में कुछ दिन शेष रह गये थे। एक दिन माता दिति जूठे मुंह बिना कुल्ला किये सो गई। इन्द्र को मौका मिल गया। उन्होंने सोयी हुई माता के पेट में वज्र सहित सूक्ष्म रूप से प्रवेश किया तथा वज्र से बालक के सात टुकड़े कर दिये। वह रोने लगा तब इन्द्र ने कहा, (मा रुदः) उसने रोना बंद नहीं किया। तब उन्होंने पुनः एक टुकड़े के सात सात भाग कर दिये। इस प्रकार वे उन्चास हो गये, व्रत के प्रभाव से वे मरे नहीं वे इन्द्र के मित्र बन गये और इन्द्र के सहायक हुये। वे ही उन्चास मरुद्गण हुये। इन्द्र उन्चास बालकों के साथ माता के पेट से बाहर आये। माता से अपराध के लिए क्षमा याचना की। उन्चास बालकों को लेकर स्वर्ग में चले गये।

इन्द्र के चले जाने के बाद दिति ने अपने प्रयास को निष्फल देखकर पति से फिर विनय की। तब उनके गर्भ से तारकासुर पैदा हुआ। माता पिता को प्रणाम करके वन में तपस्या के लिए चला गया। उसने वायु आदि का परित्याग करके दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और वर मांगा। आप की सृष्टि के किसी

जीव से मेरी मृत्यु न हो। ब्रह्मा जी ने तथास्तु कहा, फिर बोले भगवान् शंकर के तेज से उत्पन्न हुए छः दिन के पुत्र स्वामि कार्तिकेय के हाथ तेरी मृत्यु होगी। ऐसा वर पाकर प्रसन्न होकर वह देवताओं को जीतने के लिए स्वर्ग में गया। तब देवताओं ने कैलाश पर जाकर शंकर जी को प्रसन्न किया और पार्वती के साथ शंकर का विवाह हुआ। उनसे स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ, उन्हीं के हाथ से तारकासुर मारा गया।

कल्प भेद ब्रह्मा जी की उत्पत्ति–पूर्ववर्ती ब्रह्मा के कल्प के अन्त में सभी प्राणियों के नष्ट हो जाने के अनन्तर ब्रह्मा जी के वर्षमान सौ वर्ष तक महा प्रलय रही। पंच महाभूत अपने कारणों में लीन हो गये। अहंकार महात्तत्व मूल प्रकृति में लय हो गया। इस दारुण महाकल्प में भगवान् की महामाया प्रसन्नता के साथ विहार करने लगी। सम्पूर्ण तत्त्वों के प्रकृति में लीन होने पर, अनन्त कोटि युग बीत जाने पर नित्या शुद्धा प्रकृति देवी ने स्वेच्छा से महागौर वर्णन पंचमुख दश भुजाओं से युक्त रूप धारण किया तथा उन्होंने तीसरे सूक्ष्म नेत्र से निर्विकार निरंजन सूक्ष्म तेज देखा। उस महामाया ने दशों भुजाओं को दशों दिशाओं में व्याप्त किया। जिस तेज को उन्होंने देखा था। उसे पकड़ना चाहा, किन्तु वह उसको ग्रहण करने में असमर्थ हुई। तब महामाया ने आश्चर्य से भक्तिपूर्वक ब्रह्मा की उपासना की, तब परमात्मा साकार रूप में प्रकट हुए। उनके पूर्वमुख से धातुओं सहित शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण मुख से प्रत्ययों सहित विभक्तियां निकलीं। पश्चिम मुख से लिंग तथा वचनों का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तरी मुख से वर्ण माला के स्वर व्यंजन आदि तथा ऊपर के मुख से वेद मंत्रों का प्राकट्य हुआ। तब सच्चिदानन्द सनातन ब्रह्म प्रसन्न हो गये। तब उनके दाहिने अंग में पुरुषत्व रूप ब्रह्मा जी प्रकट हुए। फिर अव्यक्त से प्रकृति उत्पन्न हुई। इस कारण से सोलह लोकों को स्वामिनी महालक्ष्मी प्रकट हुई। उनके अठारह महाभुजाएं थी। जो लोक की रक्षा में तत्पर थीं। उस अद्‌भुत रूप को देखकर ब्रह्मा अत्यन्त विस्मित हुए। थोड़ी देर बाद वे अन्तर्धान हो गई। ब्रह्मा जी ने अनेक रूप धारण करके उन्हें सर्वत्र ढूंढा। किन्तु महालक्ष्मी का अन्त नहीं पाया। फिर अनेक रूपों से खोजते तथा पुकारते रहे। अन्त में थक कर विश्राम करने लगे तथ ।चारों मुखों से उनकी स्तुति करने लगे। हजारों युगों के

पश्चात् अनेक महानदियां तथा नदियां निकलीं, उस प्रलय कालीन जल में ब्रह्मा जी एक हजार युग तक शयन करते रहे। उसके पश्चात् उन्होंने सृष्टि रची। ब्रह्मा के द्वारा रची सृष्टि को देखकर आश्चर्य करते हुए महालक्ष्मी ने भगवान् विष्णु को प्रणाम करके कहा, हे भगवन् आप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप हैं। मैं आपकी माया को नहीं जान सकती। आप क्या करना चाहते हैं। मैं आपकी भविष्य लीला को समझना चाहती हूं। तब उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् दो रूपों में प्रकट हुए। पूर्वार्द्ध से रक्तांग और उत्तरार्द्ध से गौर रूप था। दोनों ही रूप चतुर्भुज थे। इनमें गौर वर्ण भगवान् शिव तथा लाल वर्ण से गणेश हुए। किसी-किसी पुराण में कल्प भेद से पाया जाता है कि निरंजन परमात्मा ही शिव पार्वती से गणेश रूप में अवतरित हुए। उनके जन्म से पहले शिव जी ने गणेश जी का पूजन करते हुए एक हजार वर्ष तक आराधना की थी। तपस्या से प्रसन्न हुए गणेश जी ने प्रकट होकर वर मांगने को कहा। इन दोनों ने पुत्र रूप से प्रकट होने की प्रार्थना की। तथास्तु कहकर गणेश जी चले गये। कालान्तर में वे पुत्र के रूप में आये। शिव पार्वती के विवाह में इन्हीं गणेश का पूजन हुआ। इस प्रकार तुलसीदास जी ने मानस में वर्णन करते हुए कहा है।

इस प्रकार अनेक पुराणों में संक्षेप तथा विस्तार में ब्रह्मा जी के जन्म की कई प्रकार की कथाएं पाई जाती हैं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का पहला अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का दूसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मा जी के भक्तों की कथाएं

हिरण्य कशिपु–माता दिति का जब पहला पुत्र बाराह रूप धारी भगवान् विष्णु द्वारा मारा गया। भाई के मरने का माता सहित असुर को बहुत दुख हुआ। माता तथा भतीजों को सांत्वना देकर तपस्या द्वारा अमरत्व की प्राप्ति के लिए ब्रह्मा की आराधना की। लाखों वर्ष तपस्या करने से उसके शरीर का रक्त मांस सूख गया। अनेकों जीव जन्तुओं ने अपना घर बना लिया था। अस्थिमात्र शरीर शेष रह गया था। उसकी

कठोरतम तपस्या से ब्रह्मा जी प्रकट हुए तथा अपने कमण्डलु का जल छिड़कर उसका शरीर पूर्ववत् कर दिया। उसने प्रणाम करके स्तुति की, प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी बोले, वर मांगो। असुरराज बोला मेरी मृत्यु कभी भी न हो, उन्होंने उत्तर दिया कि यह परम असम्भव है, अवश्य मरेगा, यह वर नहीं मिल सकता। तब उसने कहा, आपकी सृष्टि के किसी भी जीव, देव, गन्धर्व, राक्षस, भूत, प्रेत, मनुष्य आदि किसी के हाथ से मेरी मृत्यु न हो। मेरी मृत्यु न दिन में न रात्रि में, न आकाश में न पृथ्वी पर, न भीतर बाहर मेरी मृत्यु न हो। तथास्तु कहकर ब्रह्मा जी चले गये।

ब्रह्मा जी ने उसे वर देकर सांपों को दूध पिलाने जैसा कार्य किया। वह वर से उन्मत्त होकर देवता ऋषियों, शिव तथा विष्णु को तंग करने लगा। उसके भय से वरुणादि लोकपाल छिप गये। हाथ में गदा लेकर अपने भाई का बदला लेने के लिए भगवान् विष्णु के पास पहुंचा। भगवान् उसे दर्शन का अनधिकारी तथा बहिर्मुख समझ कर उसके हृदय में प्रविष्ट हो गये। उसने विष्णु लोक का पत्ता पत्ता छान लिया, किन्तु विष्णु को नहीं पाया। मेरे भय से विष्णु मर गया, ऐसा सोचकर मृत्यु लोक में आकर ऋषियों, याज्ञिक ब्राह्मणों गौओं पर अत्याचार करने लगा। तब सब ने मिलकर भगवान् से पुकार की। आश्वासन देकर भगवान् ने कहा, जब उसके पाप का घड़ा भर जाएगा तथा मेरा अनन्य भक्त परम भागवत निर्वैर सम्पूर्ण दैवी गुणों से सम्पन्न, अपने पुत्र भक्त प्रह्लाद पर अत्याचार करेगा, तब वह मेरे हाथ से मारा जाएगा। उसने भगवान् के भजन, यज्ञ आदि पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। जब उसने देखा कि मेरा पुत्र ही मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है। मेरे शत्रु का पक्षपाती है। उन्हें मरवाने के लिए कई बार प्रयत्न किये, किन्तु सब निष्फल हुए।

पाठशाला में प्रह्लाद स्वयं तो भगवत् भजन करते ही थे। बालकों को भी भक्ति का उपदेश करने लगे। जब उनके गुरु जी को पता चला कि यह मेरे अनुशासन से बाहर है। तब पिता से कहा, क्योंकि वे ब्राह्मण होते हुए भी निर्भय नहीं थे। हिरण्य कशिपु के द्वारा पैसे से खरीदे हुए दास थे। क्रोध में जाकर हिरण्य कशिपु ने एक दिन प्रह्लाद से कहा कि तेरा विष्णु कहां है, प्रह्लाद ने कहा कि वे सर्वत्र हैं, आप में है और मुझ में भी। उसने

एक लोहे का खम्भा अग्नि से तपा रखा था। गर्जते हुए हिरण्य कशिपु ने कहा क्या इसमें भी है और जोर से मुक्का मारा तलवार खींचकर प्रह्लाद को मारने चला, इतने में महागर्जना के साथ घनघोर शब्द हुआ और उसमें से नरसिंह रूप में भगवान् निकल पड़े। उनका मुख शेर का सोलह भुजाओं से युक्त नीचे का शरीर मनुष्य जैसा था। चौदह भुजाओं में अनेक अस्त्र शस्त्र धारण किये थे। दो भुजाएं खाली थी। हाथों के नाखून बहुत तीक्ष्ण थे। ऐसे अद्भुत जीव को देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। गदा लेकर भगवान् पर प्रहार करने लगा। अन्त में भगवान् ने उसे पकड़ कर देहली पर ले आए। अपनी गोद में लिटा कर बोले और पूछा बता मैं मनुष्य हूं या पशु-उसने कहा दोनों में से कोई नहीं। अन्दर हूं या बाहर, रात्रि है या दिन सायं काल का समय था उसने नकारात्मक उत्तर दिया। तब नाखूनों से ही उसका पेट फाड़कर आंते बाहर निकाल लीं। इस प्रकार उसे मार कर भी भगवान् का क्रोध शान्त नहीं हुआ। ब्रह्मा सहित सभी देवताओं, किन्नर, गन्धर्व मनु आदि की प्रार्थना से भी जब क्रोध शान्त न हुआ। तब लक्ष्मी को भेजा, लक्ष्मी जी ने अपने पति का ऐसा भयंकर रूप तथा क्रोध नहीं देखा था। उनके पास जाने का साहस नहीं हुआ। तब अपने समीप खड़े प्रह्लाद जी से ब्रह्मा ने कहा। भक्त ने निर्भय होकर प्रणाम किया और स्तुति करने लगा। प्रह्लाद ने कहा, मैं आपके इससे भी भयंकरतम रूप को देखकर भयभीत नहीं होता, क्योंकि सभी आपके ही रूप हैं, किन्तु मैं चौरासी लाख योनियों से भयभीत होकर उससे छूटने के लिए आपकी शरण में आया हूं। भगवान् ने पुचकारते हुए प्रह्लाद से वर मांगने के लिए कहा। भक्त ने कुछ नहीं मांगा। भगवान् ने बार-बार आग्रह किया। तब भक्त ने कहा हे प्रभो! आप सर्वान्तर्यामी हो मेरे हृदय में स्थित वर मांगने की सूक्ष्म कला को आप जानते हैं। इसलिए आप बार-बार वर के लिए कहते हो। हे वरद! यदि आप वर देना चाहते हो, तो वर मांगने की मेरी इच्छा ही समाप्त हो जाए, क्योंकि आपकी भक्ति करके आप से कुछ मांगने वाला भक्त नहीं है। वह तो लेन-देन करने वाला पक्का बनियां है।

प्रह्लाद ने कहा कि आपका भक्त होने के कारण मेरे पिता ने आप से द्रोह किया। भक्त से द्रोह करने वाले जीव को जो दुर्गति प्राप्त होती हैं, उस दुर्गति तथा दुर्योनि को मेरे पिता न प्राप्त हों। तब भगवान् ने कहा, हे प्रह्लाद! तुम्हारे पिता की बात ही क्या

जिसके वंश में तुम जैसा पुत्र पैदा हुआ है। उससे यदि तुम से पहले इक्कीस पीढ़ियां होतीं, तो वे भी तर जातीं। ऐसा कहकर भगवान् ने प्रह्लाद से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करवाई। राज्य गद्दी पर प्रह्लाद का स्वयं अभिषेक करके वहां से चले गये। **(भागवत पुराण के आधार पर हिरण्य कशिपु तथा प्रह्लाद का चरित्र पूर्ण हुआ।)**

॥ इति तृतीय परिच्छेद का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का तीसरा अध्याय प्रारम्भ॥

श्री ब्रह्मा जी के भक्त रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण

ऋषि मुनि गन्धर्व आदि अनेकों वर्गों में ब्रह्मा जी के बहुत से भक्त हुए। उन्हीं में से विश्रवा के तीन पुत्र रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण माता कैकसी से प्रेरणा प्राप्त करके ब्रह्मा जी की तपस्या करने लगे। उनमें रावण ने अन्न, जल, वायु का त्याग करके पैर के अंगूठे पर खड़े होकर दस हजार वर्ष तपस्या की तथा ब्रह्मा ने दर्शन दिये। रावण ने वर मांगा कि किसी भी जीव से मेरी मृत्यु न हो। ब्रह्मा जी ने कहा यह असम्भव है। तब रावण ने विचार किया, मनुष्य तथा बन्दर मेरा भोजन हैं। उनसे मुझे कोई भय नहीं। उसने वर मांगा कि इनको छोड़कर और किसी से मेरी मृत्यु न हो। ब्रह्मा जी तथास्तु कहकर चले गये। फिर वे कुम्भकर्ण के पास पहुंचे। उसे भोजन तथा निद्रा प्रिय थी। अतः वह एक दिन सोना और छः महीने जागना चाहता था। ब्रह्मा जी ने विचार किया। यह एक दिन सोयेगा, छः महीने जागेगा। तो यह मेरी सारी सृष्टि को खा जाएगा। इसकी तेरह महायुग की आयु है, क्योंकि ब्रह्माण्ड पुराण की रामायण के अनुसार तीनों भाई ग्यारहवीं चतुर्युगी में पैदा हुए। चौवीसवीं चतुर्युगी में त्रेता युग के अन्त में मारे गये। अतः सरस्वती को आज्ञा दी आप उसकी बुद्धि को प्रेरणा दें कि यह विपरीत वर मांगे। उन्होंने ऐसा ही किया। कुम्भकर्ण ने ब्रह्मा जी से छः माह की निद्रा और एक दिन का जागना मांगा। ब्रह्मा जी तथास्तु कहकर विभीषण के पास गये। उन्होंने दोनों भाइयों के पांच हजार वर्ष बाद तप आरम्भ किया था। अतः उन्हें तप करते हुए केवल पांच हजार वर्ष बीते थे। यह भगवान् के परमशान्त, सात्विक और निष्काम भक्त हैं। उनसे भी वर

मांगने को कहा उन्होंने भगवान् के चरण कमलों में निश्चल भक्ति का वर मांगा। वे प्रसन्न हो गए उन्हें भक्ति का वर देकर ब्रह्मा जी अपने लोक में चले गये।

(यह कथा प्रसंग ब्रह्माण्ड पुराण तथा मानस से उद्धृत)

कथा का सारांश–इन तीनों भाइयों में से रावण तथा कुम्भकर्ण ने सकाम तप किया। रावण साक्षात् क्रोध, अभिमान तथा कामना का प्रतीक था। कुम्भकर्ण लोभ का प्रतीक है। काम तथा लोभ से इन दोनों का पेट नहीं भरता है। इन दोनों ने दस सहस्त्र वर्ष कठोर तप करके भी संसार के भोग तथा शरीर की अमरता चाही, किन्तु इतना कष्टदायक तप करने पर भी कुछ समय के लिए सांसारिक भोग भोगने के अनन्तर परिणाम में दुख प्राप्त किया, किन्तु इन दोनों के विपरीत थोड़े समय में विभीषण ने निष्काम तप करके ब्रह्मा जी से भक्ति का वर मांगा। विभीषण साक्षात् विश्वास रूप हैं। अन्त में भगवान् राम से उन्होंने एक कल्प की आयु तथा इतने ही समय का निष्कंटक राज्य प्राप्त किया।

इस प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि सकाम उपासना घाटे का सौदा है, किन्तु भक्त निष्काम भजन से भगवद् भक्ति सहित इस लोक के अतुलित भोग प्राप्त कर अन्त में अन्तःकरण शुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्त करके भक्त मुक्त होता है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का चौथा अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मा के तीसरे भक्त हिब्रू दानव का चरित्र–भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कथा आती है कि प्राचीन काल में त्रैलोक्य कंटक हिब्रू नामक दानव था। उसका जन्म कुम्भकर्ण के पुत्र निकुम्भ के वंश में हुआ था। उसने ब्रह्मा जी का मंत्र जपते हुए एक सहस्त्र वर्ष तप करके देवताओं को सन्तप्त किया। तब लोक पितामह ब्रह्मा जी लोक रक्षा के लिए दानवेश्वर से बोले, वर मांग। उसने उन्हें प्रणाम करके कहा, हे स्वामिन! आपके द्वारा रचे हुए स्थावर जंगम जीव से मेरी मृत्यु न हो। उसकी प्रार्थना सुनकर वे उसे वर देकर चले गये।

उस दानव ने वर के अभिमान से उन्मत्त होकर स्वर्गवासी देवताओं को जीता तथा पातल में छिपे हुए दानवों को स्वर्ग में बसाया। देवता बेचारे पृथ्वी पर कष्ट भोगने लगे। उसने देवताओं को एक लाख वर्ष कष्ट दिया। एक दिन देवताओं ने देवर्षि नारद जी से प्रार्थना की कि हमारा कष्ट कैसे दूर हो, नारद जी ने देवताओं के कष्ट निवृत्ति की युक्ति बताते हुए कहा, तुम लोग महादेव का भजन करो। उनके अतिरिक्त तुम्हारे दुख को कोई दूर नहीं कर सकता। नारद जी की आज्ञा सुनकर देवता विस्मित होकर प्रसन्न हुए। वे उमापति शंकर का पार्थिव पूजन करने लगे। शिव जी का एक नाम आशुतोष भी है और देवता देर से प्रसन्न होते हैं। शंकर जी शीघ्र प्रसन्न होते हैं। देवताओं को पूजन करते हुए ग्यारह वर्ष बीत गये। बारहवें वर्ष शिव जी प्रसन्न होकर ज्योतिर्मय लिंग रूप से प्रकट हुए तथा अपने तेज से जलाने लगे। उस तेज से देवता नहीं जले। हिब्रू सहित सभी दानव उसी अग्नि में भस्म हो गये। तब ब्रह्मा विष्णु सामवेद के मंत्रों से शिव जी की स्तुति करने लगे।

ब्रह्मा जी की सृष्टि का विस्तार—इस प्रकार ब्रह्मा जी के वरदान से उन्मत्त हिब्रू को शंकर जी ने मारकर देवताओं का कल्याण किया। शंकर जी से ब्रह्मा ने वेदों को प्राप्त किया तथा उन्हीं की आज्ञा से ज्ञान प्रधान निवृत्ति मार्गी सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, सनत्सुजात पांच पुत्रों को उत्पन्न करके ज्ञान मार्ग का प्रचार किया।

प्रवृत्ति प्रधान कर्म उपासना का उपदेश वशिष्ठ अत्रि आदि प्रवृत्ति मार्गी पुत्रों को दिया। ब्रह्मा जी की भृकुटी से क्रोध करने पर नील लोहित भगवान् रुद्र प्रकट हुए। उन्होंने रोने से मना किया। परन्तु वह बालक ग्यारह बार रोया इसलिए ग्यारह रूपों में प्रकट हुए। उनकी ग्यारह पत्नियां तथा ग्यारह स्थान हुये। ब्रह्मा जी के केशों से सर्प, स्तनों से धर्म, पीठ से अधर्म उत्पन्न हुए। इन सब की रचना करने पर भी जब सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ। तब उन्होंने प्राणों से वशिष्ठ जी को, नेत्रों से अत्रि, छाया से कर्दम प्रजापति, अंगूठे से दक्ष को और मन से नारद जी को उत्पन्न किया। इसी प्रकार पुलस्त्य, पुलह आदि ऋषियों का जन्म हुआ। इनकी सन्तानों से त्रिलोकी भर गई। यह कथाएं विस्तार से सभी पुराणों में पाई जाती हैं। यहां संकेत मात्र किया गया है।

अन्य शास्त्रों की रचना–चारों वेदों के अतिरिक्त ब्रह्मा जी ने अठारह महापुराणों की रचना की, प्रत्येक पुराण में एक-एक अरब श्लोक थे। उसी को संक्षिप्त करके व्यास जी ने उन्हें आधुनिक रूप दिया। यही सब पुराण वेदों के विस्तृत भाष्य हैं। महाभारत के शान्ति पर्व के राजधर्म पर्व में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर के प्रति ब्रह्मा जी द्वारा रचित संसार के सबसे प्राचीनतम राजनीति शास्त्र का वर्णन किया है। इसमें दस हजार अध्याय थे। उसी का संक्षेप भीष्म ने राज धर्म पर्व में राजनीति शास्त्र सुनाया है। इसी के आधार पर बृहस्पति, शुक्राचार्य, विष्णु शर्मा कामान्दक आदि के राजनीति शास्त्र संसार में प्रसिद्ध हैं। योग शास्त्र के प्रथम रचयिता भी ब्रह्मा जी हैं यह नीचे लिखे श्लोक से पता चलता है–

हिरण्य गर्भः योगस्य वक्ता नान्यःकदाचन।

ब्रह्मा ही योग के आदिवक्ता हैं दूसरा नहीं। इससे सिद्ध होता है पातञ्जल योग दर्शन का मूल ब्रह्मा जी का योग दर्शन है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का चौथा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का पांचवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मा जी का विशेषावतार–भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व के चौथे खण्ड के पांचवें अध्याय में कथा आती है कि ब्रह्मा जी की सौ वर्ष की आयु है। उसमें से पचास वर्ष बीत चुके हैं तथा इक्यावनवें वर्ष के प्रथम दिन के छठे चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में प्रलय कालीन महावायु चली। उसके प्रभाव से परम अचल भगवान् की विभूति स्वरूप हिमाचल भी पीपल के पत्ते के समान हिलने लगा। सम्पूर्ण भूमण्डल कांप उठा, तब सम्पूर्ण भूमण्डल का विनाश करने वाला प्रलय आरम्भ हुआ। उस प्रलय कालीन जल में सातों महाद्वीप तथा समुद्र एक हो गये। हिमालय सहित सातों पर्वत जल मग्न हो गये। उत्तर में स्थित एक मात्र लोकालोक पर्वत बचा। एक हजार वर्ष पर्यन्त भूमि जल में डूबी रही। तब भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा तथा शिव सहित आकाश में शिंशुमार चक्र का निर्माण किया। ब्रह्मा जी ने उसमें यथोचित स्थान पर ग्रहों तथा तारागणों को स्थित किया। उस प्रलय कालीन जल को ज्योतिष चक्र ने सुखाया। पानी के सूखने के दस

हजार वर्ष पश्चात् पृथ्वी दिखाई दी। तब ब्रह्मा जी ने मुख से चन्द्रमा तथा महाबुद्धि, वेद विद्या में विशारद ब्राह्मण को रचा। दोनों भुजाओं से उन्होंने परम राजनीतिज्ञ क्षत्रिय तथा सूर्य को जन्म दिया। जंघाओं से वैश्य राज को उत्पन्न किया तथा इसी अंग से नदियों का पति समुद्र उत्पन्न हुआ। चरणों से उन्होंने सम्पूर्ण कलाओं में कुशल शूद्रराज विश्वकर्मा को उत्पन्न किया। चन्द्रमा से सम्पूर्ण ब्राह्मण, सूर्य से राज वंश, समुद्र से सम्पूर्ण वैश्य तथा दक्ष से शूद्र उत्पन्न हुए। सूर्य मण्डल से वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। उनका राज्य सम्पूर्ण प्राणियों पर हुआ। उनका राज्य इकहत्तर महायुगों तक रहेगा। इस मन्वन्तर के सत्ययुग के मनुष्यों की आयु ४०० वर्ष, त्रेता में ३०० वर्ष, द्वापर में २०० वर्ष तथा कलियुग में १०० वर्ष है तथा अन्य युगों में भगवान् विष्णु सत्ययुग में श्वेत हंस के रूप में त्रेता में रक्त वर्ण यज्ञ रूप से, द्वापर में स्वर्ण वर्ण पीत रूप से एवं द्वापर कलि की सन्धि में भगवान् कृष्ण रूप से अवतार लेते हैं। इस चाक्षुष मन्वन्तर में भगवान् ब्रह्मा यह विशेष अवतार लेकर विशेष कार्य करते हैं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का छठा अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मा जी का उपदेश—ब्रह्मा जी का उपदेश वेदों के चारों भागों में मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों में रामायणों तथा पुराणों में पाया जाता है। उनका उपनिषदों का उपदेश अति मार्मिक है। अतः विशेष उपनिषदों के आधार पर लिखा जा रहा है। ब्रह्मा जी के वैदिक शिष्यों की परम्परा नीचे दी है—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमं सम्वभूव। विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता, स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह ॥१॥

अर्थर्वणे यां प्रवदेत् ब्रह्मा अथर्वातां प्रोवाचाङ्गिरे ब्रह्म विद्यां, स भारद्वाजाय सत्यवहाय, प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥

अर्थ—सम्पूर्ण विश्व के रचयिता तथा रक्षा करने वाले ब्रह्मा जी देवताओं में सर्वप्रथम हुए। उन्होंने सर्व विद्याओं में उत्तम ब्रह्मविद्या का उपदेश अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व ऋषि को किया। जो विद्या ब्रह्मा जी ने अथर्व ऋषि को दी थी, उन्होंने अंगिरा ऋषि को दी।

अंगिरा ने सत्य को धारण करने वाले भारद्वाज को दी। भारद्वाज ने पराअपरा दोनों विद्याओं का उपदेश भारद्वज वंशी अंगिरा को दिया।

ब्रह्मा जी द्वारा देव दानव, मानव को एकाक्षरी उपदेश–ब्रह्मा जी ने जब देव, दानव, मानव तीनों को उत्पन्न किया। तब अपने कल्याण के लिए देवता ब्रह्मा जी के पास पहुंचे, उनसे प्रार्थना की कि हमें ऐसा उपदेश दें। जिससे हम स्वर्ग के भोगों से विरक्त होकर अपना कल्याण कर सकें। तब उन्होंने देवताओं को 'द' अक्षर का उपदेश किया। देवता प्रणाम करके जाने लगे तब ब्रह्मा जी ने पूछा, 'द' अक्षर से तुमने क्या शिक्षा ग्रहण की। तब देवों ने कहा कि हम ब्रह्म चिन्तन भूल गये। अतः 'द' अक्षर से आपने हमें इन्द्रियों के दमन करने की शिक्षा दी है। ब्रह्मा जी ने कहा तुम ठीक समझे हो। अनासक्त भाव से इन्द्रियों द्वारा भोग भोगते हुए भी भीतर से इन्द्रियों का दमन करते हुए निर्लिप्त रहोगे, तो तुम निष्काम कर्म उपासना से ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाओगे। देवता प्रणाम करके चले गये।

उनके चले जाने पर असुर अपने कल्याण के लिए ब्रह्मा जी की शरण में गये। उन्होंने भी अपने कल्याण के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मा जी ने उन्हें भी केवल 'द' अक्षर का उपदेश दिया। जब वे जाने लगे तो ब्रह्मा जी ने पूछा, 'द' अक्षर से तुम क्या समझे उन्होंने कहा हम अपने स्वार्थ के लिए मार काट अधिक करते हैं। अतः आपने 'द' अक्षर के उपदेश से जीवों पर दया करने का उपदेश किया है। ब्रह्मा जी ने कहा, तुम ठीक समझे हो। जीवों पर दया करने से तुम्हारी हिंसा में प्रवृत्ति नहीं होगी। सौहार्द भाव आएगा। स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ चिन्तन से मुक्त हो जावोगे। वे भी प्रणाम करके चले गये।

तब मनुष्यों ने देखा। इन दोनों ने अपना कल्याण कर लिया। उसने भी उनके पास जाकर उपदेश की याचना की। उन्हें भी उन्होंने 'द' अक्षर से उपदिष्ट किया। ब्रह्मा ने मनुष्यों से पूछा कि 'द' अक्षर से तुम क्या समझे। मनुष्यों ने कहा हमारी सौ वर्ष की आयु है। हमने लोभ में आकर बाल्यावस्था से मृत्यु पर्यन्त धनोपार्जन करने में, क्रम से पहले गधे या बैल जैसा परिश्रम करके धन कमाते हैं। बाद में जब शरीर में शक्ति नहीं रहती, तो कुत्ते के समान घर तथा धन की रक्षा करते हैं। जब इन्द्रियां और शिथिल हो

जाती हैं। कुछ भी कर नहीं पाते, तब बन्दर के समान कूद फांद करते हुए एक दूसरे की निन्दा चुगुली करते हैं। किसी भी अवस्था में धन का लोभ नहीं जाता। लोभ को दान द्वारा जीता जा सकता है। अतः आपने 'द' अक्षर से दान करने का उपदेश किया है। ब्रह्मा जी ने कहा तुम ठीक समझे हो। क्योंकि वेद ने भी धर्म रूपी वृक्ष के तीन तने कहे हैं।

"त्रयो धर्मस्य स्कन्धाः यज्ञो दानमध्ययनं च"

धर्म रूपी वृक्ष के यज्ञ, दान, स्वाध्याय रूप तीन तने हैं। यदि तुम अभिमान त्याग कर निष्काम भाव से दान करोगे, तो तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा। उससे ज्ञान के प्रकाश से तुम मुक्त हो जावोगे। ब्रह्मा जी को प्रणाम करके मनुष्य भी चले गये। एक ही 'द' अक्षर के उपदेश ने तीनों का कल्याण किया। छान्दोग्य उपनिषद् से।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का छठा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का सातवां अध्याय प्रारम्भ ॥

देवों तथा दानवों को ब्रह्मा जी का निमन्त्रण–एक बार लोक पितामह जगद्गुरु भगवान् ब्रह्मा ने देवों तथा दानवों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया, दोनों प्रसन्न चित्त से ब्रह्मलोक में पहुंचे। अपनी-अपनी पंक्ति में दोनों दल बैठ गये। सब के आगे सोने की तिपाइयों पर अनेक प्रकार के मणिमय स्वर्ण पात्रों में छप्पन प्रकार का भोजन परसा गया। जब वे भोजन करने चले। तब ब्रह्मा जी ने रोका। उन्होंने अनुचरों को आज्ञा दी। इन दोनों दलों के हाथ सीधे करके कलाई से लेकर भुजा के मूल तक बांस की खपच्चियां बांध दी जाएं। उन्होंने ऐसा ही किया। ब्रह्मा ने दोनों दलों को भोजन की आज्ञा दी। दोनों दल भोजन से पूर्व इष्टदेव का ध्यान करके ब्रह्मार्पण करके भोजन करने लगे। पात्र से ग्रास उठाते, किन्तु हाथ बंधे होने के कारण हाथ मोड़कर प्रयास करने पर भी मुख में न डाल पाये। मुख फैलाते, ग्रास ऊपर उछालते, किन्तु निष्फल हो जाता। उनके कपड़े भी खराब हो गये। चूंकि देवता देश काल परिस्थिति के अनुसार विचार करने में दक्ष हैं। उन्होंने विचार किया हम अपने सामने का भोजन अपने मुख में नहीं डाल सकते, किन्तु दूसरे के मुख में डाल सकते हैं। ऐसा विचार करके दो-दो देवता

आमने-सामने बैठ गये। अपने सामने का भोजन एक-दूसरे को खिलाने लगे उनका पेट भर गया, क्योंकि देव शब्द दिवु धातु से बना है। यह अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, किन्तु हिन्दी व्याकरण के अनुसार देवता शब्द का अर्थ खिलाकर खाने वाला है और असुर लेवता है लेना जानते है देना नहीं, वे लेवता है देवताओं ने एक दूसरे को खिलाकर भोजन कर पूरा आनन्द लिया। किन्तु असुर अपना पेट भरना जानता है दूसरे का नहीं। दूसरे शब्दों में जिसे अपने भाग से सन्तोष नहीं होता दूसरे का भी भाग छीन कर खाते हैं। ऐसा स्वार्थी जीव असुर है। संस्कृत में 'असुक्षेपणे रक्षणेच' धातु से असुर शब्द निष्पन्न होता है। अर्थात् जिनको प्राण वायु को फेंकने या रक्षा करने की चिन्ता निरन्तर बनी रहती है। वे असुर हैं वे दूसरे को खिलाना नहीं जानते। अतः अपने स्वभाव के कारण असुरों ने देवताओं को एक दूसरे को खिलाते देख कर भी ऐसा नहीं किया। वे रसगुल्ला, कालीजामन, बर्फी आदि ऊपर मुख में फेंकते, किन्तु कोई वस्तु मुंह में नहीं गई और वे भूखे ही उठ गये।

शंका–यद्यपि वेद में कहा है, देवता भोजन नहीं करते। वे भोजन को देखकर या सूंघकर तृप्त हो जाते हैं। फिर यहां देवता भोजन करके तृप्त हुए यह कैसे कहा?

समाधान–शास्त्र दृष्टि से विचार करने पर जिसने मनुष्य शरीर से विशेष पुरुष पुण्य करके स्वर्गीय दिव्य सुगन्धि प्रधान कमल के पुष्प से जन्म प्राप्त किया है। यह योनि विशेष है ये भोजन नहीं करते, केवल दर्शन मात्र से तृप्त होते हैं। श्री मधुसूदन जी सरस्वती महाराज ने सोलहवें अध्याय के आरम्भ से छः श्लोकों तक की टीका करते हुए सत्व, रज, तम प्रधान तीन गुणों के कारण मनुष्य तीन के प्रकार बताये हैं। सत्त्व प्रधान मनुष्य देवता। रजोगुण प्रधान असुर। तमोगुण प्रधान राक्षस।

राक्षस–अपना सर्वस्व रहे या जाए किन्तु दूसरे का निरन्तर अनिष्ट चाहने वाले राक्षस कहे गये वे लोग दूसरों का जीना कठिन कर देते हैं। तमोगुण प्रधान हैं।

असुर–वे रजोगुण प्रधान होते हैं। अपने शरीर इन्द्रियां तथा प्राणों को कष्ट नहीं देना चाहते। यदि कोई उनका अनिष्ट करता है तो उनकी हिंसा करने में उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। उन्हें अपनी ही चिंता रहती है दूसरों की नहीं।

देवता–देव शब्द 'दिव' धातु से बना है जो क्रीड़ा, जीतने की इच्छा, स्तुति, मोदन आदि अनेकों अर्थों में प्रयुक्त होती है। अर्थात् जिनके शरीर मन प्राण आदि में विशेष ज्ञान रूपी प्रकाश रहता है तथा शरीर में अग्नि तत्त्व की प्रधानता होती है। सभी लोकों में आने जाने की सामर्थ्य होती है। परोपकारी होते हैं। थोड़े-से-थोड़े में सन्तोष करके अधिक-से-अधिक देने की इच्छा रखते हैं। उन्हें देवता कहते हैं। परोपकारादि गुण मनुष्य रूप में भी देवताओं का लक्षण है। जैसे भूदेव शब्द ब्रह्माण के लिए प्रयुक्त होता है। उन्हें पृथ्वी का देवता माना जाता है।

ब्रह्मा जी के पास मनुष्य लोक के दैवी सम्पत्ति प्रधान देवता (मनुष्य लोक के) तथा आसुरी विपत्ति प्रधान असुर मनुष्य पहुंचे, क्योंकि आसुरी गुण जीव को नरक तथा जन्म मरण की विपत्ति में डालते हैं। ब्रह्मा जी ने जान-बूझ कर दोनों की परीक्षा के निमित्त हाथों में खपच्चियां बांधी थीं। दूसरों को खिलाने वाला भूखा नहीं रहता और न खिलाने वाला कैसे भूखा रहता है यह सिद्ध किया गया इस आख्यायिका द्वारा।

इस कथा का अध्यात्म भाव तथा शिक्षा–

ब्रह्म लोक–यत्र ब्रह्मैव लोक्यते प्रकाशते इति, अथवा ब्रह्मैव लोक इति ब्रह्मलोकः।

जिस तुरीय में पहुंचने पर ब्रह्म ही प्रकाशित होता है। अनुभूति में आता है ऐसा लोक (ज्ञान) ही ब्रह्मलोक है। ब्रह्म के अतिरिक्त **"नेह नानाऽस्ति किंचन"** वहां पर साधन चतुष्टय सम्पन्न अधिकारी शिष्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं से महावाक्य के श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने वाला शिष्य ही वहां पहुंच सकता है। वहां का भोजन प्रिय, मोद तथा प्रमोद का अवगाहन करने वाली ब्रह्माकार वृत्ति ही अनेक प्रकार का भोजन है। वहां पर अधिकारी तथा अनधिकारी की परीक्षा के लिए पंच ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त जीव की बहिर्मुख इन्द्रियों पर विषय वासना रूपी खपच्चियां बांध दी जाती हैं। तब अधिकारी मुमुक्षु जीवात्मा परमात्मा की अपरोक्ष अनुभूति रूपी वृत्ति से आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है, किन्तु बहिर्मुख वुभुक्षु रूपी असुर पंच विषयों के बन्धन में पड़ा हुआ परमानन्द रूपी आत्म सन्तुष्टि रूपी भोजन से वंचित रहता है। ब्रह्माकार वृत्ति ही अनेक प्रकार का भोजन है। वहां पर अधिकारी तथा अनधिकारी की परीक्षा के लिए पंच

ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त जीव की बहिर्मुखी इन्द्रियों पर विषय वासना रूपी खपच्चियां बांध दी जाती हैं। तब अधिकारी मुमुक्षु जीवात्मा परमात्मा की अपरोक्ष अनुभूति रूपी वृत्ति आत्म सुख में संतुष्ट होता है। असुर पंच विषयों के बंधन में पड़ा हुआ। परमानन्द रूपी आत्म संतुष्टि रूपी भोजन से वंचित रहता है। अतः इस कथा में मुमुक्षु तथा बुभुक्षु की ही चर्चा है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का सातवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का आठवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मा जी द्वारा विरोचन तथा इन्द्र को ज्ञानोपदेश–सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् के आठवें अ० सातवें खण्ड में कथा आती है कि ब्रह्मा जी ने देवताओं को उपदेश करते हुए आत्मा के सम्बन्ध में कहा, यह आत्मा जन्म–मृत्यु, शोक, जरा, भूख, प्यास से रहित है। सत्य काम तथा सत्य संकल्प है। उसकी खोज करनी चाहिए। जो उसको जानता है वह सर्वज्ञ हो जाता है। यह प्रजापति का उपदेश देव असुर दोनों ने सुना। हमें इस आत्मा के सम्बन्ध में ज्ञान करना चाहिए। तब देवराज इन्द्र तथा असुर राज विरोचन दोनों एक दूसरे के महाविरोधी थे। फिर भी दोनों समित् पाणि होकर एक ही गुरु ब्रह्मा जी के पास एक साथ मार्ग में एक दूसरे से बिना बोले, श्रद्धापूर्वक ब्रह्मा जी के पास पहुंचे। प्रणाम करके आत्मा के सम्बन्ध में पूछा, ब्रह्मा जी ने दोनों को बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरू सेवा की आज्ञा दी। बत्तीस वर्ष बीतने के बाद दोनों से ब्रह्मा जी बोले–

"य एषोऽक्षिणी पुरुषोऽदृश्यत एष आत्मेति" अ० ८ खं० ७ म० ४

यह जो मैंने पाप रहित संकल्प आदि गुणों से युक्त आत्मा कहा है। यह तुम्हारी आंख में जो पुरुष दीखता है। वह आत्मा है। ब्रह्मा जी का अक्षि पुरुष से तात्पर्य था आंखों का द्रष्टा चैतन्य पुरुष–किन्तु अन्तःकरण पूर्ण रूप से शुद्ध न होने के कारण दोनों ने एक–दूसरे की आंख में एक–दूसरे के शरीर की छाया देखी। स्थूल शरीर को ही आत्मा समझकर दोनों ही चले गये। चूंकि दोनों को अपने पाण्डित्य का अभिमान था। इन दोनों में विरोचन शरीर में आत्मबुद्धि करके इसी के भरण पोषण में लगा रहा। सुन्दर वस्त्र आभूषणों से शरीर को अलंकृत करने लगा। खान–पान द्वारा शरीर को पुष्ट करने

लगा। ब्रह्मा जी ने आत्मा को अभय कहा था। स्वर्ग में इन्द्र विचार करने लगे कि इस शरीर को तो रात दिन असुरों से भय बना रहता है। गुरु जी ने इसे अभय कहा है तो फिर यह शरीर आत्मा कैसे हो सकता है। उन्होंने आत्मा को अच्छेद्य कहा शरीर के नाखून व बाल कटवाने पर छाया पुरुष के भी कटे हुए प्रतीत होते हैं। सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनने पर प्रतिबिम्ब भी वैसा ही दिखाई पड़ता है। आंख फूट जाने पर छाया पुरुष नहीं दीखता। अतः मैं छाया पुरुष में आत्म दर्शन का अनुभव नहीं करता। ऐसा विचार कर फिर भेंट लेकर गुरु चरणों में ब्रह्मा जी के पास गये। उन्होंने इन्द्र से पूछा तुम तो विरोचन के साथ सन्तुष्ट होकर चले गये थे। अब फिर किस लिए आए हो। इन्द्र ने अपना भाव बताया ब्रह्मा जी ने इन्द्र के शेष दोषों को दूर करने के लिए फिर से सेवा करते हुए बत्तीस वर्ष तक आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य की आज्ञा दी।

३२ वर्ष बीतने के बाद ब्रह्मा जी ने कहा–

''यः एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति'' अ० ८ खं० १० मं १

यह जन्म मृत्यु से रहित आत्मा को अक्षि पुरुष कहा था, वह कौन है। सो मैं तुम्हें बताता हूं सुनो, जो स्वप्न में स्त्री आदिकों के साथ पूजित होकर सूक्ष्म रूप से हजारों कोस तक चला जाता है तथा आप ही द्रष्टा दर्शन तथा दृश्य रूप स्वयं हो जाता है वह आत्मा है। इन्द्र ब्रह्मा का उपदेश सुनकर शान्त हृदय से चले गये। उन्होंने स्वर्ग में जाने से पहले ही भय देखा विचार करने लगे स्वप्न का अभिमानी तेजस आत्मा कैसे हो सकता है? क्योंकि जागृत का स्थूल शरीर आंखों से अंधा होने पर भी स्वप्न में अपने को नेत्र युक्त देखता है। जाग्रत् में पेट भरा होने पर स्वप्न में भूख लगती है। स्वप्न का शरीर अनेक दोषों से युक्त होने से आत्मा नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर फिर श्रद्धापूर्वक समित् पाणि होकर ब्रह्मा जी के पास पहुंचे। उन्होंने देखकर इन्द्र से कहा। अब किस लिए आए हो। इन्द्र ने अपना भाव व्यक्त किया। ब्रह्मा जी ने इन्द्र को फिर से बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रहने की आज्ञा दी। तब ब्रह्मा जी ने उनसे कहा–

तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति। हो वाचैतदमृतमभयमेतद्ब्र ह्मेति। अ० ८ ख ११ म०-१

हे इन्द्र! जो जाग्रत् अवस्था में आंखों का द्रष्टा है। स्वप्न में अपनी महिमा में विचरण करता है। वही यह आत्मा गाढ सुषुप्ति में समस्त चिन्ताओं से रहित प्रसन्नचित्त, किसी प्रकार का स्वप्न न देखते हुएष आनन्द से सोता है। वह सुषुप्ति का अभिमानी प्राज्ञ आत्मा है। वह जन्म मृत्यु से रहित आत्मा है, अभय है वह ब्रह्म है। ब्रह्मा जी का वचन सुनकर शान्त चित्त हो इन्द्र चले गये। वे अभी स्वर्ग में नहीं पहुंचे थे। मार्ग में ही विचार करने लगे। ब्रह्मा जी के इस कथन में उन्होंने दोष देखा। प्राज्ञ आत्मा कैसे हो सकता है। सुषुप्ति में अपने दूसरे को नहीं जानता। अतः प्राज्ञ आत्मा नहीं हो सकता। शव के समान पड़ा रहता है। सुषुप्ति अवस्था में ज्ञान नहीं रहता। प्राज्ञ आत्मा, अभय, ज्ञान रूप, कैसे हो सकता है। अतः इस प्रकरा विचार कर रास्ते से वापस होकर ब्रह्मा जी के पास पहुंचे। इन्द्र को देखकर ब्रह्मा जी ने पूछा। इन्द्र तुम मुझ से तीन बार पूछ कर चले गये। अब क्यों लौट कर आये हो। इन्द्र के आत्मा के स्वरूप के समझने में उनके अन्तःकरण में थोड़े दोष रह गये थे। उन दोषों को दूर करने के लिए ब्रह्मा जी ने पांच वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए आज्ञा दी। पांच वर्ष के अनन्तर जब उनके सभी दोष दूर हो गये, तब एक सौ एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके सेवा द्वारा शुद्ध अन्तःकरण वाले इन्द्र से ब्रह्मा जी बोले। इस कथा से यह सिद्ध होता है कि देवताओं के स्वामी इन्द्र को भी इन्द्र पद का अभिमान त्याग करके गुरु सेवा से आत्म ज्ञान प्राप्त हुआ। तो सर्व साधारण की तो बात ही क्या। इससे आत्म ज्ञान की महिमा प्रकट होती है।

मघवन् मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मुत्युना तदस्यामृतस्याऽऽत्मानोधिष्ठानमात्तो वै स शरीरः प्रिया प्रियाभ्यां न वै स शरीरस्य सतः प्रिया प्रियोरपहतिरअस्य शरीरं। वाव सन्तं न प्रिया प्रिये स्पर्शतः॥ अ० ८ ख० १२ मं० १

हे इन्द्र! यह मरण धर्मा शरीर मृत्यु द्वारा ग्रसित है तथा मृत्यु से रहित अशरीर आत्मा अधिष्ठान है। शरीर अध्यास से ग्रसित होने के कारण, शरीर के अनुकूल तथा प्रतिकूल, प्रिय-अप्रिय वस्तुएं शरीर को स्पर्श करती हैं तथा जब तक देहाध्यास बना रहेगा तब तक शरीर को प्रियाप्रिय से छुटकारा नहीं मिल सकता।

चारों मंत्रों का सारांश तथा तात्पर्य विशेष–ब्रह्मा जी ने इन्द्र तथा विरोचन को आत्मा परमात्मा तत्त्व अति सूक्ष्म तथा दुर्विज्ञेय होने के कारण निरुपाधिक ब्रह्म का उपदेश साक्षात् नहीं किया, किन्तु पहले स्थूल शरीर के अभिमानी जिसकी जाग्रत् अवस्था है और नेत्रों में वास है उसका छाया पुरुष के रूप में उस विश्व का उपदेश किया। इन दोनों में इन्द्र के अन्तःकरण के दोष कुछ निवृत्त हो चुके थे। सूक्ष्म दृष्टि पर विचार करके ब्रह्मा जी ने आत्मा जन्म मृत्यु, शोक, भय आदि से रहित है। उपदेश के अनुसार घटित न होने के कारण वे फिर ब्रह्मा जी के पास गये। तब उन्होंने स्वप्नाभिमानी तैजस का आत्म रूप से उपदेशकिया। इन्द्र ने लौटकर फिर विचार किया, किन्तु उपर्युक्त आत्मा के लक्षण नहीं पाये। तब लौटकर फिर ब्रह्मा जी के पास पहुंचे। तब प्रजापति ब्रह्मा ने सुषुप्ति के अभिमानी प्राज्ञ पुरुष का उपदेश किया। जब चौथी बार फिर लौटकर पहुंचे। एक सौ एक वर्ष की साधना से उनके अन्तःकरण के मल विक्षेप दोष नष्ट हो चुके थे। तब उन्हें वास्तविक अधिकारी समझ कर सोपाधिक तीनों पुरुषों का बाध करके जो तीनों अवस्थाओं तथा पुरुषों का साक्षी चैतन्य निर्गुण है, उस शुद्ध आत्मा का उपदेश किया। "जैसे कोई मन्द दृष्टि पुरुष द्वितीया का चन्द्रमा या अरुन्धती तारा देखना चाहता है। उसको दिखाने वाला पहले समीपवर्त्ती वृक्ष की ओर संकेत करके कहता है कि यह चनद्रमा है फिर बीच में पेड़ को दिखाकर कहता है कि यह चन्द्र है। फिर तीसरे को और अन्त में पर्वत की चोटी की ओर इशारा करके कहता है कि पहाड़ की चोटी के पास चमक रहा है। वैसे ही ब्रह्मा जी ने आंखों में विद्यमान छाया पुरुष से आरम्भ करके, प्राज्ञ पुरुष को बताने के बाद, परम प्रकाश ज्योति स्वरूप, तीनों देहों से परे शुद्ध स्वरूप को आत्मा बताया।"

पूर्व पक्षी की इस शंका का समाधान करते हुए स्वामी शंकराचार्य जी कहते हैं कि सचमुच तुम्हारी यह व्याख्या बड़ी रोचक है तथा समझ में आने वाली है, किन्तु तुम्हारा यह व्याख्यान पूर्वा पर के संगति लगाने से उचित नहीं प्रतीत होता। शिष्य ने पूछा कैसे, गुरु जी उत्तर देते हैं। ब्रह्मा जी ने जब छाया पुरुष को आत्मा बताया। दोनों शिष्यों ने सरोवर में तथा दर्पण में अपने शरीर की छाया देखी और ब्रह्मा जी से आकर छाया पुरुष को आत्मा बताया तब ब्रह्मा जी ने कहा अब तुम शरीर का अलंकार करके अपनी छाया

देखो। प्रजापति द्वारा यदि छाया ही आत्मा का उपदेश होता, तो दोनों विपरीत ग्रहण मान कर उसकी निवृत्ति के लिए जल से भरे हुए सकोरे में देखो। अलंकार वस्त्राभूषणों सहित छाया को देखने से उपदेश व्यर्थ सिद्ध होगा। उन्होंने स्वयं ही इसका उपदेश किया था। ग्रहण की निवृत्ति का कारण बताना चाहिए था। दूसरी तीसरी बार स्वप्न आत्मा तथा सुषुप्ति आत्मा का ग्रहण करने पर उसकी निवृत्ति का भी कारण बताना चाहिए था। वह बताया नहीं। अतः हमारे सिद्धान्तानुसार प्रजापति ने नेत्र के भीतर छाया पुरुष का उपदेश नहीं किया, किन्तु बिम्ब भूत आत्मा, जिसकी छाया मन बुद्धि तथा आंख पर पड़ती है तथा जिससे देखने, विचार करने, संकल्प विकल्प करने आदि की शक्ति मिलती है, उसका उपदेश किया।

क्योंकि इसमें दृश्यते क्रिया का प्रयोग किया है। इससे भी नेत्र अन्तर्गत द्रष्टा का उपदेश किया गया है। इसी प्रकार एवं 'एषस्वप्ने' ऐसा कहकर स्वप्न में भी स्वप्न के द्रष्टा का उपदेश है क्योंकि स्वप्न द्रष्टा स्वप्न देखता नहीं। देखने के समान प्रतीत होता है। रुदन सा करता है स्वप्न द्रष्टा स्वप्न में विचरण नहीं करता, बल्कि विचरण करता सा प्रतीत होता है। वैसे ही सुषुप्ति में गाढ निद्रा में सोता हुआ सा प्रतीत होता है।

ऊपर के दिये गये युक्ति तर्क और प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यह मिथ्या प्रतीति जीव को अज्ञान से प्रतीत होती है। यह आत्मा ही संसारी प्रतीत होता है। वृहदारण्यक में कहा है **'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा'** शुद्ध आत्मा में जन्म-मरण रूप संसार नहीं है, किन्तु अविद्या से अध्यस्त होने के कारण रज्जु में सर्प के, सीपी में चांदी के तथा आकाश में मलिनता के समान मिथ्या प्रतीति हैं।

जब आत्मा के यथार्थ रूप को समझने में महाबुद्धिमान् प्रजापति का पुत्र विरोचन भी समर्थ नहीं हो पाया शरीर को आत्मा मान बैठा। तो अत्यन्त मलिन बुद्धि क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध तथा सांख्यवादी जो आत्मा और शरीर को भिन्न-भिन्न मानते हुए भी जीवात्मा परमात्मा को भिन्न मानते हैं तथा कणाद मतावलम्बी वैशेषिक भी कहते हैं। जैसे काषाय में रंगे वस्त्र को क्षार आदि से शुद्ध किया जाता है। इसी प्रकार आत्मा में नौ गुणों से युक्त आत्म द्रव्य को शुद्ध करने में लगे हुए हैं। कर्म काण्डी पूर्वमीमांसक कभी

इसी लोक तथा परलोक के भोगों में आसक्तचित्त है। जो वेद को प्रमाण मानने पर भी इन्द्र के समान जीव परमात्मा के एकत्व को न मान कर घटी यंत्र के समान शुभ कर्म करके स्वर्ग में तथा पुण्य क्षीण होने पर संसार में आते हैं। जन्म मृत्यु के चक्कर से नहीं छूटते। जब महाशास्त्र ऋषियों तथा आचार्यों की यह गति है, तो साधारण प्राणियों के लिए क्या कहा जाए।

अत: जो तीनों ऐषणाओं का त्याग करके विवेक वैराग्य आदि साधन चतुष्टय सम्पन्न सभी आश्रमों से ऊपर उठे हुए अमल आत्मा परम हंस परिव्राजकाचार्य एकमात्र संन्यासी ही परम पूज्यतम जगद्गुरु प्रजापति ब्रह्मा की परम्परा का अनुसरण करते हुए, महावाक्यों का श्रवण, मनन निदिध्यासन करते हुए आत्मा परमात्मा का अनुभव करने में समर्थ हो सकते हैं। दूसरे नहीं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का आठवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का नवां अध्याय प्रारम्भ ॥

गायत्री रहस्योपनिषद् में ब्रह्मा जी का उपदेश–अपौरुषेय वेद वाणी ही जीव का वास्तविक कल्याण करती है। इसमें बताया गया है कि मनुष्य को प्रत्येक प्राणी के प्रति कैसे व्यवहार करते हुए जीवन यात्रा करनी चाहिए। इसका सांगोपांग उपदेश वेद में किया गया है।

समस्त योनियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ है, क्योंकि इसी शरीर में जीव धर्मार्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कर सकता है। धर्म दो प्रकार का है–१. सामान्य धर्म, २. विशेष धर्म, सत्य, शौच, धृति आदि सामान्य धर्म हैं तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं चौथे वर्ण से उत्पन्न हुआ पांचवां अन्त्यज इनके विशेष धर्म हैं। इसी प्रकार महिलाओं में कुमारी का धर्म, सधवा का पतिव्रताधर्म, विधवा का वैधव्य धर्म भी विशेष धर्म हैं। चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इनके धर्म विशेष धर्म हैं।

इनमें चारों वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य को द्विज कहते हैं। इन द्विजातियों को सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों में तथा जन्माष्टमी, शिव रात्रि आदि नैमित्तक कर्मों में अधिकार है। इनमें भी सन्ध्या ब्राह्मण का मूल है–

विप्रोवृक्षस्तस्य मूलंच संध्या, वेदः शाखा धर्म कर्मादि पत्रम्।

तस्मान्मूलं यत्नतोरक्षणीयः, छिन्ने मूलेनैवशाखा न पत्रम्॥

ब्राह्मण वृक्ष है संध्या उसकी जड़ है वेद शाखाएं हैं तथा धर्म कर्मादि पत्ते हैं। इसलिए सन्ध्या रूपी जड़ की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जड़ के कट जाने पर शाखा और पत्ते नहीं रह सकते।

संक्षिप्त सन्ध्योपासना–सन्ध्योपासना में सन्ध्या तथा उपासना दो शब्द हैं। दो कालों की सन्धि को सन्ध्या कहते हैं। इन कालों में इष्ट देव के समीप बैठने का नाम उपासना है। श्री वंशीधर शर्मा जी ने भगवान् के प्रथम श्लोक की सौ पक्षों में व्याख्या की है। एकतालीसवां पक्ष भागवत का है इसमें "**तेजो वारिमृदायथाविनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृषा** की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि चूंकि भागवत ब्रह्म सम्मत है (वेद सम्मत है) वेद त्रिकाण्ड आत्मक कहा गया है। इन त्रिकाण्डों में कर्म काण्ड की चार विधियों के निरूपण के अनन्तर गुणानुवाद, अनुवाद, भूतार्थवाद का प्रतिपादन करने के अनन्तर वेद के उपासना काण्ड के सम्बन्ध में उपासना शब्द की व्याख्या करते हे लिखते हैं, कि वस्तु के स्वरूप की अपेक्षा किये बिना पुरुष की इच्छा के अनुसार मानस का प्रवाह ही उपासना है।" अर्थात् जो साधक जिस देवता का भक्त है, उस देवता की किसी भी प्रकार की मूर्ति बनाकर उसमें धातु आदि की भावना का परित्याग करके अपने इच्छा के अनुसार देवता के अष्टभुज, चतुर्भुज, शंख चक्र गदा आदि से युक्त मन की उस देवता के आकार से युक्त मन की वृत्ति के प्रवाह का नाम उपासना है। यह साधना रूपी सन्ध्योपासना है। इस सन्ध्या के माध्यम से साध्य रूपी परमात्मा की प्राप्ति होना, साध्य सन्ध्योपासना है। अर्थात् जीवात्मा परमात्मा के ऐक्य का नाम ही सन्ध्या है। इन दोनों के ऐक्य भाव की सदैव सान्निध्य की अनुभूति उपासना है। परन्तु सर्वसाधारण साधकों को साधन रूपी सन्ध्योपासना करनी चाहिए। सन्ध्योपासना विधि सहित संक्षेप तथा विस्तार में अनेकों जगह से छपी है। उसी के अनुसार द्विजातियों को त्रिकाल सन्ध्या करना चाहिए, परन्तु कुछ द्विज कठिन संस्कृत होने के कारण सन्ध्या नहीं कर पाते। सूर्य को अर्घ्य देकर सन्ध्या कर लेते हैं या गायत्री जप कर लेते हैं। उनके

लिए संक्षेप में गायत्री मंत्र से ही सन्ध्योपासना दी जाती है। सन्ध्या में प्रधान रूप में चार अंग हैं–१. प्राणायाम, २. सूर्यार्घ्यदान, ३. सूर्योपस्थान, ४. गायत्री जप।

जिस स्थान पर बैठकर सन्ध्योपासना करना है। स्नान आदि से निवृत्त होकर लोटा गिलास, थाली, आचमनी आदि सन्ध्या के पात्र शुद्ध करके उसमें शुद्ध जल लें। भूमि शुद्ध के लिए 'ॐ पृथ्वैयनमः' कहकर भूमि पर जल छिड़क कर पवित्र करें। 'ॐ आधारशक्त्यै नमः' कहकर आसन बिछाये। फिर गायत्री मंत्र से अथवा 'ॐ चिच्छक्त्यै नमः', 'ॐ मायाशक्त्यै नमः', 'ॐ सर्व शक्त्यै नमः' इन तीनों मंत्रों से शिखाबन्धन करे। बाद में वैदिक या तान्त्रिक आचमन करे। क्योंकि हमारे तीन शरीर हैं। तीनों शरीरों की शुद्धि के लिए तीन देवताओं के मन्त्रों से करे–

ॐ ब्रह्मणे नमः से पहला, ॐ विष्णवे नमः से दूसरा, ॐ रुद्राय नमः से तीसरा आचमन करे। स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों की शुद्धि के लिए करे। बाद में ॐ वरुणाय नमः दो बार इस मन्त्र से हाथ धोवे अथवा केशवादि नामों से भी आचमन किया जा सकता है। ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः। फिर दो बार गोविन्दाय नमः कहकर हाथ धोवे। फिर अपने सम्प्रदाय के अनुसार प्रातः सन्ध्या में जलमिश्रित भस्म, मध्यान्ह में चन्दन मिश्रित, सायं काल में सूखी भस्म लगावे, त्र्यायुषंजमदग्ने कह कर ललाट में–कश्यपस्य त्र्यायुषं कहकर गले में ॐ यद्देवेषुत्र्यायुषम् कहकर भुजाओं में–तन्नोऽस्तुत्र्यायुषम् कहकर हृदय में। शेष भस्म को जल मिलाकर 'जातवेदा पुनीहिमाम्' कहकर पी लेवे। इसके बाद प्राणायाम करे।

१. प्राणायाम–प्राणों को रोकने की क्रिया का नाम प्राणायाम है। इनके रोकने का प्रभाव जड़ वस्तुओं में भी पड़ता है। फिर चैतन्य के लिए तो कहना ही क्या है। प्राणों की वायु रोकने पर ही ट्रक, ट्रैक्टर, बस आदि का पहिया आदि सैंकड़ों मन बोझ को लेकर बड़ी तीव्र गति से भागता है। पहियों के भीतर भरी हवा या प्राणों को निकाल देने पर सबसे अधिक शक्तिशाली इंजन भी उतनी गति से खींच नहीं सकता। दो प्रकार की लैम्प एक बत्ती वाली दूसरी हवा वाली। स्टोव इनमें जिसमें हवा भरी जाती है, उसमें प्रकाश अधिक होता है। बिना वायु वाली लैम्प में प्रकाश कम होता है। इन उदाहरणों

से सिद्ध होता है कि प्राणों को रोकने से शक्ति तथा प्रकाश दोनों प्राप्त होते हैं। अतः प्राणायाम करने वाले व्यक्ति की सभी नाड़ियां शुद्ध होकर उनमें शक्ति, ज्ञान तथा तेज बढ़ता है।

सन्ध्या में तीन प्रकार का प्राणायाम किया जाता है। तर्जनी को अंगूठे के मूल में लगाकर अंगूठे से नासिका (नथुनों) का दाहिना छिद्र दबाकर बायें छिद्र से गायत्री मंत्र का जप करते हुए वायु को पेट में भरे इसे पूरक कहते हैं। फिर दोनों छिद्र बन्द करके भरी हुई वायु को रोकने से इसे कुम्भक कहते हैं। फिर अंगूठा हटाकर धीरे-धीरे वायु को दाहिने छिद्र से बाहर निकाले इसे रेचक कहते हैं। वायु को निकालने के बाद यथाशक्ति बाहर रोकने का नाम बाह्य कुम्भक है। यह एक प्राणायाम हुआ। सन्ध्या में इसी प्रकार तीन प्राणायाम करने चाहिए। दूसरे प्राणायाम में बायें को रोककर दाहिने से श्वास खींचे इसी क्रम से करे। तीसरे में फिर अंगूठे से दबाकर वायु खीचे। यह सन्ध्या का पहला अंग है।

२. सूर्यार्घ्यदान–प्रातः तथा मध्यान्ह संध्या में खड़े होकर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए सूर्योदय न हुआ हो तो तीन बार यदि उदय हो गया हो तो चार बार सूर्य को अर्घ्य दे जल छोड़ेते हुए प्रातः सन्ध्या में 'ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं दत्तम् न मम' इससे जल छोड़े। दोपहर की सन्ध्या में एक बार गायत्री से अर्घ्य देकर 'ॐ रुद्रस्वरूपिणे सूर्य नारायणाय इदं अर्घ्य दत्तं नमम' कहे। सायं काल की सन्ध्या में बैठकर पश्चिम मुख यदि सूर्य अस्त न हुआ हो तो तीन बार अन्यथा चार बार जल देकर 'ॐ विष्णु स्वरूपिणे सूर्यनारायण इदमर्घ्यदत्तं न मम' यह कहे।

३. सूर्योपस्थान–प्रातः दोपहर की सन्ध्या में खड़े होकर चार बार गायत्री मंत्र पढ़ कर सूर्य की स्तुति करें। सायं सन्ध्या में बैठकर हाथ जोड़कर चार बार गायत्री मंत्र पढ़ कर हाथ जोड़ें।

४. गायत्री जप–फिर यदि खड़े होकर जप करने की सामर्थ्य हो तो खड़े होकर अन्यथा बैठकर यथा शक्ति गायत्री का जप करें कम-से-कम १०८ बार अवश्य करे। जप के बाद **'अनेन गायत्री मंत्र जपाख्येन् कर्मणा सूर्यनारायणः प्रीयताम्'** कहकर

जल छोड़ें। आचमनी से फिर जल लेकर **'अनेन सन्ध्योपासना रूपेण कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम्'** कहकर भूमि पर जल छोड़ें। गायत्री जप के पश्चात् भी तीन प्राणायाम करें। फिर **'यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि चतानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणे पदे पदे'** से परिक्रमा करें। **(इति संक्षिप्त सन्ध्योपासन विधिः)**

॥ इति तृतीय परिच्छेद का नवम अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का दशम अध्याय प्रारम्भ ॥

गायत्री मंत्र–गायत्री एक वैदिक छन्द का नाम है इसमें चौबीस अक्षर होते हैं। अनेकों गायत्रियां हैं, किन्तु सन्ध्योपासना की अंगभूत गायत्री में तेईस अक्षर हैं। अतः यह गायत्री छन्द नहीं है। यह निचृद् गायत्री छंद है। लौकिक या वैदिक किसी भी छन्द में जिसमें एक अक्षर कम हो। निचृत् छन्द कहलाता है। जैसे इकतीस अक्षरों वाला अनुष्टुप्, निचृत अनुष्टुप तथा तैतालीस अक्षरों वाला त्रिष्टुप् निचृत् त्रिष्टुप् के नाम से कहा जाता है। वास्तव में गायत्री मंत्र का जप करते समय **'तत्सवितुर्वरेण्यं'** ऐसा उच्चारण करना चाहिए किन्तु अर्थ करते समय **'वरेणियं'** कहना चाहिए।

गायत्री चार वेदों का सार होने के कारण वेद माता कही गई है। इसके प्रथम पाद में ऋग्वेद का सार, द्वितीय पाद में यजुर्वेद का सार और तृतीय पाद में सामवेद का सार है। वास्तव में तीन ही वेद हैं। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने **''त्रैविद्या मां सोमपाः पूत पापाः''** कहकर ९वें अध्याय, २०वें श्लोक के पहले पाद में तथा २१वें श्लोक के तीसरे पाद में **''एवं त्रयीधर्म मनुप्रपन्नाः''** इन वचनों से वेद का त्रयी होना सिद्ध है। चौथा अथर्ववेद तीनों वेदों का मिश्रण है। उसमें कुछ मंत्र ऋग्वेद के कुछ यजुर्वेद के कुछ सामवेद के मंत्र हैं। गायत्री मंत्र तत् से आरम्भ होता है। इससे पूर्व **''ॐ भूर्भुवः स्वः''** यह तीन प्रणव सहित व्याहृतियां हैं। इन चारों वर्णों की गणना गायत्री मंत्र में नहीं होती है। इस मंत्र में तेईस या चौबीस अक्षर तथा दस शब्द हैं।

गायत्री मंत्र का अर्थ–ॐ = अवतीति रक्षतीति ॐ अर्थात् परमात्मा की जगत् की उत्पत्ति पालन संहार करने वाली शक्ति ॐ है। ॐ को प्रणव भी कहते हैं। इसमें प्र उपसर्ग तथा नव है। प्र = दृढ़। नव = नौका जीव को संसार सागर से तारने वाली दृढ़

नौका रूप ॐ है। इसलिए इसमें ॐ के ऊपर का अनुस्वार अर्द्धचन्द्र सहित नाव की आकृति है अथवा यह अमृत से परिपूर्ण नाद है। ॐ में पांच अक्षर हैं। अकार उकार मकार अर्द्धमात्रा और बिंदु हैं।

अ = ब्रह्मा, विश्व, स्थूल शरीर। उ = विष्णु तेजस, हिरण्य गर्भ, सूक्ष्म शरीर, म् = शिव, कारण शरीर, प्राज्ञ, ईश्वर, अर्द्धमात्रा = सदाशिव, बिन्दु = परम शिव। अर्थात् जिस समय जगत् प्रकृति तथा शिव होते हैं, तब उनका नाम शिव है। जब जगत् का प्रकृति में लय हो जाता है, तब सदाशिव। जिस समय प्रकृति भी ब्रह्म में लीन हो जाती है, केवल शिव रहते हैं, उस समय उनका नाम परम शिव होता है। शास्त्रों में दो प्रकार के पंचाक्षरी मंत्र कहे हैं।

एक स्थूल पंचाक्षरी, दूसरी सूक्ष्म पंचाक्षरी। 'नमः शिवाय' यह स्थूल पंचाक्षरी तथा 'ॐ' सूक्ष्म पंचाक्षरी है। इन दो पंचाक्षरियों के अतिरिक्त अन्य पंचाक्षरियों की व्याख्या प्रथम परिच्छेद शिव चरित्र में विस्तार से कही गई है। प्रणव की विस्तृत व्याख्या इसी खंड के तीसरे परिच्छेद में ब्रह्मा जी के उपदेशान्तर्गत संन्यास प्रकरण में करेंगे।

भूः का अर्थ–भूः = माने पृथ्वी लोक। भुवः = पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का अन्तरिक्ष लोक। स्वः = स्वर्ग लोक। तत् = निराकार निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म। सवितुः = सगुण साकार ब्रह्म। वरेण्यं = वरण करने योग्य सर्वोत्तम। भर्गः = जीव के तीनों पाप, शरीर, तीन प्रकार के कर्मों को ज्ञान अग्नि में भून करके जीव को परमानन्द की प्राप्ति कराने वाले। देवस्य = स्वयं प्रकाश। धीमहि = ध्यान करते हैं। धियो = हम सब की बुद्धियों को। यो = जो परमात्मा। नः = हम सब की। प्रचोदयात् = प्रेरित करे–सन्मार्ग पर लगावे।

गायत्री मंत्र जप विधि–गायत्री मंत्र का आवाहन करें–

मन्त्र–ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देव यजनमसि। अथवा आगच्छ वरदे देवि, यदक्षरब्रह्मवादिने गायत्रि छन्दसां मातर्ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते।

फिर गायत्री का उपस्थान करे।

मंत्र—गायत्र्यास्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परो रजसेऽसावदोमाप्रापत्।

शाप विमोचन—शास्त्रों में यह बात सिद्ध है कि दुर्गा सप्तशती तथा गायत्री दोनों ही ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा शापित हैं। अतः जप या पाठ से पहले शाप विमोचन करते हैं। किन्तु इसके सम्बन्ध में पं० वंशीधर शर्मा ने भागवत में प्रथम श्लोक की १०० पक्षों की व्याखया के प्रसंग में लिखा है कि इन तीनों में से शाप किसको दिया, गायत्री मंत्र के अक्षरों को गायत्री छंद को या गायत्री की अधिष्ठात्री देवी को यदि गायत्री के अक्षरों को शाप मिला है, तो तत् से लेकर यात् पर्यन्त जितने भी अक्षर आये हैं, उन सब को शाप हैं। तो ये अक्षर शास्त्रों में सर्वत्र देखने को मिलते हैं। तो कहा-कहां शाप विमोचन किया जाए। तो ऐसे चौबीस अक्षर वाले जितने गायत्री छन्द हैं, सब को शापित होना चाहिए। यदि कहो कि गायत्री की अधिष्ठातृ देवी ही शापित है तो देवता एक ही है। उपाधि भेद से अनेक प्रतीत होता है। "**एको देवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताकेवलो निर्गुणश्च।**"

एक ही देवता (पर ब्रह्म परमात्मा) सब के हृदय रूपी गुहा में छिपा है। सर्वव्यापी, सभी प्राणियों की आत्मा, कर्मों का अध्यक्ष सभी प्राणियों में बसा हुआ, सभी प्राणियों के तीनों प्रकार के कर्मों का साक्षी है। चैतन्य स्वरूप तथा केवल निर्गुण है।

जब एक ही देव है। द्वितीय नहीं, तो शाप देने वाला और शाप लेने वाला कौन है? अतः किसी परिस्थिति में शाप सिद्ध नहीं होता।

यदि व्यावहारिक सत्ता को लेकर शाप मान भी लिया जाए तो विनियोग तथा मंत्रों सहित शाप विमोचन तांत्रिकों के लिए आवश्यक हो सकता है और स्मार्तों के लिए नहीं। श्रौत स्मार्त = वेदों तथा सत्ताईस स्मृतियों में कहे हुए पंच देवों के उपासक जो वैदिक मंत्रों द्वारा उपासना करते हैं, वे श्रौत कहे जाते हैं और जो स्मृतियों के अनुसार पौराणिक मंत्रों द्वारा उपासना करते हैं। वे स्मार्त कहे जाते हैं। उनका शाप विमोचन केवल "**ब्रह्मशापाद् विमुक्ताभव, वशिष्ठ शापाद् विमुक्ता भव, विश्वामित्र शापाद् विमुक्ताभव**" इतना पढ़ने मात्र से ही शाप विमोचन हो जाता है।

मुद्रा–कुछ लोग गायत्री जप से पूर्व २४ मुद्राएं और अन्त में ८ मुद्राएं करते हैं। यह भी तान्त्रिक लोगों के लिए ही है। श्रौत स्मातों के लिए आवश्यक नहीं है।

न्यास–न्यास करते समय ऐसी भावना करे कि परमात्मा की शक्ति मेरे अंग, प्रत्यंग में प्रविष्ट हो रही है। जैसे एक वैज्ञानिक मीटर के तारों का सम्बन्ध बल्ब या पंखे आदि के साथ जब करता है। तब बिजली का उसमें संचार होता है। वैसे ही साधक भी देवता होकर ही देवताओं का पूजन करे। ॐ भुः हृदयायनमः इसको पढ़ते हुए यह भावना करे, मेरे इष्ट देव के हृदय से शक्ति निकल कर मेरे हृदय में संचार कर रही है। न्यास का मंत्र इस प्रकार है–**ॐ भूः अंगुष्ठाभ्यांनमः** कहकर दोनों अंगूठों को मिलाते हुए प्रणाम करें। **ॐ भुवः इति तर्जनीभ्यां नमः** दोनों तर्जनी मिलावें। **ॐ स्वः इति मध्यमाभ्यां नमः** दोनों मध्यमां अंगुली मिलावे। **ॐ तत्सवितुर्वेरण्यं इति अनामिकाभ्यां नमः** दोनों अनामिका मिलावे। **ॐ भर्गो देवस्य धीमहि इति कनिष्ठिकाभ्यानमः** दोनों कनिष्ठिका मिलावे। **ॐ धियो योनः प्रचोदयात्** कर तलकर पृष्ठभ्यांनमः कहकर दोनों हाथ की हथेली और पृष्ठ भाग को मिलाकर प्रणाम करे। इसी प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों को पढ़ते हुए क्रमशः **हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा। शिखायै वषट्। कवचाय हुं. नेत्र त्रयाय वौषट्. अस्त्राय फट्**–मंत्र के अन्तर कहते हुए पहले से हृदय, दूसरे से मस्तक, तीसरे से शिखा, चौथे से कन्धों, पांचवें से दोनों नेत्र तथा भृकुटि छठे से तीन बार शिर के चारों ओर दाहिना हाथ घुमाते समय चुटकी बताते हुए ताली बजाये।

गायत्री का ध्यान–ॐ श्वेत वर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा श्वैतर्विलेपनैः पुष्पैः अलंकारैश्च भूषिता। आदित्य मण्डलस्था च ब्रह्म लोक गताऽथवा। अक्ष सूत्र धरा देवी पद्मासन गता शुभा॥

इस मंत्र को पढ़ते हुए ध्यान करे। कुछ लोग केवल मंत्र पढ़ लेते हैं। ध्यान नहीं करते। परन्तु यथा शक्ति, यथा समय इष्ट देवता का ध्यान करने से ही पूर्ण कृपा प्राप्त होती है। इसके बाद गायत्री जप से पूर्व स्कन्द पुराण में पार्वती के प्रति शिवजी का कहा हुआ कवच पाठ करने के बाद गायत्री का जप करने से कोटि गुना फल प्राप्त होता है।

॥ पार्वत्युवाच ॥

त्वं संसारतारकोऽपि देव देव जगत्पते।
गायत्री कवचं ब्रूहि सर्वजनोपकारकम्॥

पार्वती जी ने शंकर जी से पूछा—देव देव जगत्पते! आप संसार को तारने में समर्थ हैं। गायत्री तत्त्व को प्रकाशित करने वाला कवच आप मेरे प्रति कहिये।

॥ शिव उवाच ॥

श्रृणुष्व देवि सावित्रि! माहात्म्यं पापनाशनम्।
महाव्याधिभयात्पापाद् दुःख संसारसागरात्॥
अतिगोप्यं महापुण्यं त्रिकोटितीर्थसंमतम्।
सर्वयज्ञमयं देवि सर्वदानमयं सदा॥
सर्वज्ञानमयं देवि परब्रह्ममयं सदा।
कवचं कथयामि त्वां पार्वतीप्राणवल्लभे॥

विनियोग—ॐ अस्य श्री गायत्रीकवचस्तोत्र मन्त्रस्य परब्रह्म ऋषिः गायत्री छन्दो ब्रह्मण्यो देवता मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

१ २ ३
ॐ तत्प्रकृति स चस्स्वन्तो वि कारो बुद्धिरेव च।
४ ५
तु रेतदहंकारो व शब्द विद्धिपापहम्॥६॥
६ ७ ८ ९ १०
रेस्पर्श णि च रूपम् च यं रसो गन्धमत्रभम् र्गो
११ १२ १३
श्रोत्रमचदेवत्वम् वै व चक्षुः स्य रसना तथा॥२॥
१४ १५ १६ १७
धीनासा म तु वाचा च हि हस्तौ धि पदद्वयम्।

१८ १९ २० २१

यो उपस्थं गुदं यो ऽन्तो नः रसं प्र च मारुतम्॥३॥

२२ २३ २४

चो तेजो द जलं यात्तु क्ष्मा गायत्र्या तत्त्वचिन्तनम्॥

चतुर्विंशति तत्त्वानां प्रत्येकमक्षरेषु यः।
गायत्र्याः स्मरेद् योगी स याति ब्रह्मणः पदम्॥४॥
इदं कवचमज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेद्यदि।
शत कोटि जपेनैव न सिद्धिः जायते ध्रुवम्॥
पठित्व कवचं विप्रो गायत्रीम् सकृदुच्चरेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वकामफलं लभेत्॥
व्याधि शान्तिर्भवेत्तस्य महारोगस्य संक्षयः॥
धारयेत् कण्ठदेशे तु वाहौ वा शिरिसि प्रिये।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो महाव्याधिविशेषतः।

ॐ भद्रं नोऽपि वातय मनः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

तब शिव जी बोले, हे देवी! शिरो व्याहृति सहित गायत्री मंत्र के प्रत्येक अक्षर को तीन तीन प्रणव से सम्पुटित करें इन तीनों में से पहला प्रणव ॐ सत् का बोधक है, दूसरा चित् का तथा तीसरा आनन्द का बोधक है। मन्त्र के प्रत्येक अक्षर में सच्चिदानन्द की भावना करे।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ भूः ॐ ॐ ॐ भुवः ॐ ॐ ॐ स्वः ॐ ॐ ॐ तत् ॐ ॐ ॐ स ॐ ॐ ॐ वि ॐ ॐ ॐ तु ॐ ॐ ॐ र्व ॐ ॐ ॐ रे ॐ ॐ ॐ णि ॐ ॐ ॐ यं ॐ ॐ ॐ भर् ॐ ॐ ॐ गो ॐ ॐ ॐ दे ॐ ॐ ॐ व ॐ ॐ ॐ स्य ॐ ॐ ॐ धी ॐ ॐ ॐ म ॐ ॐ ॐ हि ॐ ॐ ॐ धि ॐ ॐ ॐ यो ॐ ॐ ॐ यो ॐ ॐ ॐ नः ॐ ॐ ॐ प्र ॐ ॐ ॐ चो ॐ ॐ ॐ द ॐ ॐ ॐ यात् ॐ ॐ ॐ॥

॥ इति तृतीय परिच्छेद दशम अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का ग्यारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

गायत्री रहस्योपनिषद्

एक बार महर्षि वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य ने लोक पितामह ब्रह्मा जी के पास जाकर प्रणाम व प्रार्थना करके पूछा, हे ब्रह्मन्! गायत्री की उत्पत्ति हम सुनना चाहते हैं। तब ब्रह्मा जी ने कहा हे महर्षियो! प्रकृति से ब्रह्म ज्ञान की उत्पत्ति की व्याख्या करेंगे। सृष्टि के आरम्भ में स्वयंभू परमात्मा ने अपनी अंगुलियों का मन्थन किया। उससे जल उत्पन्न हुआ। जल से फेन-फेन से बुदबुदा और उससे अंड उत्पन्न हुआ। उसी ब्रह्म से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से ओंकार, ओंकार से व्याहृतियां सभी लोक उत्पन्न हुए अर्थात् ब्रह्मा जी ने जब ॐ भूः कहा तो भूलोक, ॐ भुवः से अन्तरिक्ष लोक, ॐ स्वः से स्वर्गलोक उत्पन्न हुआ। इन मन्त्रों के व्याहरण-उच्चारण से लोक उत्पन्न हुए थे। अतः लोकों को व्याहृति कहते हैं।

व्याहृतियों से गायत्री, गायत्री से सावित्री, सावित्री से सरस्वती, उनसे चारों वेद, वेदों से सर्व लोक, लोकों से प्राणी कोख हुए।

ऋषियों ने फिर पूछा कि गायत्री का गोत्र क्या है। कितने अक्षर एवं पाद हैं, कितनी कुक्षियां, कितने सिर हैं। ब्रह्मा जी ने फिर कहा कि गायत्री का सांख्यायन गोत्र है। चौबीस अक्षर हैं। तीन अथवा चार पाद हैं। इनमें तीन पाद प्रकट हैं एक गुप्त है। छः कुक्षियां तथा पांच शीर्ष हैं। ऋषियों ने फिर पूछा पाद, कुक्षियां तथा सिर कौन हैं ब्रह्मा जी ने कहा, ऋग्वेद प्रथम पाद, यजुर्वेद दूसरा, सामवेद तीसरा, अथर्ववेद चौथा पाद है।

पूर्व दिशा पहली कुक्षि, दक्षिण दूसरी, पश्चिम तीसरी, उत्तर चौथी कुक्षि है। आकाश पांचवीं तथा पाताल छठी कुक्षि है। पांच शिरों में, व्याकरण पहला, शिक्षा दूसरा, कल्प तीसरा, निरुक्त चौथा तथा ज्योतिष पांचवां शीर्ष है।

ऋषियों ने गायत्री की दिशा, रंग, आयतन, स्वर, लक्षण, अक्षरों के देवता तथा ऋषि, छन्द, तत्त्व तथा अवयवों के सम्बन्ध में पूछा, ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया-

१. पूर्व दिशा में गायत्री, मध्य में सावित्री, पश्चिम में सरस्वती है। २. गायत्री का लाल रंग, सावित्री का सफेद, सरस्वती का काला रंग है। ३. गायत्री का पृथ्वी, सावित्री

का अन्तरिक्ष तथा सरस्वती का स्वर्गलोक स्थान है। ४. अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, उदात्त, अनुदात्त, समाहार स्वरित ये स्वर हैं। ५. (अ) प्रातः कालीन गायत्री हंसवाहिनी ब्रह्मणी रूपा, मध्यान्ह कालीन वृष वाहिनी माहेश्वरी रूपी, सायं काल में गरुड़वाहिनी वैष्णवी रूपा हैं। ५. (ब) पूर्व सन्ध्या में गायत्री देवी कुमारी रक्त वर्णा, रक्त गन्धानुलेपना, पाश अंकुश अक्षमाला, कमण्डलु तथा अभय मुद्रा, वरदहस्ता, हंसवाहिनी, ब्रह्मादि देवो से युक्त, ऋक् वेद सहिता आदित्य मंडल पथ से गमन करने वाली भूमण्डल वासिनी है। मध्यान्ह कालीन संध्या में सावित्री युवती, श्वेतांगी, श्वेत वस्त्रा तथा श्वेत अनुलेपन वाली, त्रिशूल, डमरू हस्ता बैल पर सवार रुद्रादिदेव तथा यजुर्वेद सहिता, सूर्य मण्डल गामिनी, अन्तरिक्ष लोक वासिनी है। सायं कालीना सन्ध्या-वृद्धा, सरस्वती काले अंगवाली, काले वस्त्र, वाली गन्ध का लेपन, शंख चक्र गदा एवं अभय मुद्रा से युक्त, गरुड वाहिनी, विष्णु रूपा, सामवेद सहिता, सूर्य, पथ का अनुगमन करने वाली हैं।

गायत्री देवी अग्नि वायु, सूर्य रूपा, आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि रूपा, ऋग्, यजु साम रूपा, भूभुर्वः स्वः तीन व्याहृति रूपा। प्रातः मध्याह्न, सायं सवन रूपा, सत्त्व रजतमो गुणात्मिका। जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति रूपा। वसु, रूद्र, आदित्य रूपा। गायत्री, त्रिष्टुप जगती रूपा। ब्रह्मा, शंकर, विष्णु रूपा. इच्छा, क्रिया, ज्ञान रूपा। स्वराट्-विराट्-वषट् ब्रह्म रूपा हैं। ६. गायत्री के २४ अक्षरों के देवताओं में पहले के अग्नि, २. के प्रजापति, ३. सोम, ४. ईशान, ५. सूर्य, ६. गार्हपत्य, ७. मैत्र, ८. भग, ९. अर्चना, १०. सविता, ११. त्वष्टा, १२. पूषा, १३. इन्द्राग्नि, १४. वायु, १५. वामदेव, १६. मैत्रावरुण, १७. भ्रातृव्य, १८. विष्णु, १९. वामन, २०. वैश्व देव, २१. रुद्र, २२. कुबेर, २३. अश्विनी कुमार, २४. ब्रह्मा देवता।

ऋषि-१. वशिष्ठ, २. भारद्वाज, ३. गर्ग, ४. उपमन्यु, ५. भार्गव, ६. शाण्डिल्य, ७. लौहित्य, ८. विष्णु, ९. शातातप, १०. सनत् कुमार, ११. वेद व्यास, १२. शुकदेव, १३. पाराशर्य (गणेश) पुराणान्तर के कल्प भेद से एक बार पाराशर के पुत्र रूप में गणेश जी का जन्म बिदुलानाम की माता से हुआ।

१४. पौण्ड्रक, १५. क्रतु, १६. दक्ष, १७. कश्यप, १८. अत्रि, १९. अगस्त्य,

२०. उद्दालक, २१. आंगिरस, २२. नासिकेत, २३. मुद्‌गल, २४. के आंगिरस (विश्वामित्र) इस प्रकार प्रत्येक अक्षर के ऋषि हैं।

७. गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, ऊष्णिक्, अति जगती इनका तीन बार आवृत्ति करने से २४ अक्षरों के द्वन्द होते हैं।

शक्तियां–प्रत्येक अक्षर के क्रम से, प्रह्लादिनी, प्रज्ञा विश्वाभद्रा, विलासिनी, प्रभा, शान्ता, कान्ति, स्पर्शा, दुर्गा, सरस्वती, विरुणा, विशालाक्षी, शालिनी, व्यापिनी, विमला तमोपहारिणी, सूक्ष्माभावयवा, पद्मालया, विरजा, विश्व रूपा, भद्रा, कृपा, सर्वतोमुखी यह चौबीस गायत्री की शक्तियां हैं।

८. गायत्री के तत्त्व–क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, वाक्, पाद, पायु, उपस्थ, पाणि, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, ध्राण, मन बुद्धि अहंकार चित्त, यह चौबीस अक्षरों के तत्त्व हुए।

९. गायत्री के वर्ण–गायत्री चम्पा, अलसी (नीला) कुंकुम (पीला) पिंगल इन्द्रनील, अग्नि ज्वाला, उदित सूर्य के समान, बिजली के समान, कमल के समान, गौर, मरकत, शुक्ल, कुन्द, इन्दु, शंख, पाण्डुनेत्र, नील, कमल, चन्दन, अगरु, कस्तूरी, गोरोचन, कपूर। प्रत्येक वर्ण के क्रमशः उपरोक्त रंग हैं। प्रत्येक अक्षर के प्रत्येक रंग का स्मरण करने से समस्त पाप, उपपाप, महापाप, अगम्यागमन, गो हत्या, ब्रह्म हत्या, भ्रूण हत्या, वीर हत्या, पुरुष हत्या, जन्म भर में की हुई हत्या, स्त्री हत्या, गुरु हत्या, पितृ हत्या, प्राण हत्या, चराचर हत्या, अभक्ष्य भक्षण, प्रतिग्रह (बिना पूजा पाठ किये दान लेना) वर्णाश्रम धर्म का त्याग, स्वामी की सेवा से विमुक्त होना, निन्दनीय कर्म, परधन हरण, शूद्रान्न भोजन, शत्रुमारण, चाण्डाली से सम्पर्क आदि सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

१०. गायत्री देवी के प्रत्येक अंग में विद्यमान देवताओं का वर्णन मूर्द्धा में ब्रह्मा, शिखा के मूल में–विष्णु, ललाट में रुद्र, दोनों नेत्रों में सूर्य, चन्द्रमा दोनों कानों में शुक्र बृहस्पति, नासिका के छिद्रों में दोनों अश्विनी कुमार, दांतों तथा दोनों होठों में दोनों सन्ध्याएं, मुख में पवन, स्तनों में बसु, हृदय में मेघ, उदर में आकाश, नाभि में अग्नि,

कटि में इन्द्राग्नि, जंघा में प्रजापति, उरु में मूल कैलाश सहित शिव, घुटनों में विश्वेदेव, जंघा में शिशिर ऋतु, गुल्फों में पृथ्वी वनस्पति आदि नाखूनों में महत्तत्व, अस्थियों में नवग्रह, रक्त में मास, सन्धियों में छः ऋतुएं, गति में उत्तर और दक्षिणायन सहित वर्ष, निमेष उन्मेष में दिन रात।

महिमा–इस गायत्री रहस्य के पढ़ने वाले को एक हजार यज्ञों का फल मिलता है। जो इस गायत्री रहस्य का पाठ करता है। दिन के किये पापों से छूटता है। प्रातः मध्याह्न पाठ करने से छः माह के किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रातः सायं पाठ करने से जन्म मरण के पाप नष्ट हो जाते हैं। जो ब्राह्मण इस गायत्री रहस्य का पाठ करता है, उसको ६० हजार लाख गायत्री जप का फल प्राप्त होता है। **''गायत्र्याः सहस्त्रलक्षाणि जप्तानि भवन्ति।''** इसका पाठ करने वाले को सभी वेदों के पढ़ने का सभी तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है। मदिरा आदि का पान, अभक्ष्य भक्षण, शूद्रा गमन, ब्रह्मचर्य का खण्डन आदि दोषों से छूट जाता है। वह पंक्ति पावन होता है। जो ब्राह्मण आठ ब्राह्मणों को इस रहस्य को पढ़ाता है। वह ब्रह्मलोक को जाता है। ऐसा भगवान् ब्रह्मा जी ने वशिष्ठ तथा याज्ञवल्क्य जी से कहा।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का बारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

''गायत्री छन्दसामहम्'' गीता दशम अध्याय ३५वां श्लोक

श्रीमद्‌भगवद् गीता पर अनेकों आचार्यों ने अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए युक्ति तथा तर्क प्रमाणों सहित सारगर्भित व्याख्याएं की हैं, परन्तु भगवान् शंकर के ६४ कला से युक्त पूर्णावतार आचार्य पाद भगवान् शंकर की व्याख्या अद्वैत गगन मण्डल में सूर्यवत् आलोकित होती है। इसके ऊपर श्रीमन्मधुसूदन सरस्वती महाराज की गूढ़ार्थ दीपिका प्रसिद्ध है। आप उसमें व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि–

'छन्दसाम्' नियताक्षर पादत्व, रूप छन्दोविशिष्टानां ऋचां मध्ये द्विजातेर्द्वितीय जन्म हेतुत्वेन, प्रातसवनादि सवनत्रय व्यापित्वेन, त्रिष्टुब्जगतीभ्याम्सोमहरणार्थ–

गताभ्यां सोमो न लब्धोऽक्षराणि च हारितनि, जगत्या, त्रीणि, त्रिष्टुवैकंइति, चत्वारि तैरक्षरैः, सहसोमस्याहरणेन च सर्वश्रेष्ठा गायत्री ऋगहम् चतुक्षराणिहित्वा अग्रे छन्दांस्यासुस्वततो जगती सोममच्छापतत्सा त्रीण्यक्षराणि हित्वाजगाम। ततस्त्रिष्टु पसोममच्छापतत्सैकमक्षरं हित्वापतत्ततो गायत्री सोममच्छापतत्सातानि चाक्षराणि हरन्त्यागच्छत्सोमं च तस्मादष्टाक्षरा गायत्री व्युपक्रम्य 'तदाहुगायत्राणि वै सर्वाणि सवनानि गायत्री। हयैवैतदुपसृजामो नैतत्' इतिशत पथ श्रुते ''गायत्रीवा इदंसर्वभूतम्'' इत्यादिछान्दोग्य श्रुतेश्च।

व्याख्या–छन्दसां अर्थात् जिसमें निश्चित अक्षर पाद रूपी विशेषता वाले ऋगादि वैदिक छन्दों के बीच में, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजातियों के दूसरे जन्म का कारण होने से गायत्री को भगवान् ने उत्तम कहा है तथा प्रातः मध्यान्ह, सायं तीनों सवनों में होने वाले होम में व्यापक होन से गायत्री भगवान् का रूप है। इसके सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण में एक कथा आती है कि ब्रह्मा जी ने चवालिस अक्षर वाली त्रिष्टुप् छन्द की देवी तथा अड़तालीस अक्षर वाली जगती छन्द की देवी, इन दोनों को सोमहरण के लिए भेजा गई हुई देवियों ने अमृत तो नहीं प्राप्त किया किन्तु दोनों देवियां चार अक्षर खोकर लौट आई। इनमें जगती तीन अक्षर और त्रिष्टुप् ने एक अक्षर खोया। तब ब्रह्मा ने गायत्री देवी को, दोनों देवियों को तथा चारों अक्षरों और सोम को हरण के लिए भेजा। तब गायत्री देवी जगती के तीन अक्षर त्रिष्टुप् का एक अक्षर सहित सोम को लाने में समर्थ हुई। अतः गायत्री देवी सभी छन्दों में श्रेष्ठ हुई। अतः श्री कृष्ण जी ने कहा कि छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूं। पहले सभी छन्द चार-चार अक्षर वाले होते थे। एक बार जगती छन्द सोम को लाने के लिए गई। (अच्छा अव्यय शब्द है इसका अर्थ प्राप्त करना है।) उसे सोम (अमृत) नहीं मिला, अपने तीन अक्षर खोकर वापस आई उसके बाद त्रिष्टुप् छन्द की देवी सोमलाने के लिए गई। वह भी एक अक्षर खोकर, सोम न पाकर चली आई। इसके पश्चात् गायत्री देवी जाकर वे चारों अक्षर व सोम ले आई। इस प्रकार गायत्री के पास आठ अक्षर एक पाद में हो गये। यहां से आरम्भ करके ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि प्रातः होम मध्यान्ह होम और सायं होम गायत्री सम्बन्धी हैं। इसके

अतिरिक्त छान्दोग्योपनिषद् के तीसरे अध्याय के बारहवें खण्ड के पहले मंत्र में कहा है कि सम्पूर्ण प्राणी गायत्री का ही स्वरूप है। **(इति मधुसूदनी गूढार्थ दीपिका से** उद्धृत)

॥ इति तृतीय परिच्छेद का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का तेरहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

गायत्री पुरश्चरण

गायत्री के जप तथा पुरश्चरण आदि में विधिवत् उपनीत हुए शिखा यज्ञोपवतीधारी, त्रिकाल सन्ध्या करने वाले द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का ही अधिकार है दूसरों का नहीं, किन्तु आजकल लोग शास्त्र विरुद्ध स्त्री, शूद्र आदिकों को यज्ञोपवीत देकर या बिना यज्ञोपवीत के शुद्धि अशुद्धि का बिना विचार किये मनमाना गायत्री जप तथा पुरश्चरण करवाते हैं। ऐसे अनेक मतमतान्तर हैं। ऐसे करके वे अपना तथा औरों का लोक परलोक बिगाड़ रहे है। क्योंकि गीता के सोलहवें अध्याय के २३, २४ श्लोकों में कहा है–

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥२३॥
तस्माच्छास्त्रप्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वाशास्त्र विधोनोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥२४॥

अर्थ–जो शास्त्र विधि का त्याग करके अपनी इच्छानुसार कार्य करता है। वह किसी कार्य में सिद्धि, सफलता, सुख तथा परमगति नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए कार्य अकार्य में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र के विधान को जानकर ही कार्य करना चाहिए। (देवीभागवत स्कं० ११ में गायत्री पुरश्चरण की विधि)

गायत्री पुरश्चरण करने वाला साधक पृथ्वी पर शयन करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करे। बाल, दाढ़ी आदि पुनरश्चरण के बीच में न बनवाये। एक समय एक–एक मुट्ठी अन्न ब्राह्मण के घर से मांगकर स्वयं पकाकर भोजन करे। अथवा अयाचित अन्न का

सेवन करे। जहां पुरश्चरण आरम्भ करे। वहां से हट कर न जाए। न्यूनाधिक जप न करे। देवीभागवत ११वें स्कन्द के २१वें अध्याय में भगवान् नारायण नारद जी से कहते हैं। हे ब्रह्मन्! पापों को नाश करने वाला गायत्री का पुरश्चरण आप से कहता हूं। पर्वत के ऊपर, नदी तट वेल वृक्ष के नीचे, जलाशय, गोशाला, देव मन्दिर, पीपल के नीचे, बगीचा या तुलसी वन में, पर्वत क्षेत्र में, गुरुओं के पास जिस स्थान पर चित्त की एकाग्रता अधिक हो। सर्दी, गर्मी, वर्षा, खटमल, मच्छर, सर्प, बिच्छू आदि की जहां बाधा न हो। ऐसे स्थान पर पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिए। गायत्री के अतिरिक्त और किसी भी मंत्र का पुरश्चरण करना हो, उस मंत्र के आरम्भ में दस हजार गायत्री मंत्र का जप अवश्य करे। गायत्री जप के बिना सभी पुरश्चरण निष्फल होते हैं क्योंकि सभी द्विज चाहे शैव, वैष्णव, गाणपत्य, सौर हों। पहले शाक्त है बिना शक्ति के कोई जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि त्रिकाल सन्ध्या में वेद माता गायत्री का जप मंत्र के शोधन के लिए तथा आत्म शोधन के लिए एक लाख या तीन लाख जप करने से आत्म शोधन होता है। यह बात पुरश्चरण भास्कर में दी है।

मंत्र शोधनतः पूर्वं देह शुद्धिर्विवधीयते।
तदन्ते जपंकुर्यात् त्रिलक्षं, लक्षमेवा॥

मन्त्र शोधन से पहले देह शुद्धि करनी चाहिए। यह शुद्धि एक लाख या तीन लाख जप से होती है फिर मंत्र शोधन के लिए दस हजार मंत्र का जप करने के पश्चात् पुरश्चरण आरम्भ करे क्योंकि आत्म शुद्धि के बिना जप होम निष्फल जाते हैं। इस अनुष्ठान से पूर्व कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतों से भी शुद्धि होती है, साधक भिक्षान्न अथवा अयाचित अन्न के चार भाग करें, एक भाग ब्राह्मणों के लिए, दूसरा गो ग्रास, तीसरा अतिथियों के लिए, इन सब को देने के बाद शेष अन्न को पत्नी सहित ग्रहण करें। अन्न में यथाशक्ति गोमूत्र मिलावे। फिर जिस आश्रमी के लिए जितना अन्न कहा है। उतना ही सेवन करे। मुर्गी के अंडे समान एक ग्रास अथवा सरलता से जितना ग्रास आ सके, उतने आठ ग्रास गृहस्थ के लिए, चार ग्रास वानप्रस्थी के लिए ब्रह्मचारी के लिए यथेष्ट, उस अन्न को नव या छः मंत्रों से शुद्ध करे। चोर, चाण्डाल, क्षत्रि, वैश्य

का अन्न न ग्रहण करे। अनुष्ठान में शूद्र तथा उसके सम्पर्क में आये ब्राह्मण ादिकों के अन्न को ग्रहण करने वाला जब तक सूर्य चन्द्रमा है तब तक नरक वास करना पड़ता है। गायत्री या किसी मंत्र में जितने अक्षर हों उतने लाख मंत्र का जप पुरश्चरण कहा जाता है। किन्तु विश्वामित्र जी ने अपने कल्प में लिखा है कि गायत्री पुरश्चरण बत्तीस लाख का होता है। जैसे जीव से रहित शरीर कोई कर्म नहीं कर सकता। वैसे ही पुरश्चरण रहित मंत्र निरर्थक है। पुरश्चरण का आरम्भ, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद के दोनों, पक्ष पौष मलमास, महीनों में, मंगलवार, शनिवार, दिनों में, वैघृति योग में, अष्टमी, नवमी, षष्टी, चतुर्थी, त्रयोदशी, अमावस्या, प्रदोष रात्रि में भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा श्लेषा, श्रवण, जन्म नक्षत्र, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ तथा मकर लग्नों में न करे। शुक्ल पक्ष में चन्द्र तथा तारा अनुकूल होने पर आरम्भ करें।

पुरश्चरण विधि–स्वस्तिवाचन करके नान्दी मुख श्राद्ध करें। ब्राह्मणों को वस्त्राभूषण देकर सन्तुष्ट करे। उनकी आज्ञा लेकर ऊपर कहे हुए स्थानों में, यदि शिव मंदिर में करें तो पश्चिमाभिमुख बैठकर करें। काशीपुरी, केदार, महाकाल, नासिक, त्र्यम्बक क्षेत्र में पांच सिद्ध स्थानों में आरम्भ करे। जप प्रातः काल से आरम्भ करके मध्यान्ह तक करना चाहिए। जप की पूर्ति होने पर बेलपत्र, पुष्प, मधु, घृत, शर्करा से हवन करें। यह विश्वामित्र कल्प में लिखा है। शारदा तिलक तथा प्रपंचसार में शतांश होम कहा है।

तत्त्व लक्षं विधानेन भिक्षाशीः विजितेन्द्रियः।
क्षीरौदनं तिलादूर्वाः, क्षीर वृक्षसमिद्वरान्॥
पृथक् सहस्त्रत्रितयं जुहुयान् मंत्र सिद्धये।
अष्ट द्रव्यैः पृथक् सहस्त्र त्रितयं होमश्च,
चतुर्विंशति सहस्त्र सम्पन्नः॥

अर्थ–मंत्र की सिद्धि के लिए साधक भिक्षा का अन्न सेवन करते हुए इन्द्रियों को जीदर दूध में चावल पकाकर, तिल, दूर्वा तथा दूध वाले पेड़ की समिधा से आठ पदाथद्वारा तीन सौ आहुतियां देवे। जल में खड़े होकर तीन लाख मंत्र जप करे।

जले लक्षत्रयं धीमाननन्य मानसा क्रियः ॥४० ॥

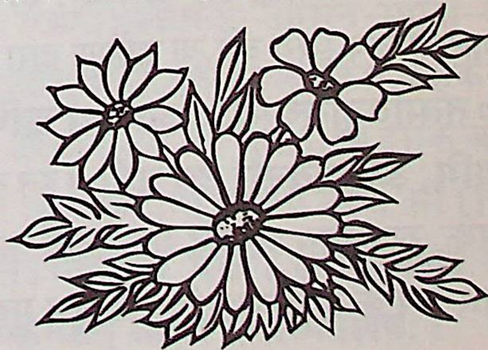
इस सम्बन्ध में नीलकण्ठ स्वामी कहते हैं, **एतदेव गायत्री मंत्रो जले न जप्तव्यः इति वदन्तः परास्ताः ॥४० ॥** इससे कुछ लोगों का यह कहना कि गायत्री मंत्र का जप जल में नहीं करना चाहिए। यह शास्त्र विरुद्ध है।

सूर्योदय होने पर स्नान करके प्रतिदिन एक हजार जप करने वाला साधक दीर्घायु आरोग्य ऐश्वर्य तथा धन को निश्चय ही प्राप्त करता है।

वह तीन या छः माह अथवा एक वर्ष तक अवश्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है। एक लाख कमल के फूलों को घी में भिगोकर हवन करने से अवश्य मुक्ति प्राप्त करता है। दही तथा खीर से पचीस लाख आहुति देने से इसी जन्म में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। उसे योगदर्शन में कहीं सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। ऊपर की कही विधि के करने में समर्थ हो अथवा असमर्थ हो, छः महीने तक निश्चित आहार करते हुए निश्छल होकर गुरु सेवा करने वाला छः महीने में निश्चित सिद्धि प्राप्त करता है। जो फल एक दिन पंचगव्य पीने से एक दिन हवा पीने से, एक दिन ब्राह्मण को भोजन कराने से मिलता है, वह फल गायत्री जप से प्राप्त होता है जो गंगा स्नान करके आचमन के अनन्तर गंगा जी में खड़ा होकर सौ मंत्रों का जप करने वाला सभी पापों से छूट जाता है। राजा तथा ब्राह्मण यदि घर में जप करता है। उसे उपर्युक्त फल प्राप्त होता है।

अन्त में भगवान् नारायण, नारद जी से कहते हैं, हे देवर्षे! पुरश्चरण करने से दरिद्रता दूर होती है, सुनने वाला भी महत्पुण्य प्राप्त करता है। **(देवी भागवत के अनुसार)**

॥ इति तृतीय परिच्छेद में तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद का चौदहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अनुष्ठान प्रकाश से

गायत्री पुरश्चरण प्रयोग–पुरश्चरण आरम्भ करने के एक दिन पूर्व ब्राह्म मुहूर्त में उठकर स्नान, नित्य कर्म आदि से निवृत्त होकर आचार्य को बुलाकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन प्राणायाम के अनन्तर पवित्री धारण करे। फिर गणेश जी का स्मरण करके शरीर शुद्धि के लिए प्रायश्चित करे। प्रायश्चित में प्राय: चित्त दो शब्द हैं। मनु जी ने इस सम्बन्ध में कहा है–

प्राय शब्देन तप: प्रोक्तं चित्तं निश्चयमभिधीयते।

प्राय: शब्द तप का वाचक है और चित्त शब्द निश्चयात्मक है। अत: तप करने का निश्चय करना ही प्रायश्चित है।

देश काल का स्मरण करते हुए किये जाने वाले गायत्री पुरश्चरण के अधिकार की सिद्धि के लिए मैं अपने वेद के अनुसार तीन कृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करुंगा। ऐसा संकल्प करे–

संकल्प–देश कालौसंकीर्त्य करिष्यमाण गायत्री पुरश्चरणे अधिकार सिद्धयर्थे अमुक गोत्र अमुकशर्म वर्मणो गुप्तोऽहम्। अमुक आम्न्येन अहमाचरिष्ये। ऐसा संकल्प करके, गौ: स्वर्ण आदि का दान होम आदि के द्वारा कृच्छ्र व्रत सम्पादन करने के बाद, अनुष्ठान में अधिकार सिद्धि के लिए ब्राह्मण के प्रति कहे। अधिकार सिद्धिरस्तु। ब्राह्मण कहे–"**अधिकार सिद्धिरस्तु। फिर देशकालौ संकीर्त्य, करिष्यमाण पुरश्चरणांगत्वेत मंत्र सिद्धयर्थ गायत्र्याः अयुतं जपं करिष्ये**" ऐसा संकल्प करके दस हजार गायत्री जप स्वयं करे या ब्राह्मण द्वारा करवाये। इसकी पूर्ति के बाद तर्पण करे। **मन्त्र–ॐ तत्सवितुरित्यस्यऽऽ आचार्य ऋषिं विश्वामित्रं तर्पयामि, ॐ गायत्री छन्दसा तर्पयामि, ॐ सवितारं देवं तर्प०**। इन तीन मंत्रों से तर्पण करके रुद्र भगवान् को प्रणाम करके, रुद्राध्याय इत्यादि रुद्र सूक्तों का पाठ करे, यह पूर्व दिन का कृत्य समाप्त हुआ। फिर जप के प्रारम्भिक दिन में शुभ मुहूर्त में यजमान सपत्नीक

सुगन्धित तैल लगाकर गरम जल से मंगल स्नान करके शुद्ध धुले हुए वस्त्र पहन कर कुंकुम आदि से त्रिपुंण्ड लगाकर पवित्र होकर अपने आसन पर बैठे आचमन प्राणायाम के बाद देशकाल का उच्चारण करते हुए, **मम इह जन्मनि जन्मान्तरेषु च कृत कायिक वाचिक मानसिक, सांसारिक, समस्त पाप क्षयार्थं पुत्र पौत्र धन, धान्यादि वृद्धयर्थं, चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धयर्थ, श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थ स प्रणवव्याहृतिपूर्वक चतुर्विंशति-लक्षजपात्मक गायत्री पुरश्चरणं (स्वयं या विप्र द्वारा) करिष्ये, तदङ्गत्वेन गणेश पूजनं, स्वस्तिपुण्याह वाचनं, मातृका पूजनं, नान्दी श्राद्ध माचार्ये जप कर्तरि ब्राह्मणवरणं च करिष्ये॥** कहे कि मेरे इस जन्म तथा जन्मान्तरों में किये हुए, शारीरिक वाणी द्वारा, मन से तथा संग दोष से किये गये सभी पापों की निवृत्ति के लिए पुत्र पौत्र, धनधान्य की वृद्धि के लिए चार प्रकार के पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की सिद्धि के लिए श्री परमात्मा की प्रसन्नता के लिए ॐकार और व्याहृतियों सहित, चौबीस लाख गायत्री जप का पुरश्चरण स्वयं करूंगा अथवा ब्राह्मण द्वारा कराऊंगा तथा उसके अंग रूप में गणेश पूजन, स्वस्ति पुण्याहवाचन, मातृ का पूजन, नान्दीमुख श्राद्ध जप करने वाले आचार्य ब्राह्मण का वरण करूंगा।

ऐसा संकल्प करके, गणेश पूजन से लेकर नान्दीमुख श्राद्ध पर्यन्त कर्म करके, **सविता प्रीयताम्** ऐसा कहकर जप करने वाले आचार्य का वरण करे। आचार्य को उत्तराभिमुख आसन पर बैठाकर तथा स्वयं पूर्वाभिमुख आसन पर बैठकर पाद प्रक्षालन (पैर धोकर) दाहिने हाथ में वर्ण सामग्री लेकर देश काल का उच्चारण करके-**मम सकल पायक्षय द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं करिष्यमाण गायत्री जप पुरश्चरण कर्मणि अमुक गोत्रोत्पन्न ममु मुक वेद शाखाध्यायिनं अमुक शर्माणं ब्राह्मणं ऐभि: गन्धाक्षत ताम्बूल स्वर्णाङ्गुलीयक-आसन-माला-कमण्डलुयुग्म वासोभिः जप करणार्थं, आचार्यत्वेनत्वामहंवृणे।** इस प्रकार कहकर वर्ण सामग्री आचार्य को देकर वरण करे। उत्तर में आचार्य कहे ॐ वृतोऽस्मि इसके बाद आचार्य के हाथ में रक्षा सूत्र बांधकर, इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणों का भी वरण करे। फिर प्रार्थना करे **ॐ अस्य यागस्य निष्पत्तौभक्तोऽभ्यर्थितो मया। सुप्रसन्नैश्च प्रकर्तव्यो मद्यज्ञो विधि पूर्वकम्। अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत् कल्प द्रमसमाशिषः।**

यथोक्त नियमैर्युक्ताः जपार्थे स्थिर बुद्धयः।

अस्मिन् यज्ञे मया पूज्याःसन्तु मे नियमान्विताः।

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः॥

जपध्यान रता नित्यं प्रसन्न मनसः तदा।

अदुष्ट भाषणाः सन्तु मा सन्तु पर निन्दकाः॥

ममापि नियमाह्येते भवन्तु भवतामपि।

हे ब्राह्मणों! इस याग की पूर्ति के लिए मैंने आप से प्रार्थना की है। मेरी इस यज्ञ को आप प्रसन्नतापूर्वक विधि पूर्व करावें। आप मेरे इस कर्म को स्वीकार करके कल्प वृक्ष के समान आशीर्वाद दें। स्थिर बुद्धि से नियमों कापालन करते हुए जप करें। नियमों का पालन करने वाले आप मेरे द्वारा पूजनीय है। अतः क्रोध रहित, पवित्रता के साथ निरन्तर ब्रह्मचर्य का पालन करें। सदैव प्रसन्नचित्त से जप ध्यान में लगें, दूसरे की निन्दा तथा कटुभाषण न करें। ये सब नियम मेरे और आपके लिए बराबर हैं। हम दोनों को इन नियमों का पालन करना चाहिए। इन मंत्रों से प्रार्थना करके प्रत्येक को दो वस्त्र आसन, अर्घ्यपात्र, आचमनी, जल पात्र, सोने की मुद्रिका तथा माला दें। जापक ब्राह्मण इक्कीस होने चाहिए। सभी जापक आचमन प्राणायाम करके–**ॐ सूर्यः सोमोयमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहःक्षपाः। पवमानो दिक्पतिर्भूरकाशं खेचरामराः। ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्।** ऊपर कहे हुए देवताओं से वास करने के लिए प्रार्थना करे। पुनः देश काल का कीर्तन करके यजमान की आज्ञा से जप का संकल्प लें–**गायत्री पुरश्चरणान्तर्गता अमुक सहस्त्रसंख्या-परिमित-विहित-गायत्रीजपं करिष्ये, तदंगत्वेन, भूतशुद्धिः प्राण प्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका बहिर्मातृका न्यासं च करिष्ये।** यह संकल्प करके पद्धति काण्ड में कही हुई विधि से भूत शुद्धि प्राण प्रतिष्ठा अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका न्यास करके गायत्री का न्यास करे। **ॐ प्रणवस्य ब्रह्मात्रृषिः गायत्रीच्छन्दः परमात्मा देवता शरीर शुद्धयर्थे जपे विनियोगः** कह कर जल छोड़े। **ॐ ब्रह्मर्षयेनमः शिरसि, ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे, ॐ परमात्म देवतायैनमः हृदये इति प्रणव न्यासः।**

सप्त व्याहृतीनां जमदग्नि भारद्वाज अत्रि, गौतम, कश्यप, विश्वामित्र, वशिष्ठाः ऋषयः, गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप्वृहती पंक्ति त्रिष्टुप्, जगत्यश्छन्दासि। अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र विश्वेदेवाः देवताः न्यासे जपे च विनियोगः। ॐ जमदग्नि, भारद्वाज, अत्रि, गौतम, कश्यप, विश्वामित्र, वशिष्ठ ऋषिभ्यो नमः शिरसि। ॐ गायत्री उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती पंक्ति त्रिष्टुव् जगती छन्दोभ्यो नमः मुखे। ॐ अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इंन्द्र, विश्वेदेवा, देवताभ्यो नमः हृदये। इन ऊपर के मन्त्रों को पढ़ते हुए क्रमानुसार मस्तक, मुख तथा हृदय का स्पर्श करें। यह व्याहृति ऋष्यादि न्यास हुआ। **ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः गायत्री छन्दः, सवितादेवता। न्यासेजपे च विनियोगः** यह कहकर जल छोड़ें। **ॐ विश्वामित्र ऋषये नमः शिरसि, ॐ गायत्री छन्दसे नमो मुखे, ॐ सवितृ देवतायै नमः हृदये।** यह गायत्री का ऋष्यादि न्यास हुआ। **ॐ शिरसः प्रजापति ऋषिः। ब्रह्माग्नि वायुसूर्यादेवताः यजुश्छन्दः प्राणायामे विनियोगः।** इसको पढ़कर जल छोड़कर प्राणायाम करें। **ॐ प्रजापति ऋषयेनमः शिरसि। यजुश्छन्दसे नमः मुखे, ॐ ब्राह्माग्नि वायु सूर्य देवताभ्यो नमः हृदये। इति ऋष्यादिन्यासः। करन्यास–ॐ भू अंगुष्ठाभ्यांनमः। ॐ भुवः तर्जनीभ्यां नमः, ॐ स्वः मध्यमाभ्यांनमः। ॐ तत्सवितु–वरेण्यिं अनामिकाभ्यांनमः। भर्गो देवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यांनमः। ॐ धियोयोनः प्रचोदयात् करतल करपृष्ठाभ्यां नमः। इति करन्यासः–हृदयादिन्यास** इसी प्रकार हृदयादिन्यास करे जैसे कि पीछे दिया जा चुका है। **व्याहृति न्यास–ॐ भूः नमः हृदये १। ॐ भुवः नमो मुखे ॐ स्वःनमो दक्षिणांसे ३** (दाहिना कंधा छुवे) **ॐ महः नमो वामांसे ४** (बायां कंधा)। **ॐ जनः नमो दक्षिणोरौ ५** (दाहिनी जंघा) **ॐ तपः नमो वामोरू** (बायीं जंघा) **ॐ सत्य नमोजठरे** (पेट) **६ इति व्याहृति न्यासः।**

अथ गायत्री वर्णन्यास–इस न्यास में हृदय के ऊपर के अंगों का न्यास दाहिने हाथ तथा इससे नीचे के अंगों का स्पर्श बायें हाथ से करें। **१ ॐ तत् नमः पाद द्वयांगुलि मूलयो** (दोनों पैरों की अंगुलियों के मूल का स्पर्श करें), **२. ॐ सं नमः गुल्फयोः** (टखनों का), **३. विं नमः जानुनोः** (दोनों घुटने), **४. तुं नमः पाद**

मूलयोः (जंघाओं का मूल), ५. ॐ वं नमः लिङ्गें (लिंग का स्पर्श करके हाथ धो ले), ६. ॐ रे नमः नाभौ (नाभि का), ७. ॐ णिंनमः हृदये (हृदय का), ८. ॐ यं नमः कण्ठे, ९. ॐ भंनमः हस्तद्वयांगुली मूलयो (दोनों हथेली), १०. गोंनमः मणिबन्धयोः (कलाई दोनों), ११. ॐ देंनमः कर्पूरयोः (कोहनी), १२. ॐ वं नमः बाहु मूलयोः (कन्धा), १३. ॐ स्यं नमः आस्ये (मुख), १४. ॐ धीः नमः नासा पुटयोः (नासिका), १५. मंनम कपोलयोः (दोनों गाल), १६. ॐ हिं नमः नेत्रयोः (दोनों नेत्र), १७. ॐ धिनमः कर्णयोः (दोनों कान), १८. ॐ यों नमः भ्रूमध्ये (भौहों के बीच में), १९. ॐ यो नमः मस्तके, २०. नं नमः पश्चिम वक्त्रे (पश्चिम मुख), २१. ॐ प्रंनमः उत्तर वक्त्रे (उत्तर मुख), २२. ॐ चोंनमः दक्षिण वक्त्रे (दक्षिण का मुख), २३. ॐ दंनम पूर्व वक्त्रे (पूर्व मुख), २४. ॐ यात्नमः ऊर्ध्व वक्त्रे (ऊपर का मुख) यह गायत्री का अक्षर न्यास हुआ। अर्थात् गायत्री के प्रत्येक अक्षर में गायत्री देवी के उन उन अंगों की भावना करे।

पदन्यास–१. ॐ तत् नमः शिरसि, २. ॐ सवितुर्नमः भ्रुवोर्मध्ये, ३. ॐ वरेण्यंनमः नेत्रयोः, ४. ॐ भर्गोनमः मुखे, ५. ॐ देवस्य नमः कण्ठे, ६. ॐ धी महिनमः हृदये, ७. ॐ धियो नमः नाभौ, ८. ॐ यो नमः गुह्ये, ९. नः नमः जानुनोः, १०. ॐ प्रचोदयात् नमः पादयोः, ११. ॐ आपोज्योति रसोऽमृतम्ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरसि।

षडङ्ग न्यास–ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं नमः नाभ्यादिपादांगुली पर्यन्तम्, २. ॐ भर्गोदेवस्य धीमहिनमः हृदयादि नाभ्यंतम्। ॐ धियोयोनः प्रचोदयात् नमः मूर्धादि हृदयान्तम्। १. ॐ तत्सवितुर्ब्रह्मणे हृदयाय नमः, २. ॐ वरेण्यं विष्णवे शिरसे स्वाहा, ३. ॐ भर्गोदेवस्य रुद्राय शिखायैवषट्, ४. ॐ धीमहि ईश्वराय कवचा हुं, ५. धियोयोनः सदाशिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ६. प्रचोदयात् सर्वात्मने अस्त्रायफट्।

ध्यानम्– ॐ मुक्ता विद्रुम हेम नीलधवलच्छायैमुखैस्त्रीक्षमै
युंक्तामिन्दु निवद्ध रत्नमुकुटां तत्त्वार्थ वर्णात्मिकाम्॥

गायत्रीं वरदाभयांकुश (सावित्रीं) कशं पाशं कपालंगुणम्।
शंख चक्रारविन्दयुगलां हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥१॥

अर्थ–मोती, मूंगा सुवर्ण नील, धवल, रंग की जिनके मुख की छाया है। तीन मंत्रों से युक्त हैं। जिनके सिर पर मुकुट तथा चन्द्रमा शोभित है। चौबीस तत्त्व रूपी वर्णों से युक्त है। अपने दश हाथों में, वरद मुद्रा, अभय मुद्रा, अंकुश, कोड़ा, पाश (जाल), कपाल (खप्पर), रस्सी, शंख चक्र तथा दो हाथों में कमल धारण किये हुए सावित्री गायत्री देवी का मैं ध्यान करता हूं। इस उक्त श्लोक को पढ़ते हुए यथेष्ट काल तक सावित्री देवी का ध्यान करना चाहिए।

मानसोपचार पूजन–

१. ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि

२. ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि अथवा (परिकल्पयामि)

३. ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि अथवा (परिकल्पयामि)

४. ॐ रं तेजसात्मकं दीप समर्पयामि अथवा (परिकल्पयामि)

५. ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि अथवा (परिकल्पयामि)

६. ॐ सं सर्वात्मकं मंत्र पुष्पांञ्जलिसमर्पयामि अथवा (परिकल्पयामि)।

गायत्री यन्त्र पूजन–पहले त्रिकोण में पूजा करें, पूर्वादि चारों दिशाओं के बीच में **ॐ प्रभूताय नमः ॥१॥ ॐ विमलाय नमः ॥२॥ ॐ साराय नमः ॥३॥ ॐ समाराध्याय नमः ॥४॥** (मध्य में) **ॐ परमसुखाय नमः ॥५॥** इस प्रकार पूजन करके। बाहर का पूजन करें। **ॐ अंअनन्ताय नमः ॥१॥ ॐ प्रीं पृथिव्यै नमः ॥२॥ ॐ अं अमृतसागराय नमः ॥३॥ ॐ रं रत्न दीपाय नमः ॥४॥ ॐ हें हेम गिरये नमः ॥५॥ ॐ नं नंदनोद्यानाय नमः ॥६॥ ॐ कं कल्प वृक्षोभ्योनमः ॥७॥ ॐ मं मणिभूषित भूतलाय नमः ॥८॥ ॐ सं सोममण्डलाय नमः ॥९॥**

ॐ अं अग्नि मंडलाय नमः ॥१०॥ ॐ सूं सूर्यमण्डलायनमः ॥११॥ इनसे पीठ का पूजन करे। इसके बाद पूज्य तथा पूजक के बीच में पूर्वादिक दिशाओं की कल्पना करके पूर्वादि क्रम से **ॐ रां दीपत्यैन्मः ॥१॥ ॐ रीं सक्ष्मायैनमः ॥२॥ ॐ**

रूँ जयायैनमः ॥३ ॥ ॐ रैं भद्रायैनमः ॐ रैं विभूत्यैनमः ॥२ ॥ ॐ रों विमलायै नमः ॥६ ॥ ॐ रौं अमोघायै नमः ॥७ ॥ ॐ रं विद्युतायै नमः ॥८ ॥ मध्य में ॥ ॐ रः सर्वतो मुख्यैनमः ॥ ऊपर दिये मंत्रों से नौ शक्तियों की स्थापना करके गन्ध पुष्पादि से पूजन करे तथा बीच में **ॐ ब्रह्म विष्णु शिवात्मकाय सौराय, योग पीठात्मने नमः।** इस मंत्र से पूष्पांजलि सहित अर्घ्य देकर सर्वतोभद्र के बीच में गायत्री मंत्र लिखकर उसके ऊपर **ॐ मही द्यौः** इत्यादि मंत्रों से पूर्ण पात्र पर्यन्त कलश स्थापन विधि से कलश स्थापन करे। फिर "**ॐ तत्त्वायमि**" इस मंत्र से देवता का आवाहन कर पूजन करे। फिर '**कलशस्य मुखे विष्णु**" इत्यादि मंत्र से अभिमंत्रित करके "**देवदानव सम्वादे**" इत्यादि मंत्रों से प्रार्थना करे। फिर उसके ऊपर पट्ट वस्त्र पर अष्ट गंध से मंत्र लिखकर उसके मध्य में मूल मंत्र से एक पल की सोने की गायत्री की मूर्ति स्थापित करके ऊपर लिखे हुये ध्यान मंत्रों से गायत्री का ध्यान करें। फिर प्राण प्रतिष्ठा करके मूल मंत्र से वेद माता गायत्री का आवाहन करे। पुरुष सूक्त तथा श्री सूक्त से पाद्य से पुष्पांजलि तक यन्त्र का पूजन कर आवरणों की अर्चना करे।

त्रिकोण के पहले कोण में–ॐ गायत्र्यै नमः। नैर्ऋतमें ॐ सावित्र्यै नमः। वायु कोण में ॐ सरस्वत्यै नमः॥ त्रिकोण के अन्तराल में **ॐ ब्रह्मणे नमः ॐ विष्णवे नमः ॐ रुद्रायनमः।** फिर मूल मंत्रों से पुष्पांजलि लेकर प्रार्थना करे– **अभीष्ट सिद्धिं मे देहि शरणागत वत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमा वरणार्च नम्॥** इस मंत्र से पुष्पांजलि देकर–**पूजिताः तर्पिताः सन्तु** यह कहे। **द्वितीय वरणार्चन**– फिर अष्ट दल में पूर्वा आदि चारों दिशाओं के क्रम से–१. **ॐ अदित्याय नमः। २. ॐ भानवेनमः, ३. ॐ भास्कराय नमः, ४. ॐ रवये नमः।** फिर अग्नि आदि कोणों के केसरों में–**१. ॐ उषायै नमः, २. ॐ प्रज्ञायैनमः, ३. ॐ प्रभायैनमः, ४. ॐ सन्ध्यायै नमः॥** इन मन्त्रों से पूजन करके मूल मन्त्र से ऊपर लिखा हुआ अभीष्ट सिद्धि इत्यादि मंत्र से पुष्पांजलि दें। फिर तृतीयावरण षट्कोण के अग्नि आदि कोणों के केसरो में–**ॐ ब्रह्मणे हृदयाय नमः ॥१ ॥ ॐ विष्णवे शिरसे स्वाहा ॥२ ॥ ॐ रुद्राय शिखायै वषट् ॥३ ॥ ॐ ईश्वराय कवचाय हुं ॥४ ॥ ॐ सदा शिवाय नेत्र त्रयाय वौषट् ॥५ ॥ ॐ सर्वात्मनेनमः अस्त्राय फट् ॥६ ॥** इनसे पूजन करने के

अनन्तर—अभीष्ट सिद्धि से पुष्पांजलि दे। इसी प्रकार गोल वृत्त में पूर्वादि क्रम से चतुर्थ आवरणम् **ॐ प्रहलादिन्यै नमः ॥१॥ ॐ प्रभायैनमः ॥२॥ ॐ नित्यायैनमः ॥३॥ ॐ विश्वंभरायै नमः ॥४॥ ॐ विशालिन्यै नमः ॥५॥ ॐ प्रभावत्यैनमः ॥६॥ ॐ जयायैनमः ॥७॥ ॐ शान्त्यैनमः ॥८॥** पुष्पांजलि पूर्ववत् दे। **पंचमा वरण— ॐ कान्त्यै नमः ॥१॥ दुर्गायैनमः ॥२॥ ॐ सरस्वत्यै नमः ॥३॥ ॐ विश्व रूपायैनमः ॥४॥ ॐ विशालायै नमः ॥५॥ ॐ ईशायै नमः ॥६॥ ॐ चापिन्यैनमः ॥७॥ ॐ विमलायैनमः ॥८॥** इसके बाद षष्ठ आवरणम्—**ॐ अपहारिण्यै नमः ॥१॥ ॐ सूक्ष्मायै नमः ॥२॥ ॐ विध योल्यै नमः ॥३॥ ॐ जया वहायै नमः ॥४॥ ॐ पद्मलयायै नमः ॥५॥ ॐ परायै नमः ॥६॥ ॐ शोभायैनमः ॥७॥ ॐ पद्म रुपायै नमः ॥८॥ सप्तमावरणम्**—अष्ट दल कमल में पूर्वादिक्रम से **ॐ आं ब्रह्मणे नमः ॥१॥ ॐ माहेश्वर्यैनमः ॥२॥ ॐ कौमार्यै नमः ॥३॥ ॐ ऋं वैष्णव्यै नमः ॥४॥ ॐ लृं बाराहयै नमः ॥५॥ ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः ॥६॥ ॐ औंचामुण्डायैनमः ॥७॥ ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः ॥८॥** दलों के अग्रभाग में—अष्टमावरणम्—**ॐ सों सोमायनमः ॐ भौं भौमाय नमः ॐ बुंबुधायनमः। ॐ बृं बृहस्पतये नमः। ॐ शुं शुक्राय नमः। ॐ शं शनैश्चराय नमः। ॐ रां राहवे नमः। ॐ कें केतवे नमः॥** फिर भूपुर में पूर्वादि दश दिशाओं में—नवमावतरण—**ॐ लं इन्द्रायनमः। ॐ रं अग्नये नमः। ॐ मं यमाय नमः। ॐ क्षं निऋृ तयेनमः। ॐ वं वरुणाय नमः। ॐ यं वायवेनमः। ॐ सं सोमायनमः ॐ ईं ईशानाय नमः।** फिर ईशान तथा पूर्व के बीच में—**ॐ आं ब्रह्मणे नमः।** फिर निऋृति तथा पश्चिम के बीच में—**ॐ अं अनन्ताय नमः॥** दशमावरणम् फिर आवरण के बाहर—**ॐ वं वज्राय नमः। ॐ शं शक्तये नमः। ॐ दं दण्डाय नमः। ॐ खं खड्गाय नमः। ॐ पं पाशाय नमः। ॐ अं अंकुशाय नमः। ॐ गंगदायै नमः। ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः। ॐ पं पद्माय नमः। ॐ चं चक्राय नमः।** इन सबके पूजन के पश्चात् मूल मंत्र (गायत्री मंत्र) से पुष्पांजलि लेकर पूर्ववत् अभीष्ट सिद्धि इत्यादि मंत्रों को पढ़े। इन दश आवरणों सहित देवियों की जो पूजा करता है। वह उत्तम ब्राह्मण चारों पुरुषार्थों का भोक्ता होता है। इन आवरणों का पूजन करके स्तुति करने के अनन्तर

शाप विमोचन करके विधिपूर्वक जप करे। जप की विधि तथा माला के लक्षण तथा माला की प्रतिष्ठा प्रथम परिच्छेद में दी जा चुकी है। वहीं देखा जा सकता है। फिर मंत्र का जप करे। प्रतिदिन समान संख्या में जप करे न्यूनाधिक न करे। जप में एक पाद को दूसरे पाद से न मिलावे। भिन्न पादों से गायत्री मंत्र का जप करने वाला उत्तम गति को प्राप्त करता है।

उत्तम जपो द्विसाहस्त्रो मध्यमः सार्ध द्विसहस्त्रः।
अधमः त्रिसहस्त्रोज्ञेयः अस्य पुरश्चरणं चतुर्विंशति लक्ष जपः॥

अर्थ–पुरश्चरण में उत्तम जप दो हजार, मध्यम दो हजार पांच सौ तथा अधम तीन हजार जप जानना चाहिए। इस प्रकार चौबीस लक्ष जप का एक पुरश्चरण होता है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का पन्द्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

पुरश्चरण के अन्त में हवन–जप के अन्त में ऊपर लिखे हुए न्यासों को करके कवच का पाठ करे। फिर गायत्री देवी का पंचोपचार पूजन, आरती व पुष्पांजलि अर्पित करने के बाद देवी के बायें हाथ में जप समर्पण करे। सभी जापक पृथ्वी पर शयन करें। हविष्यान्न भोजन करें। ब्रह्मचर्य से रहते हुए, स्पर्शास्पर्श का ध्यान रखते हुए प्रतिदिन **"यज्जाग्रतो आदि शिव संकल्प के तीन पाठ करें।"** फिर पुरश्चरण की समाप्ति पर होम करें। ब्राह्मण तथा यजमान नित्यक्रिया से निवृत्त होकर यज्ञशाला में पहुंचे। देश काल का उच्चारण करके **"अद्य पुरश्चरण सांगता सिद्धयर्थ हवन विधि करिष्ये।"** इसके बाद गणपति, नव ग्रहादिदेवताओं का पूजन करके नान्दीमुख श्राद्ध पूर्ववत् करे। फिर कुंड या वेदी बनाकर अपने गृहय सूत्र की विधि से पंच भू संस्कारपूर्वक अग्नि स्थापित करके ईशान कोण में रुद्र कलश की स्थापना करे। मध्य में सर्वतो भद्रमण्डल पीठ पर तांबे के कलश पर सोने की प्रतिमा स्थापित करके सूर्य नारायण की गायत्री सहित सोलह उपचारों से पूजा करके ऊपर कहे हुए आवरण देवताओं की पूजा करके फिर शंख घड़ियाल आदि बाजे बजाते हुए महा आरती करें और सात प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम करें। फिर कुश कुण्डिका करके, घी से होम करके **"ॐ इदं हवनीय**

द्रव्यं मन्त्विधानोक्त देवताभ्योऽस्तु न मम।'' इस मन्त्र से यजमान हवनीय द्रव्य का त्याग करें। फिर सूर्यादि नवग्रहों की अर्कादि समिधाओं से ग्रहों के लिए प्रत्येक अट्ठाईस अट्ठाईस या आठ-आठ आहुतियां दें फिर इसी सामग्री से अधि देवता तथा प्रत्यधि देवताओं की चार-चार आहुतियां, पंच लोकपाल, दश दिग्पालों की दो-दो आहुतियां देकर ''यह विधि एक जपकर्ता के पक्ष में है। बहुत से जपकर्ता होने पर जप के दशांश से खीर आदि से हवन करे।'' शारदा तिलक से-

तत्त्व संख्या सहस्त्राणि मन्त्र विज्जुहुयत्तिलैः।
सर्वपाप विनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विन्दति॥

मंत्रज्ञ चौबीस हजार संख्या में तिलों से आहुति करे। यह हवन करने वाला सभी पापों से छूटकर दीर्घ आयु प्राप्त करता है।

शतांश होम की विधि-गायत्री के प्रधान देवता सूर्य नारायण है। उनकी तृप्ति के लिए २४,००० चौबीस हजार तिल की आहुतियां दें। तीन हजार खीर से, तीन हजार घी से, तीन हजार दूध से, तीन हजार दूध वाले वृक्ष की समिधा से, आहुति देकर, पूर्वोक्त आवरण देवताओं के निमित्त चरू आदि द्रव्यों से एक आहुति देकर शेष से स्विष्टिकृत होम करके समाप्त करे तथा इसके पूर्व ''ॐ इदं सवित्रे न मम'' कहकर आहुति छोड़े। हवन में प्रणव सहित व्याहृति रहित गायत्री मंत्र से स्वाहा करे। प्रत्येक स्वाहा के साथ तीन-तीन दूब की मधु, दधि, घी सहित होम करें। होम के अन्त में बलिदान करे। यजमान का अभिषेक करे। अभिषेक के बाद यजमान आचार्य तथा जापकों को तुरन्त दक्षिणा दे। समय पर न देने से दोष का भागी होता है-

अभिषेकान्ते तत्समये एवं दक्षिणां दद्यात्, अदाने प्रत्यवायी भवति, क्षणे क्षणे पाप भागी भवति, दक्षिणां च प्रतिलक्षं सुवर्ण निष्कत्रयं तदर्धं वाशक्त्या वा देया।

अभिषेक के अन्त में तुरन्त ही दक्षिणा देनी चाहिए। न देने से दोष भागी होता है। क्षण क्षण पर पाप का भागी होता है। दक्षिणा अनुष्ठान प्रकाश से प्रति लक्ष पर तीन निष्क (तीन अशर्फी) या इसका आधी शक्ति के अनुसार देनी चाहिए। **(देवी भागव् नवम् स्कन्ध)**

अध्याय ४४–कर्मी कर्मणि पूर्णेच तत्क्षणं यदि दक्षिणाम्।
नदद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवे नाज्ञानतोऽथवा॥५४॥
मुहूर्ते समऽ तीते तु द्विगुणा साभवेद्ध्रुवम्।
एकरात्रे व्यतीते तुदक्षिणा त्रिगुणा भवेत्॥५५॥
त्रिरात्रे तच्छत गुणा सप्ताहे द्विगुणा भवेत्।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्द्धते॥५६॥
सम्वत्सरे व्यतीते तु सात्रिकोटिगुणा भेवत्।
कर्म तद्यजमानानां सर्व व निष्फलं भवेत्॥५७॥
सच ब्रह्मस्व हारी च न कर्माहोऽशुचि नरः।
दरिद्रो व्याधि युक्तश्च तेन पापेन पातकी॥५८॥
तद्गृहाद्याति लक्ष्मी च शापं दत्वा सुदारुणम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्॥५९॥
एवं सुराश्च तत् पूजा तद्दत्तम् अग्निराहुतिम्।
दत्तं न दीयतेदानं गृहीतानैव याचते॥६०॥
उभौतो नरके यातश्छिन्नरज्जौयथा घटः।
नार्पयेत् यजमानश्चेत् याचितश्चापिदक्षिणाम्॥६१॥
भवेद् ब्रह्मस्वापहारी, कुम्भी पाके व्रजेद् ध्रुवम्।
वर्ष लक्षे वसेत्तत्र यम दूतेन ताडिताः॥६२॥
ततो भवेत् सचाण्डालो व्याधियुक्तदरिद्रकः।
पातयेत् पुरुषान् सप्त पूर्वांश्च सप्तजन्मतः॥६३॥

यजमान यज्ञ पूर्ण होने पर यदि आचार्यादि को तुरन्त दक्षिणा नहीं देता। चाहे अनजान में या संयोग से ही क्यों न हो यदि दक्षिणा देने में अड़तालिस मिनट देर करता है तो दक्षिणा का धन दूना हो जाता है। यदि एक रात बीत जाए। तो तिगुनी तीन रात्रि बीतते पर सौ गुनी। एक सप्ताह बाद दो सौ गुनी, एक माह बाद एक लाख गुना दक्षिणा

बढ़ती है। एक वर्ष बीतने पर दक्षिणा तीन करोड़ गुना हो जाती है। इसके अतिरिक्त यजमान का किया हुआ सब कार्य निष्फल हो जाता है। ब्राह्मण के धन का हरण करने वाला, अपवित्र तथा शुभ कर्मों के लिए अयोग्य होता है। दक्षिणा न देने से यजमान दरिद्री, व्याधियुक्त होता है। उसके घर से लक्ष्मी दारुण शाप देकर चली जाती है। पितर उसका दिया हुआ श्राद्ध तथा तर्पण नहीं स्वीकार करते हैं। देवता भी उसकी की हुई पूजा तथा हवन नहीं लेते। दाता के दान न देने पर ब्राह्मण यदि दक्षिणा नहीं मांगता। तो दोनों रस्सी टूटकर गिरे हुए घड़े के समान नरक गामी होते हैं। ब्राह्मण के मांगने पर भी यदि यजमान दक्षिणा नहीं देता। तो वह ब्राह्मण का धन हड़पने वाला यजमान यमदूतों द्वारा ताड़ित होकर एक लाख वर्ष तक कुम्भी पाक नरक में वास करता है। इसके बाद दूसरे जन्म में निर्धन चाण्डाल होता है तथा सात पूर्व की पीढ़ियों और सात बाद की पीढ़ियों को नर्क में ले जाता है। इन बातों से सिद्ध होता है कि कर्म वाले ब्राह्मण को दक्षिणा तत्काल अवश्य दे देवे। एक क्षण भी न रोके।

फिर जल में सूर्य भगवान् की रक्त चन्दन आदि से पूजा करके हवन के दशांश से गायत्री मंत्र से "**सवितारं तर्पयामि न मम**" इस मंत्र से दूध मिश्रित जल से तर्पण करे। तर्पण के दशांश गायत्री मंत्र से "**आत्मानमभिसिंचामि न मम**" इस मंत्र से यजमान के मूर्धा पर मार्जन करे। मार्जन का दशांश २४० ब्राह्मण को भोजन करावे।

यदि ऊपर लिखे अनुसार यजमान निर्धारित मात्रा में हवन, तर्पण, मार्जन ब्राह्मण भोजन आदि न करा सके तो हवन तर्पण का दुगुना जप बढ़ा ले। दक्षिणा देकर ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करे। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे।

ॐ चतुर्विंशति लक्षात्मकं गायत्रीपुरश्चरणं सम्पूर्णमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु। तब वे ब्राह्मण कहे, "**ॐ गायत्री पुरश्चरणं ते सम्पूर्णमस्तु।**" इसके बाद कर्म की न्यूनाधिकता के लिए विष्णु भगवान् का स्मरण करे। भगवान् का स्मरण करने से यज्ञ परिपूर्ण हो जाता है।

प्रमादात कुर्वतां कर्म प्रेच्यवेताध्वरेषुयत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णा स्यादिति श्रुतिः॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञक्रियादिषु।
न्यूनंसम्पूर्णतयां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

॥ इति तृतीय परिच्छेद का पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद को सोलहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

॥ देवी भागवत तथा अनुष्ठान प्रकाश से ॥

कामना भेद से गायत्री मंत्र का फल–खीर, तिल, दूब तथा दूध वाली समिधाओं से तीन–तीन हजार मंत्र से आहुति देने पर मंत्र सिद्ध होता है। तिलों से २४,००० चौबीस हजार आहुति देने से दीर्घायु होती है। आयु वृद्धि के लिए घी में समिधा भिगोकर या केवल घी से प्रत्येक समिधा के साथ तीन दूबों सहित तिलों से तीन हजार आहुति देने से तथा लाल कमलों को तीन मधु (घी, शक्कर, शहद) में डुबोकर दस हजार आहुति देने से निःसंदेह छः माह के भीतर महा लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ब्रह्म तेज की प्राप्ति के लिए ब्रह्म वृक्ष (पीपल) के फूलों से आहुति देने से ब्रह्म तेज के साथ ही विद्या तथा सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण होती हैं। (शारदा तिलक से)

गायत्री पटल–सूर्योदय के बाद स्नान करके नित्य प्रति एक सहस्त्र गायत्री जप करने से निश्चय ही आयु, निरोगता, ऐश्वर्य एवं धन की प्राप्ति होती है। तीन रात्रि उपवास करके घी की एक हजार आहुति खैर की लकड़ी से देने वाला लाभ प्राप्त करता है। पलाश की समाधियें घी में सानकर सूर्य ग्रहण में एक हजार आहुति देने वाले को लाभ होता है। चन्द्र ग्रहण में खैर की लक़ड़ी को घी में सानकर लाल चन्दन से हवन करने वाला स्वर्ण प्राप्त करता है। लाल चन्दन को घी में डुबोकर एक सहस्त्र आहुति देने वाला गोलोक प्राप्त करता है। उतती (चमेली) चम्पा तथा आक की समिधा घी में सान कर आहुति देने वाला वस्त्र प्राप्त करता है। सूर्य मण्डल में गायत्री मंत्र से प्रतिदिन एक सहस्त्र अर्ध्य देने वाले को स्वर्ण की प्राप्ति तथा चन्द्र मण्डल में प्रतिदिन एक सहस्त्र अर्घ्य देने वाले को चांदी प्राप्त होती है। दरिद्रता पाप तथा व्याधि के विनाश के लिए प्रतिदिन एक हजार गायत्री से अभिमन्त्रित जल से स्नान करना चाहिए। लोध (लसोड़ा)

का पुष्प घी में डुबोकर गायत्री मंत्र से एक हजार आहुति देने पर चोर, अग्नि, वायु आदि के उपद्रव शान्त होते हैं। अकाल मृत्यु की निवृत्ति के लिए दूध का सेवन करते हुए, एक लाख गायत्री जप करें। घी सेवन करके गायत्री जप करने वाला ज्ञान विज्ञान से युक्त मेधा प्राप्त करता है। वेत के पत्ते घी में सानकर एक हजार आहुति देने वाला लखपति अथवा चक्रवर्ती सम्राट् होता है। नाभि मात्र जल में सूर्याभिमुख होकर एक लाख गायत्री मंत्र से आहुति देकर फिर जल से निकल कर सूर्योपस्थान करने वाले के गर्भ पात, प्रदर आदि रोग छूट जाते हैं तथा मृत वत्सा (जिसके बच्चे बाल्यावस्ता में ही मर जाते हैं) के लिए भी शान्ति मिलती है। घी से सने तिलों से एक लाख आहुति देने से सभी सुखों की प्राप्ति तथा परमपद प्राप्त होता है। पंचगव्य सेवन करते हुए एक लाख जप करने से पूर्व जन्म की स्मृति होती है। इतनी मात्रा में ही हवन करने से बहुत धन प्राप्त होता है। सभी कामों की सफलता के लिए देवी का ध्यान करते हुए एक हजार आहुति देने वाला शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। शहद सहित नमक से हवन करने वाला सभी को वश में कर लेता है। (यद्यपि अग्नि में नमक डालना वर्जित है। यह एक सामान्य वचन है, विशेष से सामान्य का बाध हो जाता है जैसे चारों वर्ण आश्रमों में शिष्य गुरुओं को प्रणाम करे किन्तु दण्ड संन्यास में दण्ड कमण्डलु तथा गेरु वस्त्र देने के पश्चात् तथा परेश मंत्र देकर गुरु अपने शिष्य को बराबर बिठाता है, मस्तक पर कपड़ा तथा आंखों पर पट्टी बांधने के बाद शालिग्राम मस्तक पर रखा जाता है। देववत् पुरुष सूक्त के मंत्रों से पूजन तथा आरती की जाती है। इसके बाद सर्वप्रथम गुरु दण्ड हाथ में लेकर जैसे देव मन्दिर में प्रणा मकरते हैं, ऐसे चार बार शिष्य के चरणों में गुरु दण्ड सहित प्रणाम करते हैं। यह जीवन में एक बार ही होता है। इसी प्रकार सभी संन्यासीगण क्रमानुसार प्रणाम करने के अनन्तर पट्टी खोल दी जाती है। तब शिष्य गुरुओं को प्रणाम करता है। जैसे यह शास्त्र का विशेष वचन "आचार्य देवो भव" का अपवाद है। वैसे ही विशेष कर्म में 'मधु' के साथ नमक का हवन वर्जित नहीं है।) लाल करवीर (कनेर) के फूलों से आहुति देने से सभी ज्वर शान्त होते हैं। लसूड़े के तेल से हवन करने से शत्रु स्थान छोड़कर चले जाते हैं। विद्वेष की निवृत्ति के लिए नीम के पत्तों से हवन करे। लाल चावल घी के

सहित हवन करने से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए परिमित आहार करके तीन हजार जप करने से एक वर्ष में धन ऐश्वर्य प्राप्त करता है। इसमें सन्देह नहीं शमी (जण्ड) बेल ढाक तथा आक के पुष्पों तथा समिधाओं से हवन करने से स्वर्ण प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी निराहार होकर एक लाख जप करे। तो वह सारे विश्व को वरदान देने की सामर्थ्य वाला हो जाता है। बेल की लकड़ी या फल या पत्र का एक लाख घृत युक्त हवन करने से परम लक्ष्मी प्राप्ति तथा भ्रूण हत्या से छूट जाता है। दही तथा दूध का अग्नि में पचीस लाख मंत्रों से हवन करने पर इसी शरीर से सिद्धि प्राप्त करता है। ऐसा विश्वामित्र जी का मत है। एक दिन पंचगव्य पीकर एक दिन हवा पीकर, एक दिन ब्राह्मण का अन्न लेकर, जप करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। गो हत्या, माता पिता की हत्या, ब्रह्म हत्या, गुरु स्त्री गमन, सोने की चोरी, तेल की चोरी तथा सुरापान दोष से छूटने के लिए सफेद-लाल दोनों चन्दनों, कर्पूर, चावल, जौं, लौंग, जायफल, मिर्च सहित आम की समिधाओं से हवन करने वाला गायत्री की प्रसन्नता प्राप्त करता है और महासुखी होता है। अन्न तथा घी से हवन करने वाला ब्राह्मण यदि निंदनीय कर्म करता है तो ऊपर कही विधि से हवन करने से सागर सहित सम्पूर्ण पृथ्वी के दान के दोष से भी छूट जाता है।

इस पुरश्चरण का अनुष्ठान करने वाले के नवग्रहों सहित सम्पूर्ण जीव प्रतिकूल होने पर भी सौम्यता को प्राप्त करते हैं। उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। इसमें कोई संदेह नहीं। **(गायत्री पुरश्चरण विधि समाप्त)**

इसके अतिरिक्त गायत्री कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, गायत्री हृदय का पाठ भी करना चाहिए। गायत्री पंचांग तथा गायत्री रहस्य आदि ग्रन्थों में देखना चाहिए। विस्तार भय से यहां नहीं लिखा जा रहा है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद में सोलहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद में सत्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

संन्यास प्रकरण

नारद जी के प्रति ब्रह्मा का संन्यास विषयक उपदेश

एक बार संन्यासी के स्वरूप में श्री नारद जी अनेक लोकों में भ्रमण करते हुए, पुण्य तीर्थों में स्नान दर्शन करके चित्त शुद्धि प्राप्त करके शान्ति दान्ति, निर्वैरिता आदि यति धर्म से युक्त परम वैराग्य को प्राप्त करके स्वरूप साक्षात्कार करके नैमिषारण्य में पहुंचे। उस समय वहां पर शौनक आदि महर्षि जो कि बारह वर्ष के यज्ञ में दीक्षित थे, उठकर प्रणाम किया। यथोचित आसन देकर आतिथ्य किया। सभी ने प्रार्थना की हे ब्रह्मपुत्र! मुक्ति का उपाय हमारे प्रति कहिये। नारद जी बोले, चार वर्ण चार आश्रम हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। इन चारों में ब्राह्मण के लिए चारों आश्रम हैं। क्षत्रिय के तीन, वैश्य के लिए दो और शूद्र के लिए एक गृहस्थ आश्रम ही कहा गया है। अतः सत्कुल में उत्पन्न ब्राह्मण उपनयन के बाद गुरुओं के पास जाकर गुरु सेवा करते हुए वेदों का अध्ययन करे। [१]चवालिस संस्कारों से सम्पन्न होकर गुरुओं के समीप अपनी शाखा का अध्ययन करके सभी विद्याओं को पढ़कर बारह वर्ष तक अध्ययन करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। इस प्रकार पचीस वर्ष बिताकर पचास वर्ष तक गृहस्थी में रहे। इसके बाद ७५ वर्ष तक वानप्रस्थ रहे। इनमें भी चार प्रकार के ब्रह्मचारी, [२]छः प्रकार के गृहस्थ, [३]चार प्रकार का वानप्रस्थ, [४]धर्म का पालन करने के अनन्तर, साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर सभी प्रकार के सांसारिक कर्मों से उपराम लेकर, मन, वाणी, कर्म के दोषों को जीतकर, वासना तथा इच्छाओं का परित्याग कर निर्वैर शान्त, दान्त संन्यासी परम हंस संन्यास लेकर अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करते हुए जो शरीर का त्याग करता है वह मुक्त हो जाता है।

नारद परिव्राजकोपनिषद का पहला उपदेश

१-१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. विष्णु वली, ५. जातकर्म, ६. नामकरण, ७. उपनिष्क्रमण, ८. अन्न प्राशन, ९. मुण्डन, १०. कर्ण बेध,

११. अक्षरारम्भ, १२. उपनयन, १३. व्रतारम्भ, १४. समावर्तन, १५. विवाह, १६. उपाकर्म, १७. उत्सर्जन।

सप्त पाकयज्ञ संस्था–१८. हुत, १९. प्रुहत, २०. आहुत, २१. शूल गव, २२. बलिहरण, २३. प्रत्यवरोहरण, २४. अष्टकाहोम।

सात हविर्यज्ञ संस्था–२५. अग्न्याधान, २४. अग्नि होम, २७. दर्शपौर्ण मास याग (अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा में पूर्ण होने वाला याग), २८. चातुर्मास्य याग, २९. आग्रयणेष्टि, ३० निरूढ पशुबन्ध, ३१. सौत्रामणि।

सप्तसोम यज्ञ संस्था–३२. अग्निष्टोम, ३३. अत्यग्निष्टोम, ३४. अक्टय, ३५. षोडशी, ३६. वाजपेय, ३७. अतिराजय, ३८. आप्तोर्याम, ३९. वानप्रस्थ, ४०. शौच, ४१. सन्तोष, ४२. ज्ञान रूपी तप, ४३. स्वाध्याय, ४४. संन्यास।

२. चार प्रकार का ब्रह्मचारी–१. गायत्र, २. ब्राह्म, ३. प्राजापत्य, ४. वृहन् नैष्ठिक ब्रह्मचारी

(१) गायत्र–उपनयन के अनन्तर जो ब्रह्मचारी तीन दिन तक बिना नमक का भोजन करके गायत्री का जप करता है वह गायत्र है।

(२) ब्राह्म–जो ब्रह्मचारी वेदाध्ययन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह ब्राह्म है।

(३) जो एक वर्ष तक वैदिक व्रत का पालन करे, वह प्रजापत्य है।

(४) जो आजीवन गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य पालन करते हुए गुरु की सेवा करें, उन्हें वृहन कहते हैं।

३. छः प्रकार के गृहस्थ–**(१) वार्ताक**–जो ब्राह्मण खेती गो रक्षा या व्यापार से स्वधर्म पालन करते हुए जीवन–यापन करता है। उसे वार्ताक कहते हैं।

(२) शालीन–ब्राह्मणोचित कर्म यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह इन छः कर्मों द्वारा जीवन यापन करने वाला शालीन है।

(३) यायावर–जो सत्पुरुषों के घर में जाकर अपने तथा परिवार के लिए अन्न संग्रह करके परिवार का भरण पोषण करता है। उसे यायावर कहते हैं।

(४) घोर सांन्यासिक–जो अपने हाथ से निकाले हुए पवित्र जल से सब कार्य करते हुए प्रतिदिन द्विजातियों के यहां से एक दिन के लिए अन्न ग्रहण करता है। वह घोर सांन्यासिक है।

(५) उञ्छ वृत्ति–जो खेत कट जाने पर अथवा बाजार से अन्न उठ जाने पर वहां से दानों को बीन कर जीवनयापन करता है, उसे उञ्छ वृत्ति कहता है।

(६) अयाचक–बिना याचना किये हुए प्रारब्ध से प्राप्त में सन्तोष करने वाले को अयाचक कहते हैं।

४. चार प्रकार के वानप्रस्थ–(१) वैखानस–जो वानप्रस्थी बिना जोते बोये अन्न से अथवा फलों से निर्वाह करते हुए अग्नि होत्र करते हैं। वे वैखानस हैं।

(२) औदुम्बर–जो प्रातः उठते ही जिस ओर दृष्टि जाए, उसी ओर के गूलर आदि फलों तथा नीवार श्यामाक आदि अन्नों का संग्रह करके प्रतिदिन निर्वाह करते हैं। उन्हें औदुम्बर कहते हैं।

(३) वालखिल्य–जो वनप्रस्थी जटा वल्कल धारण करके आठ महीनों तक अन्न का संग्रह करते हैं। चातुर्मास्य के चार महीनों में उसी का भोजन करते हुए ध्यान चिन्तन करते हैं तथा कार्तिकी की पूर्णिमा को चातुर्मास्य समाप्त करके इस संग्रह का परित्याग करे। वे बालखिल्य कहे जाते हैं।

(४) फेनप–जो सूखे पत्ते या फल खाकर यत्र तत्र रहकर वानस्थ धर्म का पालन करते हैं, उन्हें फेनप कहते हैं।

फिर नारद जी से ऋषियों ने पूछा, भगवन्! संन्यास की विधि हमसे कहिये। तब नारद जी ने विचार किया, पितामह ब्रह्मा जी से ही जानना उचित है। ऐसा कहकर बारह वर्ष की यज्ञ की पूर्ति के अनन्तर ऋषियों के साथ ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा जी को प्रणाम करके उनकी आज्ञा पाकर ऋषियों सहित बैठ गए। फिर हाथ जोड़कर उन्होंने कहा हे ब्रह्मन्! आप ही मेरे गुरु माता पिता हो, सर्वज्ञ हो, मैं आपसे एक रहस्यमय बात पूछता हूं। आपको छोड़कर अन्य कोई समर्थ वक्ता नहीं है। ब्रह्मा जी ने पूछा, क्या जानना चाहते हो। नारद जी ने कहा, संन्यास का स्वरूप तथा क्रम मुझ से कहिए।

उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा जी अड़तालीस मिनट तक समाधि में रहे फिर पितामह बोले,

क्रम संन्यास–शुद्ध ब्राह्मणी द्वारा उत्तम कुल में उत्पन्न बालक माता–पिता की आज्ञा प्राप्त कर उत्तम सम्प्रदाय में दीक्षित, श्रद्धावान्, श्रोत्रिय, शास्त्रज्ञ, गुणवान्, सद्गुरुओं के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके, यथायोग्य गुरु सेवा करके, बारह वर्ष के बाद सम्पूर्ण विद्याओं का अभ्यास करके उनकी आज्ञा से पच्चीस वर्ष तक गुरुकुल वास करके, उनकी आज्ञा से सत्कुल में उत्पन्न कन्या से विवाह करके गृहस्थोचित कर्म करते हुए, एक पुत्र प्राप्त करके, पच्चीस वर्ष तक गृहस्थी में रहकर उपनयन की तथा विवाह की अग्नि में होम करता हुआ, आयु परिपक्व हो जाने पर पुत्र के पुत्र हो जाने पर जब पौत्र बाबा कहने लगे। तब गृहस्थी छोड़कर वानप्रस्थ हो जाए। यदि पत्नी विरक्त हो, तो उसे साथ ले ले। अन्यथा उसे पुत्रों की देख–रेख में घर पर छोड़ दे और अकेला वानप्रस्थी हो जाए। वानप्रस्थ के समय जिस अग्नि में होम किया है। उस अग्नि के सहित वानप्रस्थ हो जाए। फिर वनों में ही प्रस्थान करें। वन में रहते हुए वर्षा आदि से तीनों अग्नियों की रक्षा के लिए कुटी बनायें। नगर, ग्राम में प्रवेश न करे। सर्दी गर्मी वर्षा को सहन करे। यदि इतनी सामर्थ्य न हो। तो भागवत के अनुसार यथा शक्ति कम–से–कम एक वर्ष तक वानप्रस्थ धर्म का निर्वाह करे। जब शरीर अत्यन्त शिथिल हो जाए। सर्दी गर्मी सहन न कर पावे तब नित्य नैमित्तिक कर्मों का, संन्यास, ग्रहण पद्धति के अनुसार अष्टक श्राद्ध करके, विरजा होम के अनन्तर सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करने से पूर्व तीनों अग्नियों को अपने में आरोपित कर, इस लोक के देखे हुए तथा वेद पुराणादि शास्त्रों में सुने हुए स्वर्ग लोक से लेकर ब्रह्मलोक के भोगपर्यन्त सभी भोगों की तृष्णा से विरक्त होकर संन्यास से पूर्व के सभी संस्कारों से युक्त, आशा, परनिन्दा, ईर्ष्या अहंकार को ज्ञान रूपी अग्नि में जलाकर साधन चतुष्टय सम्पन्न संन्यास का अधिकारी होता है।

(नारद परिव्राजकोपनिषद् का दूसरा उपदेश समाप्त।)

॥ इति तृतीय परिच्छेद का सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का अठारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

नारद जी ने पूछा संन्यास का अधिकारी कौन है? ब्रह्मा जी ने कहा, ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकारी है, किन्तु ब्राह्मणों में भी नपुंसक, पतित, अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य में आसक्त अथवा अन्य वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध हो। टेढ़े-मेढ़े अंगों वाला, स्त्री भक्त, बहरा, बालक, गूंगा, वैदिक धर्म की निन्दा करने वाला, चक्री (षड्यंत्रकारी) मुद्रा छाप, तप्त मुद्रा धारण करने वाला, लिंगी (वीर शैव मतावलम्बी, गले में शिवलिंग धारण करने वाले) वेतन भोगी अध्यापक, गंजा, कोढी, अनग्निक, वैराग्यवान्, होने पर भी उपर्युक्त लोग संन्यास के अधिकारी नहीं हैं। संन्यास ले भी लें तो महावाक्य के अधिकारी नहीं हैं, जो स्वयं निर्भय हैं तथा दूसरों को भी निर्मय करता है। उसे परिव्राजक कहते हैं। दो तीन बार संन्यास लेने वाला, पागल, अति वृद्ध, रोगी, यह आतुर संन्यास ले सकते हैं। प्राण संकट में आने पर, ग्राम नगर में आग लगने पर, संन्यास में विधि विधान की आवश्यकता नहीं है। मुण्डन आदि बिना ही परेष मात्र से ही संन्यास हो जाता है। क्रम तथा आतुर संन्यास में परेष में भेद नहीं है। आतुर संन्यासी संन्यास के बाद यदि रोग रहित हो जाए। तब विधिवत् संन्यास पद्धति के अनुसार संन्यास ले। जब मन में लोक परलोक के दोनों भोगों से विरक्ति आ जाए, तब संन्यास ले। यदि विपरीत हो, तो पतित हो जाता है। विरक्त बुद्धिमान् संन्यास लें। रागी घर में ही रहे। स्त्री पुत्र धन आदि में राग रखने वाला नरक में जाता है। जिसने अपनी जीभ तथा उपस्थ पर अधिकार कर लिया है। संसार को निःसार जानकर परम वैराग्य का आश्रय लेकर संन्यास ले। कर्म प्रवृत्ति प्रधान है। ज्ञान निवृत्ति प्रधान। संन्यास के लक्षणों से युक्त है। अतः ज्ञान की अधिकता में ही बुद्धिमान संन्यास ले-

यदातु विदितं तत्त्वं परंब्रह्म सनातनम्।
तदैकदण्डं संगृह्य सोपवीतं शिखां त्यजेत्॥१७॥
परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि।
सर्वैषणा विनिर्मुक्तः सभैक्ष्यं भोक्तुमर्हति॥१८॥
पूजितो वन्दितश्चैव सुप्रसन्नो यदा भवेत्।
तथा चेत्ताड्यमानस्तु तदाभवति भैक्षुकः॥१९॥

जब सनातन पर ब्रह्म तत्त्व का ज्ञान हो जाए। तब यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग करके एक दण्ड ग्रहण करे। परमात्मा में जिसका मन लगा हुआ है और भौतिक पदार्थों से जिसको विरक्ति है। सभी इच्छाओं से जो रहित है। वही संन्यास लेने का अधिकारी है। पूजा और प्रणाम करने से जैसे प्रसन्न रहता है वैसे मारे जाने या गाली दिये जाने पर भी प्रसन्न रहे, वही भिक्षा का अधिकारी है। मैं ही सनातन ब्रह्म हूं। ऐसा भाव जिसका दृढ़ हो गया हो, चित्त में शान्ति पवित्रता, सन्तोष, सरलता, अकिंचनता तथा दम्भहीन व्यक्ति ही चतुर्थ आश्रम में रहे। जो अन्तः करण को समाहित करके दस लक्षण वाले धर्म का पालन करता हैं तथा गुरु सेवा करते हुए वेदान्त का श्रवण करता है। वह संन्यास का अधिकारी है। धर्म के दस लक्षण–

धृति क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं ॥२४॥
अतीतान्नस्मरेद् भोगान् न तथा नागतानपि।
प्राप्तांश्च नाभिनंद्येद्यः स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥२५॥

धैर्य, क्षमा, इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) को विषयों से हटाना, चोरी न करना बाहर भीतर की पवित्रता, कर्मेन्द्रियों को वश में करना, बुद्धि, विद्या यथार्थ भाषण, क्रोध न करना, यह धर्म के दस लक्षण हैं ॥२४॥ जो भोगे हुए भोगों का तथा आगे प्राप्त होने वाले भोगों के स्मरण से रहित है। प्राप्त भोगों की प्रशंसा नहीं करता वही संन्यास ले ॥२५॥

प्राणे गतेयथा देहः सुखं दुखं न विन्दति।
तथा चेत्प्राण युक्तोऽपि स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥२६॥
कौपीन युगुलं कन्था, दण्ड एक परिग्रहः।
यतेः परमहंसस्य नाधिकं तुविधीयते ॥२८॥
यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहम्।
रौरवं नरकं गत्वा निर्यग्योनिषुजायते ॥२९॥

प्राण रहित शरीर को जैसे सुख दुख नहीं होता। वैसे ही शरीर में प्राण रहते हुए भी देहाध्यास की अत्यन्त निवृत्ति हो जाने के कारण, मैं शरीर हूं, यह मेरा शरीर है, यह भान

जिसे नहीं रहता। वही संन्यास का अधिकारी है। ऐसा परमहंस संन्यासी अपने पास दो जोड़ी कौपीन, ठंडक दूर करने के लिए कंथा तथा एक दण्ड अपने पास रखे। इससे अधिक की विधि नहीं है। यदि राग से इससे अधिक का परिग्रह करता है तो वह रौरव नरक में जाकर पशु पक्षियों की योनि मे जाता है। रास्ते में पड़ी हुई फटे पुराने कपड़ों चीथड़ों को सीकर, गेरुये रंग से रंगकर ठंडक दूर करने के लिए कंथा धारण करें। चंचलता रहित हो, संन्यासी वर्षा ऋतु के चार मास छोड़कर अकेला विचरण करे। काम, क्रोध, दर्प, लोभ दोषों का त्याग करके, ममता से रहित होकर, इन दोषों से रहित होकर प्राणी हिंसा न करते हुए, आत्म ज्ञान में लगा संन्यासी मुक्ति प्राप्त करता है। उसे जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसका लक्षण नीचे लिखा है-

श्रुत्वा स्पृष्टा च भुक्तवाचदृष्ट्वा घ्रात्वा च योनरः।
न हृष्यदि ग्लायतिवा स विज्ञेयोजितेन्द्रियः॥३८॥

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥३९॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव कांक्षेदवमानस्य सर्वदा॥४०॥

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुद्ध्यते।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन् सुखमन्तः विनश्यति॥४१॥

अति वादांस्तितिक्षेत् नावमन्येतकथञ्चन।
न चैव देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केन चित्॥४२॥

जो मनुष्य अनुकूल, प्रतिकूल, सुनकर, छूकर, खाकर, देखकर, सूंघकर, अनुकूल में प्रसन्न नहीं होता और प्रतिकूल से घृणा नहीं करता, वही जितेन्द्रिय है। जिसका मन तथा वाणी शुद्ध है और उनकी रक्षा करता है। वह सम्पूर्ण वेदान्त का मुक्ति रूप फल प्राप्त करता है। जो ब्रह्मवेत्ता संन्यासी सम्मान से विष के समान तथा अपमान को अमृत के समान मानता है। वह तिरस्कृत संन्यासी सुखपूर्वक सोता तथा उठता है। किन्तु सम्मानित संन्यासी विनष्ट हो जाता है। संन्यासी अपमान को सहन करे। किसी का

अपमान न करे। शरीर के कारण किसी से बैर न करे। क्रोध करने वाले के प्रति क्रोध न करें, क्रोधी की कुशल पूछे, सात घरों से भिक्षा ले, मिथ्या भाषण न करे, संन्यासी, इस शरीर को जिसमें हड्डी रूपी खंभे लगे हैं। आंते रूपी रस्सियां बंधी हैं। मांस तथा खून का लेप किया है। दुर्गन्धि युक्त मल मूत्र से जो भरा हुआ है। चमड़े से मढ़ा हुआ है। बुढ़ापा तथा शोक से युक्त हैं। रोगों का घर है। भूत प्रेत के वास के समान है। इसमें आसक्ति का त्याग करे। ऊपर कहे हुये गुणों से युक्त धीरे-धीरे संगों का त्याग कर, द्वन्द्व से मुक्त होकर, ब्रह्म स्वरूप में स्थित हो। बिना किसी की सहायता के अकेला विचरण करे। मैले कुचैले वस्त्र धारण करे। दोपहर के समय भिक्षा के लिए ग्राम नगर में प्रवेश करे। संन्यासी को अकेला रहना चाहिए। दो संन्यासी मिथुन हो जाता है जहां तीन हो वह ग्राम है। तीन से अधिक संन्यासी जहां है। उसे नगर कहते हैं। अतः संन्यासी को नगर ग्राम या मिथुन नहीं बनाना चाहिये। ग्राम, नगर, मिथुन से संन्यासी यति धर्म से रहित हो जाता है। अधिक संन्यासियों में या तो राजनीति की या भिक्षा वार्ता होती रहती है। यह सभी दुर्गुण हैं। अतः संन्यासी बिना किसी को साथ लिये विचरे। मन वाणी तथा कर्म को संयमित करके ब्रह्म चिन्तन करे। मृत्यु तथा जीवन की प्रशंसा न करे। पतिव्रता जैसे परदेश में गये अपने पति की प्रतीक्षा करती है। वैसी ही यह काल की प्रतीक्षा करहे। संन्यासी में छः गुण होने चाहिये-१. अजिह्व, २. नपुंसक, ३. अंधा, ४. लंगड़ा, ५. बहरा, ६. पागल।

१. यह स्वादिष्ट है। यह स्वाद रहित है। वस्तु को खाते हुए भी जो उसमें लिप्त नहीं होता तथा हितकारी सत्य तथा मितभाषी है। उसे अजिह्व कहते हैं।

२. तत्काल पैदा हुई बालिका को, १६ वर्ष की नवयुवती को तथा १०० वर्ष की वृद्धा को देखकर जो निर्विकार है। वह नपुंसक है।

३. जिसका घूमना केवल भिक्षा तथा मूत्र मल का त्याग करने के लिए है। जो प्रतिदिन चार कोस से अधिक नहीं चलता। वह पंगु (लंगड़ा) है।

४. बैठे तथा चलते हुए जिसकी दृष्टि चार हाथ से अधिक नहीं जाती। वह अंधा परिव्राजक है।

५. हित, अहित, शोकतथा हर्ष देने वाली वाणी को सुनकर भी जो नहीं सुनता, उसे बधिर कहते हैं।

६. सभी विषयों के उपस्थित होने पर तथा विषयों के भोगने में समर्थ होने पर भी जिसकी इन्द्रियां सोते हुए के समान रहती हैं, उसे मुग्ध कहते हैं। नाच गाना देखना सुनना नहीं चाहिए।

युवा स्त्री, सुहृद, भक्ष्य, भोज्य पदार्थ तथा रज स्वला आदि को कभी न देखें। यति राग, द्वेष, मद, माया, द्रोह तथा मोह इन छः का मन से भी चिन्तन न करे। संन्यासी के लिए चारपाई सफेद वस्त्र, स्त्रियों की कथा, चंचलता, दिन में सोना, जानवरों की सवारी यह छः वस्तुएं संन्यासी को गिराने वाली है। आत्म चिन्तक संन्यासी को दूर की यात्रा प्रयत्नपूर्वक छोड़ देनी चाहिए। मुक्ति देने वाले उपनिषदों का अभ्यास करें–

न तीर्थ सेवी नित्यं स्यान्नोपवास परोयतिः।
न चाध्ययन शीलः स्यान्न व्याख्यान परो भवेत् ॥७३॥

संन्यासी नित्य तीर्थ यात्रा न करे और न उपवास करे। न अध्ययन करे न व्याख्यान दे ॥७३॥

निर्णय–यति धर्म निर्णय के उत्तर भाग में श्री स्वामी परमानन्द तीर्थ जी ने निर्णय करते हुए लिखा है कि काशी प्रयाग, नैमिषारम्य सात मुक्ति देने वाली पुरियां तीन ग्राम, आठ वैकुण्ठ, श्री शैल पर्वत तथा चारों धाम की यात्रा वर्जित नहीं है।

तीन ग्रामों में–अयोध्या में नन्दीग्राम बद्रीनाथ में कलाप ग्राम, हरि मन्दिर में सम्भल ग्राम।

आठ वैकुण्ठ–श्री मुष्टिक, वैंकट–शालिग्राम–नैमिष–तोताद्रि–पुष्कर–श्री रंगम् (कावेरी तट पर त्रिचनापल्ली के समीप) यह पृथ्वी पर प्रकट हुए आठ वैकुण्ठ हैं।

नौ अरण्य–दण्डकारण्य, सैंधवारण्य, जम्बुकारण्य, पुष्कर (अजमेर के समीप) उत्पल–बद्रिकारण्य–नैमिषारण्य, कुरु जांगल (अम्बाला के पास) अर्वुदारण्य यह नौ अरण्य मुक्ति के द्वार हैं।

नौ उलूखल–रेणुका, शूकर खेत, काशी, काली, कालवटेश्वर (आगरे के पास भगवान् कृष्ण के पितामह शूरसेन, महाकवि कालीदास तथा कंस का यहीं जन्म हुआ था।), कालिंजर पर्वत (यह बांदा के समीप है), महाकाल (उज्जैन), त्र्यम्बक क्षेत्र, नैमिषारण्य।

चौदह गुप्त स्थान–कोका, कुब्जा, अर्बुक, गया, मनि कर्णिका (पार्वती का जन्म स्थान हिमाचल में कुल्लू के पास मणिकर्णिका, काशी में पहला मणिकर्णिका घाट–जहां भगवान् विष्णु के कान की मणि गिरी थी), पार्वती कर्णिका (केदार नाथ मन्दिर के नीचे पार्वती की कान की मणि गिर गई थी।), पुष्कर नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, शूकर क्षेत्र तोताद्रि–वद्रिकारण्य–वटेश्वर–कालिंजर।

चारों धाम–चारों धाम दो प्रकार के हैं–१. सम्पूर्ण भारत के तथा उत्तराखण्ड के। सम्पूर्ण भारत के धाम–पूर्व में जगन्नाथपुरी, दक्षिण में रामेश्वरम्, पश्चिम में द्वारकापुरी और उत्तर में बद्रीनारायण। उत्तराखण्ड के चारों धामों में १. यमुनोत्री, २. गंगोत्री, ३. केदारनाथ तथा ४. बद्रीनारायण हैं।

मूल में 'न तीर्थ सेवी नित्यं' आया है अर्थात् नित्य तीर्थ सेवा सदैव न करे। तीर्थ सेवा के संकल्प से तीर्थ यात्रा न करें। ऊपर कहे हुए तीर्थों में जाने से यति को कोई दोष नहीं है। इनके अतिरिक्त साधारण तीर्थ वर्जित हैं। तात्पर्य यह है कि यति का जीवन सूखे पत्ते के समान होना चाहिए। जैसे सूखे पत्ते को हवा जिधर ले जाती है। उधर ही चला जाता है। वैसे ही भक्त जहां ले जाए, वहीं चला जाए। बल्कि इसी ग्रन्थ में यति धर्म में यहां तक लिखा है कि ग्राम में एक रात्रि, बड़े ग्राम में दो या तीन दिन, नगर में पांच दिन से अधिक न रुके। आठ महीने विचरण करे। वर्षा ऋतु के चार महीने एक स्थान पर रहे। जहां चातुर्मास्य कर रहा हो। उसकी सीमा से पार न जाए, किन्तु काशी में एक स्थान पर बारह मास रहने में दोष नहीं है।

नोपवासपरो यतिः–यति को एकादशी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि व्रतों के अतिरिक्त व्रत नहीं रखना चाहिए। सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण में जो बारह घंटे पूर्व सूतक रहता है। उस समय और ग्रहण के समय व्रत रखना चाहिए। स्वेच्छा से सकाम व्रत न करे। **न चाध्ययनशीलः स्यात्**–अध्याय में चारों वेद भाष्य सहित, उपनिषद्, आरण्यक,

सत्ताईस धर्मशास्त्र अष्टादश पुराण, रामायण, महाभारत, ऐतिहासिक ग्रन्थ गीता, उपनिषद् ब्रह्मसूत्र के भाष्य के पठन पाठन में यति को दोष नहीं है क्योंकि इन पर अनेक संन्यासियों के व्याख्यान मिलते हैं। कर्मकाण्ड के ग्रन्थ संन्यासी के लिए वर्जित हैं। **न व्याख्यान् परोभवेत्**–ऊपर के कहे ग्रन्थों पर व्याख्यान कर सकते हैं। अन्य विषयों पर व्याख्यान न करे। यह सब उस समय के मंत्र है जबकि भारत में धर्म चारों पादों से युक्त था। सनातन धर्म को किसी भी नास्तिक या आस्तिक से वेद विरुद्ध प्रचार का भय नहीं था, किन्तु जब से नास्तिक चार्वाक से लेकर जैन पर्यन्त वेद विरुद्ध प्रचार सर्वत्र होने लगा। वेद प्रतिपादित कर्म उपासना ज्ञान लुप्त होने लगे, आस्तिक नास्तिकों द्वारा लिखित तथा मौखिक रूप से वेद विरुद्ध प्रचार होने लगा। तब भगवान् शंकर ने चार शिष्यों सहित धरातल पर शंकर भगवत्पादाचार्य के नाम से अवतरित होकर ग्यारह सौ से अधिक मत मतान्तरों के आचार्यों को जीतकर, अद्वैत वेद वेदान्त के सनातन धर्म के नीचे खड़ा किया तथा इन अवैदिकों के प्रचार से रक्षा के लिए भारत के चारों दिशाओं में चारों वेदों की स्थापना करके अपने चार शिष्यों को प्रहरी रूप में नियुक्त किया। पूर्व में ऋग्वेद की पुरी में स्थापना करके श्री पद्मपादाचार्य जी को। दक्षिण में महर्षि विभाण्डक तथा शृंगी ऋषि की तपस्थली शृंगेरी में यजुर्वेद की स्थापना की (कर्नाटक मैसूर) तथा शृंगी ऋषि के समान तपस्वी हस्तामलकाचार्य को नियुक्त किया। पश्चिम में द्वारावती में सामवेद की स्थापना की तथा सुरेश्वराचार्य को नियुक्त किया। उत्तर में अथर्ववेद की स्थापना के अनन्तर ज्योतिर्मठ में परम सिद्ध योगिराज त्रोटकाचार्य जी को नियुक्त किया। तब से भगवान् भाष्यकार ने भविष्य में होने वाले संन्यासियों को वैदिक सनातन धर्म की रक्षा के लिए तीर्थ यात्रा, उपवास तथा शास्त्रों के अध्ययन और व्याख्यान की आज्ञा दी। इनसे पूर्ववर्त्ती आचार्य गोविन्द भगवत् पादाचार्य तथा उनके गुरुदेव गौड पादाचार्य जी यति धर्म की इन सब आज्ञाओं का पालन करते करवाते थे। सैंकड़ों वर्ष तक समाधि में रहते थे।

क्षीणेन्द्रिये मनोवृतिर्निराशी निष्परिग्रहः।
निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निस्स्वधाकार एव च॥७५॥

निर्ममो निरहंकारो निरपेक्षो निराशिष।
विविक्त देश संसक्तो मुच्यते नात्र संशयः॥७६॥

यति क्षीण इन्द्रिय, मनोवृत्ति से युक्त, आशा रहित, परिग्रह से रहित, द्वन्द्वों से रहित, ईश्वर गुरु वेदान्त को छोड़कर, नमस्कार रहित एवं देवपितृ ऋषि आदि कर्म से रहित, ममता, अहंकार इच्छा से रहित हो, आशीर्वाद से रहित अर्थात् किसी के प्रणाम करने पर नारायण के अतिरिक्त और किसी प्रकार का आशीर्वाद न दें। चिरंजीवीभव, यशस्वी भव आदि न कहें।

विद्यवान भव, किसी महिला के लिए पुत्रवती भव, सौभाग्यवती भव इत्यादि आशीर्वाद न दे। परन्तु प्रणाम करने वाले की आयु वृद्धि के लिए केवल नारायण शब्द कहे। यही बात सुरेश्वराचार्य की नैष्कर्म सिद्धि में तथा विद्यारण्य स्वामी जी के जीवन्मुक्ति विवेक नामक ग्रन्थ में आई है। नारायण आशीर्वाद के सम्बन्ध में अनेकों भाव हैं।
१. चारों वर्णों तथा तीनों आश्रमी दण्डधारी यती को देखकर नारायण का साक्षात् स्वरूप समझ कर "**ॐ नमो नारायणाय**" इस मंत्र से प्रणाम करते हैं। क्योंकि **दण्ड ग्रहण मात्रेण नरो नारायणो भवेत्**। दण्ड ग्रहण मात्र से नर नारायण हो जाता है। उत्तर में संन्यासी नारायण कहकर यह उपदेश देते हैं कि तुम भी नारायण का स्वरूप हो।
२. नारायण शब्द में तीन पद हैं नर अर न। अर = अविद्या, अयन = अविद्या का कार्य, सत्व, रज, तम तीन गुण तथा तीन गुणों से बने हुए तीनों शरीर एवं संचित, क्रियामाण तथा प्रारब्ध तीन प्रकार के कर्म, अविद्या का कार्य है। ना = न रहे, निवृत्त हो जाए। अर्थात् तुम्हारे तीनों शरीर, तीनों कर्म जो कि अविद्या का कार्य है उनके सहित अविद्या नष्ट हो जाए और तीनों दुखों से छूट कर मुक्ति प्राप्त करो। यह सबसे बड़ा आशीर्वाद है। संस्कृत में उक्ति है–**सर्वे पदाः हस्ति पदे निमग्नाः** सभी जीव जन्तुओं के पैर हाथी के पैर से छोटे होने के कारण उसी में आ जाते हैं। वैसे ही नारायण शब्द में सभी आशीर्वाद समाहित हैं। एकान्तवासी संन्यासी जो उपर्युक्त गुणों से युक्त है, अवश्य मुक्त हो जाता है॥७६॥

दो प्रकार का संन्यास–ब्रह्मचर्य को समाप्त कर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ, फिर संन्यास यदि तीव्र वैराग्य हो। गृहस्थ ब्रह्मचर्य या वानप्रस्थ के बिना भी ले सकता है।

किन्तु संन्यास गीता में गृहस्थ से एकदम संन्यास लेना घोर कलिका लक्षण बताया है। व्रती अथवा अव्रती, स्नातक या अस्नातक साग्निक या निरग्निक जिस दिन विवेक, सहित वैराग्य हो जाए, उसी दिन प्राजापत्य अग्नि में हवन करके संन्यास ले ले। संन्यास की विधि तथा अधिकार विस्तार से आगे लिखा जाएगा।

शिखां यज्ञोपवीतं पितरं पुत्रं कलत्रं कर्म चाध्ययनं मंत्रान्तरं विसृज्यैव परिव्रजत्यात्मविन्मोक्ष मंत्रैस्धातवीयै विंधे स्तद्ब्रह्म तदुयासितव्यमेवेतंतदिति।

शिखा सहित यज्ञोपवीत, पिता पुत्र स्त्री, कर्म, अध्ययन प्रणव को छोड़कर अन्य मंत्र को त्याग कर आत्म वेत्तायति संन्यास लेता है, वात पित्त, कफ तीन धातुओं से बने शरीर में यह ब्रह्म है। जानकर उपासना करनी चाहिए।

ब्रह्मा जी से नारद ने पूछा, यज्ञोपवीत के बिना ब्राह्मण कैसे? तब ब्रह्मा जी ने कहा, विद्वान् शिखा सहित मुंडन करके बाहरी सूत्र का त्याग करें।

यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्।
सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम्॥७७॥
तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेद पारग।
येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥७८॥
तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तत्व दर्शनः।
वहिः सूत्रं त्यजेद् विद्वान् योग मुत्तम मास्थितः॥७९॥
ब्रह्म भाव मिदंसूत्रं धारयेद्यः सचेतनः।
धारणात् तस्य सूत्र स्य नोच्छिष्टोनाशुचिर्भवेत्॥८०॥
सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञान यज्ञोपवीतिनाम्।
ते वै सूत्र विदोलोको ते च यज्ञोपवीतिनः॥८१॥
ज्ञान शिखा ज्ञान निष्ठा ज्ञान यज्ञोपवीतिनः।
ज्ञानमेष परं तेषां पवित्रं ज्ञानमुच्यते॥८२॥
अग्निरिव शिखानान्या यस्य ज्ञान मयीशिखा।
स शिखीत्युच्यते विद्वान् नेतरे केशधारिण॥८३॥

कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः।
तै र्विधार्य मिदं सूत्रं क्रियांगं तद्धि वैस्मृतम्॥८४॥
शिखा ज्ञान मयी यस्य उपबीतं च तन्मयम्।
ब्राह्मण्यं सततं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः॥८५॥

जो अक्षर परब्रह्म है, इस सूत्र को धारण करके बाहर के शिखा सूत्र को त्याग दे। इसे ब्रह्म का सूचक होने से सूत्र कहते हैं। या सूत्र नाम परमपद का है। जिस ब्राह्मण को ब्रह्म रूपी सूत्र का प्रत्यक्ष हो गया है। वही वेदज्ञ ब्राह्मण है। योगवित् तत्वदर्शी योगी जिसमें सूत्र में मणि के समान संसार पिरोया हुआ है। उसी सूत्र को धारण करे। योगवेत्ता विद्वान् ब्राह्मण बाहर के सूत्र का त्याग करके चैतन्य ब्रह्म भाव रूपी सूत्र को धारण करे। लौकिक सूत्र तो अशुद्ध हो जाता है। किन्तु यह उच्छिष्ट नहीं होता। जिनके पास ज्ञान रूपी यज्ञोपवीत है। सूत्र में मणियों के समान जगत् को जान लिया है। वही सूत्र के तत्त्व को जानने वाला यज्ञोपवीती है।७७-८१ तक॥ आध्यात्मिक सूत्र के अनन्तर ज्ञानमयी शिखा को कहते हैं। ज्ञान निष्ठा रूपी ज्ञान शिखा तथा ज्ञान रूपी यज्ञोपवीतियों का ज्ञान ही परम पवित्र ज्ञान है। जिसके ज्ञानाग्नि रूपी शिखा है। वही वास्तविक शिखी है। केशो को धारण करने वाले नहीं। वैदिक जो कर्म के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा त्रय आश्रमी उन्हीं को क्रिया का अंग कपास का सूत्र धारण करना चाहिए। जिसके ज्ञान रूपी शिखा और तन्मयता रूपी यज्ञोपवीत है। वेद के जानने वाले विद्वानों ने उन्हीं को ब्राह्मण कहा है॥८२-८५ तक॥

उस ब्रह्म तत्त्व का अनुभव करके ब्राह्मण दाढ़ी, केश, मुंडवा कर एकमात्र शरीर के अतिरिक्त सबका परित्याग कर, पैदा हुए बच्चे के समान दिगम्बर होकर, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि सात बन्धुओं को छोड़कर स्वाध्याय सम्पूर्ण कर्मों को त्याग करके, कौपीन, दण्ड, ओढ़ने का वस्त्र ओढ़कर, सर्दी, गर्मी, सुख, दुख, निद्रा आदि को जीतकर, निन्दा, अहंकार, डाह, अभिमान, ढोंग, इच्छा, द्वेष, सुख-दुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह को छोड़कर अपने जीवित शरीर को मृतक समान समझ कर सर्वत्र ब्रह्मदर्शी होकर न किसी को प्रणाम करे, न करवाये। दैव, पितृ सम्बन्धी कर्म, निन्दा-स्तुति, स्वर्ण आदि

का संग्रह आवाहन, विसर्जन, मन्त्र, ध्यान, उपासना, लक्ष्य, अलक्ष्य, भिन्न, अभिन्न कुटिया से रहित, स्थिर मति ब्रह्मकोटि के अवधूत संन्यासी जहां रात्रि हो जाए वहीं पर सूने घरों में, वृक्ष के नीचे अर्थात् ब्रह्म रूपी वृक्ष का आश्रय लेकर तिनकों की कुटिया कुम्हारों का आवा, अग्निहोत्रशाला, पर्वतों की चोटी या गुफा, नदी तट, झरनों के समीप किसी चबूतरे पर स्वरूप का चिन्तन करे। ऐसे अवधूत कोटि के संन्यासियों में श्वेत केतु, ऋभुः, निदाध। ऋभु गुरु (निदाध शिष्य) इनकी कथा विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में राहू गण और जड़भरत के सम्वाद में आई है। इन सब का जीवन चरित्र सत्ययुग त्रेता के जीवन चरित्र में लिखा जाएगा। भगवान् ऋषभ देव, दुर्वासा, संवर्तक, दत्तात्रेय, रैवतक, शुकदेव, भगवान् औवटायन इनके समान पहचान तथा आचार से रहित बालक, पागल पिशाच के समान हो जाए। ऊपर कही हुई सम्पूर्ण वस्तुओं दण्ड कमण्डलु आदि को नदी में खड़े होकर जल हाथ में लेकर ॐ भूः स्वाहा कहकर नदी में छोड़ दें तथा प्राणों की रक्षा के लिए भिक्षा हाथ में या मुंह में लेकर खा जाए। गाय के समान मुख खोल दे और जहां से पेट भर जाए लौट जाए। नदी या तालाब में जाकर जल पी ले। ममता आदि से रहित ऐसे महात्मा अध्यात्म चिन्तन में लगे हुए शुभाशुभ कर्मों को जड़ से उखाड़कर पूर्णानन्दबोध स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूं, प्रणव ब्रह्म का स्मरण करते हुए भ्रमर कीट से जो संन्यास आश्रम में शरीर त्याग करता है। उनका जन्म सफल हो जाता है।

उपनिषदों में दो प्रकार का संन्यास आया है। एक विविदिशा दूसरा विद्वत्। पहले संन्यास में ब्रह्म तत्त्व को जानने की इच्छा से जो संन्यास लिया जाता है, जिसमें दण्ड कमण्डलु आदि रहते हैं। उसे विविदिशा संन्यास कहते हैं। इनका त्याग नहीं होता, किन्तु वही संन्यासी जब स्वरूप चिन्तन करते हुए इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, दिन, रात का भान नहीं होता। ऐसी स्थिति में पहुंच जाने पर दण्ड कमण्डलु, वस्त्र आदि का त्याग हो जाता है अथवा जिनको पूर्व जन्म के परिपाक से अन्तःकरण की शुद्धिपूर्वक अपने सहित सारा जगत् ब्रह्मरूप में भासित होने लगता है। ब्रह्म साक्षात्कार होने के बाद के संन्यास को विद्युत संन्यास कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं–१. गोमुख जिन्हें तुरीयातीत कहते हैं। २. अवधूत। इनमें गोमुख संन्यास केवल मुख में ही भिक्षा का ग्रास लेते हैं। भूख लगने पर गृहस्थ के द्वार पर पहुंचते हैं। किन्तु

अवधूत संन्यासी अजगर के समान एक स्थान पर पड़े रहते हैं। यह मुख में ग्रास यदि कोई डाल देता है तो खा लेते हैं। पानी पिलाने पर पी लेते हैं। कितने ही भूखे प्यासे क्यों न हों। अपने हाथ से ग्रहण नहीं करते। यह जान बूझकर ऐसा नाटक नहीं करते, किन्तु इनका देहाध्यास इतना निवृत्त हो जाता है कि ज्ञान की पदर्थाभाविनी अवस्था में पहुंच जाने पर इन्हें होश नहीं रहता। मुख में ग्रास डालने पर चबाने तथा निगलने का ही ज्ञान रहता है, किन्तु ज्ञान की सातवीं तुरीयगा भूमिका में पहुंचने वालों को चबाने और निगलने का भी ज्ञान नहीं रहता। इन सभी संन्यासियों के विषयमें आगे विस्तारपूर्वक कहा जाएगा। (तीसरा उपदेश)

॥ इति तृतीय परिच्छेद का अठारहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का उन्नीसवां अध्याय प्रारम्भ॥

स्वरूप में स्थित संन्यासी लोक वेद आदि का त्याग करके परम गति को प्राप्त करता है। संन्यासी को अपने पिछले आश्रम का नाम, गोत्र, वर्ण, जन्मभूमि, अवस्था, विद्या, कुल, वृत्त तथा स्वभाव का वर्णन नहीं करना चाहिए। किसी स्त्री से बात न करे। पहले देखी स्त्री का स्मरण न करे। उनके सम्बन्ध में बातचीत न करे। स्त्री का चित्र भी न देखे। इन चारों कामों को यदि अज्ञानवश करता है तो उसका चित्त बिगड़ जाता है तब तो सर्वनाश है।

तृष्णा, क्रोधोऽनृतं माया लोभ-मोहौ, प्रियाप्रिये।
शिल्पं व्याख्यानयोगश्च कामो रागपरिग्रहः॥५॥
अहंकारो, ममत्वं च, चिकित्सा, धर्म साहसम्।
प्रायश्चित्तं प्रवासश्च, मन्त्रौषधपराशिषः॥६॥
प्रतिषिद्धानि चैतानि सेव मानो ब्रजेदधः।
आगच्छ, गच्छ तिष्ठेति, स्वागतं, सुहृदोऽपिवा॥७॥
सन्माननं च न ब्रूयान्मुनि मोंक्षापरायणः।
प्रतिग्रहं न गृह्णीयात् नैव चान्यं प्रदापयेत्॥८॥

प्रेरयेद्वा तथा भिक्षुः स्वप्नेऽपि नकदाचन।
जाया भ्रातृ सुतादीनां बन्धूनां च शुभाशुभम्॥९॥
श्रुत्वा दृष्ट्वा न कम्पेत शोक हर्षी त्येजद्यतिः।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः॥१०॥

संन्यासी को तृष्णा, क्रोध, मिथ्या भाषण, छल, बल, लोभ, मोह, प्रिय, अप्रिय, शिल्प, व्याख्यान, हठयोग, काम, राग, धन का संग्रह, अहंकार, ममता, औषधि, यज्ञादि कार्यों में हाथ बटाना, प्रायश्चित, विदेश यात्रा, तंत्र-मंत्र धागा तबीज, आशीर्वाद इन निषिद्ध कर्मों को न करे। ऐसा करने से संन्यासी पतित हो जाता है। शिष्य, मित्र या सेवक के आने पर आवो, जाओ, बैठो, आपका स्वागत है। मुमुक्षु संन्यासी इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग न करे। यति धन, भिक्षा वस्त्रादि आवश्यकता से अधिक न ले, न किसी को दिलवाये। न किसी को प्रेरित करे। यति धर्म निर्णयादि ग्रन्थों में यहां तक लिखा है कि यदि शिष्य भिक्षा लाया है। अधिक मात्रा में मिली है। गुरुओं को नहीं मिली, या कम मिली, तो शिष्य अपनी मांगी हुई भिक्षा में से गाय, कुत्ता, कौआ आदि को न दे। अधिक होने पर भूमि में गाड़ दे, क्योंकि जिस जीव जन्तु को भिक्षा दी है दूसरे दिन उसी समय फिर पहुंचेगा। संयोग से दूसरे दिन उदर पूर्ति भर का भी भिक्षा न मिली, तो वह निराश होगा। इसलिए भूमि में गाड़ दें, परन्तु यदि गुरु वृद्ध रोगी है। आने जाने में असमर्थ है तो शिष्य से भिक्षा ले ले। स्त्री, भाई, पुत्र आदि बन्धुओं की शुभाशुभ घटना को देखकर या सुनकर हर्ष शोक न करे। अहिंसा, सत्य वस्तु का न चुराना, ब्रह्मचर्य, संग्रह न करना इनका सब का पालन करे। चार पांच दिन से अधिक संन्यासी कहीं न ठहरे। अधिक ठहरने से राग द्वेष हो जाता है। अतः नरक होता है। यति रात्रि, दोपहर, दोनों काल की सन्ध्याओं में सुनसान में जहां आने जाने में बाधा हो, वहां न घूमे।

विविदिशा संन्यासी चार प्रकार के होते हैं-१. कुटीचक, २. बहूदक, ३. हंस, ४. परमहंस।

विद्वत् संन्यासी दो प्रकार के होते हैं-१. गोमुख, २. अवधूत।

नारद जी के संन्यासियों के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर ब्रह्मा जी ने कहा, हे देवर्षे! एक ही प्रकार का मुख्य संन्यास अज्ञानी, असमर्थ आदि पात्र भेद से चार प्रकार का है-

१. वैराग्य संन्यास, २. ज्ञान संन्यास, ३. ज्ञान वैराग्य संन्यास, ४. क्रम संन्यास।

लोक परलोक के भोगों की तृष्ण से रहित पिछले जन्म के कर्मों से जो संन्यास होता है। वह वैराग्य संन्यास होता है। शास्त्र के ज्ञान की प्रधानता से युक्त, क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार के त्याग सहित तथा स्त्री, धन लोकैषणा, मान प्रतिष्ठा की इच्छा, देह वासना, शास्त्र वासना, लोक वासना वमन के समान त्याग कर ब्रह्म तत्त्व को जानने के लिए साधन चतुष्टय सम्पन्न ज्ञान की प्रधानता वाला संन्यास, ज्ञान संन्यास है। जो संन्यास क्रमानुसार संसार के कर्मों को करके अनुभव के अनन्तर ज्ञान वैराग्य से, स्वरूपानुसन्धान के लिए अलिंग संन्यास (दण्ड कमण्डलु, काषाय वस्त्र से रहित) ज्ञान वैराग्य संन्यास है।

वैराग्य के अभाव में जो संन्यास ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ होकर क्रमानुसार लिया जाता है उसे क्रम संन्यास कहते हैं। ब्रह्मचर्य के अनन्तर जो संन्यास लिया जाता है। वह वैराग्य संन्यास होता है। क्रम संन्यासी के दो भेद हैं–१. निमित्त संन्यासी, २. अनिमित्त संन्यासी। निमित्त संन्यास आतुर संन्यास होता है।

आतुर संन्यास–जो कर्म करने में असमर्थ है। प्राणोत्क्रमण के समय जो संन्यास लेता है। वह आतुर संन्यासी है।

अनिमित्त संन्यासी–निरोगी होने पर भी जो विचार करता है। कर्म का फल तथा शरीर नाशवान् है। ब्रह्म के अतिरिक्त सब को नश्वर समझ लिया है। क्रमानुसार संन्यास लेने वाला संन्यासी अनिमित्त संन्यासी है।

यह अनिमित्त संन्यास भी छः प्रकार का है–

१. कुटीचक, २. बहूदक, ३. हंस, ४. परमहंस, ५. तुरीयातीत (गोमुख), ६. अवधूत।

१. कुटीचक–शिखायज्ञोपवीत सहित दण्ड कमण्डलु कौपीन, कन्था, भिक्षा पात्र, खनित्र, छीका आदि सामग्री धारण करके वानप्रस्थ के बाद ग्राम नगर के बाहर कुटी बनाकर रहने वाले कुटीचक कहे जाते हैं। यह माता, पिता तथा गुरुओं की सेवा करते हुए परिवार की देखभाल भी करते हैं। एक का ही अन्न सेवन करते हैं। पंच देवों की उपासना, श्वेत ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करते हैं।

२. बहूदक–जो अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए अनेकों स्थानों का जल पीते हैं। उन्हें बहूदक कहते हैं। यह शिखा यज्ञोपवीत, दण्ड, कमण्डलु, कौपीन कन्था, भिक्षा पात्र रखते हैं। कुटीचक के समान सभी सामग्री रखते हैं और माधुकरी भिक्षा करते हैं। केवल आठ ग्रास खाते हैं। मधुकर जिस प्रकार भौंरा अनेक पुष्पों पर बैठकर उसका रस लेता है। इसी प्रकार संन्यासी भी गृहस्थ से एक ग्रास या एक रोटी लेता है। उसे माधुकरी भिक्षा कहते हैं।

परमहंस दो प्रकार के होते हैं–१. दण्ड सहित, २. दण्ड रहित। दण्ड सहित को दण्डी परमहंस, दण्ड रहित को अदण्डी परमहंस कहते हैं। कुटीचक दिन में तीन बार, बहूदक दो बार, हंस एक बार स्नान करे। परमहंस, नियम रहित। उपनिषद में कहा है–

''निर्गुणे पथि विचरतां को विधिः को निषेधः''

संन्यास गीता–निर्गुण पथ पर विचरण करने वाले परमहंस विधि निषेध से रहित है। कुटीचक एक का अन्न ले सकता है। बहूदक के लिए माधुकरी, तीसरे के लिए आजगरी वृत्ति, परमहंस बालवत् चेष्टा करे। आत्मबल युक्त को बाल कहा गया है। कुटीचक मूर्ति पूजा करे। बहूदक मानसी पूजा। हंस आत्मा पूजा, परमहंस आत्मा में रमण करे। पहले के लिए मंत्र योग, दूसरे के लिए हठयोग, तीसरे के लिए लय योग, चौथे के लिए राज योग है। पहला संन्यासी वाचिक जप करे। दूसरा उपांशु, तीसरा मानस, चौथा सदैव स्वरूपानुभव करे। पहला संन्यासी किसी को मंत्र दीक्षा न दे। दूसरा आंशिक आचार्य का काम करे। तीसरा आचार्य गुरु दोनों का काम कर सकता है। चौथा विधि निषेध रहित। पहला संन्यासी स्थूल देह का अध्यास त्यागे। दूसरा सूक्ष्म का। तीसरा कारण शरीर का। चौथा तीनों शरीरों के अध्यास से रहित ब्रह्म रूपता को प्राप्त करे। पहला यति शिखा सूत्र दोनों की रक्षा करे। दूसरा सूत्र मात्र की जटाएं ही उनकी शिखा है। हंस सूत्र से रहित जटाएं रखना न रखना स्वेच्छा पर निर्भर है। चौथे के लिए कोई विधि निषेध नहीं। कुटीचक के लिए तीनों संन्यासी पूजनीय हैं। दूसरे के लिए हंस तथा परमहंस है। हंस के लिए परमहंस। चारों प्रकार के संन्यासी तीनों आश्रम वालों द्वारा पूजनीय हैं। उत्तम संन्यासी, कनिष्ठ संन्यासी को प्रणाम शरीर द्वारा न करे। वाचिक

नमस्कार कर सकता है। कालिकाल में ब्राह्मणों के बच्चे जब तक अध्ययन करे तब तक अध्यापक को वाणी से प्रणाम करें। इन चार प्रकार के संन्यासियों में से एक ही गुरु से क्रमानुसार तीन वर्ष तक सेवा करने के अनन्तर पहले त्रिदण्डी, फिर द्विदण्डी, फिर हंस और परमहंस संन्यास ले सकते हैं। इन चारों संन्यासियों में पहले का शरीर छूटने पर पहले तीन चार दिन भूमि में गाड़ा जाए, फिर जलाने का विधान है। दूसरे का दाह करे या जल प्रवाह करें, तीसरे को नदी में प्रवाहित करे या भूमि में गाड़ें। चौथे के लिए भूमि में गाड़े या जल प्रवाह करे। पहला यति उपनिषद्, ग्रन्थ को छूने के बाद संन्यास ले। बहूदक तीर्थ जल स्पर्श करके। हंस अग्नि होत्र करके। परमहंस द्वैतभाव से रहित हैं। कुटीचक मंत्र से, बहूदक संकल्प लेकर त्याग करे, हंस संस्कार रहित, परमहंस विधि निषेध रहित है।

संन्यासी किसे कहते हैं–अच्छे बुरे अन्न में, ढेले तथा स्वर्ण में, जिसकी समान बुद्धि है। वह संन्यासी है। लोभ आदि से रहित किसी से याचना न करने वाला, भिक्षा खाने पर भी जिसे अच्छे बुरा का ध्यान न हो, ध्यान करते हुए, तपस्या में अपने शरीर को सुखाने वाले वानप्रस्थी भी संन्यासी ही हैं। जो महामुनि आत्मरति, आत्मतृप्त है। उस भिक्षु को योगी भिक्षु जान कहते हैं। संन्यासी यदि अनजान में भी एक का अन्न सेवन करता है। वह पाप से नहीं छूटता, चाहे बृहस्पति जैसा विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो। फिर भी उसके यहां रोज भिक्षा न करें।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का बीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

इन छः प्रकार के संन्यासियों में भी उत्तम होने पर भी जो स्वरूपज्ञ न हो। वह ज्येष्ठ होने पर भी कनिष्ठ है। संन्यासी तैरकर नदी पार न करे। पेड़ पर न चढ़े। जानदार सवारी पर न बैठे। व्यापार न करे। झूठ न बोले। संन्यास के अनन्तर वेदान्त के ग्रन्थों के ही श्रवण मनन आदि का अधिकार है।

संन्यास का फल–आतुर तथा कुटीचक संन्यासियों को स्वधर्म पालन से भूलोक प्राप्त होता है। बहूदक को स्वर्ग। हंस को तपोलोक। परमहंस को सत्यलोक, तुरीयातीत

तथा अवधूतों को आत्मानुसन्धान तथा आत्मा में रमण करने से विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त होती है। जिसमें ज्ञान, वैराग्य, शम, दम आदि नहीं है। भिक्षा मात्र जीवी है। वह यतियों की वृत्ति का हरण करने वाला है।

न दुण्ड धारणेन न मुण्डनेन, न वेषेण न दम्भाचारेण मुक्तिः।
काष्ठ दण्डोधृतो येन सर्वाशीः ज्ञान वर्जितः।
स याति नरकान् घोरान् महारौरवसंज्ञकान्॥२॥
प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा समागीता महर्षिभिः।
तस्मादेनां परित्यज्य कीटवत् पर्यटेद्यतिः॥२॥ पर्यटेद् यतिः।

मुक्ति, न दण्ड ग्रहण करने से, न मूड मुडाने से, संनयासी के वेष से, न दम्भ करने से मिलती है। एकमात्र ज्ञान से ही मुक्ति है। अतः ज्ञान दण्ड जिसने धारण किया, वही दण्डी कहा जाता है, किन्तु जो ज्ञान रहित संन्यासी सर्वभक्षी तथा आशावादी है तथा काष्ठ दण्ड धारण करता है। वह महा रौरव नामक घोर नरक में जाता है। महर्षियों ने प्रतिष्ठा को शूकरी विष्ठा के समान कहा है। अतः संन्यासी मान प्रतिष्ठा का त्याग करके कीट के समान भ्रमण करे। कीटवत्-टूटी कमर वाले सांप के समान धीरे-धीरे चले, जीव जन्तुओं को देखकर चले॥३॥ बिना मांगे प्रारब्धानुसार भोजन या वस्त्र मिल जाए। उसी में सन्तोष करे। अन्यथा भूखा और दिगम्बर रहे। जो परेच्छा से स्नान करे, सोते हुए भी जाग्रत के मसान है। वे ब्रह्म वेत्ताओं में सर्वोत्तम कहे गए हैं। भिक्षा के न मिलने पर दुखी न हो। मिलने पर प्रसन्न न हो। भिक्षा के लिए कब जाए, इस पर कहते हैं-प्राणों की रक्षा के लिए जब घर में सब भोजन कर चुके हों। अग्नि शान्त हो गई हो। बर्तन धो मांजकर ठिकाने रख दिये गये हों। तब भिक्षा के लिए जाए। दिन भर में एक बार भिक्षा करे। बार-बार नहीं। जो मुनि मुख के द्वारा ही आहार ग्रहण करते हैं। सर्व ब्रह्मदर्शी हैं, वे निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मा जी कहते हैं, जो यति सत्यवाणी तथा ज्ञान वैराग्यसे युक्त है। जिस यति का ज्ञान शरीर है। वैराग्य जीवन, शान्ति दान्ति-नेत्र अन्तर्मुख मन उनका मुख है, पचीस तत्त्व अंग हैं। पंच महाभूत कर्म, भक्ति ज्ञान, वैराग्य शाखाएं भुजाएं जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीयातीत सहित चौदह इन्द्रियां जिसके अवयव हैं। उस विशिष्ट शरीर के पंच

महाभूत पांच अवस्थाएं हैं। कर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, यह भुजाएं (शाखा) हैं। चौदह इन्द्रियां रूपी कमजोर खम्भे से जिसकी जीवन रूपी नौका बंधी है। वह जन्म मरण रूपी दलदल में फंसी हुई है। जैसे दलदल में फंसी हुई नाव को हृष्ट-पुष्ट नाविक अपनी पुष्ट भुजाओं द्वारा ढकेल कर खींच ले जाता है। उसी प्रकार संसार सागर के कीचड़ में फंसी हुई जीवन रूपी नौका को जीव रूपी नाविक उत्तम बुद्धि से पार लगाता है। जैसे महावत हाथी को वश में रखकर सही रास्ते पर ले जाता है। वैसे ही संन्यासी ज्ञान विशिष्ट शरीर में स्थित हुआ, मुझ से अतिरिक्त सब कल्पित क्षण भंगुर है, मैं ही ब्रह्म हूं, ऐसी ब्रह्माकार वृत्ति बनाते हुए संसार सागर से मुक्त हो जाता है। समाधि से जगने पर भी व्यवहार काल में, मैं ब्रह्म नहीं हूं, ऐसा न समझे।

दो पुरुषों का पतन होता है, कर्म न करने वाले गृहस्थ का और कर्म करने वाले संन्यासी का।

माद्यति प्रमदां दृष्टवा सुरां पीत्वा च माद्यति।
तस्माद्दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत्॥३१॥
सम्भाषणं सहस्त्रीभिरालापः प्रेक्षणं तथा।
नृत्यं गानं सहासं च परिवादांश्च वर्जयेत॥३२॥
न स्नानं न जपः पूजा, न होमो नैव साधनम्।
नाग्नि कार्यादि कार्य च नैतस्यास्तीह नारद॥३३॥
नार्चनं, पितृ कार्य च, तीर्थ यात्रा व्रतानि च।
धर्माधर्मादिकंनास्ति न विधिः लौकिकी क्रिया॥३४॥

मनुष्य मदिरा पीकर नशे में आता है और स्त्री को देखने मात्र से अतःयति नारी को दूर से ही विषवत् त्याग दे। उससे बात करना उसकी ओर देखना, नृत्य गान, हंसी मजाक तथा विवाद न करे। हे नारद, यति के लिए स्नान, जप, पूजा, होम, अग्नि सम्बन्धी अन्य कर्म नहीं करने चाहिए। देव पूजा, पितृकर्म, तीर्थ यात्रा, व्रत धर्म अधर्म तथा अन्य कोई लौकिक कार्य न करे। केवल स्वरूप चिन्तन ही करे॥३१ से ३४॥

(छठा उपदेश समाप्त)

॥ इति तृतीय परिच्छेद का बीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का इक्कीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

नारद जी ने ब्रह्मा जी से यतियों के नियमों के सम्बन्ध में पूछा। तब ब्रह्मा जी ने कहा, हे देवर्षे! संन्यासी माधुकरी वृत्ति से भिक्षा लेते हुए कमजोर हो जाए। इतनी मात्रा में भिक्षा करे जिससे चर्बी न बढ़ने पाये। अतः-

आज्यं रूधिरमिवत्यजेदेकत्रान्नं पललमिव। गन्ध लेपनमशुद्धिलेपनमिव, क्षारमन्त्यजमिव, वस्त्रमुच्छिष्ट पात्रमिव अभ्यंग स्त्रीसंगमिव, मित्राह्लादकं मूत्रमिव, स्पृहां गोमांसमिव ज्ञातचर देशं चाण्डाल वाटिकामिव, स्त्रियमहिमिव, सुवर्ण-काल-कूटमिव, सभास्थलं श्मशान-स्थलमिव, राजधानी कुम्भी-पाकमिव, शवपिंडवदेकान्नं, न देहान्तर्दर्शनम् प्रपञ्च वृत्ति परित्यज्य स्वदेश-मुत्सृज्य ज्ञातचरदेशं विहाय, विस्मृत पदार्थे पुनः प्राप्तो हर्ष इव स्वमानन्दमनुस्मरन् स्वशरीराभिमानदेश विस्मरणं मत्वा स्वशरीरं शवमिव हेयमुपगम्य कारागृहविनिर्मुक्तचौरवत्, पुत्राप्तबन्धुभवस्थलं विहाय दूरतो बसेत्॥१॥

घी को रक्त के समान, त्याग दे क्योंकि युवा संन्यासी यदि घी दूध का अधिक सेवन करेगा तो उदर वृद्धि के साथ-साथ शरीर मन में विकार पैदा होगा। किन्तु रोगी तथा वृद्ध संन्यासी के लिए यह नियम नहीं है संग्रहीत अन्न मांस के समान, चन्दन, इतर, फुलेल, क्रीम, पाउडर, साबुन आदि को मलमूत्र के अशुद्ध लेप के समान, सोडा, सर्फ, निरमा आदि अन्त्यज के समान, नवीन वस्त्र को जूठे बर्तन के समान, उबटन को स्त्री संग के समान, (उबटन = बटना)। मित्रों के साथ मनोरंजन को मूत्र के समान, लोक परलोक के सुखोपभोग की इच्छा को गोमांस के समान, जाने पहचाने स्थान को चाण्डाल की वाटिका के समान, स्त्री को सर्प के समान, सोना धन सम्पत्ति को काल कूट विष के समान, सभा भवन को श्मशान के समान, राज दरबार कचहरी आदि को कुम्भीपाक नरक के समान, अनेक जगह से एकत्रित अन्न को मुर्दे पर रखे पिंड के समान, किसी के शरीर में विद्यमान दोषों को त्याग कर अपने देश को छोड़कर तथा परिचित स्थान को छोड़ दे (यति धर्म से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों में आया है कि अपनी जन्म भूमि छोड़कर कम-से-कम सौ योजन की दूरी पर रहना चाहिए। (योजन = चार

कोश) पंजाब में डेढ़ मील का कोस तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में दो मील का कोस मानते हैं। क्योंकि इतनी दूरी रहने पर परिवार तथा सम्बन्धियों के हर्ष विषाद का समाचार नहीं मिलता। यदि इतनी दूर न जा सकें तो कम-से-कम अपना जनपद अवश्य छोड़ देना चाहिए।

विस्मृत पदार्थ के पुनः प्राप्त होने पर जैसे प्रसन्नता होती है। ऐसे ही स्वरूपानन्द का अनुभव करते हुए अपने शरीर तथा देश को विस्मरण करके अपने शरीर को शव के समान त्याज्य समझ कर जेल से छूटे हुए चोर के समान बन्धु-बान्धवों को त्याग कर बहुत दूर वास करे।

१. स्वशरीरं शवमिव हेय..... संन्यास होने से पूर्व कर्म आरम्भ होने के तीसरे दिन अष्ट श्राद्ध के अनन्तर अपराह्न काल में विरजा होम होता है। विरजा = विगतं रजः त्रिविधि पापानि यस्मात् तत्। शरीर, मन तथा वाणी द्वारा किये गये दश प्रकार के पापों की निवृत्ति के लिए विरजा होम होता है। इसमें रुद्राष्टाध्यायी के चमक नमकाध्याय के मंत्रों से स्थूल शरीर की सप्त धातुओं हड्डी, चमड़े मांस आदि हाथ पैर मुख आदि उपांगों का सूक्ष्म कारण शरीर सहित अवस्थाओं तथा गुणों का पांच प्राण, अन्त:करण चतुष्टय पुण्य पाप का होम किया जाता है अर्थात् आज से मैं इन सब की आसक्ति से रहित हो जाऊंगा। यह प्रदीप्त अग्नि ज्ञानाग्नि का प्रतीक है। इसमें जलने के बाद जले हुए कागज, कपड़े के समान अथवा भुने हुए दाने के समान, स्थूल शरीर दग्ध होने पर भी दिखाई देता है, उस समय भावी यति का स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदिकों से वार्तालाप होता है। मैं तुम्हारा पिता पुत्र पति आदि नहीं, तुम मेरे नहीं। मैं और तुम सच्चिदानन्द परमात्मा हैं। सारा जगत् उसी का रूप है। इस होम के बाद ब्रह्मचारी को रात्रि भर जग कर सायं काल की सन्ध्या के अनन्तर चतुष्पाद गायत्री का जप करना पड़ता है। प्रातः काल स्नान सन्ध्या से निवृत्त होकर ब्रह्मचारी नदी, तीर्थ, गंगा आदि में देव ऋषि पितृ तर्पण करते हैं। फिर कर्मशाला में अग्नि के समीप आकर एक सहस्त्र गायत्री जप के अनन्तर गुरु अन्य संन्यासियों के साथ तथा ब्राह्मणों के साथ नदी तट पर पहुंचते हैं। उस समय साधक वेद मंत्रों से स्नान के बाद ऋषि देव पितृ तर्पण के बाद गुरु के पास शिष्य

आता है। गुरु वैदिक मंत्रों से गायत्री के प्रथम पाद का भू: में द्वितीय पाद का भुव: में तथा तृतीय पाद क स्व: में प्रवेश कराते हैं। तदनन्तर भू: का प्रणव के अकार में, भुव: का उकार में और स्व- का मकार में प्रवेश कराते हैं। कुछ वर्ष पर्यन्त यति के परिपक्व हो जाने पर या अधिकारानुसार उसी समय अकार का उकार में, उकार का मकार में, मकार का अर्द्धमात्रा में लय किया जाता है। फिर गुरुदेव अपने सहित शिष्य को पूर्वाभिमुख बैठाकर वैदिक मंत्रों से शिखा तथा यज्ञोपवीत तोड़ते हैं। दोनों को (शिखा यज्ञोपवीत को) हाथ में लेकर गंगाजल सहित गंगा जी में विसर्जित करते हैं। उस समय गुरु दोनों हाथ ऊपर उठवा कर मन्द, मध्यम, उच्च स्वर में तीन-तीन बार प्रेष मंत्र का उच्चारण कराते हैं। उस समय कटि वस्त्र तथा कौपीन दोनों का त्याग हो जाता है तथा गुरु आज्ञा से शिष्य सात कदम उत्तर दिशा में चलता है। तब आचार्य तथा ब्राह्मण उस यति से कहते है यह शरीर आप का नहीं, हमारा है। हम अपने शरीर के समान इसका भरण पोषण करेंगे। अत: लोक लज्जा की निवृत्ति के लिए वस्त्र और दण्ड कमण्डलु धारण करें। हमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, कर्म का उपदेश देकर हमारा कल्याण करें। तब शिष्य गुरु के पास आकर कौपीन, दण्ड, कमण्डलु वस्त्र आदि धारण करते हैं। शिष्य को गुरु प्रणव सहित चारों महावाक्यों का उपदेश करते हैं। इस समय भी यति की सम्बन्धियों से पूर्वोक्त शब्दों में वार्ता होती है। यदि कोई सम्बन्धी वहां नहीं है, तो वहां पर स्वयं अहंशब्द का प्रयोग करते हुए अपने आप से ही कहते हैं। विदा करते हुए यति, परिवार वालों को आशीर्वाद देते हैं-

सर्वेभवन्तु वेदाढ्याः सर्वेभवन्तु सोमपाः।
पुत्रस्य च मुखं दृष्ट्वा सर्वेभवन्तु भिक्षुकाः।

सभी लोग वेद धन से युक्त हों, सभी सोम यज्ञ करके सोम रस पीने वाले हों, यहां सोम रस से तात्पर्य मदिरा से नहीं है। सोम चन्द्रमा को कहते हैं। हिमालय के बर्फीले पहाड़ों पर एक सोमलता या वल्ली होती है, इस लता पर कृष्ण पक्ष की घटती और शुक्ल पक्ष की बढ़ती कलाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। शुक्ल पक्ष की पंचमी में एक पत्ता तथा दशमी में दो पूर्णिमा में तीन पत्ते निकलते हैं। फिर कृष्ण पक्ष की पंचमी में एक,

दशमी में दो तथा अमावस्या में तीनों पत्ते झड़ जाते हैं। सोम चन्द्रमा से सम्बन्धित होने के कारण इसे सोमलता कहते हैं। यह गिलोय जैसी होती है। इसका रस निकाल कर यज्ञ में देवताओं को दिया जाता है। अवशिष्ट को सभी लोग प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। इस यज्ञ को सोमयाग कहते हैं। सभी लोग पुत्र का मुख देखकर संन्यास ले लें। यह यति का अन्तिम आशीर्वाद है।

उस दिन से संन्यासी अपने स्थूल शरीर को मृतक के समान समझता है। इसीलिए कहा है कि "**स्वशरीरं शवमिव हेयम्**" अर्थात् "**नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहं सनातनः**" इस भावना में कि न मैं देह हूं, न मेरा देह है, मैं केवल पर ब्रह्म स्वरूप हूं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का बाईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

महती शंका–ऊपर नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखे हुए धर्मों के विपरीत आजकल जगद्गुरु शंकराचार्य देखे जाते हैं। इन शंकराचार्यों के अतिरिक्त अन्य उच्चतम कोटि के दण्डियों का राजाओं के समान वैभव देखने को मिलता है। वे अनेकों मंत्रों का अनुष्ठान करते तथा करवाते हैं। उनके पास सोने चांदी के सिंहासन हैं। पालकियां, पूजा के सोने चांदी के पात्र, छत्र, चांदी के चामर तथा चांदी के दण्ड, चपरासियों के पास रहते हैं। विशेष पर्वों में सोने का रत्न जटित मुकुट धारण करते हैं तथा कनकाभिषेक होता है। भक्तों के कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना भी करते हैं। जबकि नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है कि परमहंस संन्यासी दो जोड़ी कौपीन, शीत निवृत्ति के लिए कन्था, दण्ड को छोड़कर कोई वस्तु पास न रखें किन्तु आज के जगद्गुरुओं के पास सैंकड़ों कौपीने, रेशमी, ऊनी, सूती, चादरें, कीड़े आदि से रक्षा के लिए पेटियां. उनकी रक्षा के लिए मैनेजर चपरासी क्लर्क आदि राजभवनों में रहित हैं। अनेकों अंगरक्षक रहते हैं, उपनिषद् के अनुसार संन्यासी अकेला बिना किसी सहायक के विचरण करे। गृहस्थों और वानप्रस्थियों का संग न करे। फटी पुरानी कौपीन पहने पेड़ की मूल में रहे।

किन्तु आज के यति इसके विपरीत राजमहलों में निवास करते हैं। अनेकों शोभा यात्राएं निकालते हैं और उनमें भाग लेते हैं। मूर्ति का संन्यासी के लिए निषेध है, क्योंकि इसी में आगे कहा है कि कुटीचक, बहूदक देव पूजन करे। हंस, परमहंस मानस पूजन करें। किसी को आशीर्वाद न दें। हिंसा युक्त कर्म न करें, लोक संग्रह के लिए भी कर्म न करें। शिष्य न बनायें इत्यादि। अतः यति को स्वरूपानुसन्धान के अतिरिक्त इस प्रपंच में नहीं पड़ना चाहिए।

किन्तु गृहस्थों के समान पीठाधीश्वर अनेक महामंत्रों का अनुष्ठान करते हैं। श्री शारदा, चन्द्र मौलीश्वर, श्री चक्र का वाह्य पूजन करते हैं। अनिष्ट की निवृत्ति के लिए चण्डीयाग, रुद्रयाग, सोमयाग आदि करते हैं। धनी शिष्यों से धन लेकर विद्वान् ब्राह्मणों को देते हैं।

भिक्षाटनं तपोध्यानं स्नानं शौचं सुरार्चनम्।
कर्तव्यानि षडैतानि यतीनां नृप दण्डवत्॥

यति को इन छः कर्म को, भिक्षा मांगना, तप, ध्यान, स्नान, पवित्रता, देव पूजन, राजदण्डवत् अवश्य करना चाहिए इत्यादि। स्मृति के अनुसार यति को मूर्ति पूजा करना चाहिए, क्योंकि शांकर दिग्विजय में शंकराचार्य के प्रधान शिष्य पद्मपादाचार्य की तीर्थ यात्रा के प्रसंग में आया है कि उन्होंने जब रामेश्वर आदि तीर्थ यात्रा के लिए गुरु जी से आज्ञा मांगी तो उन्होंने कहा, "**चौरा देवानपहरेयुः**" रास्ते में तुम्हारी देवी-देवताओं की मूर्तियों को चोर अपहरण कर लेंगे। इस प्रमाण से यही सिद्ध होता है कि मूर्ति पूजा की आज्ञा शास्त्र में केवल कुटीचक व बहूदक संन्यासियों के लिए ही नहीं, बल्कि हंस परमहंसों के लिए भी है, क्योंकि पद्मपादाचर्य जी परमहंस संन्यासी थे।

इसके अनन्तर इसी प्रश्न को लेकर पूर्व पक्षी उत्तर देता है कि कटीचक, बहूदक मूर्ति पूजन करें। हंस परमहंस के लिए मानस पूजन है। बाहर मूर्ति का पूजन परमहंस न करे यह श्रुतिका सामान्य वचन हैं। सामान्य वचन की अपेक्षा विशेष वचन बलवान् होता है। अतः सामान्य वचन विशेष व्यक्तियों के लिए मान्य नहीं। 'परमहंस वाह्य देवता अर्चन मीमांसा' नामक ग्रन्थ में इस विषय को देखा जा सकता है।

यति सोने को कालकूट विष के समान, जानदार सवारी पर न बैठे इत्यादि **''अश्वारूढं यतिं दृष्ट्वा सचैलं स्नान माचरेत्।''** संन्यासी को यदि घोड़े पर चढ़ा देवे। यहां घोड़ा उपलक्षण हैं। घोड़े के अतिरिक्त बैलगाड़ी, हाथी, ऊंट आदि तभी सवारियों पर बैठे हुए संन्यासी को देखकर त्रैवर्णिक वस्त्र सहित स्नान से शुद्ध होते हैं। ऊपर लिखे वचनों से गला फाड़कर श्रुति संन्यासी के लिए निषेध करती है। अतः पीठाधीश्वरों को अनेक रत्नों से जटित स्वर्ण मुकुट धारण नहीं करना चाहिए तथा सोने के सिंहासनों पर नहीं बैठना चाहिए। पूर्व पक्षी सिद्धान्ती से कहता है कि यदि आप इसका उत्तर इस प्रकार से देने की सोच रहे हों कि त्रिगुणातीत ब्रह्मवेत्ता परमहंस पीठाधीश्वरों के लिए शास्त्र का विधिनिषेध नहीं है। क्योंकि श्रुति तथा स्मृति कहती है, **''न मातृवधेन न पितृ बधेन ब्रह्महत्या अश्वमेधाद्यैः पुण्य पापैर्नलिप्यते निस्त्रैगुण्य ब्रह्मवेत्तायतिः परशुराममिव''** परशुराम के समान माता-पिता की हत्या से संन्यासी दोषी नहीं होता। ब्रह्म हत्या जैसे पापों तथा अश्व मेधादि यज्ञों के पुण्यों से संन्यासी लिप्त नहीं होता। जिनकी चिज्जड ग्रन्थी कट गई, उनको पाप पुण्य की गन्ध नहीं लगती। यदि आप इस प्रकार की शंका करते हों, तो उसका उत्तर इस प्रकार है-

क्योंकि अपने वर्ण आश्रम के विरुद्ध इस प्रकार का होने पर भी ऐसे यतियों के कृत कार्य होने पर भी इस ब्रह्मवेत्ताओं को विदेहमुक्ति, कैवल्य मुक्ति निश्चित होने पर भी लोक दृष्टि से उचित नहीं है। ऐसे यतियों के सम्बन्ध में विद्यारण्य स्वामी जी ने एक ग्रन्थ में कहा है कि जिनकी ऐसी अभेद दृष्टि होने पर भी **''शुनां तत्त्वदृशांचैव को भेदोऽशुचिभक्षणे।''** ऐसे तत्त्वदर्शी तथा कुत्तों के अपवित्र वस्तु खाने में क्या भेद है। ऐसे कठोरतम शब्दों से निन्दा की है। मनु जी ने कहा है-**गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥**

कार्य अकार्य को न जानने वाले, अवलिप्त और कुमार्ग पर चलने वाले गुरु के त्याग का विधान है। अतः अपने धर्म से च्युत समदर्शी गुरुओं का परित्याग पूर्वाचार्य कहते हैं। अतः शिष्य को ब्रह्मानुभूति के लिए समितपाणि होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। अतः जगद्गुरुओं का ब्रह्मदर्शन को निमित्त करके आप

जो स्वधर्म के उल्लंघन का समर्थन करते हो, वह उनका आचरण धर्माधिकार के विरुद्ध है क्योंकि कन्या का विवाह वर के विनाश के लिए नहीं होता।

यदि आप कहें कि जैसे निराकार शिवलिंग अथवा शालिग्राम में देवता के मुख नासिका आदि अंगों की कल्पना की जाती है। वैसे ही श्रद्धालु भक्त की अतिशयिता से उन निर्लिप्त परमहंस पीठाधीशों को उपभोग के लिए देते हैं। अत: वे दोष रहित हैं, ऐसी शंका भी आपकी उचित नहीं, क्योंकि निराकार शिला में साकार अंग प्रत्यंग कवच आदि की कल्पना शास्त्र के अनुसार की जाती है। वैसे ही पीठाधीश्वरों को भी किरीट आदि मूल्यवान् वस्तुएं शास्त्र में देने का अभाव होने से अप्रमाणिक है। अत: धर्माचार्य होने के नाते उनके लिए उपयुक्त नहीं है। वास्तव में शास्त्र तो कहता है कि जाने पहचाने देश का, चाण्डाल की वाटिका के समान, सभा मण्डप को श्मशान भूमिवत त्याग दे किन्तु धर्माचार्यों का इनसे विरुद्ध आचरण पाया जाता है। रेणुका तन्त्र में विस्तार से कहा है कि यति सवारी पर न बैठे, सोने चांदी के आभूषण धारण न करे। रत्नों के हार धारण न करें। शूद्रों से भाषण न करें। गृहस्थों से धन न लें। यति के लिए यह सर्व धर्म विरुद्ध कार्य निषिद्ध है। अत: धर्म प्रचार का धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। यदि कहो कि लोक संग्रह या लोक कल्याण के लिए करते हैं तो वर्णाश्रम धर्म के विपरीत कर्म लोक संग्रह नहीं है।

इन यतियों को कर्म के साधन शिखायज्ञोपवीत सहित वेद तथा वेद माता गायत्री का व्याहृतियों सहित प्रणव में लय कर देने पर प्रणव के अतिरिक्त अनेकों 'त्र्यम्बक' आदि वेद मंत्रों का अनुष्ठान आदि करना करवाना नहीं चाहिए। ऊपर कहे वैदिक मंत्रों का अनुष्ठान तथा वैदिक यज्ञादि के करने करवाने का शिखा यज्ञोपवीत वाले त्रिदण्डी पीठाधिपतियों को अधिकार है। शिखादि से रहित परमहंस शंकराचार्यों को नहीं?

महा सिद्धान्त–शांकर मठस्थ परमहंस जगद्गुरुओं का शांकरमठाम्नाय तथा महानुशासन नामक ग्रन्थों में इन यतियों के विशेष धर्म कहे गये हैं जो कि सामान्य परमहंस यति धर्म के विपरीत हैं। इनका बोध न होने के कारण ही तुम शंका करते हो।

पूर्व पक्ष–यह महानुशासन क्या है? श्रुति आज्ञा या स्मृति आज्ञा। श्रुति वचन नहीं है। पौरुषेय होने से। अत: अपौरुषेय के आगे यह दोनों ग्रन्थ अमान्य हैं। शंकराचार्य

कृत होने से यह दोनों ग्रन्थ स्मृति भी नहीं हैं, ऋषियों की न रचना होने से। शंकराचार्य में ऋषित्व का अभाव है। अतः उनके महानुशासन तथा शांकर मठाम्नाय में स्मृतित्व नहीं है। यदि तुम शंकराचार्यों में ऋषित्व की कामना करते हो, तो भी उनका वचन माननीय नहीं है, क्योंकि–"**स्मृतेर्वेद विरोधे तु परित्यागो यथा भवेत्। तथैव लौकिकाचारं स्मृतिवाधे परित्यजेत्॥**"

वेद के विरोध में जैसे स्मृति का वचन त्याज्य है। वैसे ही स्मृति विरोधी लोकाचार त्याज्य है। यह पराशर माधवीय में कात्यायन ऋषि का वचन है। अतः महापूर्व पक्ष में दिखाये हुए अनेकों श्रुति स्मृति वचनों से विरोध होने के कारण शंकर प्रणीत दोनों ग्रन्थ अमान्य हैं। इस पूर्व पक्ष की शंका का उत्तर देते हुए कहते हैं, अपनी आज्ञा भूत श्रौतस्मार्त धर्म की रक्षा करने के लिए ही भगवान् परमेश्वर शंकराचार्य के रूप में अवतरित हुए। अतः उसी परमेश्वर का अवतार होने के कारण भगवत्पाद द्वारा रचित दोनों ग्रन्थ माननीय हैं। क्योंकि वायुपुराण और शिवरहस्य में आया है–

चतुर्भिस्सह शिष्यैस्तु शंकरोऽवतरिष्यति।
मदंशजातं देवेशि कलावपितपोधनम्॥
केरलेषु तदा विप्रं जनयामि महीतले।
केरले शशल ग्रामे (कालटी) विप्रपत्न्यां मदंशतः।
भविष्यति महादेवि! शंकराख्यो द्विजोत्तमः॥

चार शिष्यों के साथ शंकर जी अवतार लेंगे। हे देवेशि! कलियुग में पृथ्वी पर केरल देश के शशल (कालटी) ग्राम में मेरा अंश ब्राह्मणी के गर्भ से शंकर नाम से उत्पन्न होगा।

अतः भगवान् ही श्रुति स्मृति में कही अपनी आज्ञा की रक्षा के लिए अवतरित हुए थे। आपने जो श्रुति स्मृतियों के प्रमाण दिये हैं। इनमें सामान्य परमहंसों के धर्म प्रकाशित किये हैं। उसी परमेश्वर ने श्री शंकराचार्य के रूप में अवतरित होकर फिर मठाम्नाय तथा महानुशासन द्वारा विशेष धर्मों का प्रकाशन किया है। अतः महानुशासन का श्रुतित्व स्मृतित्व की अपेक्षा किये बिना ही प्रामाण्य संभव है, क्योंकि सामान्य धर्म विशेष धर्म

द्वारा बाधित होता है। अतः आपके द्वारा प्रदर्शित सामान्य परमहंसों के धर्म विशेष के आगे बाधित होते हैं। पूर्व पक्ष–नहीं आप प्रमाणों को ही खटाई में डालते हैं। श्री शंकराचार्य को शिव का अंशावतार मान कर ऊपर कही श्रुति स्मृतियों का वचन सामान्य वचन कह कर आप मोह में डाल रहे हैं, क्योंकि भगवान् ने गीता में अर्जुन से क्या कहा, **''तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।''** कार्य अकार्य की व्यवस्था में शास्त्र का वचन ही प्रमाण है। मुख्य शास्त्र अपौरुषेय होने से वेद ही है। वह निरंकुश है। अतः वेदानुसारी–अन्य शास्त्र का वचन प्रमाण है, अन्यथा नहीं। अतः पौरुषेय तथा अपौरुषेय वचन में पौरुषेय वचन दुर्बल है और अपौरुषेय वेद वचन प्रबल है। अतः ऐसे व्यामोह में डालने वाले वचनों का प्रमाण देने से आपकी अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी। यदि आप शंकर का अंशावतार होने से भी शंकराचार्य का वचन मानते हो तो उसके अंश से तो सारा जगत उत्पन्न हुआ है। तो फिर सब का वचन प्रमाणित माना जाएगा। **''पादोऽस्य विश्वाभूतानि, तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्''** उस ब्रह्म के एक पाद में संसार के सब प्राणी हैं, उसने जगत् को रचने के अनन्तर उसमें प्रवेश किया। ब्रह्मसूत्र में भगवान् व्यास भी कहते हैं, **''अंशो नाना व्यपदेशात्''** अनेक उपाधियों के भेद से जीव अंश हैं। इन वचनों पर विचार करने पर सभी प्राणी भगवत् अंश हैं तो क्या सब के वचन श्रुति स्मृति के समान हो जाएंगे। तब तो सभी वेद के मानने वालों का अनिष्ट हो जाएगा। इसलिए भी शंकराचार्य को भगवान् का अंश मानकर उनके महानुशासन आदि ग्रन्थों का प्रमाण देते हो यह निरंकुश तथा अनपेक्ष प्रमाण नहीं? सिद्धान्ती कहते हैं कि यदि तुम ऐसी शंका करते हो तो ठीक नहीं क्योंकि आप प्रसंग से अनभिज्ञ हो। हम श्री शंकराचार्य के महानुशासन आदि प्रमाणों को श्रुति स्मृति के समान मानकर नहीं कहते। किन्तु इसमें परमहंसों के विशेष धर्म का वर्णन है। भगवान् का अवतार सामान्य धर्म का उद्धार करने के लिए होता है। सामान्य धर्म के विरुद्ध दिखाई देने पर भी अधर्म के समान हो तो वह माननीय नहीं। भगवान् रामकृष्ण आदि के रूप में श्रुति स्मृति में कहे हुए चारों वर्णाश्रमों के सामान्य धर्मों की रक्षा के लिए अवतार लेते हैं। किन्तु इन्हीं अवतारों में कहीं-कहीं सामान्य धर्म के विरुद्ध विशेष धर्म का भी आश्रय लेते हैं जो सामान्य धर्म के विपरीत दिखाई देता है। वह विशेष धर्म सामान्य धर्मशास्त्र की दृष्टि से

पाप होने पर भी धर्मानुबन्धित होने से उसे धर्म ही कहना चाहिए। उस धर्म के पथ का अनुसरण करने से जीव का कल्याण होता है।

जैसे भगवान् राम ने ब्राह्मण, गौ, देवता, सन्त की रक्षा के लिए अवतार लिया। यह संस्कृत तथा भाषा की प्रत्येक रामायण से सिद्ध होता है। किन्तु उसी ब्राह्मण धर्म के विपरीत कर्म करने वाले महाशिव भक्त, श्रोत्रिय सोमयाजी वेद के महाविद्वान् महाब्राह्मण रावण की परिवार सहित हत्या करके अनेकों ऋषियों के धर्म की रक्षा की। जैसे भगवान् श्री कृष्ण ने युद्ध में शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा करके भी अपने भक्त अर्जुन की रक्षा के लिए तथा भीष्म की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर भी सुदर्शन चक्र धारण कर लिया। सामान्य धर्म किसी पतिव्रता के धर्म को नष्ट करने को महापाप मानता है। जब उसी महासती के पतिव्रतधर्म के प्रभाव से भगवान् शंकर के हाथों से भी उसका पति नहीं मारा जा सका और वह इस के प्रभाव से प्रतिदिन हजारों स्त्रियों का शीलभंग करता था। तब शिवजी की प्रार्थना से महाविष्णु ने करोड़ों सतियों के सतीत्व की रक्षा के लिए सामान्य धर्म के विरुद्ध माया से उसके पति जलन्धर का रूप धारण करके तुलसी का शीलभंग करके करोड़ों सतियों के सतीत्व की रक्षा की। अतः भगवान् के द्वारा अधर्म भासमान होने पर भी धर्मानुबन्धित होने से यह विशेष धर्म है। यह धर्म मात्र की रक्षा के लिए उद्देश्य से किया। धर्मानुबन्धित = धर्म से सम्बन्धित सर्वसाधारण की दृष्टि में अधर्म प्रतीत होने पर भी जो धर्म हो।

अर्थमर्थानुबन्धं च कामं कामानुबन्धनम्।
धर्मं धर्मानुबन्धं च व्यवस्यति स बुद्धिमान॥

धन वही है जो धन से सम्बन्धित हो, काम वही है जो काम से सम्बन्धित हो, धर्म वही है जो धर्म से सम्बन्धित हो, जो ऐसा मानता है वही बुद्धिमान है।

यही बात शंकराचार्य जी के सम्बन्ध में भी है। कलियुग में वैदिक धर्म की रक्षा के लिए अवतरित हुए भगवत्पाद शंकर की वाणी प्रमाण रूप से मानने योग्य है तथा उनके द्वारा निर्धारित चार पीठों तथा पीठाधीश्वरों को परम्परागत मर्यादा के प्रतिपादक श्री शंकराचार्य का मठाम्नाय सेतु, महानुशासनम् आदि ग्रन्थों में इन पीठों पर परम्परानुसार

प्रतिष्ठित शंकराचार्यों की योग्यता उनके विशेष धर्म में महामंत्रों का अनुष्ठान करना करवाना, मूर्ति पूजा महाराजाओं जैसे वैभव, अनेक प्रकार की धन सम्पत्ति, चारों वर्णों तथा आश्रमों की विशेष रक्षा के लिए है। वे सिंहासनासीन जगद्गुरु जनकादिराजाओं के समान, जल में अलिप्तकमलपत्रवत् उनको भोगते हुए भी लिप्त नहीं होते। इन बातों का संकेत शिवरहस्य तथा प्राचीन शांकर विजय आदि ग्रन्थों में दिया है। यद्यपि सामान्य परमहंस के लिए दोष है। किन्तु विशेष जगद्गुरुओं के लिए नहीं। भागवत् में भी दशम स्कन्ध में रासक्रीड़ा के अनन्तर परीक्षित जी ने पूछा, हे महर्षे! वैदिक धर्म की रक्षा के लिए अवतरित हुए भगवान् ने वंशी बजाते हुए रात्रि में एकान्त में गोपियों को क्यों बुलाया। रात्रि में पर स्त्रियों का स्पर्श करते हुए रास क्रीड़ा क्यों की। इसका उत्तर देते हुए शुकदेव जी ने कहा, **''धर्मो व्यतिक्रमो दृष्टो ईश्वराणां च साहसम्। तेजीयसां न दोषाय वन्हिः सर्वभुजो यथा।''**

सर्व समर्थ निग्रहानुग्रह करने में समर्थ अथवा असम्भव को भी सम्भव करने में समर्थ तेजस्वियों (जो दोष युक्त वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हें दोष रहित करके स्वयं निर्दोष बना रहे। सूर्य और अग्नि के समान उसे तेजस्वी कहते हैं।) को धर्म व्यतिक्रम का दोष नहीं लगता। जैसे अग्नि सर्व कुछ भस्म सात् कर देती हैं पर उसे दोष नहीं लगता। उसी प्रकार इन मठाधीशों को भी दोष नहीं है। शिव रहस्य में मूर्ति पूजा के सम्बन्ध में आया है। भगवान् शंकराचार्य ने शंकर की आराधना की। भगवान् शंकर प्रकट हुए तथा पांच चन्द्रमौलीश्वर लिंग देते हुए इस प्रकार बोले, **''एतत् प्रतिगृहाणत्वं पंचलिंगं सुपूजय। विल्व पत्रैश्च कुसुमैः नैवेधै र्विविधैरपि॥ त्रिवारं सावधानेन गच्छ दिग्विजयाय च।''**

हे स्वामिन् मुझ से यह पांच लिंग ग्रहण करके बिल्ब पत्रों, पुष्पों तथा अनेक प्रकार के नैवेद्यों से सावधान होकर दिन में तीन बार पूजन करो तथा दिग्विजय के लिए जाओ सफलता प्राप्त होगी। अतः भगवत् पाद शंकर ने भगवान् शंकर की आज्ञा प्राप्त करके चन्द्रमौलीश्वर शिव का पूजन किया। वैदिक सनातन धर्म की रक्षा के लिए तथा अद्वैतमत की स्थापना के लिए किया। दिग्विजय में शंकराचार्य जी के साथ महाराज सुधन्वा अपनी चतुरंगिनी सेना तथा अपने सहायक अन्य राजाओं के साथ गये थे।

उन्होंने देखा कि मैं तो हाथी पर सवार हूं। सिंहासन छत्र आदि से युक्त हूं। पर मेरे गुरुदेव पैदल चलें। यह उचित नहीं है। तब उन्होंने गुरुदेव से प्रार्थना की। उनको छत्र चामर सहित रत्न जड़ित सिंहासन पर बिठाया। अतः यह सब छत्र सिंहासन आदि धर्म सम्मत हैं–

लौकिक दृष्टान्त–लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि कोई कितना बड़ा कानून का विशेषज्ञ लोवर कोर्ट के न्यायाधीश (जज) से लेकर सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस तक, यदि अपने घर में अथवा कहीं अन्यत्र साधारण वेशभूषा में पृथ्वी इत्यादि पर बैठ कर कितना उत्तम न्याय क्यों न करें। वह माननीय नहीं होता। वहीं व्यक्ति अपने पद की गरिमा के अनुसार सुप्रीम कोर्ट में अपनी कुर्सी पर बैठ कर न्याय करता है तो उसकी आज्ञा को प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार मानती है। जब लौकिक न्यायाधीशों के सम्बन्ध में ऐसी परम्परा है तो एक धर्म सम्राट् धर्मशास्त्र का न्यायधर्मासन पर बैठकर करता है, तो उसमें अनुचित क्या है।

भगवान् शंकराचार्य के सम्बन्ध में विद्यारण्य स्वामिकृत शांकर दिग्विजय के पन्द्रहवें सर्ग के दूसरे श्लोक की व्याख्या में भारत विख्यात धनपति सूरि अपने डिण्डिम् व्याख्या में प्राचीन दिग्विजय का प्रमाण देते हुए सिद्ध करते हैं कि देव राजोपचार से उनका पूजन होता था।

शिष्येषु त्रिसहत्रेषु केचित्तं शंखपूरणैः।
केचिद्वाद्य विशेषैश्च केचित्तारैश्शुभोक्तिभिः॥

उनके साथ चलने वाले तीन हजार शिष्यों में कुछ शंख तथा कुछ अनेकों प्रकार के वाद्य विशेष बजा रहे थे और कुछ जय जयकार तथा वेद मंत्रों का घोष करते थे तथा कुछ तालियां बजा रहे थे। कुछ ताड़ पंखे से हवा करते थे। कुछ चामर डुला रहे थे। परमहंस प्रहर्षिणी तथा यति निन्दा निराकरण आदि ग्रन्थों में इसे विस्तारपूर्वक देखा जा सकता है। यतियों का सिंहासनारूढ़ होना अत्यन्त प्राचीनतम सिद्ध होता है क्योंकि एक तन्त्र ग्रन्थ में भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं। हे देवि! मेरे पांच मुखों से (यद्योजात, वामदेव, अघोरतत्पुरुष तथा ईशान) क्रमानुसार इन मुखों से रेणुकाचार्य, श्री

दारुकाचार्य, श्री चंकुकर्णकाचार्य, श्री धेनुकर्णकाचार्य, श्री विश्वकरणकाचार्य पंच दण्ड, पंच छत्र, पंच सिंहासन, पंच चामर, पंच पंचाक्षरी, पंच कलश, पंच गोत्रों सहित प्रादुर्भूव हुए थे। इससे सम्बन्धित सांकेतिक श्लोक हैं–

मत्पंच वदनोद्भूताः सर्वएव गुरूत्तमाः।
तत्सृष्टानां च सर्वेषां तत्सामर्थ्यं कुतो भवेत्॥
पंच सिंहासनाधीशाः जगद्गुरुतमाश्चते॥

इन सबका वर्णन विस्तार से पंचाचार्य उत्पत्ति प्रकरण में प्रथम परिच्छेद में देखा जा सकता है।

यही बात विद्यारण्य स्वामी जी के सम्बन्ध में रेणुका तन्त्र ९-९९ से १०४ तक से सरस्वती तथा लक्ष्मी जी ने आकाशवाणी द्वारा कहा है–

छत्र चामर मुख्यानि विरुदादीनिधारय।
देवि रूपेणचात्मानं सदा भावय नान्यथा॥
त्वाया धृतानि सर्वाणि देव्याः एवेति भावय।
मण्डलाधिप चिह्नानि धारयास्मन्मतानुगः॥
निषिद्धान्यपि सर्वाणि सामान्य यतिगान्यपि।
एवं त्वया प्रकर्त्तव्यं नात्र कार्या विचारणा॥

हे यतीश्वर! छत्र चामर आदि मुख्य वस्तुओं को आप धारण करें। आप अपने में देवी रूप की भावना करें। अन्यथा नहीं। तुम्हारे द्वारा धारण की गई वस्तु में देवी ने ही धारण किया है, ऐसा मानो। मेरी आज्ञा से तुम मण्डलाधीशों के चिन्हों को धारण करो। यह वस्तुएं सामान्य यति के लिए वर्जित होने पर भी तुम्हें कुछ विचार नहीं करना चाहिए।

हे यति शेखर! मेरी आज्ञा से हाथी पर सवार हो। इसमें मैं कारण बताती हूं, सुनो।

मूर्द्धाभिषिक्त पुरुष श्रेष्ठाय यतिशेखर।
सिंहासनवते ब्रह्मा सृष्टवान् दन्तिशेखरम्॥

मूर्धाभिषिक्तस्त्रिविधास् तथा मंत्र सिंहासनं चैव त्रिविधं निर्मितंपुरा।

अतोमूर्धाभिषिक्तस्त्वं गजारोहणमाचर॥

राज्य सिंहासनं चैव भाष्य सिंहासनं तथा॥

हे यति शिरोमणे! ब्रह्मा जी ने सृष्टि के आरम्भ में मूर्द्धाभिषिक्त श्रेष्ठ सिंहासनासीन के लिए हाथी को बनाया है। मूर्द्धाभिषिक्त तीन प्रकार के हैं। उनके लिए तीन प्रकार के सिंहासन भी हैं। पहला राज्य सिंहासन, दूसरा भाष्य सिंहासन और तीसरा मंत्र सिंहासन बनाया गया है। चूंकि तुम मूर्घाभिषिक्त हो अतः तुम हाथी पर बैठो इसमें दोष नहीं है।

ऊपर के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह सब सिंहासन सृष्टि के आदि के हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से जगद्‌गुरु को पूर्व पक्ष द्वारा दिये हुए सामान्य परमहंस विरोधी वचनों का परिहार कर दिया है। यह अधिकार एकमात्र चार मठों के जगद्‌गुरुओं के लिए ही है। यह चार हैं—आचार्य भी चार ही हैं। इनके अतिरिक्त किसी संन्यासी को इनके चिन्हों को धारण करने का अधिकार नहीं है। अन्य का धारण करना अनुचित है। जैसे कोई साधारण व्यक्ति राज चिन्ह धारण नहीं कर सकता। किसी दोष विशेष से यदि किसी आचार्य को पदच्युत कर दिया गया है। उन्हें भी अधिकार नहीं है। महानुशासनम् में शंकराचार्य कहते हैं कि यदि मेरे स्थान पर अनधिकारी बैठ गया है तो तीनों जगद्‌गुरुओं को मिलकर उनका निग्रह करना चाहिए।

अस्मद् पीठे समारूढः परिव्राडुक्त लक्षणः।

अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः॥

ऊपर कहे हुए सद्‌गुणों से युक्त मेरे सिंहासन पर बैठा हुआ यति मेरा ही स्वरूप समझो—श्वेताश्वर उपनिषद का वचन है—

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।

तस्य हि कथिता अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिसकी इष्ट देव में जैसी भक्ति है। वैसे ही गुरुओं में भी होती है। गुरुओं के कहे हुए अर्थों का उसके हृदय में प्रकाश होता है। इन चार पीठों के अतिरिक्त पांचवां कोई

पीठ नहीं है, परन्तु वर्तमान काल में ७५ के लगभग संन्यासी अनेकों कल्पित पीठों में बैठे हुए अपने को शंकराचार्य कहते हैं। जैसे द्वापर में पौण्ड्रक नाम का राजा अपने को कृष्ण का अवतार कहता था। वह मिथ्या वासुदेव था। ऐसे ही इस समय मिथ्या शंकराचार्य बने बैठे हैं। इस पर विशेष विचार आगे कलियुग खण्ड में करेंगे। इन पीठों से सम्बन्धित अनेक उपपीठ भी हैं। जिन्हें आगे लिखा जाएगा। यह लेख पीठाधीश धर्म दर्पणः नामक लेख से, जिसको ब्रह्म श्रीमुदी गोण्ड वैंकटराम शास्त्री ने त्रिलिङ्ग महा विद्यापीठम् विजयाडा (आन्ध्र प्रदेश) से प्रकाशित किया है। उद्धृत किया गया है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का तेईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

परमहंस बाह्य देवता अर्चन मीमांसा

प्रश्न–क्या परम हंसों को बाह्यदेवता का पूजन करना चाहिए या नहीं। ऐसा प्रश्न प्राप्त होने पर–पूर्व पक्षी कहता है कि राज दण्डवत् देव पूजन कर सकते हैं।

किन्तु नारद परिवाजकोपनिषद् में आया है कि, **''न बाह्य देवतार्चनं कुर्यात् न यते र्देवपूजा''** यह सामान्य वचन देव पूजा का निषेध करता है। यति धर्म संग्रह में कहे हुए देव पूजन मानस हैं, बाह्य नहीं। इस पर उत्तर देते हैं कि ध्यान पद का पृथक् निर्देश होने से मानस पूजा सिद्ध नहीं होती। इस पर उत्तर देते हैं–अंधकार प्रकाश विरोधी होने के कारण जैसे एक साथ नहीं रह सकते। वैसे ही विद्या (ब्रह्मज्ञान) और अविद्या का कार्य कर्म एक साथ नहीं रह सकते। इसलिए सर्व साधारण परमहंस के लिए मूर्ति पूजा बाह्य पूजा नहीं है। इसीलिए धर्म सिन्धु, निर्णय सिन्धु आदि प्रामाणिक निबन्ध ग्रन्थों में यति धर्म से संबंधित यति धर्म संग्रह, यति धर्मसमुच्चय, यति धर्म प्रकाश, यति धर्म निर्णय आदि ग्रन्थों में बाह्य अर्चन का विधान है क्योंकि विश्वेश्वर सरस्वती जी ने यति धर्म संग्रह में सुरार्चन पद का अर्थशिव विष्णु की पूजा लिखा है। शौनक संहिता में भी कहा है कि यति ज्ञान की प्राप्ति के लिए शंकर जी की तथा मोक्ष के लिए विष्णु की पूजा करें। व्यास जी भी कहते हैं कि दूसरे के द्वारा लाये हुए पुष्पों से जगदीश्वर का पूजन

करें, किन्तु शूद्र के द्वारा लाये या खरीदे गये पुष्पों से न करे। यह वचन मानस पूजा में घटित नहीं होता। सामान्य परमहंसों की पूजा से सम्बन्धित शंका प्राप्त होने पर उत्तर देते हैं–

उत्तर–साधारण परमहंसों को बाह्य पूजन करना ठीक नहीं। प्रमाण, शिष्टाचार के अभाव तथा अयोग्यता होने के कारण। श्रुति ने कहा है, कुटी चक, बहूदक देव पूजा करें। हंस, परमहंस मानस पूजा करें इत्यादि। संन्यास सम्बन्धी अनेक उपनिषदों में निषेध होने से। "**पराशर माधवीय**" ग्रन्थ में चार प्रकार के संन्यास के निरूपण के अनन्तर कुटीचक तथा बहूदक के धर्मों में भिक्षा जप, स्नान, सन्ध्या, शौच देव पूजन कहा है, क्योंकि उनकी छः वस्तुओं को बताते हुए लिखा है–

त्रिदण्डं, कुण्डिकां कन्थां, भैक्ष्यभाजनमासनम्।
कौपीनाच्छादनं वासः षडेतानि परिग्रहेत्।

इन छः वस्तुओं का संग्रह कुटी चक के लिए कहा है। परमहंस के लिए नहीं। यति धर्म संग्रह, में यति के लिए केवल प्रणव जप का विधान आया है। जप के सम्बन्ध में लिखा है–

जपेद्द्वादश साहस्त्रं प्रणवस्य प्रयत्नतः।
सहस्त्रं श्रवणार्थी च योगाभ्यासी शतं जपेत्॥
निर्विकल्प-समाधिस्तु न जपेद् किञ्चिदद्वयात्।

साधारण संन्यासीप्रणव का बारह हजार जप प्रयत्नपूर्वक करे। कहीं कहीं कुछ ग्रन्थों में २१६ माला प्रतिदिन जपने का विधान है। श्रवण करने वाला एक हजार, योगाभ्यासी सौ, अद्वैत ब्रह्म में पूर्ण रूप में समाहित निर्विकल्प समाधि वाले के लिए जप करना आवश्यक नहीं है। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि अत्यन्त मलिन अंतःकरण वाला संन्यासी बुद्धि शुद्धि के लिए बारह हजार जप करे। श्रवणार्थी एक हजार निदिध्यासनशील सौ, नित्य पूर्ण शुद्ध ब्रह्म में समाहित परमहंस को त्रिपुटी से रहित होने के कारण जप की आवश्यकता नहीं।

शंका–उत्तमाधिकारी परमहंस संन्यासियों के लिए भले ही बाह्य पूजा न हो किन्तु मध्यम तथा मंद अधिकारियों के लिए तो संन्यास धर्म दर्पण में बारह हजार जप तथा शतरुद्रिय का पाठ बताया है। अतः बुद्धि शुद्धि के लिए बाह्य देवार्चन करना चाहिए।

उत्तर–बिना प्रमाण के आपका वचन मानने के योग्य नहीं। तब पूर्व पक्षी प्रमाण देता है।

सर्वंकमाखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।
कषायकर्मभिः पक्वे ततोज्ञानं प्रवर्तते।
निर्विशेषं परंब्रह्म साक्षात् कर्तुमुनीश्वरः।
येमन्दास्तेनु कम्प्यन्ते, सविशेष निरूपणैः।
(यावन्नपश्येदखिलं मदात्मकं तावन्मदाराधनतत्परोभवेत्।)

गीता में भगवान् श्री कृष्ण उत्तम यतियों के सम्बन्ध में कहते हैं। हे पार्थ! सम्पूर्ण कर्म ब्रह्म ज्ञान हो जाने पर समाप्त हो जाते हैं।

महाभारत मोक्ष धर्म पर्व में कहा है, निष्काम कर्मों द्वारा अन्तःकरण के दोष दूर होने पर ज्ञान होता है।

विवरण प्रमेय में कहते हैं कि निर्विशेष परमात्मा का मुनीश्वर साक्षात्कार करते हैं किन्तु जो मन्द बुद्धि हैं। वे सगुण साकार की कृपा से ज्ञान में प्रवृत्त होते हैं।

अध्यात्म रामायण राम गीता में कहा है। राम लक्ष्मण जी से कहते हैं जब तक सम्पूर्ण जगत् को मेरे स्वरूप में न देखें तब तक मेरी आराधना करें।

अतः मन्द बुद्धि परमहंस जब तक बुद्धि निर्मल न हो, तब तक मूर्ति पूजा कर सकता है।

सिद्धान्ती का उत्तर–आपका यह वचन ठीक नहीं, क्योंकि ऊपर के प्रमाणों से किस वर्ण आश्रम को लेकर कहा है यह सिद्ध नहीं होता। कर्म सम्बन्धी ऊपर दिये गये प्रकार के संन्यासियों के लिए नहीं है। कर्म का अधिकार देने वाले शिखासूत्र का परित्याग होने के कारण सामान्य संन्यासियों के लिए नहीं है, प्रत्युत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थी के लिए हैं। परमहंस संन्यासी के लिए नहीं,

क्योंकि गीता में यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् इत्यादि गीता का यह वचन ब्रह्मचारियों के लिए है परमहंसों के लिए नहीं। कुटी चक, बहूदक के लिए देवार्चन है। हंस परमहंस के लिए मानस पूजन है। इस व्यवस्था से विरोध होता है। अतः आपके द्वारा दिये हुए गीतादि के प्रमाण वचनों से साधारण परमहंस की देवपूजा सिद्ध नहीं होती।

शंका–तब तो कुटीचक बहूदक का मंत्र जप में अधिकार सिद्ध होता है। हंस परमहंस का ध्यान में अधिकार है। नारद परिव्राजकोपनिषद् से सिद्ध है। इस प्रमाण से परमहंस का प्रणव जप में भी अधिकार नहीं, ऐसी कहीं व्यवस्था न होने से। फिर परमहंस के लिए बुद्धि शुद्धि के लिए बारह हजार प्रणव का विधान क्यों? यदि बुद्धि शुद्धि के लिए प्रणव जप का अधिकार मानते हो तो गीतादि के वचन से देव पूजा क्यों स्वीकार नहीं करते हो?

समाधान–आप अति नासमझ हो। कुचीटक बहूदक का मंत्रजप में अधिकार है। इत्यादि वचन से परमहंस का सामान्य मंत्र जप में निषेध है। आध्यात्मिक मंत्र जप में नहीं, क्योंकि–

अथाध्यात्म मंत्रान् जपेत् भाव यह है कि अशुद्ध चित्त वाला व्यक्ति यदि देखी संन्यास ले लेता है, तो उनके लिये उपरोक्त संख्या में जप का विधान आया है। चित्त शुद्ध हो जाने पर कर्म की आवश्यकता नहीं। उस परमहंस का अन्यान्य मंत्रों में अधिकार नहीं रहता, क्योंकि जानकर भी अनजान में कर्म त्याग सहित प्रैष मंत्र से ही संन्यास लेता है; तो वह चित्त की शुद्धि के लिए प्रणव तथा महावाक्यों का जप करे, किन्तु यह देवार्चन नहीं। अशुद्ध चित्त यतियों के लिए उपनिषद् शतरुद्री, प्रणव,जप चित्त शुद्धि के लिए स्वाध्याय कहा है। यही बात वीर मित्रोदय आदि ग्रन्थों में कही गई है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में मिताक्षराटीका में भी परिव्राजक शब्द के सम्बन्ध में कहा है–

परिव्रज्य–परिपूर्वोब्रजति त्यागे वर्तते, अतश्च अहं ममाभिमानं तत्कृतं च लौकिकं कर्मनिचयं वैदिकं च नित्यकाम्यादिकं सत्यजेत्।

परि = पूर्व संन्यास आश्रम से पूर्ववर्ती कर्मों को परि कहा है। व्रजति शब्द त्याग अर्थ में आया है। अतः अहंता ममता अभिमान द्वारा किये गये कर्मों का अभिमान सहित लौकिक तथा वैदिक नित्य काम्य कर्मों का त्याग करने वाला परिव्राजक है।

पूर्व पक्षी ने धर्म सिन्धु तथा निर्णय सिन्धु आदि ग्रन्थों को लेकर परमहंसों के लिए देवपूजा कही है। वह भी प्रमाण की परीक्षा से अनभिज्ञ होने के कारण अमूलक है। धर्मसिन्धु के तीसरे परिच्छेद के उत्तरार्द्ध में कुटीचक आदि चारों प्रकार के संन्यासियों के लक्षण धर्म संस्कार आदि को कहकर उपसंहार करते समय **''अथ प्रसङ्गाद्यतिधर्मः''** अब प्रसंग वश यति धर्म को कहेंगे। यह शीर्षक देकर चारों प्रकार के संन्यासियों का संक्षेप में वर्णन किया है। वहीं पर यति के देवार्चन के सम्बन्ध में, सूर्योपस्थान, त्रिकाल संध्या, विष्णु आदि का पूजन दिया गया है, उसे उक्त ग्रन्थ में देखें। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है।

निर्णय सिन्धु में भी ऐसा ही प्रकरण आया है। **अथ यति धर्म**–यह शीर्षक देकर धर्मसिन्धु के समान ही वर्णन किया है। इन सबका विस्तार से निरूपण आगे किया जाएगा। प्रमाण परीक्षा से परमहंस द्वारा देव पूजन सिद्ध नहीं होता। **शिष्टाचार परीक्षा**– शंका यदि आप सामान्य परमहंसों के बाह्य देवार्चन को अप्रामाणिक समझते हो, तो शंकर विजय ग्रन्थों में पद्मपाद से शंकराचार्य जी कहते हैं। तुम्हारी देव मूर्तियों की चोरी चोर कर ले जाएंगे। देवान् शब्द से अनेक देवताओं की मूर्तियां उनके पास सिद्ध होती हैं। सिद्धान्ती उत्तर देते हैं–पत्थर, लोहे आदि की मूर्तियों का पूजन मुमुक्षु को नहीं करना चाहिए,क्योंकि यह पुनर्जन्म का हेतु है, **''देहो देवालयः प्रोक्तः देही देव निरंजनः। त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत्।''** शरीर देव मन्दिर है। निरंजन परमात्मा देही जीव है। अतः यति अज्ञान निर्माल्य का त्याग करके मैं वही ब्रह्म हूं। इस भावना से मानस पूजा करे। यह बात मैत्रायणी उपनिषद् से परमहंसोपनिषद् में भी आई है। इनसे संन्यासियों का मूर्ति पूजन सिद्ध नहीं होता। भगवान् शंकराचार्य तथा पद्मापादाचार्य आदि शिष्य पीठाधिपति थे। सामान्य परमहंसों का नियम इन विशेषों पर लागू नहीं होता। ऐसा ही बाह्य पूजन, दण्ड, कमण्डलु, कौपीन, सहित त्यागने वाले दिगम्बर

विद्वत्, परमहंसों का भी सिद्ध नहीं होता। उनके लिए देव पूजन, देव दर्शन, उत्सव दर्शन, तीर्थ यात्रा आदि कोई साधक सिद्ध नहीं होता। ऐसे संन्यासियों के यदि माता-पिता जीवित हों, उनकी मृत्यु का समाचार सुने, तो तत्काल दण्ड सहित सचैल स्नान से शुद्ध हो जाते हैं।

यदि कहो कि भगवत्पाद शंकर ने तो यति होते हुए भी सफेद वस्त्र शिखा यज्ञोपवीत सहितमाता का संस्कार किया। उनके आचार से संन्यासी अपनी माता का संस्कार कर सकता है। यह आचार सब के लिए नहीं है। ये माता को वचन दे चुके थे। अपने हाथ से मैं तुम्हारा अन्तिम संस्कार करूंगा। तेजस्वियों को दोष नहीं है इत्यादि डिण्डिम टीकाकार ने भी कहा है। अतः शिष्टाचार की परीक्षा से भी परमहंस का बाह्य पूजन सिद्ध नहीं होता।

योग्यता परीक्षा—अब क्रम प्राप्त योग्यता परीक्षा द्वारा विचार करने पर भी कर्म के बाह्य अंग शिखा यज्ञोपवीत के त्यागी यतियों का प्रणव के अतिरिक्त गायत्री आदि मंत्रों में अधिकार सिद्ध नहीं होता, क्योंकि लक्ष्य अलक्ष्य से रहित सर्वोपरत सच्चिदानन्द धन परिपूर्ण आनन्द बोध स्वरूप 'मैं वही ब्रह्म हूं' इसका निरन्तर अखण्ड तैलधारावत् ब्रह्मप्रणव का अनुसन्धान करने से यति कृतार्थ हो जाता है। उसे ही परमहंस परिव्राट् कहते हैं। इसके विपरीत कर्म काण्ड के प्रपंच में पड़ा यति उसी प्रकार से ब्रह्मभाव को प्राप्त नहीं कर सकता, जैसे पश्चिम समुद्र में जाने वाला यात्री व पूर्वी समुद्र का यात्री दोनों एक ही मार्ग पर नहीं चल सकते। भाष्यकार के इस वचन के अनुसार भी निरन्तर अन्तर्मुख परमहंस बहिर्मुख यति के समान देव पूजा में कैसे प्रवृत्त हो सकता है। ऐसे संन्यासियों के लिए ही घी को रक्त के समान, एक के अन्न को मांस के समान, स्वर्ण को काल कूट के समान—उनके लिए घी मूत्र के समान, मधु मदिरा के समान, तेल को शूकर मूत्र के समान, दाल को लहसुन के समान, उर्द तथा पुये को गोमांस के समास त्याज्य कहा है—

घृतं च मूत्र सदृशं मधुस्याद् सुरया समम् तैलं शूकर मूत्रंस्यात्, सूपं लशुन सम्मितम्॥

माषा पूपादि गोमांस, क्षारं मूत्र समं भवेत्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन।

सुजीर्णोऽपि सुजीर्णासु विद्वान् स्त्रीषु न विश्वसेत्।

इसलिए प्रयत्नपूर्वक घी आदि का त्याग करे तथा वृद्ध से वृद्ध स्त्री पर भी विद्वान् विश्वास न करे। ऊपर कहे प्रतिषिद्ध वचन साधक संन्यासियों के लिए हैं। सिद्धों के लिए नहीं। विशेष करके युवा संन्यासियों के लिए। जैसे गर्मी में मध्याह्नकालीन धूप प्रचण्ड होती है। प्रातः तथा सायं कालीन नहीं। अतः युवक साधक संन्यासियों को सावधान करने के लिए है। सिद्धों, वृद्धों के लिए नहीं। यदि किसी ब्रह्मवेत्ता यति का वेद शास्त्र के विरुद्ध प्रारब्धवशात् निषिद्ध आचरण हो, तो वह माननीय नहीं है। अतः साधक संन्यासियों को यति धर्म का अवश्य पालन करना चाहिए।

यदि कहो कि गौण मुख्य वृत्तिभेद से लिंग अलिंग संन्यासियों की कुटीचक आदिकों के समान प्रवृत्ति होती है, तो इनके सम्बन्ध में भी धर्म सिन्धु, निर्णय सिन्धु, पराशरमाधवीय मिताक्षरा, यति धर्म संग्रह, यति धर्म निर्णय, अपरार्क, वीर मित्रोदय आदि सुप्रसिद्ध धर्म निबन्धों की व्यवस्था के अनुसार इनका अभिप्राय समझना चाहिए। अतः साधारण परमहंसो को बाह्य देव पूजन, मंत्रों का अनुष्ठान, यज्ञ यागादि नहीं करना करवाना चाहिए। किन्तु उन्हें यति सन्ध्या त्रिकाल करना, प्रणव जप, प्रणव गायत्री जप, प्रणव कल्प का पाठ करना चाहिए। यदि वे नित्य पूरे प्रणव कल्प का पाठ न कर सकें, तो त्रिकाल सन्ध्या में प्रणव षोडशनाम, प्रणव पंजर, कवच, प्रणव मालिका मंत्र स्तोत्र ब्रह्मानुचिन्तनम् का पाठ अवश्य करें।

संन्यासियों की मुख्य सन्ध्या शंकराचार्य द्वारा रचित पंचीकरण से प्राप्त समाधि है– **परमानन्द स्वरूप मद्वयंब्रह्मैवाऽस्मीति चिन्तन मेव सन्ध्योपासनम्**–संन्यासियों की मुख्य सन्ध्या अद्वितीय परमानन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूं। इस प्रकार चिन्तन का चिन्तन ही मुख्य सन्ध्योपासना है। गौणसन्ध्या भी इसी सन्ध्योपासना के पहले और बाद में दी गई है। कहा भी है–

विनोदकं तु या सन्ध्या, कायक्लेशविवर्जिता।

सन्धिनी सर्व भूतानां सा सन्ध्याह्येक दण्डिनाम्॥

बिना जल के तथा शारीरिक कष्ट से रहित, सर्व प्राणियों की सन्धि रूप एक दण्डियों की मुख्य सन्ध्या है।

अतः बाह्य शिखा यज्ञोपवीत से युक्त कुटीचक आदि को सन्ध्या, देव पूजन, गायत्री जप सहित कही है, परन्तु शिखा यज्ञोपवीत रहित गायत्री को प्रणव में प्रवेश करने वाले एक दण्डी परमहंसों के लिए स्नान, सन्ध्या, देवार्चन आदि का विधान नहीं है। इन बातों का वर्णन विस्तार सहित आगे करेंगे। **(श्री शृंगेरी पीठाश्रित ब्रह्मविद्यालंकार ब्रह्म श्री मुदी गौडवैकटराम शास्त्री विरचिता परमहंस बाह्य देवतार्चन मीमांसा समाप्त।)**

॥ इति तृतीय परिच्छेद का तेईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का चौबीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

॥ अथ प्रणव प्रकरणम् ॥

नारद जी ने ब्रह्मा जी से पूछा, संसार तारक मंत्र मेरे प्रति कहिये–

उत्तर में ब्रह्मा जी ने कहा–ॐ ब्रह्म व्यष्टि समष्टि भेद से दो प्रकार का है। व्यष्टि समष्टि किसे कहते हैं–संहार[१] प्रणव, सृष्टि[२] प्रणव अन्तःप्रणव, बहिः[५] प्रणव। उभयांत्मक प्रणव यह प्रणव तीन प्रकार का है। व्यावहारिक[४] प्रणव, अन्तः प्रणव है। आर्ष[६] प्रणव, बहिः प्रणव है। विराट्[७] प्रणव उभयात्मक है। ब्रह्म[३] प्रणव अर्द्धमात्रा ८ मात्रा वाला संहार प्रणव है। ॐ यह ब्रह्म है। ॐ इन एक अक्षर को अन्तःप्रणव जानो, उसके आठ भेद हैं, अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, नाद, बिन्दु, कला, शक्ति। इस आठ अवयवों में प्रथम के चार (अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा) में से अकार के दस हजार अवयव हैं। उकार के एक हजार अंग हैं। मकार सौ अवयवों से युक्त हैं। अर्द्धमात्रा प्रणव के अनन्त अवयव हैं।

सगुण विराट, प्रणव, संहार निर्गुण प्रणव, उभयात्मक उत्पत्ति प्रणव है। प्लुत विराट् प्लुत–संहार इसके दो भेद हैं। यह विराट् प्रणव सोलह मात्रा से युक्त है तथा छत्तीस तत्त्वों से परे है। छत्तीस तत्त्व ये हैं–पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण, पांच विषय शब्दादि, चार अन्तःकरण, पंच महाभूत, पंचतन्मात्राएं, महातत्त्व, प्रकृति।

सोलह मात्राएं १. अकार, २. उकार, ३. मकार, ४. अर्द्धमात्रा, ५. नाद, ६. बिन्दु, ७. कला, ८. कलातीता, ९. शान्ति, १०. शान्त्यतीता, ११. उन्मनी, १२. मनोन्मनी, १३. पुरी, १४. मध्यमा, १५. पश्यन्ती, १६. षोडशी।

यह चौंसठ मात्राओं से युक्त है। प्रकृति, पुरुष दो भेदों सहित यह एक सौ अट्‌ठाईस मात्राओं वाला है। सगुण निर्गुणत्व की उपाधि पाकर अनेक हैं तथा त्याग कर निर्गुण के साथ ऐक्य भाव को प्राप्त करता है। इसे ब्रह्म प्रणव कहते हैं। यह सर्वाधार, स्वयं प्रकाश सर्वेश्वर, विभु, सर्व देवमय, सम्पूर्ण जगत् का अधिष्ठान इसमें छिपा है। यह सर्व अक्षर मय, सर्व काल, सर्व आगम, शिव स्वरूप है। यह सर्वोत्तम, सम्पूर्ण उपनिषदों की खोज का विषय अमृत अजर अमर है। इसका अनुभव करना चाहिए। स्थूल शरीर से स्थूल भोग, सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म भोग भोगता है। सुषुप्तिका यही आनन्द लेता है। यह वर्णन माण्डूक्य उपनिषद् के आधार पर है। समष्टि व्यष्टि भेद से विश्व तैजस, प्राज्ञ, विराट् हिरण्य गर्भ ईश्वर इसमें भ्रान्तिकल्पित्त, तीन शरीर, तीन मात्राएं, तीन अधिष्ठातृ देवताओं के वर्णन के अनन्तर निरुपाधिक ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं। कि वह ब्रह्म–हे मुने! न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है, अर्थात् न विश्व है न तैजस है, न सुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञ है, किन्तु **वह नानतः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं, न प्रज्ञानं ना प्रज्ञम॥ अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षण मचिन्ता मव्य पदेश्यमेकात्म्य प्रत्यय सारं प्रपञ्चोपशमं, शान्तं, शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥ माण्डूक्योपनिषद् मंत्र ७**

वह नान्तप्रज्ञ सुषुप्ति है। न वहिः प्रज्ञ जाग्रत् है। न उभयप्रज्ञः स्वप्न है। वह न प्रज्ञान धन है। न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है। परन्तु रूप रहित होने से अदृष्ट, व्यावहारातीत होने से अव्यवहार्य, दसों इन्द्रियों तथा अन्तःकरण चतुष्टय की ग्रहण शक्ति से परे होने से अग्राह्य, पहचान रहित होने के कारण अलक्षण, चित्त के चिंतन से परे होने के कारण अचिन्त्य, वाणी का विषय न होने से अव्यपदेश्य, एकमात्र आत्म प्रतीति का सार, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति से परे होने के कारण स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों से परे, प्रपञ्चोपशम, शान्त, कल्याणकारी, तीन भेदों से रहित अद्वैत, चौथा तुरीय माना जाता है। वह आत्मा

है। उसे अनुभव द्वारा जानना चाहिए। **तद्‌लक्षणमग्राह्यं यदव्यवहार्थमचित्य-मव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्यय सारं, प्रपंचो पशमं, शिवम्, शान्तमद्वैतं, चतुर्थं मन्यन्ते। स ब्रह्म प्रणवः स विज्ञेयो, नापरस्तुरीयः सर्वत्र भानुवन् मुमुक्षुणामाधारः स्वयं ज्योतिः ब्रह्माकाशः सर्वदा विराजते। परंब्रह्म-त्वादित्युपनिषद्। नारद परिव्राजकोपनिषद् मंत्र २०।** यह ब्रह्म अलक्ष्य है। मन बुद्धि वाणी से परे होने के कारण अग्राह्य है। जाग्रत आदि व्यवहार का अविषय होने के कारण अव्यवहार्य है। चित्त कसी चिन्तन शक्ति से परे होने के कारण अचिन्त्य है। उपदेश से परे होने के कारण अव्यपदेश्य है। एक मात्र आत्मा की प्रतीति का सार है। आत्म स्वरूप है। जगत् से रहित कल्याणकारी, अद्वैत, तुरीय जिसे कहते हैं। वह ब्रह्म प्रणव है। उसका अनुभव करना चाहिए। उसे परे कोई तुरीय नहीं है। वह सूर्य के समान मुमुक्षुओं का अधिष्ठान है। वह स्वयं प्रकाश आकाश है। क्योंकि श्रुति ने खंब्रह्म कहा है। आकाश को ब्रह्मरूप से कहा है। **''आ समन्तात् काशते प्रकाशतेइत्याकाशः''** दशों दिशाओं में व्याप्त होकर सबसो ज्ञान रूपी चेतन प्रकाश देने के कारण वह आकाश है। व्यास जी ने भी ब्रह्मसूत्र में **''आकाशंतल्लिंगात्''** आकाश को ब्रह्म की पहचान बताया है। वह परब्रह्म सर्वदा बिराजमान है। यह ब्रह्म ज्ञान से युक्त उपनिषद् है। उपनिषद् में उप, नि उपसर्ग पूर्वकषद्लृ धातु है। जिसका प्रयोग विशरण, गति, अवसादन अर्थ में होता है। इस धातु से क्विप् प्रत्यय होकर उपनिषद् शब्द बनता है। जिसका अर्थ है उप = समीप, नि = निश्चय ही, षद् = जो जीव की जड़चेतन की ग्रन्थि को शिथिल करके परमात्मा की ओर ले जाने वाली विद्या उपनिषद् है। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य इसकी व्याख्या लिखते हैं, **''य इमां ब्रह्म विद्यामुपयमन्ति श्रद्धा भक्ति पुरस्सरं, तेषां गर्भवास, जन्म, मृत्यु आदि अनर्थपूगंच, निशातयति संसार कारण भूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति इत्युपनिषद्''** जो इस ब्रह्म विद्या की श्रद्धा भक्ति पूर्वक शरण में जाते हैं। उनके माता-पिता के गर्भवास, जन्म, मृत्यु आदि अनर्थ समूहों को नाश करती हैं। संसार की कारण भूता अविद्या को शिथिल करती है तथा जीव को ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। उस ब्रह्म विद्या को उपनिषद् कहते हैं।

१. संहार प्रणव–

टिप्पणी– **१. त्रिमात्रा कलनोपेत संहारप्रणववासनाः। ब्रह्म विष्णवीश्वराः विश्व सर्गस्थ्यिन्तहेतवः। भवेयुर्यत एवायंसंहार प्रणवोभवेत्।**

अर्थ–अकार, उकार, मकार तीन मात्राओं से युक्त प्रणव संहार प्रणव है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जो संसार की सृष्टि, स्थिति, संहार के कारण हैं। इनसे युक्त प्रणव संहार प्रणव है। इस प्रकार तीन मात्राओं और तीन देवताओं वाला प्रणव संहार प्रणव है।

२. सृष्टि प्रणव– **२. एक मात्रात्मकंतारमुपादाय चतुर्मुखः। यतः ससर्ज सकलं-सृष्टि तारोह्यते भवेत्॥**

अर्थ–अकार, उकार तथा मकार को अंग बनाकर, अकार मात्रा की प्रधानता से बोला जाने वाला प्रणव सृष्टि प्रणव है। इसी अकार प्रणव को लेकर ही ब्रह्मा जी ने सृष्टि की है।

३. ब्रह्म प्रणव– ३. उपर्युक्त संहार तथा सृष्टि प्रणव के अतिरिक्त अन्तर्वाह्य उभय स्वरूप प्रणव ब्रह्म प्रणव कहलाता है। यह तीन प्रकार का है। इसमें संहार प्रणव की तीन मात्राएं हैं। सृष्टि प्रणव की एकमात्र तथा अन्तःप्रणव की आठ मात्राएं हैं तथा बाह्य प्रणव की चार मात्राएंइस प्रकार सोलह मात्राओं से युक्त प्रणव ब्रह्म कहा जाता है।

टिप्पणी– वास्तव में यह एक होने पर भी दृष्टि भेद से अनेक हो जाता है।

४. व्यावहारिक प्रणव– **४. एक मात्रात्मक स्तारः पंचाशद्वर्णभूषितः। वैखरी कलनाहेतु र्व्यावहारिक ईरितः॥ दुर्गादि शक्ति तृतीयं तथेच्छादि त्रिशक्तिकम् वस्वादित्यरुद्रजातं नव ब्रह्मादि दैवतम्॥ तथा पंच ब्रह्म दैवं तद्वाच्यार्थ इतीरितः॥**

अर्थ–एक ही अकार प्रधान मात्रा वाला प्रणव जिसके गर्भ में वर्णमाला के पचास वर्ण छिपे हुए हैं। अकार की प्रधानता से उच्चरितहोने वाला प्रणव व्यवहारिक प्रणव है क्योंकि अकारो वै सर्वावाक् सैषस्पर्श उष्मभिर्विभज्यमानावहविनाना रूपाभवति अकार प्रधान सम्पूर्ण वर्णों

है। वह क से म तक स्पर्शवणों के अन्त में तथा ऊष्मा (शषसह) आदि के अंत में अकार का उच्चारण होता है, क्योंकि "**नह्यचं बिनाव्याञ्जन-स्योच्चारणं सम्भवति**" अच् (स्वर) के बिना व्यंजन वर्णों का उच्चारण नहीं हो सकता। अर्थात् प्रत्येक अक्षर में अकार स्वर विद्यमान है। वैखरी वाणी का कारण होने से व्यवहारिक कहा गया है। यह दुर्गादि तीन शक्तियों अर्थात् इच्छा क्रिया एवं ज्ञान, आठ, वसु, बारह अदित्य, ग्यारह रुद्र अंग हैं। ब्रह्मा तथा पांच ब्रह्मा जिसके अधिष्ठातृ देवता है। यह व्यावहारिक प्रणव है।

५. बहिः प्रणव- **व्यष्टेः समष्टि बाह्यत्वातूला तुर्याशि योगतः। बाह्य प्रणव आम्नातो विश्वाद्याः वाच्यतां गताः।**

विराट प्रणव समष्टि रूप है इससे बाह्य व्यष्टि प्रणव है। अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा उसकी चार मात्रा हैं। उसे ही बाह्य प्रणव कहते हैं। व्यष्टि में विश्व और समष्टि में वैश्वानर इसके देवता हैं।

६. आर्ष प्रणव- **६. सप्त मात्रात्मक : पंच ब्रह्मान्तर्याम्याधिष्ठितः। ऋषि मण्डल सेव्यत्वादार्ष प्रणव उच्यते॥**

अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, कला, कलातीत रूप से सात मात्रा वाला प्रणव ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, सदाशिव तथा परमशिव इन पांच अन्तर्यामियों से अधिष्ठित सप्तर्षिमण्डल से सेवित प्रणव आर्षप्रणव कहा जाता है।

७. विराट ाणव- **७. चतुःषष्टि मात्रा युग् विराद् प्रणव उच्च्यते विराडादिर्भवेद् वाच्यं तल्लक्ष्यं परमाक्षरम्॥**

इसको स्थिति प्रणव भी कहते हैं। अकार, उकार दोनों से युक्त ब्रह्मा विष्णु इसके अधिष्ठाता हैं। समष्टि अकारदि चौसठ मात्रा वाला प्रणव विराट प्रणव है।

टिपणी- विराट्! हिरण्यगर्भ और ईश्वर तथा अर्न्यामी चार इसके वाच्यार्थ हैं तथा निरूपाधिक शुद्ध ब्रह्म इसका लक्ष्यार्थ है।

अर्द्रमात्रा प्रणव- स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा साक्षी इन ४ मात्राओं से युक्त अर्द्धमात्रा प्रणव है। ओत् अनुज्ञात्, अनुज्ञा और अविकल्प चार इसके अधिष्ठाता है।

शंका–शास्त्रों में माता के गर्भवास की बात तो आई है। किन्तु पिता के गर्भवास का उल्लेख कहीं नहीं है?

समाधान–श्री स्वामी शंकरानन्द महाराज के आत्म पुराण ग्रन्थ के पहले अध्याय में ऐतरेय ऋग्वेदीय उपनिषद् की व्याख्या में उन्होंने, एक वर्ष तक जीव माता के गर्भ वास से कई गुणा अधिक दुख पिता के गर्भवास में रहकर भोगता है। आठवां उपदेश पूर्ण हुआ। इसका विस्तार से उल्लेख किया है। (आठवां उपदेश पूर्ण हुआ।)

॥ इति तृतीय परिच्छेद का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद में पचीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ओमित्येकारक्षर मन्तप्रणवं विद्धि स चाष्टधा भिद्यते।

ओमित्येवेदं सर्वम् व्याख्या अव्यक्तबोधानुसारि–

ॐ यह एक अक्षर वाला अन्त प्रणव है। इसके आठ भेद हैं। ॐ ही सर्वरूप है। अव्यक्त बोध नामक ग्रन्थ विक्रमी संवत् १९५६ में पुण्य पत्तन में गोंद लेकर जगद् हितेषु नामक प्रेस में प्रकाशित हुआ था। इससे कई वर्ष पूर्व गुरु गंगाधरनाथ प्रसाद की प्रेरणा से कृष्णसूनु रामराव ने मराठी भाषा में लिखा था। इसका संस्कृत रूपान्तर सखाराम बाल कृष्ण कर्मलंकर ने किया था। पतञ्जलि जी ने योगदर्शन में **'तस्य वाचकः प्रणवः'** उस ब्रह्म का नाम ॐ कहा है। वेदान्त ने अस्ति, भाति, प्रिय तीन को सत्य कहा है। नाम रूप मिथ्या है। मायामय है। इन पांच में से अस्तिभाति, प्रिय अर्थात् सत्, चित् आनन्द। प्रत्येक वस्तु में तीन ब्रह्म के अंश सत्य हैं। नाम रूप माया का अंश है, मिथ्या है। अब प्रश्न होता है कि पहले नाम था या रूप था, दोनों ही अन्योन्याश्रित होने के कारण अनिर्वचनीय है, क्योंकि एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। फिर भी विचार करने पर पहले नाम फिर रूप है, यही क्रम देखा जाता है। जैसे कोई कुम्हार मिट्टी से घड़ा बना रहा हो। उससे कोई पूछे कि तुम क्या करते हो, यही उत्तर देता है कि मैं घड़ा बनाता हूं। कुम्हार के घड़ा बनाने से पहला उसका नाम था। यद्यपि घड़ा बनने से पूर्व कुम्हार के मन में घड़े का रूप तथा नाम दोनों हैं, किन्तु कुम्हार के मन में

घड़े का रूप अप्रकट है बाद में प्रकट होता है। क्रिया से पहले नाम था तदनन्तर रूप यही क्रम है। किसी भी वस्तु का नाम अक्षरों के बिना नहीं हो सकता। अक्षर स्वरात्मक हैं तथा वर्णात्मक हैं। स्वर की सहायता बिना व्यंजन वर्ण का उच्चारण नहीं हो सकता। स्वरों को अच् भी कहते हैं। स्वर सोलह हैं। अ, इ, उऋ लृ इत्यादि। क, ख, ग इत्यादि व्यंजन हैं। स्वरों का उच्चारण करते समय कण्ठ आदि से निकली ध्वनि को क्रिया आदि की आवश्यकता नहीं है। वर्णों (व्यंजनों) आदि के उच्चारण में दांत, ओठ, कण्ठ आदि स्थानों की विकृति की आवश्यकता है तथा स्वरों की सहायता के बिना इनका पृथक् उच्चारण नहीं हो सकता। वर्णों के उच्चारण के अन्त में स्वर रहते हैं। जैसे क, ख, ग आदि उच्चारण में अ शब्द आता है। इसी को अकार कहते हैं। गद्य आदि के वाक्यों के उच्चारण में आदि अन्त में दिखाई देता है। इन्हें भाव के सूचक होने के कारण सूत्र कहते हैं। इन्हें रेखा भी कहते हैं। भाव यह है कि पहले बिन्दु फिर रेखा इन्हीं रेखाओं का टेढ़ा-मेढ़ा रूप अक्षर है। अक्षरों से शब्द तथा शब्दों से वाक्य बनते हैं। बिन्दु दो प्रकार का है। निराकार बिन्दु, साकार बिन्दु। कोरा कागज निराकार बिन्दु है और उस पर लेखनी से बनाया हुआ बिन्दु साकार बिन्दु है। अनेकों साकार बिन्दुओं का मेल रेखा है, अनेक रेखाओं का मेल वर्ण हैं। इसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व निराकार निर्गुण निरुपाधिक ब्रह्म, बिन्दु स्थानीय हैं। उसका सगुण साकार रूप साकार बिन्दु है। उस साकार बिन्दु ब्रह्म से रेखा स्थानीय माया होती है। उस माया से अक्षर स्थानीय जगत् उत्पन्न होता है। शब्द या अक्षर से बोध रूप कार्य उत्पन्न होता है। बिना शब्दों के हम अपने भावों को दूसरे पर व्यक्त नहीं कर सकते। बोले जाने वाले शब्दों को वही जान सकता है, जो उन्हें सुन रहा हो, किन्तु अनुपस्थित व्यक्ति कैसे जान सकता है। इसके दो उपाय हैं पहला उपस्थित व्यक्ति की यदि बुद्धि तीव्र है तो उन्हीं शब्दों में दूसरे को बता सकता है अथवा वक्ता के उन्हीं शब्दों को लिपि में लिखकर बता सकता है। उन लिखे जाने वाले शब्दों की आकृतियां बिन्दु रूप ही हैं। बिन्दु अपने स्थान पर ही रहकर रेखा रूप में प्रकट होता है। रेखा अक्षर रूप में प्रकट होती है। व्यक्त या अव्यक्त रूप में बिन्दु के दो रूप हैं। एक वाणी द्वारा, दूसरा लेखन द्वारा यह शब्द भी स्वरात्मक और ध्वन्यात्मक होते हैं। जड़ पदार्थों से निकलने वाला शब्द ध्वनि रूप है। कई प्राणियों से अस्पष्ट व्यंजन जो रूप

में व्यंजन प्रकट होता है। मनुष्यों में वर्ण स्वर तथा नाद तीन प्रकार से ध्वनि उत्पन्न होती है। हाथ से ताली पीटने से स्वर होता है वह नाद है। मनुष्यों के अतिरिक्त पशु, पक्षी, अन्य प्राणियों में स्वरात्मक शब्द निकलते हैं, किन्तु तोता, सारस, कोयल आदि से वर्णात्मक भी निकलते हैं। कांसी आदि के पदार्थों घंटा आदि से नादात्मक स्वर ही निकलता है। वास्तव में ध्वनि में शब्द अक्षर तथा स्वर अनुस्यूत हैं। कण्ठ में कफ आदि आ जाने पर जो विकृत स्वर उत्पन्न होता है। वह स्वर हैं उच्चारण से पूर्व शब्द अव्यक्त है। बीच में व्यक्त होता है। बाद में फिर अव्यक्त हो जाता है।

प्रणव–गीता में **''अक्षराणामकारोऽस्मि''** अक्षरों में मैं अकार हूं। भगवान् श्री कृष्ण ने अकार अक्षरों में सर्वव्यापी है, कहा है। इसलिए उन्होंने अक्षरों में अकार को अपनी विभूति बताया है। लिखा जाने वाला प्रणव ॐ यह शुद्ध रूप है। 'ओं, ओम्' यह सर्व रूप होने में कार्य करने में अक्षम तथा अपूर्ण है। योगीजन इसी अव्यक्त रूप ब्रह्म की उपासना करते हैं। यह कैसे जाना जाए कि अक्षर सगुण है जो पीछे बता चुके हैं। सगुण नाम से सगुण ब्रह्म का बोध होता है। इस ॐ में मकार सगुण है, अकार का मूल अव्यक्त, बिन्दु स्वरूप है। इस बिन्दु से ही रेखा स्थानीय माया हुई है। यह प्रणव परमात्मा का वाच्य, वाचक, व्यक्त, अव्यक्त दोनों स्वरूपों का बोधक स्वर वर्णात्मक है। यह ॐ शब्द की व्याख्या की। अब ॐ अक्षर ब्रह्म की व्याख्या करते हैं। **ॐ इतीदम्** ॐ यह इस आकार में ही लिखा जाता है। ओं यह आकृति बनाने में हानि क्या है? इस शंका का उत्तर देते हुए कहते हैं। ओं यह वर्ण का आकार वर्ण माला में नहीं आया है किन्तु ॐ यह वर्ण माला में आत्म-स्वरूप का बोधक निर्गुण ब्रह्म का चिन्ह हैं। इसी ॐ को सर्वप्रथम समाधि में स्थित ऋषियों ने भगवान् के मुंह से उच्चरित होते हुए सुना और स्वयं उच्चारण किया।

फिर लिपि रूप लिखा। **ॐ कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौब्रह्मणः पुरा। कण्ठंभित्वाविनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ॥** सृष्टि के आरम्भ में ॐ और अथ यह दोनों शब्द ब्रह्मा के कण्ठ को भेदन करके निकले। इसलिए यह दोनों शब्द मांगलिक हैं।

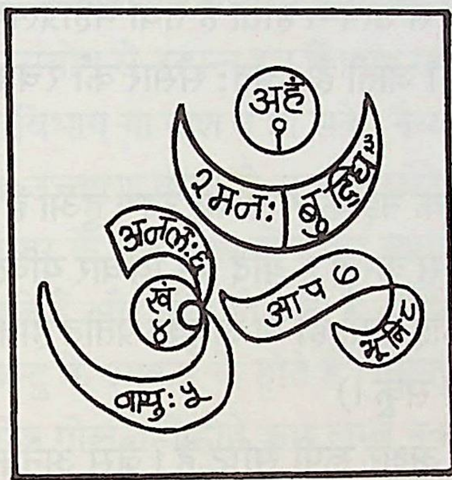
मुख से उच्चारण किया ॐ हाथ के व्यापार से ॐ इस रूप को प्राप्त होता है जहां से शब्द उत्पन्न हुआ। वहीं विलीन हो जाता है। यह सिद्धान्त है "**ॐ मित्ये काक्षरमिदं सर्वम्**" माण्डूक्योपनिषद् में इसकी विस्तार से व्याख्या हुई है। ॐ का यह सर्वोपयोगी स्वरूप अब तक अव्यक्त ही था। इसकी सर्वरूपता जैसी कि मेरे समझ में आई है। पाठकों के आगे मैं अपने अनुभव की व्याख्या करता हूं।

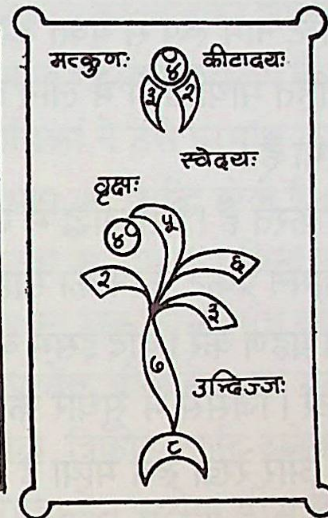
ॐ का स्वरूप चित्र पट में आगे दिखाया है। ॐ के इसी रूप से सभी वस्तुओं की यथार्थ रूप से उत्पत्ति हुई है। पाठकों को भी यह स्वीकार करना चाहिए। चित्र पट में दिये अक्षरों की संख्या १ से ८ तक है। दिखा करके वर्णन किया है। इन्हीं संख्याओं से चार प्रकार के जीवों की आकृतियां अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़, पौधे, नदी, पर्वत आदि इसी से बनती हैं। ॐ के आठ अवयवों के आकारों को आगे दी संख्याओं के अनुसार जोड़ने से उस जीव, जन्तु, लता, पेड़ आदि का रूप बन जाता है। **अक्षरं रेखा युक्तश्च बिन्दुः इत्येतेषां स्वरूपं परमात्मेतिकृत्वा तस्य नामापि एतद् गुणैः परिपूर्ण सकलैश्वर्यद्योतकं यद्भवेत् तदेव शोभनतमम्तर्हि तादृक् तस्य शोभन तमं किम् अष्ट प्रकृत्यात्मक मिति॥ ॐ मिति ब्रह्मेति श्रुतेः॥**

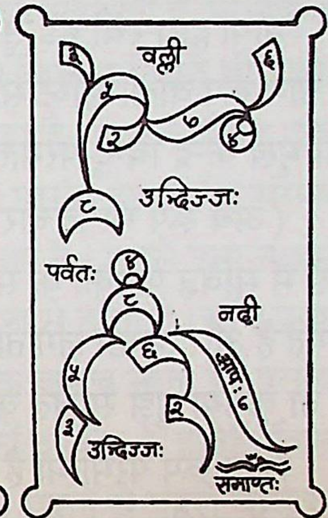
अधुना रूपं विचार्यते तावद कस्माद् बुद्धौ कस्या शिचन्नूतन कल्पनायाः उदयोऽभवत्॥ तां सुज्ञ वाचका नां सन्निधौ प्रकट यितुं साहसं करोमि। यर्हि युक्तं साधुजातं अयुक्तश्चेत्तथाहंवोधनीयः येनतत्समी कुर्याम्॥

नाम प्रकरण के आरम्भ में लिख चुके हैं कि अनेक बिन्दुओं के मेल से रेखा होती है। रेखाओं के ही टेढ़े-मेढ़े रूप से ॐ यह अक्षर बनता है। ॐकार की आठ प्रकृतियां अवयव हैं (अंग हैं) उन अंगों को अलग-अलग जोड़ने से अ से लेकर क्ष पर्यन्त सभी अक्षर तथा १ से ९ तक संख्या कैसे सम्पन्न होती है। उसका वर्णन यहां करेंगे। इस चित्र पट में अंकित आकृतियां को मिलाने से अक्षर तथा अंक सम्पन्न होते हैं। चित्र का पहला अंग बिन्दु है चन्द्राकार रेखा में दो अवयव है। यह दोनों मिलकर तीन हुये। फिर तीसरे अंक के बाद शंकुरूपी अवयव इसके बाद पांच शेष अवयवों को मिलाने से आठ अवयवों वाला ॐकार का पूर्ण रूप बनता है। अर्धचन्द्राकार मात्रा एक होने पर भी मैंने इसमें बुद्धि और मन दो अंगों की कल्पना क्यों की तथा एक से लेकर नौ तक तथा अ

से क्ष पर्यन्त, सभी अक्षर किस-किस अवयव से बनते हैं। इन सबका कारण सहित विस्तार से मैंने मराठी भाषा में लिखे "स्वानन्द साम्राज्य ग्रन्थ" के सृष्टि प्रस्ताव के







निरूपण में विस्तार से वर्णन किया है। यहां पर मैं संक्षेप में ॐकार के आठ अंगों से बनने वाली आकृतियों को लिखता हूं ८-७-६ के योग से क अक्षर, ५-८-७ के योग से च, ८-७ से ट, ६-७-८ से त, ८-६-७ प, ८-६-७ य, ६-५-४ र, ५-७ ल इत्यादि अक्षर बनते हैं। विद्वान् पाठक इसी प्रकार जोड़कर बना सकते हैं। अवयवों के अनुकूल परिवर्त्तन करने से वर्ण माला के सभी अक्षर बनते हैं।

अब १ से ९ तक की संख्या का निरूपण करते हैं-८-७ को मिलाकर १, ६.४.७ से २, ६-४-५ से ३ या ६-७ ६-४-५ से ६, ५-७ से ७, ५-६ से ६, ५-८ से ९, १ से ०। इसी प्रकार निर्दिष्ट सभी आकृतियों के मेल में से जीव जन्तुओं के आकार प्रकार भी सिद्ध होते हैं। मेरे द्वारा किया गया यह सूक्ष्म विचार अक्षरशः सत्य तथा संदेह रहित है।

हाथों से लिखे जाने के पूर्व मुख से उच्चारण करने से कण्ठ, तालु-दन्त ओष्ठ आदि की विकृति भी अक्षरों के आकार की होती हैं। स्वरों का ध्वनि के साथ अभेद है। न उच्चारण की हुई ध्वनि बिन्दु रूप है। अर्थात् ध्वनि का बिन्दु में लय होता है और बिन्दु ॐकार स्वरूप ही है। व्यक्त और अव्यक्त बिन्दु तथा सगुण परमात्मा निर्गुण परमात्मा का ऐक्य है। अव्यक्त बिन्दु तथा निर्गुण परमात्मा एक है। व्यक्त बिन्दु और

सगुण परमात्मा एक है। ॐ सगुण परमात्मा का वाचक है, परमात्मा इसका वाच्य है। वाच्य वाचक में अभेद पीछे बताया जा चुका है।

माया द्वारा रची हुई सृष्टि नाम रूप से युक्त ॐ से उत्पन्न होती है तथा महाप्रलय में नाम रूप वाली सृष्टि सहित माया उसी में लीन हो जाती है। अतः संसार की रचना का मूल केन्द्र बिन्दु परमात्मा है।

(अब रूप पर विचार करते हैं। मेरी बुद्धि में एक नई कल्पना का उदय हुआ है। उसे मैं सुविज्ञ पाठकों के सामने प्रकट करने का साहस करता हूं यदि यह विचार युक्ति संगत है और अच्छा लगे तो ग्रहण करें। यदि इसमें कोई कमी हो या अयुक्त प्रतीत होता है तो कृपया मुझे सूचित करें। जिससे मैं सुधार कर सकूं।)

बिन्दु रूप परमात्मा है और रेखा रूप माया है। अक्षर रूपी सृष्टि है। जैसे अनेक बिन्दुओं का मेल रेखा है। सीधी पड़ी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं का नाम अक्षर है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर रेखा के आगे हम जो कुछ लिखते हैं। वह भी रेखा रूप है। वह एक ही रेखा है। अव्यक्त रूपी तीन रेखाएं हैं। पहली के बिना दूसरी और दूसरी के बिना तीसरी सिद्ध नहीं हो सकती। इसको सुनकर पाठकों को आश्चर्य नहीं करना चाहिए। कागज या भूमि पर खींची हुई रेखा के दो भाग हैं। एक आदि का दूसरा अन्त का। रेखा के इन दो भागों से इनके दो ओर छोर नदी के दो तटों के समान हैं। जैसे दो तटों के बीच में नदी रेखा रूप में बहती है। यदि इसे हम देखें। तो इसमें तीन रेखाएं जैसी मालूम पड़ेंगी। एक नदी तथा दो तट। इसी के द्वारा सूक्ष्म कल्पना की जाती है। एक अव्यक्त प्रकृति रूपी रेखा तीन रेखाओं के रूप में प्रकट होती है। इसकी सिद्धि से पूर्व बिन्दु के सम्बन्ध में विचार करते हैं। जैसे नदी रूप रेखा तीन रेखाओं से युक्त होती है। वैसे ही व्यक्त बिन्दु अव्यक्त रेखा से कैसे सम्बद्ध है। इस परचिवार करते हैं। अव्यक्त बिन्दु अर्थात् निराकार ब्रह्म स्वयं सिद्ध है। यह तीनों कालों में एक जैसा रहता है। बिन्दु शब्द का उचरण करने से ही मन में गोल आकृति बन जाती है। उसी के अनुसार हाथ से उसकी आकृति बनाई जाती है। यह व्यक्त बिन्दु है। इसका स्थूल दृष्टान्त देता हूं। लेखनी के द्वारा जब शून्य बनाया जाता है तो ० यह आकार होता है। इस आकार में जो गोल रेखा है वह बिन्दु नहीं है। बल्कि उसके बीच में जो सफेद भाग दिखाई देता है वह

बिन्दु है। किन्तु वह बाहर की काली रेखा के बिना सिद्ध नहीं हो सकता। बिन्दु के बाहर काली रेखा उसकी सीमा रेखा है।

अनेकों जीव तथा जड़ पदार्थ आकाश को छोड़कर शेष चार महाभूतों के परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। यह परमाणु भी बिन्दु स्वरूप हैं। जिसका किसी भी प्रकार से विभाग या नाश न हो सके, नैय्यायिकों ने उसे परमाणु कहा है। जल के बिन्दु शब्द का उच्चारण करने से जल के छोटे भाग की सिद्धि होती है। सारांश यह है कि सम्पूर्ण संसार के तृण गुल्म से लेकर ब्रह्मा तक के नाम रूप बिन्दु रूप हैं। उससे उत्पन्न होते रहते हैं और लीन हो जाते हैं क्योंकि इन सब की उत्पत्ति बीज से होती है। बीज प्रायः बिन्दु के आकार के होते हैं। किन्तु प्रत्येक बीज के ऊपर एक कवच रहता है। प्रत्येक बीज गोल नहीं होते कुछ लम्बे नुकीले, त्रिकोण आदि अनेकों आकार के होतेहैं, किन्तु प्रत्येक बीज के ऊपर एक कवच रहता है। प्रथ्येक बीज के पकने से पहले बीज रस रूप होता है जैसे चना, गेहूं, मक्का आदि का बीज पकने से पहले द्रवीभूत रस रूप होताहै। कच्चे बीज को फोड़ने से दूध ऐसा निकलता है। यह बिन्दु रूप है। अण्डे तथा जेर से पैदा होने वाले जीव भी पहले बिन्दु रूप ही होते हैं तथा पत्थर लोहा आदि अनेकखनिज पदार्थ जल का कठोर रूप हैं क्योंकि पृथ्वी का कारण जल है जल बिन्दु रूप सिद्ध है। पेड़, पौधे के रस से पहले पुष्प आता है पुष्प में मीठा रस रहता है। वह पककर जब घनीभूत होता है। तब फूल सूख जाता है। उस फूल के निचले भाग में उस पके मधु से एक छोटा सा फल लघु पिण्डिका के रूप में निकलता है। उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिए कवच होता है। फूल गिर जाता है और फल का आकार बढ़ता है। तब मधु तथा फल एक हो जाते हैं। एक या अनेक रूप से अपने स्वभावानुसार परिणत होते हैं। जैसे अण्डे के भीतर तथा माता के गर्भ में जरायु (जेर) में लिपटा हुआ जीव वृद्धि को प्राप्त होता है। वैसे ही फल के भीतर उसका मधु रस तथा गूदा कवच सहित बढ़ता है। किन्तु आप शंका कर सकते हैं कि बहुत सी वनस्पति फल-पुष्प से रहित वर्षा ऋतु में उग आती हैं। उनका बीज कहां रहता है। इस पर कहते हैं कि ऐसी वनस्पतियां पृथ्वी पर भूमि तथा जल को प्राप्त करके बढ़ती हैं। पृथ्वी के परमाणुओं तथा जल की सहायता से इनकी उत्पत्ति है। फलों का बीज उनकी जड़ में रहता है। इस

प्रकार बिन्दु रूपी प्रणव से ही इनकी उत्पत्ति सिद्ध होती है। क्योंकि प्रत्येक बीज जलवायु अनुकूल पाकर जब फूटता है, उनसे अंकुर निकलता है। जो लाल रंग का ॐकार के आकार का होता है यह उत्पत्ति प्रणव है। मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही विकृत रूप में ॐकार का ही उच्चारण करता है।

अब जरायुज, अण्डज, स्वेदज तीन प्रकार के जीवों पर विचार करना है। जरायु तथा अंडे से पैदा होने वाले जीव रज वीर्य के संयोग से होते हैं। इनमें रेत जल बिन्दु मधुस्थानीय है। रज पुष्प स्थानीय है। अतः स्त्रियां रजो दर्शन के अनन्तर गर्भ धारण करती हैं और दोनों के मेल से उत्पत्ति होती है। जिस के अंश की अधिकता होती है। गर्भ में पुत्र या कन्या के रूप में तदनुरूप ही होती है। पुरुष दक्षिण कोख में और कन्या वाम कुक्षि में आती है। इसलिए पुरुष दक्षिण अंग तथा स्त्री वामांग प्रधान होती है। स्त्री वामांगी कही जाती है। वह स्वभाव से ही पुरुष के अधीन है स्वतन्त्र नहीं। पुरुष तथा अन्य प्राणियों के मध्य रेखा में दो भाग समान रूप से रहते हैं उनमें कोई अन्तर नहीं होता।

निष्कर्ष यह है कि चारों प्रकार के जीव जन्तुओं की उत्पत्ति का मूल कारण बिन्दु है। यह बिन्दु ब्रह्म स्वरूप है। उसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश होता है। अतः सम्पूर्ण जगत् ॐ स्वरूप हैं। उसी से जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय सिद्ध हुए।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का पचीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का छब्बीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

प्रणव जप का फल तथा विधि

नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिंगिने।
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्च मुखायते।

प्रणव के वाच्य रूप, प्रणवरूपी लिंगधारी जगत् की सृष्टि स्थिति प्रलयकारी पांच मुख वाले, शिवको नमस्कार है।

उपादिशं निजमंत्रमोंकारमुरुमंगलम्।
ॐकारो मन्मुखाज्जज्ञे प्रथमं मत्प्रबोधकः॥१६॥
वाचकोऽयमहंवाच्यो मंत्रोऽयम् हिमदात्मकः।
तदनुस्मरणं नित्यं ममानुस्मरणं भवेत्॥१७॥
अकार उत्तरात् पूर्वमुकारः पश्चिमाननात्।
मकारो दक्षिणमुखात् बिन्दुः प्राङ्मुखतस्तथा॥१८॥
नाद ऊर्ध्वमुखादेवं पंचधासौ विजृम्भतः।
एकीभूतः पुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरो भवेत्॥१९॥
नाम रूपात्मकं सर्व वेदभूतकुलद्वयम्।
व्याप्तस्तेन मंत्रेण शिव शक्त्योश्च बोधकः॥२०॥
अस्मात् पंचाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत्।
अकरादि क्रमेणैव नकरादियथा क्रमम्॥२१॥
अस्मात् पंचाक्षराज्जाता मात्रिका पंच भेदतः।
तस्माच्छिरश्चतुर्वक्त्रा त्रिपदा गायत्रिरवेहि॥२२॥
वेदाःसर्वस्ततो जज्ञे ततो वैमंत्र कोटयः।
तत्तन्मंत्रेण तत् सिद्धिः सर्वासिद्धिस्ततोभवेत्॥२३॥
अनेन मंत्र कंदेन भोगो मोक्षश्च सिद्ध्यति।
सकला मंत्र राजानः साक्षाद्भोग प्रदाः शुभाः॥२४॥

भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं कि हे देवि! मैं तुमको अपने मंगलमय ओंकार का उपदेश करता हूं। मेरे स्वरूप (सच्चिदानन्द) का बोधक यह ॐ सबसे पहले मेरे मुख से निकला। मेरा स्वरूप यह मंत्र है। मेरा यह नाम है, मैं नामी हूं। इसके नित्य स्मरण करने वाला मेरा ही स्मरण करता है। अकार सर्वप्रथम मेरे उत्तर मुख से, उकार पश्चिम मुख से, मकार दक्षिण मुख से, बिन्दु पूर्व मुख से तथा नाद ऊर्ध्व मुख से निकला है जो पांच प्रकार का है और इनका एकीभूत रूप एकाक्षरी ॐकार है। शिव शक्ति के बोधक इसी मंत्र से नाम रूपात्मक सारा संसार तथा वेदों के दोनों कुल वैदिक

कर्म मार्ग तथा ज्ञान मार्ग इसी से व्याप्त हैं। सबके बोधक इसी मंत्र से अकारदिक्रम से तथा नकारादि क्रम से पंचाक्षरी मंत्र यथाक्रम से उत्पन्न हुआ। अर्थात् ॐकार के अकार से पंचाक्षरी का न, उकार से म, मकार से शि, अर्द्धमात्रा से वा तथा बिन्दु से यकार उत्पन्न हुआ है। प्रणव सहित चार मुखों से त्रिपदा गायत्री उत्पन्न हुई। उससे चार वेद हुये और उनसे करोड़ों मंत्र पैदा हुए। उन मंत्रों से कामनानुसार सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इन्हीं वेदों के अनेक मंत्रों से लौकिक सिद्धि पारलौकिक सिद्धि तथा निष्काम भाव से प्रयोग करने पर ज्ञान द्वारा मुक्ति भी सिद्ध होती है। यह सभी मंत्रराज साक्षात् भोग देने वाले हैं।

प्रणव का अधिकारी—शमादि धर्मनिरतो वेदान्त ज्ञान पारगः।
अत्राधिकारीसः प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः।

शमदम आदि गुणों से युक्त यातिधर्म में स्थित, ज्ञान वैराग्य सम्पन्न वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित ईर्ष्यादि दोषों से रहित, यति, प्रणव जप का अधिकारी है।

प्रणव शब्दार्थ—योहि प्रकृति जातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नवान्तरमिति प्रणवं वै विदुर्वुधाः॥४४॥
प्रपञ्चो हि नास्ति भो! युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण न यद्यस्मात् मोक्षं वः प्रणवं बिदुः॥४५॥
स्वजापकानां योगिनां स्वमंत्रपूजकस्य च।
सर्वकर्म क्षयं कृत्वा दिव्यंज्ञानं तुनूतनम्॥४६॥

—शि०पु०वि०सं०अ० १७ श्लोक ४४-४५-४६

तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम्॥
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्वुधाः।
ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु॥
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात् प्रणवः ईरितः।

जो प्रकृति से उत्पन्न हुए संसार के लिए नवीन नौका रूप हैं। उसे विद्वान् प्रणव कहते हैं। प्र–प्रपञ्चक = न = नास्ति व = मोक्ष अर्थात् जिसमें प्रपंच (जगत्) नहीं है, जो जप करने वाले योगियों तथा मंत्र के पूजकों को कार्य सहित अविद्या की निवृत्ति द्वारा मोक्ष की ओर ले जाता है। उसे प्रणव कहते हैं। अथवा जो तीनों प्रकार के कर्मों को नष्ट करके नूतन दिव्य ज्ञान देता है। विद्वान् उसे प्रणव कहते हैं जो महात्माओं को कार्य सहित माया से रहित करके, नूतन दिव्य ज्ञान की प्राप्ति कराता है तथा अपने शुद्ध स्वरूप "मैं वही ब्रह्म हूं" का बोध करा के परमानन्द की प्राप्ति कराता हैं अथवा ब्रह्मा से लेकर तिनके तक सभी प्राणियों का प्राण है। इसलिए इसे प्रणव कहते हैं।

हंस मंत्र की प्रणव से एकता–शिव पु० कैलाश सं० अ० १६ से

प्रतिलोमात्मके हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम्।
तव स्नेहाद् वामदेव! सावधानतया श्रृणु॥
व्यञ्जनस्य सकारस्य हकारर्स्य च वर्जनात्।
ओमित्येव भवेत् स्थूलो वाचकः परमात्मनः॥

स्वामी कार्तिक वामदेव जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे वामदेव! तुम्हारे स्नेह से मैं प्रणव से उत्पन्न प्रतिलोम हंस मंत्र को कहूंगा। सावधान होकर सुनिये। सोऽहं मंत्र में से स और ह, को हटा देने से परमात्मा का वाचक ॐ हो जाता है।

प्रणव ही तारक मंत्र है–संसार सागर से तारने वाला होने के कारण इसे तारक कहते हैं। रक्षा करने के कारण यह ॐ है। परमात्मा की सृष्टि, स्थिति, संहारात्मक तीनों शक्तियों का वाचक होने से यह ॐ है। भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं–

एव मेव हि देवेशि! सर्वमंत्रशिरोमणिम्।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्ति हेतवे॥

हे देवेशि! काशी में सभी मंत्रों में शिरोमणि ॐ मंत्र का उपदेश जीवों की मुक्ति के लिए देता हूं। कुछ लोग राम मंत्र को तारक मंत्र कहते हैं किन्तु पूज्य पाद दण्डी स्वामी नीलकण्ठ सरस्वती जी महाराज ने ब्रह्म वैवर्त पुराण के परिशिष्ट भाग, 'काशी रहस्य'

में समाधान करते हुए कहा है कि शिव जी काशी में अधिकारी भेद से प्राणी के कान में तारक मंत्र सुनाते हैं। संन्यासी के कान में ॐ का, नैष्ठिक ब्रह्मचारी को 'तत्त्वमसि' गणेश भक्त को 'गं गणपतये नमः' दुर्गाभक्त को नवार्ण मंत्र, राम भक्त को तारक 'राम' मंत्र सुनाते हैं। सब का फल एक जैसा ही है।

प्रणव का स्थान–शंकर जी पार्वती से कहते हैं कि हे देवि! मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, शक्ति, शान्ति, शांत्यतीत स्थान है। इसलिए प्रणव को परात्पर कहते हैं।

उपासना विधि–शिव पुराण कैलाश सं० अ० ३ श्लोक ३७, ३८, ८९

हत् पुण्डरीकं विरजं, विशोकं विशदं परम्।
अष्टपत्रं केसराऽढ्यं कर्णिकोपरिशोभितम्॥
आधार शक्तिमारभ्य त्रितत्वान्तमयं पदम्।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य हृदयं व्योम भावयेत्॥
ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामम्बया सह।
चिन्तयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः॥

हे देवि! हृदय कमल की कर्णिका पर शोभायमान निर्मल, शोक रहित, विशाल अष्ट दल कमल के समान मकरन्द से युक्त आधार शक्ति से लेकर तीन तत्त्वों के (अग्नि, जल, पृथ्वी) अन्त में उत्तम पद (ॐ) का ध्यान करके हृदयाकाश की भावना करे तथा तुम्हारे अम्बा के साथ मेरे इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए उत्कण्ठा सहित चिन्तन करें।

प्रणवोपासना का फल–इसका उपासक शिव लोक प्राप्त करके सायुज्य मोक्ष गति का भागीहोताहै। इस मंत्र का नौ करोड़ जप करने से संन्यासी तीनों पापों से शुद्ध होता है फिर नौ करोड़ जप से पृथ्वी तत्त्व पर विजय प्राप्त करता है। फिर नौ करोड़ जप से जल तत्त्व पर। फिर नौ करोड़ जप से अग्नि तत्त्व पर, फिर वायु, फिर आकाश, फिर गन्ध का अतिक्रमण करता है। फिर रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द इस प्रकार नौ नौ करोड़ का जप बढ़ाते रहने से सभी तत्त्वों और उनके विषयों पर विजय प्राप्त करता है। फिर नौ करोड़ से अहंकार पर विजय प्राप्त करता है। इस प्रकार एक सौ आठ करोड़ जप

करने से शुद्ध योग को प्राप्त करता है अर्थात् योग की मधुमती आदि आठों भूमिकाओं को प्राप्त कर लेता है।

शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।
सदा जपन् सदा ध्यायन् दिव्यं प्रणवरूपिणम्॥
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः॥

इतना जप करने वाला तथा ध्यान युक्त शुद्ध योग से युक्त निश्चय ही जीवन्मुक्त होता है। ऐसे नित्य समाधि में स्थित महायोगी साक्षात् शिव ही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

प्रणव कल्प से

प्रणव कल्प नामक ग्रन्थ स्कन्द पुरण के वैष्णव संहिता से लिया गया है। इसमें शिव पार्वती सम्वाद है। इन्होंने शंकर जी से अनेकों देवी देवताओं की उपासना विधि, ध्यान, कवच, स्तवराज, शत नाम, सहस्रनाम आदि सुने। तब पार्वती जी ने कहा, क्या निराकार निर्गुण ब्रह्म की उपासना भी कवच तथा सहस्रनाम आदि से हो सकती हैं अथवा नहीं। जैसे सगुण साकार के मंत्र का पुरश्चरण किया जाता है। वैसे ही निर्विशेष ब्रह्म के प्रतीक ॐकार का भी पुरश्चरण हो सकता है या नहीं। प्रणव के सम्पूर्ण रहस्यों का प्रतिपादन मुझसे कीजिए।

तब शंकर जी ने कहा हे देवि! अधिकारी यतियों का ही प्रणव में अधिकार है अन्य का नहीं।

अज्ञान नाशनद्वारा प्रणवो मोक्षदायकः।
न तत्र योग्यतातेऽस्ति यतो नारी भवस्यहो॥
गायत्र्यां द्विज संघानां यतीनां प्रणवे रतिः।
नारीणां भर्त्तरि शुश्रूषा न जपो न तपोव्रतम्॥

आज कल संन्यासी अष्टोत्तरी १०८ अथवा १००८ की माला से बड़ी तेजी से प्रणव जप करते हैं। इस जप के सम्बन्ध में लिखा है–

ह्रस्व हरति पापानि, दीर्घः शान्तिं प्रयच्छति।
प्लुतं पदावाप्नोति त्रिविधं प्रणवोच्यते॥

ह्रस्व (एक मात्रा) प्रणव जपने से पाप नष्ट होते हैं। दो मात्रा वाला दीर्घ जपने से शान्ति प्राप्त होती है तथा तीन मात्रा (प्लुत) स्वर वाला जपने से परमपद की प्राप्ति होती है। अतः प्लुत जप करना चाहिये।

देवि! अज्ञान नाश करके प्रणव मुक्ति देता है। किन्तु स्त्री होने के कारण तुम्हारी इसमें योग्यता नहीं है क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिये गायत्री, यतियों के लिये प्रणव तथा स्त्रियों को पति की सेवा का ही अधिकार है। जप, तप, व्रत आदि में स्त्री का अधिकार नहीं है। यद्यपि आगे कहते हैं, नपुंसक, स्त्री, पुरुष, चराचर जीव जन्तु परमार्थ में सब ब्रह्म रूप ही हैं। उनसे भिन्न नहीं, किन्तु जहां साधन चतुष्टयता हैं, वहीं योग्यता है अन्यत्र नहीं। यतियों का ही प्रणव में क्या अधिकार है?

कर्मणा मनसा वाचा ये त्यजन्ति यतीश्वराः।
गायत्रीमथ सावित्रीं तेषां प्रणवयोग्यता॥

जो संन्यासी कर्म मन तथा वाणी से गायत्री अथवा सावित्री का व्याहृतियों सहित प्रणव में प्रवेश करा देते हैं। उन्हीं का प्रणव में अधिकार है। दूसरों का नहीं। स्त्री शूद्र आदि का इसमें अधिकार नहीं है।

शंका–जब स्त्रियों का प्रणव में अधिकार नहीं है तो फिर शंकर जी ने उन्हें अन्त में प्रणव का उपदेश क्यों किया?

समाधान–पार्वती स्त्री होने पर भी देवता होने से दोष नहीं है इस ग्रन्थ पर अनेक आचार्यों ने संस्कृत में टीका की हैं। वर्तमान प्रणव कल्प में व्याख्याता श्री गंगा धरेन्द्र जी सरस्वती दण्डी स्वामी हैं। इनसे पूर्व माधवेन्द्र सरस्वती जी ने व्याख्या की है। वे उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या में लिखते हैं, "**अयम्भावः संन्यासिनामेव प्रणवाधिकारो न स्त्रीणामितिनियमो मनुष्वेव न देवेषु । सर्वसाधनविशुद्धिरूपा, साक्षात् प्रणवात्मिका ब्रह्मविद्या देवता चाहं लोकानुग्रहाय शुश्रूषादि सदाचार व्यवहारेण प्रश्नोत्तरानुव्यापारेण त्वन्मुखात् मत् स्वरूपामेव प्रणव विद्यां जगति प्रकटी कर्त्तुप्रवृता न स्वार्थाय।**"

यह भाव है कि प्रणव जप में केवल संन्यासियों का ही अधिकार है। स्त्री, शूद्र तीनों द्विजातियों तथा तीनों आश्रमियों का नहीं। यह नियम देवताओं में नहीं मनुष्यों में ही है।

भगवती पार्वती तो साक्षात् प्रणव स्वरूपा, सर्वसाधन विशुद्ध रूपा ब्रह्मविद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं। देवी संसार पर कृपा करने के लिए मानवी रूप से प्रतीत होती हैं। पति सेवा तथा सदाचार का पालन करते हुए शंकर भगवान् से प्रश्नोत्तर रूप व्यापार से युक्त अपने (पति देव शंकर) के मुख से ही अपने विद्या स्वरूप प्रणव को संसार में प्रकट करने के लिए प्रश्न करने में प्रवृत्त हुई। अपने स्वार्थ के लिए नहीं इत्यादि। इस भाष्य से सिद्ध होता है कि शास्त्र विरुद्ध स्त्री आदिकों को प्रणव गायत्री आदि का जप नहीं करवाना चाहिए, चूंकि शास्त्र विरुद्ध कार्य करने करवाने से इस लोक में सुख तथा अन्त में परम गति नहीं प्राप्त होती है। यतियों को सतिसन्ध्या, दण्ड तर्पण, प्रणव जप के बाद इस प्रणव कल्प का पाठ करना चाहिए। यदि वे पूरे प्रणव कल्प का पाठ न कर पाएं, तो प्रणव के सोलह नाम, प्रणव गायत्री का अनुष्ठान, प्रणवाक्षर मालिका स्तोत्र तथा प्रणव वज्र पंजर स्तोत्र का पाठ अवश्य करना चाहिए। अतः तीनों को लिख रहे हैं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का छब्बीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का सत्ताईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

प्रणव षोडशनामस्तोत्रम्

सूत उवनाच– अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं देवदुर्लभम्।
साङ्गापाङ्गागमनां च पठने तुल्यदं फलम्॥१॥

सूत जी ऋषियों से कहते हैं कि देवताओं के लिए दुर्लभ रहस्य को कहूंगा। जिसका पाठ करने से अंगों उपाङ्गों सहित वेद के पाठ के समान फल मिलता है।

ॐकारः प्रणवोऽनन्तः सर्वव्यापी च तारकम्।
शुक्लं, सूक्ष्मं, वैद्युतं च परंब्रह्मतथैव च॥२॥
एकश्च, एकरुद्रश्च ईशानो भगवांस्तथा।
महेश्वरो महादेवः प्रत्यगात्मा तथैव च॥३॥
षोडशैतानि नामानि प्रणव ब्रह्मणो द्विजाः।
मुमुक्षोर्मोक्ष दानाय जगादाथर्वणीश्रुतिः॥४॥

य: पठेत् त्रिषु कालेषु ज्ञात्वा माहात्म्येषु स:।
अपवर्गशुभं प्रैति जन्तुस्तेनाभिवीक्षित:॥
पठन्तु श्रृण्वन्तु च वाचयन्तु, लिखन्तु गायंतु च बोधयन्तु।
ॐकार कल्पं यति वृन्द सेव्यं, सूतोक्तमीशोक्तमनिन्दतं च॥

हे ब्राह्मणो ! प्रणव के इन सोलह नामों का पाठ मुमुक्षु को मोक्ष देने में समर्थ है। ऐसा अथर्ववेद की श्रुति कहती है। जो अल्पज्ञ, तपस्वी इसके माहात्म्य को जानकर तीनों कालों में पाठ करता है। वह तत्त्व ज्ञान सहित विदेह कैवल्य प्राप्त करता है। यतियों द्वारा सेवित, प्रशंसनीय सूत जी तथा शंकर जी द्वारा कहे हुए, इस प्रणव कल्प को जो पढ़े, सुने, लिखे, गाये दूसरों को समझाये, वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है।

(इति प्रणव षोडशनामस्तोत्रम्)

॥ अथ वज्र पंजरस्तोत्रम् ॥

प्रणव: परमंब्रह्म प्रणव: परम: शिव:।
प्रणव: परमोविष्णु: प्रणव: सर्व देवता:॥१॥

सूत उवाच– अथात: सम्प्रवक्ष्यामि पञ्जरं वज्र पंजरम्।
प्रणव ब्रह्मणो विप्रा: पापघ्नं शम्भुरब्रवीत्॥२॥

हे ब्राह्मणों ! शंकर जी द्वारा कहा हुआ पापों को नष्ट करने वाला प्रणव ब्रह्म का वज्र पंजर नाम स्तोत्र कहूंगा।

ॐ कार: पातु तिष्ठन्तं शयानं प्रणवोऽवतु।
गायन्तं पात्वनन्तो मां, भुञ्जानंपरमेश्वर:॥३॥
सर्वव्यापी सर्वदिक्षु सर्वाण्यिङ्गानि सर्वग:।
सम्यक्कर्मसुमां देव: सर्वशास्त्रेषु मायिक:॥४॥
निद्राणं पातु मांभद्र: करोतु शुभमव्ययम्।
पादादि मस्तकान्तानि रक्षत्वंगानि रक्षक:॥५॥
विनाशयेदहंकारं बुद्धिमात्मानि चोदयेत्।

करोतु निर्मल चित्तं निर्ममत्वादिचिन्तितः ॥६॥

दौर्जन्यं वर्जयेद्दूरं मयि सर्ववलं वनं।
सुखीकरोतु मामात्मा पैशाच्यादि भयंहरेत्॥७॥

संपन्नः सम्पदो दद्यात् विपदो विनिवर्तयेत्।
मूला धारादिषट्चक्रं पातु षट्चक्र गोचरः॥८॥

भवाव्धि पोतान् मां तत्र पतन्तमभिरक्षतु।
यमभीतिकरस्तस्मादव्यान्मामतिघोरतः॥९॥

पुनर्जन्म निराकुर्यादानन्दं स प्रयच्छतु।
पाप कर्मसु मां शुभ्रो विमुखं विदधातु च॥१०॥

सन्धिभ्यो मां सन्धिकर्त्ता पायान्मर्मसु मर्मगः।
निर्ममत्वं सदा दद्यात् प्रणवः सर्व गोचरः॥११॥

राज्ञो भयात् मंत्र राजोऽराजभीत्या अराजकः।
पादाक्रान्तानरीन् कुर्यात्शत्रुसंघभयंकरः॥१२॥

सर्ववश्यं करोत्वार्यः सर्वदा मयि तिष्ठतु।
सूत उवाच—इतीदं पंजरं दिव्यं प्रणव ब्रह्मणो द्विजाः॥१३॥

यः पठेत् सततं जन्तुर्महापातक नाशनम्।
काव्यानां नाटकानां च दर्शनानां च सर्वशः॥१४॥

अलंकार मतानां च पुराणानां च सर्वशः।
वेदान्तानां च वेदानां गुरुशिक्षां विना स्वतः॥१५॥

ग्रन्थजालस्य सर्वस्य सवेदार्थं महामतिः।
ज्ञात्वाग्रन्थार्थमेतेषां व्याख्यान छात्रकान्प्रति॥१६॥

अन्ते वेदान्त सिद्धान्त ब्रह्म प्राप्नोत्यनुत्तमम्।
ॐकार पंजरं गौर्यै इत्येव शम्भुरब्रवीत्॥१७॥

॥इति श्री प्रणव पंजरं सम्पूर्णम्॥

आरम्भ से लेकर तेरहवें श्लोक तक सरलार्थ है। इसके आगे का अर्थ लिखा जाता है। महा पाप का नाश करने वाले इस प्रणव पंजर का पाठ जो, साधक सम्यक् संन्यासी निरन्तर करता है। वह बिना गुरु शिक्षा के अपने आप सम्पूर्ण काव्यों, नाटकों, दर्शनों, अलंकारों, सभी पुराणों, उपनिषदों, चारों वेदों तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ जालों को वह महामति जानने में समर्थ होता है। छात्रों को समझा सकता है और अन्त में प्रारब्ध ब्रह्म (कैवल्य मुक्ति) को प्राप्त करता है। इस प्रकार गौरी के प्रतिशंकर ने यह प्रणव पंजर कहा।

सूत उवाच– अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रणव ब्रह्मणो द्विजाः।
मालामंत्रं पुरा शम्भुर्यथा प्रोवाच पार्वतीम्॥

ॐ नमो भगवते ॐ काराय, निखिल वेद विदिताय, वेद स्वरूपिणे, अखिलवाग् रूपिणे, वर्गाभिन्न प्रपंच रूपाय, पर ब्रह्मणे, करुणा कर विग्रहाय, शब्दब्रह्मणे, प्रतीचे, पराचे संसार पारावारतारकाय, सकलकर्त्रे, सकल भोक्त्रे, सुरासुरस्वरूपाय, चराचर कलेवरायाऽत्यन्त पुरुषार्थाय, समस्त मुनिप्राप्याय, प्रणवाय, सर्वभूत हृदयाय, अरूपिणे अदेहायाद्वैतात्मने।

भो भो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, भेद बुद्धि प्रदायिनीं, ग्रहणाग्रहणरूपिणीं सकार्याम्, सविलासिनीं, महामायां विनाशय विनाशय, काम क्रोधलोभादिशत्रून् मारय मारय, शम दमादीन् सचिवान् संयोजय, सुधर्मिणीं महाजायां मोक्षलक्ष्मी विवाहय विवाहय, अपवर्ग साम्राज्ये मामभिषेचयाभिषेचय, स्वरूप प्रकटय, प्रकटय जरामरणादि पिशाचानुच्चाटयोच्चाटय। शब्दादिवृश्चि-कभयं निवारय विनारय, मातृयोनि मंत्र प्रपीडनं निवर्त्तय निवर्त्तय।

महाभावैकगम्य! निरूपद्रव! निरतिशयैश्वर्य! बहुभय संरक्षक सान्तं, सलक्षणं, सांगोपांगं, सोपनिषत्कं, सरहस्यं, वेदं बोधय बोधय। मूर्तित्रय। मूर्ति रहित! शक्तित्रय! शक्ति रहित! आशापाशं छिन्धि छिन्धि। त्रिलोचन स्थापि व्यामोहैकनिदानं भगवन्तं मकरध्वजं भिन्धि भिन्धि। चतुर्दश भुवनात्मक! निस्सीम दर्शन! दरीदृश्यमान! चतुःषष्टि कलापराङ्मुख! निखिल मंत्र यंत्र प्रवर्तक! मातृकार्णवस्वरूप। कलिमल प्रध्वंसिन्! कालभय परावर्त्त! विषय विपिने पतन्तं,

मार्गादर्शिनं, मार्गमाणं त्रातारन्मा क्रोशन्तं क्षुत्तृष्णा व्याघ्रादिभिः पेपीयमानमार्तमुमुक्षुं मा मुद्धरोद्धर। आत्मन्! प्रत्यक्शब्द वाच्य! निरूपम वैभव! नित्योत्सव! अतीत द्वन्द्व दुःख! मूढ़जन दुःख प्रद! भक्तजन कल्पद्रुम! उपनिषदेक वेद्य! समस्त वेदवन्दिस्तुत्य! ब्रह्मादि समाराध्य! स्वात्मानं मां प्रापय प्रापय स्वाहा।

सूत उवाच- ॐकार मालिका मन्त्रमित्येवं शम्भुब्रवीत्।
स्मरन्नेतं मंत्रराजमनिच्छन्नपि मुच्यते ॥१॥

इति प्रणव मालिका माला मंत्र सम्पूर्णम्

सूत जी ने कहा हे ब्राह्मणों! मैं प्राचीन काल में भगवान् शंकर द्वारा पार्वती के प्रति कहे हुए प्रणव ब्रह्म का माला मंत्र स्तोत्र कहूंगा। ॐ स्वरूप भगवान् को मैं प्रणाम करता हूं। जो सम्पूर्ण वेदों द्वारा जानने योग्य वेद स्वरूप, सम्पूर्ण वाणी स्वरूप, वाणी से अभिन्न, जगद् रूप, परब्रह्म परमात्मा को, करूणा कर विग्रह, शब्द ब्रह्म के लिए, जो पूर्व, उत्तर पक्ष रूप हैं। संसार सागर से तारने वाले, सकल जगत् के कर्त्ता, भोक्ता, देव असुर स्वरूप, चराचर जगत् रूपी शरीर वाले, मुक्ति रूपी पुरुषार्थ वाले, सम्पूर्ण मुनियों द्वारा प्राप्य, प्रणव स्वरूप, सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय, रूप रहित, शरीर से रहित, अद्वैत आत्म स्वरूप, प्रणवरूपधारी भगवान् को प्रणाम करता हूं।

हे नित्य, मुक्त, शुद्ध बुद्ध, स्वरूप! (आप) भेद बुद्धि देने वाली ग्रहण अग्रहण रूपिणी कार्य सहित तीन गुणों के द्वारा, जगत् का विस्तर करने वाली, महामाया का विनाश करो॥२॥ काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को मारिए॥२॥ शम, दम आदि मंत्रियों को नियुक्त करें॥२॥ महामाया मोक्ष लक्ष्मी के साथ मेरा विवाह करें॥२॥ मुक्ति रूपी साम्राज्य पर मेरा अभिषेक करे॥२॥ अपना स्वरूप प्रकट करें॥२॥ वृद्धता मरणादि पिशाचों का उच्चाटन करें॥२॥ शब्दादि विषय रूपी बिच्छुओं को हटाये॥२॥ माता के पेट में होने वाले कष्टों को दूर करें॥२॥

हे एकमात्र भाव द्वारा प्राप्त होने वाले परमात्मन्! उपद्रवों से रहित! हे अपेक्षा रहित ऐश्वर्य वाले! अनेकों भयों से रक्षक। समस्त लक्षणों सहित वेदान्त का, अंगों उपांगों सहित वेदों का, सम्पूर्ण उपनिषदों सहित वेदों के रहस्य सहित ज्ञान दे॥२॥ हे ब्रह्मा,

विष्णु, शिव मूर्तित्रय हे मूर्ति रहित! (माया उपाधि को लेकर वह मूर्ति है। उपाधि रहित मूर्ति रहित है।) हे शक्ति (इच्छा, क्रिया, ज्ञानशक्ति त्रय अथवा महाकाली, महालक्ष्मी, महा सरस्वती शक्तित्रय हे शक्तित्रय परमार्थ में शक्ति रहित! मेरे आशा रूपी पाश को काटो, तीन नेत्र वाले शंकर को भी मोहित करने वाले कामदेव का विनाश करें ॥२॥ हे चौदह भुवन स्वरूप! देश काल, वस्तु की सीमा से रहित सम्पूर्ण मंत्र तंत्र के प्रवर्तक ब्रह्म! मातृका रूपी सागर स्वरूप! कलियुगी दोषों के विनाशक! काल रूपी भय को निवृत्त करने वाले, विषय रूपी वन में भटके हुए मार्ग भ्रष्ट की रक्षा करके, भूख, प्यास आदि व्याघ्रों से पीड़ित मुझ मुमुक्षु का उद्धार करो। हे आत्मन्! अन्तःकरण में प्रकाशित होने वाले! उपामरहित वैभव वाले! नित्य उत्सव स्वरूप! सुख, दुख आदि द्वन्द्वों से परे, हे देहाभिमानियों को दुख देने वाले, भक्तों के लिए कल्प वृक्ष के समान, एकमात्र उपनिषद् के द्वारा जानने योग्य, समस्त बंदी रूप वेदों द्वारा स्तुत्य, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा आराध्य मेरे तीनों अभिमानों को दूर करो। मुझे सच्चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति करायें।

सूत जी कहते हैं—हे ऋषियों! यह ॐकार मालिका मंत्र भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा था। इस मंत्र राज का स्मरण करने वाला, इच्छा न रहते हुए भी मुक्त हो जाता है।

प्रणव गायत्री– ॐकारय विद्महे, भवताराय धीमहि।
तन्नः प्रणवः प्रचोदयात् ॐ इति प्रणव गायत्री

प्रणव गायत्री व्याख्या–ॐ मिति अवस्थात्रयातीत तुरीय परब्रह्म को ॐ शब्द से सम्बोधित करते हैं। **ॐकाराय** ॐकार स्वरूप पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए। **विद्महे**–साक्षात् अभेद रूप से जानते हैं। उसके उपाय से कार्य सहित अविद्या अर्थात् तीन गुणों से उत्पन्न हुआ जगत् तथा उससे प्राप्त होने वाला जन्ममरण रूप संसार सागर से तारने वाले, भवताराय, संसार सागर से तारने वाला साधन ॐ है। अर्थात् संसार सागर से तरने के लिए शास्त्रानुसार साधन करता हूं। **धीमहि**–ध्यान करते हैं। **नः** इस प्रकार के ध्यान से वह प्रणव हम लोगों को। **प्रणवः** = प्रणव स्वरूप परमेश्वर प्रचोदयात् = ब्रह्म साक्षात्कार के लिए मेरी बुद्धि को प्रेरित करें।

प्रणव पुरश्चरण

गायत्री पुरश्चरण के समान ही इसका भी पुरश्चरण करना चाहिए। एक आसन पर बैठकर प्रतिदिन निश्चत मात्रा में निश्चित समय पर तथा एक निश्चित स्थान पर बैठकर, प्रणव का मन में प्लुत स्वर युक्त जप करें। अन्यान्य मंत्रों में अक्षर संख्यानुसार उतने ही लक्ष जप करने से प्रति फलित होता है, किन्तु इसका एक अरब आठ करोड़ जप करने से यति जीवन मुक्त तथा विदेह मुक्त हो जाता है। जप से पूर्व कम-से-कम बारह बार दीर्घघण्टा नादवत् जोर से प्लुत स्वर में मकार का दीर्घ कालिक उच्चारण करें। साधक अनुष्ठान काल में क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या आदि दोषों का पूर्ण त्याग करें। इससे अनुष्ठान में पूर्ण सफलता होती है। जप से पूर्व तथा बाद में प्राणायाम करना चाहिए तथा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूपोऽहम् इसकी दृढ़ धारणा करें तथा कई बार इसका जप करें। नित्य प्रति के जप का अष्टमांश प्रणव गायत्री का जप करें। अंग सहित प्रणव का जप करने के बाद पुरश्चरण करें, दस लाख जप करें। उसका आधा हवन करे, हवन का आधा तर्पण, एक हजार ब्राह्मण भोजन करावे। इस प्रकार करने पर प्रणव आत्मा तृप्त होती है तथा पाप एवं दुर्वासना की कालिमा को छोड़कर ब्रह्म साक्षात्कार करता है। प्रणव की महिमा कौन वर्णन कर सकता है। शुक देव, सनकादि ऋषियों ने इसका जप करके मुक्ति प्राप्त की।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का सत्ताईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद का अट्ठाईसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

संन्यास तथा त्याग का तात्त्विक विवेचन

श्रीमद्भगवद् गीता के अठारहवें अध्याय के आरम्भ में (संन्यास तथा त्याग) दोनों तत्त्वों को समझने के लिए अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया–

संन्यासस्य महावाहो! तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश! पृथक्केशिनिषूदन ॥

हे महावाहो ! हे हृषीकेश, हे केशी दैत्य को मारने वाले ! मैं संन्यास तथा त्याग के तत्त्व को जानने की इच्छा करता हूं। त्याग तथा संन्यास एक हैं अथवा पृथक्-पृथक् हैं।

मधुसूदन गूढ़ार्थ दीपिका व्याख्या–चौदहवें अध्याय में भगवान् ने गुणातीत के जो लक्षण बताये, वे संन्यासी के लक्षण हैं। सात्विक राजस, तामस भेद से तीन प्रकार का संन्यास तथा संन्यासी बताये। तत्त्व बोध के अनन्तर सम्पूर्ण कर्मों के स्वरूप से त्याग मुख्य संन्यास है। जो तत्त्व बोध होने से पहले कर्मों का निष्काम अनुष्ठान, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए करते हैं। उन्हें वह निष्काम कर्म योग ब्रह्म बोध कराने में समर्थ है, परन्तु तत्त्व बोध के बिना ही तत्त्व जानने की इच्छा वालों का कर्म संन्यास गौण है अर्थात् अविद्वान् जो कर्म के फल की इच्छा नहीं करते। उन्हें भी त्यागी कहते हैं तथा विद्वानों द्वारा स्वरूप से कर्मों का त्याग भी संन्यास शब्द से ही कहा जाता है। इस प्रकार के अविद्वान् द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्माधिकारी द्वारा किया हुआ संन्यास का तत्त्व सात्विक, राजस तथा तामस भेद से कितने प्रकार का है। मैं सात्विक, राजस, तामस भेद से इनके तत्त्व को जानने की इच्छा करता हूं। क्या संन्यास तथा त्याग दोनों शब्द घट पट के समान भिन्न हैं अथवा कुम्भ कलश के समान पर्यायवाची हैं अथवा ब्राह्मण और परिव्राजक शब्द के समान एक ही जाति के बोधक हैं। इससे सिद्ध होता है कि केवल ब्राह्मण का ही संन्यास में अधिकार है। आजकल प्रत्येक जाति के लोग संन्यास लेते हैं। जो श्रुति विरुद्ध है। श्री भगवानुवाच, "**काम्यानां कर्मणांन्यासं संन्यासं कवयो विदुः। सर्व कर्म फल त्यागं प्राहुस्त्यागंविचक्षणाः।**"

श्री भगवान् श्री कृष्ण जी इसके उत्तर में कहते हैं कि सकाम कर्म के त्याग को सूक्ष्मदर्शी विद्वानों ने संन्यास कहा है तथा सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहा है।

वेद विहितानां कर्मणां विधिना त्याग इति संन्यासः।

काम्य कर्म फलानां त्याग इति त्यागः।

वेद विहित निमित्तिक कर्मों का संन्यास ग्रहण पद्धति के अनुसार त्याग संन्यास है। काम्य कर्मों को करते हुए उनके फलों का त्याग, त्याग है।

गूढार्थ दीपिका–भगवन् उत्तर देते हैं काम्यानामिति–फल की कामना से अन्तःकरण को शुद्ध न करने वाले, अनुपयुक्त कर्मों के त्याग को सूक्ष्मदर्शी विद्वान् त्याग कहते हैं। कुछ लोग, "**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणाः विविदिशन्ति, यज्ञेन, दानेन, तपसा अनाशकेन**" ब्राह्मणवेद के वचनों से ब्रह्म को जानने की इच्छा यज्ञ, दान, तपस्या तथा कठिन व्रतों से करते हैं। इसमे वेदानुवचनेन यह शब्द ब्रह्मचारी के लिए है। यज्ञ, दान से गृहस्थ धर्म तथा तपस्या अनाशक द्वारा वानप्रस्थ आश्रम बताया। इनका नित्य अनुष्ठान करने से पाप की निवृत्ति द्वारा आत्मबोध होता है। क्योंकि पाप की निवृत्ति के अनन्तर ही ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए ब्रह्मबोध के लिए वेदानुसार कर्म करने चाहिए। अतः अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ब्रह्म को जानने की इच्छा से पूर्व भागवदर्पण बुद्धि से कर्म अवश्य करने चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि सर्व कर्म के फल का त्याग सभी प्रकार के काम्य तथा नित्य कर्मों के फलों का त्याग, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए तथा आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए, विचार कुशल विद्वानों ने त्याग कहा है अर्थात् ईश्वर अर्पण बुद्धि से किया हुआ अनुष्ठान अन्तःकरण की शुद्धि के लए है तथा फल की इच्छा रहित कर्म अन्तःकरण को शुद्ध करके ज्ञान निष्ठा उत्पन्न करता है। ऐसा कर्म ज्ञान का हेतु होने से मुक्ति में सहायक है। इसी अध्याय के द्वादश श्लोक में भगवान् कहते हैं–

अनिष्टमिष्टं मिश्रंच त्रिविधं कर्मणः फलम्।

भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥

कर्म का फल दुःख, सुख और मिला-जुला तीन प्रकार का होता है जो कर्म फल के त्यागी हैं, किन्तु कर्म का स्वरूप से त्याग नहीं करते। उन्हें इष्ट अनिष्ट और मिश्रित तीनों प्रकार का फल मिलता है। परमार्थ संन्यासियों को नहीं मिलता।

गूढार्थ दीपिका-देहाध्यासी परमात्म ज्ञान से रहित कर्मी भी फल की इच्छा का त्याग करके गौण संन्यासी होता है तथा परमात्मा के ज्ञान वाला ब्रह्म ज्ञानी देहाभिमान रहित सर्व कर्मों का फल सहित स्वरूप से त्याग करने वाले मुख्य संन्यासियों को कौन फल प्राप्त होता है? अर्थात् गौण संन्यासी को गौण तथा मुख्य संन्यासी को विदेह कैवल्य मुक्ति का फल प्राप्त होता है। कर्म फल का त्याग दोनों में पाया जाता है। अतः दोनों ही त्यागी कहे जाते हैं। अतः मुख्य संन्यासियों के सम्बन्ध में आपको विशेष कहना चाहिए। अर्जुन की इस मानसिक शंका का उत्तर देते हुए भगवान् कहते हैं- **अत्यागिनां**-कर्म फल के त्यागी होने पर भी कर्म का अनुष्ठान करने वाले अज्ञानी गौण संन्यासियों को **प्रेत्य** = ब्रह्म तत्त्व की जानने की इच्छा पर्यन्त अन्तःकरण की शुद्धि के पहले ही मृत्यु को प्राप्त होने वाले गौण संन्यासियों को अपने पूर्व कर्म का **कर्मणःफलम्**-फल, शरीर ग्रहण भवति-रूप में मिलता है। **त्रिविधं** तीन प्रकार के कर्म अनिष्ट नरक की प्राप्ति तथा पशुपक्षि आदि की प्राप्ति। **इष्टं**-शरीर इन्द्रियादिकों को सुख देने वाले देवलोकादि की प्राप्ति, **मिश्रं**-पुण्य पाप से संयुक्त मनुष्य का शरीर मिलता है। इस प्रकार गौण संन्यासियों को मृत्यु के अनन्तर दूसरा शरीर अवश्य ग्रहण करना पड़ता है, किन्तु परमार्थ संन्यासियों को परमात्मा साक्षात्कार करने से अविद्या तथा उसके कार्य तीनों शरीर, तीनों कर्मों की निवृत्ति हो जाने पर उनका पुनर्जन्म नहीं होता। वे निश्चय ही परमगति को प्राप्त करते हैं। **न तु सन्यासिनां क्वचित्**-परमात्मा का ज्ञान होने वाले मुख्य संन्यासियों को मरने के बाद इष्ट, अनिष्ट, मिश्र फल किसी भी देश काल में नहीं होता क्योंकि ज्ञान से अज्ञान तथा उसके कार्यों का उच्छेद हो जाने से। श्रुति में कहा है, "**भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।**" जीवात्मा परमात्मा की एकता का अनुभव करने वाले ज्ञानियों की जड़ चेतन की ग्रन्थि छूट जाती है। दोनों की एकता के सम्बन्ध में सभी संशय दूर हो जाते हैं। तीनों प्रकार के कर्म क्षीण हो जाते हैं। अतः गौण संन्यासियों

की अपेक्षा मुख्य संन्यासियों को विदेह मुक्ति रूप विशेष फल कहा है। इस सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः॥

छठे अध्याय के आरम्भ में भगवान् ने कहा है कि फल कामना को छोड़कर करने योग्य कर्म जो करता है। वही संन्यासी तथा योगी है। अग्नि तथा कर्म को त्यागने वाला नहीं। यह तो फल के त्यागी के लिए संन्यासी शब्द का प्रयोग किया है। यहां पर फल त्याग की समता से संन्यासी शब्द का प्रयोग किया। उन सात्विक साधकों का नित्य कर्म का अनुष्ठान करने से तथा पाप कर्म को त्यागने से पाप का फल उन्हें अनिष्ट नहीं हो सकता तथा पुण्य कर्म का फल भी नहीं मिलता, क्योंकि कामना रहित अनुष्ठान होने से ईश्वरार्पण कर्म होने से मिश्रित कर्म का फल भी नहीं मिलता। अतः तीनों प्रकार के कर्मों का फल कर्म त्यागियों को नहीं होना चाहिए। ऊपर कहे श्लोक में कर्म फल के त्यागी को संन्यासी कह कर प्रशंसा की हैं तथा स्वरूप से कर्मों का त्याग करने वाले को संन्यासी या योगी नहीं कहा। वह अनधिकारी संन्यासी के सम्बन्ध में है। जिसने ब्रह्मचर्य, गृहस्थादि आश्रम में निष्काम कर्म, उपासना से अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया। विवेक वैराग्य से रहित नाममात्र का संन्यास लिया है। वह संन्यासी कर्म उपासना के चिन्ह शिखा यज्ञोपवीत का त्याग करने के कारण वैदिक कर्मोपासना का अधिकारी नहीं रहा। अन्तःकरण के तीन दोषों से युक्त होने के कारण अनुभूति जन्य ज्ञान नहीं हुआ। उस अग्नि रहित व क्रिया रहित संन्यासी की भगवान् निन्दा करते हैं। मुख्य संन्यासी की नहीं। उसकी अपेक्षा वह आरूरूक्षु साधक, गृहस्थ, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, उत्तम हैं, जो अन्तःकरण की शुद्धि में लगा हुआ, निष्काम कर्म के अनुष्ठान में लगा हुआ है, क्योंकि गौण और मुख्य संन्यासियों में संकल्प का जब तक त्याग नहीं होता तब तक वह संन्यासी नहीं। अतः अपरिपक्व चित्त साधक की प्रशंसा करते हुए भगवान् ने उसे संन्यासी कहा है। अशुद्ध अन्तःकरण वाले के लिए निष्काम कर्म ही ज्ञान की प्राप्ति का कारण है। आरूढ़ जो ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं उनके लिए वृत्ति अन्तर्मुख करके समाधि ही ज्ञान प्राप्ति में कारण है, क्योंकि जब योगी इन्द्रियों के भोगों और कर्मों में आसक्त

नहीं होता। सम्पूर्ण संकल्पों का त्याग कर चुका है। उसे योगारूढ़ कहते हैं। जैसे विद्या के अभ्यास में लगे हुए बच्चे को माता-पिता उसको उसी में लगाने के लिए तुम तो बहुत अच्छे राजा पूत हो। इसी प्रकार मन लगाकर पढ़ो उसकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे ही ज्ञान प्राप्ति के साधन में लगे हुए साधकों को योगी संन्यासी कहकर प्रशंसा करते हैं। इसलिए कहा है मुमुक्षु काम्य तथा निषिद्ध कर्मों में प्रवृत्त न हो, किन्तु पाप निवृत्ति तथा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करे। अतः जो फल परमार्थ संन्यासी को मिलता है। वह निष्काम कर्म के अनुष्ठानी को भी मिलना चाहिए।

समाधान-सिद्धान्ती पूछते हैं कि क्या आप किसी भी शास्त्र का अर्थ करने के लिए शब्द तथा अर्थ की मर्यादा को जानते हो या नहीं। शब्द दो प्रकार के हैं। गौण शब्द, मुख्य शब्द। गौण शब्द में मुख्य माननीय है। यह शब्द मर्यादा है। जैसे पितरों का पिंड दान श्राद्ध अमावस्या के अपराह्न काल में करते हैं। इसमें अमावास्या शब्द और अपराह्न शब्द इनमें अमावस्या शब्द मुख्य काल को बताता है और अपराह्न शब्द अमावस्या से (मुख्य काल) से सम्बद्ध होने के कारण गौण है। गौण अर्थ में मुख्य अर्थ की उपस्थिति आवश्यक है। अमावास्या का कालग्रहण किया जाता है। अमावास्या के अपराह्न काल में ही श्राद्ध करने पर शास्त्रोक्त फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार गौण अर्थ और मुख्य अर्थ को समझना चाहिए। इसी प्रकार संन्यासी शब्द का भी फल सहित सम्पूर्ण कर्म के त्याग में संन्यासी शब्द का मुख्य अर्थ घटित होता है और कर्मी के सम्बन्ध में गौण अर्थ है। फल त्याग की समानता दोनों में पाई जाती है। यह शब्द मर्यादा से सिद्ध हुआ।

कोई कारण सामग्री होने पर ही कार्य हो सकता है। यह अर्थ मर्यादा है। इसी प्रकार ईश्वरार्पण बुद्धि से अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म फल का त्याग करने वाले कर्मी को ज्ञान प्राप्ति के पूर्व यदि मृत्यु हो जाती है तो पूर्व जन्म के तथा इस जन्म के अर्जित शुभ, अशुभ तथा मिश्रित कर्मों शरीर ग्रहण के तीन प्रकार के कर्मों को कौन रोक सकता है। अतः वृहदाररण्य कोपनिषद् में गार्गी के प्रति याज्ञवक्य ऋषि कहते हैं, **"यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति सः कृपणः।"** हे गार्गी! जो इस अक्षर ब्रह्म को बिना जाने हुए इस लोक से चला जाता है, वह कृपण है। अर्थात् पुनर्जन्म

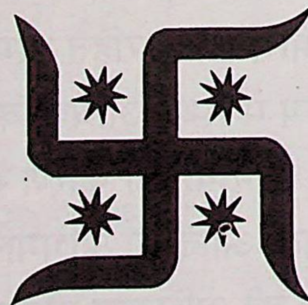
को प्राप्त होता है। अतः अन्तःकरण की शुद्धि का फल, ज्ञान की प्राप्ति के लिए अधिकारी के लिए शरीर आवश्यक है क्योंकि गीता के सिद्धान्तानुसार संन्यास से पूर्व आश्रम में ही अन्तःकरण को शुद्ध करके उसके दो दोषों (मल, विक्षेप) को दूर करके जो संन्यास लेता है, ऐसा जिज्ञासु संन्यासी संन्यास लेकर महावाक्यों तथा प्रस्थान त्रयी के श्रवण, मनन या निदिध्यासन काल में शरीर त्यागता है। उस संन्यासी की क्या गति होती है। अर्जुन के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा कि वह संन्यासी ब्रह्मलोक का सुख भोगने के अनन्तर पुण्य क्षीण होने पर पवित्र योगियों के कुल में जन्म लेता है। यदि उनका चित्त किसी राज परिवार के राज भोग में आसक्त है। अन्त समय उसका चिन्तन करता है, तो उसका जन्म राज परिवार में या धनियों के परिवार में होता है अर्थात् योग भ्रष्ट जन्म लेता है। इसके भी दो भेद हैं–संन्यास से पतित–संन्यास लेकर भी उसके धर्म का यथावत् पालन न करने वाला इसके सम्बन्ध में आगे कहेंगे। दूसरा–योग भ्रष्ट जो संन्यास लेकर यति धर्म के मुख्य अंग श्रवण, मनन, निदिध्यासन में लगा हुआ, किन्तु ब्रह्म की सत्यता और जगत् को मिथ्यात्व का अनुभव किये बिना शरीर का त्याग करने वाले को योग भ्रष्ट कहते हैं। जब साधक मुख्य संन्यासी भी पुनर्जन्म को प्राप्त करते हैं। उन्हें भी शुभ कर्म का फल भोगना पड़ता है। फिर अज्ञानी तो निश्चय ही जन्म लेगा। इसलिए अज्ञानी कोई भी हो, उसे जन्म लेना ही पड़ता है। यह अर्थ मर्यादा से सिद्ध हुआ।

इसलि भगवत् पाद भाष्यकार का व्याख्यान ही सर्वोत्तम ग्राह्य है। निष्कर्ष यह है कि अकर्त्ता, अभोक्ता, परमानन्द, अद्वितीय, सत्य, स्वयं प्रकाश ब्रह्म आत्मा के साक्षात्कार से निर्विकल्प सन्देह रहित वेदान्त के वाक्यों पर विचार करने से प्रमाण के सम्बन्ध में सभी प्रकार की शंकाओं से रहित ब्रह्मात्म ज्ञान से अनात्म के अज्ञान की निवृत्ति जिनकी हो गई है। कार्यकर्त्ता आदि के अभिमान से रहित परमार्थ संन्यासी ही सभी कर्मों का उच्छेद करके केवल अपने स्वरूप में स्थित अविद्या कर्म आदि से उत्पन्न, फिर शरीर धारण नहीं करते, क्योंकि सभी भ्रान्तियों को कारण सहित उन्होंने दूर कर दिया है। जिनको अविद्या से उत्पन्न भोक्तृत्व आदि का अभिमान है। ऐसे शरीरधारी तीन प्रकार के हैं। इनमें पहले जिनमें रागद्वेष की अधिकता होन से काम्य तथा निषिद्ध कर्मों को

इच्छानुसार करते हैं। उनका मोक्ष शास्त्र में अधिकार नहीं है। दूसरे प्रकार के मनुष्य जो पिछले जन्म के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप जिनके राग द्वेष किंचित् मात्रा में निवृत्त हो चुके हैं। वे कर्मों को स्वरूप से त्याग नहीं सकते। वे लोग पाप कर्मों तथा काम्य कर्मों को छोड़कर फल की इच्छा से रहित, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए शास्त्रीय नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करते हुए गौण संन्यासी मोक्ष शास्त्र के अधिकारी हैं तथा तीसरे संन्यास से पूर्व जिन्होंने नित्य कर्म करके अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है तथा ब्रह्म तत्त्व को जानने की प्रबल इच्छा से संन्यास लेकर वेदान्त के ग्रन्थों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हुए शास्त्रानुसार संन्यास ग्रहण पद्धति से संन्यास लेकर कर्मों का त्याग करके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं के पास जाते हैं। ऐसे विविदिशा संन्यासी तीसरे प्रकार के हैं। इनमें पहले घोर संसारी होने से प्रसिद्ध ही है। दूसरों को इस शलेक में कहा हुआ इष्ट अनिष्ट मिश्रित फल मिलता है। तीसरे के सम्बन्ध में **"अयतिः श्रद्धयोपेतः"** से अर्जुन के पूछने से प्रश्न का उत्तर देते हुए छठे अध्याय के अन्त में भगवान् ने निर्णय किया। अज्ञानी यति हो या गृहस्थ अज्ञान तथा कर्म रूपी कारण सामग्री होने से निश्चय ही जन्म मरण को प्राप्त करते हैं, किन्तु अपने सहित जिन्होंने संसार को ब्रह्म रूप में अनुभव किया है। उन्हें ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। किसी को ज्ञान न होने से पूर्वजन्म की प्राप्ति, किसी को ज्ञान होने से मुक्ति यह दो पदार्थ (संन्यास तथा त्याग) भगवान् ने इस शलेक में संक्षेप से कहे हैं।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध हुआ। जब तक मुमुक्षु ब्रह्मानुभव नहीं करता। तब तक जन्म मरण से नहीं छूटता।

॥ इति तृतीय परिच्छेद में अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद में उन्तीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

गीता के अन्त में भगवान् ने संन्यास का लक्षण दिया है–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सर्व धर्मों का परित्याग करके एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा, शोक मत करो। यह श्लोक अनेकों उपनिषदों में तथा शिव गीता में शंकर जी ने राम के प्रति ज्यों का त्यों कहा है। इसके सम्बन्ध में अनेकों आचार्य विभिन्न प्रकार की व्याख्यों करते हैं। कुछ लोग प्रत्येक व्यक्ति के प्रति अर्थ लगाते हुए कहते हैं कि सभी लोग अपने वर्णाश्रम धर्म का परित्याग करके जीव एकमात्र भवगान् की शरण में चला जाए। भगवान् उसे सभी विपत्तियों से मुक्त कर देते हैं, किन्तु यह व्याख्या गीता के पूरे सिद्धान्त पर पानी फेर देती है, क्योंकि भगवान् की आज्ञा पाने से पूर्व ही अर्जुन दोनों काम कर चुके थे। वे क्षात्र धर्म युद्ध का परित्याग करके वानप्रस्थी या संन्यासी या ब्राह्मण वृत्ति से निर्वाह करना चाहते थे तथा **''शिष्यस्तेऽहंशाधि-मांत्वांप्रपन्नम्''** मैं आपकी शरण में हूं। मुझे उचित उपदेश करें आपका शिष्य हूं। फिर अर्जुन के लिए भगवान् ने स्थान-स्थान पर युद्ध रूप स्वधर्म पालन की आज्ञा दी है। दूसरे अध्याय में २, ३, ३१ से ३८ तक, चतुर्थ, आठवें, ग्यारहवें तथा अठारहवें अध्यायों में अपने कर्म को करने की आज्ञा दी है। अन्त में कहा, यदि तुम दुराग्रहपूर्वक युद्ध करना नहीं चाहते हो, तो भी तुम्हारा क्षात्र स्वभाव तुमसे युद्ध अवश्य कराएगा। अध्याय १८ श्लोक ५९, ६० ॥ आगे फिर कहा कि मैंने अत्यन्त गुह्यतम ज्ञानोपदेश किया है। इस पर विचार करके तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो। ऊपर के वचनों से सिद्ध होता है कि भगवान् ने स्वधर्म त्याग कर अपनी शरणागति का उपदेश अर्जुन को नहीं किया, क्योंकि स्वधर्म पालन के लिए कहते हैं। यदि भगवान् का यही तात्पर्य होता तो ७२वें श्लोक में भगवान् ने अर्जुन से पूछा है, हे अर्जुन! तुमने एकाग्रचित्त होकर गीता सुनी या नहीं। तुम्हारी अज्ञान से उत्पन्न अहंता ममता दूर हुई कि नहीं। उत्तर में अर्जुन ने कहा हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा अज्ञान नष्ट होने पर शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप

की स्मृति हुई है। मैं सन्देह रहित होकर आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। भगवान् की अर्जुन के प्रति एक ही आज्ञा होने पर भी कुछ लोगों को दो प्रकार की आज्ञा प्रतीत होती है। पहले युद्ध करने की आज्ञा, दूसरी सामान्य विशेष दोनों धर्मों को त्याग कर शरण में आने की आज्ञा। किन्तु अन्त में अर्जुन ने किस आज्ञा का पालन किया। यह महाभारत के युद्ध से सिद्ध होता है।अर्जुन नारायण रूपी श्री कृष्ण के नित्य सखानर के अवतार हैं। जैसे पक्षी पक्षी की, बंगाली बंगाली की, गुजराती गुजराती की, भाषा समझता है। वैसे ही सखा अर्जुन की बात को भगवान् तथा भगवान् के हृदय की बात को अर्जुन जानते हैं कि मेरे लिए भगवान् की युद्ध रूपी आज्ञा ही हितकारिणी है। तो प्रश्न होता है क्या स्वधर्म के त्याग की आज्ञा आज्ञा नहीं है। यह गृहस्थ अर्जुन के लिए आज्ञा नहीं है, किन्तु अर्जुन को सम्बोधित करते हुए परमहंस संन्यासियों के लिए आज्ञा है। अर्जुन के लिए नहीं।

दूसरा समाधान–सर्वधर्मान् में चारों वर्णों आश्रमों,तीन प्रकार की स्त्रियों कुमारी कन्या, पतिव्रता तथा विधवां के विशेष धर्म देश धर्म, दान धर्म, आपद् धर्म, मोक्ष धर्म इत्यादि जिन धर्मों का महाभारत के शान्ति तथा अनुशासन पर्वों में भीष्म पितामह जी ने युधिष्ठिर के प्रति उपदेश किया है। वे सर्व धर्म हैं। कुछ लोग सर्वधर्मान् का अर्थ हिन्दू, सिख, ईसाई धर्म करते हैं, किन्तु इनमें वैदिक सनातन धर्म को छोड़कर सब सम्प्रदाय मतमतान्तर हैं। धर्म केवल एक है। संसार की किसी भी भाषा में धर्म का पर्यायवाची शब्द नहीं आया। सम्प्रदाय, रिलीजन, मजहब, धर्म के पर्याय नहीं हैं। यदि भगवान् ने इनको छोड़कर अपनी शरण में आने को कहा होता तो इन धर्मों को कौन त्यागेगा। जो स्वधर्म का पालन करेगा। जिसने धर्म का अनुष्ठान नहीं किया। वह त्याग ही क्या करेगा। जैसे धन का, अन्न का, वस्त्र का, स्त्री, पुत्रादिकों का, वही त्याग कर सकता है, जिसके पास हो। अतः सर्व धर्म त्याग से पूर्व स्वधर्म कापालन आवश्यक है। अतः सर्व धर्म परित्याग की आज्ञा इन सब के लिए नहीं, किन्तु परमहंस संन्यासियों के लिए है। यह सिद्ध हुआ तो भगवान् ने 'त्वा' शब्द का प्रयोग क्यों किया। इसका समाधान गृहस्थ अर्जुन के लिए श्री आनन्दतीर्थ जी (महाराज मध्वाचार्य जी) ने अपने गीता के 'लेश भाष्य' में करते हैं कि गृहस्थ अर्जुन के लिए ऐसी आज्ञा कैसे कल्याण कारिणी

हो सकती है। भगवान् अर्जुन गृहस्थ के लिए धर्म के त्याग का उपदेश नहीं करते। प्रत्युत अभिमान रहित होकर स्वधर्म पालन की आज्ञा देते हैं। वे लिखते हैं, **''सर्वधर्माभिमानान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज''** सभी धर्मों के अभिमान का त्याग करके एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो। मैं तुम्हें सब पापों से छुड़ा दूंगा। शोक मत करो। भाव यह है कि दाता को दान का अभिमान, विद्वान् को विद्या का, तपस्वी को तप का, भक्त को भक्ति का, ज्ञानी को ज्ञान का अभिमान छोड़कर एकमात्र भगवान् की शरण ग्रहण करनी चाहिए। उसको भगवान् वासना सहित पापों से छुड़ाकर शोक मोह से रहित मुक्त कर देते हैं।

संन्यास के पक्ष में भगवान् शंकराचार्य आनन्दगिरि नीलकण्ठ जी, श्री स्वामी शंकरानन्द जी तथा धनपति सूरि ने शांकर भाष्यानुसारि व्याख्याएं की हैं। इनमें से तात्पर्य बोधिनी टीका के रचयिता स्वामी शंकरानन्द जी के आधार पर विचार किया जाएगा–

इस प्रकार साधक आरूरूक्षु को मुक्ति प्राप्ति के लिए ईश्वर की शरणागत होना चाहिए। उनके लिए कर्म योग ही कारण है। ऐसा निश्चय करने के अनन्तर अब आरूढ़ सिद्ध के लिए विघ्न बाधा रहित आत्मानुभूति के लिए सम्पूर्ण कर्मों के त्याग (संन्यास) सहित ज्ञान निष्ठा की परिपक्वता के लिए कहते हैं। **सर्वधर्मानित्यादि शंका**–यह वचन कर्म के प्रकरणान्तर्गत होने से इसका अर्थ भी कर्म परक ही होना चाहिए। ज्ञान परक नहीं। इस पर कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है सर्वधर्मान् से कर्मों का संन्यास सिद्ध होता है। गृहस्थ साधक मुमुक्षु के लिए सर्व कर्मों का संन्यास उचित नहीं है, क्योंकि यदि वे कर्म चक्र के अनुसार नहीं वर्तते, तो वे नष्ट हो जाते हैं। सर्व कर्म त्यागी आलसी गृहस्थ आधार रहित अंधे के समान गिर जाता है। सर्व कर्म परित्यागी को दुष्ट तथा पतित कहा है। इस पर पूर्व पक्षी कहता है नहीं, **''मामेकं शरणं व्रज''** एक मात्र मेरी शरण में आ जावो। ईश्वर भजन रूपी कर्म विहित होने से त्यागा नहीं जा सकता अर्थात् ईश्वर भजन के अतिरिक्त कर्म त्याग में कोई दोष नहीं, इसके सम्बन्ध में पीछे कहा है कि स्वकर्म को करते हुए आराधना करने वाला अन्तःकरण की शुद्धि से ज्ञान प्राप्त करता है। स्वधर्म दोष युक्त होने पर भी नहीं त्यागना चाहिए। अतः वेदशास्त्र द्वारा विहित कर्म को करना चाहिए, कर्म के त्याग की अपेक्षा कर्म करना उत्तम है। कर्म में

ही तुम्हारा अधिकार है। यज्ञ धर्म आदि कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए इत्यादि भगवान् ने कहा है। अनेकों स्मृतियों वेदों से सिद्ध है कि जीव पर्यन्त कर्म करना चाहिए।

सर्वधर्मान् परित्यज्य से कर्म फल त्याग कहा है। कर्म का नहीं कर्म का प्रकरण होने से यह कर्म का ही अंग है। यदि ऐसा प्रश्न करते हो, तो ठीक नहीं, क्योंकि तीसरे अध्याय के तीसरे श्लोक में भगवान् ने कहा है, हे अर्जुन! मैंने अधिकारी भेद से दूसरे अध्याय में दो प्रकार की निष्ठा कही है। वेदान्तियों के लिए ज्ञान योग और योगियों के लिए कर्म योग अर्थात् आरूरूक्षु कर्मियों के लिए कर्म योग तथा आरूढ़ों (ब्रह्मवेता संन्यासियों) के लिए ज्ञान योग कहा है। यहां से आरम्भ करके ''**नियतं कुरू कर्मत्वम्**'' से ''**प्रति जाने प्रियोऽसि में**'' तक दोनों प्रकार की निष्ठाओं का वर्णन अधिकारी भेद से किया है।

ब्रह्म वेत्ता सर्व कर्म त्यागी आरूढ़ों के लिए तीसरे अध्याय के २७वें श्लोक से आरम्भ करके पांचवें अध्याय के १३वें ''**सर्व कर्माणि मनसा**'' तक तथा ''**योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते**'' से ''**योगी युञ्जीत सततं**'' तक तथा फिर १८ अध्याय के श्लोक सं० ५३ ''**ब्रह्मभूयाय कल्पते**'' तक तथा ''**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा**'' से १८वें के ५५ तक सर्व कर्म संन्यासपूर्वक ज्ञान निष्ठा को विस्तार से कहने के बाद फल सहित इस निष्ठा का उपसंहार '**सर्वधर्मान्**' इस श्लोक से किया।

शंका–आरूढ़ संन्यासी का सर्व कर्म संन्यास नहीं बनता है। उन्हें श्रौत स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। इस शँका का समाधान भगवान् भाष्यकार जी ने तीसरे अध्याय के आरम्भ में विस्तार से किया है। पाठक वहीं देखें। विस्तारभय से यहां नहीं लिखा जा रहा है। जैसे नौका से नदी के उस पार जाने के लिए नौका की आवश्यकता है, पार जाने के बाद फिर नौका की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार अन्तःकरण की शुद्धि के निमित्त निष्काम कर्म उपासना से ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् कर्म उपासना की आवश्यकता नहीं रहती। **सर्वधर्मान्**–श्रौत स्मार्त सभी कर्मों

को साधन सहित (शिखायज्ञोपवीत) त्याग कर श्रुतियों के अनुसार सत्य, अनृत, सुख, दुख लोक, परलोक सभी का परित्याग करके आत्मानुसंधान करें।

शंका–यदि ईश्वर की प्रसन्नता के लिए फलासक्ति रहित कर्म करें, तो क्या हानि है–उत्तर नहीं करना चाहिए। क्योंकि इन कर्मों की अपेक्षा ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ है, क्योंकि शुद्ध ब्रह्म में जीव ईश्वर का भाव भी माया से है। अतः माया से कल्पित जीव ईश्वर के असत्य भेद को त्याग कर माया तथा उसके कार्य से रहित नित्य, निरन्तर निराभास, निष्कल, निष्क्रिय शान्त, अनन्त, सच्चिदानन्द स्वरूप, एकरस, अबाध्य परिपूर्ण, मुझ परब्रह्म परमात्मा की उपासना करे। अयथार्थ दर्शी भक्त की अपेक्षा, यथार्थदर्शी सत्यनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता की परमेश्वर से अधिकतम प्रीति होती है। जैसे साधारण शूरवीरों की अपेक्षा राजा को शूरतम अधिक प्रिय होता है। वैसे ही अज्ञानी भक्तों की अपेक्षा ज्ञानी भक्त भगवान् को प्रिय है। भगवान् ने उसे अपनी आत्मा कहा है। तुलसी दास जी कहते हैं, "**ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा।**" **शंका**–सर्वधर्मान् परित्यज्य से तो भगवान् ने धर्म का परित्याग करने को कहा है। अधर्म त्याग का तो कहा नहीं, धर्म त्याग करने वाले की अधर्म में प्रवृत्ति हो सकती है। यह शंका उचित नहीं, क्योंकि ज्ञान से पूर्व वेद विरुद्ध पाप को साधनावस्था में त्यागा जा चुका है। अतः अधर्म में प्रवृत्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे किसी सत्पुरुष ने ब्रह्मचर्य में ही वासी अन्न का त्याग कर दिया है। उसकी दूसरे आश्रम में वासी भोजन की इच्छा नहीं होती। सर्व धर्मान् पद से अधर्म भी ग्रहण किया है। मार्कण्डेय पुराण में मदालसा ने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुए कहा है कि, "**त्यज धर्ममधर्मं च सत्यानृतेऽपि त्यज, सत्यानृते येन त्यजसि तदपि त्यज**" हे पुत्र तुम धर्म अधर्म, सत्य झूठ तथा इन दोनों का त्याग जिससे करते हो। उस अन्तःकरण की वृत्ति का भी त्याग कर दो। अर्जुन के लिए यह आज्ञा नहीं है। अर्जुन को सम्बोधित करके मुमुक्षु ब्राह्मण के लिए कहा गया है। क्षत्रिय का संन्यास में अधिकार नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण धर्मों का त्याग (आत्मज्ञान) तथा अज्ञान से होने वाले कर्म दोनों अन्धकार प्रकाश के समान एकत्र नहीं रह सकते। मानस में भी कहा है, "**करम किहोहिस्वरूप हि चीन्हें।**" स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर कर्म कैसे हो सकते हैं। अतः सर्वधर्म परित्याग की विधि संन्यासी के लिए ही है। ऐसा तत्त्व ज्ञान महावाक्यों से होता

है। ''**एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म**'' इत्यादि अनेक श्रुतियां एक ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती हैं। अत **एकम्** सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, अपूर्व, अन्तर्वाह्य रहित, अखण्ड ज्ञान स्वरूप, अद्वितीय **माम्** परम **ब्रह्म शरणं व्रज** मेरे सहित सारा जगत् ब्रह्म ही है ऐसे ब्रह्मानुसंधान करते हुए भगवान् की शरण में जाना। साधक की अभ्यास दशा में बुद्धि के शुद्ध होने पर धृति को आत्मा में नियन्त्रित करने से, शब्दादि विषयों का त्याग करने से सर्वत्र आत्माकार वृत्ति होती है।

ऊपर के भाष्य से आत्म ज्ञानी संन्यासी ही स्वरूप से कर्मों का त्याग कर सकते हैं, अन्य नहीं। आत्म ज्ञान में एक मात्र संन्यासी का ही अधिकार है और किसी का नहीं क्योंकि श्रुति ''**संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्**'' की आज्ञा देती है। भगवान् शंकराचार्य जी ने भी संन्यास को ही ज्ञान प्राप्ति का साधन माना है। इसी बात को गीता के तेरहवें अध्याय के श्लोक ९ की शंकरानन्दी भाष्य की व्याख्या से सिद्ध करेंगे।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का उन्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का तीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

ज्ञानी अथवा ज्ञान के लक्षण (संन्यास लक्षण)

विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागःन्यासः संन्यासः,
काम्यानां कर्मणां न्यास इति त्यागः ॥

वेद विहित कर्मों का विधिपूर्वक परित्याग संन्यास है। सकाम कर्मों का त्याग, त्याग कहलाता है। जो परमार्थ दर्शी ज्ञानी हैं। उनका ज्ञान निष्ठा में ही सर्व कर्म संन्यास में अधिकार है। दूसरों का नहीं। अतः ज्ञान का साधन तथा ज्ञान की उत्पत्ति के कारणों को गीता के १३वें अध्याय में ७वें से ११वें श्लोक तक कहा है।

अमानि त्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम् ॥८॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्र दार गृहादिषु।
नित्यंच समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥९॥
मयिचानन्य योगेन भक्तिरव्यभि चारिणी।
विविक्त देश सेवित्वमरतिर्जन संसदि॥१०॥
अध्यात्म ज्ञान नित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥११॥

अभिमान से रहित, ढोंग से रहित, अहिंसा, क्षमा शीलता, आचार्य की सेवा, पवित्रता, मन की स्थिरता तथा निग्रह, इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य निरहंकार तथा जन्म मृत्यु, बुढ़ापा, रोग में दुख तथा दोष के दर्शन त्यागे हुए पुत्र स्त्री आदि के प्रति आसक्ति से रहित होना, अनुकूल तथा प्रतिकूल सुख, दुख देने वाली वस्तुओं में सदैव समचित्तता, मुझ में अनन्य योग से अर्थात् परमात्मा के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है, इस प्रकार की निर्विकार भक्ति। एकान्त देश में रहना, भीड़-भाड़ से अरुचि, नित्य अध्यात्म ज्ञान में स्थित होना, तत्त्व ज्ञानार्थ दर्शन, यह सब ज्ञान या ज्ञानी के लक्षण कहे गये हैं।

इन पांचों श्लोकों की व्याख्या में स्वामी शंकरानन्द जी लिखते हैं कि इससे पूर्व **'महाभूतान्यहंकार'** से लेकर **'सविकारमुदाहृतम्'** तक भगवान् ने क्षेत्र के लक्षण बताये। अबक्षेत्रज्ञजीवात्मा के लक्षण बताते हुए कहते हैं। दोनों (जीवात्मा परमात्मा) की एकता का ज्ञान हुये बिना सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए जिज्ञासु को ज्ञानोत्पत्ति के साधनों को जानना चाहिए।

अमानित्व-अपने गुणों की प्रशंसा से रहित, **आचार्योपासनं**-ज्ञानोपदेष्टा आचार्य की श्रद्धा भक्तिपूर्वक सेवा। मन की स्थिरता का साधन-**इन्द्रियार्थेषु** प्रत्यक्ष देखे हुए तथा पुराणों में सुने हुए भोग्य पदार्थों में **वैराग्य**-राग का त्याग, यह मन को वश में करने का कारण है। इसका विशेष रूप से सम्पादन करना चाहिए। **अनहंकार**-जाति, वर्ण आश्रम तथा अच्छे स्वभाव आदि का अभिमान अहंकार है। इससे रहित होना अनहंकार है **जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्श नम्** = जन्म आदिकों में बार-बार दुख का दर्शन करने से पुण्य शील विवेकियों को सर्वत्र तीव्र वैराग्य तथा मोक्ष की इच्छा होती

है। अतः मुमुक्षु को इस का भली प्रकार अभ्यास करना चाहिए। **असक्ति**–अन्तःकरण की रागात्मिकता वृत्ति आसक्ति है। उससे रहित होना असक्ति है, वस्तु के प्राप्त होने पर भी अप्राप्ति के समान, सर्वत्र विषयों में प्रीति से रहित होना असक्ति का शब्दार्थ है। **अनभिष्वंग**–अभिष्वंग से रहितता, किन विषयों में अभिष्वंग हो इस पर कहते हैं, ''**पुत्रदार गृहादिषु**'' आदि शब्द से धन क्षेत्र आदि कहे गये उनमें चित्त का न लगना ''**अनभिष्वंग**'' है। इनमें चित्त नहीं लगाना चाहिए।

शंका–''**अनभिष्वंगः पुत्र दार गृहादिषु**'' इन शब्दों से तो एकमात्र गृहस्थों का ही वेदान्त तथा आत्मज्ञान में अधिकार सिद्ध होता है। संन्यासी ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थियों का नहीं। क्योंकि उन्हीं के स्त्री पुत्र आदि होते हैं। अतः उनके प्रति अभिष्वंग नहीं करना चाहिए। अतः गृहस्थों का ही ज्ञान में अधिकार है। दूसरों का नहीं। ऐसी शंका होने पर सिद्धान्ती पूछते हैं कि गृहस्थ किस लिए वेदान्त को पढ़ें। मुक्ति के लिए या अक्षर लाभ के लिए या मनोरंजन के लिए यदि कहो कि मुक्ति के लिए तो बनता नहीं क्योंकि साधन चतुष्टय के सम्पन्न हुए बिना ज्ञान हो नहीं सकता और ज्ञान बिना मुक्ति नहीं हो सकती। बिना साधन के साध्य सिद्ध नहीं होता। अंग हीन साधन का श्रवण ज्ञान नहीं दे सकता और उसके बिना मोक्ष नहीं हो सकता। वेद भी ''**संन्यस्तः श्रवणं कुर्यात्**'' संन्यास को श्रवण का अंग मानता है। ब्रह्मसूत्र के आरम्भ में भी अथ शब्द का अर्थ संन्यास आदि सिद्धि के अनन्तर ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिए, सिद्ध होता है। संन्यास आदि साधन से हीन गृहस्थों का श्रवण आदि में अधिकार सिद्ध नहीं होता। अतः मोक्ष की इच्छा वाले सम्पूर्ण कर्मों का साधन सहित त्याग करने वाले का श्रवण आदि में अधिकार नहीं होता। अतः मोक्ष की इच्छा वाले सम्पर्ण कर्मों का साधन सहित त्याग करने वाले यतियों को ही ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान होता है। उनके श्रवण करने पर भी वाचिक ज्ञान होता है, यथार्थ नहीं। ''**वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः, संन्यास योगाद् यतयः शुद्धतत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।**'' संन्यास योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले यति वेदान्त विज्ञान से उत्पन्न सुनिश्चित अर्थ से युक्त तीनों शरीरों को त्यागने तथा प्रारब्ध के क्षीण होने के अनन्तर सभी यति जन्म मरण से छूट जाते हैं। यदि कहो कि गृहस्थ अक्षर लाभ के लिए वेदान्त पढ़ते हैं तो यह भी ठीक

नहीं, क्योंकि गृहस्थी में निरन्तर विक्षेप वाले संसारी पुरुषों को भली प्रकार अक्षर ज्ञान भी नहीं हो सकता। यदि कहो मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि काव्य नाटक के समान इनमें रोचकता न होने से इसमें रुचि नहीं हो सकती। इसलिए संन्यासियों की ही श्रवण आदि में योग्यता सिद्ध होती है।

पूर्व पक्षी–यदि मुक्ति की इच्छा वाले सर्वकर्म त्यागी संन्यासियों का ही श्रवण आदि में अधिकार सिद्ध होने पर पुत्र स्त्री आदि में अभिष्वंग न करे तो भगवान् का यह वचन व्यर्थ हो जाएगा।

सिद्धान्ती–ऐसी बात नहीं है। उन संन्यासियों का भी पूर्व आश्रम के त्यागे हुए स्त्री पुत्र आदिको में पूर्व वासना से अभिष्वंग हो सकता है। अतः उसका निषेध करते हैं, क्योंकि मन ही सबसे बड़ा भीष्म देवता है। यही सब कुछ है। विषयों के बन्धन में डालने वाला आसक्त मन ही शत्रु है। आसक्ति रहित मन ही बन्धु है। विषयों का ध्यान करने से विषयों की प्राप्ति की इच्छा होती है। अतः मन ही ज्ञानियों का नित्य वैरी है। काम संकल्प तथा अनादि दुर्वासना से युक्त मन अति दुर्निग्रही है। इसका निग्रह अत्यन्त कठिन है। अतः त्यागे हुए स्त्री पुत्रों में आसक्ति हो जाती है। उनके देखने, सुखी दुःखी होने में सुखी दुखी होता है तथा वर्तमान प्रारब्ध से प्राप्त हुए भिक्षा, कौपीन, कन्था आदिकों में यह अच्छा है, यह बुरा है, यह छोटा है, यह बड़ा है, ऐसी आसक्ति होती है। संन्यासी को भूल से भी इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए, यह भाव है।

स्त्री पुत्र आदि में अभिष्वंग मान लेने पर भी गृहस्थों आदि का अधिकार मानने पर अगले वचन से संगति नहीं लगती है।

"**नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।**" अर्थात् इष्ट = सुख के साधन, अनिष्ट = दुख के साधनों की प्राप्ति में सर्वदा हर्ष विषाद से रहित (हर्ष = मुख का खिलना, विषाद = चेहरा फीका पड़ जाना) बाहर तथा भीतर के विकार से रहित चित्त, जिस विद्वान् का है वह समचित्त है, यह संसारी गृहस्थों में सम्भव नहीं। गृहस्थ में पुत्रोत्पत्ति में हर्ष तथा मृत्यु में विषाद कोई दूर नहीं कर सकता। अतः उनका ज्ञान में अधिकार नहीं है यह सिद्ध हुआ।

अपवाद स्वरूप हजारों लाखों में कोई गृहस्थ जनकादिकों के समान मिलता भी है तो वह संन्यासी ही है। ऐसा चारों साधनों से सम्पन्न गृहस्थ ब्राह्मण भी विधिवत् संन्यास लेकर ज्ञान का अधिकारी है। सहारनपुर के पास एक ऐसे विरक्त दम्पती ब्राह्मण रहते थे। उनका पुत्र बम्बई में था। एक दिन उन्हें तार प्राप्त हुआ। आप का पुत्र मरणासन है जीने की कोई आशा नहीं। इसको पढ़ सुन कर उन्हें कोई दुख नहीं हुआ। दूसरे दिन फिर तार आया भगवत् कृपा से आपका पुत्र पूर्ण स्वस्थ तथा जीवित है। इसे पढ़कर उनका चेहरा तथा मन प्रफुल्लित नहीं हुआ। अतः अपवाद है सिद्धान्त नहीं। सिद्धान्त वह है जो सर्वत्र लागू हो। इन प्रमाणों से साधन चतुष्टय सम्पन्न विरक्तका ही संन्यास सहित ज्ञान में अधिकार सिद्ध होता है, अनुरक्त का नहीं। उपनिषद भी अनुरक्त को गृहस्थ में रहने की, विरक्त को संन्यास की आज्ञा देती है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का इकतीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

वृहदारण्यकोपनिषद् में शांकरभाष्यानुसार संन्यास की व्याख्या

यद्यपि संन्यास तथा त्याग के सम्बन्ध में श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती जी तथा जगद्गुरु भगवत् पाद स्वामी शंकरानन्द जी महाराज के निर्णय को लिखा जा चुका है, किन्तु लोक में जैसे किसी प्रकार का मुकद्दमा पहले जिला न्यायालय में जाता है। यदि उसे कोई स्वीकार नहीं करता, तो उसकी अपील उच्च न्यायालय में होती है। यदि कोई उच्च न्यायालय के निर्णय को नहीं मानता तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय में होती है। उच्चतम न्यायालय का अन्तिम निर्णय मानने के लिए सभी बाध्य हैं। वैसे ही त्याग तथा संन्यास के सम्बन्ध में मधुसूदन स्वामी का न्याय जिला न्यायालय है तथा शंकरानन्द जी का उच्च न्यायालय तथा परम प्रामाणिक उपनिषद् को लेकर भगवत् पाद शंकर का निर्णय उच्चतम न्यायालय का है।

श्रुती ने '**न्यासः ब्रह्मः**' संन्यास को ब्रह्मस्वरूप कहा है। संन्यास क्या है? क्रमानुसार इच्छाओं के त्याग का नाम संन्यास है। विष्णु सहस्रनाम में भी संन्यास विष्णु भगवान् के हजार नामों में एक नाम कहा गया है।

वृहदारण्यक उपनिषद् के तीसरे अध्याय के पांचवें ब्राह्मण के भाष्य में भाष्यकार श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं कि जीव को जन्म मरण रूपी बन्धन की प्राप्ति कारण सहित है। इसका कारण अध्यास या भ्रान्ति है। यह अनेकों प्रकार का है। उनमें एक देहाध्यास है। इस अध्यास की निवृत्ति आत्मा अनात्मा के विवेक सहित भोगों के उपरामता बिना नहीं होती। इस बन्धन मुक्तिका साधन संन्यास सहित आत्म ज्ञान है। अतः कौषीतकि ऋषि के पुत्र कहोलने याज्ञवल्क्य जी से आत्मा के सम्बन्ध में पूछा, तब उन्होंने उत्तर देते हुए कहा, आत्मा सर्वान्तर है तथा सूक्ष्म तथा सर्वरूप है। कहोल ने पूछा–सर्वान्तर आात्मा कौन है। महर्षि उत्तर देते हैं–

यो अशनाया पिपासे शोकं मोहं जरा मृत्युमत्येति। त्रयं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाः वित्तैषणायाश्चत लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यंचरन्ति। या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा, या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतस्तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य वाल्येन निष्ठास्येद्वाल्यंच पांडित्यंच निर्विद्याथ, मुनि मौंनं रमौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः सः ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातो ऽन्यदांततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम॥१॥

जो भूख, प्यास, शोक, मोह, बुढ़ापा तथा मृत्यु का अतिक्रमण करता है। ब्राह्मण पुत्र, धन तथा लोक कामना का त्याग करके इस आत्मा को जानकर भिक्षावृत्ति (संन्यास) से निर्वाह करते हैं। जो पुत्र की इच्छा है, वही धन की इच्छा है, वही लोकेच्छा है। यह दोनों ही इच्छाएं जिसमें है। उसका त्याग करके ब्राह्मण पाण्डित्य का त्याग कर बालभाव से युक्त हों। आत्मा का बल ही बालभाव है। मुनि पाण्डित्य मौन तथा अमौन का जो त्याग करता है। वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण किससे होता है। इसका उत्तर दिया। इस आत्मा के अतिरिक्त सब मिथ्या है। महर्षि का यह वचन सुनकर कौषीतकिनन्दन कहोल मौन हो गये।

शांकर भाष्य

एक ही आत्मा तीनों भेदों से रहित, अखण्ड मण्डलाकार सर्वव्यापी होने पर भी तीनों शरीर प्राण की उपाधियों से युक्त दो प्रकार का है। एक ब्रह्मात्मा तथा दूसरा जीवात्मा। ब्रह्मात्मा देश, काल वस्तु के परिच्छेद से रहित होने के कारण सुख, दुख, भूख, प्यास, शीतोष्ण, मोह, भय आदि से रहित है। वह संग रहित है, वह स्वर्ग नरक को नहीं जाता।

दूसरा जीवात्मा वह तीन शरीर की उपाधियों को प्राप्त करके जन्म मरण, भूख, प्यास आदि की संग भ्रान्ति से प्रतीत होता है। इसी उपाधिकृत भेद को लेकर भगवान् भाष्यकार लिखते हैं। एक ही आत्मा क्षुधा, पिपासा से रहित तथा सहित कैसे है। ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं–

हम अनेक बार इसका उत्तर दे चुके हैं। नाम रूप, विकार कार्य, कारण, लक्षण वाले शरीर इन्द्रिय के संयोग से भ्रान्ति के कारण जीव संसारी है। इसके विरुद्ध श्रुतियों की भी वही व्याख्या कर चुके हैं, जैसे रज्जु शुक्ति का तथा आकाश में क्रमानुसार सर्प चान्दी तथा मलिनता का आरोप है। वैसे ही शुद्ध आत्मा में भ्रान्ति से उसकी प्रतीति होती है।

शंका–नाम, रूप, उपाधि को स्वीकार करने पर **'एक मेवाद्वितीयंब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'** इन श्रुतियों से विरोध होता है।

समाधान–यह सब उपाधियां यथार्थ नहीं हैं किन्तु एक जल ही जैसे बुद्बुदा फेन के रूप में दीखने पर भी जैसे वास्तव में वह जल ही है। वैसे ही ब्रह्म अनेकों रूपों में भासता है। जैसे जल के अस्तित्व से फेन आदि का अस्तित्व है और वे क्षणिक हैं। वैसे ही शरीर बुद्धि आदि भी क्षणिक तथा मिथ्या हैं। अतः यह भ्रान्ति मूलक व्यवहार मिथ्या है। जैसे रस्सी आदि को सर्प आदि स्पर्श नहीं करते। वैसे ही ब्रह्म को माया के कार्य कारणात्मक गुणा स्पर्श नहीं करते। अविद्या से प्रतीत होने वाली उपाधि के कारण उसकी स्वाभाविक शक्ति से नाम रूपादि की सृष्टि होती है। यह भेद कृत मिथ्या व्यवहार जिनके मत में ब्रह्म तत्त्व से भिन्न व्यवहार नहीं है, किन्तु जो परमार्थवादी हैं।

वे विचार करते हैं कि कौन सी वस्तु वास्तव में हैं कौन सी नहीं। वे एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म की सत्ता का ही अनुभव करते हैं। ब्रह्म अव्यवहार्य है, ऐसा निश्चय करने वालों का किसी से विरोध नहीं है।

परमार्थ दर्शी ब्रह्म के अतिरिक्तकिसी की सत्ता स्वीकार नहीं करते। किन्तु अज्ञानियों की दृष्टि में जिनको जगत् के मिथ्यात्व तथा ब्रह्म के सत्यत्व का बोध नहीं हुआ। उनकी दृष्टि का हम प्रतिषेध नहीं करते। अत: शास्त्रीय तथा लौकिक व्यवहार ज्ञानी और अज्ञानी को लेकर है, इसलिए किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि परमार्थ सत्ता में एक अद्वितीय ब्रह्म ही है।

एक बार हनुमान् जी के प्रार्थना करने पर राम जी ने उनको १०८ उपनिषदें पढ़ाई। बाद में हनुमान जी से पूछा तुम कौन हो? तब हनुमान जी ने कहा–

देह बुद्ध्यातु दासोऽहं जीव बुद्ध्या त्वंदशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चितामतिः॥

हे राम जी! व्यावहारिक दृष्टि से मैं आपका दास हूं। जीव बुद्धि से मैं आपका ही अंश हूं और तात्त्विक दृष्टि से मैं वही ब्रह्म हूं, परन्तु इस प्रकार का ज्ञानोपदेश अधिकारियों को ही करना चाहिए। अनधिकारी के प्रति नहीं।

अज्ञस्य अर्ध प्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति योवदेत्।
महा निरय जालेषु स तेन विनियोजितः॥

अज्ञानी या अर्द्धज्ञानी के प्रति सर्व कुछ ब्रह्म है ऐसा जो कहता है उसको तो उसने महानरक के जाल में डाल दिया।

उषस्ति ब्राह्मण ने भी याज्ञवल्क्य जी से आत्मा के विषय में पूछा था। तब उन्होंने भी आत्मा को तीनों शरीरों, सभी इन्द्रियों, प्राणों तथा अवस्थाओं से परे बताया था। विशद रूप से जानने के लिए जब कहोल ने प्रश्न किया। तब महर्षि ने कहा–आत्मा सब के भीतर होने पर भी शोक मोह कामना आदि से रहित है।

इष्टं तूद्दिश्य चिन्तयतो यदरमणं तत् तृष्णामिभूतस्य काम वीजम्। तेन हि कामोदीप्यते॥

इष्ट वस्तु के उद्देश्य से चिन्तन करने वाले और उसकी तृष्णा से दबा हुआ शोक काम बीज है इससे काम प्रज्वलित होता है। **मोहं**–विपरीत प्रतीति वाले भ्रम को मोह कहते हैं। इस भ्रम का बीज सब अनर्थों को देने वाली अविद्या है अर्थात् नश्वर में अविनाशी, पवित्र में अपवित्र, दुख में सुख बुद्धि, भिन्न कार्य होने से शोक मोह का समास नहीं किया। इन दोनों का आधार मन है एवं शरीर अधिकरण है। जिनका यह जरामृत्यु इनका भी समास है इनको आत्मा पार करती है। **जराइति** शरीर इन्द्रियों के संघात का विपरीत परिणाम, झुर्रियां पड़ जाना, बाल पक जाना जरा (बुढ़ापा) है। **मृत्यु**–स्थूल शरीर का सूक्ष्म, कारण शरीरों से वियोग का नाम मृत्यु है। आम वेत्ता शरीर मन प्राणों के अन्तर्गत उपर्युक्त सम्पूर्ण धर्मों का अति क्रमण करता है।

यह भूख प्यास आदि धर्म प्राण, मन, शरीर स्थान वाले प्राणियों में निरन्तर समुद्र की तरंगों के समान संसार इस नाम से कहे जाते हैं, परन्तु यह जो सब का द्रष्टा मुख्य आत्मा हैं। वह ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी प्राणियों का आत्मा है तथा क्षुधा, पिपासा आदि धर्म संसार के धर्म हैं। उसे उसी प्रकार स्पर्श नहीं करते, जैसे आकाश को बादल नहीं स्पर्श करते। इस आत्म स्वरूप को जानकर मैं वही नित्य तृप्त ब्रह्म हूं। सर्व संसार धर्म से रहित ऐसा जानकर ब्राह्मण यहां ब्राह्मण शब्द जन्म से ब्राह्मण का वाचक है; क्योंकि ब्राह्मण का ही संन्यास में अधिकार है। ऋग्वेद में कहा है–चार आश्रम ब्राह्मण के लिए हैं। तीन क्षत्रियों के लिए, दो वैश्यों के लिए तथा एक शूद्र के लिए है। मनु जी ने भी कहा है कि "**मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिंगधारणम्। वाहुतो ऊरुतो जातानां नैवधर्मः प्रशस्यते।**" मुख से उत्पन्न ब्राह्मणों का का ही वैष्णव लिंग (ब्रह्मदण्ड) के धारण करने में अधिकार है। भुजाओं से उत्पन्न क्षत्रियों तथा ऊरु से उत्पन्न वैश्यों का नहीं किन्तु ब्रह्मचर्या श्रम में तीनों ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का अधिकार है। इन तीनों को द्विज कहते हैं। शूद्र एकज हैं ब्रह्मा जी ने तीनों वर्णों की उत्पत्ति वेद मंत्रों से की है, किन्तु शूद्र की वेद मंत्रों से नहीं। इसलिए शूद्र का अधिकार नहीं है। यहां पर ब्राह्मण शब्द जाति वाचक है। इस विपरीत भाव से उत्थान करके, कहां से सो बताते हैं। **पुत्रैषणायाः**–पुत्र के लिए कामना पुत्रैषणा है। पुत्र प्राप्त करके मैं इस लोक को जीतूंगा। लोक को जीतने की इच्छा लोकैषणा है, किन्तु स्त्री के बिना पुत्र प्राप्त नहीं होता

अर्थात् संन्यासी स्त्री की कामना न करे। यदि पुत्र स्त्री हो, तो उनका त्याग कर दे, यह भाव है।

वित्तैषणायाश्च–यह यागादि कर्म का साधन गौ, भूमि धनादि सामग्री है। इन सामग्री से कर्म करके मैं पितृलोक को जीतूंगा, अथवा विद्या सहित देवलोक को अथवा केवल हिरण्य गर्भ विद्या (प्राण विद्या) से योगाभ्यास से इस वेद वित्त से देवलोक प्राप्त करूंगा, कुछ आचार्यों का कथन है कि देव वित्त का अर्थात् देवलोक का त्याग नहीं हो सकता, क्योंकि उसी के बल से व्युत्थान होता है, किन्तु उनका ऐसा कहना मिथ्या है, क्योंकि श्रुति ने, निश्चय ही इतना ही काम है देववित्त को भी ऐषणा के अन्दर माना है। प्राण विद्या ही देवक्ति है। देव लोक की प्राप्ति का कारण होने से। निरूपाधिक ब्रह्म को विषय करने वाली ब्रह्म विद्या, देव लोक की प्राप्ति का कारण नहीं है, क्योंकि श्रुति कहती है कि वह 'सर्व हो गया' इसका ज्ञाता आत्म रूप हो जाता है। इस श्रुति के प्रमाण से संन्यास केवल ब्रह्म विद्या से होता है। उस आत्मा को जानकर ब्राह्मण तीन इच्छाओं को त्याग कर भिक्षावृत्ति से विचरण करते हैं।

इसलिए अनात्म लोक के साधन इन तीनों ही साधनों से व्युत्थान करके (त्याग करके) ऐषणा = कामना, "निश्चय ही काम इतना है।" इस श्रुति से इन अनात्म लोक की प्राप्ति के साधनों में तृष्णा न करके यह व्युत्थान का अर्थ किया है।

सभी साधनों की इच्छा फलेच्छा है। इसलिए श्रुति ऐसी व्याख्या करती हैं। ऊपर तीन इच्छाएं कही गईं। आपने एक ही इच्छा कैसे कही इस पर कहते हैं कि जहां पुत्र की कामना है। वहां धन की भी कामना है, क्योंकि बिना धन के स्त्री पुत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। जो वित्तेषणा है वही लोकेषणा है। वह फल के लिए है। सब फल के लिए साधनों को स्वीकार करते हैं। अतः एक ही ऐषणा है लौकेषणा है। वह फल के लिए है। सब फल के लिए साधनों को स्वीकार करते हैं। अतः एक ही ऐषणा लौकेषणा बिना साधन के सम्पन्न नहीं होती। अतः साध्य साधन भेद से एक हैं। इसलिए ब्रह्म वेत्ता के लिए कर्म या कर्म के साधन की आवश्यकता नहीं है।

अतः ब्राह्मण सम्पूर्ण कर्म तथा देव, पितृ, मनुष्य लोक सम्बन्धी यज्ञोपवीत आदि को छोड़कर चूंकि इन्हीं के द्वारा देव पितृ ऋषि सम्बन्धी कर्म किये जाते हैं। देव कर्म

में यज्ञोपवीत बायें कंधे पर, ऋषि कर्म में कण्ठीवत् और पितृ कर्म में दायें कंधे पर यज्ञोपवीत होता है। यज्ञोपवीत को त्याग करके परम हंस परिव्राजक भाव को प्राप्त होकर भिक्षा वृत्ति करते हैं। दण्ड आदि धारण करते हैं। जो लिंग का त्याग करके केवल संन्यासाश्रम का आश्रय ग्रहण करते हैं। इनमें भी विविदिशा संन्यासी दण्ड आदि चिन्हों को धारण करते हैं तथा विद्वत् संन्यासी दण्ड आदि चिन्हों से रहित है। इसलिए स्मृतियों में कहा है–

तस्मादलिंगो धर्मज्ञोऽव्यक्त लिङ्गोऽव्यक्ताचारः।
अथ परिव्राड् विवर्ण वासा मुण्डोऽपरिग्रहः॥

इसलिए धर्मज्ञ विद्वान् संन्यास की पहचान दण्ड तथा आचार से रहित हो तथा गुप्त आचार वाला हो। संन्यास के अनन्तर परिव्राजक संन्यासी बिना रंग के वस्त्र धारण करे। मुण्डन करवावे तथा परिग्रह (संग्रह) न करे। शिखा सहित केशों को कटवा कर यज्ञोपवीत को विसर्जित कर दे।

भगवती श्रुतितो भिक्षा करते हैं। ऐसा कहती हैं। इसमें वर्तमान काल लट् लकार की क्रिया का प्रयोग किया गया है। यह प्रशंसा मात्र है, विध वचन नहीं है। श्रुति, स्मृति यज्ञोपवीत का साधनों सहित त्याग की आज्ञा नहीं देती, क्योंकि उपनयन के अनन्तर वेदाध्ययन करे। करवाये, यज्ञ करे, करवाये, संन्यास में अध्ययन वेद विहित है अर्थात् वेद का त्याग न करें–"**वेद संन्यासनाच्छूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत्। स्वाध्याय एवोत्सृज्यमानोवाचं (आपस्तम्बः) ब्रह्मोज्झं वेद निन्दा च कौट साक्ष्यं सुहृद् वधः। गर्हितानन्नाद्ययोर्जग्धिः सुरापान समानिषट्॥**" ब्राह्मण वेद का त्याग न करे। इसका त्याग करने से शूद्र हो जाता है। स्वाध्याय से सम्बन्धित वाणी का मैं त्याग करता हूं। वाणी का त्याग करने वाले को स्वाध्याय करना चाहिए। वेद का त्याग वेद निन्दा, झूठी गवाही, मित्र की उपासना, अतिथि सेवा, हवन, जप, कर्म, भोजन में आचमन में, स्वाध्याय में, यज्ञोपवीती होना चाहिए। संन्यासियों के धर्म में भी गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय भिक्षा, आचमन आदि कर्म पाये जाते हैं, यज्ञोपवीती गुरुओं की सेवा का अंग होने से त्याज्य नहीं, यद्यपि तीनों चेष्टाएं विद्यमान हैं। इसलिए पुत्रादि इच्छाओं

का त्याग करना चाहिए, किन्तु वेद विहित कर्मों का शिखा यज्ञोपवीत आदि का त्याग उचित नहीं। इनका त्याग करने से निन्दनीय कर्म के आचरण तथा नत्यागने योग्य यज्ञोपवीत आदि का त्याग महान् अपराध है। अतः संन्यासियों को इनका त्याग नहीं करना चाहिए। इनका त्याग वेद विरुद्ध है। अज्ञान से इनका त्याग किया जाता है।

समाधान–ऐसी बात नहीं है, "**यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वतद्वर्जयेद्यतिः।**" यज्ञोपवीत तथा वेद का यति त्याग कर दें। सम्पूर्ण उपनिषदेंज्ञान परक हैं। आत्मदर्शन करना चाहिए। इसके लिए आत्मा के सम्बन्ध में सुनना, विचार करना तथा निदिध्यासन करना चाहिए। वह आत्मा साक्षात् अपरोक्ष, सर्वान्तर, भूख, प्यास आदि संसारी धर्मों से रहित है। उसका अनुभव करना चाहिए ।सम्पूर्ण उपनिषदों का यही तात्पर्य है इसमें प्रशंसा यथार्थ है। इसके विपरीत आत्मा को इन धर्मों से युक्त मानना अज्ञान अथवा अविद्या है। "**अन्योऽसावन्योहमस्मीति। न स वेद। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति। य इहनानेवपश्यति। एकदैवानुद्रष्टव्यम्। एकमेवाद्वितीयम् तत्त्वमसि इत्यादि श्रुतिभ्यः**" मैं और हूं परमात्मा और है अथवा इष्टदेव और है। इस भेद बुद्धि से उपासना करने वाला देवताओं का पशु है।

यह परम तत्त्व को नहीं जानता। जो एक ब्रह्म में अनेकत्व देखता है। वह जन्म मरण से नहीं छूटता। अतः एकमात्र ब्रह्म को ही देखना चाहिए। एक अद्वितीय ब्रह्म ही है। वही ब्रह्म तुम हो। इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध है। इस प्रकार के श्रुतियों के सैंकड़ों वचन एक ब्रह्म को सत्य तथा जगत् को मिथ्या सिद्ध करते हैं। जीवात्मा परमात्मा के एकत्व का प्रतिपादन करते हैं।

विद्या अविद्या एक पुरुष में एक साथ नहीं रह सकती। अंधकार प्रकाश के समान विरोध होने से। इसलिए आत्म वेत्ता को अविद्या में अधिकार नहीं है। क्रिया कारक फल में भेद होने से। वह बार-बार जन्म मरण को प्राप्त करता है। श्रुति ने निन्दा की है। सम्पूर्ण क्रियाएं साधन तथा फल अविद्या विषयक होने से त्याज्य हैं। इसलिए साधन फल तथा स्वभाव वाले होने से आत्म तत्त्व से विलक्षण है। यज्ञोपवीतादि साधनों से सिद्ध होने वाले, अविद्या से होने वाले, कर्मों तथा एषणाओं का त्याग करके संन्यास लेने की विधि है।

शंका–उपनिषद् ज्ञान परक है। अतः इच्छाओं का त्याग करके संन्यास की आज्ञा देकर प्रशंसा करती है। संन्यास की विधि नहीं दूसरी ओर पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए दर दर की भीख मंगवाती है अर्थात् इच्छाओं के एक देश का त्याग कराके, भिक्षा मांगने का विधान करके दूसरी इच्छाओं को ग्रहण कराती है।

समाधान–ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह बात ठीक नहीं। जैसे वेद द्विजातियों को सन्ध्या गायत्री जप के अनन्तर भोजन करने की आज्ञा देता है। भोजन करना सन्ध्या आदि का फल नहीं है। वैसे ही सम्पूर्ण इच्छाओं का परित्याग करके भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करना समाधि में सहायक है। भिक्षा की आसक्ति जिसके मन में नहीं है। वह बन्धनकारक नहीं है। यज्ञ से बचे हुए अन्न को भगवान् ने अमृत कहा है। वह संस्कार का हेतु है। भिक्षा वृत्ति संस्कार का हेतु नहीं, क्योंकि नित्य की विधि संन्यासी के लिए हानिकारक है।

शंका–यदि संन्यासी के लिए वेद के नियम विधि इष्ट नहीं है, तो भिक्षावृत्ति का प्रयोजन ही क्या हुआ अर्थात् क्यों की जाती है।

समाधान–यह प्रश्न ठीक नहीं, क्योंकि दूसरे साधनों के त्यागने का विधान किया है। इस पर भी यदि कोई क्रिया रहित ज्ञान से दूर हो जाएग। केवल भिक्षा पर ही निर्भर होगा, तो ऐसी भिक्षा से क्या लाभ। संन्यास में ज्ञान की प्रधानता होनी चाहिए। भूख की निवृत्ति के लिए भिक्षा आवश्यक है, जो तुमने प्रश्न किया था। संन्यासी को भी यज्ञोपवीत धारण करके जपादि करना चाहिए। शास्त्र के यह वचन अज्ञानी त्रिदण्डी संन्यासी के लिए है। उनके शिखा सूत्र दण्ड आदि रहते हैं। ज्ञानी के नहीं। यदि इन्हीं वचनों को आत्म ज्ञानी संन्यासी में मानते हो, तो ठीक नहीं।

ब्राह्मण किसे कहते हैं–

''निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम्।
अक्षीणं क्षीण कर्माणं तं देवा ब्राह्मणं बिदुः॥''

जो आशीर्वाद से रहित, किसी भी कार्य को आरम्भ न करने वाला, प्रणाम तथा स्तुति से रहित, आत्म ज्ञान से क्षीण न हो और कर्मों के त्यागी को देवताओं ने ब्राह्मण

कहा है। "**यः ब्रह्मभावं प्राप्नोति स ब्राह्मणः**" जो ब्रह्म भाव को प्राप्त हो गया वह ब्राह्मण है। जिसको देखने से यह साधु है या असाधु है, विद्वान् है या मूर्ख है, दुराचारी है या सदाचारी है पता न चले उसे ब्राह्मण कहते हैं अर्थात् जो अपने गुणों को छिपाकर रखे, दूषित न होने पर भी दूषित के समान प्रतीत हो। जैसे दत्तात्रेय, जड़भरत आदि। अवधूत कोटि के विद्वान् दण्ड आदि लिंग से रहित अपने स्वरूप चिन्तन में तल्लीन रहते हैं।

इसलिए पूर्ववर्ती विद्वान् ब्राह्मण लोक सुख का परित्याग करके, एषणाओं का त्याग करके, भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करते हैं। अतः वर्तमान ब्राह्मण भी (ब्रह्म वेत्ता) **पाण्डित्यं**–आत्म विज्ञान आत्मानुभूति ही पाण्डित्य है। पाण्डित्यं **निर्विद्य** विशेष रूप से जानकर, गुरु सेवा करते हुए गुरुओं तथा शास्त्रों से जानकर सभी इच्छाओं से ऊपर उठकर, इच्छा रहित होना ही पाण्डित्य है। इच्छाओं का तिरस्कार किये बिना पाण्डित्य नहीं होता। अतः आत्म ज्ञान रूपी पाण्डित्य से ही ज्ञान होता है। फिर ज्ञान बल में स्थितहोने की इच्छा करे। "**बाल्येन तिष्ठासेत्**" आत्म ज्ञान बल में स्थित होने की इच्छा करे।

ज्ञानी और अज्ञानी दोनों में बल होता है। अज्ञानी का बल साधन तथा फल का आश्रय है, किन्तु ज्ञानी उसका त्याग कर असाधन और फल अर्थात् (ज्ञान और स्वरूपाकार स्थिति) केवल इसी बल को ग्रहण करते हैं। आत्मवेत्ता इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के सुखों में नहीं फंसते। ज्ञान बल से ऊपर उठ जाते हैं, किन्तु अज्ञानी मूढ़ उस बल की इच्छा नहीं करते। वे विषयों तथा इच्छाओं के वशीभूत हो जाते हैं। केवल आत्म ज्ञान से विषयों का तिरस्कार होता है। अतः ज्ञानी इस बाल भाव में स्थिति करें। आत्म ज्ञान से विषयों का तिरस्कार होता है। मुण्डकोपनिषद् में भी कहा है, "**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**" आत्मा की प्राप्ति आत्म ज्ञान रूपी बल के बिना नहीं होती। यहां बल शब्द शरीर बुद्धि का वाचक नहीं है। अतः वाल्याभाव तथा पाण्डित्य इन दो से आत्म ज्ञान के अनन्तर मनन करने से मुनि कहलाता है। अनात्मा से प्रतीत होने वाली समस्त प्रतीतियों को ब्राह्मण त्याग करें। "**वाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्य–निश्शेषं कृत्वा अथ मननात् मुनिर्योगी भवति एतावद्धि ब्राह्मणेन कर्त्तव्यम्।** यदुत

सर्वअनात्म प्रत्ययः तिरस्करणमेतत् कृत्वा कृत कृत्य योगी भवति अमौनं–आत्म ज्ञानात् प्रत्यय तिरस्कारौ, पाण्डित्यवाल्य संज्ञकौ निःशेषं कृत्वा मौनं नाम। पर्यवसानं फलं तच्च निर्विद्यात् ब्राह्मणः कृतकृत्यो भवति ब्रह्मैव सर्वमिति प्रत्यय उपजायते स ब्राह्मणः। कृत कृत्योऽतो ब्राह्मणः।''

आत्म बल तथा ब्रह्मभाव से विषयों का तिरस्कारपूर्वक निर्विषय ब्रह्म ज्ञान से विषयों को दूर करके श्रवण के बाद मनन करने से मुनि योगी होता है। इतना मात्र ही ब्राह्मण को करना चाहिए। सर्व अनात्म प्रतीति से होने वाले विषयों का तिरस्कार करके आत्मानुभूति द्वारा योगी कृतार्थ हो जाता है।

आनन्द गिरि जी पाण्डित्यं तथा वाल्यं शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, **''आचार्य परिचर्या पूर्वकं वेदान्तानां तात्पर्यावधारणं पाण्डित्यम्। युक्तितो अनात्म दृष्टि तिरस्कारो बाल्यम्। अहमात्मा परं ब्रह्म न मत्तोऽन्यदस्ति किंचन इति। मनसैवानुसन्धानं मौनं, महावाक्यार्थावगतिब्राह्मण्यमिति विभागः॥'**

आचार्य की सेवा करते हुए उपनिषदों का एकमात्र महा तात्पर्य जीव ब्रह्म की एकता में है। इस निश्चय का नाम पाण्डित्य है। युक्ति से अर्थात् समझने समझाने के तरीके से अनात्म दृष्टि का तिरस्कार वाल्य हैं। मैं आत्मा पर ब्रह्म हूं। मुझ से अन्य कुछ नहीं मन से ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा इसकी खोज करना मौन है तथा महावाक्यों के वाच्यार्थ की प्राप्ति ब्राह्मण्य है।

भाष्यम्–मौनं–आत्म ज्ञान से अनात्म प्रतीति का तिरस्कार तथा पाण्डित्य एवं वाल्य संज्ञाओं को निर्विशेष करके स्वरूप चिन्तन करना मौन है। **अमौनं**–आत्म ज्ञान से अनात्म प्रतीति का तिरस्कार करने से जो अन्तिम फल प्राप्त होता है। वह अमौनं है। इस का अनुभव करने वाला ब्राह्मण कृतार्थ हो जाता है। सर्वत्र ब्रह्म में वृत्ति उत्पन्न होती है। जो ब्राह्मण इस प्रकार कृतार्थ है। वही ब्राह्मण है।

उपसंहार

याज्ञवल्क्य ऋषि से कहोल ने प्रश्न किया था कि ब्राह्मण किससे होता है। आत्मा कैसा है। इनका सबका विस्तार से उन्होंने उत्तर दे दिया। ऐसा आत्म ज्ञानी ब्राह्मण है,

क्योंकि आत्मा सर्वान्तर है। भूख प्यास आदि अनात्म धर्मों से परे है। भृंगी कीट न्याय से आत्म स्वरूप का चिन्तन करने वाला ब्रह्म ज्ञानी भी इन विकारों से रहित होकर नित्य तृप्त स्वरूप में ही स्थित होता है। अविद्या से प्राप्त विषय तथा विद्याएं बाधा नहीं पहुंचातीं, क्योंकि इन्हें जगत् तथा शरीर को स्वप्न के जगत् जादूगर के खेल के समान मिथ्या अनुभूत होता है। जैसे कितना प्यासा यात्री क्यों न हो। मरुभूमि में जो जल बुद्धि हो गई थी, किन्तु जल नहीं है, ऐसा अनुभव करने के बाद फिर उसमें जल प्रतीत होने पर भी उसको पीने की, स्नान करने की इच्छा नहीं होती। वैसे ही जिन्होंने ब्रह्म के अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् मिथ्या अनुभव कर लिया है। उनकी सब इच्छाएं शान्त हो जाती हैं और वे अपने को नित्य मुक्त अनुभव करते हैं। उनकी यह स्थिति ही संन्यास है। वही संन्यास के अधिकारी हैं।

कौषीतकि नन्दन कहोल याज्ञवल्क्य का यह वचन सुनकर मौन हो गये। आगे कोई प्रश्न नहीं किया।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का इकतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का बत्तीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

मन्त्र तथा भाष्य का निष्कर्ष

इस मंत्र के भाष्य से यह पता चलता है कि आत्मा कर्त्ता भोक्ता नहीं है ।तीन गुणों से उत्पन्न इन्द्रियां, मन, बुद्धि, गुणों से प्रेरित होकर कर्म करते हैं तथा फल भोगते हैं। शोक मोह आदि मन के तथा भूख प्यास आदि प्राणों के धर्म हैं। अतः ज्ञान योगी या संन्यासी जो अत्मानुसन्धान कर चुके हैं। वे शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रिय तथा प्राणों के धर्मों से लिप्त नहीं होते, क्योंकि उन्होंने इन समस्त अनात्म भावों सेपरे आत्मानुभूति कर ली है। अतः शोक मोह आदि उनके मन पर प्रभाव नहीं डालते। वे तीन ऐषणाओं से मुक्त होकर शास्त्राज्ञानुसार शिखा, सूत्र आदि का त्याग कर देते हैं और वे विद्वत् संन्यास लेकर पाण्डित्य तथा वाल्य भाव में पूर्ण स्थित हो जाते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता। वे अपने सहित तीन सौ पीढ़ियां पूर्व की तथा तीन सौ बाद की तार देते हैं। वे विधि

निषेध से परे हो जाते हैं। ऐसे यतियों के सम्बन्ध में देवर्षि नारद जी भी अपने भक्ति सूत्र में कहते हैं, **''स तरति स तरति सपरान्तारयति''**, वे स्वयं तरते हैं और पूर्वजों को भी तार देते हैं। ऐसे सन्तों का जन्म धन्य है। यहां पर बृहदारण्यक उपनिषद के ्नुसार संन्यास का लक्षण बताया। अब संन्यासोपनिषद् के अनुसार कहेंगे।

संन्यासोपनिषद् का संन्यास–जो अपने लिए क्रियाओं सहित माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई आदिकों के अनुमोदन करने से गृह का परित्याग कर ग्राम की परिक्रमा करके संन्यास के लिए तीर्थ यात्रा करने के अनन्तर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं से संन्यास के लिए प्रार्थना करें। वह याज्ञिक ब्राह्मणों को प्रणाम करके वैश्वानर यज्ञ करें। अपना सर्वस्व गुरुओं को समर्पण कर दें, ऋत्विज पात्रों सहित सम्पूर्ण सामग्री का हवन करे। अथवा पात्र ब्राह्मणों को दे दे, फिर तीनों अग्नियों, आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि तथा सभ्य तथा आवसथ्य यज्ञ विशेष को पञ्चप्राणों में अग्नि सहित स्थापित करने की भावना करे। शिखा सहित केशों को कटवाकर यज्ञोपवीत को तोड़ दे। उस समय यदि पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी हों तथा मोह ग्रस्त हों। उनको देख कर कहे तुम ब्रह्म हो, यज्ञ हो इत्यादि अपने को ब्रह्म रूप में अनुभव करते हुए पूर्व या उत्तर दिशा में जलाशय में चला जाए। कौपीन आदि का त्याग कर दे। गुरु की आज्ञा प्राप्त करके लौटकर आ जाए। उनसे कौपीन कटिवस्त्र दण्ड कमण्डलु आदि प्राप्त करें। चारों वर्णों की भिक्षा करें। किन्तु अन्य उपनिषदों स्मृतियों तथा यति धर्म से सम्बन्धित, यति धर्म निर्णय, यति धर्म प्रकाश, यति धर्म समुच्चयसार आदि ग्रन्थों में तथा श्रीधर स्वामी की भागवत की टीका से इसका विरोध होता है क्योंकि अन्य उपनिषदों में कहा है कि सदाचारी, नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों का अन्न सदैव ग्रहण करे। क्षत्रिय का पर्व में, वैश्य का आपत्ति में, किन्तु शूद्र का कण्ठगत प्राण होने पर भी अन्न ग्रहण न करे। शूद्र फल दे तो ले सकता है। यदि दण्डी स्वामी को तीन दिन तक ब्राह्मण की भिक्षा न मिले तो तीसरे दिन क्षत्रिय या वैश्य का सूखा अन्न लेकर प्राण रक्षा के लिए ब्राह्मण से बनवा कर खा सकता है। इसलिए भागवत के सप्तम स्कन्ध में यति की चारों वर्णों की भिक्षा के सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी लिखते हैं। ब्राह्मणों में चार वर्ण होते हैं जो जन्म तथा कर्म दोनों से ब्राह्मण हैं। वह ब्रह्म ब्राह्मण, जो जन्म से ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय

वृत्ति से निर्वाह करता है, वह क्षत्रिय ब्राह्मण। खेती, व्यापार गोपालन करने वाला, ब्राह्मण वैश्य ब्राह्मण तथा नौकरी करने वाला ब्राह्मण शूद्र है।

संन्यास धर्म दर्पण के अनुसार चारों यतियों के धर्म

वेद में संक्षेप तथा विस्तार से चारों वर्णों तथा आश्रमों के धर्मों का वर्णन किया गया है–"**त्रयोधर्म स्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति**" धर्म के तीन तने हैं यज्ञ, अध्ययन और दान। ब्राह्मण तीनों आश्रमों का धर्म पालन करने के अनन्तर चौथे आश्रम में प्रवेश करे। तब उसको ब्रह्म निष्ठा की प्राप्ति होती है। "**ब्रह्मनिष्ठा–नाम, सर्व व्यापर परित्यागेन अनन्य चित्ततया ब्रह्मणि परि समाप्तिः।**" सभी प्रकार के व्यापार का परित्याग करने से ब्रह्म में पूर्ण रूप से समाहित हुई चित्त वृत्ति का नाम ब्रह्म निष्ठा है। तब संन्यास में प्रवेश करे। यह संन्यास चार प्रकार का है–१. कुटीचक, २. बहूदक, ३. हंस, ४. परमहंस।

१. कुटीचक–यह संन्यासी शिखा यज्ञोपवीत सहित त्रिदण्ड कमण्डलु धारण करते हैं। पवित्र काषाय वस्त्र धारण कर गायत्री जप निरन्तर करें। नित्य प्रति सारे शरीर में भस्म लगावें। हाथ पैर के जोड़ों में मस्तक आदि में त्रिपुण्ड लगायें, श्रद्धापूर्वक नित्य प्रति शिवलिंग पूजा या पंच देवोपासना करें।

२. बहूदक–यह संन्यासी स्त्री, पुत्र का परित्याग करें। ब्राह्मणों के सात घरों से भिक्षा लें। एक घर का अन्न न खायें। त्रिदण्ड के दोनों सिरों को गऊ की पूंछ के बालों से बांधे। अपने पास छींका, पाश कौपीन, जल पात्र, कन्था, पादुका, छत्र, पवित्री, मृगचर्म सुई डोरा, अक्षसूत्र, बाहर का वस्त्र (उपवस्त्र) मिट्टी खोदने के लिए कुदाली रखें। सारे शरीर में भस्म लगायें या त्रिपुण्ड धारण करें। शिखा यज्ञोपवीत से युक्त पंचदेव पूजन में लगे रहे। स्वाध्याय करे, व्यर्थ बातचीत न करें, तीनों कालों की सन्ध्या में गायत्री का जप करें। चातुर्मास्य के अतिरिक्त भ्रमण करते रहें। अनेक तीर्थों का जल पीने से इन्हें 'बहूदक' कहते हैं।

३. हंस–जैसे हंस पानी मिले दूध में से पानी त्याग कर दूध ग्रहण करता है वैसे ही जो यति नित्य अनित्य का ज्ञान करके अनित्य को छोड़कर नित्य परमात्मा को ग्रहण

करे, वह हंस है। ऐसे संन्यासी आदरपूर्वक एक बांस का दण्ड, कमण्डलु छींका, भिक्षापात्र, कौपीन, कन्था धारण करे। त्रिपुण्ड धारण करके शिवलिंग का पूजन करे। वेद के आरण्यक भाग का अध्ययन अरण्य में रहते हुए करें। सूत्र धारण करें। आठ ग्रास भिक्षा लें। तीनों कालों की सन्ध्या में गायत्री जप तथा आत्म चिन्तन करें।तीर्थ यात्रा तथा चन्द्रायण, कृच्छ चान्द्रायण व्रत करें। ग्राम में एक रात्रि से अधिक वास न करें।

४. परमहंस–एक ही ब्राह्मण जैसे–जैसे विवेक वैराग्य की वृद्धि तथा वृत्ति अन्तर्मुख होकर सूक्ष्म होती जाए। उसी क्रम से एक ही गुरु द्वारा क्रमानुसार कुटीचक, बहूदक तथा हंस से परमहंस हो जाए। इस संन्यास से पूर्व त्रिदण्ड, छींका, भिक्षा पात्र तथा कमण्डलु, शिखा यज्ञोपवीत, कौपीन, नित्य कर्म, कटिवस्त्र कन्था आदि वस्तुओं का तथा अन्य संन्यास के चिन्हों का त्याग करें। एक सीधा, ग्रन्थियों से युक्त, निर्दोष शुद्ध भूमि में उत्पन्न हुआ बांस का दण्ड धारण करें। गुरु की आज्ञा प्राप्त करके अग्निरिति भस्म इत्यादि मंत्रों से अभिमन्त्रित करके तीन बार ॐकार का उच्चारण कर दण्ड धारण करे। गुरु की आज्ञा प्राप्त करके "अग्निरिति" भस्म इत्यादि मंत्रों से अभिमन्त्रित करके भस्म धारण करे। तीन बार ॐकार का उच्चारण करते हुए तिर्यक् त्रिपुण्ड धारण करें। मृत्तिका, लकड़ी या बांस आदि के पात्र रखे या नारियल या लौकी आदि के पात्र हों। पाणिपात्र या उदर पात्र हो। धर्माधर्म का परित्याग कर दे। लोभ, मोह आदि का परित्याग करें। चारों प्रकार के यतिचार महीने का चातुर्मास्य करें। परमहंस संन्यासी केवल प्रणव का ही जप करे। पवित्र एकान्त स्थान पर बैठकर १०८ प्रणवों से अर्थात् ३२ से पूरक ६४ से कुम्भक १६ से रेचक करे। यथा शक्ति प्रणव जप के अनन्तर समाधि का अभ्यास करे। विद्वान् उत्तम वृत्ति का आश्रय लेकर आरूढ पतित न हो अर्थात् परमहंस से कूटीचक, बहूदक आदि के धर्म में न आएं।

यति महिमा–ब्राह्मण को संन्यास लेता देखकर सूर्य नारायण भी अपने स्थान से विचलित हो जाते हैं। यह मेरे मण्डल को भेद कर ब्रह्म लोक को जाएगा।

द्वाविमौपुरुषौ लोके सूर्य मण्डल भेदिनौ।
परिव्राड् योग युक्तश्च रणेचाभिमुखोहतः॥

योगाभ्यासी संन्यासी तथा रणभूमि में मरने वाले योद्धा यह दोनों पुरुष सूर्य मण्डल का भेदन करते हैं। भगवान् के चल और अचल दो रूप हैं। अचल मिट्टी आदि की मूर्तियां हैं। चल दण्डी है। हे मुनि श्रेष्ठ! जिसके आश्रम में यति नित्य वास करते हों। उसको तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जैसे सर्वत्र सर्वेश्वर का पूजन होता है। वैसे ही संन्यासी दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो या विद्वान् वेशमात्र से पूजनीय है। शास्त्र के ऐसे वचन यतियों के लिए कल्याणकारी नहीं, किन्तु यति भक्तों के लिए है, क्योंकि सम्मानित तथा पूजित यति का तप दूध देने वाली गऊ के समान क्षीण होता है। ब्रह्मचारियों के देवता ब्रह्मा हैं। गृहस्थों के सभी पूजनीय देवता हैं। वानप्रस्थियों के सूर्य देवता हैं। यतियों के शिव देवता हैं।

संन्यास के अधिकारी ब्राह्मण–देश भेद से दस प्रकार के ब्राह्मण

कर्नाटकाः द्रविडाश्च महाराष्ट्रान्ध्र गुर्जराः।
द्राविड़ाः पंच विख्याताः विन्ध्य दक्षिण वासिनः॥

उपर्युक्त पांच द्रविड़ ब्राह्मण विन्ध्याचल के दक्षिण में रहते हैं।

सरस्वताः कान्याकुब्जाः गौड़ाः उत्कल मैथिलाः।
पंच गौडाः इति ख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः॥

उपर्युक्त पांच गौड ब्राह्मण विन्ध्याचल के उत्तर में रहते हैं।

गुण कर्म स्वभाव वश ब्राह्मणों के भेद–

देवो मुनिः द्विजोराजावैश्यः शूद्रो निषादकः।
पशुःम्लेच्छश्च चाण्डालो विप्राःदशविधा स्मृताः॥

१. देव ब्राह्मण–जो ब्राह्मण नित्यत्रिकाल सन्ध्या, स्नान, जप, हवन, देव पूजन नित्य करते हैं, संन्यास में अधिकार है।

२. मुनि ब्राह्मण–जो बनमें वास करके शाक, पत्र, फल, मूल, सेवन कर नित्य कर्म को करते हुये वेदादि शास्त्रों के अर्थों का मनन करते हैं, वे मुनि ब्राह्मण हैं।

३. विप्र ब्राह्मण–जो नित्य प्रति सबका संग त्याग कर वेद का पठन पाठन करते हैं, तथा सांख्य, वेदान्त का विचार करें। वे विप्र ब्राह्मण हैं। ये ऊपर कहे गये तीन प्रकार के ब्राह्मण संन्यास के अधिकारी हैं।

४. राजा ब्राह्मण–जो जन्म से ब्राह्मण होकर भी क्षात्र वृत्ति से निर्वाह करता है, वह क्षत्रिय ब्राह्मण है। इनका संन्यास में अधिकार नहीं है। यदि शास्त्र में अधिकार दिया होता, तो त्रेतायुग के बाल ब्रह्मचारी परशुराम जी द्वापर के अखण्ड ब्रह्मचारी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि संन्यास ले लेते।

५. वैश्य ब्राह्मण–जो जन्म से ब्राह्मण होने पर भी वैश्य वृत्ति कृषिवाणिज्य गोरक्षासे जीवन यापन करते हैं, वे वैश्य ब्राह्मण हैं।

६. शूद्र ब्राह्मण–जो ब्राह्मण होने पर भी लाख नमक, हल्दी, दूध,घी, तेल, शहद, मांस का व्यापार करता है तथा नौकरी करता है, वह शूद्र ब्राह्मण है।

७. निषाद ब्राह्मण–जो ब्राह्मण चोरी, डकैती, जुआरी, शराबी, मांसादि सेवन करता है, वह निषाद ब्राह्मण है।

८. पशु ब्राह्मण–**''ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्म सूत्रेण गर्वितः॥ तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः॥''**

जो ब्राह्मण होकर भी ब्रह्म तत्त्व को नहीं जानता। केवल यज्ञोपवीत मात्र का अभिमानी है। इस पाप के कारण वह पशु ब्राह्मण कहा जाता है। अथवा जो खड़े-खड़े पाशाब करे। खा-पीकर कुल्ला नहीं करता। वह भी पशु ब्राह्मण है। शिखा तथा यज्ञोपवीत त्याग करने वाला पशु ब्राह्मण है।

९. म्लेच्छ ब्राह्मण–जो ब्राह्मण शुभ कर्म कुवाँ वापी, तालाब, मन्दिर निर्माण आदि कार्यों में विघ्न डालता है। मन्दिरों तथा मूर्तियों को तोड़ता है, वह म्लेच्छ ब्राह्मण है।

१०. चाण्डाल ब्राह्मण–धर्म, कर्म से हीन मूर्ख, निरक्षर, सब पर अत्याचार करने वाला चाण्डाल ब्राह्मण कहा जाता है।

इस प्रकार कर्म द्वारा ब्राह्मणों के लक्षण मनुस्मृति, स्कन्दपुराण काशी खण्ड तथा पद्म पुराण में कहे गये हैं।

कुछ लोग कहते हैं जन्मना जायते शूद्रः–

''जन्मना जायतेशूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते।
वेद पाठात् विप्रः, ब्रह्मजानाति ब्राह्मण॥''

पीछे के वचन से इसका विरोध प्रतीत होता है। अतः यहाँ विचार की आवश्यकता है। यह प्रसिद्ध पाठ है। भागवत में प्रसिद्ध है कि शमीक ऋषि के पुत्र श्रृंगी ऋषि जब गाय के गर्भ से पैदा हुए तो उन्होंने पिता का अपमान करने से राजा को शाप दे दिया था। ब्रह्मशाप से परीक्षित मारे गये।

''ऋषेस्तस्यतु पुत्रोऽ भूद् गविजातो महायशाः॥
श्रृंगी नाम महातेजास्तिग्म-वीर्योऽतिकोपनः॥''

शमीक के पुत्र महायशास्वी, महातेजस्वी, अतिक्रोधी, अति पराक्रमी श्रृंगी के नाम से हुये, क्योंकि श्रृंगी का जन्म ब्राह्मणी के गर्भ से नहीं हुआ। अतः जन्म से ब्राह्मण नहीं हो सकता। गाय से उत्पन्न पुत्र का ब्रह्म शाप कैसे सम्भव है। इसलिये जन्म से शूद्र होता है। ब्राह्मण नहीं।

समाधान–महाभारत के आदि पर्व में गरुड़ ने भूख लगने पर माता से भोजन माँगा। तब उसने किरातों को खाने की आज्ञा दी। कहा हे पुत्र! इनके बीच में एक संस्कारहीन ब्राह्मण है, उसको न खाना। जिस पर प्रहार करने से तुम्हारा गला आग के समान जलने लगे उसे ब्राह्मण समझना। इससे संस्कारहीन भी जन्म से ब्राह्मण सिद्ध होता है। युधिष्ठिर के प्रति भगवान ने भी कहा है–

''अविद्योवा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकीतनुः''–''विद्वान् हो या मूर्ख हो ब्राह्मण मेरा शरीर है।'' अतः ब्राह्मण के बीज से उत्पन्न ब्राह्मण ही है शूद्र नहीं। यद्यपि संस्कारहीन ब्राह्मण सदाचारी ब्रह्मणों के बीच में पतित होता है, संन्यास का अधिकारी नहीं, किन्तु वह जन्म से ब्राह्मण है। **''जन्मना जायते विप्रः''** पाठ भी सही ही है। जन्म से शूद्र होता है। इससे जाति का पता नहीं चलता, कि ब्राह्मण से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किससे पैदा हुआ है। **ब्राह्मण कौन है? उत्तर**–ब्राह्मण की कन्या से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न पुत्र उत्तम ब्राह्मण है। यह बात हारीत, व्यास, विष्णु स्मृतियों से सिद्ध होती है। इसका अगला वचन **'संस्कारा द्द्विज उच्यते'**–शूद्र संस्कारहीन है। द्विजत्व कहाँ से होगा। अपने वर्ण की ही स्त्री से उत्पन्न पुत्र का संस्कार होता है। यदि संस्कार मात्र से द्विजत्व प्राप्त होता है तो अन्त्यजों का भी संस्कार होकर द्विज कहा जायेगा। यह शास्त्र के विरुद्ध है। तब तो चारों वर्णों की एक ही जाति हो जायेगी। श्रुति, स्मृति इतिहास पुराणों में चारों

वर्ण आश्रमों के पृथक्-पृथक् धर्म कहे हैं। प्रत्येक वर्ण की स्त्री का प्रत्येक वर्ण के पुरुष से संयोग हो जायेगा तो वर्ण संकर संतान उत्पन्न होने लगेगी। जो स्वर्ग में गये पितरों को भी श्राद्ध तर्पण की क्रिया लुप्त हो जाने से नरकों में ले जाने वाली होगी। जाति धर्म कुल धर्म नष्ट होते हैं तो निश्चय ही पितरों का नरक में वास होता है। यह बात गीता में कही गयी है। अतः जन्मना जायते शूद्र यह बात असंगत है। श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ श्रोतिय ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकारी है। विद्वान् कुल में उत्पन्न होने पर भी जो मूर्ख हैं। मूर्ख पिता के होने पर भी पुत्र विद्वान् हो जाता है। कोई सत्कुल में जन्म लेकर भी असत्कर्म करते हैं। कुछ इसके विपरीत पाये जाते हैं। इनमें कौन पूजनीय हैं। अच्छे कुल में पैदा हुआ मूर्ख या असत् कुल में पैदा हुआ विद्वान्। इसके सम्बन्ध में कहा है-**''जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्यायाति विप्रत्वं (वेदाभ्यासाद् भवेत विप्रः) त्रिविधं श्रोत्रिय लक्षणम्।''**

शुद्ध ब्राह्मणी के गर्भ से शुद्ध ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न बालक जन्म से ब्राह्मण कहा गया है। समय पर उपनयन आदि संस्कार होने से द्विज कहा जाता है। वेद विद्या के अभ्यास से विप्रत्व प्राप्त करता है। इस प्रकार तीनों विशेषताओं से युक्त ब्राह्मण श्रोत्रिय कहा जाता है। **व्यास संहिता में कहा है-''ब्रह्म बीज समुत्पन्नो मन्त्र संस्कार वर्जितः। जाति मात्रोपजीवी च स भवेत् ब्राह्मणः समः॥''** (जो ब्राह्मण पिता से उत्पन्न होकर भी संस्कारहीन है। केवल जाति मात्र से जीविका चलाता है। वह साधारण ब्राह्मण कहलाता है। परन्तु जो गर्भाधानादि संस्कारों से युक्त वेदाध्ययन से युक्त है, किन्तु ब्राह्मणोचित कर्म नहीं करता, वह भी साधारण ब्राह्मण है।

कलि काल में संन्यास निर्णय

कुछ लोग कहते हैं कि वाज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है-

''अग्नि होत्रं गवालम्भं संन्यासं पल पैत्रिकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत्॥''

अग्नि होत्र, गोमेधयज्ञ, संन्यास, मांस से पितरों को पिंडदान, देवर से सन्तानोत्पत्ति कलिकाल में यह पाँच बातें वर्जित हैं किन्तु इसका अपवाद इस प्रकार से मिलता है।

''चत्वार्यब्द सहस्राणि चत्वार्यब्द शतानिच।
कलेर्यदागमिष्यन्ति तदा एवं परिग्रहः॥''

चार हज़ार चार सौ वर्ष तक कलियुग में संन्यास लिया जा सकता है। इसके बाद ब्राह्मण को संन्यास नहीं लेना चाहिए। ऐसा वैष्णव लोग कहते हैं। अब लगभग पाँच हज़ार से अधिक कलियुग बीत चुका है। अतः अग्नि होत्र तथा संन्यास न करें। ऐसी बात नहीं, क्योंकि विष्णु पुराण के बचन से मुख्य काल बीत जाने पर भी गौण काल रहता है। जैसे किसी कारण विशेष से सन्ध्या का मुख्य काल बीत जाने पर भी गौण काल में सन्ध्योपासना यथा प्रायश्चित द्वारा की जाती है। इसी स्मृति में आगे कहा है-

''यावद्वर्ण विभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते।
अग्नि होत्रञ्च संन्यासं तावत् कुर्यात् कलौयुगे॥''

जब तक चारों वर्णों की मर्यादा है, जब तक वैदिक कार्यों में प्रवृत्ति है तब तक कलियुग में अग्नि होत्र करें तथा संन्यास लें।

''यावद्वेदः प्रवर्त्तते''-जब तक मंत्र ब्राह्मणात्मक वेद के अध्ययन अध्यापन तथा अर्थ ज्ञान में प्रवृत्ति है। तब तक हवन करे तथा संन्यास ग्रहण करे। शिष्ट पुरुषों के आचार से भी सिद्ध होता है। अतः अग्नि होत्र, गोमेध आदि का अपवाद 'यावद्वर्ण विभागः' श्लोक है। इस अपवाद का अपवाद ''चत्वार्यब्द सहस्राणि'' है।

अतः कलि काल में अग्नि होत्र तथा संन्यास वर्जित नहीं है किन्तु मांस से श्राद्ध, देवर से पुत्रोत्पत्ति तथा गोमेध यज्ञ वर्जित हैं। अथवा संन्यास से तात्पर्य हंस संन्यास से है। कहीं-कहीं कलि काल में वानप्रस्थ आश्रम वर्जित किया है।

। इति तृतीय परिच्छेद बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



॥ अथ तृतीय परिच्छेद तैंतीसवाँ अध्याय प्रारम्भ ॥

अन्य आश्रमों की अपेक्षा संन्यास आश्रम की श्रेष्ठता

आत्म पुराण में श्री स्वामी शंकरानन्दजी महाराज ने लिखा है कि जड़ जीवों में प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। प्राणियों में बुद्धिजीवी (पशुचौपाये) उनमें गौ, गौवों की अपेक्षा दो पैर वाले जीव, उनमें भी शूद्र श्रेष्ठ है। शूद्रों से वैश्य, वैश्य से क्षत्रिय, क्षत्रियों से जन्म से ब्राह्मण देवताओं के समान कहे गये, ब्राह्मणों में वेद पाठी, वेद पाठियों में वेदार्थ वित्, अर्थज्ञों में भी जो शास्त्र द्वारा संशय की निवृत्तिकर सकते हैं, उनमें भी कर्मकाण्डी , आश्रमियों में ब्रह्मचारी, उनसे गृहस्थ, गृहस्थों से वानप्रस्थ और वानप्रस्थों से यति उनमें कुटीचक, कुटीचक से बहूदक, बहूदक से हंस और हंसों से परम हंस, परमहंस में भी ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ है।

''त्वं पदार्थ विवेकाय, संन्यासः सर्वकर्मणमप्रकुर्वाणः पतत्येषः तं व्यक्त्वा कर्ममोहत॥''

''जीवात्मा परमात्मा के विवेक के लिये सर्वकामों का त्याग कहा है, किन्तु अज्ञान से कर्म त्याग कर जो महावाक्य पर विचार नहीं करता, वह पतित है। विचार करने वाला ब्रह्मस्वरूप है। संन्यास लेने से विद्वानों को श्रवण मनन निदिध्यासन के अनन्तर जीवब्रह्म की एकता की अनुभूति होती है। अतः संन्यास को श्रुति ने ब्रह्म कहा है।''
सूत संहिता का ४२वाँ अध्याय–

''संन्यासश्चापि पापानां प्रायश्चितं प्रकीर्तितम्। पापिष्ठानाम-योग्यानां,योग्यानां मुक्ति साधनम्॥''

पापी तथा अयोग्यों के पापों को नष्ट करने वाला संन्यास पापियों के पाप का प्राश्चित तथा योगियों के लिये मुक्ति का साधन कहा है, किन्तु संन्यास लेने के बाद यदि पापी संन्यासी पाप नहीं छोड़ता, शास्त्रीय मार्ग पर नहीं चलता, तो उपवास करके अन्न जल छोड़कर प्राण त्याग ही इसका प्रायश्चित है।

आत्म पुराण में संन्यास विधि–संन्यास से पूर्व स्वस्ति वाचन नवग्रह पूजन सभी देवताओं के सामान्य पूजन के अनन्तर अष्टका श्राद्ध करे। अपराह्नकाल में विरजा

होम करे। चतुष्पाद गायत्री का जप करे। प्रातः मध्याह्न की क्रिया के अनन्तर **"अभयं सर्वभूतेतम्यो मत्तः स्वाहेति कीर्तयेत्।"**

इस मंत्र से अंजलि में जल लेकर तीन बार जल में छोड़े। फिर मन्द, मध्यम तथा उच्च स्वर में प्रेष मंत्र की तीन बार जल में आहुति दे। फिर शिखा यज्ञोपवीत तथा कौपीन त्याग कर सद्योजात बालक के समान पूर्व या उत्तर दिशा में जाये। फिर पाँच मुद्रा से युक्त दण्ड को धारण करे। यदि अलिंग संन्यासी होना हो तो कोई वस्तु ग्रहण न करे। यह विधि ब्राह्मण के लिये है। क्षत्रिय वैश्य को यदि पूर्ण पूर्ण विवेक वैराग्य हो, तो वे वीर संन्यास लें। वीर मार्ग से चल कर शरीर त्याग दें। अर्थात् निर्भय होकर जिस दिशा में मुख हो, उसी दिशा में बिना विचारे चला जाये। उस मार्ग में अग्नि, जल, सिंह, पर्वत आदि यदि हों तो विचार न करे। बिना कुछ खाये पिये जब तक मूर्च्छा खाकर शरीर न गिर जाये तब तक चलता ही रहे, क्योंकि संन्यास के बाद भिक्षा की विधि एकमात्र ब्राह्मण के लिये है। दण्ड ग्रहण के अनन्तर संन्यासी तीन प्रकार का क्षौर करवाये। यदि उत्कट वैराग्य हो तो वर्ष में एक बार गुरु पूर्णिमा को क्षौर करावे। मन्द वैराग्य में छः महीने में, तीसरा अधम क्षौर ऋतुक्षौर दो माह बाद कराना चाहिये। **आपस्तम्ब के अनुसार**–प्रति मास में गृहस्थों का, पन्द्रह दिन में याज्ञिकों का, दो महीने में संन्यासियों का क्षौर होना चाहिए। कक्षोपस्थ छोड़कर। ब्रह्मचारी के क्षौर में कुछ भी निषेध नहीं है। संन्यासी दो या चार मास का चातुर्मास्य करें। जिस वर्ष चातुर्मास्य तीन मास का हो तो दो क्षौर करावे। संन्यासी के ऋतुक्षौर के नाम–वैशाखी पूर्णिमा, आचार्यक्षौर, आषाढीका व्यास क्षौर, भाद्रपद पूर्णिमा विश्वरूप क्षौर, कार्तिक पूर्णिमा का ज्योति क्षौर, पौषी पूर्णिमा ब्रह्म क्षौर, फाल्गुनी पूर्णिमा दत्तात्रेय क्षौर कहते हैं।

व्यास पूजा विधि–आषाढ की पूर्णिमा को व्यास पूजन करे। पूजा दो प्रकार की है। समास पूजा, व्यास पूजा। इसी दिन भगवान् शंकराजचार्य जी को व्यास जी का साक्षात्कार हुआ था। कुछ लोगों का कथन है कि व्यास जी का जन्म इसी दिन हुआ था। चारों प्रकार के शिष्यों को नित्य प्रति गुरुओं का पूजन करना चाहिए। नित्य का पूजन समास में होता है। पर्व में विस्तार से होता है। आषाढी पूर्णिमा को उससे भी विस्तार से किया जाता है।

पं. वंशीधर शर्मा प्रथम श्लोक भागवत की व्याख्या (गुरु पक्ष) में लिखते हैं कि यदि शिश्य चार पाँच मील की दूरी पर हो, तो नित्य गुरु दर्शन पूजन करे। यदि और दूर है तथा समय का अभाव है तो पंद्रह दिन में अमावस्या पूर्णिमा में करे। यदि इसमें भी न कर पावे तो एक माह बाद। यदि एक माह में सम्भव न हो सके तो गुरु पूजन पर अवश्य जाना चाहिये। नहीं तो जन्म भर का पुण्य क्षीण हो जाता है। भगवान् वेद व्यास जी के आश्रम में तीन प्रकार के ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते थे। एक विद्यास्नातक, दूसरे व्रत स्नातक, तीसरे विद्या व्रत स्नातक। केवल वेदाध्ययन करने वाले विद्यार्थी विद्यास्नातक, जो कठिन व्रतों मंत्रों के अनुष्ठान पुरश्चरण करते थे उन्हें व्रत स्नातक कहते हैं। जो विद्याध्ययन तथा व्रतादि करने वाले थे वे विद्या व्रत स्नातक कहे जाते थे। इस पूर्णिमा को वे सभी मिलकर गुरु जी का विस्तार से पूजन करते थे। इसी तिथि को जिनका वेदाध्ययन पूर्ण हो जाता था, वे समावर्त्तन संस्कार के अनन्तर गुरु दक्षिणा देकर घर लौटते थे। इसी दिन नये ब्रह्मचारी भर्ती होते थे। तीनों प्रकार के विद्यार्थी, गृहस्थी, वर्तमान तथा नये ब्रह्मचारी सभी इस दिन एकत्रित होकर समारोह के साथ विस्तार से पूजन करते थे। अतः गुरु पूर्णिमा या व्यास पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

व्यास जी के सुमन्तु पैल, वैशम्पायन, जैमिनि चार प्रधान शिष्य हैं। अतः इस दिन व्यास जी सहित चारों का पूजन करना चाहिये। पैल ने व्यास जी से ऋग्वेद, वैशम्पायन ने कृष्ण यजुर्वेद, जैमिनि ने सामवेद, तथा सुमन्तु ने अथर्ववेद पढ़ा। अतः इन पाँचों का पूजन करना चाहिये। इसे व्यास पंचक कहते हैं। दूसरा कृष्ण पंचक–भगवान् श्रीकृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा कृष्ण द्वैपायन व्यास। तीसरा आचार्य पंचक–शंकराचार्य जी, पद्मपाद, विश्वरूप, त्रोटकाचार्य, हस्तामलक। चौथा गुरु पंचक। इसमें गुरु जी, परम गुरु, परमेष्ठी गुरु, गोविन्द भगवत् पादाचार्य, गौडपादाचार्य। पाँचवाँ आत्म पंचक, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा, परमात्मा, आनन्दात्मा। मध्य में कृष्ण पंचक पूर्वादि दिशाओं में क्रम से पूर्व में व्यास पंचक, दक्षिण में आचार्य पंचक, पश्चिम में गुरु पंचक तथा उत्तर में आत्म पंचक की स्थापना करें। फिर ईष्यादि कोणों में गणेश, दुर्गा, सरस्वती, क्षेत्रपाल की अरिष्ट निवृत्ति के लिये स्थापना करे। कृष्ण पंचक के चारों ओर बीच सहित क्रमशः सनन्दन, सनक, सनत्कुमार, सनातन, सनत्सुजात। कृष्ण पंचक के सामने नरनारायण की स्थापना करे। ब्रह्मा विष्णु महेश को कृष्ण पंचक के पीछे स्थापित करके पूजा करे।

शेष देवताओं तथा सभी मुनियों की स्थापना यथा योग्य स्थान पर करे। नर नारायण के आगे नारद जी की स्थापना करे। इस सब का विधि विधान से पूजन करे।

अन्य ग्रन्थों में आया है कि भगवान् के दशावतारों, चारों वेदों का अंगों उपांगों सहित, उपवेद, अष्टादश महापुराण, अष्टादश स्मृतियाँ, षट्दर्शन, इनका भी पूजन करे तथा भगवान् नारायण से लेकर वर्तमान गुरुओं पर्यन्त सबका पूजन विस्तार से करे। इनके अतिरिक्त एक पंचक और स्थापित करे। उसमें रेणुकाचार्य, दारुकाचार्य, धेनाकर्णाकाचार्य, चंकुकर्णकाचार्य तथा विश्वकर्णकाचार्य इन पंचाचार्यों की भी स्थापना पूजनादि करे। वर्षा ॠतु में सम्पूर्ण पृथ्वी स्थावर जंगम जीव-जन्तुओं से भर जाती है। अतः इनकी हिंसा न हो जाये। उनकी रक्षा हेतु दो या चार माह का चातुर्मास्य व्रत करे। यति किसी से राग द्वेष न करे। मनसा वाचाकर्मणा भूत द्रोह त्याग दे। स्वप्न में भी मैथुन की इच्छा न करे, लोकरंजन से दूर रहे।

। इति तृतीय परिच्छेद का तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण।

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का चौतीसवाँ अध्याय प्रारम्भ॥

महानिर्वाण तंत्र से-

"ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति, वानप्रस्थोऽपि न प्रिये।
गार्हस्थो भिक्षुकश्चैव, आश्रमौद्वौकलौ युगे॥
ब्रह्मज्ञानं बिना ज्ञानं यस्य चित्ते न विद्यते।
संन्यासधर्मस्तस्यैव नान्यस्य सुरपूजिते॥
संन्यास धारणं कार्य विप्रस्य मुक्ति हेतवे।
यो विप्रोधारयेद्दण्डं सैव नारायणः स्वयम्।।
चतुर्भुजाः प्रजायन्ते दण्ड धारण मात्रतः।
सर्व लक्षणसंयुक्तो ब्राह्मणः गमनं चरेत्॥
गत्वा च दण्डिनं दृष्टवा दण्डवत् प्रणमेत् क्षितौ।
त्वमेव देव देवेशः त्वमेव त्राण कारकः॥
त्वमेव जगतं वंद्यस्त्राहिमांशरणागतम्॥"

"हे प्रिये! कलियुग में ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ आश्रम नहीं हैं। केवल गृहस्थ तथा संन्यास दो ही आश्रम हैं। हे देव पूजित देवि, ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त दूसरे ज्ञान में जिसका चित्त नहीं लगता उसी के लिये संन्यास धर्म है। अन्य के लिये नहीं। ब्राह्मण का संन्यास धारण मुक्ति के लिये है। जो ब्राह्मण दण्ड धारण करता है, वह नारायण ही है। यति के समस्त लक्षणों से युक्त ब्राह्मण दण्ड धारण करने मात्र से चतुर्भुज विष्णु रूप हो जाता है। ऐसा ब्राह्मण विचरण करे, तथा दण्डी संन्यासी को जाता देखकर पृथ्वी पर दण्ड के समान गिरकर प्रणाम करे तथा प्रार्थना करे। हे स्वामिन् तुम्हीं जगत् में वन्दनीय हो, रक्षक हो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करो।"

वृद्धमाता, पिता, पतिव्रता स्त्री तथा शिशु को त्याग कर अवधूत आश्रम में न जाये। हे महेश्वरि! यदि इनको त्याग कर जाता है तो महापापी होता है। ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न होने पर सब कर्मों को छोड़कर संन्यास ग्रहण करे। यदि ब्रह्म ज्ञान के बिना संन्यासी होना चाहता है, तो कर्म संन्यास ले। कर्म संन्यास के बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

संन्यास के अनधिकारी याज्ञवल्क्य संहिता से—ब्राह्मण होने पर भी रोगी, अंगहीन, अधिकांगी कुण्ड, गोलक (गोलक का लक्षण कन्या अवस्था में गर्भ रहकर ससुराल में जो पुत्र हो उसे 'अण्डक' कहते हैं। कन्या के पितृ गृह में जो कन्यावस्था में ही पुत्र हो उसे 'पिण्डक' कहते हैं। पति के मरने के बाद विधवा के जो परपुरुष से सन्तान हो उसे 'गोलक' कहते हैं। पति के जीवित रहते परपुरुष से हुई सन्तान को 'कुण्ड' कहते हैं।) अण्डक, पिण्डक, कुनखी, श्यावदन्त, माता पिता गुरु का त्यागी, कुण्डाशी, शूद्र पुत्र, विवाह से पूर्व या बाद में पर स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला, चोर, कर्मदुष्ट, निन्दनीय, भृत, अध्यापक, नपुंसक, कन्यादूषक, मित्रद्रोही, चुगुलखोर, मदिरा बेचने वाला, देवल ब्राह्मण, गणितज्ञ, वैद्य यह लोग संन्यास के अनधिकारी हैं।

जो ब्राह्मण निरन्तर एक मास तक शूद्र का अन्न खाता है, वह इसी जन्म में शूद्रत्व को प्राप्त करके मरने के बाद कुत्ता होता है। शूद्र का अन्न, शूद्र का सम्पर्क, शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना, शूद्र से ज्ञान प्राप्त करना, तेजस्वियों को भी पतित करता है। शूद्र के बिना प्रणाम किये जो ब्राह्मण तुम्हारा कल्याण हो, कहता है। शूद्र और ब्राह्मण दोनों

नरकगामी होते हैं। जो अग्नि होत्री ब्राह्मण शूद्र का अन्न ग्रहण करता है, उसका मन, वेद तथा तीनों अग्नियाँ नष्ट हो जाती हैं। शूद्र के अन्न को खाकर या नौकरी करके जो सन्तान उत्पन्न करता है। चूंकि अन्न से शुक्र बनता है, अतः जिसका अन्न पिता खाता है। पुत्र भी उसी का माना जाता है। आपस्तम्ब मुनि कहते हैं जो प्रमाद से शूद्र का छुआ हुआ या जूठा भोजन करता है। उस पापी को द्विजाति अपनी पंक्ति में न बिठायें। गृहस्थ सम्पन्न होने पर भी यदि ब्राह्मण का अन्न नित्य खाता है तो वह दरिद्री होता है। क्षत्रिय का अन्न खाने से पशु, वैश्य का अन्न खाने से शूद्रत्व, शूद्र का अन्न खाने से निश्चय ही नरक मिलता है। मनुस्मृति से–शूद्रों का एक ही कर्म है, श्रद्धा भक्ति पूर्वक तीनों वर्णों की सेवा करना। जैसे धर्मात्माओं के लिये कुत्ते के चमड़े में रखा हुआ दूध अपेय है, वैसे ही शूद्र के मुख से शास्त्र की बात उसी प्रकार सुनने योग्य नहीं है। जैसे कुत्ते की छुई हुई हवि त्याज्य है। ऐसे ही विद्वान् शास्त्रज्ञानी शूद्र का वचन अग्राह्य है। आजकल स्कूल कालेजों में सभी जाति को लोग पढ़ाते हैं। जब तक द्विजाति विद्यार्थी अध्ययन करे, तब तक अध्यापक को वाणी से प्रणाम करे, शरीर से नहीं। अत्रि संहिता प्रथम अध्याय–जप, हवन करने वाले शूद्र को या तो मार दें या राष्ट्र से बाहर निकाल दें। वह राष्ट्र का हत्यारा है। मनुस्मृति ११वाँ अध्याय ब्राह्मण, यज्ञ के लिये शूद्र से धन की याचना न करे। यदि करता है तो चाण्डाल होता है। यम स्मृ० अ० १–द्विजाति यदि शूद्र का अन्न खाये तो चान्द्रायण व्रत करे। आपस्तम्ब अ० १–"**ब्राह्मणस्य सदाकालं शूद्र प्रेषण कारिणः। भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः॥**" यदि ब्राह्मण शूद्र से सेवा कार्य ले तो सदा उसे भूमि पर कुत्ते के समान अन्न देना चाहिए। सम्वर्तक स्मृति अ० १–शूद्र के हाथ से जो अन्न या जल ग्रहण करता है, वह २४ घंटे का व्रत करके पंच गव्य से शुद्ध होता है। शूद्र के पात्र में या फूटे पात्र में भोजन करने वाले २४ घंटे का व्रत करके पंच गव्य से शुद्ध होते हैं। **व्यास**–यदि मरने वाले के पेट में शूद्र का अन्न रहता है तो निश्चय ही वह सुअर होता है या शूद्र के कुल में जन्म लेता है। मृतक या जन्म सूतक में जो द्विज शूद्र का अन्न खाता है। व्यास कहते हैं कि मैं नहीं कह सकता किस योनि में जाएगा। वह बारह जन्मों में गीध, सात जन्मों में सुअरऔर सात जन्म कुत्ता होता है, यह मनु का वचन है। वशिष्ठ स्मृति अ० ६–कुछ ब्राह्मण वेद के अधिकारी (पात्र) हैं, कुछ तपस्या

के, जिसके पेट में शूद्र का अन्न नहीं जाता है, वह सब पात्रों में उत्तम हैं। **यम स्मृ॰**–शूद्र के समक्ष वेद पाठ न करे। शूद्र शमशान वत है।

श्राद्ध के अनधिकारी ब्राह्मण–धर्म शास्त्रों में कहा है कि उपनयन, विवाह आदि देव कर्मों में ब्राह्मणों का विस्तार करे। ब्राह्मण की विशेष परीक्षा की आवश्यकता नहीं है; परन्तु पितृ श्राद्धआदि में अधिकारी ब्राह्मण को ही भोजन कराना चाहिये। वैभव होने पर भी तीन से अधिक को निमंत्रित न करे। ब्राह्मण त्रिकाल सन्ध्या करने वाले, अग्नि होत्री, वेदज्ञ होने चाहिये। ऐसे ब्राह्मणों के अभाव में गऊ को खिला दें। जल में डाल दें या कौआ आदि पक्षियों को दे दे। ब्राह्मण शास्त्रज्ञ होने पर भी जो सफेद दाग वाला, कुष्ठी, कुनखी, विगड़े दान्त वाला, रोगी, अंगहीन, अधिकाङ्गी, चुगुलखोर, ईर्ष्यालु, दुर्भाग्यवान्, नपुंसक, वेद निन्दक, शूद्र की पूजा करने वाला, अयोग्यों का पुजारी, नित्य प्रतिग्रह लेने वाला, लोभी, याचक, विषयी, वैद्य, असत्य भाषी, ये ब्राह्मण तथा देवलक, नौकर तथा वेद बेचने वाला, इन्हें श्राद्ध में भोजन न करावे।

। इति तृतीय परिच्छेद का चौतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का पैंतीसवाँ अध्याय प्रारम्भ ॥

शान्त संन्यासी का लक्षण

जो यति शुभाशुभ को सुनकर, देखकर, छूकर, भोग कर, स्नान करके, न हर्षित होता है, न दुखी होता है, वह शान्त संन्यासी है। जो सभी प्राणियों को समभाव से देखता है, कामना से रहित हो उसको शान्त कहते हैं। मृत्यु तथा उत्सव जिसे एक समान है, जो जागने पर भी सुषुप्तवत् रहता है। सब के प्रति समान प्रेम, अन्दर बाहर से शीतल, व्यवहार में अकुशल, बड़ी से बड़ी विपत्ति पड़ने पर न घबराने वाला, आकाशवत् समदर्शी, जिसकी बुद्धि कलुषित नहीं है, जो तपस्वियों में, बहुज्ञों में, पुजारियों में, राजाओं में, बलवानों तथा गुणवानों में एक जैसा रहता है। उसे शान्त कहते हैं। **योग वाशिष्ठ मुमुक्षु प्रकरण सर्ग १३ से।**

जो विपत्ति प्राप्त होने पर भी उसी प्रकार शोक सागर में नहीं डूबता जैसे तूम्बी जल में नहीं डूबती। जिसने विवेक के द्वारा शीतलता प्राप्त कर ली है, वह शान्त है। जो खोई तथा प्राप्त वस्तु में समुद्र के समान गम्भीर है। जो मन से परिपूर्ण स्वरूप में स्थित रहते हैं, वे जीवन्मुक्त कहे जाते हैं। वेद का वेदान्त सिद्धान्त ही स्वरूपाकार स्थिति बनाने में समर्थ है। संसार में दो प्रकार के अन्धे होते हैं, एक जन्मान्ध या जन्म के बाद हुए अन्धे, दूसरे विवेकान्ध। पहले अन्धे की अपेक्षा विवेकान्ध शोचनीय है, किन्तु सद्गुरु उस विवेकान्ध की आँखों में ज्ञान रूपी शलाका लगा देता है। जिससे वह दिव्य चक्षु प्राप्त करके सम्पूर्ण दुर्गुणों पर विजय प्राप्त करता है। **यो॰ वा॰ मु॰ प्र॰ सर्ग १४ से।**

"सन्तोष की महिमा"

मुक्ति के चार द्वारपाल है। शमः-(१) मन को वश में करना, (२) सन्तोष, (३) सत्संग, (४) विचार। इसमें सन्तोष मुक्ति का परम कारण है। हे शत्रुसूदन राम! सन्तोष को सुख कहते हैं। सन्तोष ही परमपद है। मन में जब तक सन्तोष नहीं होता, तब तक मन रूपी बिल से आपदा रूपी लतायें उत्पन्न होती रहती हैं। शुद्ध विज्ञान दृष्टि से सन्तोष के द्वारा शीतल हुये चित्तरूपी जलमें, विज्ञान रूपी सूर्य का उदय होने पर ब्रह्मबोध रूपी कमल खिल जाता है। **मु॰ प्र॰ सर्ग १५ से॥**

सत्संग या साधु संग–हे महाबुद्धे राम! जीव को संसार सागर से पार उतरने के लिये साधु संग रूपी वृक्ष से विवेक रूपी कुसुम उत्पन्न होता है। जो महात्मा मुक्ति रूपी फल की रक्षा करना चाहते हैं, वे साधु संग से उत्पन्न विवेक रूपी दीपक से इसकी रक्षा करें। जो साधु संग रूपी शीतल जल में स्नान करता है। उसे दान देने की, तीर्थ सेवा, तपस्या तथा यज्ञों की आवश्यकता नहीं है। सन्तोष परम लाभ है, सत्संग की परमागति, विचार ही परम ज्ञान है। शम ही सबसे बड़ा सुख है। इन चारों से अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। जो नित्य गुरु सेवा करते हुए भोगों के न मिलने से दुःखी नहीं होता, मिलने पर प्रसन्न नहीं होता, नित्यप्रति भक्तिपूर्वक वेदान्त का श्रवण करता है, उसे अस्सी अति कृच्छ चान्द्रायण व्रतों का फल प्राप्त होता है। जो संसार सागर से पार होकर तुरीय पद में विश्रान्ति को प्राप्त हो चुका है। वह गृहस्थ

अथवा यति जीवित तथा मृतकों की चिन्ता नहीं करता। उसे कर्म और अकर्म की चिन्ता नहीं होती, वह श्रुतिस्मृति रूपी भँवर में नहीं पड़ता। तरंग रहित सागर से समान स्वरूप में स्थित होता है। **यो॰ वा॰ मु॰ प्र॰ सर्ग १६ से।**

। इति तृतीय परिच्छेद का पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥अथ तृतीय परिच्छेद का छत्तीसवाँ अध्याय प्रारम्भ ॥

संन्यास की विधि तथा

इससे पूर्व का कर्त्तव्य–(संन्यास ग्रहण पद्धति)

अधिकारी ब्राह्मण यदि अनाश्रमी हो अर्थात् (ब्रह्मचर्य के बाद जिसने न विवाह किया हो नघर छोड़कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी का नियम ही लिया हो, उसे अनाश्रमी कहते हैं।) वह चार कृच्छ व्रत करे, यदि आश्रमी है तो एक तप्त कृच्छ्र व्रत करे। इसी को प्राजापत्य व्रत कहते हैं। इन व्रतों के करने से अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा संन्यास में योग्यता होती है। सूत संहिता में कहा है कि क्रोध, चुगली, निंद्रा आदि को छोड़कर कृच्छ्र चान्द्रायण करे। कृच्छ्र तथा प्राजापत्य के लक्षण मनुजी ने कहे हैं। तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन अयाचित, तीन दिन निराहार रहे। किसी ग्रन्थ में तीन गुना प्राजापत्य कहा है। **वशिष्ठ जी कहते हैं**–पहले प्रातःकाल चार दिन, फिर चार दिन नक्त सूर्यास्त से पूर्व, एक दिन अयाचित, यह वशिष्ठ जी के मतानुसार प्राजापत्य हुआ।

पराक व्रत–एक भुक्त (एक बार भोजन) दिन में तथा अयाचित, इसकी तीन आवृत्ति करने से बारह दिन में यह व्रत पूर्ण होता है। **ग्रास संख्या–आपस्तम्व से**–सायंकाल २२ ग्रास, प्रातः २६ ग्रास, अयाचित भिक्षा २४ ग्रास, फिर निराहार। ग्रास का प्रमाण एक मुर्गे के अण्डे के बराबर या सरलता से जितना मुख में आ सके, एक ग्रास माना जाता है। इस प्रकार प्रायश्चित के अनन्तर पंचगव्य प्राशन करे। **पंचगव्य शोधन विधि**–गायत्री मंत्र से गोमूत्र, 'गन्ध द्वारा मिति' मंत्र से गाय का गोबर ज़मीन में न गिरा

हुआ हो यदि ज़मीन में गिरा हुआ हो, तो ऊपर नीचे का भाग छोड़कर बीच से ले ले। यह देसी गाय का होना चाहिए।

'ॐ आप्यायस्व' इत्यादि मंत्र से गाय का दूध। 'ॐ तेजोऽसिशुक्रं' इत्यादि मंत्र से घी 'देवस्यत्वा' इस मंत्र से कुशा का जल। इस प्रकार उक्त पाँचों मंत्रों से एक में मिलावे। फिर अग्नि के समीप रखे और 'ॐ आपोहिष्ठा' इत्यादि मंत्रों से चलावे। 'ॐ मानस्तोके' इस मंत्र से अभिमंत्रित करके सात बार अखण्ड कुशों से चलावे। फिर ॐ इरावती, इदं विष्णु, मानस्तो के, शंवती:, इन मंत्रों से अग्नि में हवन करने के बाद, प्रणव से चलावे, मन्थन करे। फिर प्रणव से पिये–अथवा "**यत्त्वगस्थि गतं पापं देहे तिष्ठति मामके। प्राशनात् पंच गव्यस्य दहत्वग्नि रिवेन्धनम्**" मंत्र से पिये। मेरे शरीर में त्वचा और अस्थियों में जो पाप विद्यमान है। पंचगव्य के प्राशन से जैसे अग्नि ईधन को जला देती है, उसी प्रकार जल जाये। **शंका**–पाप तो मन में होता है, त्वचा अस्थि में पाप कहाँ से आए? **समाधान**–मंत्र में त्वचा तथा अस्थि माता तथा पिता से प्राप्त हुए तीन-तीन धातुओं के उप लक्षणार्थ है। अर्थात् अण्डे तथा जेर से पैदा होने वाले सभी प्राणियों के स्थूल शरीर में ऊपर की तीन धातुएँ त्वचा, रक्त तथा मांस यह माता का अंश है, तथा भीतर की तीन धातुएँ अस्थि, मेद, मज्जा यह तीन पिता के अंश हैं। मनुष्य के अतिरिक्त और सब भोग योनियाँ हैं। एकमात्र मनुष्य शरीर में ही नवीन कर्म करने का अधिकार है, और पूर्वजन्म का भोग भोगता है। अत: मंत्र में त्वक् का अर्थ है तीनों मातृ अंश, अस्थि का अर्थ है तीनों पितृ अंश। अर्थात् मातृ या पितृ वंश में सात पीढ़ी तक का जो संकरत्व आदि दोष है वह पंचगव्य के सेवन से दूर हो जाता है। इसलिये त्वगस्थि शब्दों का प्रयोग किया गया। पंचगव्य पीने के बाद सौ अथवा एक हज़ार गायत्री जप से पापों का मार्जन करे। यदि कोई इतने कठोर व्रतादि न कर सके तो एक हज़ार गायत्री जप से शुद्धि हो जाती है। संन्यास कर्म में तीन या दो बार स्नान करे। कर्म आरम्भ होने से एक दिन पूर्व ही शिखा के चार-पाँच बाल छोड़कर क्षौर करवाये, सायं काल को घटस्थापन, नवग्रहादि पूजन करे। यदि ऊपर कहे हुए प्रायश्चित्त को न कर पाये तो गोदान करे। यदि गोदान न दे सके तो एक स्वर्ण मुद्रा, आधी अथवा चौथाई

करें, यदि असमर्थ हो, तो उपरोक्त व्रत, उपवास करे। इनमें भी असमर्थ हो, तो छत्तीस लाख गायत्री मंत्र का जाप करे।

ब्रह्महत्या की निवृत्ति के लिये एक करोड़ गायत्री जप करे। अस्सी लाख गायत्री जप सुरापान दोष की मुक्ति के लिये, स्वर्ण चोरी वाला छत्तीस लाख, महापातकों की निवृत्ति के लिये गुरुतल्प गामी साठ लाख, महापातकों की निवृत्ति के लिये दो सौ प्राणायाम, वैदिक मंत्रों से तिलों से एक हज़ार हवन करे, बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे। यदि व्रतादि करने में असमर्थ हो, तो फिर दूसरे दिन नित्य पंच यज्ञों को करने के अनन्तर फिर स्नान कर गीले वस्त्रों से आचमन करके, फिर हाथ में जल लेकर संकल्प करे–मेरे उपनयन के दिन से आरम्भ करके आज तक नित्य पंच महायज्ञ के अभाव में जो पाप हुये हैं, उसकी निवृत्ति के लिये प्रत्येक वर्ष के हिसाब से एक एक प्राजापत्य के द्वारा अथवा गोदान द्वारा प्रायश्चित करता हूँ तथा संन्यास निमित्त गृहस्थ को एक तप्त कृच्छ्र करना चाहिये। अनाश्रमी चार करे। तब संन्यास की योग्यता प्राप्त होती है। यदि गोदान करना हो तो इस मंत्र से गोदान करे–**ततो "गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात् तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च"** इस मंत्र को पढ़कर दक्षिणा सहित गोदान करे। फिर स्नान करके धुले वस्त्र पहनकर आचमन करे। पूर्वोक्त अग्नि में प्रायश्चित होम करके अग्नि का विसर्जन कर दे। फिर पंचगव्य पिये। इन तीन प्रायश्चितों के करने से संन्यास की योग्यता प्राप्त होती है। फिर गुरु की आज्ञा प्राप्त कर प्रायश्चित का धन ब्राह्मणों को दे। **इति प्रायश्चित कर्म।**

संन्यास ग्रहण विधि–इसके बाद पूर्ववत् नव ग्रह, षोडश मातृका, कलशपूजन, अन्तर्वाह्य मातृका पूजन करने के अनन्तर नान्दीमुख श्राद्ध एवं अष्टकश्राद्ध करे–देवर्षि, दिव्य, मनुष्य, भूत, पितृ, मातृ, आत्म यह आठ श्राद्ध करे। प्रथम श्राद्ध में (देव श्राद्ध में) सत्य वसु नामक विश्वेदेव, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर का श्राद्ध। ऋषि श्राद्ध में देवर्षि, राजर्षि, मनुष्य ऋषियों के लिये। दिव्य श्राद्ध में आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य। मनुष्य श्राद्ध में–सनक, सनन्दन, सनत, कुमार, सनत्सुजात। भूत श्राद्ध में–पृथिवी आदि पंच महाभूत, चक्षु आदि चौदह करण तथा चार प्रकार के जीव। पितृ श्राद्ध में–पिता, पितामह, प्रपितामह माता, पितामही, प्रपितामही। आत्म श्राद्ध–अपना, पिता,

पितामह, यदि पिता जीवित हो तो पिता को छोड़कर अपना, पितामह, प्रपितामह का श्राद्ध करे। इन आठ श्राद्धों में पत्नी सहित ब्राह्मणों को निमंत्रित करे। अपनी शाखागत मंत्रों से आठ दिन में या एक दिन में श्राद्ध करे। पितृयाग में कहे विधान से ब्राह्मणों का पूजन करे। पिंड तथा दक्षिणा तथा ताम्बूलादि देकर, शेष कर्म की सिद्धि के लिये चोटी के सात आठ बालों को छोड़कर क्षौर करावे।

पहले दिन, दिन भर धूप में रखा हुआ गंगा जल। दूसरे दिन धूप में रखा हुआ गोदुग्ध, तीसरे दिन सूर्य की किरणों से सन्तप्त घी पिये, ब्राह्मणों को विदा करने के अनन्तर रूद्राष्टाध्यायी, पुरुष सूक्त के नमकचमकाध्याय का पाठ शंकर जी का ध्यान करते हुए स्वयं करे या ब्राह्मण से करवाये। ब्राह्मण भोजन के बाद रुद्रसूक्त का पाठ करे। इसमें दही, लाजा, अक्षत, मधु का पिंडदान करना चाहिये। ऊपर की पद्धति में मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातातमह का श्राद्ध नहीं दिया है, किन्तु नान्दी मुख श्राद्ध में विश्वेश्वर पद्धति तथा निर्णय सिन्धु के अनुसार पिण्डदान करना चाहिये। संन्यास के लिये रखे हुए द्रव्य में से पूजन, हवन, ब्राह्मण भोजन, आचार्य की दक्षिणा के अतिरिक्त शेष बची हुई वस्तु गुरु या गुरुभक्तों को प्रणाम करके दे दे। तीसरे दिन अपराह्न काल में विरजा होम करे। फिर रात्रि जागरण करते हुए गायत्री का जप करे। चौथे दिन देवर्षि पितृ तर्पण करके, देव मन्दिर में जाकर दाहिना घुटना ऊपर उठाकर उस पर अपना बायां हाथ रखकर दाहिने हाथ से जल लेकर ब्रह्माञ्जलि दे। 'ॐ ब्रह्मणेनमः' इस मंत्र का जाप करे। संन्यास से पूर्व ही कई दिन पहले शुद्ध स्थान पर उत्पन्न हुआ अंगुली के बराबर मोटा मूर्द्धा पर्यन्त, त्रिदण्डी के लिये शिखा यज्ञोपवतीत का विधान है। उसके तीनों दण्डों में ग्यारह, नौ, दो, तीन, चार, सात पर्व हों, किन्तु मूर्द्धा पर्यन्त हो। त्वचा रहित हो। चार अंगुल गऊ के पूंछ के काले बालों से तीनों दण्डों को वेष्टित करे। यदि एक दण्डी होना चाहता है; तो मूर्द्धा पर्यन्त एक दण्ड ले। छः गाँठ का दण्ड सुदर्शन, आठ गाँठ का नारायण, दस गाँठ का गोपाल, बारह गाँठ का वासुदेव, चौदह का अनन्त कहा जाता है, धारण करे। दण्ड में विषम ग्रन्थियाँ नहीं होनी चाहिये। छः ग्रन्थि से कम तथा चौदह से अधिक धारण न करे। इसको यज्ञोपवीत से बाँधे, दण्ड के अतिरिक्त कौपीन, कटिवस्त्र, कन्था और पादुकायें रखे। आगे की विधि पीछे लिखी जा चुकी है। दण्ड बाँधने की विधि आगे दी जायेगी।

वैदिक मंत्र

दण्ड धारण करने का मंत्र–"अहंवृक्षस्य रेरिव, कीर्ति पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्व पवित्रोवाजिनीव, स्वममृतमस्मि॥ द्रविणं सवर्चसं, समेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम्। ॐ सखामांगोपाय, त्वं मम सखायोऽसि, इन्द्रस्य वज्रोऽसि, वार्तन्घनः शर्म मे भव, तन्मे पापं निवारय।"

तान्त्रिक (स्मार्त मंत्र)–उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश, देवानां हित काम्यया। देवतारि विनाशाय, सदा मम करे भव॥

दण्डस्थापन मंत्र–"तिष्ठत्वं देव देवेश, तिष्ठ त्वं दण्ड दैवत। ऋषिभिः मुनिभिश्चैव गन्धर्वैश्चसमं सदा॥"

दण्ड पतन ग्रहण मंत्र–

"उत्तिष्ठातिष्ठ भगवन्! नारायण जगत्पते।
दण्ड रूपिन् महाविष्णो! प्रसीद पुरुषोत्तम!॥
भ्रातृ पितृ समोदण्डो, भ्रातरो गुरवस्तथा।
पथि साधन हेतुश्च, ब्रह्ममुदे नमोऽस्तुते॥
विष्णुहस्ते यथाचक्रं, शूलं शिव करे यथा।
इन्द्रहस्ते यथा वज्रं, तथा दण्डो भवाद्य मे॥"

कमण्डलु अथवा पात्र शुद्धि मंत्र–संन्यासी का मिट्टी या लकड़ी का पात्र मिट्टी या जल से ही शुद्ध होता है। कुछ लोग प्रश्न करते हैं। हिन्दुओं में प्रत्येक वर्ग में मिट्टी का पात्र एक बार मूँह लगा देने के बाद फेंक देते हैं, क्योंकि वह अशुद्ध हो जाता है। संन्यासी का कमण्डलु जिसमें वह शौच, स्नान तथा पूजन में काम आता है। वह अशुद्ध कैसे नहीं होता?

उत्तर–लोहा, पीतल, ताँबा आदि के पात्र मृत्तिका अग्नि से शुद्ध होते हैं। जब पक्का बर्तन मिट्टी से शुद्ध हो जाता है तो मिट्टी का बर्तन मिट्टी से कैसे शुद्ध नहीं होगा। अर्थात् अवश्य होता है। मिट्टी के कमण्डलु में जल सूखना नहीं चाहिये। तब तक वह पवित्र रहता है। यदि जल पूरा निकाल दिया जाये, तो अशुद्ध हो जाएगा।

संन्यासी का लकड़ी का मिट्टी का पात्र उसी के लिये शुद्ध है। दूसरे संन्यासी या गृहस्थ के लिये शुद्ध नहीं। जैसे यज्ञ के चमसादि पात्र जल या गर्म पानी से धोने से शुद्ध हो जाते हैं, वैसे ही यति के पात्र, प्रणव तथा निम्नलिखित मंत्रों से धोने से साफ हो जाते हैं।

मंत्र– **''जलाग्निश्च कराग्निश्च महाग्निश्चैव सन्निधौ।**
अग्नित्रय प्रभावेण शुद्धो भव कमण्डलो॥
कमण्डलो महातीर्थ पुण्योदक परायण।
अगस्त्यादि मुनिश्रेष्ठैः धृतोऽसित्वं कमण्डलो।
स्नान सन्ध्यादि कृत्येषु त्वमेकः साधनं मम॥''

काषाय वस्त्र रंगने की विधि–पानी में गेरु घोलकर षट्टल कमल बनाये। उसके बीच में ''ॐ एं क्लीं हुं फट्'' यह मंत्र लिखे। फिर निम्नलिखित मंत्र तीन बार पढ़े–

''मेरुगर्भ समुद्भूते गैरिके, वन्हि रूपिणि।
त्वयानुरंजित वस्त्रेण योगसिद्धिंच मे कुरु॥''

संन्यास लेने के बाद की प्रार्थना–

यदि भगवान से प्रार्थना करे–

''सर्वदेवात्मके तोये तोयाहुतिमहं हरे।
दत्वा सर्वैषणां त्यक्त्वा, युष्मच्छरणमागतः॥
त्राहि मां सर्व लोकेश गतिरन्या न विद्यते।
संन्यस्तं मे जगन्नाथ माम् त्राहि मधुसूदन॥
त्राहि मां सर्व सर्वेश! वासुदेव सनातन।
संन्यस्तं मेजगद्योने! पुण्डरीकाक्ष मोक्षद!॥
अहं सर्वाभयं दत्वा भूतानां परमेश्वर!।
युष्मच्चरणमापन्न त्राहि मां पुरुषोत्तम!॥''

''हे जगन्नाथ! हे मधुसूदन! मैंने संन्यास लिया है। हे हरे! सर्व देवस्वरूप जल में जल की ही आहुति देकर सभी कामनाओं को त्याग कर आपकी शरण में आया हूँ। हे

सर्व लोकेश, मेरी रक्षा करें। आप के अतिरिक्त और मेरी कोई गति नहीं है। हे सर्वेश! सनातन वासुदेव! जगत् योने! कमल नयन मोक्ष देने वाले! हे परमेश्वर! मैं समस्त प्राणियों को अभय दान देकर आपके चरणों में आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिए।''

''दण्ड बाँधने की विधि''

यति अपने पैर के अँगूठे से आरम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त दण्ड धारण करे। दण्ड नीचे से अँगूठे के बराबर और ऊपर कनिष्ठिका के बराबर मोटा होना चाहिए। यह देव दण्ड है। इससे अधिक मोटा आसुर दण्ड कहलाता है। दण्ड मूल का होना चाहिए। त्वचा ग्रन्थि सहित सीधा हो। कीड़े का खाया न हो। ऐसे दण्ड में गाय का घी लगाकर रख ले। पका हुआ, टेढा न हो, योनि रहित हो। (अर्थात् बीच में गांठों में जो गहराई ऐसी होती है वह न हो) यदि ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त दण्ड न प्राप्त हो सके, तो ललाट पर्यन्ट मध्यम दण्ड है। इसके भी अभाव में नासिका पर्यन्त अधम दण्ड होता है। उत्तम दण्ड मिलने पर कनिष्ठ दण्ड त्याग दे। विवेकशील यति दण्ड के पाँच भाग करे। दण्ड के तीसरे भाग में ब्रह्ममुद्रा बाँधे। कुछ आचार्य दण्ड के तीन भाग करके अग्रभाग छोड़कर बीच के भाग के अन्त में ब्रह्म मुद्रा बाँधते हैं। अर्थात हृदय से लेकर नाभि पर्यन्त के बीच में ब्रह्म मुद्रा बाँधनी चाहिए। काशी में मछली बन्दर के संन्यासी परशुमुद्रा के नीचे एक पर्व छोड़कर दूसरी पर्व में मुद्रा बाँधते हैं। परन्तु चौंसठ्ठी मठ और अनन्त विज्ञान मठ के संन्यासी दण्ड के मध्य भाग में बाँधते हैं। ऊपर के दो भाग छोड़कर ऊपर चार अंगुल के मान से कपास के सूत्र से अपने सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्ममुद्रा बनाये। पूर्व तथा उत्तर के भागों में यज्ञोपवीत को ऐसे लपेटे कि बीच में साँक न रहने पाये। चार अंगुल प्रणव की चार मात्राएं अकार, उकार, मकार, अर्द्ध मात्रा की प्रतीक हैं। अपने सम्प्रदाय आश्रम, तीर्थ, सरस्वती के अनुसार ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, रुद्रग्रन्थि तीन ग्रन्थियों के अनन्तर आगे एक ग्रन्थि की कल्पना आधा लपेटकर करे।

ब्रह्म मुद्रा के साम्प्रदायिक श्लोक—यति धर्म समुच्चय से

पहले अपनी परम्परा अनुसार यमपाश, दूसरी काल ग्रन्थि दो-दो सूत्रों से लपेट कर बनाये। उसके के बाद इन दोनों ग्रन्थियों के बीच तीसरी नाग ग्रन्थि बनाये। दोनों

ग्रन्थियों के बाद दोनों सूत्रों को कसे। साढे तीन लपेटे वाली ब्रह्म ग्रन्थि चार अंगुल की ब्रह्म मुद्रा कही जाती है। फिर लिंग के सम्मुख गऊ के श्रृंग के आकार की ग्रन्थि बनाये।

अन्यच्च–आठ अंगुल, चार अंगुल अथवा छः अंगुल के परिमाण के कपास के दो सफेद सूत्रों से ब्रह्म मुद्रा का निर्माण करे।

दण्ड की अन्य मुद्रायें–यति ब्रह्म मुद्रा, धेनुमुद्रा, शंख मुद्रा, परशुमुद्रा, नाग मुद्रा; इन पाँच मुद्राओं वाला दण्ड धारण करे। नाग मुद्रा नीचे धेनु मुद्रा बीच में, दण्ड के तीसरे भाग में परशु मुद्रा धारण करे।

दण्ड सूत्र से परशु मुद्रा बनाने की विधि–सोलह अंगुल चौड़ा अड़तालीस अंगुल लम्बा काषाय वस्त्र लेकर चार अंगुल के प्रमाण से लम्बी चौड़ी तह लगाये। इसके बीच में से फिर दोहरा करे और उसे फिर दोहरा करने से परशु मुद्रा बन जायेगी। इस प्रकार इसमें तीन तैह हो जाएंगी। इसमें पहले चार वेदों के अस्सी हज़ार मंत्रों की कर्म काण्ड की प्रतीक है। बीच की सोलाह हज़ार उपासना काण्ड के मंत्रों की प्रतीक, तथा तीसरा ज्ञान काण्ड के चार सहस्त्र मंत्रों की प्रतीक होती है।

स्पष्टीकरण–दण्ड अनादि काल से चला आ रहा है। अविद्या को दण्डित करने के लिये ये असंग शस्त्र हैं। इसी दण्ड के द्वारा वशिष्ट जी ने विश्वामित्र द्वारा प्रयुक्त सुदर्शन, त्रिशूल, इन्द्र का व्रज, यम का कालदण्ड आदि अस्त्र शस्त्रों को निष्फल कर दिया था। इसकी ब्रह्ममुद्रा अत्यन्त प्राचीनतम है। कुछ आचार्यों के मतानुसार ब्रह्ममुद्रा सहित दण्ड अपने गुरु जी से भी शंकराचार्य जी ने ग्रहण किया था; परन्तु जब दिग्विजय (वैदिक धर्म का प्रचार) के लिये निकले, तब उन्होंने तीन काण्डों को दण्ड में स्थान दिया। क्योंकि दिग्विजय करने वाला अपने पास एक ध्वज रखता है। यह आचार्य पाद का ध्वज था। अब उन्होंने विचार किया कि इसका रूप क्या हो। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार इक्कीस बार परशुराम जी ने इस पृथ्वी को जीतकर जब कश्यप ऋषि को दान दिया तब कश्यप जी बोले, मेरी दान की भूमि पर रहने का तुम्हें अधिकार नहीं है। तब आप समुद्र तट पर पहुँचे और समुद्र से कहा, मुझे रहने के लिये अपने में स्थान दे दो। सागर ने देव रूप से कहा, आप परशु (कुल्हाड़ा) मुझ में छोड़ो। जितनी दूर जाकर

गिरेगा, मैं उतनी धरती छोड़ दूँगा। उन्होंने सामान्य बल से परशु फेंका। यह जितनी दूर जाकर गिरा, उतनी भूमि सागर ने खाली कर दी। वहीं पर परशुराम जी रहने लगे। समुद्र तटवर्ती प्रदेश को मलयालम में 'केरल' कहते हैं। उसकी केरल अथवा मालाबार में आचार्य पाद का प्रादुर्भाव हुआ। अत: दिग्विजय में वैदिक प्रचार की स्मृति में अपने आदि पुरुष भगवान् परशुराम की परशु से रिक्त स्थान में उत्पन्न होने के कारण उनके परशु का चिन्ह अपने दण्ड में धारण किया। परन्तु "दण्डैश्वर्य विधानम्" आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ में परशु मुद्रा भी अनादि सिद्ध होती है। इसमें उन्होंने आश्रम, तीर्थ, सरस्वतियों के दण्ड सूत्र के यज्ञोपवीत संख्या भी बताई है। इसका विस्तार कलियुग के दूसरे भाग में करेंगे।

विश्वेश्वर पद्धतौ-सम्प्रदाय विद:

"नाग मुद्रा त्वधोधार्या धेनु मुद्रातु मध्यत:।
तृतीये दण्ड भागे तु धार्या परशुमुद्रिका ॥२३॥
तस्योपरि च सन्धार्या वैष्णवी शंख मुद्रिका।
धेनु मुद्रायां विशेषस्तत्रैयोक्त:।
ब्राह्मीमुद्रायामपि विशेष उक्त:।
भागद्वयं विहायोर्ध्व चतुरंगुल मानत:।
दण्डं कार्पाससूत्रेण वेष्टयेत् सम्प्रदायत: ॥२४॥
भागद्वयं मध्यम भागस्य भागद्वयम्।"
ऊर्ध्वम् मध्यम भागस्य तृतीय भाग इत्यर्थ:।
अत्र ब्रह्म मुद्राऽपिकर्त्तव्येतिकेचित्।
तन्न सम्प्रदाय वाक्य विरोधात्।
"एतच्च मुद्रा बन्धनं वृद्धैरतिमन्दाधिकारिणां
केवलं चित्तदमनायैव कल्पितम्।
श्रुति स्मृति-पुराणेष्वनुपलम्भात्। अतएव माधवीये।"

सम्प्रदायानुसार दण्ड बाँधने में सम्प्रदायवेत्ता श्री विश्वेश्वर पद्धति में कहा गया है– ''मुद्रा से नीचे नाग मुद्रा धारण करे। बीच में धेनु मुद्रा तथा दण्ड के ऊपर के तीसरे भाग में परशु मुद्रा धारण करे। परशुमुद्रा पर वैष्णवी शंख मुद्रा धारण करे। वहीं पर धेनु मुद्रा तथा ब्राह्मी मुद्रा के सम्बन्ध में विशेष कहा है। दण्ड के दो भाग छोड़कर ऊपर चार अंगुल के प्रमाण से अपने सम्प्रदाय के अनुसार कपास के सूत्र से दण्ड को लपेटे। 'भाग द्वयं' का अर्थ, दण्ड के बीच के दो भाग कहे। अर्थात् ऊपर तथा मध्यम भाग का तृतीय भाग। इसी भाग में ब्रह्म मुद्रा बनाये। भाव यह है कि यति हृदय से लेकर नाभि पर्यन्त दण्ड को अपने शरीर नापकर हृदय तथा नाभि के मध्य में ब्रह्म मुद्रा बाँधे। यह कुछ विद्वानों का मत है। ऐसी बात नहीं है। सम्प्रदाय के वाक्य के विरोध होने से, वृद्धों ने अति मन्दाधिकारियों के चित्त का दमन करनरे के लिये कल्पित की है। श्रुति, स्मृति तथा पुराणों में प्राप्त नहीं है। ''दण्डैश्वर्य विधानम्'' का अभी पता चला है। पहले लुप्त था। विश्वेश्वर स्वामीजी ने कल्पित माना है। परन्तु श्री आदि शङ्कराचार्य ने प्रमाण माना है। अत: कल्पित नहीं है।''

यति अपने सम्प्रदाय के अनुसार चौबीस यज्ञोपवीतों के बराबर दण्ड सूत्र को अपने दण्ड में बाँधे। तीन दण्डियों (आश्रम, तीर्थ, सरस्वती) के दण्ड सूत्र में आश्रमों के २४, तीर्थों के २०, और सरस्वतकी का १८ यज्ञोपवीतों का दण्ड सूत्र होता है। आश्रमों का दण्ड सूत्र बड़ा होने के कारण उनकी पुष्प मुद्रा श्वेत और नीचे को लटकती है। तीर्थ सरस्वती का छोटा होने के कारण बराबर सीधी रहती है। तीनों का दण्ड सूत्र गेरुये रंग में रंगा तथा पुष्प मुद्रा श्वेत रहती है। परशुमुद्रा के नीचे ब्रह्ममुद्रा, दो यज्ञोपवीतों की सफेद होती है। उसके ऊपर चार अंगुल का वस्त्र लपेटा रहता है। उसे लक्ष्मी पट कहते हैं। यह भी सफेद रहता है। ब्रह्म मुद्रा तथा पुष्प मुद्रा दो-दो यज्ञपवीतों की सभी की होती है। तीनों के दण्ड में कुल मिलाकर आश्रमों के दण्ड के २८ यज्ञोपवीत, तीर्थों के २४ और सरस्वती के २२ होते हैं। इन लक्षणों से युक्त दण्ड दर्शनीय होता है। ऐसे दण्ड से युक्त संन्यासी को जो देखता है, वह काल दण्ड से छूट जाता है।

दण्ड का लक्षण–अत्रि जी कहते हैं कि यति बाँस का दण्ड बहुत मोटा या बहुत पतला धारण न करे। आगे तथा मूल की ग्रन्थि को छोड़कर धारण करे। नीचे जितना

हो, ऊपर उससे दुगुना होना चाहिये। दण्डी अपने दण्ड को हमेशा साफ रखे। तीन बाण से अधिक दूरी पर जाना हो, तो मल मूत्र त्याग के अतिरिक्त साथ रखे। अथवा शंख या गौ के रंभाने का शब्द जितनी दूर सुनाई दे, उतनी दूर बिना दण्ड के जा सकता है। यदि वृद्ध अथवा रोगी संन्यासी स्वयं लेकर न चल पाये तो आज्ञाकारी शिष्य ले करके चल सकता है, क्योंकि शिष्ट पुरुषों ने शिष्य को हाथ पैर कहा है।

ब्रह्मचारी का दण्ड पलाश का, वानप्रस्थी का वेल का, तथा संन्यासी बाँस का धारण करे। मनुस्मृति में ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिये पलाश अथवा बेल का। दण्ड मूर्धा पर्यन्त हो। क्षत्रिय के लिये खैर या कैथे का ललाट पर्यन्त। वैश्य के लिये गूलर या पीपल का नासिका पर्यन्त होना चाहिये। ढाक तथा बेल वीर्य स्तम्भक है। ब्रह्मचर्य में सहायता मिलती है। वंश दण्ड के स्पर्श से ज्ञान वैराग्य बढ़ता है। अतः यति के लिये बाँस का दण्ड कहा है। केवल ब्रह्मचर्य में ही क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिये भिक्षा तथा दण्ड का विधान है और आश्रमों में नहीं। यति का कनिष्ठिकावत् मोटा दण्ड ब्रह्मदण्ड कहलाता है। तर्जनी के समान विष्णु दण्ड मध्यम कहा है। मध्यमा के समान रुद्र दण्ड। अँगूठे के बराबर आसुरी दण्ड है। कनिष्ठा के बराबर उत्तम, तर्जनी के समान मध्यम, अँगूठे के बराबर आसुर दण्ड होता है। जो मूल में मोटा हो, वह नारी दण्ड। जिसका मध्य स्थूल वह नपुंसक। बराबर गाँठ, बराबर पोरों वाला, समान दण्ड पुरुष दण्ड होता है। दण्ड को पूर्व अथवा उत्तर में परशु मुद्रा करके प्रणव का उच्चारण करते हुए रखना चाहिये। दण्ड के बिना संन्यासी कहीं न रुके। यदि बिना दण्ड के एक दिन भी यति रहता है, तो सौ प्राणायाम करने से शुद्ध होता है। मृत्यु पर्यन्त यति दण्ड का त्याग न करे। यदि प्रमाद से आचार्यों के मार्ग का उल्लंघन करता है, तो पतित हो जाता है। यदि त्याग किया है तो उसे धारण न करे। परन्तु आजकल कई ऐसे यति पाये जाते हैं, जिन्होंने एक बार दण्ड त्यागकर फिर धारण किया। यदि ऐसा करता है तो पतित हो जाता है। सौ जन्म तक शूद्र होता है। **दण्ड प्रार्थना**–"हरि मुद्रे! ब्रह्म मुद्रे! शंख मुद्रे! नमोऽस्तुते। अकारोकार-मकार-मुद्रे तुभ्यं नमोनमः॥" यति बिना दण्ड के एक घर से दूसरे घर में न जाए। स्थान से बाहर निकलते समय दण्ड लेकर यति अपना बायां पैर पहले बाहर रखे और दण्ड

के मूल को आगे निकाले तथा ब्राह्मण आदि को दाहिने करके जाये। प्रवेश करते समय दायां पैर अन्दर और दण्ड का ऊपरी भाग पहले अन्दर प्रवेश करावे।

दण्ड में स्थित देवता–यति परशु तथा ब्रह्म मुद्रा बाँधने के अनन्तर वैदिक ब्राह्मण द्वारा पुरुष सूक्त, तथा रुद्राष्टाध्यायी के नमक चमकाध्याय से प्राण प्रतिष्ठा करावे। दण्ड, माला, गोमुखी, चन्दन, शंख, दूर्वा, घण्टी, पुस्तक, दीपक, मणि आदि को पृथ्वी पर न रखे। इनके भार को पृथ्वी नहीं सहन कर पाती। ब्राह्मण यदि बिना आसन के ज़मीन पर बैठ जाता है तो वहाँ की लक्ष्मी ले जाता है, दरिद्रता छोड़ जाता है, क्योंकि ब्रह्मण की गुदा में दरिद्रता का वास है। दीपक पृथ्वी पर रखने वाला सात जन्म तक अन्धा होता है। "**सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे दण्ड मूले तु पूर्वजाः प्रति ग्रन्थिषु गन्धर्वाः मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः॥**" दण्ड के अगले भाग में तैंतीस कोटि देवता, दण्ड के मूल में पूर्वज (पितृगण), प्रति ग्रन्थि में गन्धर्व तथा मध्य में मनुष्यों का वास है। यदि संन्यासी के माता पिता जीवित हों और संयोग से कहीं मिल जायें। यदि पिता पितामह आदि जीवित हों, धुरन्धर विद्वान् हों तो वह भी मूर्ख पुत्र पौत्र आदि को 'ॐ नमो नारायणाय' यह कहकर तीन बार प्रणाम करें और यति नारायण कह कर आशीर्वाद दे और यदि जन्म दात्री माता जीवित है तो उसे यत्नपूर्वक प्रणाम करे।

दण्ड व्यवधान में प्रायश्चित्त–दण्डी और दण्ड के बीच में चाण्डाल आ जाये तो ब्रह्ममुद्रा काटकर नयी बाँधे। प्राण प्रतिष्ठा करे और सौ प्राणायाम करे। तब शुद्ध होता है। सत् शूद्र के आ जाने पर १६ प्राणायाम, वैश्य के आने में १२, क्षत्रिय के आने में ८, तथा ब्राह्मण के आने में ४ प्राणायाम करे। यदि दण्ड खोल के अन्दर है तो दोष नहीं है। यदि दण्ड टूट जाये तो गहरे जल में डाल दे। यदि खो जाये या भूल जाये तो जब तक नया दण्ड ले, जब तक पूजन न करे, तब तक जल ग्रहण न करे। यदि दण्ड का मदिरा मूत्र, मल, शुक्र अथवा शोणित से स्पर्श हो जाये तो उस दण्ड को त्यागकर नया बनवावे?

अन्य ऋषियों के मत से–शूद्र या स्त्री के बीच में आ जाने से तीन प्राणायाम करे, कुत्ता, गधा, ऊँट के आ जाने में १२ यदि दण्ड जल में हो या आकाश में हो, तो दोष

नहीं है। नहर और दण्ड का व्यवधान होने पर सौ प्राणायाम, महानदी के व्यवधान में ब्रह्ममुद्रा फिर से बाँधे। मुद्रा अशुद्ध होने अथवा खण्डित होने पर नयी बाँधे। चातुर्मास्य में मुद्रा नहीं बाँधनी चाहिये। दण्ड आदि के खण्डित हो जाने पर यदि ठोस दण्ड नहीं मिलता तो पोला दण्ड ही बाँधे। ठोस दण्ड मिलने पर उसका त्याग कर दे। यदि मूर्धा पर्यन्त दण्ड न मिले तो ललाट या नासिका पर्यन्त ही धारण करे और उत्तम मिल जाने पर कनिष्ठ का त्याग कर दे। **''यतीनां च त्रयोदण्डा एक स्थाने न क्षिपेत्। कदाचित् स्थापितास्तेषां पुनर्मुद्राविधीयते॥''** संन्यासियों को तीन दण्ड एक स्थान पर नहीं रखना चाहिए। इससे कम या अधिक रखे जा सकते हैं। तीन दण्ड रखने पर उनके मुद्रा काट कर फिर बाँधें, ब्रह्म मुद्रा अनध्याय तथा अपराह्न काल में न बाँधे। ऊपर का कहा हुआ दोष भूमि पर रखे हुए पर है। हाथ में, खूँटी पर या जल में दोष नहीं है।

ब्रह्म दण्ड तथा भगवान् की वंशी में ऐक्य–यह सर्व लोक प्रसिद्ध ही है कि वेदों से लेकर तन्त्र शास्त्र तक शिव तथा विष्णु अभिन्न है। द्वापर के अन्त में जब देवताओं ने ऋषियों को साथ लेकर भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि आप अवतार लेकर भू भार उतारें। भगवान् ने तथास्तु कहा। फिर भगवान् ने शिव से प्रार्थना की। आप मेरे इष्ट देव हैं। आपके बिना मैं कार्य नहीं कर पाऊँगा। शंकर जी ने कहा कि तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे हाथ में वंशी के रूप में विराजमान रहूँगा। वासुदेवोपनिषद् में आया है।

'वंश्यस्तु भगवान् रुद्रः' अतः भगवान् कृष्ण का हाथ और मुखारबिन्द शिवालय है और भगवान् शंकर वंशी के रूप में मूर्तिमान विराजमान हैं। इसकी पुष्टि महाभारत के गदापर्व से तथा हरिवंश से होती है। जिस समय दुर्योधन अपने सभी भाइयों तथा सेना को मरवा चुका था। उसके पक्ष में कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ही बचे थे। भीमसेन ने दुर्योधन को ललकारा। वह प्राण बचाने के लिये अमावस्या की अर्द्धरात्रि में व्यास सरोवर में छिप गया। उसने भगवान् व्यास जी की सेवा करके जल स्तम्भन क्रिया सीख ली थी। अपनी गदा से चारों ओर का जल हटाकर बीच में बैठ गया। उस जल के दशों दिशाओं में रहने पर भी उतने स्थान पर जल नहीं रहा और उस के वस्त्र आदि नहीं भीगे।

जब भीम सेन ने उसकी निन्दा की। तब वह जल से निकला और बोला, मैं अकेला हूँ और तुम लोग सात हो। कैसे लड़ सकता हूँ। यह धर्म युद्ध नहीं है। भीम ने तमक कर कहा। जब सोलह वर्ष के बच्चे अभिमन्यु को सात महारथियों ने मिलकर मार डाला था। तब तुम्हारा धर्म युद्ध कहाँ था। भगवान् ने भीम को शान्त किया और उससे पूछा तुम किससे लड़ना चाहते हो। दुर्योधन ने कहा, राजा राजा से ही युद्ध करता है। मैं युधिष्ठिर से लड़ूँगा। भगवान् जानते थे। युधिष्ठिर जीत न पायेंगे। भगवान् ने दुर्योधन से कहा, कि मैं अभी भीम को मुर्द्धाभिषिक्त करूँगा। फेंट में रखी वंशी को भीम के मस्तक पर रखा तथा अनेकों प्रमाणों से भगवान् ने वंशी को रुद्र सिद्ध किया और रुद्र सूक्त से अभिषेक किया। इन प्रमाणों से वंशीरुद्रावतार सिद्ध होती है। तथा भवगान् कृष्ण का हाथ और मुख शिव मंदिर है।

जब कलियुग ढाई हज़ार वर्ष बीत चुका। छयों नास्तिको का तथा अवैदिक भेद वादी सम्प्रदायों का अधिक बोलबाला था। जैन, बौद्ध, मन्दिरों तथा मठों को तोड़ रहे थे। यज्ञादिक को अशुद्ध करते थे। तब देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु को आगे करके शंकर जी से अवतार लेने के लिये प्रार्थना की। उन्होंने शशल (कालटी) ग्राम में अवतरित होने का वचन दिया। शंकर जी ने भगवान् विष्षु से प्रार्थना की कि आपके बिना मैं सक्षम नहीं हूँ। अतः मेरी सहायता के लिये आप अवतार लें। भगवान् ने कहा, मैं तुम्हारे हाथ में वंश दण्ड के रूप में विराजमान रहूँगा। अतः श्री शंकराचार्य जी का हस्तारविन्द केशवालय है। और दण्ड मूर्तिमान् भगवान् विष्णु है। इसीलिये दण्ड की प्रार्थना में **"दण्ड रूपिन् महाविष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम"** कहा जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि वंशी शिव स्वरूप और दण्ड विष्णु स्वरूप है।

'यः पिण्डे स ब्रह्माण्डे' इस सिद्धान्तानुसार जो मनुष्य के शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। मनुष्य शरीर में नाभि से ऊपर क्रमानुसार भूः भुवः स्वः महःजनः तपः सत्यं, सात ऊपर के लोक हैं और नाभि से पैर के तलवे पर्यन्त क्रमानुसार अतल, वितल, सुतल आदि सात नीचे के लोक हैं। इन चौदह लोकों वाले ब्राह्माण्ड का प्रतीक दण्ड है। मानव शरीर में परमात्मा ने जिन तीन शक्तियों इच्छा, क्रिया, ज्ञान, शक्तियों से इसकी रचना की। रचना के अनुसार जो शक्ति शेष बची वही मूलाधार चक्र में कुण्डलानी शक्ति के

रूप में दाहिने बायें साढ़े तीन, तीन वलयों के रूप में सफेद तन्तुओं से वेष्टित है। यह व्यष्टि शरीर में ईश्वर की शक्ति है। वही परमेश्वर की समष्टि शक्ति सात-सात लोकों (चौदह लोकों) की रचना करके जो शक्ति शेष बची, वह सातवें पाताल में शेष के रूप में विद्यमान हे। इसलिये दण्ड के ब्रह्ममुद्रा में सफेद यज्ञोपवीत से कुण्डलिनी बनाई जाती है। दण्ड भी इसी शक्ति का प्रतीक है। अविद्या को दण्डित करने वाला यह 'ब्रह्मदण्ड' है। इसे विष्णु लिंग भी कहते हैं। भाव यह है कि वैदिक सनातन धर्म में तीन लिंगों का पूजन होता है। एक शिव लिंग, तथा दो विष्णुलिंग। जिससे संसार के सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, रहते हैं और अन्त में लीन हो जाते हैं। उस ब्रह्म के प्रतीक को लिंग कहते हैं। लीयन्ते यस्मिन् भूतानि इति लिंगम्। शिव लिंग तो प्रसिद्ध है ही। यह निराकार निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक है। निराकार ब्रह्म आदि अन्त से रहित है। गोल वस्तु का भी आदि, मध्य, अन्त नहीं माना जा सकता। निराकार ब्रह्म ठोस है। अत: यह निराकार ब्रह्म का प्रतीक है। तुलसीदास जी के शब्दों में, "भवानी शंकरौवन्दे श्रद्धा-विश्वास-रूपिणौ। याभ्यांबिना न, पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥" श्रद्धा विश्वास रूपी उमाशंकर की मैं वन्दना करता हूँ। जिनकी कृपा के बिना सिद्ध भी अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं जान सकते हैं। भक्त को भगवान् के प्रति विश्वास आदि अन्तरहित (गोल) और पक्का होने के कारण ठोस होना चाहिए। शंकर जी का भगवान् विष्णु के प्रति ऐसा ही विश्वास है। जो विश्वास चतुर्भुज मूर्ति में था। वह राजकुमार के रूप में जब पत्नी के वियोग में राम के रूप में पशु-पक्षियों और लता-औषधियों से पूछने लगा। सती का विश्वास उस रूप को देखकर चलायमान हो गया। परन्तु शिवजी का विश्वास ज्यों का त्यों बना रहा। "जयसच्चिदानन्द पर धामा" कहकर चले गये। अत: विश्वास का ही रूप शिव जी की गोल पिंडी है। शिव लिंग जिसमें स्थापित किया जाता है। वह जल हरी भी पार्वती का प्रतीक श्रद्धा है। जल हरी आरम्भ में चौड़ी और आगे संकीर्ण हो जाती है। पार्वती की श्रद्धा नारद जी के उपदेश से जो बनी थी, वह सप्त ऋषियों के विचलित करने पर भी ज्यों की त्यों बनी रही। उन्होंने बातें सब की सुनीं, पर शिव के अतिरिक्त विष्णु को वरण नहीं किया। अत: पार्वती श्रद्धा का प्रतीक है। श्रद्धा विश्वास के बिना भगवद्दर्शन नहीं हो सकता। अत: दोनों की प्राप्ति के लिये

सभी को जल हरी सहित शिव का पूजन करना चाहिये। शिव पुराणादि ग्रन्थों में आया है कि शिव लिंग का दर्शन पूजन करने से तैतीस कोटि देवताओं के दर्शन और पूजन का फल मिलता है; किन्तु सावयव मूर्पि के पूजन से केवल शिव पूजन का ही फल होता है। लिंग पूजन भगवान् कृष्ण और अर्जुन ने किया था। अतः उनकी विजय हुई। सावयव पूजन शिवावतार अश्वत्थामा ने किया, उनकी हार हुई।

२. शाल ग्राम–यह निराकार निर्गुण विष्णु का प्रतीक है। इसे विष्णु लिंग कहते हैं। इसमें किस–किसका अधिकार है, कैसे करना चाहिये पीछे बताया जा चुका है।

३. दण्ड वैष्णव लिंग–इसे भी विष्णु लिंग कहते हैं। इसमें एकमात्र चारों प्रकार के यतियों का ही अधिकार है अन्य का नहीं।

॥ इति तृतीय प्रकरण का छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद में सैतीसवाँ अध्याय प्रारम्भ ॥

संन्यास लेने से सन्तान तथा शरीर सम्बन्धी दोष वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे तुष की अग्नि से काञ्चन का मल जल जाता है। यति का हाथ, पैर, नेत्र तथा वाणी चञ्चल न हो।

आतुर संन्यास की विधि–इस संन्यास में नान्दी मुख श्राद्ध से लेकर दण्ड ग्रहण पर्यन्त कोई कर्म नहीं होता। मुण्डन की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है। संकल्प के अनन्तर प्रैष मंत्र तथा अभयदान मात्र से संन्यास हो जाता है। मन तथा वाणी से ही यह संन्यास हो जाता है। मृत्यु के समय का लिया हुआ संन्यास हज़ार यज्ञों के बराबर फल देता है। यदि वह मृत्यु से बच जाए तो वह चारों में से कोई भी संन्यास विधिपूर्वक ले ले। अथवा वन में जाकर शिखा सहित यज्ञोपवीत का त्याग करके प्रसन्नचित्त से संसार का आत्म रूप से चिन्ततन करे। आतुर तथा क्रम संन्यास के मंत्रों में भेद नहीं है। आतुर संन्यास कर्म रहित है। क्रम संन्यास में कर्म की प्रधानता है। कर्म रहित संन्यास में मंत्र का त्याग नहीं है। बिना मंत्र के कर्म भस्म की आहुति के समान व्यर्थ है। किसी के मंत्र न सुनने की दशा में प्रैष मंत्र का स्वयं उच्चारण कर सकता है। वह यति तत्काल अथवा कालान्तर में ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। मृत्यु के समय ''संन्यस्तं मया'' कहकर धीर

ब्राह्मण सूर्य मण्डल का भेदन करके ब्रह्म लोक जाता है। वहाँ ब्रह्मा जी की मृत्यु के साथ उनके साथ ही पंच महाभूतों के क्षय हो जाने पर परब्रह्म को प्राप्त करता है। जावालोपनिषद् में ब्राह्मण का ही आतुर संन्यास में अधिकार कहा है। जिसके बुढ़ापे में बाल पक गये हों। इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हों। शत्रुओं से घिरा हो। वह आतुर संन्यास का अधिकारी है। ऐसे यति की मृत्यु के बाद इनका संस्कार भी नारायण बलि आदि, पार्वण श्राद्ध आदि पूर्वोक्त संन्यासियों के समान करे। मरने के बाद इन्हें जल में प्रवाह करे। जल में ही जल की आहुति दे। **आतुर संन्यास की विधि पूर्ण हुई।**

जावालि–चतुर्वेदी ब्राह्मण की अपेक्षा सौ सोमयाजी ब्रह्मण श्रेष्ठ है। पर यति की अपेक्षा में मेरू पर्वत के सामने राई के समान हे।

कपिल–कण्ठ गत प्राण होने पर 'संन्यस्तं मया' कहने वाला पुनर्जन्म से रहित होकर अक्षय लोकों को प्राप्त करता है।

व्यास–ब्राह्मण को संन्यास लेते देख कर सूर्य भगवान् भी काँप उठते हैं। वह डेढ़ सौ करोड़ कुलों सहित पद को प्राप्त करता है।

''यस्य संन्यसनादेव स्थानाच्चलति भास्करः।
कुल कोटि शतैःसार्धं प्राप्नोति परमं पदम्॥
दिव्य तोजो मयं श्रीमान् सूर्य चन्द्राग्नि मण्डलम्।
भित्वा प्रयाति संन्यासी स्वधर्मं परिपालनात्॥''

ऊपर के श्लोक का अर्थ पहले दिया जा चुका है। दूसरे श्लोक का अर्थ यह है– अपने कर्म का परिपालन करने वाला संन्यासी तेजोमय दिव्य सूर्य, चन्द्र,अग्नि मण्डल को भेदकर परम पद को प्राप्त करता है। संन्यास के बाद गुरु शिष्य का नाम बदल देते हैं। तथा गोत्र भी बदल जाता है।

यति धर्म समुच्चय में यति द्वारा ग्राहय वस्तुयें–संन्यास के अनन्तर यति सन, कपास अथवा रेशमी वस्त्र काषाप रंग में रंगे। मृग चर्म तथा सूती कपड़े का बना जूता कौपीन, कन्था आदि धारण करे।

भिक्षा प्रकरण–गुरु की आज्ञा से शिष्य, दही,दूध, मट्ठा, दातून, पुष्प, कन्द, मूल, फल ले सकते हैं। ब्राह्मण के द्वारा दी गई आध्यात्मिक पुस्तक ले सकते हैं। **वृद्धयाज्ञवल्क्य।**

यति, गुरु, देवता तथा स्वधर्म पालन करने वाले यतियों का सम्मान करे तथा प्रणाम करे। संन्यासी को छोड़कर विद्या आदि सद्‌गुणों में अधिक ब्रह्मचारी गृहस्थ तथा वानप्रस्थियों को प्रणाम न करे। यति को सत्य का त्याग नहीं करना चाहिये। ब्रह्मा जी ने अश्वमेध यज्ञ तथा सत्य के फल को तौला तो अश्व मेध यज्ञ की अपेक्षा सत्य का पलड़ा भारी रहा। किन्तु गऊ ब्राह्मण की रक्षा के लिये झूठ बोलने में दोष नहीं है।

''असत्यमपि वक्तव्यं गोब्राह्मण हिताय वै।
सत्यादपि हितत्सत्यं न सत्यं सत्यमुच्यते॥''

''गो ब्राह्मण के लिये असत्य भी बोलना चाहिए, क्योंकि वह असत्य सत्य से भी अधिक सत्य है। सत्य सत्य नहीं।''

स्त्रियों में, धर्म विवाह में, वृति के लिय, प्राण संकट होने पर, देव ब्राह्मण की रक्षा में असत्य बोलने में दोष नहीं है।

यति को ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए। इसका पालन करने से आयु, तेज, बल, बुद्धि, वीर्य, महत्कीर्ति, पुण्य तथा प्रियत्व प्राप्त होता है। **''गर्भे व्याधौश्मशाने च पुराणे जायते मतिः। सैव चेत् सर्वदा तिष्ठेत् को न मुच्येत बन्धनात्।''** माता के गर्भ में, रोग मे, श्मशान भूमि में, पुराण की कथा सुनते समय जैसी बुद्धि रहती है, यदि वैसी सदैव रहे तो बन्धन से सभी छूट जाये। **व्यास–**

''शोको नाशयति प्रज्ञां शोको नाशयति श्रुतम्।
धृतिंविनाशयेच्छोको नास्ति शोकसमोरिपुः॥
अपकारिणि कोपश्चेत् कोपे कोपः कथं नते।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्यपरिपन्थिनि॥
रागान्धो हि जनः सर्वोन पश्यति हिताहितम्।
रागं तस्मान्न कुर्वीत यदिच्छेदात्मनोहितम्॥

क्षमातीर्थं तपस्तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः।
सर्वभूत दया तीर्थं, ध्यान तीर्थमनुत्तमम्॥
एतानिपंच तीर्थानि सत्यं षष्ठानिसर्वदा।''
देहे तिष्ठन्ति सर्वस्य तेषु स्नानं समाचरेत्॥
न तथा पुष्करे स्नानात् गयायां कुरुजांगले।
मुच्यते पुरुषः पापद्यथास्नानात्क्षमादिषु॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र यत्र बसेन्नरः।
तत्रतत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणिच॥
इदंतीर्थमिदं नेति ये नराः भेददर्शिनः।
तेषां विधीयते तीर्थं गमनं तत्फलानि च॥
सर्व ब्रह्मेति यो वेत्ति न तीर्थंतस्य किंचन।
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तेषु ब्रह्मण्येव स वर्तते॥
स्नानं मनोमलं त्यागो दानं चाभय दक्षिणा।
ज्ञानं तत्त्वार्थ संवोधोध्यानं निर्विषयंमनः॥
मन सश्चेन्द्रियाणां च एकाग्रं परमं तपः।
तज्ज्यायःसर्व धर्मेभ्यः सधर्म पर उच्यते॥''

शोक, बुद्धि, श्रवण, धैर्य का नाश करता है। शोक के समान कोई शत्रु नहीं है। जो अपकार करने वाले पर लोग क्रोध करते हैं। पर अपने क्रोध पर क्रोध क्यों नहीं करते। जो कि क्रोध पुरुषार्थ चतुष्टय का असहनीय शत्रु है। राग से अन्धे मनुष्य अपना हानि लाभ नहीं देखते। अतः यदि अपना हित चाहते हो तो राग न करे। क्षमा, तप, इन्द्रियों का वश में करना, सभी प्राणियों पर दया यह सब तीर्थ है। इनमें ध्यान सबसे उत्तम तीर्थ है। इन पाँच तीर्थों में छठे सत्य सहित जो सर्वदा शरीर में ही रहते हैं। सदैव स्नान करे। जैसे क्षमादितीर्थों में स्नान करने से जीवबन्धन मुक्त होता है। वैसे पुष्कर, गया और कुरूक्षेत्र में स्नान करने से नहीं। इन्द्रियों को वश में करने वाला मनुष्य जहां रहता है वहाँ

कुरूक्षेत्र, नैमिष तथा पुष्कर आदि तीर्थ रहते हैं। भेददर्शी मनुष्य यह तीर्थ है यह नहीं है ऐसा कहा करते हैं। उनके लिये तीर्थ यात्रा का विधान कहा है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि में यह सर्व ब्रह्म है। ऐसे ज्ञानवान् के लिये (ब्रह्मवेत्ता) सर्वत्र तीर्थ है। मन का पाप दूर करना ज्ञानियों का स्नान है, अभय दान ही दक्षिणा है, तत्त्व बोध ज्ञान है, मन को विषयों से रहित करना ही ध्यान हैं। सभी धर्मों से उत्तम तप, मन सहित इन्द्रियों का एकाग्र करना है। वही धर्म कहा गया है।

वायु पुराण–द्वेष का मूल भय है, द्वेष न होने से भय नहीं रहता। राग का मूल द्वेष है। इन दोनों के होने से ब्रह्मचर्य नाश होता है।

''ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परेलोके ब्रह्मचर्य विदोजनाः॥
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यः, ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ज्येष्ठता ब्रह्मचर्येण, ब्राह्मणास्ते दिविस्थिताः॥''

परलोक में ब्रह्मचर्य को जानने वाले ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व होता है। ब्रह्मचर्य में धैर्य तथा तप स्थित है। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य में स्थित है। वे मानो स्वर्ग में ही स्थित है।

गुरु भक्ति

व्यास–यति दोनों कालों की सन्ध्या में ज्येष्ठ तथा गुरुओं को बारह बार दण्ड सहित प्रणाम करे। गुरु सेवा ही बड़प्पन को देती है। गुरुओं की मर्यादा का उल्लंघन न करे। पतित गुरुओं का भी अप्रिय कार्य न करे। उनसे कटु वचन न कहे। अपमान न करे। जो आचार्य का प्राण से, धन से, कर्म से, मन से, वाणी से प्रिय करता है, वह परम गति प्राप्त करता है। गुरुओं में मनुष्य बुद्धि न करे। गुरुओं के सामने उच्च आसन पर न बैठे।

मनु–गुरुओं के आगे उत्तम वस्त्र उत्तम भोजन न करे।

आपस्तम्व–''क्रिया द्वैते र्हिबन्धस्स्यान्मोक्षश्चाद्वैतभावना॥''

व्यास–"चाण्डालानां सहस्त्रे द्वेद्वेशते त्रिगुणाधिके। तद्दोषंसमवाप्नोति म्लेच्छमेकेन संस्पृशन्॥"

व्यवहार में अद्वैत बुद्धि न करे तथा भाव में सदा अद्वैत करे। क्रिया द्वैत करने वाला बन्धन में पड़ता है। अद्वैत भावना से मोक्ष होता है। छ हज़ार छ सौ चाण्डालों के छूने से जो दोष है, वह एक म्लेच्छ के छूने से होता है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का अड़तीसवाँ अध्याय प्रारम्भ॥

जो तीनों आश्रमों को छोड़कर संन्यास में जाता है, उससे पतित होने वाले की गति नहीं है। संन्यास लेकर जो अपने स्वधर्म में स्थित नहीं होता, उसे वेद ने आरूढ़ पतित कहा है। जो एक अक्षर देने वाले को भी गुरु नहीं मानता, उसका ज्ञान मिट्टी के कच्चे घड़े में भरे हुए जल के समान निरर्थक होता है। जो यति बारह सहस्त्र प्रणव का जप नित्य करता है, एक वर्ष में उसे परब्रह्म का प्रकाश होता है।

यतियों के तीन भेद–यतिधर्म समुच्चय से

उत्तम अधिकारी–अति प्रखर बुद्धि संन्यासी, प्रस्थान त्रयी के भाष्यों को संन्यास लेकर व्याख्या तथा टिप्पणी सहित पढ़े। यहाँ व्याख्या टिप्पणी से तात्पर्य संक्षेप शारीरिक भाष्य, सर्वज्ञात्म मुनि कृत तथा विद्यारण्य स्वामी जी का विवरण प्रमेय, ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य पर वाचस्पति मिश्र की भामती टीका, अप्पय दीक्षित का वेदान्त कल्पतरु परिमलटीका, रत्न प्रभा, तथा आनन्द गिरिजी का न्याय निर्णय है। सुरेश्वराचार्य जी का तैत्तिरीय तथा बृहदारण्य उपनिषद के भाष्य वार्तिक तथा चित्सुखाचार्य जी की "प्रत्यक् तत्त्व चिन्तामणि" इसे "चितसुखी" भी कहते हैं। इनका अध्ययन करे। संन्यासी कर्म उपासना का परित्याग करके ज्ञान काण्ड में स्थित रहे।

मध्यम अधिकारी–यदि मध्यम अधिकारी है तो सभी उपनिषदों तथा शाखाओं में स्थित आरण्यकों का पाठ करे। गुरु मुख से नित्य प्रति सुनकर बारंबार अभ्यास करे। महाभारत में स्थित शिव सहस्त्र नाम, पुरुष सूक्त का अभ्यास करे। प्रणव का नित्य बारह हज़ार जप और प्रणव गायत्री का जप करे। प्रणव कल्प की आवृत्ति करे।

अति मन्द अधिकारी–ऊपर कहे हुए ग्रन्थों का पाठ तथा प्रणव का जप करे। इनके लिये भी प्रणव गायत्री आवश्यक है।

कुटीचक अति मन्दाधिकारी, मन्दाधिकारी बहूदक, मध्यमाधिकारी, हंस उत्तमाधिकारी, परम हंस का भिक्षा प्रकरण–

भिक्षा की ऊपर कही हुई विधि सब के लिये समान है। यह चारों यति जब तक अविद्या की निवृत्ति न हो तब तक श्रवण करें। अनात्म भूत शरीर आदिकों में आत्म बुद्धि अविद्या है। अविद्या का नाश मोक्ष है।

चारों संन्यासियों के नियम–तुरीयातीत तथा अवधूत के लिये दो माह का क्षौर कुटीचक चार माहबाद, बहूदक के लिये क्षौर नहीं है। कुटीचक एक का अन्न ले, बहूदक–मधुकरी भिक्षा, हंस परमहंस हाथ में लें। तुरीयातीत तथा गौमुख, आजगरी वृत्ति से। कुटीचक दो चद्दर, बहूदक १ चद्दर रखे। हंस कपड़े का टुकड़ा, परम हंस दिगम्बर या एक कौपीन। तूरीयातीत अवधूत दिगम्बर। हंस परमहंस स्वरूप चिन्तन करे। कुटीचक, बहूदक देव पूजन करें। हंस परमहंस मानस करें। तुरीयातीत अवधूत सोऽहम् की भावना करें। कुटीचक, बहूदक का मंत्र जप में अधिकार है। हंस परमहंस का ध्यान में। तुरीयातीत अवधूत विधि निषेध से रहित हैं। तुरीयातीत अवधूत तथा परमहंस का महावाक्य उपदेश में अधिकार हैं। कुटीचक, बहूदक हंसों का इनमें अधिकार नहीं। बहूदक मानस प्रणव का, हंस परम हंस अन्तर्प्रणव का। तुरीयातीत अवधूत ब्रह्म प्रणव का जप करें। कुटीचक बहूदक वेदान्त का श्रवण। हंस परम हंस मनन। तुरीयातीत अवधूत निदिध्यासन करे। सभी के लिये आत्मानुसन्धान की विधि है। संन्यासोपनिषद्–आतुर तथा कुटीचक संन्यासी क्रमानुसार भूलोक व अन्तरिक्ष लोक, बहूदक स्वर्ग लोग, हंस तपोलोक, परम हंस सत्य लोक में जाते हैं। **तुरीयातीत, अवधूत** ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। स्वरूपानुसन्धान के बिना शास्त्र का अभ्यास यति के लिये ऊँट पर लदे हुये कुंकुम के भार के समान व्यर्थ है। "**न परिव्राट् नाम संकीर्तनपरो यत् यत् कर्म करोति तत्तत् फलमनुभवति। एरण्ड तैल फेनवत् सर्वपरित्यजेत् न देवता प्रसाद ग्रहणम् न बाह्यदेवतार्चनं कुर्यात्। स्वव्यतिरिक्तं सर्वं त्यक्त्वा माधुकर**

वृत्याहरन् कृशीभूत्वा मेदो वृद्धिमकुर्वन् विहरेत्। माधुकरेण कर पात्रेण वा कालंनयेत्॥'' संन्यासी नामसंकीर्त्तन न करे, क्योंकि जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उसका फल मिलता है। नाम कीर्तन शुभ कर्म हैं। संन्यासी शुभा शुभ दोनों का त्यागी है। नाम रूपी अग्नि पापों को जलाती है। पुण्यों को नहीं जब तक पुण्य रहेगा संसार में आना पड़ेगा। एरण्ड तेल के फेन के समान सब कुछ त्याग दे। देवताओं का प्रसाद न ले, न देवता का पूजन करे। अपने अतिरिक्त सब का परित्याग कर, माधुकरी वृत्ति से भिक्षा करते हुये शरीर को सुखा दे। मेद (चर्बी) न बढ़ने दे। हाथ में भिक्षा लेकर अपना समय बिताये। यह शास्त्र का वचन देहाध्यास से रहित अवधूत कोटि के यति के लिये है। सामान्य कोटि के यति के लिये नहीं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण॥

॥अथ तृतीय परिच्छेद का उनतालीसवाँ अध्याय प्रारम्भ॥

चारों प्रकार के यतियों की दिनचर्या

पराशर माधवीय में–प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर शौच आदि नित्य क्रिया करके दातून (पर्व के अतिरिक्त) करके स्नानादि करे। पहले प्रातः स्मरण करे। यदि बाहर जंगल में शौच जाना हो तो तिनकों से भूमि आच्छादित करे। मौन रहे। मल–मूत्र का त्याग प्रातःकाल उत्तर मुख या पश्चिम मुख, सायं काल दक्षिण या पुर्वाभिमुख करे। आजकल के शौचालयों (फ्लश) में यह नियम लागू नहीं होता। जलाशयादि पवित्र स्थानों से दस हाथ दूर मूत्र तथा सौ हाथ दूर मल त्याग करे। नदी आदि पवित्र तीर्थ में चार सौ हाथ छोड़कर करे। आजकल लोग तीर्थों में मल–मूत्र आदि का त्याग तथा कुल्ला आदि करते हैं तो पुण्य के बदले पाप मिलता है। तीर्थ का जल शौच के लिये नहीं लेना चाहिये। हाथ आदि की शुद्धि के लिये ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य हरी या पीली, या सभी शूद्र काली मिट्टी का प्रयोग करें। अथवा देश कालानुसार अभाव में जैसी मिले। किन्तु साबुन आदि का प्रयोग न करें। साबुन से दुर्गन्धि दूर हो जाती है। चिकनाई नहीं दूर होती है। मृत्तिका से दोनों ही दूर हो जाती हैं किन्तु बांवी, चूहे की

खोदी और जल के अन्दर की मिट्टी न ले। लघु शंका के बाद एक बार लिंग में, तथा तीन बार मिट्टी से हाथ साफ करे। शुक्रपात में तिगुनी, वृद्ध पराशर ऋषि कहते हैं। शौच से बची मिट्टी को बहा देना चाहिये। नहीं तो वह पितरों के मुख पंकज में लग जाती है। इसके बाद दातुन करे। खैर, कनेर, कदम्ब, जामुन, नीम, आम आदि की दातुन उत्तम कही गयी है। ब्राह्मण बारह अंगुल, क्षत्रियों के लिये नौ अंगुल, वैश्य के लिये छः अंगुल, शूद्र को चार अंगुल की दातुन करनी चाहिये। संन्यासी को दातुन नहीं तोड़नी चाहिये। कोई दूसरा तोड़ दे तो कर ले। अन्यथा मिट्टी से दाँत साफ कर ले। पेड़ के पत्ते से जीभ साफ करे। गृहस्थ इस मंत्र से दातुन तोड़े-"**आयुर्बलंयशोवर्चःप्रजा पशुवसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते।**" हे वनस्पति! मुझे आयु, बल, तेज, यश, सन्तान, पशु, धन, वेद को धारण करने की मेधा दें। यति का अरुणोदय काल में (चार घटी पर्यन्त सूर्योदेव के पूर्व) स्नान गंगा के समान होता है। तीर्थ की मृत्तिका लगाकर गंगादि नदियों का आवाहन करके स्नान करे। केश आदि का स्पर्श न करे। स्पर्श करने पर हाथ धोवे। शौच शेष, पैर धोने से बचा, पीने से शेष बचा जल मदिरा तुल्य है। बायें हाथ से दिया हुआ जल ग्रहण न करे। "**विष्णोः पादोदकं कृत्वा शंखे यः स्नाति मानवः॥ यति पादोदकम् राजन् हन्ति पापं पुरा कृतम्। सप्त जन्मार्जितं सद्यः श्रद्धया शिरसाधृतम्॥**" जो मनुष्य विष्णु का चरणोदक शंख में लेकर स्नान करता है अथवा हे राजन् यति के चरणों का जल श्रद्धापूर्वक सिर पर धारण करता है; तो वह सात जन्म के पापों को नष्ट करता है। स्नान के लिये संन्यासी दण्ड, कमण्डलु, वस्त्रादि लेकर दण्ड के मूल के अग्रभाग से जल का स्पर्श करके, देवताओं की वन्दना करे। यदि गुरु जी साथ हो, तो गुरू की तथा बड़े संन्यासियों की वन्दना करे। दण्ड को जल में गाड़ दे। यदि धारा तेज हो तो न गाड़े। तब बस्त्र विछाकर उस पर लिटा दे। स्नान से पूर्व कटि शौच करे। शुद्ध स्थान की मृतिका लेकर किनारे रखकर उसके तीन भाग करे। जल के बाहर ही एक भाग से मस्तक, दोनों भुजाएं, पीठ, पेट कुक्षि आदि अंगों में दाहिने हाथ से लगायें। फिर जल से धोवे। दूसरे भाग से कमर, जंघा, उरु, दोनों चरणों में, बायें हाथ से लेपन करके धोवे। तीसरे भाग से दोनों हाथ मलकर स्नान

के लिये जल में प्रवेश करे। तीन बार कोपीन में मिट्टी लगाकर साफ करे फिर स्नान करे। जो बात रोगी गठिया, या वृद्ध हो उनके लिये यह विधान नहीं है। स्नान के अनन्तर गीले वस्त्रों को इतनी दूर पर निचोड़े कि जल नदी में न जाये। फिर तीन प्राणायाम करके सूखे वस्त्र धारण करे। कफ आदि का रोगी यति सिर से स्नान न करे। **मेधातिथि जी– कुटीचक बहूदक के लिये त्रिकाल स्नान, हंस के लिये एक बार, परमहंस के लिये नहीं क्योंकि उनके लिये प्रणव के अतिरिक्त मंत्र का अभाव है। फिर प्रणव से ही संध्योपासना, सूर्योपस्थान, दण्ड तर्पण आदि करे। सन्ध्या से पूर्व अचमन करके प्राणायाम करे। फिर भस्म मंत्र का विनियोग पढ़े–''ॐ अस्य विभूति धारण मंत्रस्य वामदेव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः नमः शिवाय इति कीलकम् विभूति धारणे विनियोगः।''** फिर भस्म हाथ में लेकर जल छोड़कर **''ॐ अग्निरितिभस्म, वायुरिति भस्म, जल मितिभस्म, स्थलमितिभस्म व्योमेति भस्म सर्व हवा इति भस्म''** कहकर बारह प्रणवों से अभिमंत्रित करके **''ॐ त्र्यम्बकंयजामहे सुगंधिंपुष्टिवर्द्धनम्उर्वारुकमिवबन्धानान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥** फिर सात बार प्रणव लिखे और मिटाये और इस मंत्र को पढ़े–**''ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि''** इत्यादि मंत्र पढ़े। पुनः भूर्धादि अंगों में प्रणव से लगाये। **ॐ अं नमो मूर्ध्नि ॐ उंनमो ललाटे मं नमो हृदये, गर्दन, हृदय, वक्ष स्थल, बाहुमूल, कूर्परमणिबन्ध, दाहिने बायें भुजा में लगावे तथा उदर, नाभि, पृष्ठ, कटि, नितम्ब, पैर एवं सर्वांग में लगाये।** फिर विधिवत् संध्या करे। सन्ध्या के अनन्तर पंचीकरण का पाठ प्रणवानुसन्धान, सौ या एक हज़ार आठ प्रणव का जप करे। जल में अष्टदल कमल बनाये सगुण विष्णु का पंचोपचार पूजन करे। एक सौ आठ प्रणव से तर्पण करे। फिर दाहिने हाथ में जल लेकर बारह प्रणवों से अभिमंत्रित करके सिर पर छिड़के। जल से तीन आचमन करने के बाद वस्त्रों को मिट्टी से साफ करे। प्रणव से ही दण्ड के मूल में बारह बार तर्पण करे और अग्र भाग में सात का अंक जल में लिखकर बारह बार, बारह बार ब्रह्ममुद्रा में तर्पण करे। दण्ड को ऊपर उठा कर गुरु जनों की वन्दना करे। मठ में आकर गीले वस्त्रों को फैलाकर, दण्ड को पूर्व या उत्तराभिमुख मुद्रा करके खूँटी पर

टांग दे। फिर पैर धोकर, दो बार आचमन करके पवित्र देश में बैठे, ध्यान करे, जिन दण्डियों को देव पूजन में अधिकार है। वे भगवान् का पूजन करे। परन्तु व्यास कहते हैं–यति अपने हाथ से फूल पत्ती न तोड़े, शूद्र के द्वारा लाये, खरीद कर लाये पत्र पुष्प से पूजन न करे, परन्तु जो पककर फूल या तुलसी पत्र गिर गया हो, उनसे पूजा करे। अभाव में भाव पुष्पों से ही पूजा करे।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का चालीसवाँ अध्याय प्रारम्भ ॥

यति सन्ध्या

यति सन्ध्या अनेक प्रकार से पायी जाती है। इसमें संन्यास ''धर्म दर्पणम्'' के अनुसार सन्ध्या लिखी जा रही है।

यति और परमहंसों की प्रणवमय सन्ध्या–

जलाशये कूपे नले वा स्नात्वा धौत कौपीनादिवासः परिधाय, मृदा भस्मना वा तिलकान् कृत्वाचम्य प्राणानायम्य प्रणवेन गायञ्या वा सूर्यायार्घ्य त्र्यम् दत्त्वा प्रणवेनैव, हिरणमयेन पात्रेणेति, वाजसनेय मन्त्रेण वा तमुपस्थाप्य सन्ध्यास्थाने कुशासने प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्यःइमान् मन्त्रात् पठेत्।

जलाशय कुँआ अथवा नल पर स्नान करके धौत कौपीन वस्त्र पहन कर मृक्तिका अथवा भस्म से तिलक करके अचमन प्राणायाम करके प्रणव अथवा गायत्री से तीन बार सूर्यार्घ्य देकर प्रणव से हिरणमय पात्र से अथवा बाजसनेय मन्त्रों से उपस्थान करके सन्ध्या करके के स्थान पर कुशासन के ऊपर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके इन मन्त्रों को पढ़ें–

''ॐ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचि॥''

पुण्डरी काक्षः पुनातु माम्।

ॐ बागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे। यं नत्वा कृतकृत्याःस्युस्तं नमामि गजाननम्॥

ॐ शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

ॐ सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि। विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा॥

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

ॐ नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिञ्च तत्पुत्र पराशरञ्च। व्यासं शुकं गौड़पदम् महान्तं गोविन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्॥

श्री शंकराचार्यमथास्य पदमपादञ्च हस्तामलकञ्च शिष्यम्। तन्त्रोटकं वार्तिककार मन्यानस्मद् गुरून् सन्तत मानतोऽस्मि॥

ॐ आदौ शिवस्ततो विष्णुस्ततो ब्रह्मा प्रजापतिः। ततो वशिष्ठः शक्तिश्च ततः षष्ठः पराशरः॥

ततो व्यासः शुकश्चैव गौडपादाभिधः स्मृतः। गोविन्दाख्यगुरुः पश्चात् शङ्कराचार्य एव च॥

जपार्चनादि कालेषु संस्मरेद्वै गुरूनिमान्। ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या संप्रदाय कर्तृभ्यो नमो वंश ऋषिम्यो नमो गुरुभ्यः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थोब्रह्मैवाहमस्मि सर्वोपप्लव रहितः॥

उसके पश्चात् आसन शुद्ध करे। अर्थात् ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता त्वंच धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥ ॐ कूर्मासनाय नमः।

अपसर्पन्तु तेभूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूताविघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

ॐ अपसर्पन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। तेषामप्यविरोधेन ब्रह्म कर्म समारभे॥

ॐ अस्त्राय फडिति भूतोत्सारणम्।

ॐ विमलासनाय नमः। ॐ कमलासनाय नमः। ॐ अनन्तासनाय नमः। ॐ आधारशक्तयै नमः। ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ वास्तुपुरुषाय नमः।

इस प्रकार प्रणाम करके अपने आसन के चारों कोनों में अगनेयादि क्रम से। 'ॐ गं गणपतये: ॐ दुंदुर्गायैनमः ॐ सं सरस्वत्यै नमः, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः' इन प्रकार नमस्कार करके फिर उसी क्रम से।

ॐ गुरवे नमः। परमगुरवे नमः। ॐ परमेष्ठिगुरवे नमः। ॐ परात्परगुरवे नमः। इति गुरुवंश नत्वा इस प्रकार से गुरुओं को प्रणाम करके–स्वपुरतः परमात्मानं दिव्यसिंहासनस्थितं ॐ परमात्मने नमः।

प्रणवेन करशुद्धिं विधाय (प्रणव से कर शुद्धि करके) **यथा वाम हस्ते कूर्परादि मणि बन्धान्तम्।**

एवं दक्षिण हस्ते। पुनर्वाम हस्त पृष्ठ कूर्परादि मणिबन्धान्तम्।

एवम् पृष्ठे। एवँ तयोरङ्गलि मूलाद्यग्रान्तम्।

एवं तत्पृष्ठे।

तत ऊर्द्धाधः तालत्रयं दत्वा छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कुर्यात्। ततः प्रणवेन सप्ताग्नि प्राकारम् विधाय षट् प्रणायामं विधायप्रणवेन व्यापकत्रयं कुर्यात् प्लुत् प्रणव से ३ बार पाठ करे।

ततः प्रणवेन वामहस्ताङ्गुष्ठमारभ्य दक्षिण हस्ताङ्गुष्ठ पर्यन्तम् प्रणवन्यासं विधाय।

वामहस्तस्य बाहुमूलमारभ्य अङ्गुलाग्रान्तम् एवं दक्षिणहस्तस्य वामपादस्य दक्षिण पादस्य च प्रणवेन संन्यस्य। पूर्ववत् न्यासं कुर्यात्। तद् यथा वामहस्ताङ्गुष्ठ मूले ॐ अं नमः।

मध्ये उं नमः। अग्रे मं नमः। ओं नमो मूलाद्यग्र पर्यन्तम् इत्थं दक्षिणाङ्गुष्ठ पर्यन्तं विन्यस्य।

एवं वामहस्तस्य मूल मध्याग्रेषु सन्धिषु मूलाद्यग्रपर्यन्तते च। तथा दक्षिण हस्तस्य एवं पादयोश्चन्यसेत्।।

तत अङ्गन्यास कराङ्गन्यासौ कुर्यात्।

तद्यथा—ओं भूः अग्न्यात्मने अङ्गुष्ठाभ्याम् नमः। ओं भुवः प्रजापत्यात्मने तर्जनीभ्यां नमः। ओं स्वः सूर्यात्मने मध्यमाभ्यां नमः। ओं भूर्भुवः स्वः ब्रह्मात्मने अनामिकाभ्यां नमः। ओं ज्ञानात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ओं सत्यात्मने करतल पृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिषु।

ओं भूः अग्न्यात्मने हृदयाय नमः। ॐ भुवः प्रजापत्यात्मने शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः सुर्यात्मने शिखायै वषट्। ओं भूर्भुवः स्वः ब्रह्मात्मने कवचाय हुम्। ओं ज्ञानात्मने नेत्रत्रयाय वैषट्। ओं सत्यात्मने अस्त्राय फट्।

ततो ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। उसके बात ऋषिाद न्यास करे—

शिरसि = ओं प्रणवस्यान्तर्यामि प्रजापति ऋषये नमः।

मुखे = ओं गायत्री देवी छन्दसे नमः।

हृदि = परमात्मा देवतायै नमः।

दक्षिण कुचे = अं वीजाय नमः।

वामकुचे = उं शक्तये नमः।

सर्वाङ्गे = मं कीलकायनमः।

ततो ध्यानं कुर्यात्—(उसके बाद ध्यान करे) ओं विष्णुं भास्वत् किरीटाङ्गदवलयलसत् कल्पहारोदरांघ्रिम्। श्रोणीभूषं सुवक्षो-मणिकर-महाकुण्डला-मण्डिताङ्गम्। हस्तोद्यच्चक्र शंखाम्बुज गदममलं पीतकौशेयवासम् विद्योततद्भास मुद्यद्दिनकर सदृशं पद्मसंस्थम् नमामि।

इस प्रकार ध्यान करके, ततो जले हस्तं दत्वा, अष्टोत्तर शतं प्रणव जपं विधाय दक्षिण हस्ते जलं गृहीत्वा, वामहस्तेन दतुपरि द्वादशधा प्रणवजपेन शिरः सम्प्रोक्ष्य। इत्थमेव वारत्रयम्।

एवं यं वं रं अभिमन्त्र्य वारत्रयम् पिबेत्। ततः ओंकारेण वारत्रयं तर्पणं कुर्यात्॥

ओं आत्मैवेदं सर्वम्। ओं ब्रह्मैवेदं सर्वम्, ओं सर्वं खल्विदम् ब्रह्म। ओं ओं इति त्रिस्तर्पयेत्॥

पूर्ववत् प्राणायाम, कराङ्गन्यास अङ्गन्यासादि ध्यानान्तम् समाप्य पञ्चपूजाम् कुर्यात्। ध्यानं विधाय हृदि ओं ओं ओं नमः। मूलाधारे ओं ओं ओं नमः। नाभौ ओं ओं ओं नमः। ललाटे ओं ओं ओं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ओं ओं ओं नमः। एवम् वारत्रयम् कुर्यात्।

यथा मूलाधारे ओं ओं ओं नमः वं जलं कल्पयामि। ओं ओं ओं नमः लं पृथिव्यात्मने गन्धम् कल्पयामि। ओं ओं ओं नमः हं आकाशात्मतने पुष्पं कल्पयामि। ओं ओं ओं नमः यं वायवात्मने धूपम् कल्पयामि॥ ओं ओं ओं नमः रं अग्न्यात्मने दीपम् कल्पयामि।

ओं ओं ओं नमः वं अमृतात्मने नैवेद्यं कल्पयामि॥

ओं चिदात्मने ज्योतिषे स्वाहा॥

एवम् नाभौ– ओं अं ओं नमः जलं कल्पयामि॥
ओं लं ओं नमः पृथिव्यात्मने गन्धं कल्पयामि॥
ओं हं ओं नमः वायवात्मने धूपं कल्पयामि॥
ओं रं ओं नमः अग्न्यात्मने दीपं कल्पयामि॥
ओं वं ओं नमः अमृतात्मने नैवेद्यं कल्पयामि॥

एवम् हृदये– ओं उं ओं नमः वं जलं कल्पयामि।
ओं लं ओं नमः पृथिव्यात्मने गन्धं कल्पयामि।
ओं हं ओं नमः आकाशात्मने पुष्पं कल्पयामि।
ओं यं ओं नमः वायवात्मने धूपं कल्पयामि।
ओं रं ओं नमः अग्न्यात्मने दीपं कल्पयामि।
ओं वं ओं नमः अमृतात्मने नैवेद्यं कल्पयामि।
ओं चिदात्मने ज्योतिषे स्वाहा॥

एवम् ललाटे– ओं मं ओं नमः वं जलं कल्पयामि।
ओं लं ओं नमः पृथिव्यात्मने गन्धं कल्पयामि।
ओं हं ओं नमः आकाशात्मने पुष्पं कल्पयामि।
ओं यं ओं नमः वायव्वात्मने धूपं कल्पयामि।
ओं रं ओं नमः अग्न्यात्मने दीपं कल्पयामि।
ओं वं ओं नमः अमृतात्मने नैवेद्यं कल्पयामि।
ओं चिदात्मने ज्योतिषे स्वाहा॥

ब्रह्मरन्ध्रे– ओं ओं ओं नमः वं जलं कल्पयामि।
ओं ओं ओं नमः लं पृथिव्यात्मने गन्धं कल्पयामि।
ओं ओं ओं नमः हं आकाशात्मने पुष्पं कल्पयामि।
ओं ओं ओं यं नमः वायव्वात्मने धूपं कल्पयामि।
ओं ओं ओं रं ओं रं नमः अग्न्यात्मने दीपं कल्पयामि।
ओं ओं ओं वं नमः अमृतात्मने नैवेद्यं कल्पयामि।
ओं चिदात्मने ज्योतिषे स्वाहा॥

इत्यादि पंचपूजां विधाय–
तत अष्टोत्तर शतं प्रणवं जप्त्वा
पञ्चकरण महावाक्यंञ्च पठित्वा
पुनरपि यथाशक्ति प्रणवं जप्त्वा, जपं समाप्य
व्यापकत्रयम् विधाय, प्राणायाम, कराङ्गन्यास, अङ्गन्यास, ऋष्यादिन्यास, ध्यानानि विधाय।

उपसंहार मुद्रां प्रदर्श्य , गुरून् ज्येष्ठाश्‍च प्रणम्य, यथा सुखं विहरेदिति परमहंसस्य अनुष्ठानम्॥

॥ इति यतीनाम् सन्ध्या॥

तीर्थानुष्ठान विधिः॥ परमहंसानां संन्यसिनाम् अनुष्ठानमाश्रमभेदेन यदुक्तम् तदाहस्मृत्यन्तरे प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य (पूर्व अथवा उत्तर मुख करके)

॥ अथ द्वितीय सन्ध्या ॥

आचमन = अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थाङ्गतोऽपिवा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यंतरः शुचिः।

फिर पुण्डरीकाक्षः पुनातु माम्, अपसर्पन्तु ये भूताः इत्यादि अपक्रामंतु सर्वेशाम्। आरंभे–

ओं अस्त्राय फडिति भूतोत्सारणम्। भूमौ दक्षिण हस्तं धृत्त्वा, ज़मीन में दाहिना हाथ रख करके–

पृथ्वि त्वया धृता लोकाः। देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारण्य मां देवि पवित्रं कुरुचासनम्।

इति मन्त्रेण भूमिंसंप्रार्थ्य–

ॐ कूर्मासनाय नमः॥ विमलासनाय नमः। कमलासनाय नमः। अनन्तासनाय नमः। ओं आधारशक्तये नमः। पृथिव्यै नमः। ओं वास्तु पुरुषाय नमः।

इस प्रकार प्रणाम करके–

स्वासनस्य चतुष्कोणेषु। आग्नेयादि क्रमेण। ॐगं गणपतये नमः। ओं दुं दुर्गायै नमः। ॐ सं सरस्वत्यै नमः। ओं क्षं क्षेत्रपालाय नमः।

इस प्रकार प्रणाम करके उसी क्रम से–

ॐ गुरवे नमः। ॐ परमगुरवे नमः। ॐ परमेष्ठि नमः। ओं परात्परगुरवे नमः। इस प्रकार प्रणाम करके–

स्वपुरतः परमात्मानं दिव्यसिंहासनस्थितम् इति नत्वा। ओं परमात्मने नमः। ततः प्रणवेन करशुद्धिम् विधाय–

ॐ तत्सत् परमेश्वरप्रीतये प्रणवेन सावयवेन प्रातः सन्ध्योपासनमहम् करिष्ये। इति सङ्कल्प॥

ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमः।

अथ भगवदाचार्योक्त पञ्चीकरण वाक्येन प्रणवार्थानुसन्धानम्।

ॐ पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतानि तत् कार्यञ्च सर्वम् विराडित्युच्यते। एतत्तु स्थूल शरीरमात्मनः श्रोत्रादिभिः करणैरर्थोपलब्धिं जागरितम् एतदुभयाभिमानी

आत्मा विश्वः। अत्राध्यात्मं विश्वः। अधिमूतं विराट् अधिदैवम् विष्णुः। एवम् अध्यात्मं जागरितम्। अधिभूतं सत्वगुणः। अधिदैवम् पालनम्। एतत् सर्वम् मकारः। अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतानि तत्कार्यञ्च सप्तदशकम् लिङ्गभौतिक हिरण्यगर्भ इत्युच्यते। एतत् सूक्ष्म शरीरमात्मानं श्रोत्रादिषु करणेषूपसंहृतेषु जागरिते संस्कारजः प्रत्ययः। सविषयः स्वप्न। एतदुभयाभिमानी आत्मा तैजसः। अत्राध्यात्मं तैजसः। अधिभूतं हिरण्यगर्भः। अधिदैवम् ब्रह्मा। एवमध्यात्मस्वप्न। अधिभूतं रजोगुणः। अधिदैवं सृष्टिः। एतत्सर्वम् उकारः।

शरीर द्वयकारणमात्माऽज्ञानं साभासमव्याकृतमित्युच्यते। तच्च सन्नासन्नापि सद्सत् न भिन्नं नाभिन्ने नापि भिन्ना भिन्न मात्मनो निरवयवं नसावयवम्। नापि सावयवम् निरवयवम्, किन्तु ब्रह्मात्मैक ज्ञानापनोद्यम् यत् किञ्चित। सर्वज्ञानोपसंहारे बुद्धेः कारणात्मनावस्थानम् सुषुप्तिः।

एतदुभयाभिमानी आत्मा प्राज्ञः। तत्राध्यात्मं मकारः। अधिभूतम् अव्याकृतम्। अधिदैवम् रुद्रः। एवम् अध्यात्मं सुषुप्तिः।

अधिभूतम् तमोगुणः। अधिदैवं प्रलयः। एतत्सर्वम् मकारः। इत्येवं रीत्या सर्वम् जगत् अकारोकारमकारात्मकम् इति किञ्चित् कालम् भावयेत्।

अथापवाद कार्यः

अकार उकारे उकारो मकारे मकारश्चाहम्। अहञ्चात्मा साक्षी केवलस्व-प्रकाश चिन्मात्रस्वरूपो नत्वज्ञानम् तत् कार्यञ्च। तथा च नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तसत्यस्वभावं परमानन्दाद्वयम् श्रीवासुदेवाख्यं परम् ब्रह्मैवाऽहम् ओम् इति प्रणवार्थानुसन्धानम्। इदमेव च ब्रह्मात्मैक्यचिन्तनम्। अयमेव च समाधिः परमहंसानाम्।

॥ अथ प्रणवजपः ॥

प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता दैवीगायत्री छन्दः अं बीजं उं शक्ति मं कीलकम् जपे विनियोगः। अथ प्रणवावयवैरकारोकारमकारै र्द्विरुक्तैरङ्गुलि

हृदादिष-डङ्गलन्यासौ कुर्यात्। अकारस्याग्निः ऋषिः गायत्री छन्दो ब्रह्म देवता उकारस्य वायु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुर्देवता मकारस्य सूर्य ऋषिः जगतीछन्दो महेश्वरो देवता अङ्गन्यासे विनियोगः।

ॐ अं अङ्गुष्ठाभ्याम् नमः।

ॐ उं तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ अं अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ उं कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ मं करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।

॥ एवं हृदयन्यासः ॥

ओं अं हृदयाय नमः।

ओं उं शिरसे स्वाहा।

ओं मं शिखायै वषट्।

ओं अं कवचाय हुम्।

ओं उं नेत्रत्रयाय वौषट्।

ओं मं अस्त्राय फट्।

इति षडङ्गन्यासः।

अं नमः नाभौ उं नमः हृदये। मं नमः कण्ठे। अं नमः शिरसि।

॥ इति व्यस्तसमस्तन्यास ॥

अथ प्रणवदेवता ध्यानं, प्रयोग पारिजाते

ॐ हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं सर्वात्मकं सर्वनिवासभूतम। ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं चिन्मात्रमेकम् प्रणवार्थतत्त्वम् ॥१॥

प्रणवमीमांसायान्तु प्रणवात्मनैव ध्यानमुक्तम् देहेन्द्रिय मनो बुद्धि प्राणादिभ्यो विलक्षणः। सच्चिदानन्द सत्यात्मा य ॐकारो भजामि तम् ॥२॥

यत् सत्तातो जगत्सत्ता यच्चित्तातो जगच्चितिः। यत् सुखाज्जगतः सौख्यं (पाठ भेदः) तं प्रणवम् भजाम्यहम्॥ तं ॐकारं भजाम्यहम्॥३॥

ब्रह्मविष्णीवीशदेवेन्द्र सूर्यचन्द्र ग्रहादयः। यदधीनप्रकाशाः स्युः तमोंकारं भजाम्यहम्॥४॥

एवं परमार्थतः परमात्मानम् दिव्यसिंहासनस्थं ध्यात्वा–

ॐ लं पृथिव्यात्मने विष्णवे नमः चन्दनमर्पयामि। हं आकाशात्मने पुष्पंमर्पयामि। यं वाय्वात्मने धूपमर्पयामि। रं अग्न्यात्मने दीपमर्पयामि।

ॐ वं अमृतात्मने नानाविधपक्वान्नैवेद्यमर्पयामि। एवम् मानसपूजाम् कृत्वा घण्टा शब्दवत् प्रणवस्याग्रम् समुच्चार्य्य सहस्त्रं शतमष्टाविशतिं वा जपं कुर्यात्। अथ जपनिवेदनम्। अनेनामुकसंख्यकेन प्रणवजपेन प्रातः सन्ध्याङ्गत्वेन ॐ तत्सत् श्री परमेश्वरः प्रीयतामिति देवता हस्ते जलम् दद्यात्। अथ पुनः हृदयादिन्यासौ कृत्वा। अनेन प्रणवात्मकसन्ध्योपासनेन ॐ तत्सत् श्री परमेश्वरः प्रीयतामिति प्रातः सन्ध्याविधिः॥ एवं मध्याह्नसन्ध्या, सायं सन्ध्या च कर्तव्या। सन्ध्यात्रयं प्रकर्तव्यं ब्राह्मणेन विजानत॥

इति स्मरणात्॥

जमदग्नि ऋषि कहते हैं कि गृहस्थ की स्त्री के द्वारा दी गई भिक्षा सभी बातों के ठीक होने पर यदि संन्यासी न ले तो संन्यासी काक योनि को प्राप्त करता है। ब्राह्मणों के अभाव में ३ दिन का उपवास हो जाने पर यति शूद्र की भिक्षा ग्रहण करके प्राण रक्षा करे। यह मेधा ऋषि कहते हैं। दक्ष का कथन है दिन का छटा सातवां भाग इतिहास पुराण की कथा से बिताये।

मृतक अशौच में वर्जित भिक्षा

पिता की मृत्यु में एक वर्ष, माता की में ६ महीने, स्त्री की मृत्यु में ३ महीने, भाई तथा भतीजे की मृत्यु में डेढ़ महीना संन्यासी की भिक्षा वर्जित है। रजस्वला के पति का अन्न, क्षौर कर्म वाले का अन्न, लम्बे रोगी का अन्न, संन्यासी को वर्जित है। यदि धोखे में करे तो चान्द्रायण व्रत करे। जन्मना शौच विचार।

सगोत्री अथवा असगोत्री इनके घर में यदि सूतक हो, तब तक भिक्षा न करे। पुत्र में २० दिन माता के पुत्र हुआ हो, तो १ महीना भिक्षा न ले। नित्य अनुष्ठान करने वाले की स्त्री यदि रजस्वला हो और उसका सम्बन्ध स्त्री से न हो, अलग भिक्षा बनाता हो, तो उसकी भिक्षा लेने में दोष नहीं है।

श्राद्ध अन्न खाने का दोष–श्राद्ध अन्न भोजी संन्यासी शीघ्र शूद्रता को प्राप्त करता है। ऐसे संन्यासी को देखने वाला संन्यासी वस्त्र सहित स्नान करे, तब शुद्ध होता है। यदि लोभ में आकर भिक्षा करता है तो पतित होता है। जाबाल स्मृति संन्यास लेने वाला संन्यासी यदि श्राद्ध करता है, तो उसका भी अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए।

॥ अथ पञ्चीकरणम् ॥

[१]अथातः परम हंसानां समाधि विधि व्याख्या स्यामः।

सच शब्दवाच्यमविद्याशवलं ब्रह्म ब्रह्मणोऽव्यक्तान्महन् महतोऽहंकारऽहंकारात् पंच तन्मात्राणि पंच तन्मात्रेभ्योऽखिलं जगत् पञ्चानांभूतानामेकैकं द्विविधः समंविभज्य स्वस्वार्धभागं विहाय एकम् एतरेषु योजनात् पंचधा कृतेषु पंचीकरणं भवति। अध्यारोपापावादाभ्यांनिष्प्रपंचं प्रपंच्यते। पंचीकरण का इतना अंश **''संन्यास धर्म दर्पणम्''** की यति सन्ध्या में नहीं है किन्तु शारदा मठ से प्रकाशित यति सन्ध्या में है। यहीं से पंचीकरण आरम्भ होता है। अतः यतियों को **''अथातः परमहंसानां''** से **''निष्प्रपंचं प्रयंच्यते''** तक पाठ में पहले जोड़ लेना चाहिए।

विवेक वैराग्य सम्पन्न संन्यास के अनन्तर परमहंस संन्यासियों की ज्ञानसमाधि की विधि की व्याख्या करेंगे।

सच शब्द का वाच्य (वाणी से प्राप्त होने वाला अर्थ अर्थात् माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वर के तीनों शरीर सच शब्द का वाच्यार्थ है) अविद्या युक्त ब्रह्म सगुण साकार ईश्वर, उस ब्रह्मा से अव्यक्त मूल प्रकृति उससे महत्तत्व, महत् से अहंकार, अहंकार से पंच

---

१. भगवान् शङ्कराचार्य के पंचकरणम् पर भी सुरेवशाचार्य जी का वार्तिक 'श्री आनन्दगिरी' आदि आचार्यों की संस्कृत व्याख्याएं उनमें श्री शारदापीठाधीश ज॰रा॰ स्वा॰ शंत्यानन्द जी सरस्वती की व्याख्या है। उनमें आपने अर्थातः परमहंसानां इत्यादि पंचकरण आरम्भ किया तथा टीका की है। अन्य आचार्यों ने नहीं।

महाभूतों के पाँच तन्मात्रा, (विषय) पंच तन्मात्राओं से अखिल जगत् उत्पन्न हुआ। पंच महाभूतों के एक एक भूत को बराबर दो भागों में बाँटकर, अपने अपने आधे भाग को छोड़कर आधे भाग को चार भागों में बाँटकर प्रत्येक में एक चौथाई चौथाई भाग मिलाने से पंचीकरण होता है। जैसे आकाश के दो भाग किये। आधा आकाश में रहा, आधे के चार भाग किये। इसमें आकाश को छोड़कर प्रत्येक का चौथाई भाग मिलने से पंचीकरण होता है। ऐसे ही प्रत्येक को समझना चाहिए। इन्हीं पंचीकृत पंच महाभूतों के पच्चीस तत्त्वों से विराट् का समष्टि स्थूल शरीर तथा जीव का स्थूल शरीर बनता है।

अधयारोप तथा अपवाद–शुद्ध ब्रह्म में तीनों गुणों माया आदि की मिथ्या प्रतीति, रस्सी में सर्प की भाँति अध्यारोप है।

अपवाद–ब्रह्म के अनुभूतिजन्य ज्ञान से माया सहित सम्पूर्ण कार्यों का निवृत्त होना अपवाद है।

अधयारोप तथा अवपाद के द्वारा जगत् रूपी प्रपंच से रहित शुद्ध ब्रह्म का विस्तृत वर्णन करते हैं।

पंचीकृत पंच महाभूत तथा इनका सम्पूर्ण कार्य विराट् कहा जाता है। सारे जगत् के स्थूल शरीर के अभिमानी को विराट् कहा गया है। इसे ही पुराणों में ब्रह्मा कहा गया है। यह स्थूल शरीर जीवात्मा सहित जाग्रत् अवस्था में श्रोत्रादि करणों के द्वारा अपने विषयों की उपलब्धि का साधन है। समष्टि व्यष्टि भेद से दोनों का अभिमानी आत्मा विश्व कहलाता है। यहाँ पर विश्व अध्यात्म है। विराट् अधिभूत है। विष्णु अधिदैव है। इस प्रकार जगत् अध्यात्म है। सत्वगुण अधिभूत है। पालन अधिदैव है। यह सब मिलकर ॐ का अकार है।

अपंची कृत पंच महाभूत तथा उनकाकार्य १७ तत्त्वों वाला (पंच महाभूत, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि) लिंग या सूक्ष्म शरीर इनका अभिमानी अर्थात् सूक्ष्म शरीर का स्वामी भौतिक हिरण्य गर्भ कहा जाता है। यह जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर श्रोत्रादि करणों के लय हो जाने पर जाग्रत् अवस्था के संस्कार की प्रतीति विषय सहित स्वप्न कहलाती है।

समष्टि व्यष्टि का अभिमानी हिरण्य गर्भ तथा तैजस कहलाता है। इसमें व्यष्टि तैजस अध्यात्म है। हिरण्य गर्भ अधिभूत है। ब्रह्मा अधिदैव है।

स्वप्न-अध्यात्म है। रजोगुण-अधिभूत है तथा स्वप्न की सृष्टि अधिदैव है। यह सब मिलकर ॐ के उकार का अर्थ है।

तीनों शरीरों का कारण आत्मा के अज्ञान से भासित होने वाले को अव्याकृत कहते हैं। यह न सत् है न असत्, न कारण है न कार्य, न स्थूल है न सूक्ष्म है। न सत् असत् है। न भिन्न है न अभिन्न है। नसावयव निरवयव है। किन्तु ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान के द्वारा जो कुछ तिरस्करणीय है सभी ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों तथा अन्तःकरण के लय हो जाने पर कारण आत्मरूप से स्थिति सुषुप्ति है। दोनों का अभिमानी आत्मा प्राज्ञ है। यहाँ प्राज्ञ अध्यात्म है, अव्याकृत अधिभूत है। रुद्र अधिदैव है।

सुषुप्ति-अध्यात्म है। तमोगुण अधिभूत है। प्रलय अधिदैव है। यह सब मिलकर ॐ का मकार है। इस रीति से सम्पूर्ण जगत् ॐ के अकार उकार मकार का स्वरूप है। कुछ काल ऐसी भावना करे। बाद में इसका अपवाद करे। अकार को उकार में, उकार को मकार में, मकार को अर्द्धमात्रा में (प्रसिद्ध यति, संन्ध्यानुसार) इसके अनुसार मकार को मैं केवल स्वयं प्रकाश, साक्षी, ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ। अज्ञान तथा अज्ञान का कार्य छः प्रकार का जगत् नहीं है। परन्तु मैं नित्य, शुद्ध बुद्ध मुक्त, सत्य स्वभाव परमान्दस्वरूप अद्वितीय वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा ॐ मैं ही हूँ। यह प्रणव का अर्थानुसन्धान है। इसी को ब्रह्मात्मैक्य चिन्तन कहते हैं। यही परमहंसों की समाधि है।

प्रसिद्ध यति सन्ध्या में इस पाठ के अतिरिक्त आगे इस प्रकार से पाठ है-"ॐ **प्रज्ञानं ब्रह्म।" "ॐ अहम् ब्रह्मास्मि।" "ॐ तत्त्वमसि" "ॐ अयमात्मा ब्रह्मेत्यादि" महावाक्येभ्यो नित्यशः प्रणवात्मस्थमात्म ज्योतिर्हृदय स्थितं चैतन्य मात्रममृतं सोऽहमस्मीतिभावयेत्। तत्र कार्योपाधि चैतन्यं जीवशब्दवाच्यं। कारणोपाधि चैतन्यमीश्वर पद वाच्यं। उभय चैतन्य मात्र लक्ष्यम् लक्ष्य पदार्थ ग्रहण समार्थ्ये नाखण्डैक रसं ज्ञानं भवति। कार्य कारणे परित्यज्य यल्लक्ष्यं शुद्धं**

तद्ब्रह्मोच्यते।''कार्योपाधिरयं-जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।कार्यकारण तां हित्वा पूर्ण बोधो विशिष्यते।'' इति वृहदारण्यक श्रुतेः।

उत्कृष्ट ज्ञानात्मा ब्रह्म है। मैं ब्रह्म हूँ। तुम वही ब्रह्म हो। यह आत्मा ब्रह्म है। इत्यादि महावाक्यों से प्रणव आत्मा में स्थित ज्योति ही मेरे हृदय में स्थित है। एक मात्रचैतन्य अमृत स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ। ऐसी भावना करे। इस प्रकरण में कार्य अविद्या अथवा अन्तःकरण। अपाधि वाला चैतन्य जीव शब्द का वाच्यार्थ है। अर्थात् अविद्या या संस्कार सहित चेतन का प्रतिबिम्ब जो जीव के तीनों शरीरों को प्रकाशित करता है। यह जीव शब्द का वाच्यार्थ है, तथा कारणोपाधि माया में पड़ने वाला चेतन का प्रतिबिम्ब जो ईश्वर के तीनों शरीरों को प्रकाशित करता है। यह ईश्वर शब्द का वाच्यार्थ है एवं ईश्वर तथा जीव में जो केवल चैतन्य तत्त्व है, वह दोनों का लक्ष्यार्थ है। वाच्यार्थ को छोड़कर लक्ष्यार्थ के ग्रहण की सामर्थ्य से अखण्ड एक रस ज्ञान समाधि होती है। अर्थात् ब्रह्म की सत्यता के अतिरिक्त स्वप्नवत्, सब मिथ्या भासित होता है। कार्य कारण को त्याग करके जो लक्ष्य है, उसे शुद्ध कहते हैं। वृहदारण्यक की श्रुति में भी कहा है।''अविद्या उपाधि वाला जीव है। माया उपाधि वाला ईश्वर है। दोनों की माया अविद्या का त्याग करके पूर्ण ज्ञान स्वरूप ब्रह्म शेष रहता है।'' **इति पंचीकरणम्॥**

॥ दण्ड तर्पणम् ॥

खुले पात्र या नदी के जल में ९ का अंक लिखकर दण्ड के अग्र भाग में १२ बार प्रणव से तर्पण करें। फिर ७ का अंक लिखकर मूल में १२ बार ब्रह्म मुद्रा में १२ बार, प्रतिपर्व में ३ बार, बीच में दो बार। अग्र भाग में तर्पण करने के बाद जल को मस्तक पर छिड़के और मूल में तर्पण करने के बाद पैर पर जल छिड़के। इसके बाद– **''सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे, दण्ड मूले तु पूर्वजाः। प्रतिग्रन्थिस्तुगन्धर्वाः मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः।''** इस मंत्र को पढ़ते हुए दण्ड को जल से बाहर करके दाहिने हाथ में दण्ड को लेकर दण्ड के अग्र भाग में देवताओं का, मूल में पूर्वजों का, प्रत्येक ग्रन्थि में गन्धर्वों का, बीच में मानवों (१४ मनु) का ध्यान करे। फिर दण्ड के मूल को जल में रखकर नीचे लिखे मंत्र को तीन बार पढ़ते हुए तर्पण करे।

"अस्माकं ये कुलेजाता नाम गोत्र विवर्जिताः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु दण्ड-सम्बन्धि-वारिणा॥"

इसके पश्चात् गुरुओं देवताओं आदि की वन्दना करें।

"ॐ मनसा चिन्तितं यन्मे बचसा भाषितं पुनः। कायेन यत् कृतं, सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेत्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवश पुनरागमनाय च। प्रसीदत्वं महेशान प्रविश्य हृदयं मम।"

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञ क्रियादिषु।

न्यूनंसम्पूर्णतां याति सद्यो बन्दे तमच्छुतम्॥

पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन्। मंत्र मूर्ते जनार्दन। गृहाणेमं जपं नाथ मम दीनस्य शाश्वत॥

परिव्राज्य धर्मवन्तो यदन्हा ब्रह्मतां कृतम्। तद् ब्रह्म प्रणवैकार्थं तुर्यंतुर्यं हरिं भजे॥

जो कुछ मैंने मन से सोचा या वाणी से कहा तथा शरीर से किया वह सब ब्रह्म को अर्पण है। हे देवेश! आप पुनः आने के लिये उठकर हे महेशान! मेरे हृदय में प्रसन्न होकर प्रवेश करें। जिसके स्मरण करने या नाम लेने मात्र से ही तपस्या यज्ञादि कार्य में भी जो कमी रह जाती है, वह पूर्ण हो जाती है। उन अच्युत भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। हे कमलनयन, विश्वात्मन् मंत्र मूर्ति, जर्नादन, शाश्वत (हेसनातन) मुझदीन के इस जप को ग्रहण कीजिये। हे परिव्राजक धर्म के प्रथम उपदेशक हरे! मैंने ब्रह्मभाव की प्राप्ति के लिये जो दैनिक कर्म किया है। तुरीयातीत ब्रह्म और प्रणव के ऐक्य स्वरूप हरि का मैं भजन करता हूँ।

तुरीय सन्ध्या

ॐ अजपा नाम गायत्री योगिनां सिद्धिदामता।
हंस-पदं महेशानि प्रत्यहंजपतो नरः॥१॥
मोहाद्यो वैनजानाति मोक्षस्तस्यन विद्यते।
अजपां जपतो नित्यं पुनर्जन्म न विद्यते॥२॥

हकारेण वहिर्यान्ति, विशन्ति च सकारतः।

चिन्तेयत् परमेशानि जीवन्तं पक्षिरूपिणम॥३॥

श्री गुरोः कृपा देवि, ज्ञायते जाप्यते यदा।

उच्छवास निश्वासतया बन्ध मोक्षस्तदाभवेत्॥४॥

हे महेशानि! अजपा नाम की गायत्री योगियों को भी सिद्धि देने वाली है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस हंस मंत्र का जप करता है। अज्ञान से जो इसे नहीं जानता उसकी मुक्ति नहीं होती। जो नित्य अजपा जप करता है, वह पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करता है। हे परमेशानि! हकार से श्वास बाहर जाता है, सकार से भीतर प्रवेश करता है। दे देवि! श्री गुरु की कृपा से जानकर जो श्वासोच्छास के रूप में जप करता है, तब संसार बन्धन से छूट जाता है।

न्यास—ॐ हं सां सूर्याय अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ हंसीं सोमाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ हं सूं निरंजनाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ हं सैं निराभासाय अनाभिकाभ्यां नमः। ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्माय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ हंसः अव्यक्त प्रबोधात्मने करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादि न्यासः।

ध्यानम्—ॐ अस्य हंसस्यदेवेशि! निगमागम पक्षकौ। उभावपिचाग्निसोमौ, बक्षो हंस शिरो भवेत्॥ बिन्दुस्त्रये शिखानेत्रे, मुखं नादःप्रकीर्तितम्। शिवशक्ति पदद्वन्द्वं कालाग्निनी पार्श्वयुग्मकम्॥ हंस परमहंसो सर्वव्यापी प्रकाशवान्। सूर्य कोटि प्रकाशश्च स्वप्रकाशेन भासते॥

हे देवेशि! इस हंस रूपी पक्षी के आगम निगम दो पक्ष हैं। अग्नि चन्द्रमा इसके छाती और शिर हैं। तीन बिन्दु शिखा तथा दो नेत्र हैं। मुख उनकी वाणी है, शिव शक्ति दो चरण हैं। काल अग्नि दोनों पेट के दायें बायें भाग हैं। यह हंस रूपी परमहंस सर्वव्यापी, स्वयं प्रकाश है और अपने प्रकाश से करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित होता है। इसका यथाशक्ति जप करे। (सोऽहं हंसः) अथवा बाहर भीतर श्वास प्रश्वास द्वारा जप होता है। दिन रात्रि में जीव २१६०० जप करता है। इसके बाद जप निवेदन करे।

॥ जप निवेदनम् ॥

गतारूणोदयादारभ्य आगामि अरूणोदय-पर्यन्तम् बहुश्वासानुसार कृत षट्शताधिकैकविंशति सहस्त्र अजपाजपेन गणेश, ब्रह्म-विष्णु, महेश, जीव, परमात्मा, गुरवः प्रीयन्ताम्।

चतुर्दले मूलाधारे षट्शतेन साङ्गोपावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः श्री गणेशः प्रीयताम्। षट्दले स्वाधिष्ठाने सहस्त्रषरट्केन ब्रह्मा प्रीयताम्। दशदले मणिपूरके सहस्त्रषट्केन विष्णुः प्रीयताम्। द्वादश दले अनाहत चक्रे सहस्त्रषट्केन महेशः प्रीयताम्। षोडश दले विशुद्धौ सहस्त्रेण जीवात्मा प्रीयताम्॥

द्विदलात्मक आज्ञा चक्रे सहस्त्रेण परमात्मा प्रीयताम। सहस्त्रे दले ब्रह्मरन्ध्रे सहस्त्रेण श्री सद्गुरुः प्रीयताम्। गुहयाति गुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत् कृतंजपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत् प्रसादान्महेश्वरि। त्रैलोक्य चैतन्य मयीश्वरीश्वरि श्री सुन्दरि त्वच्चरणाज्ञयैव। प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं, संसार यात्रा मनुवर्त्तयिष्ये। इति तुरीय सन्ध्या।

॥ तृतीय परिच्छेद का चालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का एकतालीसवाँ अध्याय प्रारम्भ हुआ ॥

सन्ध्या के बाद प्रणव जप करे।

प्रणव न्यास-''ॐ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषि परमात्मा देवता, दैवी गायत्री छन्दः अंवीजम् उंशक्ति मंकीलकम् जपे विनियोगः। अकारस्य अग्नि ऋषिः गायत्री छन्दो ब्रह्मदेवता उकारस्य वायु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दो विष्णु देवता, मकारस्य सूर्य ऋषिः जगती छन्दः महेश्वरो देवता, अंगन्यासे विनियोगः।''

ॐ अं अंगुष्ठाभ्याँ नमः। ॐ उं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ अं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ उं कनिष्ठकाभ्यां नमः। ॐ मं करतल कर पृष्ठभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः। अथध्यानम् हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणंसर्वात्मकं

सर्व निवास भूतम्। ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं, चिन्मात्रमेकं प्रणवार्थ तत्त्वम्॥ (प्रयोग परिजात से)।

प्रणव मीसमांसायां–

देहेन्द्रियमनोबुद्धि–प्राणादिभ्यो विलक्षणः।
सच्चिदानन्द–सत्यात्मा य ॐकारो भजामितम्॥
यत्सत्ता तो जगत् सत्ता यच्चित्तातौ जगच्चितिः।
यत्सुखाद्जगत् सौख्यं, तमोकारंभजाम्यहम्॥
ब्रह्मविष्णवीशदेवेन्द्र सूर्य चन्द्र ग्रहादयः।
यदधीन प्रकाशाःस्युः तमोंकारं भजाम्यहम्॥

इस प्रकार से दिव्य सिंहासन पर विराजमान परमार्थतः परमात्मा का ध्यान करे। हृदय कमल के बीच में विराजमान पुराणपुरुष सर्वात्मक सब में निवास करने वाले नित्य परमात्मा चिन्मात्रस्वरूप, (ज्ञान स्वरूप) प्रणवतत्त्व का ध्यान करता हूँ। शरीर इन्द्रिय मन, बुद्धि प्राण आदि से विलक्षण सच्चिदानन्द सत्यात्मा ॐकार का भजन करता हूँ। जिसकी सत्ता से जगत् की सत्ता, जिसकी चेतनता से जगत् की चेतनता, तथा जिसके सुख से जगत् सुखी है। उस ॐकार का भजन करता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रादिग्रह जिसके अधीन है तथा जिसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, उस ॐकार का मैं भजन करता हूँ। ऐसा ध्यान करने के बाद ॐ लं पृथिव्यात्मने विष्णवेनमः चन्दनं समर्पयामि। ॐ हं आकाशात्मने पुष्पं समर्पयामि।

ॐ यं वाय्वात्मने धूप मर्पयामि। ॐ रं अग्न्यात्मने दीपमर्पयामि।
ॐ बं अमृतात्मने नाना विध–पक्वान्ननैवेद्यमर्पयामि।

इस प्रकार मानस पूजन करके घंटे के शब्द के समान प्रणव का उच्चारण करके एक हज़ार या एक सौ आठ अथवा बीस प्रणवों का जप करे। जप के अनन्तर अनेन अमुक संख्या केन प्रणव जपेन प्रातः सन्ध्यांगत्वेन ॐ तत्सत् परमेश्वरः प्रीयताम्।

इसको पढ़कर देवतात्मा के हाथ में जल दे। तब पूर्वोक्त विधि से पुनः हृदयादि न्यास करके संध्या कर्म को पूर्ण करे। इति यति सन्ध्या सम्पूर्ण। इसी प्रकार माध्याह्न

और सायंकालीन संध्या करे। क्रम मुक्ति की इच्छा वाले परमहंसों को यह सन्ध्या करनी चाहिए। सद्योमुक्ति की इच्छा वालों को जाग्रदादि तीन अवस्थाओं सहित विश्व, तैजस प्राज्ञों का प्रणव के अवयवों के साथ ऐक्य चिन्तन करे। फिर स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधियों को हटाकर साक्षी केवल स्वयं प्रकाश रूप का चिन्तन करते हुए, मैं ही प्रणव प्रतिपाद्य परमानन्द स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म हूं। इस प्रकार का चिन्तन ही उनकी मुख्य सन्ध्योपासना है। मधुसूदन स्वामीजी ने कहा है। इस प्रकार अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव की एकता से प्रणव के तीन अवयवों सहित विश्व आदि की एकता की उपासना करने वालों को ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। फिर अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा क्रम मुक्ति प्राप्त होती है तथा इन सब उपाधियों का निराकरण करने से साक्षी, स्वयं प्रकाश, चैतन्य मात्र, ब्रह्म के ज्ञान से तत्काल मुक्ति प्राप्त होती है। जिन यतियों का अन्तःकरण अत्यन्त मलिन हो। कूर्म पुराण में उनके लिए शतरुद्री, प्रणव जप, अन्तःकरण को शुद्ध करता है। मध्यम अधिकारी के लिए प्रणव जप, शतरुद्री में पुरुष सूक्त भी आ जाता है।

॥ अथ षोडश महावाक्यानि ॥

१. स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिति ऋक्।

२. अहं ब्रह्मास्मि इति यजुः।

३. तत्त्वमसि इतिसाम।

४. त्वमेवैकं विजानथ आत्मानमत्यावाचों विमुच्वथ।

इति अर्थव॥ यह प्रथम मन्त्र चतुष्टय है।

१. तद्यो ऽ हं सो ऽ सौ यो ऽ सौ सोहं। ऋक्॥

२. ॐ स पंचायं पुरूषे पंचासावादित्य स एकः। यजुः॥

३. तत्त्वमसि। सामः॥

४. ॐ प्राणो ऽ स्मि प्राज्ञात्मा ब्रह्म। अथर्व॥ यह द्वितीय चतुष्टय है।

१. ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म। ऋक्॥

२. ॐ अहं ब्रह्मास्मि॥ यजुः॥

३. तत्त्वमसि। साम॥

४. ऊँ अयामात्मा ब्रह्म अर्थवः यह तृतीय चतुष्टय है।

१. ऊँ स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपष्यदिति॥ ऋक्।

२. ऊँ एषत आत्मात्त पश्चिमतः॥ यजुः॥

३. ऊँ खं ब्रह्म ततमपष्यत्। सामः॥

४. ऊँ एषत आत्मा ब्रह्म। अर्थर्व यह चतुर्थ चतुष्टय है। यति को त्रिकाल संध्या के अनन्तर इन १६ महावाक्यों का पाठ करते हुए, स्वरूप चिन्तन करना चाहिए।

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्माविद्या सम्प्रदाय कर्तृभ्यः वंशऋषिभ्योमहद्भ्यो नमो गुरुभ्यः। सर्वोप्पलव रहितः प्रज्ञान घनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ अथ मङ्गलम्॥

ॐ अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभ सन्ततिम्।
स्मृतमात्रेण यत् पुसां ब्रह्मतन्मंगलं परम्॥
अति कल्यण रूपत्वात् नित्य कल्याण संश्रयात्।
स्मृतितां वरदात्वाच्च ब्रह्म तन्मंगलंशुमभ्॥
ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकाबुमौ॥
ॐ अथ ॐ अथ ॐ अथ

॥ भीष्म स्तवराज॥

इति विद्या तपो योनिरयोनि र्विष्णु रीडितः।
वाग्यज्ञेनार्चितोदेवः प्रीयतां मेजनार्दनः॥

इति स्वाध्याय पाठ निवेदनम्।

"जप विधिः" योग याज्ञवल्क्यः

जप वाचिक, उपांशु, मानसिक तीन प्रकार का होता है। वाचित जप की अपेक्षा उपांशु सौगुना फलद है। ध्यान में समाहित होकर मानसिक जप उससे सहस्र गुना फल देने वाला है। जप में बात न करे सिर न ढके। सिले हुए वस्त्र पहन कर न करे। कूर्म पुराण में कहा है, जप के समय दान्त न दिखाई दे। व्यास-उंगली के अग्रभाग में, मेरू का उल्लंघन करने से, बिना संख्या का जप निष्फल होता है। माला के अभाव में कर माला से भी जप हो सकता है। अनामिका के बीच से आरम्भ करके कनिष्ठिका, मूल पर्व से होते हुए तर्जनी के मूल तक मध्यमा के मूल से दो पर्व छोड़कर १० पर्व, यह करमाला कही जाती है। अन्य मालाओं के सम्बन्ध में प्रथम परिच्छेद के आरम्भ में दिया जा चुका है।

दण्डी का दण्ड सहित प्रणाम (यतिसद्धर्म समुच्चय से)

दण्डेन वापि वस्त्रेण व्यापकेन शरीरतः।
एवंतु त्रिविधं प्रोक्तं यतीनां वन्दनं भवेत्॥
प्रणतानां यतिर्दद्यादाशिषं व्यास शासनात्।
नारायणेतिचब्रूयात्, प्रणतायुर्विवृद्धये॥

संन्यासी देवता तथा गुरुओं को दण्ड से अथवा दण्ड के खोल से अर्थात् ब्रह्म मुद्रा में बायें हाथ का अंगूठा लगाकर वस्त्र से अंगूठा ढककर शरीर को विशेष रूप से लंबा करके, दण्ड से, वस्त्र से या दोनों प्रकार से यह तीनों प्रकार का प्रणाम संन्यासियों का कहा है। यति प्रणाम करने वाले चारों वर्णों या आश्रमियों को व्यास जी की आज्ञा से प्रणाम करने वाले की आयु की वृद्धि के लिए नारायण यह शब्द कहे।

॥ इति तृतीय परिच्छेद में एकतालिसवां अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद में बयालिसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

॥ यति भिक्षा प्रकरण ॥

यतियों की पांच प्रकार की भिक्षा कही गई है, **उशना**–१. माधुकरी, २. असंकल्पित, ३. प्राक् प्रणीत, ४. अयाचित, ५. तत्कालोपपन्न।

१. माधुकरी–मन के संकल्प रहित ब्राह्मणों के तीन, पांच या सात घरों की भिक्षा माधुकरी है। माधुकर = भौरां जैसे अनेकों पुष्पों पर बैठकर पौधे तथा पुष्प को हानि पहुंचाये बिना थोड़ा-थोड़ा रस ले लेता है और अपना पेट भरता है। ऐसे ही जो यति गृहस्थों के द्वार पर मधुकर के समान एक-एक ग्रास या एक रोटी लेता है। ऐसा करने से गृहस्थों पर अधिक भार नहीं पड़ता और यति का भी पेट भर जाता है। गृहस्थों के दरवाजे पर 'ॐ ह्रीं या' या 'नारायण हरि' कहकर ३ श्वास पर्यन्त प्रतीक्षा करे। इसी के भीतर यदि रुकने की आवाज आ जाए, तो गोदोहन काल मात्र रुके। यदि इतने समय में कोई नहीं ला पाता, तो आगे बढ़ जाए, सातवें से आठवें घर न जाए। यदि कुछ नहीं मिलता, तो जल पीकर रह जाए। फिर किसी के रोकने पर भी न रुके। यदि इसी प्रकार दो दिन बीतने पर भी अन्न न मिले, तो तीसरे दिन क्षत्रिय या वैश्य का सूखा अन्न लेकर शुद्ध ब्राह्मण से बनवाकर खा सकता है। सभी प्रकार की भिक्षाओं में यह अमृतवत् सर्वश्रेष्ठ कही गई है, परन्तु वर्तमान काल में यह अत्यन्त असम्भव है, क्योंकि ह़जार में से कोई एक घर ऐसा मिलेगा। जहां लहसुन प्याज आदि न खाया जाता हो। आज कल तो लोग नौ दस बजे सवेरे ही पति-पत्नी नौकरी पर चले जाते हैं। बच्चे स्कूल में घर पर ताला लगा रहता है। कोठियों में कुत्ते पले हैं। जिस घर में कुत्ता, बकरी, गधी, बंधी हो, वहां छः मास तक अशुद्धि रहती है। बड़े नगरों में लोग तीन-तीन, चार-चार मंजिल ऊंचे मकानों में रहते हैं। वहां तक आवाज ही नहीं पहुंच सकेगी। अतः आज कल यह भिक्षा कठिन है, किन्तु प्रयाग से काशी तक गंगातट पर अब भी वैसा ही वातावरण है। इस भिक्षा में प्रतीक्षा आदि दोष नहीं है।

२. असंकल्पित–संकल्प रहित भिक्षा 'असंकल्पित' है।

३. प्राक् प्रणीत–सोकर उठने से पहले ही भक्त के द्वारा प्रार्थना करके लाई गई भिक्षा 'प्राक् प्रणीत' है। अथवा भिक्षा के लिए जाने से पूर्व ही लाकर भिक्षा दे देना।

४. अयाचित–बिना मांगे अपने आप स्थान पर आई हुई भिक्षा 'अयाचित' है।

५. तत्कालोपपन्न–अन्न पकाकर किसी भक्त के द्वारा मठ में जो लाया जाता है, वह 'तत्कालोपपन्न' है।

यति अपने गुणों को प्रकट न करें। एक का अन्न यति न ले। पराशर जी कहते हैं–वृद्ध, दीर्घ रोगी, संन्यासियों के लिए एक का अन्न लेने में दोष नहीं है। क्रतु का कथन है जो अति कृश है। इन्द्रियां जवाब दे चुकी हैं। वे पुत्र, मित्र गुरुभाई पत्नी आदि से भिक्षा ले सकता है, क्योंकि मलमूत्र के सम्पर्क से जल, दहन कर्म से अग्नि, स्पर्श से वायु, अन्न दोष से यति दूषित नहीं होता। भिक्षा के समय यति दायें बायें धूमकर घरों में प्रवेश न करें। यदि श्रद्धा भक्ति से हीन विद्वान् ब्राह्मण है, तो उसका अन्न न ले, किन्तु यदि व्रात्य ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक भिक्षा दे, तो उसे ग्रहण कर लें।

चरेन्माधुकरंभैक्ष्यं यतिम्लेच्छ कुलादपि।
एकान्नं न तु भुंजीत बृहस्पति समादपि॥

यति मधुकरी भिक्षाम्लेच्छ के कुल से भी ले ले, किन्तु बृहस्पति के समान विद्वान् ब्राह्मण का भी एक का अन्न न खाये। यह वचन जिस देश में चार वर्णों की भिक्षा न प्राप्त हो सकती हो। वहां के लिए विहित है।

निषिद्ध भिक्षा

यति के लिए घी मूत्र के समान, मधु सुरा के समान, तेल सूकर के मूत्र के समान, दाल लहसुन के समान, माल पुवा गोमांसवत् दूध मूत्र के समान, इसलिए यति प्रयत्नपूर्वक इनसे परे रहे। शास्त्र की यह आज्ञा हृष्ट, पुष्ट युवा साधक संन्यासियों के लिए है। वृद्ध रोगी आदि के लिए नहीं। 'वैराग्य करंडिका' में कहा है कि इन पोषक पदार्थों का सेवन करने से बर्हिमुख साधक, युवा संन्यासियों के मन बुद्धि में विकार उत्पन्न होगा। यदि वह ब्रह्मचर्य से रहित हो गया तो उसका दोष खाने खिलाने वालों को है, इसलिए शास्त्र के कठोर शब्दों में इसकी निन्दा की है। सिद्ध युवा यतियों पर इनका कोई प्रभाव नहीं

पड़ता। संन्यासी देवोत्सव, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध का अन्न न ले, कौवे तथा कुत्ते का छुआ अन्न वर्जित है। तोते का छुवा वर्जित नहीं है। सोने के, लोहे के, चांदी के, पत्थर आदि के पात्र में भोजन करने से संन्यासी दूषित नहीं होता। लेने से दूषित होता है। अत्रि संहिता से–यदि घर का दरवाजा बंद हो तो दराजों से यति न देखे। न जोर से चिल्लाये, न दरवाजा खटखटायें। संस्कार हीन कन्या तथा रजस्वला से कोई वस्तु न ग्रहण करे। बिल्ली-चूहे की सूंघी हुई वस्तु वायु से शुद्ध हो जाती है। जिस घर में यति को बिना कारण ही पांच या सात दिन भिक्षा न मिले। उस घर को चाण्डाल घर के समान त्याग दे।

भिक्षा प्रशंसा

भिक्षा में संन्यासी को दोष नहीं। भिक्षा प्रतिग्रह नहीं है। नित्य भिक्षा करने वाले संन्यासी को सोमयाग का फल मिलता है। **शातातप**–माधुकरी भिक्षा सब पापों को नष्ट करती है। भिक्षा से भी संन्यासी निराहारी कहा गया है। यति के लिए श्रोत्रिय का अन्न, त्रयाश्रमियों के लिए यज्ञ शिष्ट अन्न, जीव के जन्मभर के पाप को उसी प्रकार से शुद्ध करता है, जैसे अग्नि सोने को शुद्ध करती है। गंगाजल, शालिग्राम की शिला, भिक्षान्न एवं पंचगव्य चारों युगों में शुद्ध है। **कण्व**–एक महीने बाद कुशा के अग्रभाग में स्थित एक बूंद जल पीकर तपस्या करने वाले को जो फल मिलता है, वह इच्छा रहित संन्यासी को उससे भी विशेष फल मिलता है। भिक्षा के अनन्तर गृहस्थ के दरवाजे पर एक क्षण भी न रुके, अनुकूल भिक्षा न मिलने पर कुपित न हो। अनुकूल मिलने पर प्रसन्न न हो। लोभ में आकर घरों का अतिक्रमण न करे। यदि भिक्षा को कुत्ता इत्यादि छू ले, तो त्याग दे। भिक्षा ले जाकर स्नान करके छः प्राणायाम करे। यदि रजस्वला, चाण्डाल, चोर, नग्न, जैनी आदि भिक्षा को छू दे तो वस्त्र सहित स्नान करे, परन्तु विवाह में, तीर्थ यात्रा में, संग्राम में, देशव्यापी उपद्रव में, प्रदेश में कहीं आग लगने पर, रथ पर नौका में हाथी घोड़े पर छुआछूत का दोष नहीं होता। लोभ से संन्यासी यदि घर का अतिक्रमण करता है तो सौ प्राणायाम करके प्रायश्चित करे। गृहस्थ के घर में वेदज्ञ ब्राह्मण की स्त्री, माता तथा बहन को मातृ, बहन बुद्धि से देखे।

कात्यायन–यति आधा पेट भोजन करे, तृतीयांश जल पिये। चौथाई भाग वायु संचार के लिए छोड़ दें। जब तक स्वाद को नहीं जीता, तब तक कुछ नहीं जीता। रस को जीतने वाला सब को जीत लेता है। **जावाल**–यति के लिए एकपात्र है वृद्ध रोगी दो रख सकता है। हाथ पैर मुख धोकर गीले हाथ पैर से बारह कुल्ला के अनन्तर भिक्षा करे। भिक्षा के समय कमण्डलु दाहिनी ओर रखे। **यतिधर्म समुच्चय**–गंगा जल में शुद्ध करके जो भिक्षा करता है। उसे हजार क्रतुओं का, एक हजार सांतापन व्रत, सौ चान्द्रायण व्रत, आठ अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। विष्णु भगवान् का प्रसाद यतियों के लिए ग्राह्य है। दूसरे देवता का प्रसाद खाने पर चान्द्रायण व्रत करे। बांयें हाथ से छुआ हुआ भोजन न ले। भिक्षा से पूर्व यति अपने पात्रों को प्रणव से शुद्ध कर ले। यति को भिक्षा देते हुए गृहस्थ चम्मच से दिये जाने वाले घी आदि पदार्थ हाथ से न दे और हाथ से दी जाने वाली वस्तु करछुल आदि से न दे। यदि श्रद्धापूर्वक कोई गृहिणी यति को अनुकूल वस्तु देती है, वह नहीं ग्रहण करता, तो वह कौवे का जन्म लेता है।

मेधातिद्विजाभावे तु सम्प्राप्ते उपवासत्रयं गते।
भैक्ष्यंशूद्रादपिग्राह्यं रक्षेत् प्राणं द्विजोत्तमः॥

यति को तीन दिन तक ब्राह्मण की भिक्षा न मिलने के कारण उपवास हो गया हो, तो प्राण रक्षा के लिए शूद्र की भिक्षा ले सकता है।

जननमरणाशौच में भिक्षा विचार

पिता की मृत्यु में एक वर्ष, माता या पुत्र की मृत्यु में छः माह, स्त्री की मृत्यु में तीन माह, भाई या भतीजे की मृत्यु में डेढ़ माह, ससुर की मृत्यु में या सास की मृत्यु में तीन पक्ष तक भिक्षा न ले। रजस्वला का छुआ हुआ अन्न, क्षौर का अन्न, लम्बे रोगी का अन्न न ले। संन्यासियों के लिए अलग रसोई बनाकर खिलाने वाला नरक जाता है अर्थात् जिसके यहां सूतक है। वह अपने घर न खिलाकर अपना अन्न देकर दूसरे के यहां बनवाकर खिलाये यह दोष है। जिसके घर में जन्म सूतक हो। वहां एक माह या बीस दिन भिक्षा न करे। **अत्रि**–अत्रि जी ने कहा है ब्रह्मचारी, यति, विद्यार्थी, गुरु सेवक, यात्री, बेरोज़गार, यह छः भिक्षुक कहे हैं। इन्हें जो गृहस्थ भोजन नहीं देता। वह चान्द्रायण व्रत करे। जो गृहस्थ हाथ पैर धोने के बाद जल पी लेते हैं। उसके अन्न को

असुर ग्रहण करते हैं। पितरों को नहीं मिलता। श्राद्धान्न खाने वाला संन्यासी शीघ्र शूद्रता को प्राप्त करता है। ऐसे यति को देखकर वस्त्र सहित स्नान करे। जो यति लोभ में एक ग्राम को छोड़कर दूसरे ग्राम में भिक्षा करता है। वह नरकगामी होता है। भिक्षा ग्रहण करने के समय यह मंत्र पढ़ना चाहिए, "**अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुः भोक्ता देवो महेश्वरः। एवं ध्यात्वा यति भुंक्ते अन्न दोषैर्न लिप्यते॥**" अन्न ब्रह्म है, स्वाद विष्णु है। भोक्ता महेश्वर है। इस प्रकार ध्यान करके जो यति भिक्षा करता है। वह अन्न के दोष से लिप्त नहीं होता। जिह्वालोलुप यति यदि एक का अन्न नित्य लेता है, तो उस पाप की निवृत्ति कहीं नहीं होती। भिक्षु परान्न न ले। उस अन्न का न सेवन करने वाला भिक्षु ही भिक्षु है। ऐसा भिक्षु ज्ञान प्राप्त करता है। माधुकरी भिक्षा के अतिरिक्त अन्न परान्न कहा गया है। श्राद्ध का अन्न न खाये, श्राद्ध का अन्न खाने वाला भिक्षु ठग है। परान्न के सेवन करने से यति के ब्रह्मचर्य, श्रवण, ज्ञान, वैराग्य सब नष्ट हो जाते हैं। जैमिनि जी कहते हैं। जिस यति के पेट में श्राद्ध का अन्न दो घड़ी भी रुकता है। उसकी आयु, बुद्धि, यश, बल क्षीण हो जाता है। यति तीर्थ, श्राद्ध का अन्न, अमावास्या, अष्टका, पार्वण, मासिक, एकोदिष्ट, गया श्राद्ध, महालय इन अन्नों को परस्त्री वत् छोड़ दे।

विष्णु मन्दिर तथा शिव मन्दिर को भिक्षा न कराये। कराने वाला पतित है। इसमें सन्देह नहीं। देव मन्दिर गंगा जी के गर्भ में, (गंगा जी का बाढ़ का पानी जहां तक पहुंचता है वहां गंगा का गर्भ है।) वहां ब्रह्मचारी तथा संन्यासी को भोजन न कराये।

॥ वर्जित दातृ अन्न ॥

विवाह में, यज्ञ में, यज्ञोपवीत में, एक पक्ष तक भिक्षा न ले। इष्ट कर्म (यज्ञ) में एक दिन वर्जित है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, मुण्डन, कर्णबेध में यति तीन दिन भिक्षा न ले। मासिक श्राद्ध, क्षौर, पाक्षिक, श्राद्ध, छानवे शुभ दिनों में एक दिन भिक्षा वर्जित है। पितृ श्राद्ध, मातृ श्राद्ध, पार्वण श्राद्ध में तीन दिन भिक्षा न करे। संकल्पित श्राद्ध, तीर्थ श्राद्ध, महालय में एक दिन त्याज्य है। वृषोत्सर्ग, सीमन्त, अन्न प्राशन, क्षौर कर्म उपनयन, विवाह में भिक्षा करने वाला यति व्रत करे। नागबलि नारायण बलि में पन्द्रह दिन तक तथा वास्तु पूजन में तीन दिन भिक्षा न ले।

"गर्भेतु प्रथमे जाते त्रिमासाः वर्जितं परम्। पंच मासाधिके गर्भेगर्भिण्यायदि पच्यते। हबिर्देवा न गृह्णन्ति कव्यंच पितरस्तथा। पंच मासाधिके गर्भे तद्भर्त्ता सूतकी भवेत्। तदन्नं यतिभिर्नैव ग्राह्यं चापिजलादिकम्। सप्तमासाधिकोगर्भो वर्तमानो भवेद्यदि। तद्गृहेनैव भोक्तव्यं, भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।"

प्रथम गर्भ के तीन मास बाद यति की भिक्षा वर्जित है। पांच मास के अधिक गर्भ होने पर गर्भवती यदि भोजन पकाती है, तो देवता उसके हाथ का हव्य और पितर कव्य नहीं लेते। (देवताओं के लिए दिया जाने वाला अन्न हव्य और पितरों के लिए कव्य कहा जाता है।) पांच मास से अधिक गर्भ हो जाने पर उसका पिता भी सूतकी हो जाता है। यति को ऐसे दम्पती के हाथ का अन्न जल ग्रहण नहीं करना चाहिए। सात मास से अधिक गर्भ हो जाने पर उस घर में दम्पती के सास ससुर के हाथ का भी अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। यदि धोखे में कर ले तो चन्द्रायण व्रत करे। जिस गृहस्थ के घर में पुत्र वधू, जेठानी अथवा पत्नी रजस्वला या गर्भिणी हो तो यति को भिक्षा न कराये। कन्या के जन्म में चालीस दिन, पुत्र के जन्म में एक मास तक यति भिक्षा न करे। यदि चार मास के भीतर गर्भस्त्राव होता है। उसे गर्भस्त्राव कहते हैं। यदि पांच-छः मास तक गिरे, तो गर्भपात, उसके बाद माता को सूतक लग जाता है। फिर इसके बाद जितने मास का गर्भपात हो। उतने दिन तक यति को भिक्षा न कराये। विमाता की मृत्यु में छः माह का सूतक, पितामह की मृत्यु में डेढ़ माह का, स्त्री का तीन माह, भाई भतीजे का डेढ़ मास, सपिण्डों का एक मास तक, जाति बन्धुओं का एक मास, बालकों के मरने में दस दिन, अविवाहित कन्या की मृत्यु में पन्द्रह दिन, पुत्र आदि के सम्बन्ध में भी पन्द्रह दिन तक भिक्षा न ले।

विश्वेश्वर पद्धति में भिक्षा निषेध प्रकरण–जिस घर में गऊ, दासी, बकरी, भैंस, व्याई हो, वहां बारह दिन भिक्षा न ले। अन्य ऋषि के अनुसार, ऊपर कही अशुद्धि दस दिन तक मानना चाहिए। कुतिया, बिल्ली, घोड़ी के ब्याने पर पांच रात्रि वर्जित हैं। स्वगोत्रीय या अन्य गोत्रीय के सूतक होने पर दस दिन तक भिक्षा न ले। जिस घर में पक्षी, बिल्ली, चूहा, कुत्ता, बन्दर और भेड़ की मृत्यु हो जाए, तो तीन दिन अथवा पक्षियों में एक दिन, पशुओं में तीन दिन, कुछ आचार्यों के मत में, पक्षियों में एक दिन,

पशुओं में दो दिन, दन्तहीन बालक की मृत्यु में तीन दिन, एक से छः वर्ष के बालक के मरने पर तीन दिन, एक वर्ष के बालक की मृत्यु में एक दिन, दो वर्ष में दो दिन, तीन से पांच तक तीन दिन, आठ वर्ष का बालक ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्राह्मण के घर किसी ब्राह्मण के मरने पर दस दिन, क्षत्रिय के मरने में बीस दिन, वैश्य के लिए तीस दिन, शूद्र के मरने में चालीस दिन, भिक्षा त्याग दे। ब्राह्मण के घर में कुत्ता, शूद्र, पतित या अन्त्यज के मरने पर मनु जी के अनुसार दस रात्रि तक, कुत्ते में एक माह शूद्र में, दो माह पतित में, अन्त्यज में चार माह तक भिक्षा न ले। शीतला निकलने पर नौ दिन तक भिक्षा न करे। चारों वर्णों, चारों आश्रमियों को क्रमानुसार ब्राह्मण चौकोर, क्षत्रिय त्रिकोण, वैश्य गोल, शूद्र, अर्द्धचन्द्रकार मण्डल बनाकर भोजन करें–**ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च, श्री हुताशन एव च। मण्डलान्युप तिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्। पाठ भेद से–ब्रह्मादयः सुरास्सर्वे, वशिष्ठाद्यामहर्षयः। मण्डलेषूपतिष्ठंति (जीवन्ति) तस्मात्कुर्वीत मण्डलम्। हस्तोदकस्य यो बिन्दुः पात्रान्तरे च गच्छति। तत्पात्रं यतिभिस्त्याज्यं प्राणायाम षडाचरेत्॥**" हस्तोदक का जल लेते समय यदि किसी पात्र में गिर जाता है, तो वह पात्र यतियों को त्याग देना चाहिए और छः प्राणायाम करके तब भिक्षा करे। **शातातप**–भाई बन्धु से रहित विधवा, स्वतन्त्र नारी का अन्न नहीं खाना चाहिए। यदि धोखे में खा ले, तो चान्द्रायण व्रत करे। स्वधर्म से पतित स्त्री पुरुष आभीर कहे गये हैं। इनके हाथ की भिक्षा न ले। यति का अन्न, यति के पात्र का अन्न, यति द्वारा प्रेरित अन्न नहीं लेना चाहिए। यदि खा ले तो चान्द्रायण व्रत करे। स्त्री शेष पितृ शेष, शूद्र शेष विधवा, रजस्वला से बचा हुआ अन्न यदि खा ले, तो चान्द्रायण व्रत करे। जिस पात्र को कुत्ता, गधा, ऊंट, गीदड़, वानर, चाण्डाल या पतित छू दे। तो उस पात्र का यति त्याग कर दे। खून, मवाद, मांस, मल, मूत्र तथा कफ अश्रु आदि से युक्त पात्र को त्याग दे। फूटे पात्र में भिक्षा न करे। **यमस्मृति**–जो यति माता के मासिक या वार्षिक कर्म करता है, तो माता सहित बारह दिन तक रुधिर का आहार करता है। **मार्कण्डेय पुराण**–माता या पिता की तिथि पर जो भिक्षुक कर्म करता है। उसे पितरों सहित नरक में विष्ठा का भोजन करना पड़ता है। **बृहस्पति–"दिने मातुर्यतिः कर्म न कुर्याद् पोषणादिकम्। कुरुते यदि मूढात्मा तावुभौनर कौकसी।" अंगिरा–"भिक्षुः**

स्वमात्रे दद्याच्चेदन्नवस्त्रादिकं यति। दाता भोक्ता महाघोरं रौरवं नरकं व्रजेत्।'' विष्णु पुराणे–''भिक्षामादाय यो भिक्षुर्मातरंप्रतिदीयते। षष्टि वर्ष सहस्त्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।'' व्यासः–''स्वमेव वाटनं कृत्वासमादाय माधुकरं। मातरं प्रति यद्दयान्नं वस्त्रं सकृद्यतिः। सचाण्डालसमोज्ञेयः पातकी यति वृत्तिहा। अधो गति समाप्नोति पुनरावृत्ति वर्जितम्'' आपस्तम्बः–''योयतिर्वस्त्रमन्नंवा धनं वा मातरं क्वचित्। दीयते यति मूढ़ात्मा सोऽधो याति न संशयः।'' कात्यायन–''संन्यस्य यो यतिः पश्चाद्दर्शनार्थं स्वमातरम्। यदि व्रजेद्गृहं गच्छेत् स चाण्डालसमः स्मृतः॥ तदा चान्द्रायणं कुर्यात् प्राजापत्यमथापि वा। पराशरः–स्वग्रामं प्रतियो गच्छेन्मातुर्दर्शन कांक्षया। सभिक्षुर्नरकंयाति पुनरावृत्ति वर्जितम्॥''

विष्णु पुराण–जो यति भिक्षा लाकर माता को देता है, वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है। **व्यास**–स्वयं भ्रमण करके जोयति माधुकरी लाकर माता को अन्न वस्त्र एक बार भी देता है। वह चाण्डाल के समान पातकी होता है। और यति की जीविका हरण करने वाला होता है, और अन्त काल तक नरक भोगता है। **आपस्तम्ब**–जो मूढ़ बुद्धि संन्यासी माता को वस्त्र, अन्न, धनादि देता है, वह निश्चय ही अधोगति को प्राप्त करता है। **कात्यायन**–संन्यास लेकर जो यति माता के दर्शन के लिए घर जाए, वह चाण्डाल के समान कहा है। इससे छूटने के लिए चान्द्रायण या प्राजापत्य व्रत करे। कुछ यतियों का कहना है कि ऊपर के प्रमाण सत्य, त्रेता, द्वापर के लिए है कलियुग के लिए छूट है। कलियुग के लिए **पराशर** स्मृति है। तो पराशर का भी वचन है, ''जो यति माता के दर्शन के लिए गांव को जाता है वह अनन्त काल तक नरक भोगता है।'' अतः संन्यासी को घर का सम्पर्क त्याग देना चाहिए।

यति को रात्रि में, मध्याह्न, दोनों संध्याओं में, शून्य में किले में नहीं घूमना चाहिए।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का बयालिसवां अध्याय सम्पूर्ण॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद का तैंतालिसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

॥ चतुर्मास्य विधिः ॥ अत्रि संहिता से

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी अथवा पौर्णमासी से यति चातुर्मास्यं का निश्चय करे, यदि पूर्णमासी तक स्थान न मिल सके, तो श्रावण कृष्ण पंचमी तक अवश्य बैठ जाना चाहिए। दो महीने का हो, तो अश्विन कृष्ण पंचमी तक, चार माह का हो तो अगहन कृष्ण पंचमी तक बैठे। यदि इससे अधिक हो जाए, तो प्रायश्चित स्वरूप एक कृच्छ चान्द्रायण व्रत करे। बड़े ग्राम नगर में, एक कोस से अधिक न जाए, यदि जाता है तो तीस प्राणायाम करके तीन सौ प्रणव का जप करे। आठ महीने भ्रमण करे। चातुर्मास्य दो या चार महीने का करे। **यति धर्म समुच्चय**–सद्गृहस्थ प्रार्थना करें कि आप हमारे कल्याण के लिए यहीं चातुर्मास्य करें। इसके भीतर सीमा उल्लंघन न करे। नदी पार न जाए। नित्य की अपेक्षा जप, शास्त्र, चिन्तन, ध्यान अधिक करे। जल में, स्थल में एवं आकाश में जीव रहते हैं। उनकी रक्षा के लिए चातुर्मास्य का विधान है, किन्तु काशी में बारह मास चातुर्मास्य किया जा सकता है। कलि काल में गंगा जी ही जीव का परम कल्याण करती है। **ब्रह्माण्ड पुराण से, ''गंगा च द्विविधाजाता भागीरथी गौतमीच। एकमेव जटाजूटे शम्भोरासीन्, महज्जलम्॥'' ''अर्द्धं भागीरथानीतं अर्धतद् गौतमाहृतम्।''** ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार, भगवान् के चरणों से निकली गंगा जब ब्रह्मा जी के पात्र में आई। तब उस गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए ब्रह्मर्षि गौतम तथा राजर्षि भगीरथ तप करने लगे। वह गंगा जब भगवान् शंकर की जटाओं में लीन हो गई। शिव पुराण में हिमालय को भगवान् शंकर का मस्तक कहा है। उसी में भगवान् शंकर की जटाओं में बहुत दिनों तक चक्कर काटती रहीं। दोनों के प्रार्थना करने पर दोनों के तप का फल देने के लिए जटा का जल निचोड़ा। दाहिने भाग की जटा निचोड़ने से जो जल निकला, उसे गौतम जी ने ग्रहण किया। वह गौतम के मार्ग का अनुसरण करने के कारण 'गौतमी' कहलाई। बायीं जटा के जल को भगीरथ लाये, वह भागीरथी गंगा हुई। इस प्रकार एक ही जटाधारी शिव की जटां में जो जल था, उसका आधा भगीरथ ने और आधा गौतम ने लिया। इस प्रकार दो गंगा हुई। चातुर्मास्य में यदि बाढ़ का जल बाढ़ जाए, तो यति ग्राम में प्रवेश कर सकते हैं। इसमें दोष नहीं

है। यति यदि असमर्थ हो, किसी प्रकार की विशेष आपत्ति हो, तो चातुर्मास्य में अन्यत्र भी जा सकता है।

जो यति एक माह तक निरन्तर शूद्र का अन्न लेता है। वह इस जन्म में शूद्रत्व को प्राप्त करके अगले जन्म में कुत्ता होता है। दस दिन में ब्राह्मण की शुद्धि, बारहवें दिन क्षत्रिय, पन्द्रहवें दिन, वैश्य और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है, किन्तु पतित की शुद्धि दाह पर्यन्त नहीं होती। जिस ब्राह्मण ने दो बार कन्यादान कर दिया हो। उसका अन्न नहीं खाना चाहिए। पति की आज्ञा का उल्लंघन करने वाली काम चारिणी स्त्री का अन्न न ले। पुत्र हीन स्त्री का अन्न न ले, जो अज्ञान से लेता है, वह पीव के नरक में पड़ता है। राजा का अन्न, तेज, शूद्र का अन्न वर्चस् का हरण करता है। दोनों प्रकार का सूतक पृथ्वी का मल है।

यति का क्षौर प्रकरण–क्षौर से निवृत्त होकर बारह प्राणायाम करे। चातुर्मास्य में बीच में क्षौर न कराये। यदि अधिक मास हो, तो दो क्षौर करावे। चार मास के चातुर्मास्य में कार्तिक पूर्णिमा, दो मास वाला भाद्रपद पूर्णिमा में क्षौर करावे। दुबारा यति सन्ध्या, दण्ड तर्पण आदि करें। गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ करने के बाद भ्रमण करे। यति को चार मास का ही चातुर्मास्य करना चाहिए–**''देश काले विरोधे तु भाद्रपद्या मपि कवचिन्मतमिति।''** ऋतु चान्द्र मास से ग्रहण की जाती है सौर मास से नहीं। क्षौर के अनन्तर स्नान करके पुरुषोत्तम आदि नामों का स्मरण करे। क्षौर से पूर्व गुरुओं से क्षौर के लिए आज्ञा मांगे। नाई के छुरे आदि हथियारों को हाथ में लेकर प्रणव से अभिमंत्रित करके नाई को देवे। इससे पूर्व नाई से मिट्टी लगवाकर उन्हें शुद्ध कर लें। बीच में पत्तल आदि रखकर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर क्षौर कराये। बीच में पत्तल रखकर उस पर अष्टदल कमल बनाकर उस पर प्रणव लिखे। दाहिने कान की ओर से क्षौर कर्म शुरू करे। शिखा सहित क्षौर करावे। चूड़ाकरण आदि बालकों के संस्कार में भी दाहिने कान से आरम्भ करके शिखा पर्यन्त फिर शिर से आरम्भ करके बायें कान तक गले तक ही बाल बनवाये। दोनों हाथों को जल में रखे मौन रहे। फिर बेल या पीपल या तुलसी की मिट्टी, गऊ का गोबर लेकर नदी तट पर जाए। बारह डुबकी लगाने के बाद मिट्टी के तीन भाग करे। प्रणव से अभिमन्त्रित करे। जल मिला कर बारह बार हाथ में मले, फिर हाथ धो ले, फिर दोनों पैरों तथा मुख में लगाये। जल से धोने के बाद फिर

जल में डुबकी लगावे। फिर अन्य भाग लेकर सिर तथा अन्य अंगों में लगाये, सोलह कुल्ला करे। दो आचमन करे। आठ प्रणवों से प्रणायाम करे। शेष क्रिया पीछे लिखी गई कटि शौच के अनुसार करे। यति सन्ध्या दण्ड तर्पण के बाद गुरुओं को तथा देवताओं को प्रणाम करे।

क्षौर में ग्राह्य पूर्णिमा–तीन मुहूर्त से अधिक कालीन मुख्य है। दो मुहूर्त मध्यम है। इससे कम ग्राह्य नहीं। चतुर्दशी विद्धा ग्राह्य नहीं, तीन मुहूर्त का वेध कहा है। तिथि का क्षय होने पर पर्व को ग्रहण करे। दो मुहूर्त वाली पूर्णिमा दैव कर्म में ग्राह्य है। चूंकि क्षौर मनुष्य कर्म है। इसलिए इसका ग्रहण नहीं करना चाहिए। दो मुहूर्त क्षौर सम्बन्धी वचन है। वह आधुनिकों द्वारा प्रक्षिप्त है। तीन मुहूर्त से कम होने से ग्राह्य है और चतुर्दशी वेध सम्बन्धी वचन मूल ग्रन्थ में होने से शास्त्र सम्मत है, अतः ग्राह्य नहीं और चतुर्दशी वेध सम्बन्धी वचन मूल ग्रन्थ में होने से शास्त्र सम्मत है, अतः ग्राह्य है। यतियों का गले पर्यन्त क्षौर, ब्रह्मचारियों का कक्ष पर्यन्त, ब्रह्मचारियों का कक्ष पर्यन्त, शिखा के बिना गुल्फ पर्यन्त गृहस्थों का क्षौर कर्म कहा है। **क्षौर मन्त्र = ''महापापोपपापानां केशं श्मश्रु नखादिषु। क्षौरस्नानादिभिः सर्वे ते मे दोषा व्रजन्त्यधः।''** यति बालों को उठा कर नदी तट पर गड्ढा खोदकर दबा दे, जल में न छोड़े क्योंकि जल में मल, मूत्र, केश, हड्डी, नाखून, रोम, श्लेष्मा नहीं छोड़ना चाहिए। यह आठ मल कहे गये हैं इन्हें जल में न छोड़े। यदि खुले छोड़ दे, तो नदी में जाने का दोष लगता है। जहां पर चोरों का उपद्रव हो, अकाल हो, व्याधि से पीड़ित हो, समाधि के अनुकूल न हो उस स्थान को चातुर्मास्य में भी छोड़ देना चाहिए।

अत्रि–जहां पर यति के माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र वधू, मौसी आदि हो, उस देश में वास न करे, क्योंकि इनके सुख दुख को सुनने से हर्ष शोक होता है, **''अश्रुपातं यदा कुर्याद्भिक्षुः शोकेन चोदितः। योजनानां शतं गत्वा तदापापात् प्रमुच्यते।''** सम्बन्धियों के दुख से दुखी होकर यदि यति अश्रुपात करता है, तो वहां से चार सौ कोस दूर चले जाने पर पाप से छूटता है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद में तैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद में चौवालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

यति का आतिथ्य सत्कार या पर्यंकशौच

यदि एक संन्यासी दूसरे आश्रम या मठ में जाए, तो वह उठकर उनका सत्कार करे तथा पूछे कि आपके कितने चातुर्मास्य हुए हैं। यदि वह चातुर्मास्य में अधिक हो, तो श्रद्धा भक्ति पूर्वक दण्ड सहित उन्हें प्रणाम करे। याज्ञवल्क्योपनिषद् में लिखा है, "**यः भवेद् पूर्व संन्यासी तुल्यतो धर्मतो यदि। तस्मै प्रणामं कर्त्तव्यो नेतराय कदाचन।**" जो पहले संन्यासी हुआ हो तथा यति धर्म के अनुसार ज्ञान वैराग्य से युक्त, स्वधर्म का पालन करता हो, अपने ही तुल्य हो अर्थात् जिसका गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र प्रस्थान त्रयी का भाष्य सहित श्रवण, मनन, निदिध्यासन करता हो, उसी को प्रणाम करे। दूसरे को नहीं। प्रणाम के बाद उनका दण्ड नीचे से पकड़ कर उपयुक्त स्थान पर रख कर उन्हें आसन दे। फिर स्वयं नीचे गरुड़ासन पर बैठ कर उनकी आज्ञा प्राप्त कर दोनों हाथ मस्तक आदि झुका करके प्रणाम करे। फिर पाद प्रक्षालन करके उस जल को मस्तक पर धारण करे फिर उनकी आज्ञा प्राप्त कर धूप दीप आदि से पूजन करके जोटिका प्रणाम करे अर्थात् बायें हाथ का अंगूठा ब्रह्म मुद्रा में लगाकर तीन बार आत्मसात् करते हुए "**ॐ नमो वो हरि स्वामिने**" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए अठारह या बारह संख्या में प्रणाम करे। इस प्रकार पंचांग गरुड़ासन में स्थिर होकर करे, इसे 'जोटिका करण' कहते हैं। फिर पर्यंक शौच करे अर्थात् तरवत पर बैठाकर आदरपूर्वक विधिवत् अंग प्रत्यंग की शुद्धि करे। यदि अभ्यागत संन्यासी चातुर्मास्य में कम हो तो वह संन्यासी अपने से बड़े को प्रणाम करे, बड़ा संन्यासी अभ्यागत छोटे संन्यासी का दण्ड अग्रभाग से पकड़कर यथा स्थान रखे। अपने शिष्य द्वारा उनका पूर्ववत् सत्कार आदि करे। **यति धर्म प्रकाश**–तखत पर बैठाकर पांच, चार, तीन, दो, तीन, दो, एक की संख्या से क्रमशः पैर, घुटने, जंघा, दोनों हाथ, मुख आदि अंगों को जल से शुद्ध करे।

यद्यपि पर्यंकशौच गरुड़ासन तथा जोटिका नमस्कार आदि श्रुति स्मृति पुराणादिकों में नहीं मिलता, फिर भी मन्दाधिकारी शरीर से बलवान् संन्यासियों के लिए केवल इन्द्रियों के दमन के लिए वृद्धों का कल्पित है। संन्यास के अनन्तर गुरु प्रणाम आदि के

अनन्तर शिष्य का अपने सम्प्रदाय के अनुसार आश्रम, तीर्थ, सरस्वती आदि नाम के अन्त में लगाकर विष्णु सहस्रनाम में आये नामों में से कोई उपयुक्त नाम रखे। इसे योग पट्ट कहते हैं।

जो यति कच्चे या पक्के अन्न को दुबारा पकाता है, वह स्वधर्म का लोप करने से तिर्यक्योनि में जाता है। **''पक्वं वा यदि वापक्वं पाचयेद्यदि क्वचिद्यतिः। स्वधर्मस्य तु लोपेन तिर्यग्योनिं व्रजेत् सः॥ स्वयं पक्त्वा यो भुंक्ते च तस्यसन्तापन त्रयम्। पाचयित्वा च योभुंक्ते तस्य कृच्छ् विशोधनम्॥''** जो स्वयं पकाकर खाता है वह तीन सान्तापन व्रत करे। दूसरे यति से पकवाने वाला यति शुद्धि के लिए कृच्छ्र व्रत करे। पुत्र आदि की मृत्यु में संन्यासी स्नानादि न करे। माता पिता की मृत्यु को सुनकर वस्त्र सहित स्नान करने से शुद्ध हो जाता है। इनका सूतक यति को नहीं होता। श्राद्ध पिंडादि क्रिया यति न करे। यति भूलकर भी सिलावस्त्र धारण न करे। **''विधवां कुंचुकोपेतां सधवां कंचुकं बिना। यतिं च कंचुकोपेतं सवासाजलमाविशेत्॥''** यदि कोई विधवा की ब्लाउज से युक्त और सधवा को ब्लाज के बिना तथा संन्यासी को कुर्त्ता आदि पहने हुए देखे तो वस्त्र सहित स्नान करने से शुद्ध होता है। यहां कंचुकोपेत शब्द पगड़ी कुर्ते आदि का उपलक्षण है। **''सिद्धमन्नं गृहस्थाय वनस्थाय च गोरसम्। यतये कांचनं दत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्॥ द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा। निरारम्भो गृहस्थश्च कार्यवांश्चैव भिक्षुकः॥''** गृहस्थ को पका अन्न, बनवासी को घी, संन्यासी को द्रव्य देने वाला रौरव नरक को जाता है। यह दोनों पुरुष विपरीत कर्म करने से शोभा को नहीं प्राप्त होते। निष्क्रिय गृहस्थ तथा क्रियावान् संन्यासी॥ **हारीत–''श्व चर्मणि यथाक्षीरमपेयं ब्रह्मवादिभिः। तथा शूद्र मुखाद्वाक्यं न श्रोतव्यं कदाचन।''** जैसे ब्रह्मवादियों के लिए कुत्ते के चमड़े में रखा दूध अपेय है, वैसे ही शूद्र के मुख से शास्त्रीय बात कभी न सुने। **क्रिया सारे ''आगच्छ तिष्ठ तिष्ठेति स्वागतं सुहृदेऽपि वा। सम्मानं च न हि कुर्यान्मुनि मोंक्ष परायणः''**–मुमुक्षु यति आइये, बैठिये, इस प्रकार के सम्मानसूचक वचन मित्र के प्रति भी न कहे। **वायु पुराण अ० ४३, यति की गया गमन विधि**–संन्यासी गया में जाकर पिंडदान न करे। दण्ड का अगर भाग दिखा दे, विष्णु पद पर दण्ड का स्पर्श करने से यति पितरों सहित मुक्त हो

जाता है। गया के अन्य स्थानों में मुण्ड, पृष्ठ, कूप, यूप तथा वट वृक्ष में दण्ड दिखाने मात्र से पितरों सहित आनन्दित होता है। **अन्य तीर्थ विधि**–सभी तीर्थों में मुण्डन उपवास आदि का विधान है, किन्तु कुरुक्षेत्र विशाला, विरजा तथा गया में नहीं। यदि दण्ड खण्डित हो जाए, तो उसे गहरे जल में डाल देना चाहिए।

वायु पुराण–मैथुन सेवी यति का सर्वनाश, "यस्तु प्रव्रजितोभूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्। षष्टि वर्ष सहस्त्राणि विष्ठायांजायते कृमिः॥ शून्यागारेषुघोरेषु आखुर्भवति दारुणः। स तिर्यक् स्यात्ततो गृध्रः श्वावैद्वादशःवत्सरान्। खरो विंशति वर्षाणि दश वर्षाणि शूकरः। अपुष्पोऽफलितो वृक्षो जायते कण्ट कान्वितः। ततो दवाग्निना दग्धः स्थाणुर्भवति कामुकः। स्थावरात् संपरिभ्रष्टो योनिमन्यां स गच्छति। पूर्णे वर्षसहस्त्रान्ते जायते ब्रह्मराक्षसः॥ क्षुत्पिपासा परिश्रान्तः क्रव्यादो रुधिराशनः। क्रमेण लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन च। चाण्डालगर्भसम्भूतो जायते नात्र संशयः॥" जो संन्यास लेकर फिर स्त्री सेवन करता है, वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है। इसके बाद निर्जन वन में भयंकर चूहा होता है। अनेक पक्षी योनि प्राप्त करने के बाद गीध, बारह वर्ष कुत्ता, बीस वर्ष गधा, दस वर्ष सुअर का जन्म पाता है। फिर पुष्प फल से रहित कांटे दार वृक्ष होता है। वह कामी यति वन की अग्नि में जलकर ठूंठ होता है। पेड़ के बाद अन्य कई योनियां प्राप्त करता है। एक हजार वर्ष पश्चात् वह भूख प्यास से व्याकुल रक्त मांस भक्षी ब्रह्म राक्षस होता है। क्रमानुसार अनेक योनियों में जाने के बाद कुल के भ्रष्ट करने से चाण्डाल योनि प्राप्त करता है। **विष्णु**–यति को गृहस्थ तथा वानप्रस्थियों से प्रीति नहीं करनी चाहिए। **दत्तात्रेय**–स्त्री, भाई, पुत्र आदिकों बन्धुओं का शुभाशुभ देखकर यति हर्ष शोक त्याग दे। रुईदार कुर्त्ता, रजाई आदि का प्रयोग यति न करे। स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य खण्डित करेन वाला यति, गौ, भूमि, धान्य संग्रह करने वाला यति पतित है। माधुकरी भिक्षा लेकर यति ब्राह्मणों को न दे। ब्राह्मण को देने वाला यति नरक को जाता है। ब्राह्मण लेकर चान्द्रायण व्रत करे, तब शुद्ध होता है। धर्मात्मा राजा को चाहिए कि स्वधर्म से पतित यति को पकड़ कर उसके माथे पर कुत्ते का पंजा अंकित करके वन में छोड़ दे। दास-दासी गृह, सवारी, गौ, पृथ्वी आदि का संग्रह करने वाला यति तीन सौ पीढ़ियों को नीचे ला जाता है। यति

को ऊनी वस्त्र, पेटी, मांस, रुईदार, रजाई, चारपाई, मधु, सफेद वस्त्र, जानदार सवारी, पान तथा स्त्री का त्याग कर देना चाहिए। व्यर्थ में पेड़ पौधे काटने वाला यति निश्चय ही नरक प्राप्त करता है। बायें हाथ से जल लेकर पीने वाले द्विजाति सुरापान के तुल्य है, ऐसा करने पर चान्द्रायण व्रत करे। **सत्यकाम**–दण्ड ग्रहण करने के बाद यति पुत्र, मित्र, भाई आदि से बात न करे। अनजान में करने पर एक दिन उपवास कर सौ प्राणायाम करें, इनके घर में भिक्षा न करे। करने पर सौ प्राणायाम करे फिर प्राजापत्य व्रत करे। जो संन्यासी धन कमाकर घर में देता है। वह महा प्रलय तक नरक में पकाया जाता है। **''अद्वैत भावमाश्रित्य द्वैता चारेणवर्तते। रुदन्ति पितरस्तस्य हा कष्टं पतितं पुनः॥''** अद्वैत भाव का आश्रय लेकर जो यति फिर द्वैताचार में प्रवृत्त होता है। भाव यह है कि निवृत्ति प्रधान ज्ञान मार्ग का आश्रय लेकर प्रवृत्ति प्रधान कर्म काण्ड में लोगों के जप पूजा पाठ, हस्त रेखा विचार, ज्योतिष सम्बन्धी कार्य या वैदिक कार्य करता हुआ प्रवृत्ति मार्ग में आ जाता है–उसके पितृ रोते हैं हाय बड़े कष्ट की बात है कि ऊपर चढ़कर फिर गिर गया। युवा संन्यासी चलने में समर्थ होने पर भी जो पालकी, घोड़ा, हाथी, बैल की सवारी पर चलता है। वह सौ प्राणायाम करके सन्तापन व्रत करे। **मार्कण्डेय पुराण**–लघु शंका में बिना जल के जो जाए, वह एक दिन का व्रत करे। पांच दिन पंचगव्य सेवन करने से शुद्ध होता है। महापाप करने वाला यति दस हजार प्राणायाम करके तीन लाख प्रणव का जप करे। यदि धोखे में स्वप्न दोष हो जाए तो चान्द्रायण व्रत करे।

चार ऋषियों का मत ऋषि चतुष्टय–खुलजाने से यदि वीर्य पात हो, तो दो दिन का उपवास करे। जान बूझ कर स्त्री प्रसंग में बारह दिन व्रत तथा तीन लाख प्रणव जप करे। अन्त्यजा से गमन करने वाला अरण्य में जाकर बेल फल खाकर तीन लाख प्रणव जप करे। धोबी, चमार, नट, भरूड़, केवट दो प्रकार के हैं। १. अनुलोमज २. विलोमज। इनमें नीचे वर्ण की माता तथा उच्च वर्ण के पिता से उत्पन्न सन्तान अनुलोमज है। यह स्पृश्य है तथा इसके विपरीत सन्तान विलोमज है, जो कि अस्पृश्य है। भील, भेट यह सात अन्त्यज हैं। एक बार स्त्री गमन करने वाला पाराक व्रत करके तीन लाख प्रणव का जप करे। इन्द्रिय दुर्बलता में यदि किसी स्त्री को देखकर स्खलित हो जाए, तो सोलह प्राणायाम करे। **क्रतु**–पान खाने, साबुन, तेल का प्रयोग, कांस्य पात्र में भोजन करने से

एक दिन का उपवास तथा ग्यारह प्राणायाम करे। अथवा ज्ञान रूपी सरोवर में, ध्यान रूपी जल से, राग द्वेष रूपी मल को दूर करने वाले मानस तीर्थ में स्नान करने वाला यति परमगति प्राप्त करता है। कलिकाल में जो दोषों से भरपूर हैं। गोविन्द नाम सब पापों से छुड़ाता है। हजारों गंगा स्नान, करोड़ों पुष्कर स्नान से जो पाप दूर नहीं होते वे हरि स्मरण से दूर होते हैं। **मेधा तिथि–''आसनं पात्रं लोभश्च संचयः शिष्य संग्रहः। दिवा स्वापो वृथालापो यतेर्वन्ध कराणि षट्''**–आसन पात्र का लोभ, धन आदि का संग्रह, शिष्य का संग्रह, दिन में सोना, व्यर्थ वार्ता यह छः यति के लिए बन्धक कारक है। **आसनम्**–ग्राम में एक रात्रि, नगर में पांच दिन, वर्षा के अतिरिक्त इससे अधिक ठहराना आसन है। **पात्र लोभ**–कहे हुए लकड़ी आदि के पात्रों का भिक्षा जीवी यति के लिए आवश्यकता से अधिक संग्रह पात्र का लोभ है। **संचयः**–एक दण्ड के होते हुए कालान्तर में टूट या खो जाने पर दूसरे दण्ड का संग्रह संचय है। जब दूसरा दण्ड रखना भी मना है, तो धन आदि को संग्रह के लिए तो कहना ही क्या। **शिष्य संग्रह**–सेवा कराने के लिए धन आदि का लाभ अथवा यश के लिए चेले चेलियां बनाना शिष्य संग्रह है, किन्तु अधिकारी शिष्य के पारमार्थिक कल्याण के लिए शिष्य बनाने में दोष नहीं है। **दिवास्वाप–''विद्या दिनं प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते। विद्याभ्यासे प्रमादीयः स दिवास्वाप उच्यते॥''** प्रकाश स्वरूप होने के कारण विद्या को दिन कहा है और अविद्या को रात्रि कहा है। ब्रह्म विद्या के अभ्यास में प्रमाद करने वाले को दिवास्वाप कहा है। **वृथालापः–''आध्यात्मिकी कथा मुक्त्वा भैक्ष्यचर्या सुरस्तुतिम्। अनुग्रहात्पथिप्रश्नो वृथालापः स उच्यते।''** ब्रह्मचर्या को छोड़कर भिक्षा की चर्चा देवताओं की स्तुति, यात्रा सम्बन्धी प्रश्नोत्तर यह चर्चा वृथालाप कहा गया है।

यति पेड़, पौधा न लगाये, किसी जीव जन्तु कुत्ते बिल्ली को न पाले, बीजों का संग्रह धातु के पात्र, विष तथा हथियार इन छः को मल मूत्र के समान त्याग दे। रसायन विद्या, कर्मकाण्ड, ज्योतिष, व्यापार, कला–कौशल परस्त्री व्रत त्याग दे। ईश्वर को न मानने वाला, ज्ञानी से द्वेष करने वाला, ब्रह्म हुआ ही नहीं, यह कहने वाला ये तीन ब्रह्म हत्यारे कहे गये हैं इनका त्याग कर दें। **''नहि योगात् परं किंचिन्नराणां दृश्यते शुभम्। तस्माद्योगं प्रशंसन्ति धर्म युक्ता मनीषिणः।''** योग से बढ़कर मनुष्यों का

कल्याण करने वाला दूसरा साधन नहीं दीखता, अतः धर्मात्मा विद्वान् योग की प्रशंसा करते हैं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का चवालिसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद पैतालिसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

यति पूजा महात्म्य विश्वेश्वर पद्धति तथा यति धर्म समुच्चय से

अत्रि–एक हजार ब्रह्मचारी, सौ वानप्रस्थी तथा करोड़ों ब्राह्मणों की अपेक्षा एक यति उत्तम है। साक्षात् विष्णु स्वरूप ब्राह्मण यति देव, असुर तथा समस्त वर्णाश्रमियों द्वारा पूजनीय है जो देव मूर्ति तथा एक दण्डी को देखकर प्रणाम न करने वाला रौरव नरक में जाता है। विष्णु लिंगधारी ब्राह्मण को देखकर जो अपनी शय्या, आसन या सवारी का त्याग नहीं करते हैं, वे अधम हैं। वे सदाचार से रहित अधोगति को प्राप्त करते हैं। **हारीत**–वैदिक मार्गावलम्बियों को, सभी आश्रमियों को चाहिए कि भक्तिपूर्वक संन्यासी को प्रणाम करे। ब्रह्मनिष्ठ परमहंस साक्षात् नारायण स्वरूप है। ऐसे यति का जिसने नित्य पूजन तथा अष्टाक्षर मंत्र से प्रणाम किया है। उसने विष्णु का पूजन कर लिया। **जावाल**–जो यति को देखकर आसन, चारपायी तथा सवारी नहीं त्यागता, वह कुत्ते की योनि में जाता है। सदाचारी या दुराचारी किसी भी यति की निन्दा न करे, न करवाये। यति के हाथ का द्रव्य या अन्य वस्तु यदि कोई धोखे में भी लेता है, तो वह इक्कीस पीढ़ियों तक नरक में जाता है। जो यति को श्रद्धा सहित भरपूर भिक्षा देता है, उसका पुण्य करोड़ों कल्पों में क्षीण नहीं होता। यति के पात्र में जितने अन्न के दाने दिये जाते हैं। उतने हजार वर्ष वह स्वर्ग में सुख भोगता है। **क्रतु**–माधुकरी के लिए द्वार पर आये यति का गोत्र, अचार, शौच, शुभाशुभ कर्म, कुल तथा स्वभाव के सम्बन्ध में न पूछे। जिसके घर में संन्यासी अड़तालीस मिनट भी रुकता है, वह कृतार्थ हो जाता है। उसके जन्म भर के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिसके घर में यति एक रात्रि रुक जाए, वह शतायु होता है। विष्णु बुद्धि से यति की पूजा करने वाला सौ यज्ञों का फल पाता है।

जिसके घर में यति भिक्षा करे उसके यहां हरि स्वयं भोजन करते हैं। जिसके यहां हरि भोजन करें वहां तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं। यति के हाथ में पहले जल दे, फिर भिक्षा दे, फिर जल दे, वह भिक्षा सुमेरु के समान और जल सागर के समान है। संन्यासियों को चातुर्मास्य कराने वाला गृहस्थ दोनों लोकों में सुखी रहता है। **अत्रि**–आदरपूर्वक विष्णु रूप यति को भिक्षा कराने वाले को सम्पूर्ण पृथ्वी के दान से भी अधिक फल मिलता है। **हारीत**–सभी अपराधों से अधिक अपराध यति की निन्दा है।

स्कन्द पुराण–''जन्म कोटि सहस्त्रेषु पूजितस्तेन शंकरः। गृहे यस्य समायाति महाभागवतो यतिः॥ यतिभिः पूज्यमानेषु सर्वे देवाः सुपूजिताः। अमाने च कृते तेषां देवाः सर्वेऽपमानिताः॥ सदोषंनिगुर्णवापि यतिं क्वापि न कीर्तयेत्। अज्ञानात् कीर्तयेद्यस्तु स याति नरकं ध्रुवम्। येनापमानितो भिक्षुस्तेनाहंचापमानितः॥'' जिसके घर में महा भागवत यति आ जाता है तथा गृहस्थ द्वारा पूजित होता है। उसने हजार कोटि जन्मों में शिव पूजन का फल प्राप्त कर लिया। यतियों का पूजन करने वाले ने सब देवताओं का पूजन मानो कर लिया तथा उनका अपमान करने से सभी देवताओं का अपमान होता है। दोष युक्त, गुण रहित यति की निन्दा न करे। भूल से भी करने से निश्चय ही नरक प्राप्त होता है। यति का अपमान करने से सभी देवताओं का अपमान होता है। हे मुनि श्रेष्ठ! जिसके घर में यति आता है, वहां ब्रह्मा विष्णु आदि देवता तथा सभी मुनि आ जाते हैं। यति के आने पर सभी तीर्थों तथा यज्ञों का फल प्राप्त होता है। भक्तों पर कृपा करने के लिए, धर्म प्रचार के लिए यति घूमते हैं। यति को स्नान कराने से सौ वर्ष तक गंगा स्नान का फल मिलता है। जो शक्ति अनुसार, यति को कौपीन, चद्दर, कम्बल, दण्ड या पादुकाएं देता है, उसके पुण्य को कहता हूं। उसे दस हजार वाजपेय यज्ञों का, तीन सौ हाथियों के, दस हजार गोदान का फल मिलता है। **''लक्ष लक्षाणि यो दद्याद्ब्राह्मणे वेद पारगे। तथा तत्त्व विदेभिक्षां तयोस्तुल्यफलं भवेत्॥''** वेदज्ञ अनन्त ब्राह्मणों को दान देने का जो फल हैं। वह तत्त्ववेत्ता भिक्षु को भिक्षा कराने से होता है। **स्कन्द पुराण–कालिका पुराण**–जो यति को संन्यास कर्म के पहले दिन, दूसरे या तीसरे दिन भिक्षा कराता है, वह श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है और उसका जीवन सफल हो जाता है जो श्राद्ध में कुटीचक, बहूदक संन्यासियों को भोजन कराता

है। उसके पितरों को कल्प पर्यन्त तृप्ति होती है। **गीतामाहात्म्य से**–जो यतियों का विधिवत् पूजन कर पादोदक लेकर उनके सामने ग्यारहवें अध्याय का पाठ करता है। द्वादशी का जागरण करता है, उसके पुण्य को कहता हूं। उसके कुल में स्त्री, पुत्र आदि से रहित पितर तथा लुप्त पिण्ड पितर मुक्त हो जाते हैं। जैसे लोक में यति का दर्शन, पादस्पर्श करने से मन शुद्ध होता है। ऐसे ही शास्त्रों में गीता के छूने, देखने से मन पवित्र होता है। जैसे गीता के एक श्लोक से ही पाप नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही यति के दर्शन मात्र से पाप नष्ट होते हैं। गीता के श्लोक पाठ से, गोविन्द नाम कीर्तन से, यति के दर्शन मात्र से करोड़ों तीर्थों का फल मिलता है। कलियुग में गंगा, गीता, भिक्षुक, कपिला गौ, पीपल की सेवा तथा एकादशी सुलभ है। जैसे काशी में शरीर त्यागने तथा गंगा स्नान से मुक्ति है। वैसे ही यति के दर्शन स्पर्श, भाषण, अर्चन से मुक्ति प्राप्त होती है। **सूत संहिता**–जो संन्यासी के हाथ में अन्न या जल का दान नहीं करता। हे मुनि श्रेष्ठ! वे यमदूतों द्वारा मुद्गरों से मारे जाते तथा गन्ने के समान कोल्हू में पेरे जाते हैं। भगवान् भागवत में कहते हैं कि हे उद्धव! इच्छा रहित, मननशील निर्वैर संन्यासियों के मैं पीछे उनके पैरों की धूलि लेने के लिए चलता हूं। **निर्वाण तन्त्र**–मुक्ति के लिए ब्राह्मण को संन्यास धारण करना चाहिए। जो ब्राह्मण दण्ड धारण करता है साक्षात् नारायण है। ब्राह्मण से समस्त लक्षणों से युक्त ब्राह्मण, दण्ड धारण मात्र से चतुर्भुज विष्णु हो जाता है। जाते हुए दण्डी स्वामी को देखकर धरती पर प्रणाम करके प्रार्थना करे। हे देव देवेश! आप जगत् वन्दनीय हो, सबके रक्षक हो, आपकी शरण को प्राप्त हूं। मेरी रक्षा करो। **आत्म पुराण–"यतीनां च गुरुः शास्ता, शास्ता राजा दुरात्मनाम्। इह प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।"** संन्यासियों का शासक गुरु है, दुष्टों का शासक राजा है, छिपकर पाप करने वालों का शासक (दण्ड देने वाले) वैवस्वत यम हैं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का पैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ तृतीय परिच्छेद का छियालीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

यतियों का अन्तिम संस्कार

''मृते न दहनं कार्य परमं हंसस्य सर्वदा।
कर्त्तव्यं खननं तस्य नाशौचं नोदकक्रिया।
अश्वत्थस्थापनं कार्यं तद्देशेऽध्वर्युणा मुने।
अश्वत्थे स्थापितेतेन स्थापितोहि महेश्वरः॥
दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य सर्वनश्यति पातकम्।
अन्येषामपि भिक्षूणां खननं पूर्वमाचरेत्॥
पश्चाद् गृहे यथाशास्त्रं कुर्याद्दहनमुत्तमम्।
अश्वमेध फलं तस्य स्नानमात्रविशुद्धता॥''

यति धर्म प्रकाश स्मृतिसार–

कुटीचकं चैव दहेत् पूरयेच्च वहूदकम्।
हंसं जले निक्षिपेत् परमहंसं च पूरयेत्॥

(विकीरयेत् इत्यपिपाठ)

परम हंस संन्यासी की मृत्यु होने पर कभी भी न जलावे। गाड़ देना चाहिए। अशौच तथा जल क्रिया नहीं होती। हे मुने! यजमान द्वारा वहां पीपल लगाना चाहिए, जिसने पीपल लगाया, उसने मानों महेश्वर की स्थापना की। पीपल के दर्शन, स्पर्श से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। परम हंसों के अतिरिक्त अन्य संन्यासियों (कुटीचक) को भी पहले भूमि में गाड़ बाद में शास्त्रानुसार दाह करे। संस्कार में भाग लेने वाले को अश्वमेध का फल मिलता है। स्नान मात्र से शुद्धि होती है। यति धर्म प्रकाश में लिखा है कि कुटीचक को जलावे, बहूदक को गाड़े, हंस को जल प्रवाहित करे। परमहंस को गाड़े या बिखेर दे। टीका में लिखते हैं कि परमहंस के टुकड़े करके चारों दिशाओं में फेंक दे। कुटीचक का दाह, बहूदक का गाड़ना या जल प्रवाह, हंस को जल में परवाहित करे यह नियम है। परमहंस के सम्बन्ध में जल प्रवाह, भूमि में गाड़ना या बिखेरना तीनों संस्कार ठीक हैं।

विश्वेश्वर पद्धति

बौधायन– ''ब्रह्मनिष्ठे च संन्यस्ते पितर्युपरतेश्रुते।
सपिण्डी करणं नैव नाशौचं नोदकक्रिया॥
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते।
सपिंडीकरणं नैव कर्त्तव्यं तु सुतादिकैः॥
सद्यः संन्यसनादेव प्रेतत्वं नैव जायते।
एकोद्दिष्टं नकर्त्तव्यं संन्यस्तानां कदाचन॥''

पुत्र ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी पिता की मृत्यु सुनने पर सपिण्डीकरण श्राद्ध, अशौच जलदान आदि क्रिया न करे। ग्यारहवें दिन पार्वण श्राद्ध करे। तत्काल संन्यास से भी प्रेतत्व नहीं होता। अतः संन्यासियों का एकोद्दिष्ट नहीं करना चाहिए। जब तक एक वर्ष पूरा न हो, तब तक मासिक आराधना करे। एक वर्ष पूर्ण होने पर वार्षिक आराधना करे। यदि शिष्य हो, तो बारह दिन तक अनध्याय करे अथवा गृहस्थ शिष्य भी अध्ययन (वेद शास्त्रादि) न करे। यति के गाड़ने, जल में बहाने, स्पर्श आदि में स्नान मात्र से शुद्धि होती हैं, उन्हें पद पद में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। गृहस्थ चिरंजीवी पुत्र प्राप्त करता है क्योंकि गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त सभी विधियां ब्राह्मणाश्रित हैं। अतः मन्त्र जानने वाला गृहस्थ मन्त्र से यति का संस्कार करे। यद्यपि जीवन्मुक्त महात्मा के शरीर को चाहे जहां डाल दिया जाए। उन्हें कोई लाभ हानि नहीं, किन्तु जिस देश नगर ग्राम में यति का संस्कार रहित शरीर पड़ा रहता है। वहां धर्म का लोप, दुर्भिक्ष, महामारी, भूकम्प, अति वृष्टि, अनावृष्टि आदि उपद्रव होते हैं। अतः विधान से संस्कार होना चाहिए। पिता या गुरु की मृत्यु के अनन्तर शिष्य या पुत्र बाल बनवा कर स्नान करे। यदि पुत्र समीप न हो, तो उनके ब्रह्मीभूत होने से सुनते ही बाल बनवा कर स्नान करे। दसवें दिन नारायणबलि करे। **उशना**–यति की मृत्यु पर पुत्र या शिष्य को छोड़कर भाई बन्धु तथा गोत्र वालों को क्षौर कर्म तथा जल दान नहीं करना चाहिए। वृषोत्सर्ग न करे।

यति संस्कार प्रयोग

बौधायन–नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पुरुष सूक्त से यति को स्नान कराये। फिर कौपीन आदि वस्त्र पहनाये फिर गन्ध, पुष्प आदि से पूजन करे। शरीर को पालकी में रखकर जयघोष बाजे गाजे के साथ ग्राम या नगर से पूर्व या उत्तर से आरम्भ करके नगर की प्रदक्षिणा करे। दण्ड के तीन भाग करके कमर में बांध दे। कमण्डलु बायीं ओर रखे। फिर नदी तट पर पीपल या देव वृक्ष के नीचे यति के दण्ड के बराबर लम्बा चौड़ा गहरा (बराबर मात्रा में) गर्त खोदे। इसे देवयजन कूप कहते हैं। इसके भीतर चारों ओर एक एक वालिस्त छोड़कर दूसरा गर्त खोदे। उसमें नमक डालें फिर गायत्री मंत्र से कुशा बिछाये। फिर शंख के जल से पुरुष 'सूक्त के मंत्रों से स्नान करावे' गन्ध पुष्पादि से अलंकृत करे। फिर "**विष्णो हव्यं रक्षस्व**" इस मंत्र से शरीर को गर्त में रखे। फिर "**ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पा ॐ सुरे इसमन्त्रसे दाहिने हाथ में दण्ड बांधे।**" फिर हृदय में "**ॐ हंसः शुचिसद् वसुरन्त सद्धोता वेदिषद् तिथि दुरोणसत्। नृषद् वरसद्दत् सद्वयोम सदव्जा, गोजा ऋतजा, अद्रिजा, ऋतं वृहत्। परेण नाकं निहितं गुहायां, विभ्राजते यद् यतयो विशन्ति।**

ॐ वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः, संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्वाः। ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले, परामृतात् परिमुंचन्ति सर्वे॥"

नाभि पर हाथ रखकर निम्नलिखित मंत्र पढ़े–

ॐ विष्णोरराटमसि विष्णो पृष्ठमसि, विष्णोश्नप्त्रेस्थो, विष्णु स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवेत्वा इति॥

नीचे लिखे मंत्र को कान में कहे–

ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्॥

"**ॐ हंसः शुचिषद्**" इस मंत्र को हृदय पर हाथ रख कर जपे। फिर "**ॐ ब्रह्म यज्ञानां प्रथमं पुरस्ताद्विशी मतः सुरुचोव्वेन आवः सवुन्ध्या उपमा अस्य विष्णोशतश्च योनिमसतश्च विवः।**" इस मंत्र से मूर्धा पर हाथ रखकर जपे। भृकुटी के बीच में हाथ रखकर पुरुष सूक्त का पाठ करे। "**ॐ भूमिर्भूमिमगात् मातामातर**

मप्यगात् भूयास्म पुत्रैः पशुभि र्योनोद्वेष्टि सविधयताम्।" इस मन्त्र से पत्थर कुल्हाड़ा शंख की नोक अथवा नारियल से मूर्धा का भेदन (कपाल क्रिया) करे। यदि कपाल भेदन करने में संकोच हो तो शिर पर गुड़ या नारियल रखकर उसे फोड़ दें। '**ॐ भूभूर्व स्वरोम्**' इस मंत्र से अभिमन्त्रित करके कुशा बिछाये। फिर '**ॐ भू भुर्वःस्वरादि सातों**' व्याहृतियों से नमक छोड़ते हुए, देव यजन करे। '**ॐ अग्निनाग्नि समिध्यते**' इस मंत्र से गर्त भर दे। यदि कोई वैदिकम ंत्र जानने वाला न हो, तो प्रणव से ही सभी क्रियाएं करें।

कुटीचक संन्यासी यदि ज्ञानी अथवा अज्ञानी हो, तो दहन आदि क्रिया कलाप करे। कुटीचक की नारायण बलि बारहवें दिन करे। बारहवें दिन गाय के दूध में खीर पकावे, उसमें गाय का घी, शहद आदि डालकर विष्णु की महापूजा करे। अग्नि में आहुति देने के बाद बारह संन्यासी या सपत्नीक गृहस्थों को भोजन कराये। गन्ध पुष्प आदि से बारह नामों से पूजन करावे और बारह ऊपर कहे हुए और एक और विद्वान् ब्राह्मण या संन्यासी का पूजन करके भोजन करावे। कुशा बिछाकर '**ॐ भूः स्वधा, भुवः स्वधा ॐ स्वः स्वधा**' कहकर नारायण बलि दे। इस प्रकार करने से विद्वान् ब्राह्मण विष्णु लोक को प्राप्त करता है। कुटीचक की दाहादि क्रिया गायत्री मंत्र से करे। फिर '**नारायण परंब्रह्म नारायणः परंतपः। नारायणः परो विष्णुः सर्वं नारायण सदा।**' इस मंत्र का जप करे। फिर गायत्री मंत्र से अस्थियां चुन कर गंगा जी में डाले। चारों प्रकार के संन्यासियों का भी पुत्र या शिष्य आदि दस दिन तक स्नान संन्ध्या जप आदि में समय व्यतीत करे। ग्यरहवें दिन पार्वण श्राद्ध करके, बारहवें दिन नारायण बलि करें।

शुक्ल पक्ष में शरीर त्यागे हुए यति का बारह यतियों में इन नामों से पूजन करे– **"ॐ केशवाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, विष्णवे, मधुसूदनाय, त्रिविक्रमाय, वामनाय, हृषीकेशाय, पद्मनाभाय, दामोदराय, जर्नादनाय"** इन नामों से पूजन करे तथा कृष्ण पक्ष में **"ॐ संकर्षणाय नमः वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण"** इन नामों से आमन्त्रित करे। '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' इन मंत्रों से तीन

बलि खीर से यति के निमित्त दे। इस प्रसंग में कुछ ऋषि मृतक यति के पुत्र पत्नी आदि के क्षीर को निषेध करते हैं और कुछ पक्ष में हैं। छः कर्मों में क्षौर होना चाहिए–

"**गंगायां, भास्कर क्षेत्रे माता पित्रोः मृतौ तथा। आधाने सोमपाने च षट्सुक्षौरं विधीयते।**" इत्यादि स्मृति वचन से यति की मृत्यु में पत्नी तथा पुत्र को क्षौर कराना चाहिए। संन्यास लेते ही पिता पुत्र का जन्य जनक भाव समाप्त हो जाता है, किन्तु संन्यास लेने के बाद भी जिनका (यति का) स्त्री पुत्रादिकों से सम्बन्ध बना रहता है। उनके लिए क्षौर आवश्यक है। स्त्री का क्षौर पति की मृत्यु के बाद परम आवश्यक है।

जल समाधि–यदि यति को जल समाधि देना हो, तो यति को नदी के किनारे ले जाए। पंचगव्य भूमि पर छोड़कर दक्षिणाभिमुख कुशा बिछावे, गायत्री मंत्र से पुरुष सूक्त से अथवा १०८ प्रणव मंत्रों से स्नान कराकर षोडशोपचार पूजन करके, तुलसी दल युक्त पुष्प मालाओं से अलंकृत करे। '**ॐ विष्णो हव्यं रक्षस्व**' इस मंत्र से नदी में विसर्जित करे। कपाल भेदन के अनन्तर, '**ॐ भूमि भूमि**' इन मंत्रों से अभिमन्त्रित कुशा बिछाकर '**ॐ भूर्भुवः स्वरोम्**' इस मन्त्र से शरीर के साथ पत्थर बांधकर काशी आदि तीर्थों में पत्थर या सीमेंट आदि की पेटी मिलती हैं। उसमें रखकर गहरे सरोवर या नदी में यति का शरीर ॐ स्वाहा इस मंत्र से विसर्जित करे। फिर हाथ में जल लेकर यह मंत्र पढ़े–"**ॐ अग्निनाग्निः समिध्यते, कविर्गृहपतिर्युवा हव्यराद् जुह्वास्यः त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सत् गता सखा सख्या समिद्धसेतुंमर्जयन्त सुकृतु पुरोवान माजिषु स्वेष्व क्षयेषु वाजिनं। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् तेहनाकं महिमानः सचन्तः यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥**" इसके बाद स्नान करें।

स्नान के बाद ऋग्वेद के चारों अनुवाकों का पाठ करने से हजार अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है।

"**ॐ चित्तं स्रुक्। चित्तमाज्यं। वाग्वेदिः। अधीतं बर्हिः। चेतोऽग्निः। विज्ञात मग्निः। वाक्पतिर्होता। मन उपवक्ता। प्राणोहविः। सामाध्वर्युः। वाचस्पते विधेनामन्। विधेमतेनाम। विधेस्त्माकं नाम। वाचस्पतिः। सोमंपिवतु। असमासु नृणंधात् स्वाहा। पृथ्वी होता। द्यौरध्वर्युः। रुद्रोऽग्निः। बृहस्पति रुपवक्ता। वाचस्पते**

वाचो वीर्येण। सम्भृततमेना यक्षासे। यज्ञमानाय वीर्यम्। आसुवस्करस्मै-वाचस्पतिः। सोमंपिवतु। यजनादिन्द्रमिन्द्राय स्वाहा। अग्निर्होता अश्विनावध्वर्युः। त्वष्टाग्निः मित्र उपवक्ता। सोम सोमस्य पुरोगाः। शुक्र शुक्रस्य पुरोगाः। श्रोतास्तु इन्द्रसोमाः। वातातेहव श्रुतः स्वाहा। सूर्यन्ते चक्षु वातं प्राणां द्यां पृष्ठम्। अन्तरिक्षमात्माऽङ्गैर्यज्ञं पृथिवी शरीरैः। वाचस्पतोच्छिद्रया वाचा। अच्छिद्रया जुह्वा। दिववेवावृघं होत्रामे रयस्व स्वाहा। महाहविर्होता सत्यहविरध्वर्युः। अच्युत याजा अग्निः। अच्युतमना उपवक्ता। अनाघृष्यश्चा प्रतिधृष्यश्च यज्ञस्याभिगरौ। अयास्य उद्गाता। वाचस्पते हृद्विधेनामनविधमेते नाम विधेस्त्व मस्माकं नाम। वाचस्पतिः। सोममयात्। मा दैव्यस्तन्तुश्छेदि मनुष्यः ममो दिवे नमः पृथिव्यै स्वाहा।" इति पंचानुवाक् संग्रह॥" ॐ अतो देवा अवन्तुनो तद्विष्णोः परमंपदम् तद्विप्रासो॥"

इन मंत्रों को पढ़कर जन्म से होने वाले पापों से मुक्ति के लिए सहस्र अश्वमेघ फल मैंने प्राप्त किया, ऐसी भावना करते हुए प्रणाम कर अवभृत स्नान बुद्धि से स्नान करके, गन्धादि धारण कर शेष नैवेद्य को लेकर हरि का स्मरण करे। यह यति के शिष्य द्वारा की हुई विधि है। यदि कर्त्ता पुत्र हो "प्रकेतुन" इस अनुवाक् के अनन्तर, बैठकर होता के साथ एक स्वर से "**ॐ अग्निनीग्नन्सामिध्यसे**" इस मंत्र का पाठ करे, फिर कर्म कर्त्ता स्नान तथा आचमन करके सिद्धि को प्राप्त हुए ब्रह्मीभूत नारायण स्वरूप यति की तृप्ति के लिए मैं तर्पण करूंगा। कहकर यज्ञोपवीत को दाहिनी ओर करके देव तीर्थ से, "**ॐ आत्मानं तर्पयामि, ॐ अन्तरात्मानं तर्पयामि, ॐ परमात्मानं तर्पयामि**", इन मंत्रों की चार-चार आवृत्ति करते हुए तर्पण करे। फिर शुक्ल पक्ष में मृत्यु को प्राप्त यति के लिए केशवादि बारह नामों से और कृष्ण पक्ष में ब्रह्मीभूत हुए यति के लिए संकर्षण आदि नामों से तर्पण करे। "**ॐ केशवं तर्पयामि, नारायणं तर्पः, माधवं तर्प०, गोविन्दं तर्प०, विष्णु तर्प०, मधुसूदनं तर्प०, त्रिविक्रमं तर्प०, वामनं तर्प०, श्रीधरं तर्प०, हृषीकेशं तर्प०, पद्मनाभं तर्प०, दामोदरं तर्प०॥ ॐ संकर्षणंतर्पयामि, वासुदेवं तर्प०, प्रद्युम्नं तर्प०, अविरुद्धं तर्प०, पुरुषोत्तमं तर्प०, अधोक्षजं तर्प०, नृसिंहं तर्प०, अच्युतं तर्प०, जनार्दनं तर्प०, जर्नादनं तर्प०, उपेन्द्र**

तर्प०, हरिं तर्प०, कृष्णं तर्प० ॥'' उपर्युक्त तर्पण दुग्ध या जल से करे, सव्य होकर ही करे। फिर तट पर आकर धुले वस्त्र पहन कर आचमन करके ''**सिद्धिं गतस्य ब्रह्मीभूतस्य परमहंसस्य अमुक नाम्नः नारायणरूपिणस्तृप्त्यर्थं नारायण पूजनं करिष्ये।**'' ऐसा संकल्प करके नदी पर या 'देवयजन' स्थान पर चौकोर वेदिका बनाकर मृत्तिका का शिवलिंग बनाकर अलंकृत करे। यदि असमर्थ हो तो नदी जल में ही, शिव रूप का चिन्तन करके पुरुष सूक्त की एक एक ऋचा के अन्त में ॐ नमोनारायणाय इस मंत्र को जोड़कर आवाहन से आरम्भ करके सोलह उपचारों से पूजा करके घी मिश्रित खीर की बलि देकर घृत का दीपक निवेदित करे। उस खीर को नदी के जल में डाल दें। फिर शंख में जल लेकर गन्ध, पुष्प, तुलसीदल फल आदि को जल में डाले-''**ॐ ब्रह्मणे नमः इदमर्घ्यंसमर्पयामि**'', इस प्रकार आठ अर्घ्य देकर घर चला जाए। प्रथम दिन से लेकर दस दिन तक दूध से तर्पण, खीर की बलि, दीप दान अर्घ्य आदि प्रतिदिन करे। फिर ग्यारहवें दिन पार्वण की विधि से पार्वण करे। ग्यारहवें दिन पुत्र स्नान करके नित्य क्रिया से निवृत्त हो। मध्याह्न के समय ब्राह्मणों को बुलाकर नदी या सरोवर के किनारे जाकर तिलों से तर्पण करे। फिर देश काल का स्मरण करके पूर्वाभिमुख होकर अपने गोत्र तथा नाम लेकर ''**मम ब्रह्मीभूतस्य पितुः करिष्यमाण दर्शादि सर्वश्राद्धाद्यधिकारार्थमहमद्य पार्वण श्राद्धं करिष्ये।**'' इस प्रकार संकल्प करके, यज्ञोपवीती होकर पुरुरवार्द्रवनाम वाले विश्वे देव के निमित्त एक या दो ब्राह्मणों को निमन्त्रित करके प्राचीना वीती होकर-''**अस्मात् पितुः गोविन्दशर्मणः कश्यप गोत्रस्य वसु रूपस्य, स्थानेक्षणं क्रियताम्।**'' इसी प्रकार पितामहः प्रपितामह इत्यादि का नाम गोत्रोच्चारणपूर्वक पूर्ववत्''**ब्रह्मीभूत पितामह प्रपितामहादीनां दर्शश्राद्धवत्, पित्रादित्रीनुद्दिश्य**''-पित्रादि तीन पुरुषों के उद्देश्य से पार्वण श्राद्ध को समाप्त करके यथाधिकार बलि वैश्व देव करके यतियों को भिक्षा करावे। उक्त विधि पुत्र द्वारा विहित है।

यदि कर्म कर्त्ता शिष्य हो तो नदी आदि पर जाकर यज्ञोपवीती होकर ''**ॐ आत्मानंतर्पयामि, ॐ अन्तरात्मानं तर्प०, ॐ परमात्मानं तर्प०**'' देवतीर्थ से एक-एक अंजलि देकर घर में आकर प्राणायाम करके देश काल का स्मरण करके-''**अहम्**

ब्रह्मीभूतस्य गुरोः प्रत्यब्दादि श्राद्धाधिकार सिद्ध्यर्थमद्य पार्वणश्राद्धं करिष्ये।'' इस संकल्प के बाद ''**साधुरुरुसंज्ञक विश्वेदेवार्थेक्षणं क्रियताम्।**'' तीन ब्राह्मण, दो या एक ब्राह्मण आमन्त्रित करे। ''**आत्मनः स्थानेक्षणं क्रियताम्, अन्तरात्मनः स्थानेक्षणं क्रियताम परमात्मनः स्थानेक्षणं क्रियताम्**'' एक ब्राह्मण के पक्ष में आत्मनः, अन्तरात्मनः, परमात्मनः, तीनों के निमित्त हमें समय दीजिए। फिर ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठाकर (साधुरुरु नामक विश्वेदेवों का अर्चन करे। ''आत्मनः इदमासनं स्वाहा न मम'' इसको पढ़कर) जौ सहित दो दो कुशा आसन के लिए दक्षिण में दे। इससे आगे ''**अन्तरात्मनः इदमासनस्वाहा न मम–परमात्मन इदमासनं स्वाहा न मम।**'' फिर पूर्वाभिमुख तीन पत्तल रखे। कुश से जल छिड़क कर ''**ॐ शन्नोदेवीरभिष्टये आपोभवन्तु पीतये शंय्योरभिस्त्रवन्तु नः**'' अभिमन्त्रित करे। ''**ॐ यवोऽसिसोम दैवत्योगोसवो देव निर्मितः प्रतन वद्धिः पृक्त स्वाहा। आत्मने इमाल्लोकान् प्राणिहिने स्वाहा न मम**'' इस मन्त्र से पत्तल पर जल छोड़े। फिर दूसरे पत्तल पर उसी प्रकार अन्तरात्मने कहकर तथा तीसरे पर परमात्मने कहकर मौन होकर गन्ध पुष्प आदि डाले। अन्त में स्वाहा कहकर निवेदित करे। ''**ॐ आत्मने इदमर्घ्यै स्वाहा नमम परमात्मन इदमध्यर्यं स्वाहा न मम**'' इन मंत्रों से अर्घ्य देकर फिर गन्धादिदान करे–''**ॐ आत्मन एष गन्धः स्वाहा न मम ॐ अन्तरात्मन एष गन्धः स्वाहा नमम। ॐ परमात्मन एष गन्धः स्वाहा नमम।**'' इसी विधि से इन्हीं मंत्रों से पुष्प धूप दीप नैवेद्य इत्यादि से पूजन करके, फिर ''**ॐ निहन्मि**'' इत्यादि मंत्र से सभी यतियों के आगे मण्डल बनाकर भोजन पात्र पत्तल आदि रखे। भण्डार से थोड़ा अन्न लेकर घी मिलाकर ''**ॐ आत्मने स्वाहा। ॐ अन्तरात्मने स्वाहा। ॐ परमात्मने स्वाहा**'' इन मंत्रों से अग्नि में आहुति देकर कुछ ऋषियों के मत में अग्निकरण नहीं है। फिर अन्न को गायत्री मंत्र या प्रणव से परस कर प्रोक्षण करे। बाद में ''**ॐ पृथ्वीति, ॐ इदं विष्णु र्विचक्रमे, ॐ विष्णो हव्यं, ॐ साधुरुरु, ॐ विश्वेभ्योदेवभ्यः सोपकरणं इदमन्नं स्वाहा न मम। ॐ आत्मने इद मन्नं स्वाहा न मम। ॐ अन्तरात्मने ॐ परमात्मने।**'' इन मंत्रों से तथा ''**ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।**'' ब्रह्मार्पण मंत्र से ''**ॐ एको**

विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः। त्रीन लोकान् व्याप्य भूतात्मा विश्वबुगव्ययः॥ अनेन ब्राह्मणभोजनेन नारायणः प्रीयताम् ॐ तत्सत् अपाममेध्य'' इस मंत्र से तथा बहिराहृत्य, अपहतेति मंत्र से एक रेखा खींचकर मार्जन करते हुए–मार्जयन्तां परमात्मनः, मार्जयन्तामन्तरात्मनः आत्म मार्जन करे। फिर कुशा के मूल से तीन स्थानों में जल लेकर उत्तान हाथ से अंगुली के अग्रभाग से पिंडल दे। **''ॐ आत्मन अयन्ते पिण्डः स्वाहा न मम। ॐ अन्तरात्मन अयन्ते पिण्ड स्वाहा न मम। ॐ परमात्मन०।''** मौन होकर तीन पिंड देकर गन्ध पुष्पादि से पिंडों का पूजन करे। फिर पिंडों के प्रवाह पर्यन्त कर्म करके, कर्म की त्रुटि की पूर्ति के लिए भगवन् नाम कीर्तन करते हुए ब्राह्मणों को पान दक्षिणा देकर प्रार्थना करके विदा करे। फिर विश्वेदेवों का पूजन करके सुहृद् सम्बन्धियों को भोजन दे। यह शिष्य का गुरुओं के प्रति पार्वण श्राद्ध हुआ।

पुत्र द्वारा पार्वण श्राद्ध प्रयोग

पुत्र बारहवें दिन नारायण बलि करे। प्रातः काल कर्म से निवृत्त होकर नदी पर जाकर पहले के समान आत्मन आदि तीन तर्पण करे, घर में आकर ब्रह्मीभूत पिता के दिन से लेकर बारहवें दिन पर्यन्त विष्णु केशवादि नामों से यतियों में, गुरु भावना करते हुए, **''सर्व पापक्षय पूर्वक विष्णुलोकावाप्ति द्वारा श्री नारायण प्रीत्यर्थं नारायण बलिमहं करिष्ये।''** यह संकल्प करके, बारह यतियों या पत्नी सहित बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे। शेष सभी कार्य पूर्ववत् ही होंगे। बारह यतियों में शुक्ल पक्ष में मृतक यति के लिए केशव नारायणादि बारह देवताओं तथा कृष्ण पक्ष वाले की संकर्षणादि पूर्वोक्त बारह देवताओं की भावना करके पूजन, भोजन आदि कराये।

मासिक, वार्षिक आराधना प्रयोग

इसमें वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास की क्षयाह तिथि को, वार्षिक आराधना पर्यन्त, फिर वर्ष के बाद प्रत्येक वर्ष आराधना प्रयोग करना चाहिए। विधि निम्न प्रकार है–केशवादि नाम वाले बारह यतियों के अतिरिक्त गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु और परात्पर गुरु यह चार मिलाकर सोलह यतियों को आमन्त्रित करें। प्रातः होम आदि नित्यकर्म से निवृत्त

होकर सोलह यति या ब्राह्मणों से प्रार्थना करे। ब्रह्मीभूत गुरुदेव, गुरुजी की आराधना के निमित्त गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु परात्पर गुरु के लिए आप समय दीजिए। संकल्प पूर्ववत् करके गन्धाक्षत तुलसी कर्पूर मिश्रित जल से उनका पाद प्रक्षालन करके वरण करे। फिर आचमन करे। विभिन्न पात्रों में पादोदक ले तथा गन्ध पुष्पादि से पूजन करके प्रार्थना करे।

''आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं निज बोध युक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमदं गुरुन् नित्यमहंनमामि।''

इस मंत्र से नमस्कार करे। फिर देवता के समीप गन्धादि लेकर कुशासनों पर बैठे हुए यतियों का पुरुष सूक्त से षोडशोपचार पूजन करते हुए, प्रति मंत्र के अन्त में '**ॐ नमोनारायणाय**' लगायें। फिर सभी पात्रों में खीर शाक आदि पदार्थों सहित गायत्री मंत्र से भोजन परसे। ''**गुरवे इदमन्नं परिविष्टं, परिवेष्यमाणं च आतृप्तेः स्वाहा हव्यं इदं न मम।**''इसी प्रकार परम गुरु, परमेष्ठी गुरु, परात्पर गुरु के लिए भी अन्न परसे अथवा आरम्भ में पहला पात्र विश्वरूपधाराचार्य के लिए फिर तीन गुरुओं (गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु) के लिए फिर केशवादि नामों से बारह लोगों के लिए, '**ॐ केशवाय इदमन्न परिवेष्यमाणं च आतृप्तेः स्वाहा न मम**' इसी प्रकार अन्य नाम लेते हुए कहे। '**ॐ तत्सत् ब्रह्मणे नमः**' इत्यादि पढ़े। भिक्षा के अनन्तर दण्ड कमण्डलु वस्त्रादि से पूजन करें। फिर तीर्थराज का पूजन करे। चतुर्भुज मण्डल बनाकर गोबर से लीप कर उनमें यथा स्थान रंग भरे। मण्डल के ऊपर धान्यराशि पर पादोदक का कलश स्थापित करके सभी तीर्थों का आवाहन करके गन्ध आदि पदार्थों से पुरुष सूक्त से पूजन करे। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में '**तीर्थ राजाय नमः**' कहे। बाद में पात्र को सिर पर रखकर–

''ॐ लोकः सरस्वत्या यन्तयेषवैदेवयानः पन्थास्तमे वानवारोहन्त्या कोशन्तोयान्त्य वर्त्तिमेवा न्यस्मन् प्रतिषज्य प्रतिष्ठां गच्छति। यदा दश शतं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्ये वेन्द्रि प्रति तिष्ठन्ति। यदाशतं सहस्त्रं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं सहसम्मितो वा। असौलोके भूमेवलोकमभिजयन्त।

यदेषां प्रमीय यदावा जीयन्ति नथैकमुत्थानं तद्धितार्थ॥ भीषाअस्माद् वातः पवते।'' इन अनुवाकों का जप करके प्रसन्नता से हरि कीर्तन करते हुए नृत्य गान करे। फिर पात्र को मण्डल में लाकर स्थापित करेक गन्धाक्षतादि से पूजन करे। यति या ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके **आनन्दमानन्दानि श्लोकों से** स्तुति करके ब्राह्मणों तथा तीर्थ राज को प्रणाम करे। गुरुओं के लिए ब्राह्मण के हाथ से पादोदक लेकर मस्तक पर धारण करे, **''अविद्या मूल शमनं, सर्वपाप प्रणाशनम्। गुरोः पादोदकं पीत्वा संसार मल नाशनम्''** यह मंत्र ब्रह्मचारी, यति वानप्रस्थों तथा निष्काम गृहस्थों के लिए है। यदि पुत्रादि की कामना वाला गृहस्थ हो तो इस मंत्र से पादोदक ले, **''शोषणं पाप संघस्य, दीपनं ज्ञान चेतसः। गुरोः पादोदकं चित्रं पुत्र पौत्रविवर्धनम्।''** फिर से ब्राह्मणों यतियों को प्रणाम करके सम्मानपूर्वक उनके पीछे जाकर विदा करे। कर्म को ईश्वरार्पण करके परिवार सहित भोजन करे। अमावास्या, महालय, प्राप्त होने पर तथा तीर्थादि श्राद्ध करे। मासिक तथा वार्षिक आराधना की विधि इसी प्रकार है। यदि इतना करने में असमर्थ हो तो यथा शक्ति यतियों को आमन्त्रित करके गन्धादि पूजन करके भिक्षा करा दे। यह आराधना प्रकरण स्कन्द पुराण नागर खण्ड से लिया गया है।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का छियालिसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का सैंतालिसवां अध्याय प्रारम्भ॥

यति का अन्तिम संस्कार तथा आराधना सम्बन्धी निर्णय

यति के अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में कोई विशेष विवाद नहीं है, परन्तु उनके द्वादशाह तथा षोडशी कर्म को लेकर अनेकों प्रकार का मतभेद पाया जाता है। यद्यपि ऊपर लिखा गया अन्तिम संस्कार तथा आराधना प्रयोग, सूत संहिता, स्मृति सार, विश्वेश्वर पद्धति, वौधायन सूत्र, यति धर्म प्रकाश, यकि धर्म समुच्चय, यति धर्म संग्रह, आत्म पुराण, लिंग पुराण, शिव पुराण आदि अनेकों ग्रन्थों में पाया जाता है। सभी ग्रन्थों में इसी प्रकार से पार्वण श्राद्ध, मासिक, वार्षिक आराधना प्रयोग, माहेश्वरी बलि प्रयोग आदि आई हैं, परन्तु इन ग्रन्थों से अनभिज्ञ यति एकादशाह तथा द्वादशाह कर्मों का विरोध करते हैं। परन्तु पूज्य पाद धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज, प्रभास

भिक्षुक स्वामी सोमेश्वराश्रमजी महाराज, जगद्‌गुरु ब्रह्मीभूत स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज तथी पुरी पीठाधीश्वर जगद्‌गुरु निरंजन देवतीर्थ जी महाराज इन प्रयोगों को अपने सामने करवाते रहे। 'संन्यास धर्म दर्पण' में इसका निर्णय किया गया है। उसी के अनुसार निर्णय लिखा जा रहा है।

यद्यपि दण्ड ग्रहण करने मात्र से तत्त्व बोध नहीं होता, तो भी प्रेतत्व की मुक्ति के लिए षोडश श्राद्ध की विधि है। यति को पिण्डोदक आदि उसकी इच्छा की निवृत्ति के लिए है तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध गृहस्थादिकों के लिए पितृत्व प्राप्ति के लिए विधि है। तीन अवस्थाओं से हीन यतियों का बारहवें दिन श्राद्ध के अधिकार प्राप्ति के लिए पुत्र पार्वण श्राद्ध करे। अर्थात् जो संन्यास लेकर भी पिछले नाम गोत्र, परिवार के मोह ममता में पड़े हुए हैं। संन्यास के बाद भी जिनका मन त्यागे हुए स्त्री, पुरुष, चल-अचल सम्पत्ति से नहीं हटा; तो निश्चय ही मरने के बाद भी उनका चिदाभास घर परिवार में लगा रहेगा। ऐसे नाम, गोत्र, रूप, अवस्था से घिरे हुए यतियों का पूर्व आश्रम के नाम गोत्र का उल्लेख करते हुए पार्वण श्राद्ध, द्वादशाह आदि करना चाहिए। वशिष्ठ जी ने भी कहा है कि उनका ग्यारहवें दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। **सुमन्तु**-यतियों का मासिक श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण न करे, किन्तु औरस या क्षेतज पुत्र या भाई पार्वण श्राद्ध करे अथवा शिष्य निकटवर्ती या राजा करे। स्कन्द पुराण में भी कहा है। ब्रह्म विद्या परायण, सर्वसंग से रहित, एकादण्डी या त्रिदण्डी का ग्यारहवें या बारहवें दिन, औरस पुत्र नारायण बलि करके पार्वण श्राद्ध करे। प्रत्येक वर्ष में तीर्थ आदिकों में श्राद्ध करे। **यम**-ग्यारहवें दिन नारायण बलि कही है। बारह यतियों को रुद्राक्ष की माला, गीता, रामायण, आसन, पादुका, अचला लंगोटी आदि देवे। शिव या विष्णु की आराधना करे। शिष्य आदि आराधना ही करें।

शौनक-चाण्डाल के हाथ से, सर्प के डसने से, दांत वाले पशु के काटने से, फांसी लगाकर, विष खाकर, देशान्तर में मरे हुओं का अथवा जिनका पता नहीं चला, ऐसे यतियों एवं योगियों मुमुक्षुओं का उनके पुण्य पाप की निवृत्ति के लिए बारहवें दिन नारायण बलि करे। श्रावण की द्वादशी, वर्ष का अन्त या पंचमी को करे। यहां द्वादशी तथा पंचमी शुक्ल पक्ष की ली गई है। श्रावण शुक्ल पक्ष पूर्णमासी भी ग्राह्य है। यदि

शिष्य या पुत्र आदि न हो, तो कन्या, स्त्री आदि करे। ब्राह्मण के द्वारा वैदिक मंत्रों का उच्चारण करावे। यदि स्वयं करना चाहे, तो पौराणिक मंत्रों से करे। यदि पुत्र समीप हो तो क्षौर करावे फिर पितृमेध की विधि से कर्म करे। यदि दूर हो, तो स्नान करके क्षौर कराके शुद्ध हो जाता है। दसवें दिन नारायण बलि करे।

॥ इति तृतीय परिच्छेद में सैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद में अड़तालिसवां अध्याय प्रारम्भ॥

ब्रह्मविद्या गुरु परम्परा

१. शिव जी, २. विष्णु जी, ३. ब्रह्मा, ४. वशिष्ठ, ५. शक्तिदेव, ६. पराशर, ७. व्यास, ८. शुकदेव जी, ९. गौडपादाचार्य, १० गोविन्द भगवत् पादाचार्य, ११. श्री शंकराचार्य

सत्ययुग में–श्री शिव जी, विष्णु, ब्रह्मा। **त्रेता में**–वशिष्ठ, शक्ति, पराशर। **द्वापर में**–व्यास तथा शुकदेव जी। **कलियुग में**–श्री गौडपादाचार्य, श्री गोविन्द भगवत् पादाचार्य तथा श्री शंकराचार्य उनके चार शिष्य पद्म पादाचार्य विश्वरूपाचार्य, त्रोटकाचार्य, हस्तामलकाचार्य (पृथ्वी धराचार्य)।

ध्यान का स्वरूप एवं प्रशंसा

ध्यान का लक्षण–जीवात्मना और परमात्मा की एकता की प्राप्ति कराने वाली ज्ञान की निरन्तर प्रवाहित होने वाली वृत्ति ध्यान है। इसका आदरपूर्वक निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास करना चाहिए। अतः कहा है, **"अखण्ड सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्मात्मैक्याकार अन्तःकरण की दण्डायमान वृत्ति ध्यान है।"** वह ध्यान दो प्रकार का है–

सगुण तथा निर्गुण। रूप तथा वर्ण भेद से सगुण तथा इन सबसे रहित केवल निर्गुण है। साधक का मन जहां-जहां जाय, वहीं-वहीं स्नेह से द्वेष या भय से स्वरूप चिन्तन करे। मैं ब्रह्म हूं, एक क्षण भी जो ऐसा चिन्तन करता है, जैसे सूर्य अंधकार को दूर करता है, वैसे ही यह ध्यान पापों को नष्ट करता है। मैं ही परब्रह्म वासुदेव अविनाशी हूं ऐसे निश्चय वाला मुक्त है, मैं आदि मध्य अन्त से रहित हूं, कभी भी बन्धन को नहीं प्राप्त

हुआ। स्वभाव से निर्मल हूं, ऐसी निर्मल चित्तवृत्ति जीव को जन्म मरण से रहित करती है। चिरकाल के योगाभ्यास से मन स्थिर होता है। "**न दानेन, व्रतैर्वापि, न तपोभिर्नवा मखैः। न च पद्मासनाद्योगो, न च नासाग्रवीक्षणात्॥ नशौचेन न मौनेन, न मन्त्राराधनैरपि। अभियोगात् सदभ्यासात् तत्रैव च विनिश्चयात्॥ पुनः पुनरनिर्वेदात् सिद्ध्यद्योगो न चान्यथा। आत्म क्रीडस्य सततं सदात्म मिथुनस्य च॥ आत्मनैव सुतृप्तस्य योगसिद्धिर्न दूरतः। आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥ इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा। एतज्ज्ञानं परं प्रोक्तं योगश्चैव परस्स्मृतः॥ सदानारायणध्यानं सर्वशास्त्र प्रयोजनम्॥**" दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, पद्मादिआसन नासिकाग्र भाग में देखना, पवित्रता, मौन, मन्त्र की आराधना से योग सिद्ध नहीं हो सकता। पूर्ण निश्चय से योग का निरन्तर अभ्यास करने से लोक परलोक के भोगों से विरक्त होने से, योग सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं। जो निरन्तर आत्मा में ही क्रीड़ा करताहै, आत्मा में ही रमण करता है, आत्मा में पूर्ण रूप से तृप्त है, उसके लिए योग सिद्धि दूर नहीं है। सम्पूर्ण शास्त्रों का मन्थन करके बार-बार विचार करके, सदा नारायण का ध्यान करना चाहिए, यही सुनिश्चित हुआ है। यही सबसे बड़ा ज्ञान तथा योग है। सम्पूर्ण शास्त्रों का मुख्य प्रयोजन सदैव नारायण का ध्यान करने में है।

ध्यान योग उसी को सिद्ध होता है। जो परिमित मात्रा में भोजन, भ्रमण, कर्म करता है तथा समय पर सोता जागता है। परमात्मा में मन को समाहित करके यति ध्यान करे। कुसंग छोड़कर, इन्द्रियों को जीतकर, ज्ञानेन्द्रियों के द्वारों को षड्मुखी मुद्रा से रोककर मन को ध्यान में लगायें। ध्यान एकान्त स्थान में, गुफा, वनों में करना चाहिए। ध्यान से पाप नष्ट होते हैं। अन्तःकरण शुद्ध होता है। मुक्ति प्राप्त होती है।

सर्व पाप प्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम्।
द्विजः तपस्वी भवति, पंक्ति पावन पावनः॥
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पाप कर्मणाम्।
श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेनैव न लिप्यते॥
कृष्णानुस्मरणादेव प्रायश्चित्तानि भारत।
शृणवन्नपि, स्तुवन्नित्यं, स्मरन्नपि युधिष्ठिर॥

हे भारत युधिष्ठिर! सम्पूर्ण पापों से युक्त होने पर भी, एक निमेष मात्र अच्युत का ध्यान करने वाला तपस्वी ब्राह्मण, पंक्ति को पावन करने वाले को भी पवित्र करता है। ध्यान के समान पाप कर्मों को नष्ट करने वाला दूसरा साधन नहीं है। चाण्डाल के साथ खाने वाला भी ध्यान करने से लिप्त नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं है कि ध्यान का अभ्यासी अन्त्यजों के साथ भोजन करने लग जाए। श्री कृष्ण भगवान् का स्मरण करने से सभी पापों का प्रायश्चित हो जाता है। भगवान् का नाम सुनते हुए नित्य स्मरण करते हुए तथा स्तुति करते हुए मनुष्यों सभी पापों से छूट जाता है। हजारों ब्रह्म हत्याएं अगम्यागमन के पाप ध्यान योग से तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का अड़तालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का उनचासवां अध्याय प्रारम्भ॥

मुक्ति संन्यास या ज्ञान से

मुक्ति न केवल संन्यास से है, न ज्ञान से। यदि मुक्ति केवल ज्ञान से होती, तो याज्ञवल्क्य, श्वेत केतु, श्वेताश्वतर, औवटायन, दत्तात्रेय, शुकदेव आदि ज्ञानी संन्यास न लेते। इनका संन्यास श्रुति पुराणों में पाया जाता है। इसलिए केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं, केवल संन्यास से भी मुक्ति नहीं, ज्ञान वैराग्य रहित केवल दण्ड धारण मात्र संन्यास से मुक्ति नहीं। **अत्रि**–विप्र तब तक जन्म मरण के चक्र से छूट नहीं सकता, जब तक वैष्णव लिंग धारण न करे। अतः संन्यास ज्ञान प्राप्ति का साधन है। योगाभ्यास में लगे हुए शान्त, अन्तःकरण के, दोषों से रहित, ब्रह्म वेत्तायति ही मुक्त होता है। ब्रह्मविद्या से युक्त संन्यास ही मुक्ति का साधन है। श्रुति ने भी कहा है, शुद्ध अन्तःकरण वाले यति, वेद विज्ञान से सुनिश्चित तात्पर्य वाले यति ही इस लोक या ब्रह्मलोक में, प्रारब्ध भोग के अनन्तर मुक्त होते हैं। अतः वेदान्त के श्रवण आदि में यति का अधिकार सिद्ध हुआ, अन्य का नहीं। इसके सम्बन्ध में पीछे गीता के तेरहवें अध्याय में छठे श्लोक से ग्यारहवें श्लोक तक की शंकरानन्दी व्याख्या में बताया जा चुका है।

संन्यास की सार्थकता

धर्मार्थ काम तीन पुरुषार्थों के त्याग सहित एकमात्र मोक्ष के लिए ही संन्यास लिया जाता है। मोक्ष मनोनाश, वासनाक्षय तथा तत्त्वज्ञान के बिना नहीं होता। मनोनाश तथा वासनाक्षय हुए बिना तत्त्व ज्ञान नहीं हो सकता। मन इन्द्रियों का निग्रह किये बिना तथा अन्तःकरण को अन्तर्मुख किये बिना नहीं हो सकता। जब तक इस लोक तथा ब्रह्मलोक आदि के भोगों में रमणीयता बुद्धि है, तब तक वैराग्य नहीं हो सकता। इनमें मिथ्या बुद्धि हुए बिना इनसे मन हट नहीं सकता। अतः संन्यास का मुख्य उद्देश्य ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त करना है। जब तक ब्रह्म के सम्बन्ध में तथा वेदादि शास्त्रों में अर्थात् प्रमाण तथा प्रमेय में असम्भावना है, तब तक श्रवण आदि में मन नहीं लगेगा। जगत् के मिथ्यापन तथा ब्रह्म की सत्यता की अनुभूति हुए बिना विपरीत भावना दूर नहीं हो सकती। अतः यति को संन्यास लेकर महावाक्यों तथा गीता ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषदों का भाष्य सहित श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिए। अतः नैष्कर्म्य सिद्धि में वार्तिक कार सुरेश्वराचार्य जी ने तथा जीवन मुक्ति विवेक में विद्यारण्य स्वामी जी ने कहा है–

"त्वं पदार्थ विवेकाय संन्यासः सर्व कर्मणाम्।
श्रुत्वा विधीयते तस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत्॥
शिखासूत्र परित्यागी वेदान्त श्रवणं बिना।
विद्यमानेऽपिसंन्यासे पतत्येव न संशयः॥
प्रमादिनो वहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः।
संन्यासिनोऽपिदृश्यन्ते दैव सन्दूषिताशयाः॥"

श्रुति ने जीवात्मा परमात्मा की एकता का बोध कराने के लिए सम्पूर्ण कर्मों के त्याग का विधान किया है, किन्तु जो संन्यास लेकर विवेक नहीं करता, वह कर्म का त्यागी पतित है। वेदान्त श्रवण बिना शिखासूत्र का परित्यागी संन्यासी संन्यास के चिन्ह दण्ड कमण्डलु होने पर भी निःसन्देह पतित ही है। कलि काल में श्रवण, मनन की अवहेलना करने वाले प्रमादी, बहिर्मुख, चुगुल खोर, झगड़ालू, प्रारब्ध से दूषित अन्तःकरण वाले संन्यासी देखे जाते हैं। अतः श्रुति ने कहा है **"स्वाध्याय धर्मपठितं**

निजवेदशाखावेदान्तभूमि-गतमादर-पालितं च। संन्यासिनां परदृशा गुरुणोपदिष्टं साक्षान् महा वचनमेव विमुक्तिहेतुः।'' अपने धर्म का पालन करते हुए, निज वेद की शाखा के अध्ययन के अनन्तर वेदान्त भूमि में आकर आदरपूर्वक पालन करने वाले अर्थात् संन्यास लेकर धर्म का पालन करने वाले संन्यासियों को गुरुओं के द्वारा साक्षात् महावाक्यों का उपदेश ही मुक्ति का कारण है। अतः संन्यास लेकर जैसे भगवान् की आज्ञा प्राप्त करके अर्जुन ने कौरवों का विनाश किया था, वैसे ही संन्यासी को भी अज्ञान तथा उसके कुल का विनाश करना चाहिए।

श्रवण मनन आदिक कब तक करे–जब तक 'मैं ब्रह्म हूं' इसका दृढ़ अपरोक्ष बोध न हो, तब तक श्रवणादि करे। बोध हो जाने पर रागादि नहीं रहते। अज्ञानी का लक्षण है। जिस प्रकार जिस पेड़ के खोहड़ में अग्नि है, वहां उस पेड़ के खोहड़ में कोई लता नहीं रह सकती। उसी प्रकार जिस यति में राग रूपी अग्नि है। उसमें जीवन्मुक्ति रूपी लता अंकुरित नहीं हो सकती। द्वैतभाव दुखदायी (जन्म मरण रूप) है। अद्वैत भाव परमानन्द स्वरूप है। जैसे अलग से रखा हुआ भोजन भार रूप है और खाया हुआ सुख रूप है।

जीवन्मुक्त का लक्षण–

''तेनाधीतं श्रुतं पृष्टं तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनाशां पृष्ठतः कृत्वा वैराग्यमबलम्वितम्॥
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृत कृतस्य योगिनः।
न चास्ति किंचित् कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्॥''

उसी ने सब कुछ पढ़ लिया, सुन लिया, पूछ लिया तथा अनुष्ठान कर लिया है। जिसने आशा का त्याग कर वैराग्य ले लिया है। ज्ञानामृत से तृप्त हुए कृतार्थ योगी को कुछ भी करना शेष नहीं है। यदि कर्त्तव्य शेष रह जाता है तो वह तत्त्व वेत्ता नहीं है।

''यस्तिष्ठति स तु ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवित् स्वयम्।
नैष्कर्मेण न तस्यार्थों न तस्यार्थोस्ति कर्मभिः॥

न संध्या न जपाभ्यासो यस्य निर्वासनं मनः।
न सुखानि न दुखानि न मित्राणि न शत्रवः॥
न जीवितं न मरणं बन्धायज्ञस्य चेतसः।
अस्तंगतं स्थितं व्योम सजीवन्मुक्त उच्यते॥
नोदेति नास्तमायाति सुख-दुखे मुखप्रभा।
यथा प्राप्त स्थितेर्यस्य सजीवन्मुक्त उच्यते॥
योजागर्ति सुषुप्तोऽपि यस्य जागृन्न विद्यते।
यस्यनिर्वासनो बोधः सजीवन्मुक्त उच्यते॥''

हे ब्रह्मन्! जो ब्रह्म वेत्ता ब्राह्मण अपने स्वरूप में स्थित है। उनके लिए ज्ञान योग तथा कर्मों से कोई प्रयोजन नहीं है। जिसका मन वासना से रहित हो चुका है। उनके लिए सन्ध्या जप आदि की आवश्यकता नहीं है। सुख, दुख, मित्र, शत्रु, जन्म, मरण के बन्धन को वह ज्ञानी नहीं प्राप्त होता है। जैसे सूर्य के उदय अस्त होने पर आकाश उदय अस्त को नहीं प्राप्त होता है। वह ज्यों का त्यों रहता है। वैसे ही जिसके मुख की कान्ति न खिलती है, न मलिन होती है। प्राप्त के समान जिसकी स्थिति बनी रहती है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जो सोते हुए जागता है, व्यावहारातीत है, किन्तु आत्मा स्वरूप में सदैव जागृत है। लौकिक देह इन्द्रियादिकों की व्यावहारिक अवस्था जिसमें नहीं है, जो वासना रहित होकर बोध स्वरूप हो गया है। उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। यह संसार में कैसे लिप्त नहीं होते, दृष्टान्त से बताया जा रहा है–जैसे दूध से निकाला घी दूध में मिलाने से एकाकार नहीं होता, ऊपर ही ऊपर तैरता रहता है। वैसे ही जो यति संसार में जन्म लेकर संसार की अहन्ता ममता से अलग रहता है, वह जीवन मुक्त है। इति जीवन्मुक्त लक्षणम्।

महावाक्यार्थ विचार

साधन चतुष्टय सम्पन्न शिष्य गुरुओं से विधिवत् सेवा करने के अनन्तर संन्यास लेकर जब अपने स्वरूप के सम्बन्ध में गुरुजनों से पूछता है तब गुरुजी 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश करते हैं। इसका वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ समझाते हुए कहते हैं। हे

शिष्य ! इसमें तत्त्वम् असि तीन पद हैं। तत् शब्द के वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ दो अर्थ हैं। तत् शब्द का वाच्यार्थ माया और उसके गुणों से मिला हुआ इसका वाच्यार्थ है। वही ब्रह्म माया से रहित सत्य, ज्ञान, आनन्द, अनन्त, अव्यय ब्रह्म लक्ष्यार्थ है। तत् ईश्वर का बोधक पद है। त्वं जीव का बोधक पद है। इसके भी वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दो अर्थ है। त्वं का वाच्यार्थ स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन शरीरों से ढका हुआ जगत् जीव है तथा तीनों शरीरों से रहित शुद्ध चैतन्य इसका लक्ष्यार्थ है। तत्त्वं असि में असि पद से वाच्यार्थ को छोड़कर लक्ष्यार्थ में एकता होती है। यदि कहो जीव तो जन्म मरण वाला संसारी है। ईश्वर जन्म मरण से रहित असंसारी है। दोनों के धर्मों में विरोध होने से एकता कैसे। गुरु जी उत्तर देते हैं–तीन प्रकारकी लक्षण होती है, जहती जिसमें सम्पूर्ण वाच्यार्थ का त्याग करके निकटवर्ती अर्थ ग्रहण किया जाता है। जैसे 'गंगायां घोष' इसमें गंगायां का अर्थ होता है।गंगा में या गंगा के प्रवाह के ऊपर घोषः अहीरों की बस्ती। गंगा के अन्दर अहीरों की बस्ती होना सम्भव नहीं। अतः यहां गंगा शब्द से गंगा के समीपवर्त्ती भूमि का यह अर्थ लिया जाएगा। **अजहत् लक्षणा**–इसमें वक्ता के वाच्यार्थ के सहित अन्य अर्थ भी लिया जाता है। जैसे "काकेभ्यो दधिरक्ष्यताम्" इसमें कौओं से दही की रक्षा करने को कहा जाता है, किन्तु कौओं के अतिरिक्त कुत्ते बिल्ली आदि से भी रक्षा करना लक्ष्यार्थ है।

जहदजहल्लक्षणा (भाग त्याग लक्षणा) "सोऽयम् देवदत्तः" यह वही देवदत्त है, जिसे बीस वर्ष पहले प्रयाग राज में देखा था। उसी को आज हरिद्वार में देखने पर पहचान कर कहते हैं कि यह वही देवदत्त है। यहा पर सः का अर्थ है। आज से बीस वर्ष पहले का काल तथा प्रयाग देश। अयं का अर्थ है वर्तमान काल तथा हरिद्वार देश। इन दोनों देशों तथा कालों का त्याग कर जैसे देवदत्त के शरीर में एकता है। वैसे ही यदि जीव और ईश्वर के वाच्यार्थ का तथा चैतन्यता का दोनों का त्याग करते हैं तो कुछ नहीं रहता। अतः जहत् लक्षणा दोनों की एकता करने में समर्थ नहीं। यदि अजहल्लक्षणा से एकता करते हैं, तो दोनों के जड़ तथा चेतन अंश का ग्रहण होता है। इनके होते हुए भी एकता नहीं हो सकती। अतः भाग त्याग लक्षणा से जीव की अल्पज्ञता, परिच्छिन्नता, अपरोक्षत्व तथा तीनों शरीरों का त्याग कर देने से एवं ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता,

स्वतन्त्रता आदि धर्मों का त्याग कर देने पर, ईश्वर के चैतन्य, जीव के चैतन्य में एकता सिद्ध होती है। ब्रह्म अखण्ड, तीनों प्रकार के भेदों से रहित है। अखण्ड शब्द से विजातीय भेद से रहित बताया, निष्प्रपंच सजातीय भेद से रहित, एक रस से, स्वगत भेद से रहित है। अतः ब्रह्म नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वभाव, निर्गुण, सर्वगत, अवस्थात्रय निर्मुक्त, असंग, सच्चिदानन्द, अनन्त, अद्वैत, परब्रह्म मैं ही हूं, यह अभेद चिन्तन ही ज्ञान समाधि है। इस महावाक्य के लक्ष्यार्थ का सदैव चिन्तन करने वाला यति शोक मोह रूपी सागर से तर जाता है। इति महा वाक्यार्थ विचार।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का उनचासवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का पचासवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अथ ब्रह्मानुचिन्तनम्

ॐ अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम्।
इतिस्यान्निश्चितो मुक्तो बद्धएवान्यथाभवेत्॥१॥
अहमेव परं ब्रह्म न चाहं ब्रह्मणः पृथक्।
इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि स्थितः॥२॥
अहमेव परं ब्रह्म निश्चितं चित्तचिन्तितम्।
चिद्रूपत्वादसंगत्वादबाह्यत्वात् प्रयत्नतः॥३॥
सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं चैतन्यं च निरन्तरम्।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत्॥४॥
अहं ब्रह्मास्मि यो वेदस सर्वं भवतित्विदम्।
न भूत्वा चेशते देव आत्मा ह्येषांभवेद्धि सः॥५॥
अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्तेयो हि देवताम्।
न सवेद नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः॥६॥
अहमात्मा न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं नशोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान्॥७॥

आत्मानं सततं ब्रह्म सम्भाव्य विहरन्ति ये।
न तेषां दुष्कृतं किन्चिदुष्कृतोत्था न चापदः ॥८॥
आत्मानं सततं ब्रह्म सम्भाव्य विहरेत् सुखम्।
क्षणं ब्रह्मास्मीति य कुर्यादात्म चिन्तनम् ॥९॥
तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्योदये यथा।
अज्ञानाद्ब्रह्मणो जातमाकाशो बुदबुदोपमम् ॥१०॥
आकाशाद्वायुरुत्पन्नो वायोस्तेजस्ततः पयः।
अद्भ्यश्च पृथिवीजाता ततोब्रीहियवादिकम् ॥११॥
पृथिव्यप्सुपयो वन्हिर्वायौ नभस्यसौ।
नभोप्यव्याकृतेतच्च शुद्धे शुद्धोस्म्यहं हरिः ॥१२॥
अहं विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः।
कर्तृ भोक्त्रादिकं सर्वतद् विद्योत्थमेव च ॥१३॥
अच्युतोऽहमनंतोऽहंगोविन्दोऽहमहंहरिः।
आनन्दोऽहमशेषोऽहमजोहममृतोऽस्म्यहम् ॥१४॥
नित्योऽहंनिर्विकल्पोऽहंनिराकरोऽहमव्ययः।
सच्चिदानन्द रूपोऽहंपंचकोशातिगोस्म्यहम् ॥१५॥
अकर्त्ताहमभोक्ताहमसंगः परमेश्वरः।
सदा मत्संनिधानेनचिष्ठते सर्वमिन्द्रियम् ॥१६॥
आदि मध्यान्त मुक्तोऽहं न वद्धोऽहं कदाचन।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥१७॥
ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत्।
अशन्कुवन्नुभावयितुं वाक्यमेतत् सदाभ्यसेत् ॥१८॥
यदभ्यासेन तद्भावो भवेद् भ्रमर कीटवत्।
अत्रापहाय सन्देहमभ्यसेत् कृत निश्चयः ॥१९॥

ध्यान योगेन मासैकात् ब्रह्म हत्यां व्यपोहति।
सम्वत्सरं सदाभ्यासात् सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात्॥२०॥
यावज्जीवं सदाभ्यासाज्जीवन्मुक्तो भवेद्यतिः।
नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च॥२१॥
नमनोऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः।
नाहं पृथ्वी न सलिलं न च वन्हिस्तथानिलः॥२२॥
न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथारसः।
नाहं गन्धो न रूपं च न मायाहं न संसृतिः॥२३॥
सदासाक्षी स्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलः।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्व प्रतिष्ठितम्॥२४॥
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्मास्म्यहमव्ययम्।
सर्वज्ञोऽहमनन्तोऽहंसर्वेशः सर्वशक्तिमान्॥२५॥
आनन्दः सत्यबोधोऽहमिति ब्रह्मानुचिन्तनम्॥
अयं प्रपंचो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमव्ययम्॥२६॥
अत्र प्रमाणं वेदान्तो गुरवोऽनुभवस्तथा।
ब्रह्मैवाहं न संसारी न चाहं ब्रह्मणः पृथक्॥२७॥
नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहं सनातनः।
एकमेवाद्वितीयं वै नेह नानास्ति किंचन॥२८॥
हृदय कमल मध्ये दीपवद्वेद सारम्।
प्रणवमयमतर्क्यं योगिभिर्ध्यान गम्यम्।
हरि गुरु शिव योगं सर्वभूतस्थमेकं।
सकृदपि मनसायश्चिन्तयेदात्ममुक्तः॥२९॥

इति ब्रह्मानुचिन्तनंस्तोत्र सम्पूर्णम्

यतियों को तीनों कालों की सन्ध्या में प्रणव कल्प के षोडश नाम, वज्र पंजर स्तोत्रम् प्रणव मालिका मंत्र स्तोत्रम् के अन्त में इसका अवश्य पाठ करना चाहिए। आजकल संन्यासी हनुमान चालीसा तथा राम चरितमानस का पाठ अधिक करते हैं, परन्तु आज से साठ सत्तर साल पुराने यति अत्यन्त निरक्षर होने पर भी माण्डूक्योपनिषद् के बारह मन्त्र, सप्तश्लोकी गीता, प्रणव कल्प के तीनों स्तोत्र तथा ब्रह्मानु चिन्तनम् का कण्ठ पाठ करते थे। इन्हीं का पाठ करने से संन्यास की सार्थकता है। नीचे इसका संक्षिप्त व्याख्या अर्थ लिख रहे हैं।

अर्थ–मैं ही अविनाशी सब प्राणियों में वास करने वाला, परम प्रकाश परब्रह्म हूं। इस प्रकार का निश्चय मुक्ति देता है। इसके विपरीत जन्म मरण का बन्धन देता है। जो ब्राह्मण ब्रह्म में स्थित होकर मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूं। इस प्रकार की उपासना करता है। वह मुक्त होता है। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूं। ज्ञान स्वरूप, संग से रहित, बाहर भीतर एक हूं। प्रयत्लपूर्वक जो इस प्रकार चिन्तन करता है। वही मुक्त होता है। सभी उपाधियों से रहित निरन्तर मैं चैतन्य स्वरूप वही ब्रह्म हूं। ऐसा जानकर वर्णाश्रमी कैसे हो सकता है। यह सारा जगत् एवं मैं ब्रह्म हूं, जो इस प्रकार जानता है। वह आत्मा स्वरूप हो जाता है। जो मैं हूं और देवता और है, इस भेद बुद्धि से उपासना करता है। वह देवताओं के पशु के समान है। मैं आत्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य मुक्त स्वभाव वाला हूं। ऐसा जो जानता है, वह शोक को नहीं प्राप्त होता है। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य स्वभाव वाला हूं। ऐसे ब्रह्म का नित्य अनुसन्धान करके स्वरूप में ही विहार करने वाले को पाप तथा पापों से प्राप्त होने वाली विपत्ति नहीं प्राप्त होती अर्थात् वे जन्म मरण के चक्र से छूट जाते हैं। आत्मा का ब्रह्मरूप से सदैव चिन्तन करने वाले तथा एक क्षण भी मैं ब्रह्म हूं, ऐसा चिन्तन करने वाला पापों को वैसे ही दूर कर देता है, जैसे सूर्य उदय होते ही अंधकार नष्ट हो जाता है ॥१ से १०॥

जगत् के प्रत्यक्ष दीखते हुए तथा अनेकत्व देखते हुए आप एकमात्र ब्रह्म क्यों कहते हो? इस पर उत्तर देते हैं कि जीव के अज्ञान से अनेकत्व प्रतीत होता है। जल से उत्पन्न हुए बुदबुदे के समान ब्रह्म के अज्ञान से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु

से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से जीव जन्तु तथा जौ चावल आदि पैदा हुए। जो कार्य जिस कारण से पैदा हुआ उसमें लयकर देने पर पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्याकृत समष्टि में, लय कर देने पर मैं शुद्ध ब्रह्म (हरि) शेष रहता हूं। मैं ही सर्वव्यापी विष्णु हूं। जीवों के तीन कर्म, तीन पाप, तीन शरीरों का हरण करने वाला हरि हूं। मुझ में कर्त्ता भोक्तापनअज्ञान से है। मैं स्वरूप से च्युत न होने के कारण अच्युत हूं। परिच्छेद भय रहित होने के कारण अनन्त हूं। ब्रह्म विद्या रूप गो से प्राप्त होने के कारण गोविन्द हूं। मैं आनन्द स्वरूप हूं। अशेष हूं। जन्म से रहित तथा मृत्यु से रहित होने के कारण अमृत रूप हूं। मै ंअविनाशी, निरुपाधिक आकार से रहित, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्द स्वरूप हूं। पंच कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) की पहुंच से परे हूं॥११-१५॥

मैं सर्वव्यापी होने के कारण अकर्त्ता तथा अभोक्ता हूं। आकाश के समान असंग परमेश्वर हूं। सभी इन्द्रियां मेरी सत्ता प्राप्त करके चेष्टा करती हैं। मैं असंग परमेश्वर हूं। मैं उत्पत्ति स्थिति तथा नाश से रहित नित्य मुक्त हूं। कभी मुझे बन्धन नहीं प्राप्त हुआ। मैं मल, विक्षेप, आवरण से रहित स्वभाव से ही निर्मल हूं, इसमें संदेह नहीं। मैं ब्रह्म नित्य मुक्त हूं। जन्मने, मरने वाला संसारी नहीं. ऐसी भावना करे। जो इस भावना के करने में असमर्थ हो, वह नीचे लिखे वाक्यों का अभ्यास करे। एक महीने तक निर्विकल्प समाधि रूपी योग से इसका अभ्यास करने से ब्रह्म हत्या दूर होती है। एक वर्ष तक निरन्तर अभ्यास करने वाले को योग दर्शन में कही हुई अणिमा गरिमा आदि आठ सिद्धियां प्राप्त होती हैं। जीवन पर्यन्त अभ्यास करने वाला योगी जीवन्मुक्त होता है। अब अभ्यास को बतलाते हैं–मैं शरीर, प्राण, दस इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध यह सब नहीं हूं। न माया हूं न संसारी। तो फिर आप कौन है? इस पर उत्तर देते हैं, सदासाक्षी स्वरूप शिव हूं। आप तो केवल कहते हैं, तो क्या संसार नहीं है? इस पर उत्तर देते हैं कि सारा जगत् मुझ से रस्सी में सांप के समान उत्पन्न हुआ है। जब तक रस्सी का अज्ञान रहता है। तब तक रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है। वैसे ही सारा जगत् मुझ में प्रतिष्ठित है। रस्सी का ज्ञान होकर जैसे रस्सी में सर्प लीन हो जाता है। वैसे ही ब्रह्म का साक्षात्कार

होने पर जगत् मुझ में लय हो जाता है। अद्वितीय ब्रह्म मैं ही हूं, मैं सर्वज्ञ हूं, अनन्त हूं। सर्वेश सबका स्वामी होने से, सर्वशक्तिमान, आनन्द सत्य बोध रूप हूं। इस प्रकार ब्रह्म का चिन्तन है। यह जगत् मिथ्या है, मैं अविनाशी ब्रह्म सत्य हूं। इसमें प्रमाण वेदान्त है। गुरु भी यही कहते हैं और मेरा यथार्थ अनुभव भी यही है। मैं ब्रह्म हूं तथा ब्रह्म से पृथक् नहीं, न संसारी हूं। न मैं शरीर हूं, न मेरा शरीर है। मैं केवल सनातन ब्रह्म हूं। एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप हूं इसके अतिरिक्त कुछ नहीं॥१६ से २८ तक॥

हृदय कमल के बीच दीपक के समान प्रणव के द्वारा अतर्क्य, योगियों के ध्यान से परे वेद का सार स्वरूप, आत्मा का चिन्तन हरि, गुरु तथा शिव के योग से सभी प्राणियों में स्थित आत्मा का जो एक बार भी चिन्तन करता है, वह मुक्त हो जाता है॥२९॥ इति ब्रह्मानुचिन्तनम् भाषा टीका सम्पूर्णम्।

यति रात्रिशयन विधि

यति सायंकालीन सन्ध्या करने के अनन्तर रात्रि में शयन करने से पूर्व हाथ, पैर धोकर, सुखा कर, छः प्राणायाम करके, पीछे कहे हुए षडंग न्यास के अनन्तर यथावकाश, प्रणव का जप करके निम्नलिखित श्लोकों का पाठ करे–

सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण में होना चाहिए, पश्चिम या उत्तर में रोग उत्पन्न करता है।

जगत् प्रतिष्ठादेवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते।
ज्योतिष्याप: प्रलीयन्ते, ज्योतिर्वायौ प्रलीयते॥१॥
वायुश्चलीयते व्योम्नि, तच्चाव्यक्ते प्रलीयते।
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन् निष्कले सम्प्रलीयते॥२॥
पुरुषान्नापरं किंच्चित् सा काष्ठा सा परागति:
अहं शेषशायी स्वयं माधवोऽहं,
विरिंच्यादि देवैरुपास्योऽखिलात्मा॥
यतिश्चिन्तयन्नित्थमादौविलाप्य,
स्वयं सच्चिदानन्द मात्र: शयीत॥३॥

निद्रादौजागरस्यान्ते योभाव उपजायते।
तं भावं भावयेन्नित्यं मुच्यते नेतरो यतिः॥४॥
निद्रादौजागरस्यान्ते, निद्रान्ते जागरोदये।
लयोभवति चित्तस्य कार्यतत्रात्म-चिन्तनम्॥५॥
यद्भावानुभवःस्यात्तु निद्रादौजागरस्यान्ते।
अन्तः सचेत् स्थिरस्यात्तदाश्नुते ह्यद्वयानन्दम्॥६॥
मोहेन विस्मृते दृश्ये, सुषुप्तिरनुभूयते।
बोधेन विस्मृते दृश्ये तुरीयमनुभूयते॥
न सन्ति यस्यां निद्रायां जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तयः॥७॥
अवस्थात्रयरूपिण्याः सर्वद्वन्द्व विसर्जनात्।
गुणातीत तया तत्र, तमोलेशो न विद्यते॥८॥
स्वयं प्रकाश रूपत्वादप्रकाशोऽपि नास्ति हि।
यत्प्राप्तये महापुण्यास्तपस्यन्ति तपस्विनः॥९॥
विचारयन्ति विद्वांसो वेदान्तवचनानि च।
न प्रयोजकता तत्र महदेतत् प्रयोजनम्॥१०॥
पुरुषार्थस्वरूपत्वान्न कालक्षेपरूपिणी।
सुलभाशुद्ध बोधानां दुर्लभाविषयात्मनाम्॥११॥
सहजा माधवादीनां सानिद्रा सुखदायिनी।
वेदान्त सम्प्रदायेन निदिध्यासन दार्ढ्यतः॥१२॥
परमात्मनि चित्तस्य लयस्तत्तुर्यमुच्यते।
जाग्रत् स्वरूप एवायं पश्यन् स्वप्नमयं जगत्॥१३॥
सुषुप्त इव चिद्रूपे मुनेस्तुर्यतथात्मता।
यतो मानानि सिद्ध्यन्ति जाग्रदादित्रयं तथा॥१४॥
भावाभाव विभागश्च सब्रह्मास्मीतिवोध्यते॥१५॥

सर्वास्ववस्थावस्वकृतप्रयत्नो निश्चिन्तभावामृतवत्सतिष्ठन्।
कल्लोलहीनाम्बुधिवन्निवात प्रदीपवत् तत्त्व मयः सुखी स्यात् ॥१६॥

सर्वेन्द्रिय गुणरहिता रूपातीता निरञ्जना शान्ता।
भावाभावविदूरा सहजावस्थेति सा कथिता ॥१७॥
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिश्च तुरीयं च तथैव च।
तुरीयातीतं च सहजं न किंचिच्चिन्तयेत्ततः ॥१८॥
दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां बिना ॥१९॥
उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा मानसातथा।
अधमा मानवी पूजा, तीर्थ यात्राधमाधमा ॥२०॥
या निशासर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥२१॥

योगवाशिष्ठे–

द्वौ क्रमौ चित्तनाशाय योगोज्ञानं च राघव।
योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥२२॥
वृत्ति हीनं मनः कृत्वाक्षेत्रज्ञे परमात्मनि।
एकीकृत्य विमुच्यन्ते योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥२३॥

इति तीर्थ स्वामिनः प्रातः कृत्यादि शयन विध्यन्तमाह्निकम् सम्पूर्णम्॥

हे देवर्षे, प्रलय काल में पृथ्वी (जगत् की आधार भूता) जल में लीन हो जाती है, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्यक्त में, अव्यक्त निरुपाधिक पुरुष ब्रह्म में लीन होता है। पुरुष से परे (सूक्ष्म) कुछ नहीं। वह सब की अन्तिम सीमा परागति है। ऐसा लय चिन्तन करने के अनन्तर भावना करे कि ब्रह्मादि देवों के उपास्य अखिल जगत् की आत्मा शेषशायी विष्णु मैं ही हूं। निद्रा से पूर्व यति कार्यों के कारणों में लय करते हुए, स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप में शयन करे।

निद्रा के आरम्भ तथा जागरण के अन्त में जो भाव उत्पन्न होता है। उस भाव का निरन्तर चिन्तन करने वाला यति मुक्त हो जाता है। निद्रा के आरम्भ में तथा जागरण के अन्त में, निद्रा के अन्त तथा जागरण के आदि में, जो चित्त से लय होता है। वहां आत्मचिन्तन करे। चिन्तन के अनन्तर निद्रा के आरम्भ तथा जागृत के अन्त में जिस भाव की अनुभूति हो, अन्तर्मुख चित्त से वहीं पर मन को स्थिर करने वाला, परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है। अब गाढ़ सुषुप्ति तथा तुरीय का भेद बताते हैं। अज्ञान में दृष्टा, दर्शन तथा दृश्य के विस्मृत (अज्ञान में लय) होने पर सुषुप्ति का अनुभव होता है एवं शुद्ध सच्चिदानन्द बोध रूप ब्रह्म में, त्रिपुटी का ज्ञान में, लय होने पर तुरीय का अनुभव होता है। आगे इस तुरीय की विशद् व्याख्या करते हैं–जिस योग निद्रा में व्यावहारिक जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाएं नहीं है तथा जो सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, सुख, दुख द्वन्द्वों से परे है, तीनों गुणों से अतीत जहां पर लेशमात्र भी अज्ञानतम नहीं है, जो अज्ञान प्रकाश रूप नहीं है, स्वयं प्रकाश रूप है। जिसको प्राप्त करने के लिए महापुण्य शाली तपस्वी ज्ञान रूप तप करते हैं तथा विद्वान् वेदान्त के महावाक्यों का विचार करते हैं। बहिर्मुख अज्ञानियों का जिसमें कोई प्रयोजन नहीं है। किन्तु मुमुक्षु जिज्ञासुओं का महा प्रयोजन है, जो निद्रा काल बिताने के लिए नहीं है बल्कि मोक्ष रूपी पुरुषार्थ है, जो शुद्ध बोध वालों के लिए सुलभ है। विषयी, पामरों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। वह सहज स्वभाव से प्राप्त निद्रा, विष्णु, अगस्त्य, मुचुकुन्द, कपिल भगवान् तथा आस्तीक को सुख देने वाली है। उसी परमानंददायिनी निद्रा में यति को शयन करना चाहिए।

यह निद्रा प्राप्त कैसे होगी। इसका उपाय बताते हैं, अद्वैत वेदान्त के गुरु परम्परा रूपी सम्प्रदाय अनुसार गुरु सेवा करते हुए वेदान्त के श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के दृढ़ होने से परमात्मा में चित्त का लय हो जाना ही तुरीय महायोग निद्रा है। इस निद्रा में स्थित यति का अनुभव बताते हैं। यह लौकिक दृष्टि से निद्रा होने पर भी परमार्थ दृष्टि में जाग्रत स्वरूप है। इसमें स्थित योगी जगत् को स्वप्नवत् अनुभव करते हुए चैतन्य रूप ब्रह्म में सुषुप्त के समान मुनि, तुरीय आत्मा का अनुभव करते हैं। जिससे प्रत्यक्ष

प्रमाण से लेकर शब्द प्रमाण पर्यन्त सभी प्रमाण सिद्ध होते हैं तथा जिससे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाएं सिद्ध होती हैं एवं भावभाव का विभाग होता है, 'वह ब्रह्म मैं हूं' ऐसा ज्ञान होता है ॥१५॥

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में किये हुए प्रयत्न वाला अमृत स्वरूप आत्मा में स्थित हुए यति, तरंग रहित शान्त, समुद्र के समान अथवा वायु रहित प्रदीप के समान, तत्त्व में स्थित हुआ, सुखी होता है। अब सहजावस्था का लक्षण बताते हैं– सभी कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय तथा तीनों गुणों से रहित, रूप से अतीता, परम प्रकाश स्वरूप, शान्ता, भावाभाव से परे की अवस्था सहजावस्था कही गई है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत, सहजा के बाद फिर किसी का चिन्तन न करे, किन्तु ऐसी स्थिति गुरुओं की कृपा कटाक्ष बिना नहीं हो सकती। अत: कहते हैं कि सद्गुरुओं की कृपा बिना विषयों का त्याग, तत्त्व दर्शन तथा सहजावस्था, अत्यन्त कठिन है। उत्तमा सहजावस्था मध्यमा मानस पूजा है। अधम मानवी पूजा है। तीर्थ यात्रा अधम से भी अधम है॥ २०तक॥

इसके सम्बन्ध में गीता में भी भगवान् ने कहा है जो सभी प्राणियों की रात्रि है, उसमें धारण ध्यान समाधि का अभ्यास करने वाला संयमी जागता है और जिस लौकिक व्यवहार रूपी दिन में प्राणी जागते हैं। स्वरूप चिन्तन करने वाले योगी अज्ञान रूपी रात्रि में सोते हैं। योग वशिष्ठ में भी वशिष्ठ जी ने राम के प्रति चित्त के नाश के दो उपाय बताते हुए कहा है कि हे राघव, चित्त नाश के दो उपाय हैं। एक ज्ञान तथा दूसरा योग। चित्तवृत्ति को रोकना योग है। सर्वत्र ब्रह्म दर्शन ज्ञान है इन दोनों में मुख्य योग को बताते हुए कहा है कि मन को वृत्ति से रहित करके जीवात्मा तथा परमात्मा को एक करने वाला मुख्य योग है। इसी योग से जीव मुक्त होता है। श्रीतीर्थ स्वामी जी द्वारा रचित यति की दिनचर्या सम्पूर्ण।

॥ इति तृतीय परिच्छेद का पचासवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय परिच्छेद का इक्यावनवां अध्याय प्रारम्भ ॥

यति का उत्तराधिकार निर्णय

ब्रह्मपुराण–ब्रह्मघोषो भवेद्यत्र यत्र ब्रह्माश्रमस्थितः।
देव प्रदानकंवेश्म मठइत्यभिधीपते ॥१॥
(ब्रह्म पुराण)

यते र्धनं न गृह्णीयात् प्राणैः कण्ठ गतैरपि।
प्रमादाद्यदि गृहणीयाद्दहेदासप्तमं कुलम् ॥२॥
यति हस्तगतं द्रव्यं गृह्णीयाद ज्ञानतो यदि।
अधः सन्नीयतेमूढः कुलानामेक विंशतिम् ॥३॥

जहां वेद धोष होता है, जहां पर ब्रह्म वेत्ता निवास करते हैं। जहां देवता के निमित्त घर बनाकर दान किया जाता है। उस घर को मठ कहते हैं। यति का धन कण्ठगत प्राण हने पर भी नहीं लेना चाहिए। भूल से यदि कोई ग्रहण करता है तो सात पीढ़ियों तक नरक की आग में जलाया जाता है, जो जान–बूझ कर यति के हाथ का धन लेता है। वह मूढ़ इक्कीस पीढ़ियों तक नरक में दुख पाता है। याज्ञिक ब्राह्मणों का तथा देवता का धन राजा को नहीं लेना चाहिए। यदि किसी का कोई उत्तराधिकारी शेष न हो तो यति तथा ब्राह्मण के धन को छोड़कर सब का धन राजा ले सकता है। वानप्रस्थियों, यतियों, ब्रह्मचारियों का धन उसके धर्म भ्राता या गुरुभ्राता शिष्य अथवा आचार्य ले सकता है। इनके अभाव में सतीर्थ विद्यार्थी अथवा एकाश्रमी (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) ग्रहण करे। माता–पिता का त्याग करके आजीवन आचार्य कुल में सेवा करता हुआ निवास करे, उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। यदि माता पिता द्वारा उपनयन हुआ है, तो माता पिता के धन का भी अधिकारी है। यदि यति का अपना शिष्य न हो, तो बड़े गुरु भाई का शिष्य धन ले सकता है। उसे एकतीर्थी कहा है। इसलिए यति की चल अचल सम्पत्ति में शिष्य का ही अधिकार है, गृहस्थों का नहीं। इति यति अधिकार निर्णय।

यद्यपि ब्रह्मा जी ने गायत्री रहस्योपनिषद्, नारद परिव्राजकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् इत्यादि अनेकों उपनिषदों, वेदों, पुराणों में प्रचुर उपदेश किया है। सृष्टि के प्रारम्भ में

परमात्मा से वेदों का ज्ञान प्राप्त करके इसके प्रवृत्ति प्रधान कर्म उपासना का उपदेश वशिष्ठ आदि ऋषियों को दिया तथा निवृत्ति प्रधान ज्ञान काण्ड का उपदेश चारों सनकादि ऋषियों के प्रति किया। योग के प्रथम वक्ता ब्रह्मा जी हैं। मनु जी ने भी सृष्टि के आरम्भ में इनके चरणों में बैठकर वेद तथा धर्म शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। उनसे अध्ययन करके वशिष्ठ आदि सत्रह स्मृतिकार ऋषियों को मनु जी ने धर्मशास्त्र पढ़ाया। यह मनुस्मृति के पहले अध्याय से सिद्ध होता है। अतः वेदों तथा धर्म शास्त्रों के मूल वक्ता ब्रह्मा जी हैं। उन्होंने ही वेदों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए महाभारत तथा रामायण की रचना करके नारद जी को उपदेश दिया। नारद जी ने वाल्मीकि तथा व्यास जी को उपदेश किया। अतः एक-एक अरब वाले प्रत्येक पुराण तथा रामायण, महाभारत के आदि वक्ता ब्रह्मा जी ही सिद्ध होते हैं। इसलिए पूरा संस्कृत साहित्य ब्रह्मा जी की ही देन है। अतः संन्यास धर्म का विशाद वर्णन जो संन्यास गीता, यतिधर्म संग्रह, जीवन्मुक्ति, विवेक यति, धर्म समुच्चय, यति धर्म प्रकाश, यति धर्म समुच्चय सार, यति धर्म संग्रह तथा संन्यास धर्म दर्पणम् आदि ग्रन्थों में जितने ऋषियों आचार्यों ने उपदेश दिये हैं, वे ब्रह्मा जी के उपदेशान्तर्गत ही हैं। अब हम अपने इस प्रकरण में श्री आदि गुरु ब्रह्मा जी के चरणों में कोटिशः नमन करते हुए इस प्रकरण को पूर्ण करते हैं।

''ज्ञान शक्ति वलैश्वर्यवीर्यतेजस्समन्वितम्।
ज्ञान वैराग्य सिद्ध्यर्थे ब्रह्माणं प्रणमाम्यहम्॥''

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, सत्ययुग खण्डे,
तृतीय परिच्छेद का इक्यावनवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ तृतीय परिच्छेद पूर्णतामगात्॥



सत्ययुग खण्ड

चतुर्थ परित्छेद प्रथम अध्याय

भगवान्-सद्गुरु

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्या-दिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीशसाक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

सद्गुरु और पारब्रह्म एक ही वस्तु हैं। उनके अतिरक्ति और कोई दूसरी वस्तु नहीं है। अथवा जो कुछ वस्तु है, सब वही है। इसी भाव से शास्त्रों में **'गुरुः साक्षात् परंब्रह्म'** से लेकर **'सर्वंगुरुमयं जगत्'** तक का निरूपण किया गया है। चौबीस तत्त्वों को चौबीस गुरुओं के रूप में कहकर भी यही बात प्रकट की गयी है, परन्तु इन सर्वस्वरूप या आत्मस्वरूप सद्गुरु की उपलब्धि अपने बल पर अहंकार को लेकर नहीं की जा सकती। यह जब स्वयं अपने को प्रकट करके स्वयं अपने आपको वरण करते हैं, तभी इनकी उपलब्धि होती है।

इस व्यावहारिक जगत् पर दृष्टि डालने से ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने अपने को तीन रूपों में प्रकट किया है। यों तो सभी उन्हीं की अभिव्यक्तियाँ हैं, परन्तु आत्मदान करने के लिये मुख्यतः इन्हीं रूपों में आकर उन्होंने सोते हुए जीवों को जगाया है। वे तीन रूप हैं-दिव्य, सिद्ध और मानव। इन पर कुछ और विचार किया जाये।

सद्गुरु १. दिव्य सद्गुरु, २. सिद्ध सद्गुरु तथा ३. मानव सद्गुरु

पुराणों में सृजन, पालन तथा संहार के तीन अधिकारियों का ही वर्णन आता है। जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कहते हैं, परन्तु तन्त्रों में दो और तिरोधान तथा अनुग्रह के अधिकारी-ईश्वर और सदाशिव का वर्णन हुआ है। वे अपनी-अपनी शक्ति से विशिष्ट होकर दस हो जाते हैं। इन शक्तियों की समष्टि रूपा एक आदिशक्ति तथा उसे अपने

अन्दर रखने वाले जिनसे कि वह अभिन्न है–परब्रह्म ही आदि दिव्य सद्गुरु है। इनकी परम्परा इस प्रकार बनती है।

१. आदिनाथ–शुद्ध, अहंकार रहित, इच्छाहीन, एक अद्वितीय, त्रिविध परिच्छेद शून्य, अनन्त, अपार, सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही आदि गुरु आदिनाथ है।

२. आदि शक्ति–यह यद्यपि उनसे अभिन्न ही है, तथापि समस्त विभिन्न शक्तियों की आश्रय स्वरूपा समष्टि शक्ति रूपा होने के कारण भेद विविक्षा करके इन्हें द्वितीय गुरु कहा जाता है। जैसे निद्रा टूटने के पश्चात् और देह बुद्धि होने के पूर्व मैं हूँ, इस प्रकार की सुषुप्ति सुख से अभिन्न वृत्ति होती है, वैसे ही इन्हें समझना चाहिए।

३. सदाशिव (इनका विशद वर्णन सत्ययुग खण्ड प्रथम परिच्छेद में देखे)– जब आदिनाथ सद्गुरु अपनी उन अभिन्न शक्ति से जिसका स्वरूप 'अहमस्मि'–मैं हूँ–विशिष्ट होते हैं। तब उन निर्गुण निराकार आदि नाथ को ही सदा शिव कहते हैं। वृत्तिशून्य होकर ही उनकी उपलब्धि की जा सकती है। इनकी विशेषता यह है कि निर्गुण होने पर भी ये अनुग्रहशील है। 'मैं हूँ' इस वृत्ति से युक्त होने के कारण सम्पूर्णतः ध्वस्त जगत् को जाग्रत् करना ही इनका अनुग्रह है।

४. सदाशिव शक्ति–सदा शिव की 'मैं अकेला ही रमण नहीं करता' इस प्रकार की विषय सृष्टि से पूर्व होने के कारण शुद्ध विद्यामयी वृत्ति ही उनकी शक्ति है। यह मूल प्रकृति रूपा चतुर्थ सद्गुरु है।

५. ईश्वर–सदाशिव अपनी 'अकेले रमण करने' वाली वृत्ति के अभिमानी के रूप में ईश्वर रूप में प्रकट हैं। यह सगुण होने पर भी निराकार है। 'आपाणिपादो' आदिश्रुतियाँ इन्हीं का वर्णन करती हैं। सारा जगत् इनमें ही तिरोहित रहता है, इसलिये इन्हें तिरोधान शक्ति के अधिकारी के रूप में कहा जाता है।

६. ईश्वर शक्ति–'ततो द्वितीयमैच्छत्' अर्थात् मैं अकेले रमण नहीं करता, इस वृत्ति से एक हो जाने पर द्वितीय वस्तु की इच्छा की। यह दूसरे की इच्छारूपिणी वृत्ति ही ईश्वर शक्ति हैं। इस शक्ति के अन्दर महत्तत्वादि निहित हैं। ईश्वर की यह अन्तर्वती शक्ति षष्ठ सद्गुरु है।

७. रुद्र–द्वितीय वस्तु की सृष्टि करने की इच्छा से विशिष्ट ईश्वर ही रुद्र है। यह सगुण-साकार है। 'या ते रुद्र शिवा तनूः' इत्यादि श्रुतियाँ इन्हीं का वर्णन करती हैं। प्रलय होने पर सारा संसार इन्हीं में रहता है। ये सातवें सद्‌गुरु के नाम से प्रसिद्ध हैं।

८. रुद्र शक्ति–रुद्र की 'मैं एक से बहुत हो जाऊँ' यह वृत्ति महत्तत्व आदि को पृथक् करके उत्पन्न करती है। यही रुद्र की शक्ति है। इसे आठवें सद्‌गुरु के रूप में कहा जाता है।

९. विष्णु–'एकोऽहं बहु स्याम' इस वृत्ति से युक्त होने के पश्चात् महत्तत्व आदि में अपना तेज स्थापन करके उन्हीं में स्थित होकर जो उनका परिपालन करते हैं, वे सम्पूर्ण जगत् के रक्षक विष्णु नवम् सद्‌गुरु हैं। इनका विशद वर्णन सत्ययुग खण्ड द्वितीय परिच्छेद में देखें।

१०. विष्णु शक्ति–"मैं अपनी शक्ति से अपने अन्तर्गत इस जगत् का पालन-पोषण करता हूँ" इस प्रकार की विष्णु की शक्ति ही दशम गुरु है। यही समस्त तत्वों के रूपों में स्थित विश्व का पोषण करती है।

११. ब्रह्मा–तत्त्वों के अन्दर स्थित जगत् को अपनी वृत्ति से देखते-देखते तन्मय हो, जो विराट् के रूप में 'आविर्भूत हुए, सब विभिन्नताओं के स्रष्टा समष्टि जीवस्वरूप में ब्रह्मा ही ग्यारहवें सद्‌गुरु हैं।' इनका विशद् चरित्र तृतीय परिच्छेद में देखें।

१२. ब्राहमी शक्ति–'मेरी प्रजा लौकिक पारलौकिक तथा पूर्ण सुख प्राप्त करने के लिये यज्ञादि करे।' ब्रह्मा की यह क्रिया रूपा वेदमयी वृत्ति ही शक्ति है। यह बारहवें सद्‌गुरु हैं।

यह सब बारहों दिव्य सद्‌गुरु आनादिकाल से अज्ञानमयी माया में सोने वाले जीवों को जागरित करके स्वरूप की ओर सर्वदा प्रवृत्त करते रहने के कारण सद्‌गुरु हैं। ये एक ही सत्य के बारह लीला स्वरूप हैं। इनमें से किसी की शरण ग्रहण करके जीव साधन राज्य में अग्रसर हो सकता है। श्री भागवत के अष्टम स्कन्ध २४वें अध्याय में बड़े ज़ोर के साथ कहा गया है कि जीव को परम गुरु के रूप में परमात्मा का ही वरण करना चाहिए। मनुष्य तो स्वयं माया के झपेटे में पड़ा हुआ है। भला वह दूसरे का क्या उद्धार कर सकता है। वास्तव में संत सद्‌गुरु तो भगवान ही है।

इनके अतिरिक्त सनकादि सिद्ध सद्गुरु और श्री शंकराचार्यदि मानव सद्गुरुओं के चरित्र अलग लिखे गये हैं।

सत्ययुग खण्ड के प्रथम तीन परिच्छेदों में शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा जी तीन गुरुओं के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया है। भगवान् शिव के पाँच मुखों से प्रकट हुये श्री रेणुकाचार्य जी, श्री दारुकाचार्य जी, श्री चकुंकर्णकाचार्य जी, श्री धेनुकर्णकाचार्य जी एवं श्री विश्व कर्णकाचार्य जी इन सब को मिलाकर आठ गुरु हुए। उपरोक्त बारह दिव्य गुरुओं को मिलाकर बीस दिव्य गुरु हो गये। जब ब्रह्मा जी से प्रकट हुए निवृत्ति परायण ज्ञान प्रधान पाँच सनकादिकों के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है।

॥ इति सत्ययुग खण्ड चतुर्थ परिच्छेद का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण॥

यहाँ तक २० गुरुओं की कथा आ चुकी है।

अथ चतुर्थ परिच्छेद का द्वितीय अध्याय प्रारम्भ

२१ से २५ तक सनकादि

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और सनत्सुजात ये पाँचों ही ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। कहीं-कहीं सनत्कुमार और सनत्सुजात को एक मानकर चार ही कहा गया है। कहते हैं कि जब ब्रह्मा से पांच पर्वों वाली अविद्या दूर हो गयी, तब ब्रह्मा ने अपनी शक्ति के साथ निर्मल अन्तःकरण होकर इनकी सृष्टि की। बड़ी प्रसन्नता हुई। ब्राह्मी शक्ति ने इन्हें सम्पूर्ण विद्या, उपासना पद्धति, और तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिया। इन सबके अध्ययन, तपस्या, शील, स्वभाव एक से ही हैं। इनमें शत्रु, मित्र तथा उदासीन के प्रति भेदभाव नहीं। सर्वदा, पाँच वर्ष के बालकों की भाँति ये विचरते रहते हैं। संसार के द्वन्द इनका स्पर्श नहीं कर पाते। रात-दिन भगवान् श्री कृष्ण का नाम जप किया करते हैं। 'हरिःशरणम्' मन्त्र तो इनके श्वासोच्छ्वास के साथ-साथ चलता रहता है। इसी से सदा बाल रूप रहते हैं। इन्हें भगवान् की लीलासुधा पान करने में इतना आनन्द आता है कि प्रायः शेषनाग के पास जाकर पूछ-पुछ कर उसका रसास्वादन करते रहते हैं। इनका एक क्षण भी भगवान् के चिंतन के बिना नहीं रहता। ये सर्वदा ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं।

इनके उपदेशों से अनेकों व्यक्तियों का कल्याण साधन हुआ है। इन्होंने शुकदेव एवं भीष्म को अध्यात्म विद्या का सदुपदेश प्रदान किया है। महाराज पृथु ने जो कि भगवान् के एक अंशावतार हैं–इनसे ही भागवत–सदुपदेश ग्रहण किया। सनत्कुमार जी ने पृथु के विनम्र प्रश्न के उत्तर में कहा है–

सत्संग ही भगवत्प्राप्ति का सुगम एवं सर्वश्रेष्ठ उपाय है। भगवान् श्री कृष्ण की लीला, गुण और स्वभाव आदि की चर्चा करते रहने से अन्तःकरण का मल धुल जाता है, फिर तो भगवान् का सच्चा प्रेम प्राप्त हो जाता है। शास्त्रों में बस यही एक बात निश्चय रूप से कही गयी है। यही एकमात्र परमार्थ सत्य है कि आत्मस्वरूप भगवान् में ही निरन्तर स्थित रहे। श्रद्धापुर्वक भागवत धर्म के आचरण से अन्तःकरण में भगवान् के स्पर्श का अनुभव होता है। संतों की शरण में रहकर भगवान् की लीला का श्रवण करना चाहिए। मन से, वाणी से, शरीर से किसी को कष्ट न हो। दुःसंग से अलग रहकर एकान्त एवं पवित्र देश का सेवन करके यम–नियमों के पालनपूर्वक निरन्तर भगवान् के स्मरण में लगे रहना ही परम कल्याण है। इस प्रकार के स्मरण से धीरे–धीरे पंचकोश तथा लिंग शरीर का ध्वंस हो जाता है। फिर तो एक अद्वितीय, अनन्त, विज्ञानन्द घन परमात्मा ही रह जाता है। कुछ कर्त्तव्य शेष नहीं रहता।

इस प्रकार के बहुत से उपदेश सुनकर भगवदावतार पृथु ने अपनी कृतार्थता प्रकट की और इन नित्यबालक मुनियों के गुणगान किये।

महाभारत के अवसर पर सनत्सुजात मुनि ने धृतराष्ट्र को बहुत सुन्दर उपदेश दिये हैं। उद्योगपर्व का एक महत्त्वपूर्ण अंश ही 'सनत्सुजातीय' पर्व के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर श्री आदि शंकराचार्य ने बड़ा ही विस्तृत भाष्य लिखा है। अध्यात्म जिज्ञासुओं को उसका अध्ययन करना चाहिए।

कभी–कभी ये लोग स्वयं परस्पर भगवत् चर्चा किया करते थे। किसी एक को वक्ता बना लेते और दूसरे सब श्रोता बनते हैं। इस प्रकार बड़े मर्म की बातें होती हैं। श्री भागवत की वेद स्तुति एक ऐसे ही अवसर पर कही गयी थी। श्री सनन्दन जी को प्रवचनकार बनाकर बाकी लोग श्रोता बन गये। इस प्रकार एक बड़े जटिल प्रश्न का

उत्तर संसार को मिल गया कि वेदों में भगवान् का वर्णन किस प्रकार होता है। भगवान् के अतिरिक्त वस्तु का निषेध करते हुए वेद अन्त में किस प्रकार भगवान् में परि समाप्त होते हैं, इस उपदेश में इस बात का अत्यन्त विषद वर्णन हुआ है।

भगवान् के भक्तों, जीवन मुक्तों, सिद्ध सन्तों में संसार के कलुषित विकार, काम, क्रोधादि होते ही नहीं, न हो सकते हैं फिर भी कभी-कभी संतों के जीवन में भी भगवदिच्छा से लीला रूप में यह बात देखी गयी है। देखने वाले लोग अपने कलुषित हृदय के कारण भ्रमवश महात्माओं की लीलाओं को न समझकर उनमें क्रोध की कल्पना कर बैठते हैं। इनकी इन लीलाओं के द्वारा जगत् की हानि न होकर लाभ ही होता है। इनके सम्बन्ध में भी पुराणों में एक ऐसे ही प्रसंग का वर्णन आता है।

एक बार इन लोगों ने बैकुण्ठ की यात्रा की। उन्हें पाँच वर्ष के नग्न बालक के रूप में देखकर वहां के द्वारपालों (जय विजय) ने रोक लिया। इस पर उन्होंने डाँटते हुए कहा-

'भगवान् के नित्य धाम-सत्त्व के साम्राज्य में यह विषमता उचित नहीं। तुम दोनों के मन में कुछ और कपट अवश्य आ गया है। नहीं तो भगवान् के सबके लिये खुले हुए परमधाम में भला यह कैसे हो सकता है? तुम हम पर शंका कर रहे हो। इस एक रस धाम में तुम दोनों ने भेद के कारण होने वाले सांसारिक भेदभाव को स्थान दिया है। इसलिये शीघ्र ही यहाँ से गिर जाओ।'

यद्यपि संतों में इस प्रकार का आवेश होना असम्भव है, फिर भी भगवान् की ऐसी ही इच्छा थी। वे इन्हीं मुनियों को निमित्त बनाकर जगत् में आना चाहते थे। कहां तो उनका स्थान और दर्शन इन मुनियों के लिये अगम्य था और कहां वे बन्दर, भालू आदि के लिए सुलभ हो गये। गांवों के ग्वालों तक में आये। इन मुनियों को निमित्त बनाकर अपने को सुलभ कर दिया।

भगवान् ने स्वयं आकर इनकी स्तुति की। ब्राह्मणों की महिमा गायी, प्रसन्नता प्रकट की, तब इन्होंने मुक्त स्वर से कहा! प्रभो हमें तो उचित अनुचित कुछ ज्ञान नहीं है। इस अपराध के बदले तुम्हारी जो इच्छा हो, वही दण्ड दे दो। हमें सहर्ष शिरोधार्य है।

भगवान् ने मुस्कुराते हुए कहा, ''तुम्हारा कोई दोष नहीं। यह तो मेरी ही इच्छा थी। मैंने पहले ही सोच रखा था।''

भगवान् की प्रेम भरी गम्भीर वाणी सुनकर सब के सब भगवान् की प्रदक्षिणा, नमस्कार करके आज्ञा पाकर उनके गुण गाते हुए स्वच्छन्द विचरण करने लगे।

यद्यपि ये सब के सब नित्य सिद्ध और निरन्तर परमार्थ निष्ठ हैं। तथापि संसार में गुरु शिष्य परम्परा के स्थापन के लिए क्रमशः बड़े भाइयों को छोटों ने गुरु के रूप में माना था। विधिवत् उनसे दीक्षा लेकर श्रवण-मननादि किया। आज भी वे कहीं गुप्त रूप से विचरण करते होंगे। संभव है कि हमारे पास ही हों, परन्तु हमारा ऐसा सौभाग्य कहां कि उनके दर्शन से अपना जन्म सफल हो सके। उनकी कृपा वांछनीय है।

॥ इति चतुर्थ परिच्छेद का द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ चतुर्थ परिच्छेद का तृतीय अध्याय प्रारम्भ ॥

२६. नारद

अहो देवर्षि धन्योऽहं यत्कीर्तिं शार्ङ्ग धन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥ (श्रीमद्भाग० १/६/३९)

अहो! हे देवर्षि नारद जी धन्य हैं। जो वीणा बजाते, हरिगुण गाते और मस्त होते हुए इस दुखी संसार का आनन्दित करते रहते हैं।

देवर्षि नारद भगवान् के चुने हुए उन पात्रों में हैं, जो भगवान् की ही भांति अवतीर्ण होकर भगवान् की भक्ति और उनके महात्म्य का विस्तार करते हुए लोक कल्याण के लिए जगत् में विचरते हैं। सभी युगों में, सभी लोकों में, सभी शास्त्रों में, सभी समाजों में और सभी कार्यों में नारद जी का प्रवेश है। इन्हें भगवान् का 'मन' कहा गया है। ये भक्ति के प्रधान आचार्य माने गये हैं। इनके रचित भक्ति सूत्रों में भक्ति तत्त्व की बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है। इन्होंने प्रत्येक युग में घूम-घूम कर भक्ति का प्रचार किया और अब भी अप्रत्यक्ष रूप में वे भक्तों की सहायता करते रहते हैं। बल्कि अधिकारी पुरुषों को तो वे साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया करते हैं। संसार पर इनका अमित

उपकार है। प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष आदि महान् भक्तों को इन्होंने भक्ति मार्ग में प्रवृत्त किया। श्रीमद् भागवत और वाल्मीकि रामायण जैसे दो अनूठे ग्रंथ भी संसार को इनकी कृपा से प्राप्त हुए। शुकदेव जैसे महान् ज्ञानी को भी इन्होंने उपदेश दिया।

इनके पूर्वजन्म के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ये पहले एक दासी पुत्र थे। भगवान् के असीम अनुग्रह से बचपन में ही संत समागम प्राप्त हो गया। जिस गांव में ये रहते थे। वहां एक बार चार्तुमास्य बिताने के लिए बहुत से महात्मा एकत्र हुए। इन्हें उन महात्माओं की पत्तलों में बची हुई जूठन खाने को मिल जाया करती थी। जिसके प्रभाव से इनके सारे पाप नष्ट हो गये। निरन्तर भगवान् की कथाओं का श्रवण करने से इनका अन्तःकरण शुद्ध होकर इनके हृदय में भक्ति का संचार हो गया। उन मुनियों ने जाते समय इन्हें भगवान् के कहे हुए अति गुप्त ज्ञान का उपदेश किया, जिससे इनकी बुद्धि भगवत्स्वरूप में स्थिर हो गई। जब ये पांच ही वर्ष के थे, इनकी माता की अकस्मात मृत्यु हो गई। अब तो ये सब प्रकार के सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर जंगल की ओर निकल पड़े। वहां जाकर ये एक वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् के स्वरूप का ध्यान करने लगे। ध्यान करते-करते इनकी वृत्तियां एकाग्र हो गईं और इनके हृदय में भगवान् प्रकट हो गये, परन्तु थोड़ी देर के लिए इन्हें अपने मनमोहन रूप की झलक दिखाकर भगवान् तुरन्त अन्तर्धान हो गये। अब तो ये बहुत छटपटाये और मन को पुनः स्थिर करके भगवान् का ध्यान करने लगे किन्तु भगवान् का वह रूप इन्हें फिर न दिखाई पड़ा। इतने में ही आकाशवाणी हुई कि हे दासीपुत्र! इस जन्म में फिर तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा। इस शरीर को त्याग कर मेरे पार्षद रूप में तुम मुझे पुनः प्राप्त करोगे। भगवान् के इन वाक्यों को सुनकर इन्हें बड़ी सान्त्वना हुई और ये मृत्यु की बाट जोहते हुए निःसंग होकर पृथ्वी पर विचरने लगे। समय आने पर इन्होंने अपने पांचभौतिक शरीर को त्याग दिया और फिर कल्प के अन्त में ये दिव्य विग्रह धारण कर ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में पुनः अवतीर्ण हुए और तब से ये अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर भगवान् की दी हुई वीणा को बजाते हुए भगवान् के गुणों को गाते रहते हैं।

महाभारत में कहा है कि देवर्षि नारद जी समस्त देवों के मर्मज्ञ, देवताओ के पूज्य, इतिहास, पुराणों के विशेषज्ञ, अतीत कल्पों की बातों को जानने वाले, धर्मतत्त्व के ज्ञाता,

शिक्षा, कल्प, व्याकरण के असाधारण पंडित, संगीत, विशारद, प्रभावशाली वक्ता, मेधावी, नीतिज्ञ, कवि, ज्ञानी, समस्त प्रमाणों द्वारा वस्तु का विचार करने में समर्थ, बृहस्पति जैसे विद्वानों की शंकाओं का समाधान करने वाले, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के तत्त्व को जानने वाले, योगबल से समस्त लोकों की बातों का पता रखने वाले, मोक्षाधिकार के ज्ञाता, सन्धि और विग्रह के सिद्धान्तों को जानने वाले, विधि का उपदेश करने वाले, समस्त सद्‌गुणों के आधार पर अपार तेजस्वी हैं। वे ज्ञान के स्वरूप विद्या के भण्डार, आनन्द के सागर, सदाचार के आधार सब भूतों के अकारण प्रेमी और विश्व के सहज हितैषी हैं।

इनकी समस्त लोकों में अबाधित गति है। ये भगवान् के विशेष कृपा पात्र और लीला सहचर हैं। जब-जब भगवान् का अवतार होता है, ये उनकी लीला के लिए भूमि तैयार करते हैं। ये लीलोपयोगी उपकरणों का संग्रह करते हैं और अन्य प्रकार की सहायता करते हैं। इनका मंगलमय जीवन जगत् के मंगल के लिए ही है। श्री राम और श्री कृष्ण की लीलाओं में तो ये विशेष रूप से सहयोग देते रहे।

तैंतीस देवता–वेद पुराणादि ग्रन्थों में आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, दो अश्विनी कुमार, तेरह विश्वेदेव, उन्चास मरुद्‌गण इत्यादि देव, गन्धर्व यक्ष, किन्नर आदि अनेकों देव जातियों का उल्लेख मिलता है।

आठ वसु–ध्रुव, अध्वर, सोम, अपः, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास।

ग्यारह रुद्र–वीरभद्र, शम्भु, गिरिश, अजैकपाद, अहिर्वुध्न्य, पिनाकी, भुवनाधीश्वर, कपाली, दिक्पति, स्थाणु, रुद्र।

बारह आदित्य–भग, वरुण, सूर्य, वेदाङ्ग, भानु, रवि, गभस्ति, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र, आदित्य, विष्णु।

दो अश्विनी कुमार–दस्र, नासत्य।

नित्यपितरों के नाम–अर्यमा, अग्निष्वाता, आज्यपा, सोमपा, यम, वर्हिषद।

दशदिग्पाल–इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त।

पंचलोक पाल–गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश, अश्विनी कुमार।

विष्णु भगवान् के पार्षद–जय, विजय, शील, अनुशील, नन्द, सुनन्द, गरुड़, नारद जी, विष्वक्सेन, लक्ष्मी जी आदि।

शिव जी के गण–गणेश, स्वामी कार्तिकेय, नंदी, भृङ्गी, रिटी, तुण्डी, नन्दीश्वर, चण्ड, भद्र, सुभद्र आदि।

यह सब प्रधान देवता कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से देवता हैं जिनकी संख्या करना ही असम्भव है।

॥ इति चतुर्थ परिच्छेद में तृतीय अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ चतुर्थ अध्याय ॥

२७. ३३ तक सप्तर्षि

विभिन्न मनवन्तरों के धर्म मर्यादा की रक्षा दीक्षा के लिए जो सात ऋषि आविर्भूत हुआ करते थे, उन्हें ही सप्तर्षि कहते हैं। उन्हीं की तपस्या, शक्ति और ज्ञान के प्रभाव से संसार सुख एवं शान्ति से रहता है। हरिवंश, विष्णु पुराण, पद्मपुराण, मत्स्य पुराण आदि के मत से स्वायम्भुख मन्वन्तर में और कइयों के मत से वैवस्वत मन्वन्तर में भी निम्नलिखित सात सप्तर्षि होते हैं। ये सदा ध्रुव की परिक्रमा करते हुए जगत् को धारणा–पोषण करते हैं।

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ अब क्रमशः इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

२७. मरीचि

महर्षि मरीचि ब्रह्मा के अन्यतम मानसपुत्र और एक प्रधान प्रजापति हैं। इन्हें द्वितीय ब्रह्मा भी कहा जाता है। ये सदा ब्रह्मा की ही भांति सृष्टि कार्य में संलग्न रहते हैं। कभी-कभी इन्द्र सभा में उपस्थित होकर दण्ड नीति का मन्त्रित्व भी करते हैं। इनकी कई पत्नियों का वर्णन पुराणों में आता है। उनमें से एक दक्ष प्रजापति की पुत्री संभूति है और दूसरी धर्म नामक एक ब्राह्मण की धर्मव्रता नाम की कन्या है। इन्होंने अपने पिता की

आज्ञा से अनुरूप पति की प्राप्ति के लिए बड़ी तपस्या की। जब महर्षि मरीचि को इस बात का पता चला। तब इन्होंने इनके पिता से कहकर उन्हें पत्नी रूप में ग्रहण किया। इनके सैंकड़ों पुत्र थे, जिनमें कश्यप और मनु जैसे पुत्र भी हैं। जिनकी वंश परम्परा से यह सारा जगत् सम्पूर्ण सुरक्षित है। इन्हें भगवान् का अंशावतार कहते हैं। इनमें भगवान् की पालन शक्ति का प्रकाश हुआ है। ब्रह्मा ने इन्हें पद्मपुराण के कुछ अंश सुनाये हैं। जैसे ब्रह्मा के पुत्रों में सनकादि निवृत्ति परायण हैं। वैसे ही मरीचि आदि प्रवृत्ति परायण हैं। इन्होंने ही भृगु को दण्ड नीति की शिक्षा दी है। ये सुमेरू के एक शिखर पर निवास करते हैं और महाभारत में इन्हें चित्रशिखंडी कहा गया है। ब्रह्मा ने पुष्कर में जो यज्ञ किया था, उसमें ये आच्छावाक् पद पर नियुक्त हुए थे। दस हजार श्लोकों से युक्त ब्रह्म पुराण का उपदेश पहले पहल ब्रह्मा ने इन्हीं को किया। वेदों में भी इनकी चर्चा है और प्रायः सभी पुराणों में इनके चरित्र की चर्चा है।

२८. अत्रि

ये भी महर्षि मरीचि का भांति ब्रह्मा के नेत्रों से प्रकट हुए मानस पुत्र तथा प्रजापति हैं। ये दक्षिण दिशा में रहते हैं। इनकी पत्नी अनसूया भगवदवतार कपिल की भगिनी तथा कर्दम प्रजापति की पत्नी देवहूति के गर्भ से पैदा हुई है। जैसे महर्षि अत्रि अपने नाम के अनुसार त्रिगुणातीत थे वैसे ही अनसूया भी असूयारहित थी। इन दम्पति को जब ब्रह्मा ने आज्ञा की कि सृष्टि करो। तब इन्होंने सृष्टि करने के पहले तपस्या करने का विचार किया और बड़ी घोर तपस्या की। इनके तप का लक्ष्य संतानोत्पादन नहीं था। बल्कि इन्हीं आंखों से भगवान् का दर्शन प्राप्त करना था। इनकी श्रद्धापूर्वक दीर्घकाल की निरन्तर साधना और प्रेम से आकृष्ट होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही देवता प्रत्यक्ष उपस्थित हुए। उस समय वे दोनों उनके चिन्तन में इस प्रकार तल्लीन थे कि उनके आने का पता तक न चला। जब उन्होंने ही स्वयं जगाया। तब ये उनके चरणों पर गिर पड़े। किसी प्रकार सम्हल कर उठे और गद्गद्वाणी से उनकी स्तुति करने लगे। इनके प्रेम, सच्चाई और निष्ठा को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वरदान मांगने के लिए कहा। इन दम्पति के मन में अब संसारी सुख की इच्छा तो थी

नहीं, परन्तु ब्रह्मा की आज्ञा थी सृष्टि करने की और वे इस समय सामने ही उपस्थित थे। तब इन्होंने और कोई दूसरा वरदान न मांगकर उन्हीं तीनों को पुत्र रूप में मांगा और भक्ति परवश भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके 'एवमस्तु' कह दिया। समय पर तीनों ने इनके पुत्र रूप से अवतार ग्रहण किया। विष्णु के अंश से दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा और शंकर के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। जिनकी चरण धूलि के लिए बड़े-बड़े योगी और ज्ञानी तरसते रहते हैं। भगवान् अत्रि के आश्रम में बालक बनकर खेलने लगे और दोनों दम्पति उनके दर्शन और वात्सल्य स्नेह के द्वारा अपना जीवन सफल करने लगे। अनसूया को तो अब दूसरी बात सूझती ही नहीं थी। अपने तीनों बालकों को खिलाने-पिलाने में ही लगी रहतीं। उनके बालकों के चरित्र यथा स्थान आयेंगे ही। कल्पभेद से माता अनसूया की पति सेवा की चमत्कार पूर्ण घटना सुनी जाती है कि एक बार देवर्षि नारद जी घूमते हुए अत्रि जी के आश्रम में पहुंचे। वहां पर अनसूया की सेवा शुश्रूषा तथा पति सेवा से विशेष प्रभावित हुए। वहां से ब्रह्मलोक में गये। ब्रह्माणी के सामने अनसूया की महिमा सुनाने लगे। उनकी महिमा सुनने से ब्रह्माणी ईर्ष्या से दुखी हुई। नारद जी वहां से शिव लोक में जाकर पार्वती की निन्दा तथा अनसूया की प्रशंसा करने लगे। विष्णु लोक में जाकर लक्ष्मी की निन्दा तथा अनसूया की प्रशंसा की। तीनों देवियों ने अत्यन्त दुखी होकर अपने-अपने पतियों से अनसूया की परीक्षा करने की प्रार्थना की। तीनों देवियों से प्रेरित त्रिदेव यतियों के वेश में अत्रि के आश्रम में पहुंचे। ऋषि ने भिक्षा के लिए प्रार्थना की। तीनों ने कहा, हम साधारण भिक्षा नहीं करते। आपकी पत्नी वस्त्रहीन होकर भिक्षा बनाये तब ग्रहण करेंगे। उनकी आज्ञा सुनकर माता अनसूया ने पति का चरणोदक लेकर अभिमन्त्रित करके तीनों पर छिड़का। तीनों तत्काल छः-छः महीने के बालक हो गये। माता निःसंकोच भिक्षा बनाने लगीं। बालभाव को प्राप्त त्रिदेव कई साल बीतने पर भी जब लौटकर नहीं आए, तब तीनों देवियों को चिन्ता हुई। तीनों को अत्रि के आश्रम में बालक रूप में देखा। माता अनसूया से प्रार्थनी की। आप कृपया हमारे पतियों को पूर्ववत् कर दें। तब माता जी ने फिर पति का चरणोदक छिड़का। वे तीनों पूर्ववत् हो गये। त्रिदेव त्रिदेवियों सहित पतिव्रता का गुण गान करते हुए, ये सब अपने-अपने लोकों में चले गये।

प्राचीन भारत की सतियों में ऐसी सामर्थ्य थी। आज कल स्वेच्छानुसार घूमने वाली तथा पतियों को तलाक देने वाली नारियों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ऐसी सती साध्वियों की चरण रज से जीव के अनन्त जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं। इन्हीं के पतिव्रत्य, सतीत्व से प्रसन्न होकर वन गमन के समय स्वयं भगवान् श्री राम सीता और लक्ष्मण के साथ इनके आश्रम पर पधारे और इन्हें जगज्जननी मां सीता को उपदेश करने का गौरव प्रदान किया।

कहीं-कहीं ऐसी कथा भी आती है कि महर्षि अत्रि ब्रह्मा के नेत्र से प्रकट हुए थे और अनुसूया दक्ष प्रजापति की कन्या थी। यह बात कल्पभेद से बन सकती है। अनेकों बार बड़ी-बड़ी आपत्तियों से इन्होंने जगत् की रक्षा की। पुराणों में ऐसी कथा आती है कि एक बार राहु ने अपनी पुरानी शत्रुता के कारण सूर्य पर आक्रमण किया और सूर्य अपने स्थान से च्युत हो गये, गिर पड़े। उस समय महर्षि अत्रि के तपोबल और शुभ संकल्प से उनकी रक्षा हुई और जगत् जीवन और प्रकाश से शून्य होते बच गया। तब से महर्षियों ने अत्रि का एक नाम 'प्रभाकर' रख दिया। महर्षि अत्रि की चर्चा वेदों में भी आती है। एक बार जब वे समाधिमग्न थे, दैत्यों ने उन्हें उठाकर शतद्वार यन्त्र में डालकर अग्नि जला दी और इन्हें नष्ट करने की चेष्टा की किन्तु इन्हें इस बात का पता न था। भगवत्प्रेरणा से उस समय अश्वनी कुमारों ने वहां पहुंच कर इन्हें बचाया। इनकी दृष्टि इतनी शीतल, इतनी अमृतमयी और इतनी लोक कल्याणकारिणी थी कि यही मूर्तिमान होकर आज भी चन्द्रमा के रूप में जगत को शीतलता, अमृत और शान्ति का दान कर रहे हैं। धर्मशास्त्रों में अत्रि संहिता एक प्रधान स्मृति है और हमारे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने के लिए वह एक अमूल्य ग्रन्थ रत्न है। इनके विस्तृत और पवित्र जीवन की चर्चा प्राय: समस्त आर्ष ग्रन्थों में आई है।

२९. अंगिरा

महर्षि अंगिरा भी ब्रह्मा के एक मानस पुत्र और प्रजापति हैं। इनकी तपस्या और उपासना इतनी उग्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्नि की अपेक्षा भी बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जल में रहकर तप करते थे। जब उन्होंने देखा कि अंगिरा के तपोबल के सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है, तब बड़े सन्ताप और

ग्लानि के साथ वे महर्षि अंगिरा के पास आये। महर्षि अंगिरा ने उनके विषाद का अनुभव करके कहा, "आपके सन्तप्त होने का कोई कारण नहीं है। आप बड़ी प्रसन्नता के साथ लोगों का कल्याण करें।"

अग्नि ने गिड़गिड़ाकर कहा, "मेरी कीर्ति नष्ट हो रही है, अब मुझे कोई अग्नि कहकर सम्मान नहीं करेगा। आप प्रथम अग्नि हैं और मैं द्वितीय अग्नि हूं।" उस समय अंगिरा ने कहा, "आप अग्नि के रूप में देवताओं को भोजन पहुंचावें और स्वर्ग चाहने वालों को उनका मार्ग बतावें तथा अपनी दिव्य ज्योति द्वारा मुमुक्षुओं का अन्तःकरण शुद्ध करें। मैं आपको पुत्र के रूप में वरण करता हूं।" अग्नि देव ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उनकी बात स्वीकार की और बृहस्पति नाम से उनके पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए।

कहीं-कहीं ऐसी कथा भी आती है कि अंगिरा अग्नि के पुत्र हैं। यह बात कल्पभेद से ही बन सकती है। इनकी पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री स्मृति हैं, जिनसे अनेकों पुत्र और कन्याएं उत्पन्न हुईं।

शिव पुराण में ऐसी कथा आती है कि युग-युग में भगवान् व्यासावतार ग्रहण करते हैं। उनमें वाराह कल्प में वेदों के विभाजक, पुराणों के प्रदर्शक और ज्ञान मार्ग के उपदेशक अंगिरा ही व्याप्त थे। वाराह कल्प के नवें द्वापर में महादेव ने ऋषभ नाम से अवतार ग्रहण किया था। उस समय उनके पुत्र रूप में महर्षि अंगिरा थे। एक बार भगवान् श्री कृष्ण ने व्याघ्रपाद ऋषि के आश्रम पर महर्षि अंगिरा से पाशुपतयोग की प्राप्ति के लिए बड़ी दुष्कर तपस्या की थी। इनके पुत्रों में बृहस्पति जैसे ज्ञानी और अनेकों मन्त्रदृष्टा थे। ये बहुधा देवर्षि नारद के साथ विचरते रहते हैं और वृत्रासुर के पूर्व-जन्म में जब कि वह चित्रकेतु था, इन्होंने उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए उसे पुत्र दान किया और पुत्र के मर जाने पर उसे संसार से वैराग्य का उपदेश करके भगवत्प्राप्ति का मार्ग बताया, जिससे चित्रकेतु को भगवत्प्रेम की प्राप्ति हुई। अभी थोड़े दिन हुए महर्षि अंगिरा की स्मृति भी है मिली जिसमें धर्म-कर्म का बड़ा सुन्दर निरूपण हुआ है। संक्षेप में महर्षि अंगिरा सप्तर्षियों में एक के रूप में जगत् को धारण करते हैं तथा ज्ञान, भक्ति और कर्म के विस्तार के द्वारा सुप्त जीवों को जागृत करके भगवान् की ओर अग्रसर करते हैं। पुराणों में इनका चरित्र भी विस्तार से मिलता है।

३०. पुलस्त्य

महर्षि पुलस्त्य भी पूर्वोक्त ऋषियों की भान्ति ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। ये भी अपनी तपस्या, ज्ञान और दैवी सम्पत्ति द्वारा जगत् के कल्याण सम्पादन में लगे रहते हैं। इनका स्वभाव इतना दयालु है कि जब एक बार अपनी दुष्टता के कारण रावण को कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन के यहां बंदी होना पड़ा था, तब इन्होंने दया वश होकर उनसे अनुरोध किया कि इस बेचारे को मुक्त कर दो और इनकी आज्ञा सुनते ही वह सहस्त्रार्जुन जिसके सामने बड़े-बड़े देवता और वीर पुरुष नतमस्तक हो जाते थे, इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सका। इनके तपोबल के सामने बरबस उसका सिर झुक गया। पुलस्त्य की सन्ध्या, प्रतीची और प्रीति आदि कई स्त्रियां थीं और दत्तोलि आदि कई पुत्र थे। यही दत्तोलि स्वायम्भुव मन्वन्तर में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं की एक पत्नी हवि से विश्रवा हुए थे। जिनके पुत्र कुबेर, रावण आदि हुए। ये योगविद्या के आचार्य माने जाते हैं। महर्षि पुलस्त्य ने ही देवर्षि नारद को वामन पुराण की कथा सुनाई है। जब पाराशर क्रुद्ध होकर राक्षसों के नाश के लिए महान् यज्ञ कर रहे थे, तब वशिष्ठ के परामर्श से पुलस्त्य का अनुरोध मानकर उन्होंने यज्ञ बंद कर दिया, जिससे महर्षि उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें अपनी कृपा और आशीर्वाद से समस्त शास्त्रों का पारदर्शी बना दिया। भगवान् के अवतार ऋषभदेव ने बहुत दिनों तक राज्य पालन करने के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र ऋभु से तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने वाले निदाघ इन्हीं महर्षि पुलस्त्य के पुत्र थे। ये अब भी जगत् की रक्षा दीक्षा में तत्पर हैं और संसार में यत्किञ्चित सुख शान्ति का दर्शन हो रहा है, इनमें इनका बहुत बड़ा हाथ है। महाभारत और पुराणों में इनकी पर्याप्त चर्चा है।

३१. पुलह

महर्षि पुलह भी ब्रह्मा के मानसपुत्र और षोडश प्रजापतियों में एक हैं। ये भी अन्यान्य ऋषियों की भांति जगत के हित साधन में लगे रहते हैं। इन्होंने अपने पिता ब्रह्मा जी की आज्ञा से दक्ष प्रजापति की और महर्षि कर्दम की कन्याओं को पत्नी रूप में ग्रहण करके सृष्टि वृद्धि की। अनेकों योनि और जातियों की सन्तान उनके हुईं। इन्होंने

महर्षि सनन्दन की शरण ग्रहण करेक सम्प्रदाय की रक्षा करते हुए तत्त्व ज्ञान का सम्पादन किया और फिर अपने शरणागत जिज्ञासु गौतम को उसका दान करके जगत् में उसका विस्तार किया। जगत् की आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधिभौतिक शान्ति के लिए ये निरन्तर तपस्या से संलग्न रहते हैं। पुराणों में इसकी चर्चा भी स्थान-स्थान पर आई है।

यह महर्षि शिव जी के बड़े भक्त थे। इन्होंने काशी में 'पुलहेश्वर' नामक शिवलिंग की स्थापना की है। जो अद्यावधि विद्यमान है। इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् शिव ने अपना भी विग्रह प्रकट किया था।

३२. क्रतु

महर्षि क्रतु भी ब्रह्मा जी के मानस पुत्र और षोडश प्रजापतियों में से एक हैं। इन्होंने अपने पिता ब्रह्मा की आज्ञा से कर्दम प्रजापति की पत्नी देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुई क्रिया और दक्ष प्रजापति की सन्तति नाम की कन्या को पत्नी रूप में स्वीकार किया। इनके द्वारा साठ हजार बालखिल्य नाम के पुत्र हुए। ये बाल खिल्य ही भगवान् सूर्य के रथ के आगे आगे उनकी ओर मुंह करके स्तुति करते हे चलते रहते हैं। इन्हीं ब्रह्मर्षियों की महामहिम तपस्या शक्ति ही सूर्य को धारण करती है और ये निरन्तर उनकी उपासना में संलग्न रहते हैं।

यह महर्षि क्रतु ही बाराह कल्प में वेदों के विभाजक, पुराणों के प्रदर्शक और ज्ञानोपदेष्टा व्यास हुए थे। कहीं-कहीं ब्रह्मा की बायीं आंख से उत्पत्ति कही गई है। पुराणों में स्थान-स्थान पर इनकी चर्चा आती है। आज भी यह ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हुए जगत् के कल्याण में लगे रहते हैं।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराण के, सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का चतुर्थ अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ सत्ययुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे, पंचमो अध्याय प्रारम्भ ॥

३३. वशिष्ठ

महर्षि वशिष्ठ जी की उत्पत्ति अनेकों पुराणों में विभिन्न प्रकार से पाई जाती है। कल्प भेद से यह ब्रह्मा, अग्नि तथा मित्रा वरुण के पुत्र कहे जाते हैं। सप्त ऋषियों में परम सती साध्वी अरुन्धती सहित इनका पूजन किया जाता है। आज भी पति सेवा में संलग्न हैं। आप सूर्यवंशी महाराज वैवस्वतमनु से लेकर कलियुगीय सूर्यवंश के अन्तिम, राजा तक उनके कुल गुरु रहे। पौरोहित्यकर्म करने की आपकी इच्छा नहीं थी, परन्तु ब्रह्मा जी ने जब इन्हें समझाया कि त्रेता में भगवान् राम के रूप में इसी वंश में प्रकट होंगे। उनका दर्शन तथा गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। जब कभी अनावृष्टि दुर्भिक्ष आदि होता था। यह अपने तपोबल से वर्षा करवा कर प्राणियों को जीवन दान देते थे। जब महाराज भगीरथ को गंगा लाने में निराशा हुई। तब इन्होंने प्रोत्साहित करके मंत्र दिया था तथा भगीरथ गंगा लाने में समर्थ हुए थे। सन्तानहीन दिलीप को इन्हीं की नन्दिनी गाय की सेवा से पुत्र प्राप्त हुआ था। महाराज दशरथ जी को भी इन्हीं की कृपा से चार पुत्र प्राप्त हुए। जिस समय मुनि विश्वामित्र असुरों से अपनी यज्ञ की रक्षा के लिए राम लक्ष्मण को लेने के लिए अयोध्या में पहुंचे थे। उस समय भगवान् राम वेदाध्ययन के अनन्तर गुरु जी के साथ तीर्थ यात्रा करके जब लौटे तब उन्हें उत्कट वैराग्य तथा मोह सा हो गया था। तब इन्होंने बत्तीस हजार श्लोकों वाला योगावशिष्ठ ग्रन्थ सुनाकर श्री राम जी को ज्ञानोपदेश किया था। उनके काम क्रोधादि शत्रु पराजित होकर उनकी सेवा करते थे। एक बार राजा विश्वामित्र इनके अतिथि होकर सेना सहित आश्रम पर पहुंचे। इन्होंने अतिथि सत्कार किया। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। नन्दिनी की याचना की। इन्होंने देने में असमर्थता प्रकट की। वे जबर्दस्ती करने लगे क्षात्रबल का पूर्ण प्रयोग किया, किन्तु ब्रह्म तेज के आगे सब व्यर्थ हो गया। तब उन्होंने देवताओं की आराधना करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यमराज आदि से अस्त्र शस्त्र प्राप्त किये। इन पर प्रहार किया, परन्तु इन्होंने अपने ब्रह्म दण्ड से निवृत्त कर किया, तब उनके मुख से निकला, **'धिग्वलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलंबलम्। एकेन ब्रह्म दण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे'** क्षत्रिय

बल को धिक्कार है, ब्रह्म तेज ही बल है। एक ब्रह्मदण्ड ने मेरे सभी अस्त्रों को निष्फल कर दिया।

अतः विश्वामित्र राज्य त्याग कर ब्रह्मत्व की प्राप्ति के लिए तप करने लगे। इन्होंने साठ हजार वर्ष घोर तपस्या करके ब्रह्मत्व प्राप्त किया। ब्रह्मा आदि त्रिदेवों ने ब्रह्मर्षि कहा। सभी ऋषियों ने समर्थन किया, किन्तु इन सभी लोगों ने कहा जब तक ब्रह्मर्षि वशिष्ठ आपको ब्रह्मर्षि नहीं कहते, तब तक आप राजर्षि ही हैं। इन्होंने वशिष्ठ आश्रम में जाकर प्रार्थना की, किन्तु वशिष्ठ जी ने ब्रह्मर्षि की उपाधि नहीं दी। इतनी तपस्या करने पर भी शस्त्र धारण करके जाते थे एवं क्षत्रियों जैसा अभिमान और क्रोध शान्त नहीं हुआ था। तब क्रोध में आकर इन्होंने ऋषि के सौ पुत्रों को मार दिया। आप क्षमा की साक्षात् मूर्ति थे। पुत्र शोक होने पर भी क्षमा कर दिया। इतने पर भी विश्वामित्र का क्रोध शान्त नहीं हुआ। तब पत्नी सहित वशिष्ठ जी को मारने का निश्चय किया।

एक दिन शरद् पूर्णिमा की रात्रि में अपने पतिदेव के चरण महासती अरुन्धती दबा रही थी। गुरु वशिष्ठ जी से वार्तालाप कर रही थीं। उन्होंने सुन्दर चांदनी को देखकर पतिदेव से पूछा, हे देववर! यह निष्कलंक शरद् पूर्णिमा की चांदनी किस परम तपस्वी का निष्कलंक तपस्या के समान फैली हुई है। उन्होंने प्रेम के आंसू भर कर रुंधे स्वर में कहा, यह महर्षि विश्वामित्र की तपस्या के तुल्य है। इधर छिपे हुए विश्वामित्र हाथ में तलवार लिये यह बातें सुन रहे थे। अत्यन्त शोकातुर होकर तलवार फैंककर पत्नी सहित महर्षि के चरणों में गिरकर क्षमा मांगी। अपने चरणों पर गिरे हुए रुदन करते हुए विश्वामित्र को इन्होंने ब्रह्मर्षि कहकर हृदय से लगाकर सान्त्वना दी। ऐसे क्षमाशील वशिष्ठ जी हैं। तब से वे वशिष्ठ जी को गुरुवत् मानने लगे, तभी इनकी मैत्री हो गई। इससे पूर्व महाराज हरिश्चन्द्र के निमित्त तथा उनके पिता त्रिशंकु को लेकर इनका घोर विरोध था। यह दोनों आडी वक (गीध और बगुला) बनकर सौ वर्ष तक लड़ते रहे। यह घटना कल्प भेद या मन्वन्तर भेद को लेकर पुराणों में प्रसिद्ध है।

इन्होंने वशिष्ठ सारायणम् नाम का एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें महाभारत की गीता के समान एक अठारह अध्याय वाली श्री राम गीता है। यह गीता भगवान् राम ने हनुमान्

जी को सुनाई है। योग वशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में एक अपूर्व गीता आती है। इस गीता में गुरु वशिष्ठ जी ने भगवान् राम के प्रति द्वापर में होने वाली श्री कृष्णावतार में जो कुरुक्षेत्र में भगवान् ने गीता सुनाई, उसकी भविष्यवाणी की गई है। यह कथा प्रसंग उपदेश भाग में लिखा जाएगा।

एक बार विश्वामित्र तथा वशिष्ठ जी 'तपस्या बड़ी है या सत्संग' इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। वशिष्ठ जी सत्संग को तथा विश्वामित्र जी तपस्या कोबड़ी कहते थे। अन्त में इसका निर्णय कराने के लिए शेष भगवान् के पास गये। दोनों की बातें सुनकर शेष भगवान् ने कहा कि किसी के सिर पर जब बोझ होता है उसकी बुद्धि काम नहीं करती। मेरे ऊपर पूरे ब्रह्माण्ड का भार है। मेरा शिर का बोझ थोड़ी देर के लिए ले लो। मैं निर्णय कर दूंगा। विश्वामित्र जी को तपस्या का अभिमान था। उन्होंने दस हजार वर्ष की तपस्या के फल का संकल्प करके पृथ्वी को रोकने का प्रयास किया। भूकम्प आ गया संसार में त्राहि-त्राहि मच गई। तब वशिष्ठ जी आधे क्षण के सत्संग का फल देकर पृथ्वी को बहुत देर तक धारण किये रहे। जब शेष भगवान् पृथ्वी को लेने लगे, तब विश्वामित्र ने कहा कि आपने निर्णय नहीं किया। मुस्कुराते हुए शेष जी ने कहा निर्णय तो स्वयं ही हो गया। आधे क्षण का सत्संग हजारों वर्ष की तपस्या से श्रेष्ठ है। दोनों ही प्रसन्नता के साथ आश्रम में वापस चले गये।

वशिष्ठ जी की सामर्थ्य–वशिष्ठ जी ब्रह्मा जी के पुत्र होने पर दस ब्रह्माओं की बुद्धि रखते हैं। एक बार एक सूर्यवंशीय राजा के ललाट पर ब्रह्मा जी ने लिखा कि इस राजा के विवाह के समय मृत्यु हो जाएगी। इसका जब पता राजकुमारी को चला तब वह वशिष्ठ जी के चरणों पर गिरकर रुदन करने लगी। उन्होंने आशीर्वाद दिया, "सौभाग्यवती भव" किन्तु जब उसका ललाट देखा, विवाह के समय उसके पति की मृत्यु लिखी देखकर वर की रक्षा के लिए इन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं शंकर जी द्वारा प्राप्त अमृत संजीवनी मंत्र से इसे जीवित कर दूंगा। जिस समय दम्पति परिक्रमा कर रहे थे। उसी समय वर की मृत्यु हो गई। सब रोने लगे, किन्तु वशिष्ठ जी ने मंत्र के प्रभाव से जीवित कर दिया। ब्रह्मा जी ने उसके ललाट में उससे अधिक जीवन नहीं लिखा था। उसी समय चतुर्मुख ब्रह्मा प्रकट हुए। पिता जी को देखकर इन्होंने उनके चरणों में

साष्टांग प्रमाम किया। उन्होंने इनके हृदय से लगाया तथा अपना दाहिना हाथ आगे करके कहा कि तुम तलवार से मेरा दाहिना हाथ काट लो, क्योंकि मैंने इस हाथ से इसकी मृत्यु लिखकर अपराध किया। तुमने जीवित कर दिया। इन्होंने पिता जी के आगे अपनी जीभ निकाली दी, बोले जिस जीभ से मैंने आशीर्वाद दिया। वह जीभ काट लीजिए। मैंने आपके लेख के विरुद्ध आशीर्वाद दिया। इतने में इन्द्रादि देवता दोनों पर फूलों की वर्षा करने लगे। वशिष्ठ जी की जय जयकार होने लगी।

इस कथा से सिद्ध होता है कि वशिष्ठ जी विधाता के लेख को मिटाकर काल की गति को रोकने में समर्थ हैं।

मन्त्र महामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

वशिष्ठ जी की एक लीला–आनन्द रामायण के तीसरे याग काण्ड के आठवें सर्ग में एक कथा आती है। जब भगवान् राम रावण को मारकर अयोध्या आ गये। तब कुभोदर ऋषि की आज्ञा से रावणादि ब्राह्मणों की हत्या का प्रायश्चित करने के लिए सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा करके दस यज्ञ किये। उनमें पहला अश्वमेध यज्ञ जब पूर्ण हो गया। उसका अवभृथ स्नान करने के लिए जब सरयू नदी पर पहुंचे, तब देवता और ऋषियों की बड़ी भीड़ थी। यज्ञारम्भ से पहले भगवान् ने लक्ष्मण द्वारा घोषणा करवा दी थी कि याचक जो भी वस्तु मांगे मुझ से बिना पूछे दे दो। यहां तक की मेरे नौ महारत्नों में से कोई रत्न मांगे, निस्संकोच दे दो। इन रत्नों में कौस्तुभमणि, चिन्तामणि, कामधेनु गौ, पुष्पक विमान, रत्न जड़ित सिंहासन, कहीं का भी राज्य, अयोध्या का राज्य, सीता जी आदि।

गुरु जी ने विचार किया, अन्न, जल, वस्त्र के तो सभी अधिकारी हैं, किन्तु महादान का पात्र श्रोत्रिय ब्राह्मण ही है। इन्होंने महादान में भी पात्रापात्र का विचार नहीं किया। यह धर्म शास्त्र के विरुद्ध है। इन महादानों में भी पत्नी का दान मर्यादा के विरुद्ध है। यद्यपि राम साक्षात् ब्रह्म हैं, परन्तु इस समय नर होकर शिष्य की लीला करते हैं। अतः मुझे राम को शिक्षा अथवा दण्ड देना चाहिए। वशिष्ठ जी ने ऐसा मन में विचार किया। जिस समय विधि विधान से स्नान हो गया। तब भगवान् राम ने गुरु जी के चरण पकड़ कर

कहा कि आप हमारे आचार्य हैं। इनके यज्ञ में ब्रह्मा जी ब्रह्मा, विश्वामित्र होता, गौतम अध्वर्यु थे। भगवान् ने कहा, आप इस शुभ अवसर पर जो कुछ चाहें दान मांग लें। सम्पूर्ण भू-मण्डल का राज्य मैं आपको देता हूं। गुरु जी ने कहा, हे राम! तुम्हारे शील स्वभाव शिष्टाचार से मैं प्रसन्न हूं। मुझे कुछ नहीं चाहिए। श्री राम के विशेष प्रार्थना करने पर उन्होंने सीता जी का दान मांगा। उनके ऐसा कहते ही समाज में सन्नाटा छा गया। सब लोग गुरु वशिष्ठ, सीता तथा राम का मुख ताकने लगे। कुछ लोग कहने लगे, गुरु जी शिष्य की परीक्षा के लिए नाटक करते हैं। कुछ लोग कहने लगे इस बुढ़े का दिमाग खराब हो गया है। सभी लोग मूर्ति की तरह खड़े थे। गुरु की आज्ञा पाकर राम ने कहा, गुरुदेव मैं धर्म पत्नी का दान करता हूं। चारों वेदों में यदि पत्नी दान का मंत्र हो, तो पढ़िये मैं सीता को देता हूं। गुरु तो गुरु ही ठहरे। उन्होंने सर्वस्वदान का संकल्प पढ़कर जल छुड़वाया। सीता जी को गुरु जी को सौंप दिया। सीता जी शोक मुद्रा में नीचे मुख किये खड़ी थीं। गुरु जी ने कहा, सीते तुम मेरी पुत्रीवत् हो। तुम्हारे पति राम ने जो कोई भी चाहे सीता को भी ले जाए, यह अनुचित प्रतिज्ञा की है। यदि कोई और अनधिकारी तुम को मांग लेता तो तुम्हारा, राम का क्या धर्म रहता। श्री राम से कहा कि भविष्य में कभी ऐसी प्रतिज्ञा न करना। पत्नी का दान किसी भी दशा में किसी को नहीं करना चाहिए। अतः तुम सीता जी को तौलकर सोलह गुना सोना देकर सीता को ले सकते हो। भगवान् ने ऐसा ही किया। कालान्तर में सीता की सोने की सोलह मूर्तियां बनवाकर दान किया और सीता को प्राप्त किया। गुरु जी ने वरदान देते हुए कहा, द्वापर में जब तुम कृष्णावतार लोगे तब यह हजार गुना होकर सोलह हजार पत्नियां तुम्हें प्राप्त होंगी। ऐसा कहकर गुरु जी मौन हो गये। सम्पूर्ण देवता ऋषि तथा प्रजा पुष्पों की वर्षा करके तीनों की ही स्तुति करने लगे। इस कथा से शिक्षा प्राप्त होती है कि धन के अभिमान में आकर अनुचित प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए।

श्री राम जी द्वारा गुरु की परीक्षा–भगवान् श्री राम भाइयों सहित श्री गुरु जी के द्वारा पिता, माताओं तथा बहुत से ऋषियों, प्रजागण, मंत्रियों के बीच में योग वसिष्ठ के **"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर"** इनको दिन में हजारों बार सुनते-सुनते ऊब गये। एक दिन तीनों भाइयों के सहित मिलकर श्री राम जी ने कहा आज गुरु जी

की ज्ञान निष्ठा की परीक्षा लेनी चाहिए। वे नित्य प्रति ब्राह्म मुहूर्त में सरयू स्नान करने जाते थे। लौटने पर इन्होंने एक मदोन्मत्त हाथी को गुरु जी की ओर छोड़ दिया। उसने आक्रमण किया, भय के मारे वशिष्ठ जी गिर पड़े। हाथी इन्हें बचाकर निकल गया। चारों भाई छिपकर देख रहे थे। गुरु जी को मूर्च्छित देखकर उठाकर श्री राम जी ले आये, गर्म दूध में केशर और गोघृत डालकर गुरु जी को पिलाया। जब वे स्वस्थ हो गये, तो हाथ जोड़कर श्री राम जी ने पूछा कि आप तो "**ब्रह्मसत्यंजगन् मिथ्या**" कहते थे, फिर भयभीत होकर क्यों गिरे। तब मुस्कुराते हुए गुरु जी ने कहा कि तुम्हारा शरारत करके हाथी छोड़ना भी तो मिथ्या है, मेरा गिरना, दूध पीना आदि भी मिथ्या ही तो है। परमार्थ सत्ता में मिथ्या होने पर भी व्यावहारिक सत्ता में सत्य है।

॥ इति सत्ययुग खण्डे चतुर्थ परिच्छेद का पंचम अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सत्ययुग खण्ड, चतुर्थ परिच्छेदे छठा अध्याय प्रारम्भ ॥

वशिष्ठ जी की आयु विविध ग्रन्थ एवं उपदेश

वशिष्ठ जी की आयु एक मन्वन्तर की है। इस कलियुग के अन्त में तथा सत्ययुग के आरम्भ में अर्थात् २९वें सत्ययुग में सूर्यवंशीय महाराज मरुत्त जो कलाप ग्राम में तप कर रहे हैं, कल्कि भगवान् परिचय सहित इनसे रामायण सुनेंगे तथा अयोध्या की गद्दी पर प्रथम राजा के रूप में गद्दी पर बैठेंगे। तब इनके गुरु वशिष्ठ जी होंगे और सूर्यवंशी राजाओं के फिर से कुलगुरु होंगे। लुप्त हुए वेद शास्त्रों का फिर से उद्धार करेंगे।

इनके ग्रन्थों में योग वशिष्ठ, जिसमें श्री राम के प्रति बत्तीस हजार श्लोकों में छः प्रकरण में ज्ञानोपदेश किया है। इसमें १. वैराग्य प्रकरण, २. मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण, ३. उत्पत्ति प्रकरण, ४. स्थिति प्रकरण, ५. उपशम प्रकरण, ६. निर्वाण प्रकरण है। इसके अतिरिक्त वशिष्ठी हवन पद्धति, वशिष्ठ संहिता, वशिष्ठ स्मृति, रामायण मणिरत्न माला (३६,००० श्लोकों से युक्त) अरुन्धती को वशिष्ठ जी ने सुनाया, दुरन्त रामायणम्– यह वशिष्ठ जी ने जनक को सुनाई ६१,००० हजार श्लोकों में वशिष्ठ सारायणम् इत्यादि अनेकों ग्रन्थ हैं।

उपदेश–योग वशिष्ठ ग्रन्थ के दूसरे प्रकरण मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण में वशिष्ठ जी श्री राम के प्रति कहते हैं कि हे राम जी, जीव के बन्धन तथा मुक्ति का कारण मन ही है। यह मन शुद्ध, अशुद्ध भेद से दो प्रकार का है। शुद्ध मन कामना संकल्प रहित है और अशुद्ध मन कामना संकल्प वाला है। दुष्टों तथा मूर्खों के बीच रहकर मन वासना से युक्त हो जाता है। हे राम जी ! राग राग नहीं, विष विष नहीं, आपत्ति आपत्ति नहीं, किन्तु सबसे बड़ी विपत्ति संसार में मूर्खों के बीच रहकर होतीहै। मूर्ख बुद्धिमानों को भी मूर्ख बना देता है। चाण्डाल के यहां भिक्षा मांगना ठीक है किन्तु अज्ञानियों के बीच में सुखमय जीवन बिताना ठीक नहीं। जल विहीन अंधेरे कूप में रहना अच्छा है, वृक्षों का कीड़ा बनकर रहना अच्छा है, परन्तु मूर्खों के बीच में रहना अच्छा नहीं।

इसी प्रकरण के तेरहवें सर्ग में मन की शान्ति के सम्बन्ध में कहते हैं जो मुमुक्षु मन को निर्मल, शान्त तथा भ्रम से रहित कर चुका है वह पूर्ण है न कुछ त्यागता है, न ग्रहण करता है, हे राम ! मुक्ति के द्वार पर चार द्वार पाल हैं। इन चारों में से किसी एक के साथ मित्रता कर लेने से जीव मुक्ति के द्वार में प्रवेश पाता है–१. शम, २. सद्विचार, ३. सन्तोष, ४. सत्संग यह चार द्वारपाल हैं।

१. शम–शम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिसने मन को जीत लिया है। उसके लिए दसों दिशाएं सुख रूप हैं। चन्द्रमा के समान सूर्य का प्रकाश भी शीतल हो जाता है। शम से सब सिद्ध होता है। शम से शान्ति मिलती है। भ्रान्ति दूर होती है। इसके बिना त्रिलोकी का राज्य भी अच्छा नहीं लगता। जिसने शम रूपी अमृत से मन को सींच लिया है उसके कटे अंग भी जुड़ जाते हैं। शमवान् को सर्प, पिशाच, राक्षस आदि जन्तु भी दुख नहीं देते। जिसने शम रूपी कवच पहनकर शरीर की रक्षा की है, उसके शरीर को प्रह्लाद के समान कोई काट नहीं सकता। जैसे वज्र की शिला को बाण नहीं काट सकता, ऐसे ही शमवान् को कोई काट नहीं सकता। शमी पुरुष को राजा के राजमहल के समान सुख मिलता है। जिसका अन्तःकरण शीतल है। वह संसार का व्यवहार करते हुए भी आसक्त नहीं होता। उसे शान्त कहते हैं। तपस्वियों, विद्वानों तथा राजाओं के बीच में शान्त पुरुष शोभा पाता है। शम रूपी अमृत को कोई छीन नहीं सकता। इसके आश्रित यति मुक्ति प्राप्त करते हैं।

२. सद्विचार–यह पांच प्रकार का है–१. अर्थ, २. अनर्थ, ३. प्रमाण, ४. तात्पर्य, ५. आत्मतत्त्व का विचार। इन सब की परीक्षा पर विचार।

पहले विचार करना चाहिए कि विषयों में आसक्ति अनर्थ का कारण है। शास्त्र तथा वैराग्य आदि मुक्ति का प्रथम कारण है। इनकी परीक्षा करना पहला विचार है। स्त्री पुत्र आदि का शरीर स्वभाव से ही मल मूत्र का भण्डार अमंगल रूप है। ब्रह्मलोक का सुख भी नाशवान् तथा अमंगल रूप है। इन दोनों लोकों के सुख के सम्बन्ध में परीक्षा करना दूसरा विचार है। यह दोनों विचार वैराग्य उत्पन्न करके मुक्ति का कारण हैं।

मोक्ष का साधन कर्म है या उपासना या ज्ञान अथवा एकमात्र ज्ञान है। इसकी परीक्षा करना तीसरा विचार है। यदि ज्ञान मुक्ति का कारण है। तो किस शास्त्र के ज्ञान से मुक्ति होगी। वेदान्त, सांख्य, योग, वैशेषिक आदि में किससे होगी। यदि वेदान्त से मुक्ति होती है तो इसका तात्पर्य द्वैत में है या अद्वैत में इसकी परीक्षा करना चौथा विचार है।

यदि अद्वैत वेदान्त से मुक्ति होती है तो इनका तात्पर्य निश्चित होने पर भी यह आत्मा में घटित होता है या नहीं इसका विचार अथवा इसकी परीक्षा जीव आत्मा की एकता यह पांचवां विचार है। बिना विचार के मुक्ति का दूसरा उपाय नहीं है। विचार से ही अशुभ को त्याग कर शुभ की ओर आता है। विचार से ही बल, बुद्धि, तेज प्राप्त होता है। विचार रूपी खुरपी से अविचार रूपी निरर्थक पेड़ पौधों को काट देना चाहिए। निर्मल मन रूपी सरोवर में विचार रूपी कमल खिलता है। विचारशील मन वाला पराधीन नहीं होता। वह पूर्ण चन्द्रमा के समान आत्म सुख प्राप्त करता है। विचारहीन को जगत् के पदार्थों की इच्छा होती है। मैं कौन हूं, संसार क्या है, इनका विचार करना चाहिए। विचार रूपी नेत्रों से हीन व्यक्ति जन्मान्ध है। वह शोक में पड़ा रहता है जो विचारशील है वह मुक्ति पाता है। अनेकों रोगों से सन्तप्त जीव या अस्त्र शस्त्रों से कटा हुआ, उतना दुखी नहीं होता, जितना विचारहीन पुरुष दुखी होता है। पानी का मेंढक होना, मल का कीड़ा होना अथवा सांप होना उत्तम है परन्तु विचारहीन होना अच्छा नहीं। सभी दुःखों का मूल अविचार है। विचार से तत्त्व बोध होता है। आत्मा को परम शान्ति मिलती है। मानव जीवन सफल हो जाता है।

३. सन्तोष–वशिष्ठ जी कहते हैं, हे राम जी! सन्तोष से सुख मिलता है। मुक्ति मिलती है। सन्तोष रूपी अमृत पीकर जो तृप्त हो गया है। उसे मानों ब्रह्माण्ड की पूरी सम्पत्ति मिल गई। अमृत की तरंगों से भी उतना सुख नहीं मिलता, जितना सन्तोष से। जब तक मन आत्मा में सन्तुष्ट नहीं होता, तब तक मन रूपी बिल से आपत्ति रूपी लतायें उत्पन्न होती रहती हैं। आशा से व्याकुल, सन्तोषहीन, मैले चित्त में उपदेश वैसे ही प्रतिबिम्बत नहीं होता, जैसे मैले दर्पण में मुख नहीं दिखाई देता है। पुरुष रूपी कमल को सन्तोष रूपी सूर्य खिलाता है। जिससे अज्ञान रूपी रात्रि निवृत्त होती है। जो अप्राप्त की इच्छा नहीं करता, प्राप्त को सुख से भोगता है। उस सन्तोषी के लिए सारा जगत् आनन्द स्वरूप है। जो मनुष्य सन्तोष से युक्त है। उसकी सभी सम्पत्तियां राजसेवकों के समान सेवा करती हैं। सन्तोषी को देवता ऋषि मुनि सब प्रणाम करते हैं।

४. सत्संग–हे महाबुद्धे राम! संसार सागर से तारने के लिए सन्त समागम उत्तम है जो पुरुष सत्संग रूपी वृक्ष से उत्पन्न हुए विवेक रूपी पुष्प की रक्षा करता है। वह मुक्ति का अधिकारी है। सत्संगी को मृत्यु उत्सव के समान दीखती है। आपत्ति रूपी कमलिनी के लिए सत्संग बर्फ के समान है। वह अज्ञान रूपी कुहरे को नष्ट करता है। अज्ञान रूपी वृक्ष को काटता है। सत्संग से विवेक रूपी दीपक जलता है। जिसने सत्संग रूपी सरोवर में स्नान किया है। उसे दान, यज्ञ, तीर्थ आदि की आवश्यकता नहीं है। साधक को ऐसे सत्पुरुषों को ढूंढना चाहिए, जैसे निर्धन मणि को ढूंढता है। सत्संग से निर्मल बुद्धि वैसे ही सुशोभित होती है, जैसे देवांगनाओं के बीच में लक्ष्मी जी। सत्संग चूढ़ामणि के समान है। नरक रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए सन्त समागम मेघों के समान है जो इसका निरादर करते हैं वे सूखी लकड़ी के समान नर्क रूपी अग्नि में जलते हैं। सन्तोष, साधु संग, सद्विचार तथा शम यह चारों मनुष्य को संसार सागर से तारते हैं। सन्तोष परम लाभ है सत्संग परम गति है। विचार परम ज्ञान है। शम सबसे बड़ा सुख है। यह चारों उपाय संसार सागर से पार उतारने वाले हैं। इनमें से एक को भी जीवन में उतारने से शेष तीनों की प्राप्ति हो जाती है। शम से विक्षेप नष्ट होकर अन्तःकरण शुद्ध होता है। तब सत्संग, सन्तोष और विचार रूपी जहाज निर्विघ्न चलता है। इन चारों से सुभोषित पुरुष को ज्ञान रूपी सम्पत्ति प्राप्त होती है। जैसे कल्पवृक्ष के

आश्रित की सभी इच्छाएं पूरी होती हैं। वैसे ही चारों बातों से परिपूर्ण मनुष्य में प्रसन्नता रूपी गुण आते हैं। उन्हें विजय लक्ष्मी और मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है। मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण के सर्ग १३ से १६ तक।

चेतन समाधि से मुक्ति, जड़ समाधि से नहीं

इस ग्रन्थ में वशिष्ठ जी ने स्थान-स्थान पर मुक्ति के इन चार उपायों के अतिरिक्त तीन और उपाय बताते हुए कहा है हे राम जी! जब तक मनोनाश, वासनाक्षय तथा तत्त्व बोध नहीं होता तब तक समाधि का अभ्यास करने पर भी जड़ समाधि से मुक्ति नहीं होती। जिसके मन में समाधि से पूर्व कोई वासना हो। समाधि काल में वह दब जाती है। समाधि से जगने पर वह उभर आती है। इन तीनों में से किसी एक के सिद्ध होने पर शेष दो सिद्ध हो जाती हैं। इन तीनों की सिद्धि बिना, लाखों वर्ष की समाधि लगाने पर भी वासना नष्ट नहीं होती।

यह वचन सुनकर अति आश्चर्य करते हुए श्री राम जी ने पूछा हे गुरुदेव! यह कैसे सम्भव है। उत्तर देते हुए गुरु जी ने कहा, हे रघुनन्दन! इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। तुम्हें मैं ऐसा प्रत्यक्ष व्यक्ति दिखाऊंगा जो तुम्हारे पितामह अज के राज्य काल से समाधि में आज भी बैठा है। मुनि का वचन सुनकर सब आश्चर्य में पड़ गये। महाराज दशरथ को भी आश्चर्य हुआ, वे भी इस बात को नहीं जानते थे, वशिष्ठ जी बोले, हे राम! जब तुम्हारे पितामह गद्दी पर बैठे तब वे पन्द्रह वर्ष के थे। आज नये राजा अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठे हैं। इस बात को सुनकर एक बाजीगर जिसका नाम विपश्चित् था नये राजा को अपना जादू का खेल दिखकार पुरस्कार के लिए राजा के पास चला। वह अनेकों खेल दिखाता था। रास्ते में सोचने लगा, महाराज को मैं कौन सा खेल दिखाऊं जिससे वे मुझ पर प्रसन्न हो जाएं। उनके प्रसन्न होने पर मैं क्या मांगू। उसने विचार किया, मैं वृद्ध हो चुका हूं। एक ग्राम से दूसरे गांव तक अपना समान लादकर पैदल चलता हूं। मैं राजा को समाधि लगाने का खेल दिखाकर एक बढ़िया घोड़ा मांगूगा। इस घोड़े की वासना को लेकर वह महाराज अज के पास पहुंचा। उसे प्राण ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ाना आता था, उतारना नहीं। राजा मध्याह्न का भोजन करके वाटिका में बैठे थे। उसने जाकर प्रणाम किया। बोला आप नये राजा हैं आपको बधाई। मैं आपको समाधि

का खेल दिखाऊंगा। वह प्राण खींचकर बैठ गया। कई घंटे तक महाराज प्रतीक्षा करते रहे। यहां तक कि महीनों वर्षों बीत गये। जब तुम्हारे पिता एक वर्ष के थे तब अज की मृत्यु हो गई। तैंतीस वर्ष के आपके पिता थे, तब उनका विवाह कौशल्या के साथ हुआ। इस समय तुम्हारे पिता साठ हजार वर्ष के हो चुके हैं। बाल्मीकिय रामायण बालकाण्ड में विश्वामित्र जी से दशरथ जी ने कहा, "**षष्टि वर्ष सहस्त्राणि जातस्य मम कौशिक! अतिकृच्छ्रेण सम्प्राप्तं न रामं दातु मुत्सहे।**" हे कौशिक! मेरी आयु इस समय साठ हजार वर्ष की है। मैंने बड़े कष्ट से राम को पाया है। मैं इन्हें देने में असमर्थ हूं। इस समय तुम्हारी भी पन्द्रह वर्ष की आयु हो चुकी है। वह बाजीगर आज भी समाधि में बैठा है। इसको सुनकर सभी आश्चर्य करने लगे गुरु जी ने कहा, चलो अभी मैं दिखाता हूं। महाराज अपने मंत्रिमण्डल ऋषियों, माताओं तथा नगर वासियों सहित वहां पहुंचे। वहां पर पेड़ पौधे झाड़ झंखार बहुत थे। सब को साफ किया तथा ऊंचा टीला निकाल खुदाई की गई। एक व्यक्ति पद्मासन पर बैठा दिखाई दिया। उसका मांस, खून सूख गया था। त्वचा सिकुड़ी हुई थी। वशिष्ठ जी ने तेज जड़ी सुंघाई, उसे छींक आ गई। छींक आते ही ब्रह्मरन्ध्र से प्राण नीचे उतर आये। वह समाधि से जगा। नेत्र खोलकर देखा। वशिष्ठ जी ने वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित जल छिड़का। उसका शरीर पूर्ववत् हो गया। संयोग से भगवान् राम वहीं थे, जहां हजारों वर्ष पूर्व उनके पितामह बैठे थे। इतने काल का उसे ज्ञान नहीं रहा। श्री राम का रूप अपने बाबा से मिलता था। उसने उठकर भगवान् को प्रणाम करके कहा, "महाराज मैंने समाधि लगाने का खेल आपको दिखाया है, अब आप प्रसन्न होकर मुझे घोड़ा दीजिए।" उसकी बात को सुनकर सभी आश्चर्य करने लगे।

गुरु जी ने कहा हे राम! समाधि लगाने से पूर्व इसके मन में घोड़े की वासना थी। समाधि काल में दबी रही। समाधि खुलते ही जागृत हो गई। अतः जड़ समाधि के अभ्यास से वासना क्षय, मनोनाश तथा तत्त्व बोध नहीं होता। **(इति वासना क्षय, मनोनाश तत्त्व बोध का उपाय सम्पूर्ण)**

॥ इति सत्ययुग खण्डे चतुर्थ परिच्छेद का छठा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्थ परिच्छेद का सातवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अपूर्व (पूर्व) गीता

महाभारत के भीष्म पर्व के पचीसवें अध्याय से आरम्भ होने वाली प्रसिद्ध अठारह अध्याय वाली श्रीमद्भागवद गीता, महाभारत में भगवद्गीता पर्व के नाम से प्रसिद्ध है। इस गीता को भगवान् ने श्री राम के रूप में गुरु वशिष्ठ जी से निर्वाण प्रकरण के पूर्वार्द्ध में सुना था। उसी का उपदेश कृष्णावतार में अर्जुन के प्रति किया था। यह गीता भगवद्गीता के पूर्व में होने के कारण पूर्व गीता के नाम से कही जाती है। इसका आरम्भ निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध के ५२वें सर्ग से ५८वें सर्ग तक है। योग वशिष्ठ में इसका नाम 'अर्जुनोपाख्यानम्' है। गुरु जी भविष्यवाणी करते हुए कहते हैं। हे राम! दुष्टों से पीड़ित पृथ्वी द्वापर के अन्त में भगवान् की शरण लेगी। तब भगवान् नर-नारायण के रूप में अपने अनुचर देवताओं के साथ दो रूपों में अवतार लेंगे। इनके एक वसुदेव पुत्र वासुदेव होंगे तथा दूसरे पाण्डु पुत्र अर्जुन के नाम से प्रसिद्ध होंगे। उनके बड़े भाई युधिष्ठिर होंगे। उनके ताऊ का पुत्र दुर्योधन होगा। दुर्योधन के प्रतिद्वन्द्वी भीमसेन होंगे। नर अर्जुन के रूप में महागाण्डीव के द्वारा पृथ्वी का भार उतारेंगे, आरम्भ में यह युद्ध करने से आनाकानी करेंगे। तब भगवान् श्री कृष्ण उन्हें उपदेश करेंगे।

"हे अर्जुन! आत्मा उत्पत्ति विनाश से रहित है। आकाशवत् सूक्ष्म तथा सर्ववयपी है। यही तुम्हारा स्वरूप है। न तुम मरने वाले हो, न मारने वाले हो, आत्मा इन्द्रियों से परे है। जिसकी शरीर आदि में अहंता ममता नहीं है, वह न मरता है, न मारता है, क्योंकि उसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती। जो इच्छा रहित कर्म करता है, वह कर्म से लिप्त नहीं होता। युद्ध से भागना क्षत्रियों का धर्म नहीं अतः तुम युद्ध करो। कर्म आदि में भी ब्रह्म बुद्धि करो। ब्रह्म की प्रसन्नता के लिए कर्म करो। संन्यास योग में स्थित होकर कर्म करो।"

अर्जुन पूछेंगे हे भगवन्! संग त्याग किसे कहते हैं? ब्रह्मार्पण तथा संन्यास का लक्षण मेरे प्रति कहिये। हे प्रभो! ज्ञान तथा योग में क्या अन्तर है?

भगवान् बोले, हे अर्जुन! सर्व संकल्पों को शान्त कर मन को वासना रहित करके जो चेतन मात्र में रहता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं। अज्ञान की अत्यधिक निवृत्ति करने वाली चित्त की ब्रह्माकार वृत्ति को योग और ज्ञान कहते हैं। 'सम्पूर्ण जगत् तथा मैं ब्रह्म हूं।' विद्वानों ने इसे ब्रह्मार्पण कहा है। बाहर भीतर अचेतन पाषाणवत् शान्त होना आकाश के समान निर्मल होना, ब्रह्म और आत्मा को अभिन्न देखना ब्रह्म ज्ञान है। तीनों परिच्छेदों से रहित, निर्विकार आत्मा को ब्रह्म के नाम से कहा जाता है। जैसे सभी पर्वत पाषाणमय हैं, वृक्ष काष्ठमय हैं, जल तरंग रूप है, वैसे ही सब पदार्थ ब्रह्म रूप है। हे अर्जुन जो सुख, दुख में हर्ष, शोक से रहित है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। अतः तुम जो भोजन, हवन, दान आदि करते हो, वह मुझ में स्थिर होकर करो। कर्म को अकर्म, अकर्म को कर्म में देखने वाले मनुष्यों में बुद्धिमान है। वह समस्त कर्म कर चुका है। फल की इच्छा को त्याग कर कर्म करो। जिसने ज्ञान रूपी अग्नि से कर्मों को भस्म कर दिया है, विद्वान् उसे पण्डित कहते हैं। जो इन्द्रियों को रोककर मन से विषयों का चिन्तन करता है, वह दम्भी है। जैसे नदियां सागर में मिलकर शान्त हो जाती हैं। वैसे ही जिसकी कामनाएं शान्त हो चुकी हैं वह ही शान्ति प्राप्त करता है, कामना वाला नहीं। अतः द्वैत बुद्धि छोड़कर मुझ में स्थित हो।

अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! जब मुझ में जन्म मरण नहीं है, तो मैं मरता हूं, मनुष्यों को यह अज्ञान किस कारण होता है तथा स्वर्ग-नरक किसको मिलता है।

श्री भगवान् बोले, हे अर्जुन! पंच महाभूतों से रचेहुए शरीर आदि में आत्मा बुद्धि भ्रम से है। भ्रम की निवृत्ति होने पर जीव मुक्त हो जाता है। भ्रम से ही जीव बन्धन को प्राप्त होता है। जीव वासना से खींचता है, वासना के वशीभूत हुआ, यह जीव पुराने शरीर में ऐसे निकलता है, जैसे बरगद के पेड़ से उसका दूध निकलता है। यह एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में अच्छी बुरी वासना के अनुसार जैसे वायु गन्ध को लेकर जाती है, जाता है। परन्तु इस जन्म के परम पुरुषार्थ से पूर्व जन्म की वासनाएं वैसे ही नष्ट होती है, जैसे पूर्व काल का घर नष्ट होता है। पुरुषार्थ तथा भाग्य इन दोनों में जो प्रबल है, उसकी विजय होती है। स्वर्ग, नर्क का सुख, दुख जीव वासना से देखता है। अर्जुन

बोले! जगत् की स्थिति का कारण क्या है? इस जीव को स्वर्ग नरक का भय किस कारण से होता है? वासना कहां पैदा होती है? इसका नाश कैसे होता है।

श्री भगवान् बोले, जब जीव के तत्त्व बोध में प्रमाद होता है अर्थात् स्वरूप की विस्मृति होती है। तब शरीर आदि में आत्म बुद्धि करने से वासना उत्पन्न होती है। आत्म ज्ञान से उसका नाश होता है। अतः वासना की निवृत्ति के लिए मन को निर्मल करके सत्य वस्तु को जानों तथा देह आदि की ममता त्यागो।

अर्जुन ने पूछा, वासना से ही जीव में जीवत्व है, अतः वासना के नष्ट होने पर तो जीव भी नहीं रहेगा। आप इसे अविनाशी कहते हैं, क्योंकि जिसकी सत्ता से उत्पत्ति है, उसके अभाव में उसका नाश है। देश काल के स्पर्श से रहित शुद्ध स्वरूप से अन्यथा रूपधारी जीव का विषय हो जाने पर जन्म मरण किसको प्राप्त होता है?

भगवान् ने कहा, हे महामते! अपने ही संकल्प से जब आत्मा का स्वरूप कलुषित (ढक) हो जाता है। तब वासना की प्रधानता होने के कारण उसे जीव कहते हैं। ज्ञान द्वारा संकल्प का अभाव होने पर जीव वासना रहित अविनाशी आत्म स्वरूप को जानता है। इसी का नाम मोक्ष है। हे महावाहो वासना को त्याग कर आत्म स्वरूप में स्थित होकर अपने स्वरूप को तुम अपने अन्तःकरण में देखो। तब तुम्हारी वासना छूट जाएगी। जो सर्वज्ञहोने पर भी वासना नहीं त्यागता। वह पिंजरे में बंद पक्षी के समान है। वासना से जीव बंधता है तथा इसके नाश से मुक्त होता है।

आगे भगवान् ने कहा, जिसको इष्ट, अनिष्ट प्रभावित नहीं करते वह वीत राग है। अपने वर्णाश्रम अनुसार कार्य करो। तुम मरने मारने का भाव छोड़ दो। चूंकि चिदाकाश में मरने वाला कोई नहीं है। तुमने ही यह कामना कर रखी है। यह कैसी आश्चर्य की बात है जगत् रूपी चित्र की न दीवार है न रंग है न ब्रुश या लेखनी है। फिर भी इसमें नवग्रह सूर्य का उदय अस्त, दिशाएं, तारागण, चन्द्रमा, आकाश रूपी दीवाल पर अंकित जगत् रूपी चित्र को चित्त रूपी आकाश में माया रूपी नटी चित्र की रचना करती है। वह सोने के समान उज्ज्वल ब्रह्माण्ड रूपी लता को धारण करती है। मेघ इसके बाल हैं, सूर्य चन्द्रमा रूपी नेत्र हैं। धर्मार्थ काम में प्रवृत्ति और निवृत्ति रूपी इसके वस्त्र हैं। सात

भगवान् बोले, हे अर्जुन! सर्व संकल्पों को शान्त कर मन को वासना रहित करके जो चेतन मात्र में रहता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं। अज्ञान की अत्यधिक निवृत्ति करने वाली चित्त की ब्रह्माकार वृत्ति को योग और ज्ञान कहते हैं। 'सम्पूर्ण जगत् तथा मैं ब्रह्म हूं।' विद्वानों ने इसे ब्रह्मार्पण कहा है। बाहर भीतर अचेतन पाषाणवत् शान्त होना आकाश के समान निर्मल होना, ब्रह्म और आत्मा को अभिन्न देखना ब्रह्म ज्ञान है। तीनों परिच्छेदों से रहित, निर्विकार आत्मा को ब्रह्म के नाम से कहा जाता है। जैसे सभी पर्वत पाषाणमय हैं, वृक्ष काष्ठमय हैं, जल तरंग रूप है, वैसे ही सब पदार्थ ब्रह्म रूप है। हे अर्जुन जो सुख, दुख में हर्ष, शोक से रहित है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। अतः तुम जो भोजन, हवन, दान आदि करते हो, वह मुझ में स्थिर होकर करो। कर्म को अकर्म, अकर्म को कर्म में देखने वाले मनुष्यों में बुद्धिमान है। वह समस्त कर्म कर चुका है। फल की इच्छा को त्याग कर कर्म करो। जिसने ज्ञान रूपी अग्नि से कर्मों को भस्म कर दिया है, विद्वान् उसे पण्डित कहते हैं। जो इन्द्रियों को रोककर मन से विषयों का चिन्तन करता है, वह दम्भी है। जैसे नदियां सागर में मिलकर शान्त हो जाती हैं। वैसे ही जिसकी कामनाएं शान्त हो चुकी हैं वह ही शान्ति प्राप्त करता है, कामना वाला नहीं। अतः द्वैत बुद्धि छोड़कर मुझ में स्थित हो।

अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! जब मुझ में जन्म मरण नहीं है, तो मैं मरता हूं, मनुष्यों को यह अज्ञान किस कारण होता है तथा स्वर्ग-नरक किसको मिलता है।

श्री भगवान् बोले, हे अर्जुन! पंच महाभूतों से रचेहुए शरीर आदि में आत्मा बुद्धि भ्रम से है। भ्रम की निवृत्ति होने पर जीव मुक्त हो जाता है। भ्रम से ही जीव बन्धन को प्राप्त होता है। जीव वासना से खींचता है, वासना के वशीभूत हुआ, यह जीव पुराने शरीर में ऐसे निकलता है, जैसे बरगद के पेड़ से उसका दूध निकलता है। यह एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में अच्छी बुरी वासना के अनुसार जैसे वायु गन्ध को लेकर जाती है, जाता है। परन्तु इस जन्म के परम पुरुषार्थ से पूर्व जन्म की वासनाएं वैसे ही नष्ट होती हैं, जैसे पूर्व काल का घर नष्ट होता है। पुरुषार्थ तथा भाग्य इन दोनों में जो प्रबल है, उसकी विजय होती है। स्वर्ग, नर्क का सुख, दुख जीव वासना से देखता है। अर्जुन

बोले! जगत् की स्थिति का कारण क्या है? इस जीव को स्वर्ग नरक का भय किस कारण से होता है? वासना कहां पैदा होती है? इसका नाश कैसे होता है।

श्री भगवान् बोले, जब जीव के तत्त्व बोध में प्रमाद होता है अर्थात् स्वरूप की विस्मृति होती है। तब शरीर आदि में आत्म बुद्धि करने से वासना उत्पन्न होती है। आत्म ज्ञान से उसका नाश होता है। अतः वासना की निवृत्ति के लिए मन को निर्मल करके सत्य वस्तु को जानों तथा देह आदि की ममता त्यागो।

अर्जुन ने पूछा, वासना से ही जीव में जीवत्व है, अतः वासना के नष्ट होने पर तो जीव भी नहीं रहेगा। आप इसे अविनाशी कहते हैं, क्योंकि जिसकी सत्ता से उत्पत्ति है, उसके अभाव में उसका नाश है। देश काल के स्पर्श से रहित शुद्ध स्वरूप से अन्यथा रूपधारी जीव का विषय हो जाने पर जन्म मरण किसको प्राप्त होता है?

भगवान् ने कहा, हे महामते! अपने ही संकल्प से जब आत्मा का स्वरूप कलुषित (ढक) हो जाता है। तब वासना की प्रधानता होने के कारण उसे जीव कहते हैं। ज्ञान द्वारा संकल्प का अभाव होने पर जीव वासना रहित अविनाशी आत्म स्वरूप को जानता है। इसी का नाम मोक्ष है। हे महावाहो वासना को त्याग कर आत्म स्वरूप में स्थित होकर अपने स्वरूप को तुम अपने अन्तःकरण में देखो। तब तुम्हारी वासना छूट जाएगी। जो सर्वज्ञहोने पर भी वासना नहीं त्यागता। वह पिंजरे में बंद पक्षी के समान है। वासना से जीव बंधता है तथा इसके नाश से मुक्त होता है।

आगे भगवान् ने कहा, जिसको इष्ट, अनिष्ट प्रभावित नहीं करते वह वीत राग है। अपने वर्णाश्रम अनुसार कार्य करो। तुम मरने मारने का भाव छोड़ दो। चूंकि चिदाकाश में मरने वाला कोई नहीं है। तुमने ही यह कामना कर रखी है। यह कैसी आश्चर्य की बात है जगत् रूपी चित्र की न दीवार है न रंग है न ब्रुश या लेखनी है। फिर भी इसमें नवग्रह सूर्य का उदय अस्त, दिशाएं, तारागण, चन्द्रमा, आकाश रूपी दीवाल पर अंकित जगत् रूपी चित्र को चित्त रूपी आकाश में माया रूपी नटी चित्र की रचना करती है। वह सोने के समान उज्ज्वल ब्रह्माण्ड रूपी लता को धारण करती है। मेघ इसके बाल हैं, सूर्य चन्द्रमा रूपी नेत्र हैं। धर्मार्थ काम में प्रवृत्ति और निवृत्ति रूपी इसके वस्त्र हैं। सात

पाताल इसके चरण हैं। ऊंची पृथ्वी इसके स्तन हैं। इस त्रिलोकी नटी के ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र यह इसके चार हाथ हैं। यह सतोगुण रूपी कंचुकी धारण करती है। विवेक वैराग्य इसके दो पुत्र हैं। शेष आदि नौ नागों से घिरी हुई पृथ्वी इसका आसन है। हिमालय पर्वत रूपी तिलक धारण करती है। काले पर्वत इसका पेट हैं। वह चन्द्र, सूर्य रूप नेत्रों से परिक्रमा करके रात्रि के अंधकार को दूर करती है। तारागण तथा बिजली इसके दांत हैं। चौदह चंचल प्राणी इसके रोमांच हैं। पर्वतों को भी उड़ाने वाली वायु रूपी पुष्प को धारण करती है। समष्टि व्यष्टि जीवों से युक्त विचित्र आकाश के समान शून्य में अनेक क्रियाओं से युक्त होकर त्रिलोकी रूपी इस चित्र की सामग्री जीवों की अनेक प्रकार की वासना कामना तथा कर्म सामग्री से युक्त है। इसने चिदाकाश (ज्ञानाकाश, चेतन आत्मा) में त्रिलोकी का चित्र खींचा है।

भगवान् बोले, हे अर्जुन इस संसार के विषय में बड़ा आश्चर्य है, बिना आधार, रंग आदि के कोई चित्र नहीं खींच सकता, किन्तु यह त्रिलोकी का चित्र उलटा है। पहले जगत् रूपी चित्र बना तब इसका आधार कागज दीवार या लकड़ी इसका आधार स्थानीय जगत् हुआ। जगत् के बाद आधार बना। यह स्वप्न या जादूगरी के समान है। जैसे बाजीगर पानी में लौकी डुबा देता है। पत्थर तैरा देता है। वैसे ही यह सब चिदाकाश में रचा गया है। उसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होता है। जैसे छोटे से बीज से महान् वृक्ष हो जाता है। वैसे ही थोड़ा सा वासना रूपी बीज, चित्त रूपी भूमि में पड़कर जगत् की रचना करता है। परन्तु आत्म ज्ञान रूपी अग्नि वासना रूपी बीज को जला देती है। अतः तुम वासना रहित होकर अपने नित्य मुक्त स्वरूप में स्थिर हो जाओ।

उपसंहार–अर्जुन बोले, हे अच्युत! आपकी कृपा से मुझे स्वरूप की स्मृति हुई है। मोह नष्ट हो चुका है। आपकी युद्ध करना रूपी आज्ञा का पालन करूंगा। निर्वासित जीवन मुक्त पुरुष आत्मा में वासना का वैसे ही दर्शन नहीं करता, जैसे मनुष्य परमाणुओं को नहीं देखता। जैसे अग्नि के पर्वत पर बर्फ का कण तुरन्त नष्ट हो जाता है। वैसे ही शुद्ध चित्त में अविद्या नष्ट हो जाती है। श्री भगवान् ने कहा, हे अर्जुन तुम आत्म दर्शन

रूपी मंत्र से विषय रूपी विषूचिका, जो अहंकार में टिकी हुई है, वासना सहित नष्ट कर दो।

वशिष्ठ जी राम से बोले, हे राम जी ! ऐसा कहकर कृष्ण मौन हो जाएंगे। तब पाण्डु पुत्र अर्जुन भगवान् के वचन को, वैसे ही धारण करेंगे, जैसे कमल को भ्रमर धारण करता है। जैसे सूर्योदय पर कमलिनी खिल जाती है। वैसे ही अर्जुन की चित्त वृत्ति खिल गई। उन्होंने युद्ध किया। अन्त में अर्जुन की विजय हुई। (पूर्वगीता सम्पूर्ण)

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का सातवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ आठवां अध्याय प्रारम्भ ॥

दस ब्रह्माओं की कथा

योग वाशिष्ठ उत्पत्ति प्रक्रण में श्री राम जी से वशिष्ठ जी ने कहा हे राम ! जिस योग वाशिष्ठ का उपदेश मैं तुम्हें कर रहा हूं। इसको मैंने सृष्टि के आरम्भ में पूर्ण ज्ञान सम्पन्न होने पर भी जगत् के कल्याण के लिए अज्ञानी के समान ब्रह्मा जी से पूछा था, उन्होंने यह ग्रन्थ भगवान् विष्णु से प्राप्त किया था। पिता जी ने मुझ से कहा हे महर्षे ! सम्पूर्ण जगत् मन की कल्पना मात्र है। मैंने पूछा हे ब्रह्मन् ! प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला ऋषि, मुनि, देवता, सूर्य, चन्द्रमा आदि से युक्त यह जगत् कल्पना कैसे हो सकता है। ब्रह्मा जी बोले, हे प्रिय पुत्र ! सारा जगत् मन से उत्पन्न हुआ है। जैसे जलाशय में तरंगे या भंवर पैदा होते हैं। पूर्व सृष्टि के कल्प के आरम्भ में जब मैं जगा तथा सृष्टि रचने की इच्छा हुई, मैंने सन्ध्योपासना करके पूजन किया। अपने नेत्रों को आकाश में फैलाया। वहां न अंधकार था न प्रकाश। इसके पश्चात् उस महाकाश में मैंने कई सृष्टियां देखीं। पूर्व कल्प के दश राजकुमार ब्रह्मा होने के लिए तप कर रहे थे। वर्तमान सृष्टि के विरंचि नाम के सातवें ब्रह्मा इस कथा को सुना रहे हैं। ब्रह्मा जी कहते हैं, मैंने अपने प्रतिबिम्ब के समान ही अपने ही आकार के दस राजहंसों पर बैठे हुए, लाल नेत्रों से युक्त चारमुखों वाले, कमल पर बैठे दश ब्रह्मा देखे। उनके शरीर से चारों ओर से जीव उत्पन्न हो रहे थे। ब्रह्माओं के दश ब्रह्माण्ड भी देखे। एक ब्रह्माण्ड में चौदह या इक्कीस लोक होते हैं।

उन ब्रह्माण्डों में अनेकों नदियां समुद्र बह रहे थे। अनेकों सूर्य, चन्द्रमा भी देखे। आकाश में अनेकों ब्रह्माण्ड ऐसे दीखते थे, जैसे अनार के पेड़ पर अनार के फल हों। जैसे ब्राह्मण तीन तन्तु का यज्ञोपवीत धारण करते हैं। ऐसे ही त्रिलोकी परम पुरुष के शरीर में मैंने गंगा की तीन धाराओं के समान देखीं। हे वशिष्ठ शुद्ध ब्रह्म में मैंने मन की कल्पना से यह सब देखा, यह वस्तुएं चर्म चक्षुओं से नहीं दीखतीं। तीसरे नेत्र से दीखती हैं। मैंने सूर्य को अपने पास बुलाकर स्वागतपूर्वक पूछा, तुम कौन हो? कैसे हो? उन्होंने मुझे पहचान कर कहा, कि आप तो सब कुछ जानते हो। फिर मुझ से क्यों पूछते हो। फिर भी आपकी आज्ञा से कहता हूं। सूर्य ने कहा, एक अखण्ड चेतन आत्म तत्त्व सत्य है। एक होने पर उपाधि से अनेक दीखता है। आप अपने समान दस ब्रह्माओं को देखते हो। यह सत्य नहीं, रस्सी में सर्प के समान कल्पित मिथ्या है।

दश ब्रह्माओं के पूर्व जन्म की कथा–यह दश ब्रह्मा पूर्व जन्म में 'इन्दु' नाम के ब्राह्मण की तपस्या से उनकी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए। पहले इनके कोई सन्तान नहीं थी। इसके लिए दम्पति ने तप किया। वे कैलाश पर्वत पर कई दिनों के बाद एक चुल्लू पानी पीकर तप करते थे। पूरा त्रेता तथा द्वापर युग पंचाक्षरी मंत्र का जप करते हुए तप किया। इनके तप से प्रसन्न होकर पार्वती सहित शंकर जी प्रकट हुए। दोनों ने प्रणाम किया, तब शंकर जी ने कहा, हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं, जो चाहो वर मांगो। दोनों ने हाथ जोड़कर कहा, हे देवेश! समस्त गुणों से युक्त कल्याणकारी दस पुत्र हों। शिव जी तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गये। दम्पति घर लौट आए। कालान्तर में इनको दश पुत्र प्राप्त हुए। इन दशों बालकों के जात कर्म से लेकर वेदाध्ययन तक संस्कार हुए। सात वर्ष की आयु में ही समस्त वेदों सहित शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। तप करते हुए माता, पिता परलोक सिधार गये। दशों अनाथ बालक कैलाश पर्वत पर विचरण करने लगे। यहां सर्वोत्तम कल्याणकारी पदार्थ कौन है, वे नित्य अनित्य का विचार करने लगे। इस लोक के निरोगी, चक्रवर्ती सम्राट् को पत्नी तथा पुत्र सहित सर्वोत्तम जो सुख मिलता है। इस सुख से लेकर पितरों, देवों, गन्धर्वों, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति तथा ब्रह्मा के सुख पर्यन्त सभी सुखों का विचार किया, क्योंकि एक मन्वन्तर का देवराज इन्द्र का सुख, ब्रह्मा जी के अड़तालीस मिनट के बराबर है। इतने समय में इन्द्र की मृत्यु हो जाती

है। अतः ऐसा पद प्राप्त करना चाहिए। जिसका कल्पान्त में नाश न हो। बड़े भाई ने कहा ब्रह्मा का पद सर्वोत्तम है। अतः उस पद की प्राप्ति के लिए तप करना चाहिए। नवों भाइयों ने समर्थन किया। अनुजों ने पूछा, इस पद की प्राप्ति कैसे होगी? अग्रज ने कहा, हम ही कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्मा हैं। हमारे ही तेज से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होता है। जब तक ब्रह्म पद प्राप्त न हो, तब तक हम ब्रह्मा का ध्यान करें। दशो भाई कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा जी का ध्यान करने लगे। भृंगी कीटन्याय से उन्होंने अपने को ब्रह्मा रूप में देखा, वे तपस्या में इतने तल्लीन हुए कि इन सभी के शरीर के मांस को पशु पक्षी खाने लगे, किन्तु इन्हें पता नहीं चला। यहां तक कि उनके शरीर सूखे पेड़ के पत्तों के समान गिर पड़े। शरीरों को पशुओं ने खा लिया। इन्होंने एक महायुग ४३,२०,००० वर्ष (तैतालीस लाख बीस हजार) तपस्या की। रात्रि आ गई प्रलय हुआ। प्रलय बीतने पर दूसरे कल्प की सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि को विरंचि ब्रह्मा ने देखा कि मेरे विराट् शरीर में दसों भाई स्थूल शरीरों का त्याग करने भी सूक्ष्म शरीर की मनोवृत्ति से ध्यान समाधि में पूर्ववत् बैठे हैं।

सूर्य इस कथा को सुनाते हुए ब्रह्मा जी से कहते हैं, हे ब्रह्मन्! वही पूर्व कालीन इन्दु ब्राह्मण के दस पुत्र आपको दस ब्रह्माओं के रूप में दीखते हैं। इन दशों ब्रह्माओं के चित्ताकाश में दश ब्रह्माण्ड स्थित हैं।

कथा का भाव–इन दश ब्रह्माओं के कथा प्रसंग से यह सिद्ध होताहै कि जैसे स्वप्न द्रष्टा के मन में स्वप्न का जगत् सगुण साकार रूप में दीखता है। वैसे ही यह जागृत का जगत् भी व्यष्टि जीव के मन द्वारा कल्पित मिथ्या है। हम सब के जन्म से लेकर मृत्यु तक जगत् समष्टि जीव ब्रह्मा के द्वारा कल्पित है। अतः दोनों ही मिथ्या हैं। कल्पित होने पर बी अज्ञान से दीखता है। वैसे ही ब्रह्मा जी ने अपने मन में दशा ब्रह्मा तथा दश ब्रह्माण्डों का दर्शन किया था। अतः इसमें **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'** का सिद्धान्त सत्य सिद्ध होता है। इस अनुभव के बिना जीव को शान्ति नहीं मिल सकती। **(योग वाशिष्ठ उत्पत्ति प्रकरण सर्ग ८४ से ८७ तक)**

॥ इति सत्ययुग खण्ड का चतुर्थ परिच्छेद का आठवां, अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ नवां अध्याय प्रारम्भ ॥

३४. भृगु

भृगु ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक हैं। ये एक प्रजापति भी हैं। चाक्षुष मन्वन्तर में इनकी सप्तर्षियों में गणना होती है। इनकी तपस्या का अमित प्रभाव है। दक्ष की कन्या ख्याति को इन्होंने पत्नी रूप में स्वीकार किया था। उनके धाता विधाता नाम के दो पुत्र और श्री नाम की एक कन्या हुई। इन्हीं श्री का पाणिग्रहण भगवान् नारायण ने किया था, इनके और बहुत सी सन्तानें हैं, जो विभिन्न मन्वन्तरों में सप्तर्षि हुआ करते हैं। वाराह कल्प के दसवें द्वापर में महादेव ही भृगु के रूप में अवतीर्ण होते हैं। कहीं-कही स्वायम्भुव मन्वन्तर के ऋषियों में भी भृगु की गणना है। सुप्रसिद्ध महर्षि च्यवन इन्हीं के पुत्र हैं। इन्होंने अनेक यज्ञ किये, कराये हैं और अपनी तपस्या के प्रभाव से अनेकों संतानें प्रदान की हैं। ये श्रावण और भाद्रपद के महीने में भगवान् सूर्य के रथ पर निवास करते हैं। प्राय: सभी पुराणों में महर्षि भृगु की चर्चा आई है। उसका अशोषत: वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता है, उनके जीवन की एक बहुत प्रसिद्ध घटना है, जिसके कारण सभी भक्त उन्हें याद करते हैं, लिख दी जाती है।

एक बार सरस्वती नदी के तट पर ऋषियों की बहुत बड़ी परिषद् बैठी थी। उसमें यह विवाद छिड़ गया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों में कौन बड़ा है। इसका जब कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिला, तब इस बात का पता लगाने के लिए सर्वसम्मति से महर्षि भृगु ही चुने गये। ये पहले ब्रह्मा जी की सभा में गये और वहां अपने पिता को न तो नमस्कार किया और न ही स्तुति की। अपने पुत्र की इस अवहेलना को देखकर ब्रह्मा के मन में बड़ा क्रोध आया, परन्तु इन्होंने अपना पुत्र समझ कर इन्हें क्षमा कर दिया। अपने क्रोध को दबा दिया। इसके बाद कैलाश पर्वत पर अपने बड़े भाई रुद्रदेव न प्रणाम किया न स्तुति की। अपने क्रोध को दबा दिया। इसके बाद कैलाश पर्वत पर अपने बड़े भाई रुद्रदेव के पास गये। अपने छोटे भाई को आते देखकर आलिंगन करने के लिए वे आगे बढ़े, परन्तु भृगु ने यह कहकर कि तुम उन्मार्गगामी हो उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। उन्हें बड़ा क्रोध आया और वे त्रिशूल उठाकर मारने के लिए दौड़

पड़े। अन्ततः पार्वती ने उनके चरण पकड़ कर प्रार्थना की और क्रोध शान्त किया। अब भगवान् विष्णु की बारी आई। ये बेखटके बैकुण्ठ में पहुचं गये। वहां ब्राह्मण भक्तों के लिए कोई रोक टोक तो है नहीं। ये पहुंच गये भगवान् के शयनागार में। उस समय भगवान् विष्णु सो रहे थे और भगवती लक्ष्मी उनको पंखा झल रही थीं, उनकी सेवा में लगी हुई थीं। इन्होंने बेधड़क वहां पहुंच कर उनके वक्ष स्थल पर एक लात मारी। तुरन्त भगवान् विष्णु अपनी शय्या से उठ गये और इनके चरणों पर अपना सिर रखकर नमस्कार किया और कहा, 'भगवन्' आइये, आइये, विराजिए, आपके आने का समाचार न जानने के कारण ही आपके स्वागत से वंचित रहा। क्षमा कीजिए। क्षमा कीजिए! कहां तो आपके कोमल चरण और कहां ये मेरी बज्रकर्कश छाती। आपको बड़ा कष्ट हुआ। यह कह कर उनके चरण अपने हाथों से दबाने लगे। उन्होंने कहा, 'ब्राह्मण देवता' आपने आज मुझ पर बड़ी कृपा की। आज मैं कृतार्थ हो गया। अब ये आप के चरणों की धूलि सर्वदा मेरे हृदय पर ही रहेगी। कुछ समय बाद महर्षि भृगु वहां से लौटकर ऋषियों की मंडली में आये और अपना अनुभव सुनाया इनकी बात सुनकर ऋषियों ने एक स्वर में निर्णय लिया कि जो सात्विकता के प्रेमी हैं। उन्हें एकमात्र भगवान् विष्णु का ही भजन करना चाहिए। महर्षि भृगु का साक्षात् भगवान् से सम्बन्ध है, इनकी स्मृति भगवान् की स्मृति प्रदान करती है।

लात प्रहार करने से लक्ष्मी जी को क्रोध आया। उन्होंने ब्राह्मणों को शाप दिया कि मैं ब्राह्मणों का त्याग करूंगी। इन्होंने कहा, मैं ब्राह्मणों को ऐसा ग्रंथ दूंगा कि तुम उनके चरणों पर लोटोगी। तब इन्होंने ज्योतिष का 'भृगु संहिता' नामक ग्रन्थ लिखा। जिसमें संसार भर की सभी कुण्डलियां तथा तीन जन्मों का हाल लिखा गया है। त्रैलोक्य में इस ग्रन्थ की ख्याति हुई। लक्ष्मी जी को इससे बड़ा दुख हुआ। भगवान् से प्रार्थना की कि इस ग्रन्थ को आप नष्ट करें। भगवान् ने कहा कि तुम ब्राह्मणों से द्वेष क्यों करती हो? लक्ष्मी ने कहा कि जब तक ग्रन्थ नष्ट नहीं होगा, मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। तब भगवान् लक्ष्मी जी की इच्छा पूर्ति के लिए दोनों ब्राह्मण ब्राह्मणी के रूप में अपनी जन्म पत्री लेकर समुद्र तट पर जहां भृगु जी भृगु संहिता लिये बैठे थे, पहुंचे। इन दोनों ने प्रणाम करके जन्म पत्री दी। जिस समय वे उसे देखने लगे भगवान् ने ग्रंथ उठाकर समुद्र में

डाल दिया, दोनों अपने रूप में प्रकट हो गये। भृगु जी समुद्र में कूद पड़े कुछ पन्ने हाथ आये कुछ नष्ट हो गये। बचा हुआ ग्रन्थ आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, हरियाणा आदि में है।

॥ इति सत्ययुग के चतुर्थ परिच्छेद का नवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ दसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

चौदह सप्तर्षियों का वर्णन

पुराणों में ब्रह्मा जी के एक दिन रात्रि को कल्प कहते हैं। वह मानवीय वर्षों के आठ अरब चौसठ करोड़ वर्षों का होता है। एक दिन में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होते हैं। इतने समय में १४ इन्द्र, १४ मनु, १४ सप्तर्षियों के गण होते हैं। इस समय विरंचि नाम के सातवें ब्रह्मा के पचास वर्ष बीत चुके हैं। इक्यानवें वर्ष का प्रथम दिन है। इस समय छः मनु बीत चुके हैं, सातवें मनु चल रहे हैं। १. स्वायम्मुव मनु, २. स्वरोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत मनु (सूर्य पुत्र), ८. सावर्णि, ९. दक्ष सावर्णि, १०. ब्रह्मसावर्णि, ११. धर्म सावर्णि, १२. रुद्र सावर्णि, १३. सौरोच्य, १४. भौत्य। यह १४ मनु हैं।

मनु के काल को मन्वन्तर कहते हैं। एक मनु का कार्यकाल ७१ चतुर्युगी है। इतना ही काल इन्द्र तथा सप्तर्षियों का है।

पहले मन्वन्तर में–१. भृगु ऋषि, २. पुलस्त्य, ३. पुलह, ४. क्रतु, ५. अंगिरा, ६. मरीचि, ७. अत्रि ऋषि। सप्तर्षि हुए। यज्ञ पुरुष भगवान् का अवतार आकूति के गर्भ से हुआ।

(३४ से ४१) दूसरे मन्वन्तर में–विपश्चित् नाम के इन्द्र १. ऊर्ज, २. स्तम्भ, ३. प्राण, ४. बात, ५. ऋषभ, ६. निरय, ७. परिवान् सप्तर्षि हुए। मनु स्वारोचिष् तुषिता के गर्भ से अजित अवतार हुआ।

(४२ से ४८) तीसरे में उत्तम नाम का मनु–सुशान्ति नाम के इन्द्र तथा १. सुधाम, २. सत्य, ३. जय, ४. प्रतर्दन, ५. वशवर्त्ती नामक देवगण। वशिष्ठ जी के सात पुत्र सप्तर्षि हुए तथा अज, परशु, दीप्ति आदि मनु पुत्र थे। सत्य रूप से सत्या के गर्भ से अवतार हुआ।

(४९ से ५५) चौथे तामस मनु–हरि, सत्य, सुधी, सुपार नाम के २७ देवगण हुए। शिव नामक इन्द्र, ज्योति, धाम, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक, प्रविर सप्तर्षि तथा नर, ख्याति, केतु रूप, जापीनुजंघ इत्यादि मनु पुत्र थे। हरि का अवतार हरिणी के गर्भ से हुआ।

(५६ से ६२) पांचवें रैवत मनु)–विभु नामक इन्द्र, अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ, सुमेधा नाम के देव गण तथा हिरण्य रोमा, वेद श्री, ऊर्ध्व बाहु, वेद बाहु, सुधामा, पर्जन्य तथा महामुनि सप्तर्षि थे। मनु पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य, सत्यक आदि थे। सम्भूति के गर्भ से मानस अवतार हुआ। स्वारोचिष, उत्तम, तामस एवं रैवत यह चार मनु प्रियव्रत के वंशज थे। भगवान् विष्णु की आराधना करके प्रियव्रत ने अपने इन वंशजों का मन्वन्तराधिपतित्व प्राप्त किया था।

(६३ से ६९) छठे चाक्षुष मनु–मनोज नाम के इन्द्र। आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथक तथा लेख नाम के देवगण, प्रत्येक गण में आठ-आठ देवता थे। सुमेधा, गिरिजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा, सहिष्णु नामक सप्तर्षि थे तथा पुरु, शतद्युम्न, उरु यह मनु पुत्र थे। विकुण्ठा के गर्भ से वैंकुण्ठावतार हुआ।

(७० से ७६) सातवां वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव) आदित्य, वसु, रुद्र, देवगण, पुरन्दर नाम के इन्द्र, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, जगदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, सप्तर्षि, इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, निरष्यन्त, नाभाग अरिष्ट पृबध्र, करुष यह मनु पुत्र थे। कश्यप अदिति के गर्भ से वामन अवतार हुआ।

(७७ से ८३) आठवें सावर्णिमनु में–सुतप अमिताभ आदि मुख्य देव गण होंगे। एक-एक में बीस-बीस देवता होंगे। दीप्तिमान, गालव, परशुराम, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, व्यास श्रृंगी ऋषि सप्तर्षि होंगे, उस समय महाराज बलिइन्द्र होंगे तथा विरजा ऊर्वरीवान्, निर्मोक मनु पुत्र होंगे।

(८४ से ९०) नवमदक्ष सावर्णि–बारह-बारह देवताओं के तीन वर्ग, पार मरीचिगर्भ, सुधर्मा, देवगण, अद्‌भुत नाम का इन्द्र तथा सवन द्युतिमान, भव्य वसु, मेधातिथि ज्योतिष्मान्, सत्य, सप्तर्षिगण तथा धृति केतु, दीप्तिकेतु, पंच हस्त, निरामय, पृथुश्रवा आदि मनु पुत्र होंगे।

(९१ से ९७) दसवें ब्रह्म सावर्णि मनु–सुधामा, विशुद्ध नाम के सौ सौ देवताओं के दो गण, शान्ति नाम के इन्द्र, हविष्मान् सुकृत, सत्य तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा, सत्यकेतु नाम के सप्तर्षि होंगे। सुक्षेत्र, उत्तमौजा तथा भूरिक्षेम आदि दस मनु पुत्र होंगे।

(९८ से १०४) ग्यारहवें धर्म सावर्णि मनु–विहंगम कामगम तथा निर्वाणरति तीस, तीस देवताओं के यह तीन देव गण–वृष नाम के इन्द्र–निरस्वर, अग्नि तेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् तथा अनघ नामक सप्तर्षि होंगे। मनु पुत्रों में, सर्वत्रग, सुधर्मा, देवानीक होंगे।

(१०५ से १११) बारहवें रुद्र सावर्णि मनु–ऋतु धामा इन्द्र होंगे, दस–दस देवताओं के हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा, सुराप यह पांच देवगण होंगे। तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति, तपोधन सप्तर्षि होंगे। देववान, उपदेव, देवश्रेष्ठ आदि मनु पुत्र होंगे।

(११२ से ११८) तेरहवें रौच्य नामक मनु–सुत्रामा, सुकर्मा, सुधर्मा, तैंतिस–तैंतिस देवताओं के तीन गण होंगे। द्विस्पति इन्द्र होंगे। निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरूत्सुक, धृतिमान्, अव्यय तथा सुतपा नाम के सप्तर्षि होंगे। चित्र सेन विचित्र आदि नाम के मनु पुत्र होंगे। इस मनु का 'सौरोच्य' नाम भी कहा गया है।

(११९ से १२५) चौदहवें भौत्य या भौम नामक मनु–'शुचि' नामक इन्द्र, पांच देवगण चाक्षुष पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक, वाचावृद्ध नामक देवगण होंगे। अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्नीध्र, युक्त जित नामक सप्तर्षि होंगे। ऊरु, गम्मीर बुद्धि आदि मनु पुत्र होंगे।

प्रत्येक कलियुग के अन्त में वेदादिशास्त्र लुप्त हो जाते हैं। तब सप्तर्षिगण, स्वर्ग से अवतरित होकर, वेदों तथा धर्म शास्त्रों का उद्धार तथा प्रचार करते हैं। मनु प्रत्येक सत्ययुग के आरम्भ में धर्मशास्त्र रचकर उसका प्रचार करते हैं। देवतायज्ञ भाग लेकर उपद्रवों से रक्षा करते हैं। मनु तथा मनु पुत्र पृथ्वी का संरक्षण करते हैं। यहां तक १२५ गुरु हो चुके हैं।

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का दसवां भाग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ ग्यारह अध्याय प्रारम्भ ॥

चौदह मनुओं का जीवन चरित्र

१. स्वायम्भुव मनु–इनका जन्म सृष्टि के आरम्भ में हुआ था। जब चार सनकादि तथा सप्तर्षियों के द्वारा सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ। रौद्र सर्ग से भयानक सृष्टि हुई। तब ब्रह्मा जी ने मैथुनी सृष्टि रचने की इच्छा से अपने को दो भागों में बांट दिया। उनके दाहिने अंग से पुरुष तथा बायें अंग से कन्या हुई। इन दोनों का नाम मनु–शतरूपा रखा। दोनों ने प्रणाम करके कहा, कि क्या आज्ञा है। उन्होंने सृष्टि के विस्तार की आज्ञा दी। मनु जी ने ब्रह्माजी से वेदों का अंगों उपांगों सहित अध्ययन किया तथा दस हज़ार अध्यायों वाला धर्म शास्त्र पढ़ा। इनसे धर्म शास्त्र पढ़कर इन्होंने भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वशिष्ठ, अत्रि आदि ऋषियों को पढ़ाया। वेद मंत्रों का मनन करने से उनका नाम मनु हुआ। अनेक रूप धारण करने के कारण पत्नी का नाम शतरूपा हुआ। शतरूपा से इनके उत्तान पाद तथा प्रियव्रत दो पुत्र तथा तीन कन्यायें–देवहूति, प्रसूति, आकूति; नाम वाली हुईं। देवहूति का विवाह कर्दम प्रजापति से हुआ। इनसे इनकी अनसूया, अरुन्धती, स्वाहा, स्वधा आदि नव कन्यायें हुईं तथा भगवान् कपिल रूप में प्रकट हुये। कपिल जी ने सांख्य शास्त्र का उपदेश आसुरि नाम के शिष्य को किया। कर्दम जी की कन्याओं का विवाह अरुन्धती का विशिष्ठ जी से, अनसूया का अत्रि के साथ तथा स्वधा का पितरों के साथ हुआ। आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से हुआ। उनसे भगवान् यज्ञपुरुष के रूप में दक्षिणा सहित प्रकट हुए। प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति के साथ हुआ। कल्प भेद से, दक्ष एक बार ब्रह्मा के अंगूठे से पैदा हुए और दूसरी बार चन्द्रमा के दौहित्र हुए। पहले दक्ष के तेरह पुत्री जन्मी थीं। दूसरी बार इनकी साठ पुत्रियां हुईं। जिनमें सत्ताइस का विवाह चन्द्रमा से, तेरह का कश्यप प्रजापति से, सबसे छोटी पुत्री सती का विवाह शंकर जी से हुआ। शेष विस्तार पुराणों में देखें। मनु के बड़े पुत्र उत्तानपाद के सुनीति सुरुचि नाम की दो पत्नियां थीं। सुनीति के ध्रुव और सुरुचि से उत्तम का जन्म हुआ। ध्रुव चरित्र भी कल्प भेद से भागवत, विष्णु पुराण तथा स्कन्द पुराण काशी खण्ड में विस्तार से आया है। अतः यहां नहीं दिया। भगवान् ध्रुव

को वरदान देकर जब जाने लगे, तब भगवान् ने कहा–मैं अपने इष्ट देव भगवान् शंकर के दर्शन करने काशी जा रहा हूँ। तुम भी पीछे गरुड़ पर बैठो। ध्रुव ने कहा–मैं तो आप से अभी वर ले चुका हूँ। आपके अतिरिक्त मेरा मन, हाथ, पैर आदि इन्द्रियां किसी अन्य देवता की सेवा आदि में न लगे। भगवान् ने कहा–में तुम्हारा ईष्ट हूँ, मेरे ईष्ट शिव हैं। इष्ट के इष्ट को अपने इष्ट से अधिक मानना चाहिए।

तथास्तु कहकर ध्रुव भगवान् के पीछे गरुड़ पर बैठे। काशी में जाकर ध्रुव ने शिव आराधना की। भगवान् की आज्ञा से ध्रुवेश्वर महादेव की स्थापना की जो आज भी है। काशी से लौटते समय ध्रुव को अभिमान हुआ कि जिस भगवान् को तथा जिस परमपद को ऋषि मुनि लाखों वर्ष तप करके प्राप्त नहीं कर सकते, उसको मैंने छः महीने में पाया। सर्वान्तर्यामी भगवान् ने अभिमान के अंकुर को उखाड़ने की इन्छा की। एक सफेद पहाड़ दिखाया, ध्रुव ने पूछा यह पर्वत कैसा है? भगवान् ने कहा–तपस्या करके छोड़े हुए तुम्हारे ही पूर्व जन्म के हड्डियों के पिंजर हैं। अतः मैंने छः महीने में परम पद पाया है, इस अभिमान को त्याग दो। ध्रुव का अभिमान दूर हो गया। मनु जी के दूसरे पुत्र, प्रियव्रत परम भागवत थे। राज्य स्वीकार नहीं करते थे। तब ब्रह्मा जी के समझाने पर राज्य स्वीकार किया। वे भगवत्तेज से परिपूर्ण थे, वर्षा न होने पर अपने तेज से स्वयं पानी बरसाते थे। इन्होंने विचार किया सम्पूर्ण भू–मण्डल पर मेरे राज्य में कहीं भी अन्धेरा न रहे। अतः सूर्य जैसे तेजस्वी रथ पर बैठकर भू–मण्डल का चक्कर लगाने लगे। जहां जहां रात्रि थी, वहां वहां दिन हो गया। इन्होंने दस करोड़ वर्ष तक पृथ्वी का शासन किया। इनके वंशजों की कथा पुराणों में आती है।

मनु जी ने वैदिक धर्म के तत्त्वों का उपदेश देने के उद्‌देश्य से मानव धर्म शास्त्र मनुस्मृति लिखी। मनु द्वारा कथित धर्म ही मानव धर्म है। आजकल के धर्म के रहस्यों को न जानने वालों का कल्पित धर्म मानव धर्म नहीं है, क्योंकि मनुस्मृति के प्रत्येक अध्याय के अन्त में **इति मानव धर्म शास्त्रे** उल्लेख हुआ है। कानून जानने वाले सबके आदि गुरु मनु जी हैं। नास्तिक लोग इसमें गलतियां देखते हैं। इन मूर्खों ने लोक सभा में मनुस्मृति जलाई, किन्तु जीवमात्र के जन्म–मरण को उन्मूलन करने वाली एक मात्र मनुस्मृति है। मनु जैसे वेदज्ञ विद्वान्, दूसरा होना कठिन है।

इन्होंने बड़ी कठिनाई से दोनों पुत्रों को राज्य गद्दी देकर तपस्या करने के लिये गोमती तट पर स्थित व्यास तथा शुकदेव जी की तपोभूमि नैमिषारण्य में आकर तेईस हज़ार वर्ष कठोर तप करके विश्वावास भगवान् का दर्शन किया। वहीं पर इनकी समाधि बनी हुई है। वही दूसरे जन्म में दशरथ कौशल्या के रूप में आये। विश्व का प्रत्येक मानव इनका ऋणी है। **(श्रीमद्भागवत तथा रामचरित मानस से)**

२. स्वारोचिष मनु–प्राचीन काल में एक अरुण गोत्रीय ब्राह्मण वरुणा नदी के तट पर रहते थे। वे सदाचारी, कोमल स्वभाव, वेद वेदांग के ज्ञाता थे। इनकी इच्छा पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा की हुई। इतने में एक ब्राह्मण अतिथि के रूप में आ गये। वे अनेक औषधियों तथा मन्त्रों के मर्मज्ञ थे। इन्होंने परम श्रद्धा उनका स्वागत किया। अतिथि से जब इन्होंने भूमण्डल पर भ्रमण की इच्छा प्रकट की, तब ब्राह्मण ने कहा कि आप वृद्ध हो, थोड़े काल में कैसे यात्रा करोगे। अतिथि ब्राह्मण ने संपूर्ण तीर्थों, नगरों, वनों का वर्णन किया। वृद्ध ब्राह्मण ने कहा–आप की अवस्था तो इतनी नहीं है। आप ने कैसे भ्रमण किया है। तब अतिथि बोला–अनेकों मन्त्रों तथा औषधियों के प्रभाव से मेरी गति कहीं नहीं रुकती। मैं छ: घण्टे में चार हज़ार कोस चल सकता हूँ। उस ब्राह्मण की इस पर श्रद्धा हुई और कहा–हे भगवन्! मुझ पर भी कृपा करो। तब उस ब्राह्मण ने वृद्ध ब्राह्मण के तलवों में किसी औषधि के लेप कर दिया। वह आधे दिन में चार हज़ार कोस हिमालय पर पहुँच गया, थकावट ज़रा भी नहीं हुई। किन्तु हिमालय की बर्फीली चट्टानों पर वह लेप धुल गया। तब आगे चलने में असमर्थ हो गया। वहीं पर उसने सिद्ध गन्धर्व किन्नरों के दर्शन किये। अप्सराओं के साथ क्रीड़ा की। फिर विचार किया, शेष पर्वत कल देखूँगा। अपने घर जाने की इच्छा की किन्तु लेप धुल जाने से चल नहीं पाया, चिन्ता करने लगा। घर बहुत दूर है। कैसे जाऊँ? मैं घर जाकर सन्ध्या अग्नि होत्र आदि कैसे करूँगा। यद्यपि यह स्थान अत्यन्त रमणीय है। सैंकड़ों वर्षों तक देखने पर भी तृप्ति नहीं होती। अत: किसी तपस्वी से मिलना चाहिए। उन्होंने वरुथिनी नाम की अप्सरा को देखा। वह अप्सरा भी ब्राह्मण को चाहती थी। ब्राह्मण ने उसका परिचय पूछा। ब्राह्मण ने भी अपना परिचय दिया। अप्सरा ने कहा कि तुम्हारी क्या सेवा की जाये। ब्राह्मण ने घर जाने की इच्छा प्रकट की। सूर्यास्त से पूर्व मैं घर जाना चाहता

हूँ। अप्सरा ने कहा–मुझ को और स्वर्ग जैसी इस भूमि को छोड़कर कहाँ जावोगे। यहीं भोग भोगते हुए निवास करे। ब्राह्मण नहीं माने। उन्होंने कहा–त्रिकाल सन्ध्या तथा दो काल हवन ब्राह्मण के लिये परम कल्याणकारी हैं। तीनों लोक इसके अधीन हैं। वह उस ब्राह्मण पर मोहित हो गयी थी। उसने कहा–विप्र, क्या मैं तथा पर्वत अच्छा नहीं लगता। कुछ काल तो मेरे साथ आनन्द लीजिये। ब्राह्मण नहीं माने, अग्नि देव से प्रार्थना की। वरुथिनी ने कहा–मुझे दुखी छोड़कर जाने से तुम्हें पाप लगेगा। ब्राह्मण विचारवान् तथा विरक्त थे। उन्होंने कहा–मेरे गुरुओं ने शिक्षा दी है कि किसी स्त्री की इच्छा न करना। ऐसा कहकर पवित्र होकर प्राणायाम करके, गार्हपत्याग्नि की स्तुति की, अग्नि देवता प्रकट हुए। उनकी कृपा से जाने की शक्ति प्राप्त हुई। अग्नि देव को प्रणाम कर जब शीघ्रता से जाने लगे, तब वरुथिनी लम्बी सांस लेकर ब्राह्मण को जाते हुए देखकर रोती रही। ब्राह्मण ने घर पहुँचकर सन्ध्या और अग्नि होत्र किया। वह अप्सरा विलाप करती तरही कि ऐसा मनुष्य मुझे कब प्राप्त होगा।

वरुथिनी को दुखी देखकर कलि उसके पास पहुँचा। उसने उसी ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा उससे बोला–"मैंने तुम्हे त्याग दिया था, नित्य कर्म करके तुम्हारे पास आया हूँ।" "मेरे साथ गुफा में विहार करो।" यह वरुथिनी ने कहा। कलि ने कहा–"तुम आँख बंद करके मेरे साथ क्रिया करो।" उसने ऐसा ही किया। वह गर्भवती हो गयी। समय पर उसके गर्भ से अग्नि तथा सूर्य के समान तेजस्वी बालक पैदा हुआ। वह सूर्य के समान दसों दिशाओं को प्रकाशित करता था। अतः उस बालक का नाम स्वरोचि रखा। उपनयन के बाद अंगों, उपांगों सहित वेदाध्ययन किया। युवावस्था में उसने पर्वत पर एक भयभीत कन्या को देखा। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, चिल्ला रही थी। स्वरोचि ने अभयदान दिया।

कन्या ने अपना परिचय देते हुये कहा–मैं इन्दीवर गन्धर्व की पुत्री हूँ। मेरा नाम 'मनोरमा' है। मरुधन्वा की पुत्री से मेरा जन्म हुआ है। मण्डार विद्याधर की पुत्री विभावरी मेरी सखी है। दूसरी का नाम कलावती है। इन दोनों के साथ मैं कैलाश पर आई। वहां पर मैंने तपस्या से शिथिल एक मुनि को देखा। उनके देखकर मैं हँस पड़ी। तब मुनि ने शाप दिया, तू महा दुष्टा है। थोड़ी देर में राक्षसी हो जावोगी। सखियों सहित

मुनि ने शाप दिया। तब मैंने भी सखियों सहित ऋषि को शाप दिया। कहा कि तुम्हारी तपस्या को धिक्कार है। जिसने क्रोध को नहीं जीता। दूसरे अंगों में कुष्ट हो जायेगा। उसने राजकुमार से कहा कि उस राक्षस से मेरी रक्षा करो। स्वायम्भुव मन्वन्तर में मैंने तप करके उसे अस्त्र शस्त्र दिये थे। उससे मैं भयभीत हूँ। उसे पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान है।

यह दोनों बातचीत कर ही रहे थे कि असुर आकर गर्जने लगा। राजकुमार बाण छोड़ने लगा। राक्षस ने पूर्व जन्म की कथा सुनाई, स्वरोचि ने राक्षस से युद्ध करके विजय प्राप्त की। बाद में उस राक्षस तथा मनोरमा की सखियों को आयुर्वेद के प्रभाव से रोग रहित कर दिया। मनोरमा के पिता ने वैदिक विधि से अपनी कन्या का विवाह कर दिया। देवता प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे। स्वरोचि अपनी पत्नी मनोरमा को लेकर राजधानी में आ गये।

वह मनोरमा स्वारोचि की सेवा करने लगी। विभावरी के पिता ने तथा कलावती के पिता ने भी अपनी कन्या स्वरोचि को दी तथा उन्हें सभी भाषाओं का ज्ञान कराया। कलावती के पिता ने कहा–भगवान् शंकर ने तपस्या से प्रसन्न होकर मुझसे कहा था। हे महाभाग! तुम अपनी कन्या स्वरोचि को देना। उससे स्वरोचिष नाम का दूसरा मनु होगा। फिर उन्होंने 'पद्मिनी' नाम की विद्या दी।

स्वारोचि महाराज विहार करने लगे। इन तीन के अतिरिक्त स्वरोचि के और कई पत्नियां थीं। कालान्तर में उनके तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। देवता प्रसन्न होकर गाने बजाने लगे। उसके तेज को देखकर पिता ने नाम रखा।

स बालोद्युतिमान् नाम महाबल पराक्रमः। स्वरोचिषः सुतो यस्मात् तस्मात् स्वारोचिषोऽभवत्। चूंकि यह वालक महान् बल पराक्रम से युक्त और प्रकाशमान होने से महाराज स्वरोचि का पुत्र होने से 'स्वारोचिष' हुआ। स्वरोचि अपनी पत्नी पुत्र के साथ वन में विहार करते थे। उन्होंने एक हंसिनी के जोड़े को देखा। दोनों में ज्ञान-चर्चा हो रही थी। हंस ने हंसिनी से कहा–इस राजा को नहीं देखते। इसका मन प्रारम्भ से ही अहन्ता ममता से जकड़ा है। कैसे छूटेगा। हंस ने कहा–हे हंसिनी! मैं स्वरोचि नहीं हूँ जो स्त्री के वश में रहूँ। वैराग्यपूर्वक भगवान् का भजन करूँगा। स्वरोचि दोनों की वार्ता सुनकर पत्नी सहित वन में तपस्या करने चले गये। तप करके दोनों ने दुर्लभ लोक

प्राप्त किया। जाने से पहले अपने पुत्र स्वारोचिष को राज्य गद्दी पर बैठा गये। आगे चलकर यह 'स्वारोचिष' नाम के दूसरे मनु हुए।

३. औत्तम मनु–प्रथम मनु के बड़े पुत्र उत्तानपाद थे। उनकी दूसरी पत्नी सुरुचि से उत्तम का जन्म हुआ। उनका पुत्र 'औत्तम' नाम का तृतीय मनु हुआ। वे पराक्रमी, धर्मात्मा तथा सूर्य के समान तेजस्वी थे। शत्रुओं के लिये यमराज तथा मित्रों के लिये धर्मराज थे। इनका विवाह बहुला नाम की पत्नी से हुआ। उसका स्वभाव कर्कश था। एक दिन भरी राजसभा में पति का अपमान कर दिया। उन्होंने अपराध सहन नहीं किया। द्वारपाल से कहा कि मैं ऐसी स्त्री का परित्याग करता हूँ। इसको रथ में बैठाकर निर्जन वन में छोड़ आवो। द्वारपाल ने ऐसा ही किया, परन्तु उत्तम मन में उसी का स्मरण करते रहे। उन्हें शान्ति नहीं मिली। फिर भी प्रजा का पुत्रवत् पालन करते रहे।

कई दिनों के बाद एक दुःखी ब्राह्मण आकर महाराज से बोला, हे राजन्! मैं अत्यन्त दुःखी हुँ। अपना दुःख सुनाने आया हूँ। मैं घर में सोया था। द्वार बन्द होने पर भी मेरी स्त्री को कोई उठा ले गया। आप उसको लाने में सक्षम हो। उत्तम ने कहा–हे विप्र! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि तुम्हारी स्त्री किसने हरी है। मैं कहां जाऊँ? किससे युद्ध करूँ? ब्राह्मण ने कहा–मैं नहीं जानता। आप गुप्तचरों द्वारा पता लगवा सकते हैं। हम सब लोग आपको आय का छठा भाग कर देते हैं। अतः आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। राजा ने कहा–मैंने आपकी स्त्री नहीं देखी है। उसका रूप, रंग, आयु बताओ।

ब्राह्मण ने कहा–उसके कठोर भयानक नेत्र हैं। मुझ से बहुत ऊँची है। परन्तु उसके हाथ छोटे हैं। मुख से कमज़ोर दीखती है। पेट भारी है। जंघा स्तन छोटे हैं। उसकी वाणी तथा स्वभाव कठोर है। उसके साथ वाल्यावस्था में मेरा विवाह हुआ था।

राजा ने कहा–हे ब्राह्मण! ऐसी कुरूपा दुष्टा की चिन्ता करते हो। जाने दो, जहां जाती है। मैं उससे अच्छी स्त्री के साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगा। पत्नी पति के कल्याण के लिये होती है, दुःख के लिये नहीं। छोटे शरीर की उत्तम पत्नी सुख देती है। रूप रहिता दुष्टा को त्याग देना चाहिए।

किन्तु वह ब्राह्मण अति सदाचारी, धर्मशास्त्र की आज्ञा का पालन करने वाले थे। धर्म के निमित धर्म पत्नी का पालन करते थे। राजा से बोले–हे राजन! वेदों ने स्त्री की

रक्षा करना धर्म कहा है, वह चाहे जैसी भी हो, स्त्री को स्वतन्त्र घूमने न दे। स्त्री रक्षा से सन्तान की रक्षा होती है। हे राजन! पिता ही पत्नी के गर्भ से पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। अत: सन्ततिरक्षा में ही आत्म रक्षा है। स्त्री को स्वतन्त्र कर देने से वर्ण संकर सन्तान पैदा होती है। जो पैदा होते ही स्वर्गस्थ पितरों को नरक में ले जाती है। माता पिता की आज्ञा प्राप्त करके, अग्निदेव को साक्षी करके मैंने वरण किया है। उसे कैसे त्याग सकता हूँ। स्वधर्म का पालन करने वाले को शाश्वत धर्म की प्राप्ति होती है। प्रथम धर्मपत्नी से ही धर्म कर्म करने वाला दु:खी नहीं होता। उसके अतिरिक्त काम पिपास की तृप्ति के लिये अन्य स्त्रियां भोगपत्नियां हैं।

ब्राह्मण का वचन सुनकर महाराज अस्त्र शस्त्र लेकर भ्रमण करने लगे। महावन में एक तपस्वी का उत्तम आश्रम देखा। उन्होंने रेशमी चटाई पर बैठे हुए एक तेजस्वी ऋषि को देखा। रथ से उतर कर राजा ने प्रणाम किया। मुनि ने देखा कि वह स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न हुआ है। पूजा का अधिकारी है। यह विचार कर शिष्य को पाद्य अर्घ्य आदि से पूजा की आज्ञा दी। परन्तु शिष्य परम धर्मज्ञ, बुद्धिमान् तथा त्रिकालदर्शी था। गुरु जी से कहा–इनका मैं अर्घ्य, पाद्य आदि से पूजन कैसे करूँ। आप इनका पूजन करवाने से पहले इनके पूर्वजन्म तथा इस जन्म के पापों पर विचार करें। तब गुरु जी समाधिस्थ हुये। राजा के पापों को देखा। शिष्य को पूजन से रोक दिया। बोले–हे राजन! तुम यहां क्यों आये हो, मैं जानता हूँ। तुम उत्तानपाद के पुत्र हो। राजा ने कहा–हे मुने! एक ब्राह्मण की स्त्री का हरण हुआ है। उसकी खोज में यहां आया हूँ। वह कहां मिलेगी। ऋषि ने कहा–इसके पहले तुम कुछ और पूछना चाहते हो, वह क्यों नहीं पूछा। तुमने नहीं पूछा, पूछो। तुम्हारी शंका को मैं दूर करूँगा। राजा ने कहा–हे महामुने! मैं पहली बार आपके यहां आया हूँ। आपने शिष्य को पूजन की आज्ञा दी। उसने मना कर दिया। मैं इसके कारण को जानना चाहता हूँ। ऋषि बोले, हे नृप, तुम्हारा स्वायभुख मनु के वंश में जन्म हुआ है। इसलिये आज्ञा दे दी। यह शिष्य मेरी कृपा से त्रिकालदर्शी है। तुम्हारे पापों को देखकर मना कर दिया। राजा ने कहा–हे ऋषि प्रवर! मैंने जाने अनजाने में कौन पाप किया जो आपके द्वारा स्वागत पाने का अधिकार नहीं हूँ। ऋषि बोले–हे राजन्! क्या तुम नहीं जानते कि तुमने अपनी पत्नी का त्याग किया है। उसके

द्वारा तुम स्वधर्म कर्म करते थे। जैसे पत्नी को दुराचारी पति का त्याग नहीं करना चाहिए, वैसे ही पति भी अपनी पत्नी का त्याग न करे। **पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथा शीलेऽपि भर्तरि। दुःशीलापितथा भार्या पोषणीयानरेश्वर॥** हे नरेश्वर! जैसे पति को पत्नी के अनुकूल रहना चाहिये, वैसे ही दुश्चरित्रा स्त्री का भी भरण-पोषण करना चाहिये। मैं दृष्टान्त देता हूँ। जिस ब्राह्मण की पत्नी की तुम खोज कर रहे हो उनकी पत्नी के प्रतिकूल होने पर भी उन्होंने धर्म अर्थ काम की प्राप्ति के लिये खोजने में तुम्हें लगाया। इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थ को पहले तीन पुरुषार्थ (धर्मार्थकाम) पत्नी के बिना सिद्ध नहीं हो सकते। क्योंकि वह धर्मपत्नी है। हे महीपते! तुम दूसरे की पत्नी की खोज में निकले हो, किन्तु तुमने जानबूझकर अपनी धर्मपत्नी को त्याग दिया है। अतः बिना धर्मपत्नी के पाद्य अर्ध्य पूजन के अधिकारी कैसे हो सकते हो। तुम्हारी प्रजा भी तुमको देखकर स्वधर्म त्याग देगी। तुम स्वयं ही धर्म से विचलित हो गये हो। स्वधर्म की रक्षा तुम स्वयं नहीं कर सकते तो दूसरे के धर्म की रक्षा तुम कैसे करोगे। राजा के अन्यायी होने पर धर्म की रक्षा न हो पायेगी। राजा मौन होकर सुनते रहे। कोई उत्तर ने दे सके। ऋषि से पूछा-ब्राह्मण पत्नी को कौन ले गया है?

ऋषि बोले, हे भूप! पर्वत का पुत्र बलाक नाम का राक्षस ब्राह्मण पत्नी का हरण करके उत्पल वन में चला गया है। वहां शीघ्र जाकर ब्राह्मण की पत्नी लाकर उसे दो।

मार्कण्डेय पुराण के सत्रहवें अध्याय में अपने क्रोष्ट्री नामक शिष्य के प्रति कथा प्रसंग सुनाते हुए महर्षि मार्कण्डेय बोले, हे महाराज! महाराज उत्तम महर्षि को प्रणाम करके उत्पल वन में गये। वहां पर उस राक्षस के आश्रम में ब्राह्मण के बताये लक्षणों वाली स्त्री को नारियल खाते देखा। राजा ने ब्राह्मणी से पूछा-हे भद्रे! सच बताओ, तुम इस बन में कैसे आई हो। क्या तुम सुशर्मा की पत्नी हो। ब्राह्मणी ने अपना परिचय देते हुए कहा, कि मैं अतिरात्र नामक ब्राह्मण की पुत्री हूँ तथा विशाल के पौत्र सुशर्मा ब्राह्मण की पत्नी हूँ। यह दुष्ट राक्षस रात में सोयी हुई मुझ को हरण करके ले आया है। मैं बड़े कष्ट से यहां रहती हूँ। इसके लाने के कारण को मैं नहीं जानती। राजा ने पूछा, वह राक्षस तुमको छोड़कर कहां गया। तुम्हारे पति ने मुझे तुम्हारे खोजने के लिये भेजा है। मैं उत्तानपाद का पुत्र उत्तम नाम का राजा हूँ। ब्राह्मणी ने कहा, वह राक्षस इस वन की

सीमा पर है। यदि आपको भय न हो तो देख सकते हो। तब राजा ने उसके बताये हुए मार्ग से जाकर परिवार सहित राक्षस को देखा। महाराज को देखते ही वह शीघ्रता से उठा। दूर से ही प्रणाम करके कहा–हे राजन! आप यहां कैसे पधारे। महती कृपा की। आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ। मैं सेवक हूँ, आप स्वामी हैं। आपका पूजन करना चाहता हूँ। आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करूँगा। राजा बोले–हे निशाचर! तुम ब्राह्मण पत्नी को क्यों यहां लाये हो। पत्नियां तो तुम्हारी बहुत-सी हैं। यदि खाने के लिये लाये, तो तुमने क्यों नहीं खाया। राक्षस ने कहा, हे राजन्! मैं मनुष्य का मांस खाने वाला राक्षस नहीं हूँ। धर्मात्मा के पुण्य के फल को खाता हूँ। मैं अपने पूर्वकृत पुण्य पापों को कहता हूँ। मैं ऋषि के शाप से भयंकर राक्षस हुआ। अभिमानी स्त्री, पुत्रों का हरण करता हूँ। जो स्त्रियां क्रोध करती हैं, क्षमाभाव नहीं है, उनके दुष्ट स्वभाव को खाकर गुणवान् करता हूँ। ऐसी मेरे पास बहुत स्त्रियां हैं।

राजा ने पूछा–हे निशाचर! तुमने ब्राह्मणी का न पत्नी बनाने की इच्छा से, न खाने की इच्छा से ही हरण किया तो फिर रात्रि में क्यों हरण किया। असुर ने कहा–इनके पति उत्तम मन्त्र को जानते हैं। जोर से उच्चारण करते हैं, तब मेरे मन में बेचैनी तथा भूख बढ़ जाती है। हम कहां जाकर भूख शान्त करें। याज्ञिक ब्राह्मण यहां भी ऋत्विज होते हैं। हम विघ्न डालने के लिये पत्नी का हरण करते हैं, क्योंकि बिना धर्म पत्नी के कोई कर्म नहीं हो सकता। अतः मैंने ब्राह्मणी का हरण किया। उसकी बात सुनकर राजा बड़े दुःखी हुये। यह ब्राह्मण के मुख से मेरी निन्दा करता है। यह सब मुझमें घटित होता है। इसलिये मैं पूजा का पात्र नहीं रहा। राजा को चिन्तित देख असुर ने विनय की। मैं आपका दास हूँ। मुझे आज्ञा दें। क्या सेवा करूँ। राजा ने कहा–हे असुर! तुम दोष दूर करके गुण उत्पन्न करते हो। अतः आज्ञा देता हूँ कि स्त्री के कठोर स्वभाव को खा जाओ जिससे वह विनय युक्त होकर सुशीला हो जाये। इसी में मेरा आतिथ्य है।

राजाज्ञा प्राप्त करके असुर ने वैसा ही किया। अपनी माया से उसके हृदय में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से दुर्गुणों को खा लिया। फिर राजा से कहा अब यह निर्दोषा है। इन दोनों में किसी का दोष नहीं था। मेरा ही दोष था। मैं ही इसके सद्‌गुणों को खाता था। पूर्व जन्म में मैंने इसका वियोग किया था। अतः इसका दोष नहीं।

राजा ने कहा–इसको इनके पति के घर पहुँचा दो। असुर ने पहुँचा दिया। राजा भी अपने राजभवन में लौट आये। चिन्ता करने लगे, मैं स्त्री त्याग के कारण अपमानित हुआ। अपनी पत्नी को कैसे लाऊँ। दूसरे दिन महाराजा मुनि के आश्रम में पहुँचे। चरणों में प्रणाम किया। वह असुर कोई साधारण असुर नहीं था। अहंकार रूपी असुर था।

ऋषि बोले–अब पुनः तुम क्यों आये। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी पत्नी की प्राप्ति की इच्छा से आये हो। धर्मपत्नी त्यागकर तुमने ठीक नहीं किया। राजा ने कहा–हे भगवान्! मेरे पापों का ही फल है। मैंने घोर वन में छोड़ दिया था। वह जीवित है या किसी जीव द्वारा खा ली गई है, पता नहीं। ऋषि ने कहा–हे राजन्! तुम्हारी पत्नी जीवित है। चरित्र से वह युक्त है। उसके रसातल में छिपाकर रखा है। राजा बोले–हे ब्रह्मन्! वहां कौन ले गया है? ऋषि ने कहा–हे राजन्! वहां पर एक नागराज है। वहां मैंने तुम्हारी पत्नी देखी है। उस नाग की पुत्री नन्दा भी वहीं रहती है। अन्तःपुर में छिपाकर रखी गयी है। किसी कारण विशेष से उसने अपनी पुत्री को शाप दिया था। वह गूंगी थी। राजा ने पूछा–मेरी पत्नी को कष्ट क्यों हुआ। ऋषि ने कहा–हे राजन्! तुम्हारे विवाह के समय सूर्य, मंगल, बुध, शनि, बृहस्पति तथा शुक्र ने देखा था। इनकी क्रूरता के कारण तुम्हारी पत्नी का हरण हुआ।

ऋषि की बात से राजा को सन्तोष हुआ। प्रणाम करके नगर में पहुँचे। वहां पर ब्राह्मण के घर पुहँचे। राजा ने कहा–आपका कार्य पूरा हो गया। मेरा कार्य तुम करो। मैं भी पत्नी के बिना दुःखी हूँ। ब्राह्मण ने कहा कि यदि वह जीवित नहीं है तो दूसरा विवाह कर लो। राजा ने सभी बातें बता दीं। आप मेरी सहायता करें। ब्राह्मण ने वचन दिया। एक विशेष यज्ञ का अनुष्ठान किया। उसमें विस्तार से पूजन सामग्री बताई। पूर्ण विधि तथा सावधानी से यज्ञ हुआ। उसमें पत्नी की प्राप्ति हेतु सात विशेष आहुतियां दी गईं। इसके प्रभाव से पत्नी की प्राप्ति हुई, पत्नी ने क्षमा मांगी। फिर उसने कहा–मेरी ननद बोलने लग जाये। यज्ञानुष्ठान से वह भी ठीक हो गयी। शाप रहित होकर नाग कन्या ने राजा रानी से कहा–हे राजन! सरस्वती के वरदान से आपके महाशक्ति सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा। उसकी भूमणडल पर सर्वत्र गति होगी। वह धर्मात्मा तथा तत्त्वदर्शी होकर मन्वन्तर का स्वामी होगा। कालान्तर में उस रानी के गर्भ से पुर्णिमा के चन्द्रमा के समान तेजस्वी

बालक उत्पन्न हुआ। देवताओं ने बाजे बजाते हुए पुष्पों की वर्षा की। उत्तम के पुरुष होने के कारण मुनियों ने उसका नाम 'औत्तम' रखा।

औत्तम मनु के चरित्र को पढ़ने सुनने वाला किसी से द्रोह नहीं करता है तथा भाइयों से उसका वियोग नहीं होता। इस मन्वन्तर के इन्द्र के सम्बन्ध में एक श्लोक है–

सुशान्ति र्देवराट् कान्तः सुशान्तिं स प्रयच्छति। सहित शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्तिभिः॥

परम तेजस्वी सुशान्ति नाम के देवराज सब को शान्ति प्रदान करते हैं। शिव सत्यादि वशवर्ती देवताओं द्वारा मन्वन्तर की रक्षा करते हैं। **औत्तम मनु का चरित्र पूर्ण हुआ।**

॥ इति सत्ययुग के खण्ड के
चतुर्थ परिच्छेद का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ बारहवां अध्याय प्रराम्भ॥

४. तामस मनु

प्राचीन काल में 'स्वराष्ट्र' नाम के प्रतापी राजा थे। वे दिग्विजयी थे। उनके मंत्री ने सूर्य की आराधना करके दीर्घायु प्राप्त की थी। उनकी सौ स्त्रियां, जो दीर्घजीवी नहीं थीं। एक बार विदर्भ देश के राजा ने आक्रमण करके राजा को हरा दिया। राजा दुःखी होकर वन में गये। पंजाब में व्यास नदी के तट पर तपस्या करने लगे। वे निराहार रहकर सर्दी, गर्मी, वर्षा को सहन करते थे। एक बार वर्षा ॠतु में भारी वर्षा हुई। सर्वत्र जल ही जल दीखता था। अन्धकार छा चुका था। वे नौका द्वारा नदी पार दूसरे तट पर जाने लगे। नौका जल में बह गयी। नौका सहित राजा को एक मगरमच्छ ने पूंछ में लपेट लिया। रात्रि का घोर अन्धकार था। नौका कीचड़ में धंस गई। बड़ी कठिनाई से नदी पार की। उसी अन्धकार में मगरमच्छ राजा को लपेटे रहा। जैसे तैसे प्राण बचाकर नदी पार करके वन में पहुँचे। वहां पर एक हरिणी देखी। वह मनुष्य के समान बोलती थी। राजा ने पूछा–तुम कौन हो? उसने कहा–मैं पूर्व जन्म में एक राजा की सौ रानियों में पटरानी थी। मेरे पिता का नाम 'द्रढबन्धन' था। राजा ने पूछा–किस कर्म से तुम्हे यह योनि

मिली। तुमने अपने को पतिव्रता कहा, फिर तुम्हारी यह गति कैसे हुई। उसने कहा–हे राजन! मैं बाल्यावस्था में पिता के घर में सखियों के साथ वन में गयी थी। वहां पर एक हरिण देखा। वह पत्नी में आसक्त था। हमने हरिणी को पीटा। तब हरिणी भाग गई। मृग ने क्रोध में आकर मुझे शाप दिया। दुष्टे तुझे धिक्कार है। गर्भधान काल को तूने विफल कर दिया। अतः तुम मृगयोनि प्राप्त करोगी। तब भयभीत होकर मैंने उस मृग से पूछा–तुम कौन हो? उसने कहा–मैं पूर्व जन्म में एक अन्धे ऋषि का पुत्र था। शिकार खेलने के लिये गया। शाप से मैं मृग हुआ। दुष्टे! तूने मेरी मृगी को अलग किया है। अतः मैंने शाप दिया। तब मैंने कहा कि अज्ञान से मुझसे गलती हुई है, क्षमा करो। तब उसने कहा कि मृग रूप धारण करके तुम्हें प्राप्त करूँगा। मैंने प्रणाम करके शाप निवृत्ति के लिये प्रार्थना की। तब उसने कहा–मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। तुम हरिणी होकर बन में घूमोगी। उस मृग से तुम्हें 'लोल' नामक पुत्र प्राप्त होगा। तुम्हें पूर्व जन्म की स्मृति रहेगी। मनुष्य के समान बातचीत करोगी। वह लोल नामक पुत्र महापरक्रमी होगा। पिता के शत्रुओं को मारेगा। सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत करके चौथा मनु होगा। मैं शाप से मृगयोनि को प्राप्त हुई। हे राजन! आपके स्पर्श से मेरे पेट में बालक है। उसका वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुये कि मेरा पुत्र शत्रुओं को मार कर मनु होगा। उस हरिणी ने कालान्तर में मृग के लक्षणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र के जन्म से सब को तथा राजा को विशेष आनन्द हुआ। मृगी शाप से छूटकर उत्तम लोक को प्राप्त हुई। तब सभी ऋषियों ने मिलकर भावी उन्नति का विचार करके उसका नाम रखा। **तामसीं भजमानायां योनिं मातर्यजायत। तमसा चावृत्ते लोके तामसोऽयं भविष्यति॥** ऋषियों ने कहा–तामसी योनि को प्राप्त हुई माता से उत्पन्न होने का कारण तथा संसार के अन्धकार से आवृत्त होने के कारण यह तामस मनु होगा। यह तामस पिता के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ। पिता ने उसका भरण पोषण किया। जब बालक बड़ा हुआ तब पिता से पूछा कि आप कौन हैं। मेरी माता कौन है। मेरा जन्म कैसे हुआ। आप यहां कैसे आए। मुझसे सत्य कहिये। तब पिता ने शत्रुओं से हारने से लेकर उसके जन्म तक की सारी कथा सुनाई। यह सुनकर उसने सूर्य भगवान् की आराधना की। उनसे धनुर्वेद प्राप्त करके शत्रुओं को जीतकर पिता के पास ले आया। पिता ने भी कालान्तर में तपस्या

तथा यज्ञ के द्वारा शरीर त्यागकर उत्तम गति प्राप्त की। तामस राजा ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त की। इस मन्वन्तर में शिखी नाम के इन्द्र हुए। जो तामस मनु की कथा सुनता है, उसे अज्ञान अन्य जन्म मरण नहीं होता। **(तामस मनु की कथा पूर्ण हुई)**

५. रैवत मन

मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं, अब मैं रैवत मनु की कथा सुनाता हूँ। प्राचीन काल में ऋतवाक् नाम के प्रसिद्ध सत्यवादी ऋषि थे। पुत्रहीन ऋषि के रेवती नक्षत्र के चतुर्थ चरण में पुत्र का जन्म हुआ। पिता ने बालक का जात कर्म आदि संस्कार किया, किन्तु वह बालक आचरणहीन था। जिस दिन से जन्मा, उसी दिन से ऋषि लम्बे रोग तथा दुःख से ग्रसित हुये। बालक की माता भी कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गयी। पिता चिन्ता करने लगे। मैं कैसा मन्दभाग्य हूँ। बालक ने युवक होने पर उसने दूसरे मुनि की पुत्र बधू को रख लिया। तब ऋतवाक् और दुःखी हुये। ऐसे पुत्र से तो पुत्रहीन की अच्छा है। चरित्रहीन पुत्र स्वर्गस्थ माता पिता को भी नरक में ले जाता है। उससे किसी का कल्याण नहीं होता। वे माता पिता धन्य हैं जिनकी सन्तति आज्ञाकारिणी तथा शान्त है। कुपुत्र माँ बाप के लिये नरक है। उनके माता पिता को जवानी में ही बुढ़ापा आ जाता है। पुत्र से सन्तप्त ऋषि ने गर्गाचार्य नाम वाले ज्योतिष आदि सम्पूर्ण विद्याओं में समर्थ ऋषि के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके पूछा–हे महामुने! मैंने जीवन में कोई पाप नहीं किया, फिर मेरी सन्तान ऐसी क्यों हुई? मैंने बाल्यावस्था में उपनीत होकर वेदों का अंगों सहित अध्ययन किया। फिर शास्त्रानुसार विवाह किया। श्रुति स्मृति में कहे हुये कर्मों का अनुष्ठान करता हूँ। मैंने गर्भाधान संस्कार भी वासनापूर्ति के लिये नहीं, धर्म रक्षा के लिये किया। हे मुने! यह पुत्र अपने दोष से, मेरे या माता के दोष से दुष्ट हुआ है। गर्ग जी ने कहा–इसमें तीनों का दोष नहीं, काल का दोष है। यह रेवती नक्षत्र में हुआ है। तब पिता ने रेवती को शाप दिया, यह धरती पर गिर जाये। ऋषि के कहते ही रेवती नक्षत्र कुमुद पर्वत पर आकर गिरा। उस पर गिरने से पर्वत का नाम 'रैवतक' हुआ। यह पृथ्वी से सर्म्पूण पर्वतों में सबसे अधिक सुन्दर है। उस नक्षत्र के तेज से सरोवर में कमनिलयां उत्पन्न हुईं। उनमें से एक कन्या पैदा हुई। रेवती के तेज से उत्पन्न होने के कारण उसका

नाम 'रेवती' रखा। आश्रमवासी ऋषियों ने उसका भरण पोषण किया। विवाह के योग्य होने पर ऋषि को विवाह की चिन्ता हुई। बहुत खोज की, परन्तु कोई योग्य वर नहीं मिला। तब अग्नि देवता से पूछने गये। प्रणाम करके अग्नि देवता से पूछा–उन्होंने कहा, दुर्गम नाम का राजा इसका पति होगा।

एक दिन दुर्गम राजा आखेट खेलते हुए आश्रम के पास पहुँचे। वह राजा प्रियव्रत के वंशज थे। विक्रम शील की पुत्री 'कालिन्दी' के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। राजा को आश्रम में ऋषि का दर्शन नहीं हुआ। महाराज ने कन्या से पूछा, मुनि कहां हैं। उसने कहा–अग्निशाला में हैं। राजा ने वहां जाकर दर्शन प्रणाम किया। ऋषि ने राजा को पहचान लिया। अपने शिष्य गौतम से पाद्य अर्घ्य आदि से उनका पूजन करवाया। फिर कहा, यह हमारा जामाता है। राजा को परम आश्चर्य हुआ। दोनों ने एक दूसरे की कुशल पूछी। राजा ने कहा, मैं आपका दामाद कैसे। ऋषि ने उस कन्या की ओर संकेत करते हुए कहा, कि यह आपकी पत्नी होगी। राजा ने कहा–मेरी तो सुभद्रा तथा शान्त की कन्या कावेरी की कन्या सुराष्ट्रजा, वरुपा–विपाशा तथा नन्दिी आदि पत्नियां हैं। यह रेवती किस कुल से उत्पन्न हुई है। ऋषि ने कहा, क्या आप भूल गये हैं। तुमने अपनी प्रशंसनीय पत्नी को विस्मृत कर दिया। मैंने अग्नि देव से पूछा था। उन्होंने आपका नाम बताया था। राजा मौन हो गये। ऋषि ने वैदिक विधि से कन्या दान दिया। पहले इसी रेवती कन्या का विवाह चन्द्रमा के साथ हुआ था। दूसरे जन्म में दुर्गम के साथ। यह रेवती के शाप की कथा सुनाई। कन्या ने ऋषि से कहा, यदि आप समर्थ हैं तो इस नक्षत्र को वहीं स्थापित कर दें। ऋषि ने ऐसी ही किया। राजा से ऋषि ने कहा, हे राजन! मैं आपको क्या दूं। अत्यन्त दुर्लभ वस्तु तुम्हें दूंगा। दुर्गम ने कहा–हे ऋषिवर! स्वायम्भुवमनु के वंश में मेरा जन्म हुआ है। मैं अपने पुत्र को मन्वन्तर का स्वामी बनाना चाहता हूँ। ऋषि ने तथास्तु कहा। तुम्हारा पुत्र धर्मपूर्वक पृथ्वी का राज्य करेगा। राजा प्रसन्नचित्त से पत्नी सहित राजभवन में पहुंचे। उनसे 'रैवत' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह वेदों शास्त्रों का ज्ञाता हुआ और आगे चलकर 'रैवत' नाम का पांचवां मनु हुआ। **(रैवत मनु का उपाख्यान सम्पूर्ण)**

छठे मनु चाक्षुष की कथा

६. चाक्षुष

परमेष्ठी ब्रह्मा जी से किसी कल्प में चाक्षुष का जन्म हुआ था। ब्रह्मा जी के चक्षु से उत्पन्न होने के कारण 'चाक्षुष' नाम पड़ा। अनमित्र राजा की वध्र नाम की पत्नी से एक विद्वान् पवित्र जातिस्मर बालक का जन्म हुआ। यह माता की गोद में खेलते हुए बड़े ज़ोर से हंसने चिल्लाने लगा। कुपित होकर माता ने उसे कहा, तुम्हारे हंसने से मैं भयभीत हो गई हूँ। तुम्हारे हंसने का क्या कारण है। पुत्र ने कहा–माता जी यह जो सामने बिल्ली बैठी है, मुझे खाना चाहती है। तुम देखती नहीं हो, पैदा होने वाले को खाने वाली यह दूसरी मृत्यु है, मेरी ओर टुकुर-टुकुर देख रही है। यह छिपकर मुझे पकड़ना चाहती है। पर यह मेरे द्वारा ही मारी जायेगी। मैं नहीं जानता, यह कौन है। इसने मेरे ऊपर कोई उपकार भी नहीं किया है। मेरी पांच सात दिन की इसकी मित्रता है। यह मुझे अपनी भाषा में तात, बृद्ध आदि कहती है। माता ने कहा, हे पुत्र! मैं अपने उपकार के लिये तुमसे प्रेम नहीं करती, निस्वार्थ भाव से करती हूं। मैंने स्वार्थ त्याग दिया है। ऐसा कहकर माता घर से बाहर चली गयी। मां के जाने के बाद बिल्ली ने बच्चे को पकड़ लिया और विक्रान्त राजा की पत्नी के बिस्तर पर लिटा दिया। राजा की पत्नी के बच्चे को उठाकर खा गई। राजा ने उस बालक के जातकर्मादि संस्कार किया। बालक का नाम 'आनन्द' रखा। वह आनन्द से उछला करता था। उपनयन के बाद गुरुकुल में पढ़ने लगा। गुरु जी ने शिक्षा देते हुए कहा कि सबसे पहले नित्य प्रति माता पिता को प्रणाम करना चाहिये। गुरु वचन सुनकर हंसकर बालक ने कहा–जन्म देने वाली एक मात्र माता का। गुरु जी ने कहा–हे महाभाग! जारूज की पत्नी यह तुम्हारी जन्म देने वाली माता है। विक्रान्त की पत्नी हैमिनी तुम्हारा पोषण करने वाली माता है। इन्हें प्रणाम करना चाहिए। आनन्द ने कहा–नहीं गुरू जी! आप धोखे में हैं। यह तो विशालग्राम वाली चैत्र की मां है। वह इससे पैदा हुआ है। मेरी मां दूसरी है। शिष्य का उत्तर सुनकर गुरु जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। गुरु जी ने उससे पूछा–आनन्द तुम क्या चाहते हो। चैत्र कौन है, तब इससे कौन पैदा हुआ। आनन्द ने कहा–गुरु जी! मेरा जन्म अनमित्र नामक राजा के घर

में हुआ है। उनका मैं पुत्र हूं। उनकी पत्नी गिरी भद्रा मुझे यहां हैमिनी के यहां छोड़ गयी है। उसके पुत्र को बोध नामक ब्राह्मण के यहां ले गई है और उसके पुत्र को वह खा गयी, उसी हैमिनी के पुत्र का संस्कार हुआ है। मेरा संस्कार आपने किया है। गुरु जी बोले– हे पुत्र! तुम तो बड़ी गूढ़ बातें सुनाते हो। मेरी तो बुद्धि चकरा रही है।

आनन्द बोला, गुरु जी! मोह नहीं करना चाहिये। संसार बड़ा विचित्र है। कौन किसका पिता, कौन किसका भाई, न जाने कितने माता, पिता, भाई बन्धु हो चुके हैं। जन्म के आरम्भ में जो सम्बन्ध होते हैं, उनको मृत्यु समाप्त कर देती है। इस जन्म में मैंने दो माता-पिता को प्राप्त किया। अन्य जन्मों में न जाने कितने माता पिता हुए। इसलिये हे गुरु जी, विशाल क्षेत्र से उनके पुत्र को ले आइये। वे राज्य पर बैठें। मैं वन में तपस्या करने जाऊँगा।

मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं, हे ऋषे! तब अत्यन्त विस्मित होकर राजा ने पत्नी सहित बालक की ममता त्याग दी। चैत्र को राजगद्दी पर बैठाया, जिसका साधारण बालक समझकर पालन किया था। आनन्द ने वन में जाकर घोर तप किया। मुक्ति के बाधक काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जीता। तब से प्रसन्न हुये ब्रह्मा जी ने आनन्द से कहा– हे पुत्र! तुम कठोर तप क्यों करते हो। आनन्द बोला–हे भगवन्! अन्तःकरण की शुद्धि के लिये तप करता हूं। **'कर्मणा वद्धयते जन्तुः विद्याच विमुच्यते।'** कर्म से जीव जन्म मरण के बन्धन में बंधता है और ब्रह्म विद्या से मुक्त होता है। चूंकि ज्ञान रूपी अग्नि संचित कर्मों को भस्म करती है, अतः ज्ञान रूपी तप से कर्मों का नाश करता हूं। ब्रह्मा जी बोले–कर्मों का फल क्षीण होने पर जन्म होता है। सात्विक अधिकार प्राप्त करने के अनन्तर तुम मुक्त होगे। तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूं। तुम छठे मनु का पद भोगने के बाद मुक्त होगे। बालक ने तथास्तु कहकर ब्रह्माजी की आज्ञा शिरोधार्य की। वह वापस आया। ब्रह्मजी ने आनन्द को 'चाक्षुष' नाम से सम्बोधित किया था। अतः वे चाक्षुष मनु हुये। उन्होंने उग्र राजा की बध्रा नाम की पुत्री से विवाह किया। उनसे अनेकों पुत्रों का जन्म हुआ। मनोजय नामक इन्द्र हुये तथा उरु, पुरु, सत् आदि मनुपुत्र हुए जिन्होंने पृथ्वी की रक्षा की। **(चाक्षुष उपाख्यान सम्पूर्ण।)**

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तेरहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

वैवस्वत मनु का उपाख्यान

वर्तमान में इस मनु का २८वां महायुग चल रहा है। इनका नाम श्रद्धदेव भी है।

पूर्व जन्म की कथा–यह पिछले जन्म में चाक्षुष मन्वन्तर के अन्तिम कलियुग में सत्यव्रत नाम के द्राविड देश के राजा थे। एक दिन सायंकाल कृतमाला नदी में स्नान करके सायंकालीन सन्ध्योपासना कर रहे थे। जब सूर्य को अर्घ्य देने के लिये जल लिया, तब इनके हाथ में एक छोटी सी मछली आ गयी। उसे नदी में डालने लगे। तब मछली ने राजा से कहा, मुझे बड़ी मछलियां खा जाएंगी, अतः मुझे जल में न डालिये। उन्होंने उसे कमण्डलु में रख लिया। थोड़ी देर में वह कमण्डलु के बराबर हो गयी तथा राजा से बोली, मैं इसमें बड़े कष्ट से रहती हूं। तब उन्होंने घड़े में रखा। तुरन्त ही वह उसके बराबर हो गयी। राजा से प्रार्थना की। उन्होंने मटके में रखा। उसमें बड़े कष्ट से रही। कहा, यह स्थान भी छोटा है। तब उन्होंने बड़े सरोवर में डाला। थोड़ी देर में उसके बराबर हो गयी। तब राजा उसे समुद्र में डालने लगे। उसने कहा बड़े जीव मुझे खा जाएंगे, मेरी रक्षा करो। महाराज समझ गये कि इस रूप में ये भगवान् ही हैं। उन्होंने उनकी स्तुति की। हज़ारों योजन विस्तृत महामत्स्य ने कहा, हे राजन् आज के सातवें दिन प्रलय होगा। सातों समुद्र एक हो जायेंगे। सभी प्राणी नष्ट हो जाएंगे। अतः तुम सप्त ऋषियों के साथ वनस्पतियों के सभी बीजों को लेकर आ जाना। मेरे स्वरूप का ध्यान करना, मैं प्रकट हो जाऊँगा। एक नौका प्रकट होगी। नौका को मेरे सींग से बांधकर तथा सप्त ऋषियों के साथ बैठ जाना। राजा ने ऐसा ही किया। सब के साथ नौका में बैठे। सत्यव्रत ने अनेकों प्रश्न किये उनका उत्तर भगवान् ने दिया। इन दोनों का सम्वाद मत्स्य पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। **(श्रीमद् भागवत पुराण ८वें स्कन्ध अं० २४)**

सातवें मनु की जन्म कथा–भगवान् सूर्य के भी विष्णु भगवान् के समान कई अवतार हो चुके हैं। सृष्टि के आरम्भ में यह विराट पुरुष के नेत्रों से उत्पन्न हुए थे। वे

त्रिदेव रूप में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, नाश के कारण हैं। उन्हीं का जन्म दूसरी बार विष्णु के वंश में ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, उससे कश्यप और उनकी पत्नी अदिति के गर्भ से हुआ। उनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से हुआ। उनके गर्भ से पिछले मन्वन्तर के सत्यव्रत राजा वैवस्वत मनु के रूप में उत्पन्न हुए। दूसरी बार संज्ञा ने सूर्य को देखकर नेत्र बंद कर लिये। तब कुपित होकर सूर्य ने कहा, तुमने मुझे देखकर नेत्र बंद किये, अतः तुम्हारे प्रजा का संयम करने वाला 'यम' पैदा होगा। तीसरी बार भय के कारण नेत्र चंचल हो गये। तब सूर्य ने कहा तुम्हारे नेत्र चंचल हुए हैं, अतः चंचल स्वभाव वाली 'यमुना' नाम की पुत्री होगी। संज्ञा सूर्य के तेज को सहन नहीं कर पाती थी। अतः अपने रूप वाली छाया को बनाकर अपने पिता के यहां जाने लगी। जाते समय संज्ञा ने छाया से कहा मेरी सन्तान का पालन अपनी सन्तान की तरह ही करना। ऐसा कहकर चली गई। पिता ने सम्मान किया, अधिक समय रहने पर पिता ने कहा कि कन्या को मायके में बहुत दिन नहीं रुकना चाहिए। तब वह तप करने उत्तर कुरु देश में चली गई। सूर्य छाया को असली ही छाया समझते थे। उससे उनके दो अश्विनी कुमार और तापी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वह अपनी सन्तान और संज्ञा की सन्तान में भेद करती थी। मनु जी ने सहन किया किन्तु यम से सहन नहीं हुआ। एक दिन क्रोध में आकर माता को पैर से मारना चाहा, किन्तु रोक लिया। मां ने क्रोध में कहा, तुम माता पर पैर चलाते हो, तेरा पैर आज ही गिर जाए। मातृ शाप से यम बहुत दुखी हुए। दुखी होकर पिता को प्रणाम करके शिकायत की। यम की बात सुनकर सूर्य ने छाया से पूछा, तुम ऐसे क्यों करती हो। डराया, धमकाया, किन्तु उसने भेद नहीं खोला, जब बाल पकड़ कर खींचने लगे। तब कहा आपकी वास्तविक पत्नी मायके गई है। मैं उसकी छाया हूं। तब सूर्य संज्ञा को लेने ससुराल पहुंचे। ससुर से पूछा उन्होंने कहा, यहां कुछ काल रह कर चली गई। सूर्य ने कहा मेरे पास नहीं पहुंची। समाधि में स्थित होकर सूर्य ने देखा। वे उत्तर कुरु देश में घोड़ी के रूप में तप करती है। विश्वकर्मा ने कहा, आपके तेज को न सहन कर सकने के कारण उसने ऐसा किया। तब उन्होंने सान पर रखकर उनका तेज छांट दिया। उसी तेज से चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। उसी तेज से शंकर का त्रिशूल, विष्णु का सुदर्शन चक्र, अग्नि की शक्ति, कुबेर की पालकी तथा अन्य

देवताओँ के अस्त्र शस्त्रों का निर्माण विश्वकर्मा ने किया। घोड़े का रूप धारण करके सूर्य संज्ञा के पास पहुंचे। उनके मुख के सामने मुख करने पर दोनों के तेज से नाक से 'नासत्य दस्र' दो अश्विनी कुमारों का जन्म हुआ। दोनों घोड़ें के रूप में ढाल-तलवार हाथ में लिये बाण तथा तूणीरों से युक्त थे। यमराज को पैर गिरने का शाप दिया था तो उनके पैर पर फोड़ा हो गया। उसका खून मांस जब पृथ्वी पर गिरा, तो वे शाप से मुक्त हो गये। दोनों अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य हुए। संज्ञा का प्रथम पुत्र श्राद्धदेव सातवें मनु हुए तथा छाया संज्ञा के अन्तिम पुत्र सावर्णि मनु होंगे। उस समय बलि नाम के इन्द्र होंगे। उसी छायासे सूर्य के शनिश्चर पुत्र भी हुआ। जो ग्रहों के बीच में स्थिर हुआ। तीसरी तपती नाम की कन्या हुई। इसका विवाह कुरु के पुत्र संवरण के साथ हुआ। मनु जी के इक्ष्वाकु, नृग आदि नौ पुत्र हुए। **(वैवस्वत मनूपाख्यानम् पूर्णम्।)**

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चौदहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

अष्टम सूर्य सावर्णि मनु का उपाख्यान

यह मनु सूर्य नारायण की तीसरी पत्नी सवर्णा के पुत्र थे। वह भी अपने भाई श्राद्ध देव के समान पराक्रमी थे। यह पूर्व जन्म में 'सुरथ' के राजा थे। शत्रुओं ने राजपाट छीन लिया।मंत्री तथा सेवकों, जिन का भरण पोषण किया था, उन्होंने त्याग दिया। राजा सुरथ का जन्म स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्र वंश में हुआ था। स्त्री पुत्र मंत्री आदि से तिरस्कृत अपने राजवैभव का स्मरण करते थे। अतः दुखी होकर वन में चले गये। वहां सुमेधा ऋषि के आश्रम में पहुंचे। जिसकी बुद्धि पूर्ण रूपेण ब्रह्म में समाहित हो, उसका नाम 'सुमेधा' है। स्वामी नीलकण्ठ सरस्वती जी ने तथा स्वामी रामाश्रम जी ने तथा शान्तनवी टीकाकारों ने वशिष्ठ जी को सुमेधा ऋषि कहा है। उन्होंने निराश होकर ऋषि को प्रणाम करके कहा, हे ऋषिवर! मुझे संसार की वस्तुएं भूलती नहीं। वे मुझे स्मरण नहीं करते। तो भी मेरी ममता उनके प्रति क्यों हो रही है। राजा पूछ ही रहे थे कि इतने में समाधि नाम का एक वैश्य भी स्त्री पुत्र आदि से अपमानित होकर मोह ममता से ग्रसित ऋषि

के आश्रम में पहुंचा। उसने भी अपना दुख सुनाया तथा इसका कारण पूछा, दोनों की दशा तथा प्रश्न एक जैसे थे। ऋषि बोले, "**ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।**" हे राजन्! महामाया भगवती देवी ज्ञानियों के चित्त को भी जबरदस्ती खींचकर मायामोह में डालती है, जब वह ज्ञानियों के चित्त को खींचती है तो अज्ञानियों की तो बात ही क्या। फिर राजा के प्रश्न करने पर ऋषि ने शक्ति की उत्पत्ति का वर्णन किया तथा महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती का चरित्र सुनाते हुए क्रमानुसार मधुकैटभ वध, महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ का युद्ध तथा रक्त बीज आदि के वध की कथा सुनाई।

अन्तिम अध्याय में सुरथ तथा समाधि वैश्य को शक्ति की आराधना का उपदेश देते हुए समेधा ऋषि ने कहा, तुम दोनों मन इन्द्रियों को संयमित करके शक्ति की उपासना करो, उन दोनों ने ऐसा ही किया। तीन वर्ष निरन्तर आराधना करने से भगवती ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया। राजा को वरदान देते हुए कहा कि तुम अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त करोगे। दूसरे जन्म में तुम 'सावर्णि' नाम के आठवें मनु होंगे। इति सावर्णि मनूपाख्यानम्॥

नवमः रौच्य या दक्ष साविर्ण मनु

इस मन्वन्तर में अद्‌भुत नाम के इन्द्र होंगे। स्वामी कार्तिक का ही नाम 'अद्‌भुत' होगा। धृष्ट केतु, बहर केतु, पंच हस्त, निरामय आदि दश मनु पुत्र होंगे। प्रत्येक मनु, इन्द्र तथा सप्तर्षियों की आयु तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानवीय वर्ष की होती है।

दशम ब्रह्म सावर्णि मनु

इस मन्वन्तर में शान्ति नाम के इन्द्र होंगे। वशिष्ठ पुत्र, आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृति, सत्य, नाभाग, अप्रतिम, सप्तर्षि होंगे तथा सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूमिसेन आदि मनु पुत्र होंगे।

एकादश धर्म सावर्णि मनु यह धर्मराज के पुत्र होंगे। 'वृष' नाम के इन्द्र होंगे।

द्वादश मनु रुद्रासावर्णि

यह रुद्र के पुत्र 'सवर्णा' नाम की माता के गर्भ से पैदा होंगे। 'ऋतधाम' नाम के इन्द्र होंगे। यति तपस्वी आदि सप्तर्षि, मित्रवान् मित्र बिन्द आदि मनु पुत्र होंगे।

तेरहवें रौच्य मनु

उस समय महावीर नाम के इन्द्र होंगे। धृतिमान, तत्त्वदर्शी आदि सप्तर्षि होंगे। चित्रसेन, विचित्र सेन, निर्भय, सुनेत्र आदि मनु पुत्र होंगे।

जीवनी–प्राचीन काल में अहंता, ममता से रहित, परिमित भोजन करने वाले, रुचि नाम के प्रजापति पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे थे। इनकी विवाह की इच्छा नहीं थी। तब उनके पिता ने कहा, हे पुत्र! स्वर्ग तथा मुक्ति देने वाला तुम विवाह क्यों नहीं करते हो। मुक्ति ज्ञान के बिना नहीं होती। ज्ञान देव, पितृ, ऋषि ऋण से उऋण हुए बिना नहीं हो सकता। अतः विवाह अवश्य करो, गृहस्थ तीनों आश्रमियों को भोजन देता है।

उत्तर में रुचि ने कहा, "हे पिता जी! स्त्री का ग्रहण केवल पाप दुख तथा अधोगति का मूल है। अतः विवाह करने की मेरी इच्छा नहीं है। विवाह करके मैं अहंता ममता के कीचड़ में फंस जाऊंगा। अतः विद्वान् इस अहंता ममता रूपी कीचड़ को ब्रह्माकार रूपी सद्भावना के जल से जो कि चित्त रूपी पात्र में रखा हुआ है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण करते हुए धोते हैं।"

पिता ने कहा, "हे पुत्र! तुमने जितेन्द्रिय रहकर अहंता ममता रूपी कीचड़ की निवृत्ति की बात कही। यह तो मुक्तिका मार्ग है। गृहस्थ का नहीं। परन्तु गृहस्थी में रहकर भी साधक अनासक्त भाव से कर्म करने से कीचड़ में नहीं फंसता।"

रुचि बोले, "हे पिता जी! कर्म मार्ग तो अविद्या मूलक है। इसमें मुझे क्यों लगाते हो।" पिता ने कहा, "हे पुत्र! तुम ठीक कहते हो, किन्तु अविद्या मूलक कर्म विद्या की प्राप्ति का कारण है।"

श्रुति ने कहा, "**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।**" निष्काम कर्म से मृत्यु को जीतकर अर्थात् अन्तःकरण को शुद्ध करके आत्म ज्ञान से अमृतत्व मुक्ति को

प्राप्त करता है। इसमें सन्देह नहीं कि सकाम कर्म विष के समान है, जन्म मरण बन्ध का हेतु होने से। किन्तु निष्काम कर्म बन्धन का कारण नहीं है। अतः तुम्हें विवाह करना चाहिए। रुचि ने कहा, "पिता जी अब तो मैं वृद्ध हो चुका हूं, दरिद्री हूं, कन्या कौन देगा।" पिता ने कहा, "तुम्हारे विवाह न करने से पिण्डदान बंद हो जाएगा। हम लोगों की निश्चित दुर्गति होगी। ऐसा कहकर पिता सहित पितर अन्तर्धान हो गये।" पितरों का वचन सुनकर रुचि अत्यन्त दुखी हुए। कन्या की इच्छा से घूमने लगे। उन्होंने ब्रह्मा जी की आराधना दिव्य सौ वर्ष तक की। ब्रह्मा जी ने दर्शन दिया तथा रुचि से कहा, तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूं, क्या चाहते हो? उन्होंने ब्रह्मा जी को प्रणाम करके अपनी इच्छा बताई। ब्रह्मा जी ने कहा तुम्हें सन्तान होगी। पितरों की पूजा करो। पितृ स्तोत्र से पितरों की स्तुति करने लगे। पितरों ने फिर प्रत्यक्ष दर्शन दिया। पितरों को प्रणाम किया। पितृ स्तोत्र मूल टीका सहित अन्यत्र देखें।

रुचि ने कहा कि ब्रह्मा जी ने सृष्टि विस्तार की आज्ञा दी है। मैं समस्त गुणों से युक्त पत्नी चाहता हूं। ब्रह्मा जी फिर बोले, तुम्हें अत्यन्त सुन्दर पत्नी प्राप्त होगी। उससे उत्पन्न पुत्र भावी मनु होंगे। तुम्हारी पत्नी का नाम 'मनोरमा' होगा। उससे महा बुद्धिमान तीनों लोकों का स्वामी रौच्य मनु होगा। उनके श्री महान् शक्तिशाली पुत्र होंगे। तुम भी चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करके अन्त में सिद्धि प्राप्त करोगे। जो तुम्हारे द्वारा रचित स्तोत्र से स्तुति करेंगे। हम उस पर प्रसन्न होकर संसार के भोग तथा आत्म ज्ञान देंगे। इस स्तोत्र का पाठ करने से निरोगता तथा पुत्र पौत्रों की प्राप्ति होती है। श्राद्ध में श्रद्धा भक्ति सहित इसका पाठ करने से पितरों को अक्षय तृप्ति होगी। यद्यपि मूर्ख ब्राह्मण के श्राद्ध में भोजन करने से श्राद्ध निष्फल हो जाता है। अन्याय से कमाये धन से, श्रद्धा रहित, बिना समय तथा विधि हीन श्राद्ध निष्फल होता है, किन्तु श्राद्ध में इस स्तोत्र का पाठ करने से सभी दोष दूर हो जाते हैं तथा बारह वर्ष तक पितरों की तृप्ति होती हैं। हेमन्त ऋतु में इसका पाठ करने से पितर तृप्त होते हैं। शिशिर ऋतु में पाठ करने वाले के पितरों को चौबीस वर्ष तक भूख प्यास नहीं लगती। गर्मी तथा बसन्त में सोलह वर्ष, शरद ऋतु में पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति होतीहै। जिस घर में यह स्तोत्र होगा, वहां पर पितृ वास करेंगे। हे पुत्र! ब्राह्मण भोजन के समय इसका पाठ अवश्य करना चाहिए। पितरों

की आज्ञा प्राप्त कर रुचि नदी में स्नान कर रहे थे। इतने में प्रम्लोचा नाम की सुन्दर अप्सरा उनके पास गई। पास जाकर मधुर शब्दों में अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना करने से रुचि ने तपस्वियों की कन्या जिसका जन्म वरुण पुत्र पुष्कर से हुआ था, के साथ विवाह किया तथा दूसरी वपुष्मती नदी से उत्पन्न मालती नाम की कन्या के साथ दूसरा विवाह किया। उससे उनके महाबुद्धिमान्, अत्यन्त शक्तिशाली रौच्य नामक मनु होंगे।

(इति रौच्य मनूपाख्यानम्)

पितृ स्तोत्रम्

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ९६ श्लोक १३-४८ व अ० ९७ श्लोक १-१८

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धे ये वसन्त्यधिदवेताः।
दैवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ॥१३॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः।
श्राद्धैर्मनोमयै र्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान्।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५॥
नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या येऽर्च्च्यन्ते गुह्यकैरपि।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम ॥१६॥
नमस्येऽहं पितॄन् मर्त्त्यैरर्च्च्यन्ते भुवि ये सदा।
श्राद्धेषु श्रद्धयाऽभीष्ट-लोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७॥
नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८॥
नमस्येऽहं पितॄन् वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्विषैः ॥१९॥

नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥२०॥
नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान्।
कव्यैरशोषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥२१॥
नमस्येऽहं पितॄन् वैश्यैरर्च्च्यन्ते भुवि ये सदा।
स्वकर्म्माभिरतैर्नित्यं पुष्प-धूपान्न वारिभिः ॥२२॥
नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥२३॥
नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैः पाताले ये महासुरैः।
सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भ-मदैः सदा ॥२४॥
नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैरर्च्च्यन्ते ये रसातले।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥२५॥
नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैः सर्पैः सन्तार्पितान् सदा।
तत्रैव विधिवन्मन्त्र-भोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६॥
पितॄन् नमस्ये निवसन्ति साक्षाद् ये देवलोके च तथान्तरिक्षे।
महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥२७॥
पितॄन् नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वरा क्लेशविमुक्तिहेतून ॥२८॥
पितॄन् नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥२९॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान् पशून् स्वानि बलं गृहाणि ॥३०॥
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कविम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१॥

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः ॥३२॥
ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च।
कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३॥
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्च्चितानाम्।
तेषान्तु सान्निध्यमिहास्तु पुण्यगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्वतेऽर्च्चों मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ॥३५॥
पूज्या द्विजनां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणाञ्च नवार्कवर्णाः।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६॥
तेऽस्मिन् समस्ता मम पुष्पगन्धधूपान्न-तोयादि निवेदनेन।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३७॥
ये देवपूर्व्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि।
तृप्ताश्य ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८॥
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान् निर्णाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम्।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३९॥

अग्निष्वात्ताः वर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया ॥४०॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम्।
तथा वर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ॥४१॥
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः।
रक्षो-भूत-पिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२॥
सर्व्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे।
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्म्मो धन्यः शुभाननः
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव ॥४३॥

कल्याणः कल्यताकर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः।
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः॥४४॥
वरो वरेण्यो वरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः॥४५॥
महान् महात्मा महितो महिमावान् महाबलः।
गणाः पंच तथैवैते पितृणां पापनाशनाः॥४६॥
सुखदो धनदश्चान्यो धर्म्मदोऽन्यश्च भूतिदः।
पितृणां कथ्यते चैतत् तथा गणचतुष्टयम्॥४७॥
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम्॥४८॥

रुचि बोले–

मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जो श्राद्ध में देवता होकर निवास करते हैं और जिनका कि श्राद्धों में देवता भी स्वधा कहकर तर्पण करते हैं॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं, जिनका कि स्वर्ग में भुक्ति और मुक्ति की इच्छा करने वाले महर्षि लोग भक्तिपूर्वक श्राद्धों में तर्पण करते हैं॥१४॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जिनको कि स्वर्ग में सिद्ध लोग श्राद्धों में दिव्य और उत्तम उपहारों से तृप्त करते हैं॥१५॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं, जिनको ऋद्धि की इच्छा करते हुए परम एकाग्र चित्त होकर गुह्यक भी भक्तिपूर्वक पूजते हैं॥१६॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं जिनकी कि पृथ्वी पर मनुष्य लोग सदैव अभीष्ट लोकों की प्राप्ति की इच्छा से श्रद्धापूर्वक श्राद्धों में अर्चना करते हैं॥१७॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जो कि ब्रह्मलोक को प्राप्त कराते हैं और जिनको कि पृथ्वी पर अभीष्ट साधन के लिये ब्राह्मण लोग पूजते हैं॥१८॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जिनको कि वनवासी, निष्पाप तपस्वी और यताहारी लोग श्राद्ध करके वन के फूलों से पूजते हैं॥१९॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं, जिनको कि निष्ठा व्रत वाले ब्राह्मण और जितेन्द्रिय लोग समाधियों से सदा तृप्त करते हैं॥२०॥ मैं उन त्रिलोकी का फल देने वाले पितरों को प्रणाम करता हूं,

जिनको कि क्षत्रिय लोग अशेष कव्य पदार्थों से विधिपूर्वक श्राद्ध करके तृप्त करते हैं ॥२१॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जिनको अपने कामों में लगे हुए वैश्य लोग पृथ्वी पर सदा पुष्प, धूप, अन्न, जल आदि से तृप्त करते हैं ॥२२॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं जो इस संसार में सुकाली नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनको कि शूद्र लोग भक्तिपूर्वक श्राद्धों में तृप्त करते हैं ॥२३॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं, जिनको कि रसातल में अनेक कामनाओं की इच्छाओं से नाग लोग विधिपूर्वक अनेक भोगों से पूजते हैं ॥२५॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जिनको कि वहां रसातल में ही सर्प सदा मन्त्र, भोग और सम्पत्तियों से विधिवत् तृप्त किया करते हैं ॥२६॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो कि देवलोक, आकाश और पृथ्वीतल पर रहते हैं और जोकि देवता आदिकों से पूजित हैं। वे पितर मेरे द्वारा अर्पण किये हुये जल को ग्रहण करें ॥२७॥ मैं परमात्मा स्वरूप उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो विमानों पर चढ़कर अन्तरिक्ष में निवास करते हैं और जिनको कष्ट से मुक्ति पाने के अभिप्राय से योगीश्वर विमल चित्त से पूजते हैं ॥२८॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं जो कि स्वर्ग में रहते हैं और स्वधाभोजी हैं तथा जो कामना वालों की इच्छा पूरी करते हैं और निष्काम लोगों को मुक्ति प्रदान करते हैं ॥२९॥ इससे वे सब पितर तृप्त हों जो कि इच्छा करने वालों की सब इच्छायें पूर्ण करते हैं और देवत्व, इन्द्रत्व तथा इससे भी अधिक ब्रह्मत्व तथा पुत्र, पशु, बल और गृह आदि प्रदान करते हैं ॥३०॥ वे पितर जो चन्द्रमा की किरणों और सूर्य की ज्योति में तथा श्वेत विमानों में सदैव निवास करते हैं, वे अन्न, जल, गन्ध आदिसे तृप्त होकर पुष्ट हों ॥३१॥ जो पितर अग्नि में हविष्य प्रदान करने से तृप्त होते हैं तथा जो ब्राह्मण के शरीर में स्थित होकर भोजन करते हैं और जो पिण्ड दान से प्रसन्न होते हैं, वे पितृ लोग इस अन्न और जल से सन्तुष्ट हों ॥३२॥ जो पितर गैंडे के मांस तथा अथवा दिव्य मुहूर्त में महर्षियों के दिये हुए शाक से प्रसन्न होते हैं, वे यहां मुझ पर प्रसन्न हों ॥३३॥ जो पितर लोग देवताओं से पूजित होकर अशेष कव्यों को अभीष्ट मानते हैं, वे मेरे सान्निध्य से पुष्प, गन्ध तथा अन्न आदि को ग्रहण करें ॥३४॥ जो पितर लोग नित्य प्रति अर्घ्यं ग्रहण करने हैं तथा पृथ्वी पर जिनकी अभ्युदय काल में अष्टका, मासान्त और वर्ष के अन्त की पूजा होती है, वे पितर यहां तृप्ति को प्राप्त हों ॥३५॥ जो

पितर लोग चन्द्रमा के समान प्रकाशित होकर ब्राह्मणों से, बाल सूर्य की तरह ज्योतिष्मान् होकर क्षत्रियों से, सुवर्ण से समान कान्तियुक्त होकर वैश्यों से, सुवर्ण के समान कान्तियुक्त होकर वैश्यों से और श्यामवर्ण होकर शूद्रों से पूजित हैं ॥३६ ॥ वे सब मेरे पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न, जल आदि के निवेदन से तथा अग्नि में होम करने से तृप्त हो, मैं उन पितरों को सदा प्रणाम करता हूं ॥३७ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो अग्नि में हवन किये हुए कव्य को खाते हैं और जो तृप्त होकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३८ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो राक्षसों, भूतों और प्रचण्ड दैत्यों का नाश करके प्रजा का कल्याण करते हैं जो पितर देवताओं के पूर्ववर्ती और उनसे पूज्य है, वे तृप्त हों ॥३९ ॥ वे पितर जो कि अग्निष्वाता, बर्हिषद, आज्यपा और सोमपा हैं, वे इस श्राद्ध में मुझसे तर्पित होकर तृप्ति को प्राप्त हों ॥४० ॥ अग्निष्वाता पितर जो वर्हिषद कहलाते हैं, मेरी दक्षिण दिशा में रक्षा करें ॥४१ ॥ आज्यपा पितर पश्चिम दिशा में, तथा सोमपा उत्तर दिशा में राक्षस, भूत, पिशाच तथा असुरों से मेरी रक्षा करें ॥४२ ॥ विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धूम्र, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति पितरों के नौ गुण ॥४३ ॥ कल्याण, कल्यताकर्त्ता, कल्य, कल्यतराश्रय, कल्याणहेतु और अनघ, ये छहों गण ॥४४ ॥ वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद्, विश्वपाता तथा धाता ये पितरों के सात गण ॥४५ ॥ महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महावत ये पापनाशक पितरों के पांच गण ॥४६ ॥ सुखद्, धनद, धर्मद और भूमिद ये पितरों के चार गण ॥४७ ॥ इस प्रकार इकत्तीस पितृगणों से सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। ये सब पितरगण तृप्त होकर के सदा मेरी रक्षा करें ॥४८ ॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराण में रुचि-उपाख्यान में रुचिकृत पितृ-पुरुष स्तोत्र ९६वां अ० स० ॥

सतानवैयां अध्याय

रुचिरुवाच

अर्च्चितानाममूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥३ ॥

इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्ष-मारीचयोस्तथा।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान्॥४॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा।
तान् नमस्याम्यहं सर्वान् पितृनप्सूदधावपि॥५॥
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्यवग्न्योर्नभसस्तथा।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥६॥
देवर्षीणां जनितृंश्च सर्व्वलोकनमस्कृतान्।
अक्षय्यस्य सदा दातृन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥७॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥८॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु।
स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥९॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्॥१०॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितृनहम्।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः॥११॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः॥१२॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः॥१३॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसा मुनिसत्तम।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश॥१४॥
निवेदितञ्च यत् तेन पुष्पगन्धानुलेपनम्।
तद्भूषितानथ स तान् ददृशो पुरतः स्थितान्॥१५॥

प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥१६॥
ततः प्रसन्ना पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम्।
वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकंधराः ॥१७॥

रुचिरुवाच

साम्प्रतं सर्गकर्त्तुत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥१८॥

रुचि बोले–मैं अर्चित, अमूर्त, दीप्त-तेज वाले ध्यान दिव्यचक्षु वाले पितरों को नमस्कार करता हूं ॥३॥ मैं उन अभिलाषा पूर्ण करने वाले पितरों को नमस्कार करता हूं जो इन्द्र, दक्ष, मारीच, सप्तर्षि तथा अन्य देवताओं तक ले जाते हैं ॥४॥ मनु आदि मुनीन्द्रों और सूर्य चन्द्रमा तक ले जाने वाले तथा जल और समुद्र में रहने वाले पितरों को मैं प्रणाम करता हूं ॥५॥ मैं हाथ जोड़कर उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो नक्षत्र, गृह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी आदि प्राप्त कराते हैं ॥६॥ मैं हाथ जोड़कर उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो देवता और ऋषियों के पिता हैं तथा जिनको सब जगत नमस्कार करता है और जो अक्षयफल देने वाले हैं ॥७॥ मैं हाथ जोड़कर प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण और योगेश्वर पितरों को प्रणाम करता हूं ॥८॥ मैं सातों लोकों के सातों गणों तथा स्वायम्भुव और योगचक्षु ब्रह्मा जी को प्रणाम करता हूं ॥९॥ मैं सोम और योगमूर्ति को धारण करने वाले पितरों तथा समस्त संसार के पितर चन्द्रमा को प्रणाम करता हूं ॥१०॥ मैं अग्नि रूप उन दूसरे पितरों को नमस्कार करता हूं, जिनसे कि यह सर्म्पूण जगत् अग्नीषोममय हो रहा है ॥११॥ वे पितर जो कि तेज में चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के समान हैं तथा जगत् स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं ॥ उन सब योगी, नियतात्मा और स्वधाभोजीपितरों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं, वे मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२/१३॥

मार्कण्डेय जी बोले–हे क्रौष्टुकि मुनि! रुचि के इस प्रकार स्तुति करने पर पितरगण उस तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए निकले ॥१४॥ रुचि ने जो

कुछ पुष्प, गन्ध, चन्दन आदि निवेदन किया था, रुचि ने उस सब से उनको भूषित हुआ अपने सामने खड़े हुए देखा ॥१५॥ फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर और प्रणाम करके रुचि उनकी आदरपूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करने लगे और आपको प्रणाम है ऐसे बार-बार कहने लगे ॥१६॥ तब प्रसन्न होकर पितरों ने मुनिश्रेष्ठ रुचि को कहा कि वर मांगो। इस पर वह प्रणामकर उनसे बोले ॥१७॥

रुचि बोले-इस समय ब्रह्माजी ने मुझे सृष्टि रचने के लिये आदेश किया है। अतः मैं प्रजापती, सुन्दरी पतिव्रता स्त्री की अभिलाषा करता हूं ॥१८॥

चौदहवें भौत्य मनु का उपाख्यान

देवगुरु बृहस्पति के पिता अंगिरस ऋषि के 'भूति' नाम के एक क्रोधी ऋषि हुए। थोड़ी सी बात में भयंकर शाप दे देते थे। अतः उनके क्रोध तथा शाप से तैंतीस करोड़ देवता भी कांपते थे। उनके भय के मारे बाहर चारों ओर चाहे कितना आंधी तूफान क्यों न हों, पर आश्रम के समीप वायु देवता भी धीरे-धीरे चलते थे। उनके आश्रम में किसी भी महीने सूर्य अधिक नहीं तपते थे। बादल आवश्यकता से अधिक पानी नहीं बरसाते थे कि आश्रम में कीचड़ हो जाता। चन्द्रमा अपनी किरणों से अधिक शीतलता नहीं देते थे। बारहों महीने वृक्ष फूलों फलों से लदे रहते थे। वह ब्राह्मण किसी प्रकार का क्लेश नहीं सह पाता था, पर सन्तानहीन था। उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिए तप किया। तब भी कोई सन्तान नहीं हुई। एक बार उनके छोटे भाई 'सुवच' ने यज्ञ में आमन्त्रित किया। उन्होंने परम शान्त, विनयी, गुरु आज्ञा पालक 'शान्ति' नाम के शिष्य से कहा, हे शान्त! मैं भाई के यज्ञ में जा रहा हूं। तुम मेरी यज्ञाग्नि की रक्षा करना। उन्होंने आजीवन यज्ञाग्नि बुझने नहीं दी।

शान्ति अग्नि की रक्षा करते रहे। एक दिन वह वन में लकड़ी कन्दमूल फल लेने गये थे। दूसरे गुरु भाई अन्य कार्यों में लगे थे। लौटने पर अग्नि शान्त हो चुकी थी। वेबड़े दुखी हुए। कुपित होकर गुरु जी शाप दे देंगे। यदि गुरु जी को धोखा देकर दूसरी अग्नि की स्थापना करता हूं, तो अग्नि देव मुझे भस्म कर देंगे। निश्चय ही मुझे गुरु या अग्नि का शाप प्राप्त होगा। देवता भी उनसे डरते थे।

वे अग्नि की शरण को प्राप्त हुए। हाथ जोड़ कर पृथ्वी पर घुटने टेककर अग्नि की बहुत बड़े स्तोत्र से स्तुति करने लगे। अग्नि स्तोत्र अन्यत्र सटीक मूल है। अग्नि देव प्रसन्न हुए, ऋषि के आगे प्रकट हुए। उनसे कहा हे विप्र! तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूं, तुम जो चाहो वर मांग लो। शान्ति ने कहा हे भगवन्! मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हो चुका हूं। मेरे गुरुदेव की अग्नि पूर्ववत् हो जाए, मेरे अपराधों को क्षमा करो। हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों तो पुत्र हीन मेरे गुरु को पुत्र प्राप्त हो तथा वे अपनी उग्रता त्याग कर अपने पुत्र के समान ही सभी जीवों से प्रीति करें अर्थात् मेरे गुरु जी का क्रोध शान्त हो जाए। इस स्तोत्र का पाठ करने वाले की आपके चरणों में प्रीति हो।

उनकी प्रार्थना सुनकर अग्नि देवता बोले, हे राजन्! तुम्हारे स्वभाव तथा विनय से मैं प्रसन्न हूं। वे क्रोध त्याग कर सबसे मैत्री भाव करेंगे तथा उन्हें पुत्र प्राप्त होगा। तुम्हें भौत्य नाम से चौदहवां मनु होगा। आपके गुरु के भी महान् पराक्रमी तथा बुद्धिमान पुत्र होंगे। जो इस स्तोत्र का एकाग्रचित्त से पाठ करने वाले की सभी कामनाएं पूरी होंगी। पर्व में, तीर्थ में, अमावस्या, पूर्णिमा में पाठ करने वाला सभी दोषों से मुक्त हो जाएगा। यह वरदान देकर अग्नि देवता अन्तर्धान हो गये। उनके गुरु आश्रम में आये। अग्नि को पूर्ववत् देखकर बहुत प्रसन्न हुए। शान्ति महामुनि ने गुरु के चरणों को प्रणाम तथा पूजा करके गुरु जी से सारी गाथा सुना दी। शिष्य की बात सुनकर गुरु जी ने प्रेमाश्रुओं से परिपूर्ण शिष्य को हृदय से लगाया तथा अंगों उपांगों सहित चारों वेद दिये। इन्हीं भूति के 'भौत्य' नाम के पुत्र चौदहवें मनु होंगे। शुचि नाम के इन्द्र होंगे तथा आग्नीध्र, अग्नि बाहु आदि सप्तर्षि होंगे और गुरु, गम्भीर, विष्णु आदि चौदह मनु पुत्र होंगे।

इन चौदह मनुओं का इतिहास सुनने वाला महापुण्य प्राप्त करेगा।

फलश्रुति–पहले मनु की कथा सुनने वाले को धर्म प्राप्त होता है। दूसरे स्वारोचिष मनु की कथा सुनने से कामनाएं पूर्ण होती है। तीसरे औत्तम की कथा सुनने से धन प्राप्त होता है। चौथे तामस मनु की कथा से ज्ञान प्राप्तहोता है। पांचवै रैवत मनु की कथा से बुद्धि तथा रूपवती स्त्री प्राप्त होती है। छठे चाक्षुषमनु की कथा से निरोगता प्राप्त होती है। सातवें वैवस्वत मनु की कथा से बल प्राप्त होता है। आठवें सूर्य सावर्णि की कथा

से पुत्र प्राप्त होता है। नवें सावर्णी मनु की कथा से महिमा प्राप्त होती है। दशम धर्म सावर्णि की कथा से बुद्धि प्राप्त होती है। ग्यारहवें रौच्य मनु की कथा से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। यहां चौदहवें भौत्य मनु की कथा सुनने से देवताओं की कृपा तथा गुणवान् पुत्रों की प्राप्ति होती है तथा क्रमानुसार बारहवें यथा सावर्णि की कथा से गुणों की वृद्धि होती है। तेरहवें रौच्य मनु की कथा से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। चौदह मनुओं की कथा सुनने वाले पर मन्वन्तर के देवता, ऋषि तथा मनु प्रसन्न होते हैं। सभी पापों से छूट जाता है और अन्त में शुभ गति प्राप्त करता है। पुण्य लोकों में एक कल्प तक वास करता है। उसके ऊपर सभी ऋतुएं, सभी ग्रह नक्षत्र अनुकूल हो जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए। **(चौदहवें मनु का उपाख्यान सम्पूर्ण)**

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

अग्नि स्तोत्रम्

(मार्कण्डेय पुराण अध्याय ९९–श्लोक २७ से ७०)

शान्तिरुवाच

ओं नमः सर्व्वभूतानां साधनाय महात्मने।
एकद्विपञ्चधिष्णयाय राजसूये षड़ात्मने॥२७॥
नमः समस्त देवानां वृत्तिदाय सुवर्चसे।
शुक्ररूपाय जगतामरोषणां स्थितिप्रदः॥२८॥
त्वं मुखं सर्व्वदेवानां त्वयात्तुं भगवान् हविः।
प्रीणयत्यखिलान् देवान् त्वत्प्राणाः सर्व्वदेवता॥२९॥
हुत् हविस्त्वय्यमलमेधत्वमुपगच्छति।
ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैति यत्॥३०॥
तेनाखिलौषधीजन्म भवत्यनिलसारथे।
ओषधीमिरशाषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः॥३१॥

वितन्वते नरा यज्ञान् त्वत्सृष्टाम्वोषधीपु च।
यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक॥३२॥
आप्याय्यन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन।
अतः सर्व्वस्य योनिस्त्वं वह्ने सर्व्वमयस्तथा॥३३॥
देवता दानवा यक्षा दैत्या गन्धर्वराक्षसाः।
मानुषाः पशवो वृक्षा मृग-पक्षि-सरीसृपाः॥३४॥
आप्यय्यन्ते त्वया सर्व्वेसंवर्ध्यन्ते च पावक।
त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम्॥३५॥
अपः सृजसि देव त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः।
पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारकम्॥३६॥
देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः।
विषरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्रिषु॥३७॥
मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षि-मृगादिषु।
अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति॥३८॥
त्वमग्ने सर्व्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन्।
त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः॥४०॥
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन्॥
त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः॥४१॥
त्वामृते हि जगत् सर्व्व सद्यो नश्येद्धुताशन।
तुभ्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्म्मविहितां गतिम्॥४२॥
प्रयाति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहाभ्युदीरणात्।
परिणामात्मवीर्य्या हि प्राणिनाममरार्च्चित॥४३॥
दहन्ति सर्व्वभूतानि ततो निष्क्रम्य हेतयः।
जातवेदस्तवैवेयं विश्वसृष्टिमहाद्युते॥४४॥

तवैव वैदिकं कर्म्म सर्व्वभूतात्मकं जगत्।
नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष नमस्तेऽस्तु हुताशन॥४५॥
पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यावाहन।
त्वमेव भुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपावकः॥४६॥
शस्यानां पाककर्त्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा।
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वं वीजं शसयहेतुकम्॥४७॥
पोषाय सर्व्वभूतानां भूतभव्यभवो ह्यसि।
त्वं ज्योतिः सर्व्वभूतेषु त्वमादित्यो विभावसुः॥४८॥
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान्।
हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकाराणम्॥४९॥
हिरण्यगर्भश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभः।
त्वं मुहूर्त्त क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वं तथा लवः॥५०॥
कला-काष्ठा-निमेषादि-रूपेणासि जगत्प्रभो।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान्॥५१॥
या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो।
भयान्नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५२॥
कराली नाम या जिह्वा महाप्रलयकारणम्।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५३॥
मनोजवा च या जिह्वा लघिमागुणलक्षणा।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५४॥
करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५५॥
सधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदाहिका।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५६॥

स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गलाः।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५७॥
या ते विश्वा सदा जिह्वा प्राणिनां शर्म्मदायिनी।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५८॥
पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्ण हुताशन।
त्राहि मां सर्व्वदोषेभ्यः संसारादुद्धरेह माम्॥५९॥
प्रसीद वह्ने सप्तार्च्चिः कृशानो हव्यवाहन।
अग्नि-पावक-शुक्रादि-नामाष्टभिरुदीरितः॥६०॥
अग्नेऽग्रे सर्व्वभूतानां समुद्भूत विभावसो।
प्रसीद हव्ववाहाख्य अभिष्टुत मयाव्यय॥६१॥
त्वमक्षायो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमान् दुष्प्रसहोऽतितीव्रः।
त्वमव्ययं भीममशेषलोकं समूर्त्तको हन्त्यथवातिवीर्य्यः॥६२॥
त्वमुत्त्मं सत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुण्डरीकस्त्वमनन्तमीडयम्।
त्वया ततं विश्वमिद्चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र॥६३॥
त्वमक्षयः सगिरिवनाः वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम्।
महोदधेर्जठरगतश्च वाड़वो भवान् विभूत्या परया करे स्थितः॥६४॥
हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्महर्षिभिः।
अभिष्टुतः पिवसि च सोममघ्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये॥६५॥
त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयते त्वम्।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्व्वकाले॥६६॥
त्वं ब्रह्मार्यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशः सुरपतिरर्य्यमा जलेशः।
सूर्य्येन्दु सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति॥६७॥
आर्चिभिः परम महोपधातदुष्टं संस्पुष्टं तव शुचि जायते समस्तम्।
स्नानानां परममतीव भस्मना सत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीव सेव्यसे तत्॥६८॥

प्रसीद वह्ने शुचिनामधेय प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते।
प्रसीद मे पावक वैद्युताद्य प्रसीद हव्याशन पाहि मां त्वम॥६९॥
यत् ते वह्ने शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः
तैः नः स्तुतो देव पिता पुत्रमिवात्मजम्॥७०॥

शान्ति बोले—सब जीवों के साधक, महात्मा एकद्विपंचस्थानी, राजसूय यज्ञ में षडात्मा अग्नि को प्रणाम है॥२७॥ मैं उस अग्नि को प्रणाम करता हूं, जो सब देवताओं को वृत्तिदायक है और कान्तियुक्त, शुक्र रूप, अशेष जगतों की स्थिति का कारण है॥२८॥ हे अग्नि! तुम सब देवताओं के मुख हो। तुम्हारे द्वारा हविष्य भक्षण करके भगवान् के प्राण हो॥२९॥ आपके भीतर हवन किया हुआ हवि अमलमेघत्व को प्राप्त होकर परिणाम में जलरूप हो जाता है॥३०॥ हे अनिलसारथे! उस जल से समस्त औषधियां तथा खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनसे कि सब जीव सुखपूर्वक जीवित हैं॥३१॥ हे पावक! आपकी उत्पन्न औषधियों से मनुष्य यज्ञ करते हैं और उन यज्ञों से देवता, दैत्य और राक्षस तृप्त होते हैं॥३२॥ हे हुताशन! आप ही यज्ञों के आधार हैं। अतः आप ही सब के कारण तथा सर्वमय हैं।॥३३॥ देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी तथा सर्प सब आपके ही द्वारा तृप्त होते हैं॥३४॥ हे अग्नि! आप ही इनका संवर्द्धन करते हैं तथा आप ही से इनका उत्कर्ष और आप ही में इनका लय है॥३५॥ दे देव! आप ही जलों को उत्पन्न करते हैं तथा आप ही उनको पी जाते हैं। आपके द्वारा पचाया हुआ जल ही प्राणियों की पुष्टि करता है॥३६॥ देवताओं के तेज रूप से, सिद्धों में कान्ति रूप से, नागों में विष रूप से तथा पक्षियों में वायु रूप से॥३७॥ मनुष्यों में क्रोध रूप होकर, पशु-पक्षियों में मोह रूप होकर, वृक्षों में अवष्टम्भ रूप होकर और पृथ्वी में कठोरता रूप होकर॥३८॥ जल में द्रवणरूप और वायु में वेगरूप तथा आकाश में व्यापकता रूप होकर हे भगवन् अग्नि! आप स्थित हैं॥३९॥

हे अग्नि! आप सब जीवों का पालन करते हुए उनके अंतस्तल में विचरते हैं। आप एक हैं, परन्तु कवियों ने आपको तीन प्रकार का कहा है॥४०॥ परम ऋषि आपको यज्ञ

आदि में आठ प्रकार का कल्पित करते हैं और यह कहते हैं कि संसार आपसे ही उत्पन्न है ॥४१ ॥ हे हुताशन! आपके मरने पर सब जग नष्ट हो जायेगा। आपकी पूजा करके ब्राह्मण अपने विहित कर्म को ॥४२ ॥ स्वधा और स्वाहा आदि का उच्चारण करके हव्य कव्य आदि से प्राप्त होते हैं। हे देवताओं से पूजित अग्निदेव! सब प्राणियों का आत्मा और पराक्रम आप ही से है ॥४३ ॥ हे जातवेद! हे महाद्युति! आप ही की ज्वालायें सब भूतों को जलाती हैं तथा इस विश्व की सृष्टि आप ही से है ॥४४ ॥ आप ही वैदिक कर्म और सब जीवों से युक्त जगत रूप हैं। हे अनिल! हे पिंगाक्ष! हे हुताशन! आपको मैं बार-बार प्रणाम करता हूं ॥४५ ॥ हे आदि पालक! हे हव्यवाहन! आपको नमस्कार है। आप की खाये और पिये हुए को पचाते हैं। अतः आप ही विश्व पालक हैं ॥४६ ॥ आपही अन्नों का पाक कर के और जगत् का पालन करते हैं। आपही मेघ, वायु और अन्नों के बीज रूप हैं ॥४७ ॥ सब जीवों के पालन और कल्याण के लिये आपका जन्म हुआ है। आपही सब जीवों में ज्योति और आपही सूर्य हैं ॥४८ ॥ आपही दिन-रात्रि तथा दोनों संन्धायें हैं। हे अग्नि! आपही हिरणयरेता और सुवर्ण का कारण हैं ॥४९ ॥ आपही हिरण्यगर्भ हैं और आपकी कान्ति सुवर्ण के समान है। मुहूर्त, क्षण, त्रुटि तथा लव आपही हैं ॥५० ॥ हे जगत् के प्रभु! आपकी काली जिह्वा कालनिष्ठा करने वाली है। उसी के द्वारा आप सांसारिक भय तथा पाप से हमारी रक्षा कीजिये ॥५२ ॥ आपकी कराली नाम की जिह्वा महाप्रलय करने वाली है, उससे आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥५३ ॥ लघिमा गुण लक्षणवाली जो आपकी मनोजा जिह्वा है, उसके द्वारा आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥५४ ॥ आपकी सुलोहिता जिह्वा जीवों की कामना पूर्ण करती है। उसी से आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥५५ ॥ प्राणियों के रोग नाश करने वाली सधूम्रवर्ण नाम जिह्वा के द्वारा आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥५६ ॥ सब संसार का मन चंचल रखने वाली जो स्फुलिंगिनी नामक आपकी जिह्वा है, उसके द्वारा हमारे पापों और सांसारिक महाभय से हमारी रक्षा करें ॥५७ ॥ प्राणियों को कल्याण देने वाली अपनी विश्वसादा जिह्वा से हमारी पापों और सांसारिक भय से रक्षा करें ॥५८ ॥

हे पिंगाक्ष, हे लोहितग्रीव! कृष्णवर्ण हुताशन! मेरे सब पापों को दूर करके इस संसार से मेरा उद्धार करो ॥५९॥ हे अग्नि! आप प्रसन्न हों, आप सप्तार्चि, कृशानों, हव्यवाहन, अग्नि, पावक, शुक आदि आठ नामों से पुकारे जाते हैं ॥६०॥ हे अग्नि! आप सब जीवों से पहले उत्पन्न हुये हैं। हे हव्यवाहन, हे अभिष्टुत, हे अव्यय! आप प्रसन्न हों ॥६१॥ आप अक्षय अग्नि, अचिंत्य रूप, समृद्धिशाली, दुष्प्रसह, अतितीव्र, अव्यय और भीम हैं। आप मूर्तिमान होकर अशेष लोकों को नष्ट करते हैं तथा अति पराक्रमी हैं ॥६२॥ आप उत्तम जीव हैं, प्रत्येक जीव के हृदय कमल में रहते हैं। आप अनन्त स्तुति करने योग्य तथा सब जगत् में व्याप्त हैं। हे हुताशन! आप एक हैं, परन्तु अनेक प्रकार से संसार में स्थित हैं ॥६३॥ आप अक्षय हैं तथा पर्वत, वन, पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात्रि ये सब आपही हैं। समुद्र में बड़वानल आपही हैं तथा परम विभूति को आप सदा हाथ में लिये रहते हैं ॥६४॥ हुताशन कहकर यज्ञों में आपको महान् ऋषि लोग पूजते हैं। यज्ञ में आपकी स्तुति करके सोमपान करते तथा वषट् उच्चारण करके हविष्य भक्षण करते हैं ॥६५॥ फलार्थी होकर ब्राह्मण सदैव आपका पूजन करते हैं तथा सब वेदाङ्गों में आपका गान करते हैं। ब्राह्मण लोग आपके निमित्त यज्ञपरायण होकर सदा वेदाङ्गों में आपका गान करते हैं। ब्राह्मण लोग आपके निमित्त यज्ञपरायण होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, अर्यमा, वरुण, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब देवता व राक्षस आपको हविष्यों से संतुष्ट कर अमितफलों को पाते हैं ॥६७॥ चाहे कितने ही बड़े उपघात से दूषित क्यों न हो गया हो, आपकी ज्वालाओं के स्पर्श से सब शुद्ध हो जाता है। संध्या समय स्नान के उपरान्त मुनि लोग आपकी भस्म शरीर से लगाते हैं ॥६८॥ हे अग्नि! हे शुचि! हे वायु! हे विमलातिदीप्ति! हे पावक! हे वैद्युत! हे आद्य! हे हव्यासन! आप प्रसन्न हों और मेरी रक्षा करें ॥६९॥ हे अग्नि! आपका जो कल्याणमय रूप और सात ज्वालायें हैं वे हे देव! हमारी उस प्रकार रक्षा करे, जिस प्रकार कि पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥७०॥

॥ इति मार्कण्डेय पुराण अध्याय ९९ ॥

॥ अथ पन्द्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१२६-१२७ भगवान् जैगिषव्य तथा महर्षि लोमश

जैगिषव्य-योग दर्शन के व्यास भाष्य में भाष्यकार भगवान् वेद व्यास जी ने भगवान् जैगिषव्य का नाम बड़े आदर के साथ लेते हुए कहा है कि इनको दस हजार कल्पों के अनेकों जन्मों का ज्ञान था। वे अपने शिष्यों के प्रति उपदेश करते हुए कहते हैं कि मुझे स्मरण है कि कई बार मैंने चौरासी लाख योनियां भोगने के बाद मनुष्य शरीर प्राप्त करके देवराज इन्द्र का पद पाया। कई बार मैं ब्रह्मा, रुद्र, मनु, सूर्य हुआ। इन अधिकारी पुरुषों के पदों को पाकर मुझे प्रसन्नता हुई, किन्तु परिणाम में त्रिताप प्राप्त किये। अत: हे शिष्यो! जब तक साधक संचित कर्मों को ज्ञान रूपी अग्नि में दग्ध नहीं करते, तब तक दुखों से छुटकारा नहीं हो सकत। जैगिषव्य ऋषि कब हुए, इनके माता पिता कौन थे? इनके जीवन के सम्बन्ध में अभी तक हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।
(श्री भगवान् जैगिषव्य का चरित्र पूर्ण हुआ।)

महर्षि लोमश-महर्षि लोमश चारों सनकादिक तथा वशिष्ठ आदि ऋषियों से बड़े हैं। इनके जीवन में न जाने कितने ब्रह्मा बीत चुके हैं। मानस के उत्तरकाण्ड में लोमश कागभुशुण्डि सम्वाद आता है। यह सम्वाद तुलसी दास जी ने इन्हीं (लोमश जी) द्वारा लिखित लोमश रामायण से लिया है। यह ग्रन्थ बत्तीस हजार श्लोकों में है। इसमें राजा कुमुद तथा उनकी पत्नी वीरवती की तपश्चर्या का वर्णन है। यही भगवान् से वर पाकर दशरथ तथा कौशल्या के रूप में जन्मे।

ब्रह्म वैवर्त पुराण में इनके सम्बन्ध में बहुत अद्‌भुत कथा आई है। एक बार देवराज इन्द्र ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि आप ऐसा दिव्य राजभवन तैयार करें, जिसको आज तक किसी इन्द्र ने न बनवाया हो। उसमें चिन्तामणि पत्थर का प्रयोग किया जाए। सूर्य, चन्द्रमा, तारे उसमें जड़े जाएं। एक ऐसी सभा तैयार करो, जिसमें बैठने वालों को सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, भय, रोग, शोक तथा बुढ़ापा न आये। विश्व कर्मा आज्ञा शिरोधार्य करके काम में लग गये। हजारों वर्ष उसमें लगे रहे। सर्दी, गर्मी, वर्षा से पीड़ित हुए तथा सोचने लगे। ऐसा राजमहल तो मैं सैंकड़ों जन्मों में भी तैयार नहीं कर पाऊंगा। एक दिन देवर्षि नारद जी वीणा बजाते हरि गुण गाते स्वर्ग में पहुंचे। विश्वकर्मा जी ने उन्हें प्रणाम

करके अपना दुख सुनाया। आप सभी के दुख दूर करते हो। मुझे भी इस विपत्ति से छुड़ायें। नारद जी तथास्तु कहकर इन्द्र भवन में प्रविष्ट हुए। सपत्नीक इन्द्र ने पाद्य अर्घ्य आदि से उनका पूजन किया तथा कहा, हे देवर्षे! मैं एक अत्यन्त अद्‌भुत राजभवन तैयार करवा रहा हूं कृपया आप देखें, यह ठीक है या नहीं। आप पूरे ब्रह्माण्ड में गूमते हैं। अतः देखकर बतायें नारद जी के साथ वहां पहुंचे। महल की प्रशंसा की। फिर इन्द्र से कहा, हे इन्द्र! मैं तो बहुत ही अल्पायु जीव हूं। मेरी तो एक कल्प की आयु है। हम सब ऋषियों के परदादाओं के भी परदादा दीर्घतम जीवी लोमश ऋषि है। उनसे हम दोनों पूछेंगे। ऐसा कहकर इन्द्र को मृत्यु लोक में ले आए। एकान्त स्थान में दोनों ने, एक चटाई की सिर पर छाया किये हुए, लोमों से भरपूर एक वृद्धतम ऋषि को देखा। दोनों ने उनके चरणों में दण्डवत् साष्टांग प्रणाम किया। इन्द्र ने देखा, उनके सारे शरीर में रोम हैं, किन्तु पीठ के पीछे चांदी के रुपये के बराबर स्थान रोम रहित था। इन्द्र ने आश्चर्य करते हुए पूछा, आप की पीठ पर बाल क्यों नहीं है। आपकी आयु क्या है? उन्होंने उत्तर दिया, हे देवराज! मेरे शरीर पर जितने बाल हैं। उतने ब्रह्मा जब मरेंगे, तब मेरी मृत्यु होगी। किसी की मृत्यु होने पर मुण्डन करवाना चाहिए। नहीं तो उसके ब्रह्म हत्यादि पाप सम्बन्धियों के केशों के आश्रित रहते हैं। वे उन्हें प्राप्त होते हैं। पूरे ब्रह्माण्ड के महाप्रलय के बाद ब्रह्मा की मृत्यु होती है। जब एक ब्रह्मा शरीर छोड़ते हैं तो सभी प्राणी पहले प्राण त्याग देते हैं तो नाई कहां से मिले। अतः मैं पीठ का एक बाल उखाड़ देता हूं। जितनी पीठ रोम रहित है इतने ब्रह्मा मर चुके हैं। जितने रोम हैं जब वे सब समाप्त हो जाएंगे, तब मेरी मृत्यु होगी। महर्षि की बात सुनकर इन्द्र बहुत आश्चर्य चकित हुए। दोनों ठठाकर हंस पड़े। फिर इन्द्र ने कहा, आप मैदान में क्यों बैठे हो। इतने लम्बे जीवन के लिए छोटी-मोटी घास की कुटी ही क्यों नहीं बना लेते। उत्तर में उन्होंने कहा जीवन का कोई ठिकाना नहीं। थोड़ी सी आयु के लिए कौन खटपट करे। तुम जो राजभवन बनवा रहे हो, वह देखे बिना क्या कहा जाए। चटाई ही मेरा घर है, सूर्य की ओर करके छाया कर लेता हूं। वर्षा के समय ओढ़ लेता हूं। आवश्यकतानुसार नीचे बिछा लेता हूं। उनका यह वचन सुनकर इन्द्र को परम वैराग्य हुआ। कहां तो यहइतने चिरायु होने पर भी आवास की चिन्ता नहीं करते। जिस ब्रह्मा के एक दिन में मुझ जैसे

१४ इन्द्र मर खप जाते हैं और इनके जीवन में असंख्य ब्रह्मा नष्ट हो चुके हैं। मेरी इनमें कौन गणना है। स्वर्ग में पहुंचते ही तुरन्त काम बंद करवा दिया। विश्वकर्मा का भी पिण्ड छूटा। फिर तीनों महल में प्रविष्ट हुए। जब तीनों यथोचित आसन पर बैठे थे, उसी समय अत्यन्त तेजस्वी गौरवर्ण, महावेदज्ञ, ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण पधारे। तीनों ने आसन से उठकर प्रणाम किया। सर्वोत्तम आसन पर बैठाया। सपरिवार इन्द्र ने पूजन किया। वहीं पर चींटे चीटियों की लम्बी पंक्ति मुख में एक एक दाना मिठाई दवाये जा रही थी। ब्रह्मचारी टकटकी लगाए बहुत देर तक उनकी ओर देखते रहे। इन्द्र ने कहा महाराज, दत्तचित्त से क्या देख रहे हैं। चींटे अपनी खुराक लिये जा रहे हैं। इसमें विशेषता क्या है? ब्रह्मचारी जी ने कहा, इन्द्र यह चींटे नहीं है। अनेकों मन्वन्तरों के यह सभी इन्द्र हैं। इन्हें देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि जब इनको तीस करोड़ सरसठि लाख बीस हजार वर्षों तक त्रिलोकी का राज्य भोगने पर भी सन्तोष नहीं हुआ, तो इनको मिठाई या अन्न के दाने से क्या शान्ति मिलेगी। शान्ति तो सन्तोष सहित ब्रह्मविचार में है। ऐसा कहकर ब्रह्मचारी ने अपना श्रीकृष्ण रूप दिखाया। तीनों प्रणाम करके स्तुति करने लगे। इसके बाद भगवान् अन्तर्हित हो गये। नारद जी अपने लोक में चले गये। महर्षि लोमश भी मृत्यु लोक में आ गये। **(लोमश जी का उपाख्यान सम्पूर्ण।)**

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सोलहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१२८, १२९ नर-नारायण

भगवान् विष्णु ने धर्म की पत्नी मूर्ति से नर और नारायण नाम के दो महर्षियों के रूप में अवतार ग्रहण किया। वे बदरी वन में रहकर निरन्तर तपस्या किया करते हैं। उनकी तपस्या से ही संसार में धर्म, भक्ति एवं ज्ञान का प्रचार होता है। उन्हीं की तपस्या के फलस्वरूप संसार में यत्किंचित् सुख शान्ति के दर्शन होते हैं। बहुत से ऋषि मुनियों ने इनसे उपदेश ग्रहण किया है और अब भी भाग्यवान् पुरुष उनके चरणो का दर्शन प्राप्त

करके अपने जीवन का लाभ लेते एवं परम कल्याण का सम्पादन करते हैं और उनकी तपस्या को आदर्श मानकर अपने जीवन को भी वैसी ही तपस्या में लगाने की चेष्टा करते हैं नारद, व्यास, उद्धव आदि महाभागवत भी वहीं निवास करते हैं और अधिकारी पुरुषों का उनके दर्शन भी होते हैं।

एक बार उनकी उग्र तपस्या को देखकर इन्द्र के मन में शंका हुई कि ये कहीं मेरे स्वर्ग का राज्य लेने के लिए तो तपस्या नहीं कर रहे हैं। अपनी झूठी धारणा के वश में होकर उन्होंने अप्सरा, काम, बसन्त, शीतल, मन्द सुगन्धित वायु आदि को उन्हें तपस्या से च्युत करने के लिए भेजा। उन्होंने जाकर उन्हें च्युत करने की चेष्टा की। उनकी नाना प्रकार की चेष्टाओं को देखकर वे जरा भी विचलित नहीं हुए। तब काम, अप्सराएं एवं बसन्त आदि भयभीत होकर थर-थर कांपने लगे। उनकी यह दशा देखकर अहंकार एवं आश्चर्य से रहित एवं संसारियों की इस चेष्टा को स्वाभाविक समझ कर तनिक भी क्षुब्ध हुए बिना उन्होंने कहा, भाई! तुम लोग जरा भी मत डरो, हम प्रेम और प्रसन्नता से तुम लोगों का स्वागत करते हैं। तुम सर्वदा यहीं रहो और हमारा आतिथ्य सत्कार स्वीकार करो। उनकी इस अभय देने वाली वाणी को सुनकर वे सब के सब लज्जित हो गये और सिर झुकाकर बड़ी नम्रता के साथ उन दयालु ऋषियों की स्तुति करने लगे, "हे प्रभो आप निर्विकार परमतत्त्व हैं। आपके सम्बन्ध में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बड़े-बड़े आत्माराम ज्ञानी पुरुष आपके चरण कमलों की वन्दना करके काम विजयी हो जाते हैं। आप के सम्बन्ध में भला क्या कहना है। देवताओं का तो यह स्वभाव ही है कि जब कोई उनके धाम अमरावती का उल्लंघन करके और ऊपर जाने लगता है, तो ईर्ष्यावश वे विघ्न डालते हैं, परन्तु जिसके रक्षक तुम ही हो वे उन विघ्नों के सिर पर पैर रखकर बे रोक-टोक आगे बढ़ जाते हैं। बहुत से तो ऐसे हैं, जो भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी, हवा, वर्षा आदि की तो बात ही क्या, स्वयं काम पर विजय प्राप्त करके भी क्रोध के अधीन हो जाते हैं, उसे नहीं जीत पाते और इसी के कारण उनकी चिर संचित तपस्या नष्टहो जाती है, परन्तु आप तो देवाधिदेव नारायण हैं। आपके सामने ये काम, क्रोधादि विकार कैसे फटक सकते हैं।" उनकी स्तुति सुनकर भगवान् ने अपनी योगमाया से एक बड़ी अद्भुत लीला दिखाई। उन सब ने देखा कि साक्षात्

लक्ष्मी के समान सुन्दर-सुन्दर स्त्रियां नर-नारायण की सेवा कर रही हैं। उन्हें देखकर तथा उनके गंध से मोहित एवं उनके सौन्दर्य, औदार्य आदि गुणों से हतश्री होकर वे सब चुपचाप खड़े रह गये। तब नर नारायण ने कहा कि इन स्त्रियों में से चाहे जिस एक को तुम लोग मांगकर स्वर्ग में ले जा सकते हो, वह स्वर्ग के लिए भूषण स्वरूप होगी। ऋषियों की आज्ञा मानकर उन लोगों ने अप्सराओं में उर्वशी (श्रेष्ठ भगवान् नारायण के उरु से उत्पन्न होने के कारण यह उर्वशी कहलाई।) को लेकर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया और वहां जाकर सब देवताओं के सामने भरी सभा में भगवान् नारायण की महिमा कह सुनाई, जिसे सुनकर देवराज इन्द्र चकित, स्तम्भित एवं भयभीत हो उठे। उनहें अपनी दुर्भावना और दुष्कृत्य पर बड़ा क्षोम हुआ। भगवान् नारायण के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं इससे उनका ऐश्वर्य नहीं सूचित होगा, बल्कि जो लोग काम पर विजय प्राप्त करने पर भी क्रोध के अधीन हो जाते हैं अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करके भी अभिमान से फूल उठते हैं। उनके कल्याण के लिए ही यह आदर्श स्थापित किया है। पुराणों तथा इतिहासों में स्थान-स्थान पर इनकी चर्चा है। बड़े-बड़े ऋषिगण इनसे उपदेश ग्रहण करते हैं और वैष्णव सम्प्रदाय के तो ये सर्वस्व हैं। **(श्री नर नारायणो-पाख्यानम् सम्पूर्णम्।)**

१३०. ऋभु, १३१. निदाघ

महर्षि ऋभु ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक हैं। यह स्वभाव से ही ब्रह्मतत्त्वज्ञ तथा निवृत्ति परायण हैं। तथापि सद्गुरु की मर्यादा की रक्षा के लिए इन्होंने श्रद्धा भक्ति युक्त होकर अपने बड़े भाई सनत्सुजात की शरण ली थी। उनसे सम्प्रदायगत मन्त्र, योग और ज्ञान प्राप्त करके यह सर्वदा सहज स्थिति में ही रहने लगे। मल, विक्षेप तथा आवरण से रहित होकर यह जहां कहीं भी पड़े रहते थे। शरीर के अतिरिक्त उनकी कोई कुटी नहीं थी।

यों ही विचरते हुए महर्षि ऋभु एक दिन पुलस्त्य ऋषि के आश्रम में जा पहुंचे। वहां पुलस्त्य का पुत्र निदाघ वेदाध्ययन कर रहा था। निदाघ ने आगे आकर प्रणाम किया। उसके अधिकार को देखकर महर्षि ऋभु को बड़ी दया आई। उन्होंने कहा, इस जीवन का वास्तविक लाभ आत्म ज्ञान प्राप्त करना है। यदि वेदों के सम्पूर्णतः रट लिया जाए

और वस्तु तत्त्व का ज्ञान न हो, तो वह किस काम का है। निदाघ! तुम आत्म ज्ञान का सम्पादन करो।

महर्षि ऋभु की बात सुनकर उसकी जिज्ञासा जग गई। उसने इनकी ही शरण ली। अपने पिता का आश्रम छोड़ कर वह इनके साथ भ्रमण करने लगा। उसकी सेवा में तत्परता और त्याग को देखकर महर्षि ने उसे तत्त्व ज्ञान का उपदेश किया। उपदेश के पश्चात् आज्ञा दी कि "निदाघ! जाकर गृहस्थ धर्म का अवलम्बन लो। मेरी आज्ञा का पालन करो।"

गुरुदेव की आज्ञा पाकर निदाघ अपने पिता के पास आये। उन्होंने उनका विवाह कर दिया। इसके पश्चात् देविका नदी के तट पर वीर नगर के पास एक उपवन में निदाघ ने अपना आश्रम बनाया और वहां वह अपनी पत्नी के साथ गार्हस्थ्य का पालन करते हुए कर्म परायण हो गये।

बहुत दिनों के बाद ऋभु को उनकी याद आई। अपने अंगीकृत जन का कल्याण करने के लिए वे वहां पहुंच गये। महापुरुष जिसे एक बार स्वीकार कर लेते हैं, उसे फिर कभी नहीं छोड़ते। वे वलिवैश्व देव के समय निदाघ के द्वार पर उपस्थित हुए। निदाघ ने उन्हें न पहचानने पर भी गृहस्थ धर्मानुसार अतिथि को भगवद् रूप समझ कर उनकी रुचि के अनुसार भोजन कराया। अन्त में उसने प्रश्न किया कि "महाराज! आप भोजन से तृप्त हो गये क्या? आप कहां रहते हैं? और कहां से आ रहे हैं और किधर पधारने की इच्छा है?" महर्षि ऋभु ने अपने कृपालु स्वभाव के कारण उपदेश करते हुए उत्तर दिया कि "ब्राह्मण! भूख और प्यास प्राणों को ही लगती है। मैं प्राण नहीं हूं। जब भूख-प्यास मुझे लगती ही नहीं, तब तृप्ति अतृप्ति क्या बताऊं? स्वस्थता और तृप्ति मन के ही धर्म हैं। आत्मा इनसे सर्वथा पृथक् है रहने और आने जाने के सम्बन्ध में जो पूछा, उसका उत्तर सुनो आत्मा आकाश की भांति सर्वगत है। उनका आना-जाना नहीं बनता। मैं न आता हूं, न जाता हूं और न किसी एक स्थान पर रहता ही हूं। तृप्ति अतृप्ति के हेतु ये सब रस आदि विषय परिवर्तनशील हैं। कभी अतृप्तिकर पदार्थ तृप्तिकर हो जाते हैं और कभी तृप्तिकर अतृप्तिकर हो जाते हैं। अतः विषम स्वभाव पदार्थों पर आस्था मत करो; इनकी ओर से दृष्टि मोड़कर, त्रिगुण व्यवस्था और समस्त अनात्म वस्तुओं से

ऊपर उठकर अपने आप पर विजय प्राप्त करो। महर्षि ऋभु के इन अमृतमय वचनों को सुनकर निदाघ उनके चरणों पर गिर पड़े। फिर उन्होंने बतलाया कि मैं तुम्हारा गुरु ऋभु हूं। निदाघ को बड़ी प्रसन्नता हुई, महर्षि चले गये।''

बहुत दिनों के पश्चात् फिर महर्षि ऋभु वहां पधारे।संयोगवश उस दिन वीरपुर नरेश की सवारी निकल रही थी। सड़क पर बड़ी भीड़ थी। निदाघ एक ओर खड़े होकर भीड़ हट जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में ही महर्षि ने इनके पास आकर पूछा, ''यह भीड़ कैसी है?''

निदाघ ने उत्तर दिया, ''राजा की सवारी निकलने के कारण भीड़ है।'' उन्होंने पूछा, ''तुम तो जानकार जान पड़ते हो, मुझे बताओ इनमें कौन राजा है, और कौन दूसरे लोग हैं?'' निदाघ ने कहा, ''जो इस पर्वत के समान ऊंचे हाथी पर सवार हैं वे राजा हैं। उनके अतिरिक्त दूसरे लोग हैं।'' ऋभु ने पूछा, ''महाराज मुझे हाथी और राजा का ऐसा लक्षण बताओ कि मैं समझ सकूं, ऊपर क्याहै? नीचे क्या है?'' यह प्रश्न सुनकर निदाघ झपट कर उन पर सवार हो गया और कहा, ''देखो मैं राजा की भांति ऊपर हूं, तुम हाथी के समान नीचे हो। अब समझ गये कि राजा और हाथी कौन है।'' महर्षि ऋभु ने बड़ी शान्ति से कहा, ''यदि तुम राजा और मैं हाथी की भांति स्थित हूं। तो बताओ तुम कौन हो और मैं कौन हूं? यह बात सुनते ही निदाघ उनके चरणों पर गिर पड़ा।'' वह हाथ जोड़कर कहने लगा, ''प्रभो आप अवश्य ही मेरे गुरु देव ऋभु हैं। आपके समान अद्वैत संस्कार से संस्कृत चित्त और किसी का नहीं है। आप अवश्य मेरे गुरुदेव हैं, मैंने अनजान में बड़ा अपराध किया। संत स्वभावतः क्षमाशील होते हैं। आप कृपया मुझे क्षमा करें।''

ऋभु ने हंसते हुए कहा, ''कौन किसका अपराध करता है। यदि एक वृक्ष की दो शाखाएं परस्पर रगड़ जाएं, तो उनमें किसका अपराध है। मैंने तुम्हें पहले व्यतिरेक मार्ग से आत्मा का उपदेश किया था। उसे तुम भूल गये। अब अन्वय मार्ग से किया है। इस पर परिनिष्ठित हो जाओ। यदि इन दोनों मार्गों पर विचार करोगे, तो संसार में रहकर भी तुम इससे अलिप्त रहोगे। निदाघ ने उनकी बड़ी स्तुति की। वे स्वच्छन्दतया चले गये।''

ऋभु की इस क्षमाशीलता को सुनकर सनकादि गुरुओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ब्रह्मा के सामने इनकी महिमा गायी और इनका नाम क्षमा का एक अक्षर लेकर ऋभुक्ष रख दिया। तब से साम्प्रदायिक लोग इन्हें ऋभुक्षानन्द के नाम से स्मरण करते हैं। इनकी कृपा से निदाघ आत्म निष्ठ हो गया। आज महर्षि ऋभु हमारे पास न जाने किस रूप में आते होंगे। उन्होंने न जाने निदाघ जैसे कितनों को संसार सागर से पार उतारा होगा।

विष्णु पुराण के द्वितीय अंश, जड़भरत रहूगण सम्वाद तथा कल्याण के संत अंक के आधार पर।

॥ सत्ययुग खण्ड के प्रथम परिच्छेद का सोलहवां अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ सत्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१३२. अगस्त्य

महर्षि अगस्त वेदों के एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कथाएं मिलती हैं। कहीं मित्रावरुण के द्वारा वशिष्ठ के साथ घड़े में पैदा होने की बात आती है तो कहीं पुलस्त्य की पत्नी हविर्भू के गर्भ से विश्रवा के साथ इनकी उत्पत्ति का वर्णन आता है। किसी-किसी ग्रन्थ के अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तर में पुलस्त्यतनय दत्तोलि ही अगस्त्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये सभी बातें कल्पभेद से ठीक उतरती हैं। इनके विशाल जीवन की समस्त घटनाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता। यहां संक्षेपतः दो घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

एक बार विन्ध्याचल ने गगन पथ गामी सूर्य का मार्ग रोक लिया। इतना ऊंचा हो गया, कि सूर्य के आने-जाने का स्थान ही न रहा। सूर्य महर्षि अगस्त्य के शरणागत हुए। अगस्त्य ने उन्हें आश्वासन दिया और स्वयं विन्ध्याचल के पास उपस्थित हुए। विन्ध्याचल ने बड़ी श्रद्धा भक्ति से उन्हें नमस्कार किया। महर्षि अगस्त्य ने कहा, "भैया, मुझे तीर्थों में पर्यटन करने के लिए दक्षिण दिशा में जाना आवश्यक है, परन्तु तुम्हारी इतनी ऊंचाई लांघकर जाना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। इसलिए कैसे जाऊं?" उनकी बात सुनते ही

विन्ध्याचल उनके चरणों में लोट गया। बड़ी सुगमता से महर्षि अगस्त्य ने उसे पार करके कहा, कि अब जब तक मैं न लौटूं, तुम इसी प्रकार पड़े रहना। विन्ध्याचल ने बड़ी नम्रता और प्रसन्नता के साथ उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तब से महर्षि अगस्त्य लौटे ही नहीं और विन्ध्याचल उसी प्रकार पड़ा हुआ है। अगस्त्य ने जाकर उज्जयिनी नगरी के शूलेश्वर तीर्थ की पूर्व दिशा में एक कुण्ड के पास शिव जी की आराधना की। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। आज भी भगवान् शंकर की मूर्ति वहां 'अगस्त्येश्वर' के नाम से प्रसिद्ध है।

एक बार भ्रमण करते-करते महर्षि अगस्त्य ने देखा कि कुछ लोग नीचे मुंह किये हुए कुएं में लटक रहे हैं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि ये उन्हीं के पितर हैं और उनके उद्धार का उपाय यह है कि वे सन्तान उत्पन्न करें। बिना ऐसा किये पितरों का कष्ट मिलना असम्भव था। अतः उन्होंने विदर्भराज से पैदा हुई अपूर्व सुन्दरी और परम पतिव्रता लोपामुद्रा को पत्नी के रूप में स्वीकार किया। उस समय इल्वल और वातापी नाम के दो दैत्यों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। वे ऋषियों को अपने यहां निमन्त्रित करते और वातापी स्वयं भोजन बन जाता है और जब ऋषि लोग खा पी चुकते, तब इल्वल बाहर से उसे पुकारता और वह उनका पेट फाड़कर निकल आता।

इस प्रकार महान् ब्राह्मण संहार चल रहा था। भला, महर्षि अगस्त्य इसे कैसे सहन कर सकते थे? वे भी एक दिन उनके यहां अतिथि के रूप में उपस्थित हुए और फिर तो सर्वदा के लिए उसे पचा गये। इस प्रकार लोक का महान् कल्याण हुआ।

एक बार जब इन्द्र ने वृत्रासुर को मार डाला, तब कालेय नाम के दैत्यों ने समुद्र का आश्रय लेकर ऋषियों-मुनियों का विनाश करना शुरू किया। वे दैत्य दिन में तो समुद्र में रहते और रात में निकल कर पवित्र जंगलों में रहने वाले ऋषियों को खा जाते। उन्होंने वशिष्ठ, च्यवन, भरद्वाज सभी के आश्रमों पर जा-जाकर हजारों की संख्या में ऋषि-मुनियों का भोजन किया था। अब देवताओं ने महर्षि अगस्त्य की शरण ग्रहण की, तब उनकी प्रार्थना से और लोगों की व्यथा और हानि देखकर उन्होंने अपने एक चुल्लू में ही सारे समुद्र को पी लिया। तब देवताओं ने जाकर कुछ दैत्यों का वध किया और कुछ भाग कर पाताल चले गये।

एक बार ब्रह्म हत्या के कारण इन्द्र के स्थानच्युत होने के कारण राजा नहुष इन्द्र हुए थे। इन्द्र होने पर अधिकार के मद में मत्तहोकर उन्होंने इन्द्राणी को अपनी पत्नी बनाने की चेष्टा की। तब बृहस्पति की सम्मति से इन्द्राणी ने एक ऐसी सवारी से आने की बात कही, जिस पर अब तक कोई सवार न हुआ हो। मदमत्त नहुष ने सवारी ढोने के लिए ऋषियों को ही बुलाया। ऋषियों को तो सम्मान अपमान का कुछ ख्याल था ही नहीं। आकर सवारी में जुत गये। जब सवारी पर चढ़कर नहुष चले तब शीघ्रातिशीघ्र पहुंचने के लिए हाथ में कोड़ा लेकर जल्दी चलो, (सर्प, सर्प) कहते हुए उन ब्राह्मणों को प्रताड़ित करने लगे। यह बात महर्षि अगस्त्य से देखी नहीं गयी। वे इसके मूल में नहुष का अधः पतन और ऋषियों का कष्ट देख रहे थे। उन्होंने नहुष को उसके पापों का उचित दण्ड दिया। शाप देकर उसे एक महाकाय सर्प बना दिया और इस प्रकार समाज की मर्यादा सुदृढ़ रखी तथा धन मद और पद मद के कारण अंधे लोगों की आंखें खोल दीं।

भगवान् श्री राम वनगमन के समय इनके आश्रम पर पधारे। इन्होंने बड़ी श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम से उनका सत्कार किया और उनके दर्शन, आलाप तथा संसर्ग से अपने ऋषि जीवन को सफल किया। साथ ही ऋषि ने उन्हें कई प्रकार के अस्त्र शस्त्र दिये और सूर्योपस्थान की पद्धति बताई। लंका के युद्ध में उनका उपयोग करके स्वयं भगवान् श्री राम ने उनके महत्त्व की अभिवृद्धि की। प्रेमलक्षणाभक्ति के मूर्तिमान स्वरूप भक्त सुतीक्ष्ण इन्हीं के शिष्य थे। उनकी तन्मयता और प्रेम के स्मरण से आज भी लोग भगवान् की ओर अग्रसर होते हैं। लंका पर विजय प्राप्त करके जब भगवान् राम अयोध्या को लौट आये और उनका राज्याभिषेक हुआ, तब महर्षि अगस्त्य वहां आये और उन्होंने भगवान् श्री राम को अनेकों प्रकार की कथाएं सुनाईं। बाल्मीकिय रामायण के उत्तरकांड की अधिकांश कथाएं इन्हीं के द्वारा कही हुई हैं। इन्होंने उपदेश और सत्संकल्प के द्वारा अनेकों का कल्याण किया। इनके द्वारा रचित अगस्त्य संहिता नाम का एक उपासना संबंधी बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है। जिज्ञासुओं को उसका अवलोकन करना चाहिए। इन्होंने अगस्त्य रामायण सोलह हजार श्लोकों में लिखी है।

पहला समाधान–अगस्त्य जी के समुद्र पान के सम्बन्ध में अनेकों प्रकार से समाधान किया जाता है। योग दर्शन के विभूतिपाद में भाष्यकार वेदव्यास जी तथा

विज्ञान भिक्षु अपने वार्तिक में युञ्जान तथा युक्त दो प्रकार के योगी बताते हैं। युञ्जान योगियों को समाधि लगाने पर त्रिलोकी तथा त्रिकाल का ज्ञान होता है। युक्त योगी बिना समाधि के ही सब कुछ जान जाते हैं। युञ्जान योगी साधक हैं और युक्त योगी सिद्ध हैं। पहले योगियों में वशिष्ठ आदि का नाम तथा दूसरे में अगस्त्य तथा श्री राम का नाम आया है। अगस्त्य जी ने विराट रूप से तीन चुल्लुओं में सागर पी लिया था। श्री राम ने खरदूषण त्रिशिरा के युद्ध के समय स्वयं युद्ध नहीं किया। असुरों का राम रूप दे दिया था। प्रत्येक असुर सामने वाले को राम रूप में तथा अन्यों को असुरों के रूप में देखता था। इस प्रकार वे आपस में ही लड़कर मर गये। यह श्री राम की युक्त योगित्व का प्रमाण है।

दूसरा समाधान–नक्षत्र मण्डल में अगस्त नाम का एक तारा है, जो वर्षा ऋतु के अन्त में शरद के आरम्भ में उदित होता है। वह सम्पूर्ण जल को सोख लेता है। अंग्रेज़ी महीना अगस्त इन्हीं के नाम पर है, क्योंकि प्रायः इसी महीने में अगस्त्य का उदय होता है।

तीसरा समाधान–वादी तोषन्याय से इसमें अतिश्योक्ति अलंकार है। जैसे कोई दो मित्र समुद्र में खारा पानी पीने की होड़ लगायें। सागर का एक चुल्लू पानी पीना भी कठिन है। होड़ में दोनों में से जो अधिक पानी पीता है। उससे दूसरा कहता है कि तुमने तो सारा समुद्र पी लिया। यहां अतिश्योक्ति है।

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ अठारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१३३. कर्दम, १३४. कपिलदेव

सिद्धानां कपिलो मुनिः

ब्रह्मा जी ने सर्ग के आदि में सृष्टि विस्तार के उद्देश्य से कई पुत्र उत्पन्न किये। इनमें से एक कर्दम नाम के प्रजापति भी थे। इन्होंने ब्रह्मा जी की आज्ञा से सन्तान उत्पन्न करने के हेतु सरस्वती नदी के तट पर दस हजार वर्ष तक तप किया; इसके अनन्तर वे

समाधि सहित तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान रूप क्रिया योग के द्वारा शरणागत वत्सल भगवान् की भक्ति सहित उपासना करने लगे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया। कर्दम ऋषि भगवान् का योगिजनदुर्लभ दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये और उन्हें साष्टांग प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने भगवान् से प्रार्थनी की कि मुझे अपने समान स्वभाव वाली और चतुर्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली सहधर्मिणी प्रदान कीजिए। भगवान् ने कहा, "हे प्रजापते ब्रह्मा जी के पुत्र स्वायभुव मनु अपनी पत्नी के साथ परसों यहां आवेंगे तथा अपनी देवहूति नामक कन्या को तुम्हारे अर्पण करेंगे। उसके द्वारा तुम्हें नौ कन्याएं प्राप्त होंगी। मैं भी तुम्हारे प्रेम से आकृष्ट होकर अपने अंश रूप कला के द्वारा तुम्हारे यहां पुत्र रूप में प्रकट होऊंगा और सांख्य शास्त्र रूप संहिता की रचना करूंगा।" यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

भगवान् के कथनानुसार तीसरे दिन स्वायम्भुव मनु अपनी पत्नी के सहित कन्या को साथमें लेकर कर्दम के आश्रम में पहुंचे और बड़े आग्रह और विनय के साथ वे ऋषि को अपनी कन्या अर्पित कर चले गये। इधर देवहूति माता-पिता के लौट जाने पर पति की अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी। उसने विषय-भोग की इच्छा तथा कपट, द्वेष, लोभ निषिद्ध आचरण और प्रमाद आदि दोषों को त्याग कर शौच, इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों से अपने तेजस्वी पति को सन्तुष्ट किया। काल पाकर उन्हें नौ कन्याएं उत्पन्न हुईं। अब तो कर्दम ऋषि अपने पिता ब्रह्मा की आज्ञा पूरी हुई जानकर संन्यास धर्म में दीक्षित होने का विचार करने लगे। इनके इस विचार को जानकर देवहूति उनसे हाथ जोड़कर बोली, "भगवन् आप अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए घर छोड़कर वन में जाना चाहते हैं, तो जाइये, मैं मार्ग में बाधिका होना नहीं चाहती, किन्तु मेरी एक छोटी सी प्रार्थना है, उसे पूरी करके आपको जाने का विचार करना चाहिए। वह यह है कि आपके वन चले जाने पर मेरा शोक दूर करने के लिए मुझे एक ब्रह्मज्ञानी पुत्र चाहिए। केवल कन्या उत्पन्न करके आप पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हुए। अतः आप कुछ दिन और घर में रहिये और पुत्र उत्पन्न करने के बाद चले जाइये। मैंने विषयों में लिप्त रहकर अब तक की आयु तो व्यर्थ खो दी, परन्तु शेष जीवन मेरा भगवान् के भजन में ही बीते, ऐसी मेरी इच्छा है। आपको ब्रह्मज्ञानी न जानकर मैंने अब तक आपसे ग्राम्य

सुखों की ही कामना की। अब आप कृपा करके मुझे पुत्र की प्राप्ति करा कर इस संसार रूपी बन्धन से छूटने में सहायता कीजिए।'' उसके इन विनय एवं वैराग्य युक्त वचनों को सुनकर ऋषि को भगवान् के वचनों का स्मरण हो गया। वे बोले, ''हे राज पुत्री! तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। तुम्हारे उदर में भगवान् जगदीश्वर शीघ्र ही अवतार धारण करेंगे और तुम्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश कर तुम्हारे हृदय की अहंकार रूप ग्रन्थि का छेदन करेंगे।''

देवहूति भी प्रजापति के वचनों में पूर्ण विश्वास कर भगवान् श्री हरि की प्रेमपूर्वक आराधना करने लगी। समय पाकर उसके उदर में भगवान् मधुसूदन प्रकट हुए और चारों दिशाओं में जय जयकार की ध्वनि होने लगी। उस समय मरीचि आदि ऋषियों सहित ब्रह्मा जी कर्दम ऋषि के आश्रम में पहुंचे। उन्होंने कर्दम तथा देवहूति को उनके पुत्र का माहात्म्य बतलाया और कहा कि साक्षात् पूर्ण पुरुष ही तुम्हारे यहां अवतीर्ण हुए हैं। इनके केश कलाप सुवर्ण के समान कपिल वर्ण होने के कारण ये जगत् में कपिल नाम से विख्यात होंगे। ये सिद्ध मुनियों में अग्रगण्य होंगे और सांख्य शास्त्र का प्रचार करेंगे। यों कहकर ब्रह्मा जी सत्य लोक को चले गये। उनके चले जाने के बाद कर्दम ऋषि ने अपने यहां पुत्र रूप से अवतीर्ण हुए भगवान् कपिलदेव की अनेक प्रकार से स्तुति की और उनसे संन्यास धर्म को स्वीकार करने की आज्ञा मांगी। भगवान् बोले, ''हे प्रजापते! मुमुक्षुओं को आत्म ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक प्रकृति, पुरुष आदि तत्त्वों का निरूपण करने के लिए ही मैं इस समय धराधाम पर अवतीर्ण हुआ हूं। अतः तुम संन्यास ग्रहण कर सकते हो, यद्यपि तुम्हें घर में भी मुक्ति की प्राप्ति कठिन नहीं है। परन्तु आप मुझे स्मरण करते रहना और अपने समस्त कर्मों को मुझे अर्पण कर मोक्ष की प्राप्ति के निमित्त मेरी उपासना में लगे रहना। यद्यपि यह सूक्ष्म आत्मज्ञान का मार्ग बहुत पहले से चला आ रहा है तथापि बहुत काल बीत जाने से वह लुप्त सा हो गया है। अतः उसका पुनः प्रचार करने के निमित ही मैं पृथ्वी पर प्रकट हुआ हूं। सकल प्राणियों के अन्तःकरण में रहने वाले मुझ स्वयं प्रकाश परमात्मा को अपने देहस्थित आत्मा में देखकर तुम शोक से छूट जाओगे और मोक्ष सुख को प्राप्त करोगे। मैं देवहूति माता को संचित और क्रियमाण आदि सब प्रकार के कर्मों की वासनाएं मन से दूर करने

वाली अध्यात्म विद्या कहूंगा, जिसके प्रभाव से यह देवहूति संसार भव को तर जाएगी और मोक्ष सुख को प्राप्त करेगी।''

भगवान् कपिलदेव के इन वचनों को सुनकर कर्दम ऋषि परम प्रसन्न हुए और भगवान् की प्रदक्षिणा कर वन को चले गये। वे सकल संगों को त्याग कर अहिंसा व्रत का पालन करते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे। उन्होंने अपने उत्कट भक्ति योग के द्वारा अन्तर्यामी भगवान् वासुदेव के चरणों में मन लगाकर उत्तम भगवद् भक्तों को प्राप्त होने वाली भागवती गति को प्राप्त किया।

महामुनि भगवान् कपिलदेव पिता कर्दम ऋषि के वन में चले जाने पर माता का प्रिय करने की इच्छा से कुछ दिन अपने पिता के आश्रम में ही रहे। एक दिन ब्रह्मा जी के कथन को स्मरण कर देवहूति आसन पर बैठे हुए, वास्तव में कर्म रहित, किन्तु मुमुक्षुओं को तत्त्व मार्ग दिखाने वाले अपने पुत्र से कहने लगी, ''हे प्रभो! मैं इन दुर्निवार इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त विषयों की अभिलाषा से अत्यन्त श्रान्त हो रही हूं। हे देव! आप मेरे इस महामोह को दूर करिये। आप शरणागत के रक्षक और भक्तों के संसार रूप वृक्ष को छेदन करने में कुठार के समान हैं।''

माता के इन वचनों को सुनकर कपिलदेन मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कुराते हुए बोले, ''हे माता! इस आत्मा के बन्धन और मुक्ति का कारण चित्त ही है। चित्त के सिवा कोई दूसरा नहीं। यह चित्त शब्दादि विषयों में आसक्त होने से बन्धन का कारण होता है। वही ईश्वर के प्रति अनुरक्त होने पर मुक्ति का कारण बन जाता है। इसी प्रकार दुष्ट पुरुषों का संग जीवात्मा को बांधने वाली दृढ़ फांसी है। सत्पुरुषों के संग को शास्त्रों में मोक्ष का द्वार कहा गया है। अत हे जननी! तुम्हें सत्पुरुषों का ही संग करना चाहिए। साधुओं का समागम ही मेरे प्रभाव का यथार्थ ज्ञान कराने वाला है। जिनके श्रवण से भगवान् में श्रद्धा प्रीति और भक्ति क्रमशः उत्पन्न होती है। उस भक्ति से ऐहिक तथा लौकिक सुखों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य सम्पन्न पुरुष आत्म साधन के उद्योग में तत्पर होकर योगादि के द्वारा अन्तःकरण को स्वाधीन करने का प्रयत्न करता है और शब्दादि विषयों के सेवन को त्याग कर वैराग्य से बढ़े हुए ज्ञान, अष्टांग योग और भक्ति के द्वारा इसी देह में मुझ सर्वान्तर्यामी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

इसके अनन्तर देवहूति के प्रश्न करने पर कपिलदेव ने भक्ति लक्षणों का वर्णन किया और फिर सांख्य शास्त्र की रीति से पदार्थों का वर्णन करते हुए प्रकृति-पुरुष के विवेक द्वारा मोक्ष का वर्णन किया। इसके अनन्तर अष्टांग योग से स्वरूप की उपलब्धि किस प्रकार होती है। यह बतलाते हुए भक्ति योग के अनेक प्रकार बतलाए और साथ ही संसार के दुखदायी स्वरूप का चित्रण किया। प्रसंगतः कामी जनों की कैसी गति होती है, यह बतलाते हुए मनुष्य योनि का महत्त्व बतलाया। यह भी बतलाया कि मनुष्य योनि पाप और पुण्य के सम्मिश्रण से प्राप्त होती है।

अपने पुत्र के उपदेश को सुनकर देवहूति के अज्ञान का पर्दा हट गया और वह उनके प्रभाव को समझ कर उनकी भगवद् बुद्धि से स्तुति करने लगी। भगवान् कपिल उनकी स्तुति को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और स्नेह गद्‌गद् वाणी से इस प्रकार बोले, "हे माता! मेरे कहे हुए इस मार्ग से यदि आप चलेंगी, तो बहुत ही शीघ्र जीवन्मुक्ति रूप उत्तम फल को प्राप्त करेंगी। हे जननी! ब्रह्मज्ञानियों के द्वारा सेवनीय मेरे इस अनुशासन पर तू विश्वास रख इस प्रकार बर्ताव करने से तू संसार से छूटकर मेरे जन्म मरण रहित स्वरूप को प्राप्त होगी। मेरे इस मत को न जानने वाले पुरुष मृत्यु रूप संसार में बार-बार गिरते हैं। यों कहकर महामुनि कपिल जी माता से विदा लेकर ईशान दिशा की ओर चल दिये। देवहूति भी अपने पुत्र के बताये हुए योग मार्ग से अपने चित्त को एकाग्र करके अपने पति के आश्रम में समाधि के द्वारा समय व्यतीत करने लगी। उसके घुंघराले बाल तीनों काल स्नान करने से पीले रंग के हो गये और जटा से प्रतीत होते थे। उसका शरीर तपस्या से दुर्बल हो गया, जिसे वह वल्कल वस्त्र से ढांककर रखती थी। उसने अपने घर, बगीचे आदि का मोह त्याग दिया, किन्तु पुत्र के चले जाने से उसका मुख कुछ म्लान हो गया। उसने कपिल देव जी के बताये हुए मार्ग से भगवान् के प्रसन्न मुख तथा अंग प्रत्यंगों का ध्यान करके अपने अन्तःकरण को शुद्ध किया और भगवान् में बुद्धि लगाई, जिससे उसका जीव भाव बहुत शीघ्र नष्ट हो गया। समाधि में सर्वदा मग्न रहने के कारण उसका अहंता ममता रूप भ्रम दूर हो गया, यहां तक कि उसे अपने शरीर तक की सुधि न रही। इस प्रकार कपिल जी के उपदेशानुसार साधना करके

देवहूति शीघ्र ही सर्वश्रेष्ठ, अन्तर्यामी नित्य मुक्त एवं ब्रह्म स्वरूप भगवान् के साथ एकता को प्राप्त हो गई। जिस स्थान पर उसे योग सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त हुई, वह स्थान सिद्धपुर के नाम से त्रिलोकी में विख्यात हो गया और देवहूति का शरीर एक नदी के रूप में परिणत हो गया। **(श्रीमद् भागवत के आधार पर)**

जिस समय मातृ आज्ञा प्राप्त करके वे समाधि में बैठे थे। उसी समय पिता की आज्ञा प्राप्त कर सगर पुत्र यज्ञाश्व की रक्षा के लिए आ रहे थे। इन्द्र ने कहा, यदि सगर का सौवां अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हो जाएगा, तो वह मेरा पद ले लेंगे। अतः उन्होंने गाढ़ अंधकार उत्पन्न किया तथा घोड़ा चुराकर समाधिस्थ कपिल जी के पास छोड़कर स्वर्ग चले गये। प्रकाश होने पर उन्होंने घोड़े को आठों दिशाओं में ढूंढा, बाद में एक दिग्गज ने बताया कि भगवान् कपिल के समीप में बंधा है। वहां जाकर घोड़ा बंधा देखा तथा समाधिस्थ कपिल जी को चोर समझ कर सभी अस्त्र शस्त्र लेकर दौड़े। उनका शोर सुनकर भगवान् की समाधि खुल गई। नेत्र खोलते ही वे अपनी पाप रूपी अग्नि में भस्म हो गये। कुछ लोग कहते हैं कि उनकी क्रोध रूपी अग्नि ने भस्म किया, किन्तु क्रोध तमोगुण का कार्य है। जैसे अंधकार और प्रकाश एक स्थान पर नहीं रह सकते। वैसे ही स्वयं प्रकाश भगवान् और क्रोध एक स्थान पर नहीं रह सकते। अतः उनकी पाप रूपी अग्नि ने ही उन्हें भस्म किया अथवा जैसे बिजली के नंगे तार को छूने से करंट निश्चय ही लगता है। चाहे जान कर छूवे चाहे अनजान में। वैसे ही उनके अनावृत्त चैतन्य अग्नि ने ही उन्हें भस्म कर दिया।

शंका–रामायणों, महाभारत तथा पुराणों में सागर की एक ही रानी से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए? यह अति असंभव है। अन्यान्य राजाओं तथा ऋषियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। महाराज धृतराष्ट्र के, वशिष्ठ जी के विश्वामित्र जी के, सत्यनारायण की कथा में तुंगध्वज राजा के, सत्यवान सवित्री के उनके, पिता अश्वपति आदि के सौ पुत्रों का उल्लेख आता है। यह बात विश्वास के योग्य नहीं?

समाधान–इन घटनाओं का शारीरिक विज्ञान, जीव विज्ञान तथा अध्यात्म विज्ञान से विशेष सम्बन्ध है। सभी आयुर्वैदिक वैद्य तथा डॉक्टर इस बात को सहर्ष स्वीकार

करते हैं कि माता पिता के शुक्र तथा रज में अनेकों जीवाणु होते हैं। शुक्र की अधिकता में पुत्र तथा रज की अधिकता में कन्या, दोनों के अंश बराबर हो, तो नपुंसक पैदा होता है। यदि दोनों अंश निर्बल हों, तो सन्तान नहीं होती। माता के गर्भाशय में निर्बल तथा सबल जीवाणुओं में संघर्ष होता है। उनमें निर्बल क्षीण हो जाते हैं, और सबल बने रहते हैं। यहीकारण है कि कई पुरुषों के दो-दो, तीन-तीन बच्चे एक साथ पैदा होते हैं। कुतिया तथा सुअरी के अधिक मात्रा में बच्चे पैदा होते हैं। महाभारत से सिद्ध होता है कि धृतराष्ट्र में दस हजार हाथियों का बल था। इतना ही बल भीमसेन, दुःशासन आदि में बताया गया है। यह सब द्वापर में हुए। इनके बल को पढ़कर सुनकर कलियुगी जीव आश्चर्य करता है, किन्तु जितना आश्चर्य हम लोगों को भीमसेन के बल पर होता है। उतना ही आश्चर्य भीमसेन को तब हुआ, जब वे हनुमान जी की पूंछ को हिला तक न सके। यह कथा महाभारत के वनपर्व में आती है। महाभारत सार में भी कथा आती है कि जब भीम को अपने बल का अभिमान हो गया कि मेरे ही भुजबल से महाभारत जीता गया, तब भगवान् कृष्ण, अर्जुन तथा भीम को लंका में ले गये। वहां कुम्भ कर्ण की खोपड़ी में बरसाती पानी भरा हुआ था। तीनों उसमें नहाते तैरते जल क्रीड़ा करते रहे। डुबकी लगाने पर भी भीम का पैर तल तक नहीं पहुंचा। तैरने तैरते थक गये। अर्जुन तथा भगवान् बाहर आ गये। भीम ने बाहर आने का बहुत प्रयास किया। उनका पैर रपट जाता था। तब भगवान् ने भीम को फटकारते हुए, हाथ पकड़ कर बाहर निकाला तथा कहा कि इसी बल का तुम्हें अभिमान था। यह तो कुम्भकर्ण के सिर की खोपड़ी है। तुझे विश्वास न हो, तो देख ऐसा कहकर भगवान् ने पैर के अंगूठे से उसके किनारे को दबाया जैसे किसी कटोरे में पानी भरा हो, उसके किनारे को दबाने से कटोरा ऊपर हो जाता है। पानी बिखर जाता है। वैसे ही खोपड़ी पलट गई, साफ दिखाई पड़ने लगी। इन बातों में आश्चर्य नहीं करना चाहिए। सन् १९६५ ई० के दिसम्बर के 'इंगलिश ट्रिब्यून' में एक समाचार आया था कि गुड़गावां (गुरु ग्राम) द्रोणाचार्य के निवास स्थान में खुदाई करने पर महाभारत कालीन दानवीर कर्ण की एक नौहाथ लम्बी तलवार तथा एक हड्डी का पंजर मिला। जिसका दांत आधा-आधा किलो का और छाती की चौड़ाई छत्तीस फीट की थी। युक्तितथा तर्क से भी यह बात सिद्ध होती है कि आज जो बच्चा

पैदा हुआ है, उसके जन्म के समय उसके शरीर का भार नाप जितना होता है उससे दो सौ वर्ष पहले जो उसका पुरखा जन्मा होगा उसका आकार उससे दुगुना होगा। इसी प्रकार दो-दो सौ वर्ष में दुगुना करते करते पांच हजार वर्ष में कितना लम्बा चौड़ा बलिष्ठशरीर हो सकता है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है, महाराज सागर तो सत्ययुग, त्रेतायुग की सन्धि में हुए। तो निश्चय होता है उनमें कई लाख हाथियों की शक्ति होगी।

सगर तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों के जन्म के सम्बन्ध में ब्रह्माण्ड पुराण तथा महाभारत आदि पर्व में कथा प्रसंग आता है। दोनों ने शास्त्रीय विधि से गर्भाधान संस्कार किया। दोनों का तेज दो वर्ष तक माता के गर्भ में रहा। महाभारत के अनुसार जब दो वर्ष में भी कोई बच्चा नहीं हुआ। तब एकान्त में गांधारी ने जोर से मुक्का मारा, तब लोहे की कड़ी गेंद के समान एक मांस पिण्ड निकला। उसमें शरीफा के फल की तरह एक सौ एक मांस पेशियां थीं। भगवान् वेद व्यास जी को बुलाया तथा कहा आपने तो सौ पुत्र एक कन्या का वर दिया था। इसमें तो कुछ नहीं निकला। व्यास जी इसके विशेषज्ञ थे। उन्होंने कहा, माता का पेट संकीर्ण होने के कारण इनको बढ़ने को स्थान नहीं मिला। उन्होंने एक सौ एक घड़े मंगवाये प्रत्येक घड़े में आधा आधा घी भरवाया गया। गले के ऊपर मुख के पास वायु संचार के लिए छेद कर दिया। मुख पर कपड़ा बांध दिया तथा कहा, दो वर्ष के बाद घड़ों का मुख खोला जाए। माता का पेट घड़े के समान ही होता है। आयुर्वेद में आयुवर्द्धक होने के कारण घी को "आयुर्वै घृतम्" कहा है। उन घड़ों में जीवाणुओं को बढ़ने का स्थान मिला। इस प्रकार से धृतराष्ट्र को १०० पुत्र तथा १ कन्या प्राप्त हुई।

इसी प्रकार दो वर्ष के बाद लम्बी लौकी के समान सगर की रानी के एक मांस पिंड पैदा हुआ। इसकी सूचना कुल गुरु वशिष्ठ एवं महर्षि और्व, जिनकी कृपा से सगर का जन्म तथा रक्षा हुई थी, को दी गई। उस लौकी में खस-खस के दाने के समान साठ हजार मांसपेशियां थीं। दोनों ऋषियों ने शीतल जल से उन मांसपेशियों को अलग किया। साठ हजार घड़े आधे घी से भरे हुए मंगवाये गये। गले का पास छेद करके वस्त्र

बांधा तथा दो वर्ष बाद खोलने की आज्ञा दी। इसी विधि से उनको एक ही पत्नी से साठ हजार ६०,००० हजार पुत्र प्राप्त हुए। इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

श्री महर्षि कर्दम तथा कपिलदेव जी का आख्यान सम्पूर्ण हुआ। (ब्रह्माण्ड पुराण तथा महाभारत से)

॥ इति सत्ययुग चतुर्थ परिच्छेद का अठारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ उन्नीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

महर्षि मरीचि जी की कथा-वंशावलिः (कश्यप)

मरीचि जी की अनेक पत्नियों में दक्ष प्रजापति की पुत्री सम्भूति थी। इनसे धर्म नामक पुत्र हुआ था। इनके अनेकों पुत्र थे। मरीचि के एक पुत्र कश्यप प्रजापति हुए। कश्यप जी के वंश से सारा संसार भर गया। कश्यप की तेरह पत्नियां थीं। जिनमें दिति, अदिति, दनु, सिंहिका, कद्रू, विनता आदि प्रसिद्ध थीं। दिति से इनके हिरण्याक्ष तथा हिरण्य कशिपु दो दैत्य पैदा हुए। हिरण्याक्ष के कालनेमि, शम्बर, द्विमूर्धा, त्र्यक्ष, शतबाहु, हयग्रीव, नमुचि, पाक, इल्वल, विप्रचित्ति, पुलोम तथा शकुनि आदि दैत्य हुये तथा हिरण्य कशिपु के संलाद, आह्लाद, अनुह्लाद आदि चार पुत्र हुए। इनमें प्रह्लाद परम भागवत थे। पिता ने इनको विष्णु भक्त होने के कारण विष दिया, हाथी से कुचलवाया, पर्वत से गिरवाया, अग्नि में डाला गया, वायु का संचार करवाया, कृत्या आदि द्वारा मरवाने का बड़ा प्रयास किया, किन्तु सब विफल हुआ। अन्त में भगवान् ने नृसिंह रूप धारण करके हिरण्य कशिपु का वध करके प्रह्लाद को राज्य गद्दी पर बैठाया। इनके पुत्र विरोचन हुए। विरोचन के बलि हुए। जिन्होंने वामन रूपधारी भगवान् को त्रिलोकी का दान दिया। बलि के सौ पुत्रों में वाणासुर ज्येष्ठ था। शंकर जी की आराधना करके हजार भुजाएं प्राप्त की थीं, किन्तु भगवान् कृष्ण से विरोध करके इनकी सभी भुजाएं काट दी गईं। केवल दो भुजाएं शेष रहीं।

जब दिति के दोनों पुत्र भगवान् के हाथ से मारे गये। तब दुखी होकर दिति इन्द्र को मारने वाले पुत्र की इच्छा से पति देव के पास पहुंची। उन्होंने एक वर्ष या सौ वर्ष में पूर्ण होने वाला पुंसवन व्रत का अनुष्ठान बताया। यदि यह निर्विघ्न पूर्ण होगा, तो इन्द्र का शत्रु होगा। यदि नियम भंग हो गया, तो इन्द्र का मित्र होगा। नियम खण्डित होने से ४९ मरुद्गण इन्द्र के मित्र होकर स्वर्ग में चले गये। दिति फिर देवशत्रु पुत्र की इच्छा से गई। तब इनसे तारकासुर नामक पुत्र हुआ। जो स्वामिकार्तिकेय के हाथ से मारा गया।

अदिति के इन्द्र, वरुण, भगवान् वामन आदि द्वादश आदित्य हुये। इनमें सबसे छोटे वामन भगवान् थे। जब महाराज बलि ने स्वर्ग पर आक्रमण करके इन्द्र से त्रिलोकी छीन ली। पुत्रों के दुख से संतप्त माता अदिति पति के पास जाकर रोई तथा उपाय पूछा। उन्होंने बारह दिन में पूर्ण होने वाला विष्णु भगवान् का पयोव्रत का अनुष्ठान बताया। उसके अनुसार अदिति का व्रत पूर्ण होने पर भगवान् श्री हरि प्रकट हुए। वर मांगने के लिए कहा। पद्मपुराण में स्तुति के अन्त में माता ने कहा, मेरे पुत्र देवताओं से मेरी सौत के पुत्रों ने स्वर्ग छीन लिया है। अतः आप दिति के पुत्रों को बिना युद्ध में मारे ही स्वर्ग का राज्य इन्द्र को दिलवा दें। भगवान् ने कहा तुम अपने सौत के पुत्रों के प्रति भी अपने पुत्रों के समान ही वात्सल्य रखती हो, अतः मैं तुम्हारा पुत्र होकर बिना युद्ध के ही त्रिलोकी इन्द्र को दिलवा दूंगा। ऐसे कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। वामन रूप में भगवान् ने ऐसा ही किया।

कद्रू के सर्प, नाग पुत्र हुये। विनता के गरुड़, अरुण आदि पुत्र हुए। इन कथाओं का विस्तार पुराणों में देखा जा सकता है। **(मरीचि वंशोपाख्यान पूर्ण)**

महर्षि अत्रि वंश

महर्षि अत्रि की धर्म पत्नी महर्षि कर्दम की पुत्री अनसूया थी। यद्यपि सृष्टि के आरम्भ में चन्द्रमा भगवान् के मन से पैदा हुए। वही कालान्तर में क्षीर सागर मन्थन करने पर समुद्र से उत्पन्न हुए। जिनको भगवान् शंकर मस्तक पर धारण करते हैं। वही चन्द्रमा तीसरी बार ब्रह्मा जी के वरदान से अत्रि के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। इनके वंशज बुध, पुरुरवा आदि चन्द्रवंशी अनेकों राजा हुये। विष्णु के वरदान से इनके त्रेतायुग के आचार्य भगवान् दत्तात्रेय हुए। **कृते तु भगवान् सत्यं त्रेतायां दत्तमेव च। द्वापरे भगवान्**

व्यासः कलौ श्री शंकरः स्वयम्॥ सत्य = कपिल भगवान्॥ सत्ययुग के आचार्य सत्य (कपिल या दक्षिणामूर्ति), त्रेता के भगवान्, दत्तात्रेय, द्वापर में भगवान् व्यास तथा कलियुग में भगवान् शंकराचार्य, आचार्य हुए। दत्तात्रेय जी का चरित्र त्रेताखण्ड में दिया जाएगा। अत्रि के तीसरे पुत्र शंकर के अंशावतार दुर्वासा जी के रूप में प्रकट हुए। आप निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ थे। त्रेता में श्री राम जी इनका गुरुवत् सत्कार करते थे। द्वापर में भगवान् श्री कृष्ण के भी गुरु हुये। इनका जीवन चरित्र भी त्रेताखण्ड में लिखा जाएगा।

१३५. कश्यप

इतिहास पुराणानि तथाख्यानानि यानि च।
महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव च॥

समस्त लोगों के पितामह भगवान् ब्रह्मा ने इस चराचर सृष्टि को उत्पन्न किया है। सृष्टि की इच्छा से उन्होंने छः मानसिक पुत्र उत्पन्न किये हैं। जिनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु हैं। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह कन्याओं का विवाह इनके साथ कर दिया। उनके नाम ये हैं–अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कद्रू। इन सब की इतनी सन्तान हुईं, कि उन्हीं से यह सम्पूर्ण सृष्टि भर गई। अदिति से समस्त देवता तथा बारह आदित्य हुए। सभी दैत्य दिति के पुत्र हैं। दनु के दानव हुए। काला और दनायु के भी दानव ही हुए। सिंहिका से सिंह, राहु, केतु, व्याघ्र हुए। विनता के गरुड़, अरुण आदि छः पुत्र हुए। कद्रू के सर्प, नाग आदि हुए। मुनि से समस्त मनुष्य उत्पन्न हुए। इस प्रकार समस्त स्थावर-जंगम, पशु–पक्षी, देवता–दैत्य, मनुष्य हम सब सगे भाई–भाई हैं। एक कश्यप भगवान् की ही हम सन्तान हैं। पशु–पक्षी, वृक्ष हम सब कश्यप गोत्रीय ही हैं।

इन तेरह कन्याओं में अदिति भगवान् कश्यप की सबसे प्यारी पत्नी है। उन्हीं से इन्द्रादि समस्त देवता हुए। भगवान् वामन ने भी इन्हीं के यहां अवतार लिया। इनका तप अनन्त है, इनकी भगवद् भक्ति अटूट है। ये दम्पती भगवान् के परम प्रिय हैं। तीन बार

भगवान् ने इनके घर में अवतार लिया। अदिति और कश्यप के महातप के प्रभाव से ही जीवों को निर्गुण भगवान् के सुगण रूपी दर्शन हो सके।

कश्यप अदिति महातपु कीन्हा। तिन्ह कहुं मैं पूरब वर दीन्हा।

भगवान् जिनके पुत्र बने। उनके विषय में अधिक क्या कहा जा सकता है। भगवान् कश्यप की पुराणों में बहुत सी कथाएं हैं, उनमें से वामन, बलि, अदिति आदि के प्रसंग में बहुत सी आ गई हैं। अतः उनके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्तहोगा कि ये महानुभाव भगवान् को निर्गुण से सगुण साकार बनाने वाले हैं तथा हम सब जीवों के आदि पिता हैं।

१३६. बृहस्पति

त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः॥
बृस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च धृतव्रतः॥

भगवान् ब्रह्मा के छः मानसिक पुत्रों में से अंगिरा ऋषि के तीन पुत्र हुए-बृहस्पति जी, उतथ्य और संवर्त। बृहस्पति जी देवताओं के गुरु हुए। देवताओं में जो धार्मिकता है, उसके कारण भगवान् बृहस्पति जी हैं। ये देवताओं को सदा भगवान् की भक्ति में लगाये रहते हैं और उनसे समस्त वैदिक कर्म विधिवत् कराते हैं। जब-जब देवताओं ने भगवान् बृहस्पति जी के वचनों को नहीं माना या अभिमान किया तब ही तब वे श्री हीन हो गये। अन्त मैं जब फिर देवता इनकी शरण गये तो इन्होंने उन्हें क्षमा कर दिया। ये संसार में सबसे अधिक नीतिज्ञ और बुद्धिमान हैं। बृहस्पति जी की नीति सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक मानी जाती है। देवराज इन्द्र ने एक बार अभिमान में आकर इनका अपमान किया, इस पर इन्होंने अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं कहा। केवल स्वर्ग छोड़कर ये दूसरी जगह चले गये। इनके जाते ही स्वर्ग की समस्त श्री चली गई। सद्‌गुण और श्री तो भगवद् भक्त के साथ ही रहती है। श्री हीन स्वर्ग पर असुरों का अधिकार होना ही चाहिए। इन्द्र को अपने किये का पूरा फल मिला। वे मारे-मारे अनाथ के समान वन में घूमते रहे, फिर जैसे-जैसे विश्व रूप को पुरोहित बनाया, किन्तु उनसे भला बृहस्पति जी के स्थान की पूर्ति कैसे हो सकती थी। उनका मातृकुल असुर था। अतः वे छिपकर असुरों को भी यज्ञ भाग देने लगे। अंत में ब्रह्म हत्या का नया पाप इन्द्र को करना पड़ा।

जिससे ये बहुत ही दुखी हुए। गुरु की शरण गये और उन्होंने इन्हें सब पापों से छुड़ा दिया। इस प्रकार समस्त सुख भगवद् भक्ति में ही है और इसकी शिक्षा देने वाले देवताओं के परम गुरु भगवान् बृहस्पति जी ही हैं। इन्होंने देव रामायण, बृहस्पति स्मृति नाम का धर्म ग्रन्थ भी लिखा। देव रामायण सवा लाख श्लोकों में है। इसमें इन्द्र जयन्तसम्वाद विशेष रूप से लिखा गया है। उतथ्य तथा सम्वर्तक की भी स्मृतियां पाई जाती हैं।

बृहस्पति के पुत्र कच शुक्राचार्य जी से अमृत संजीवनी विद्या पढ़ने आये और उनकी पुत्री देवयानी ने इनसे विवाह की इच्छा की। गुरु बहन के नाते उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उसने शाप दिया कि तुम्हारी विद्या निष्फल होगी। इन्होंने भी शाप दिया कि तुम्हें ब्राह्मण पति नहीं मिलेगा। अथः उसका विवाह महाराज ययाति के साथ हुआ।

महर्षि अंगिरा का वंश

महर्षि अंगिरा का तेज तथा प्रभाव अग्नि के समान था। आप जल में खड़े तप कर रहे थे। इधर अग्नि देवता ने भी तप करना आरम्भ किया। परन्तु इनके तप के आगे अग्नि का तप फीका पड़ गया। अग्नि देवता दुखी हुए। इन्होंने पूछा तुम दुखी क्यों हो। अग्नि देव ने दुखित होकर कहा, मेरी कीर्ति नष्ट हो रही है मेरा आपके आगे कोई सम्मान नहीं करेगा। आप प्रथम अग्नि और मैं द्वितीय अग्नि हूं। अंगिरा जी ने कहा, आप इसी रूप से देवताओं को भोजन दें, स्वर्ग जाने वाले जीवों को स्वर्ग का मार्ग दिखायें, अपने दिव्य तेज से मुमुक्षु जीवों के अन्तःकरण को शुद्ध करें। मैं तुम्हें पुत्र रूप में वरण करता हूं। अग्नि देव प्रसन्न हुए तथा देवगुरु बृहस्पति के रूप में उत्पन्न हुए। कल्प भेद से शंकर के शरभावतार के समय अंगिरा उनके पुत्र भी हुए। देव गुरु बृहस्पति अनेकों युद्धों में देवताओं को जीवन देने के कारण 'जीव' के नाम से भी कहे जाते हैं। इनके दूसरे पुत्र संवर्तक तथा तीसरे पुत्र उतथ्य हुए। इनका जीवन चरित्र अनेकों पुराणों में पाया जाता है। वहीं देखना चाहिए।

१३७ सम्वर्तक १३८ उतथ्य

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ बीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१३९. पुलस्त्य विश्रवा, वंश तथा भृगुवंश का वर्णन

पुलस्त्य–इनके निदाघ, विश्रवा आदि अनेकों पुत्र हुए। जिनमें यह दोनों प्रसिद्ध हैं। विश्रवा का प्रथम विवाह भरद्वाज जी की कन्या के साथ हुआ था। इनसे कुबेर का जन्म हुआ था, जो यक्षों के स्वामी हुए। इन्होंने काशी में जाकर शंकर जी की आराधना की। शिव जी ने पार्वती सहित दर्शन दिया। इन्होंने पार्वती जी को वक्रदृष्टि से देखा। तब पार्वती जी के शाप से कुबेर (कुदृष्टि वाले) हुये। शंकर जी के समझाने पर पार्वती जी ने प्रसन्न होकर उत्तर दिशा का लोकपालत्व दिया। देवताओं के कोषाध्यक्ष नौ निधियों से युक्त हुए। असुरों पर आक्रमण करके लंका पर विजय प्राप्त की और पिता की आज्ञा से वहां राज्य करने लगे। विश्रवा तथा कुबेर की विस्तृत कथा रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण सहित वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड में अगस्त्य जी ने श्री राम को सुनाई है। शिव पुराण, लिंग पुराण एवं स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में इनके पूर्व जन्म की कथा आती है।

इनकी दूसरी पत्नी कैकसी से विश्रवा के रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन पुत्र तथा शूर्पणखा, क्रौंचा तथा कुम्भीनसी तीन बहनों का जन्म हुआ। माली, सुमाली तथा माल्यवान् यह तीन असुर पाताल में रहते थे। माल्यवान् ने कैकसी का विवाह विश्रवा से किया। तीनों भाइयों ने ब्रह्मा जी की तपस्या से वरदान प्राप्त किया तथा रावण का देवों तथा यक्षों पर आक्रमण करके विजय पाना, लंका पुरी पर अधिकार, कुबेर का भाग कर अलका पुरी जाना यह सब कथा प्रसिद्ध ही है।

मय दानव की पुत्री मन्दोदरी के साथ रावण का विवाह हुआ। सुना जाता है कि मय दानव मेरठ का रहने वाला था। कुम्भकर्ण का विवाह मधुदैत्य की पुत्री वृज्वाला से हुआ था तथा विभीषण का विवाह शैलूष गन्धर्वराज की पुत्री सरमा से हुआ था। रावण के मन्दोदरी से बड़ा पुत्र मेघनाद हुआ। जन्मते ही मेघ के समान गर्जने के कारण मेघनाद नाम पड़ा। यह स्वर्ग में इन्द्र को जीत कर पिता रावण को जेल से छुड़ा कर लाया था। इसलिए 'इन्द्रजीत' नाम पड़ा। रावण के देवान्तक नरान्तक, अतिकाय, प्रहस्त, ऐरावण,

मैरावण आदि अनेक पुत्र थे। इनमें सबसे छोटा अक्षय कुमार था, जो हनुमान जी द्वारा मारा गया था। मेघनाद का विवाह शेष पुत्री सुलोचना के साथ हुआ। खर, दूषण, त्रिशिरा, किसी रामायण में रावण के मंत्री कहे गये हैं। आनन्द रामायण के अनुसार यह रावण के मौसेरे भाई थे। मारीच रावण का मामा था। कुम्भकर्ण के कुम्भ, निकुम्भ नाम के दो पुत्र हुए। कुम्भ कर्ण की मृत्यु के बाद इनके पुत्रों से मूलकासुर-द्वीपान्तरवासी शतमुखीरावण आदि का जन्म हुआ, जो चण्डी रूप धारिणी सीती जी के हाथ से मारे गये। यह कथा आनन्द रामायण तथा अद्‌भुत रामायण में आती है। कल्प भेद से किसी कल्प में सीता अथवा राम ने शतमुखी तथा सहस्त्र मुखी रावण को मारा था। रावण के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रों की गणना नहीं की जा सकती। वे सब पापी दुराचारी होने के कारण मारे गये।

१४०. "भृगु वंश" च्यवन चरित्र

भृगु जी के पुत्र शुक्राचार्य थे। इनके दूसरे पुत्र च्यवन ऋषि थे। इनका विवाह सूर्यवंशीय महाराज शर्याति की कन्या सुकन्या के साथ हुआ था। एक बार राजा शर्याति आखेट के लिए पुत्री तथा सेना को साथ लेकर वन में गये। वहां गंगा तट पर च्यवन ऋषि सैंकड़ों वर्ष की समाधि में बैठे थे। घूमती हुई राजकुमारी ने सखियों के साथ खेल-खेल में इनकी चमकती हुई आंखों में कांटे चुभा दिये, नेत्रों से रक्त धार प्रवाहित होने लगी। इस अपराध के कारण सैनिकों के मल मूत्र बंद हो गये। राजा के पूछने पर सुकन्या ने अपना अपराध स्वीकार किया। महाराज पुत्री को लेकर उनके पास पहुंचे तथा क्षमा मांगी। उनकी आज्ञा से सुकन्या का विवाह ऋषि के साथ हुआ। वह राज वैभव त्याग कर मनसा, वाचा, कर्मणा तत्परता से ऋषि की सेवा करने लगी। एक बार देव वैद्य अश्विनी कुमार वहां पर पहुंचे। उन्होंने सुकन्या से कहा, हम तुम्हारे पति को निरोगी युवा बना देंगे। अमृत से परिपूर्ण कुम्भ में तीनों ने स्नान किया। कुछ देर बाद तीनों बाहर निकले। तीनों की आयु वस्त्र आभूषण तथा रूप एक जैसे थे। इनमें वह अपने पति को नहीं पहचान पाई। भगवान् का ध्यान करने लगी। तब इन्होंने देखा इनमें दो के शरीर की परछाई नहीं है, पलकें नहीं गिरती, चरण धरती को नहीं छूते, इस प्रकार देवताओं को पहचान कर अपने पति को वरण किया। ये कल्प भेद से किसी पुराण में भृगु के साक्षात् पुत्र, किसी में पौत्र कहे गये।

१४१. शुक्राचार्य

भगवान् ब्रह्मा जी के मानसिक पुत्र भृगु हुए। इन भृगु के कवि हुए और कवि के असुर गुरु महर्षि शुक्राचार्य हुए। ये योग विद्या में पारंगत थे। इनकी शुक्रनीति बहुत प्रसिद्ध है। यद्यपि ये असुरों के गुरु थे, किन्तु मन से भगवान् के अनन्य भक्त थे। असुरों में रहते हुए भी ये उन्हें सदा धार्मिक शिक्षा देते रहते थे। इन्हीं के प्रभाव से प्रह्लाद, विरोचन, बलि आदि भगवद् भक्त बने और श्री विष्णु के प्राप्त्यर्थ नाना यज्ञ याग आदि करते रहे।

उनके पास मृत संजीवनी विद्या थी। इससे ये संग्राम में मरे हुए असुरों को जिला लेते थे। बृहस्पति जी के पास यह विद्या नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र कच को इनके पास वह विद्या सीखने के लिए भेजा, इन्होंने उसे बृहस्पति जी का पुत्र जानकर बड़े ही स्नेह से वह विद्या सिखाई। असुरों को जब यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने कई बार कच को जान से मार डाला, किन्तु शुक्राचार्य जी ने अपनी विद्या के प्रभाव से उसे फिर जीता ही बुला लिया। अन्त में दैत्यों ने कच को मारकर उसकी राख को शुक्राचार्य जी को धोखे से सुरा के साथ पिला दी। ऋषि ने ध्यान से देखा और कच से कहा मैं तुझे पेट में ही विद्या सिखाता हूं। मेरा पेट फाड़कर निकल आ, फिर मुझे जिला लेना। कच ने ऐसा ही किया। वह सिद्ध हो गया। तब से शुक्राचार्य जी ने नियम बना दिया कि–

यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चिन् मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः।
अपेत धर्मा ब्रह्महा चैव स स्यादस्मिन् लोके गर्हितः स्यात् परे च॥
मया चैतां विप्रधर्मोक्तिसीमां मर्यादां वै स्थापितां सर्व लोके
सन्तो विप्राः सुश्रुवांसों गरूणां देव लोकाश्चोपश्रृण्वन्तु सर्वे॥

(महाभारत आदि पर्व)

मैं आज से यह मर्यादा बांधता हूं, मेरी मर्यादा को देवता और समस्त प्राणी सुनें। जो मन्द बुद्धि ब्राह्मण भूल से आज से मदिरा पियेंगे, उनके समस्त धर्म का नाश हो जाएगा और उन्हें ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा।

इस प्रकार शुक्राचार्य ने मर्यादा बांध दी। जिसे समस्त लोगों ने स्वीकार किया। बलि के यज्ञ में भगवान् शुक्राचार्य ने यजमान की श्रद्धा देखने के लिए उसे बहुत मना किया कि तुम वामन रूपधारी भगवान् को भूमि दान न करो, किन्तु बलि ने उन्हें भूमि दान कर ही दिया।

शुक्राचार्य की एक कन्या देवयानी महाराज ययाति के साथ विवाही थी। ये अब तक आकाश में एक नक्षत्र के रूप में स्थित हैं और वर्षा आदि की सूचना देते हैं। मुसलमान इनको जुम्मा के रूप में पूजते है। भृगु जी ने महाचीन देश तिब्बत में इनको भृगु संहिता सुनाई थी। अनेकों पुराणों में इनका विस्तृत चरित्र आता है।

इनके उपकार से सन्तुष्ट होकर ऋषि ने इनका उपकार करना चाहा। महाराज शर्याति ने यज्ञानुष्ठान किया। उस अनुष्ठान में इन्द्र सहित सभी देवता आये। सभी को यज्ञों का भाग मिला। इससे पूर्व वैद्य होने के कारण अश्विनी कुमारों को भाग नहीं मिलता था। इन्होंने इस परम्परा को तोड़कर योग शक्ति के प्रभाव से इनको यज्ञ भाग दिया। इन्द्र कुपित हुए तथा वज्र प्रहार करने लगे, किन्तु ऋषि ने मन्त्र के प्रभाव से भुजा स्तम्भित कर दी। तब इन्द्र ने क्षमा मांगी तथा उन्हें यज्ञ भाग प्राप्त हुआ। तब से सदैव के लिए अश्विनी कुमारों को यज्ञ भाग मिलता रहा। सप्तनीक महर्षि च्यवन अपने आश्रम को लौट आये। कालान्तर में उनसे ऋचीक का जन्म हुआ। ऋचीक बड़े तपस्वी पुरुष थे। इनका विवाह गाधि की पुत्री विश्वामित्र जी की बहन सत्यवती के साथ हुआ।

१४२. ऋचीक

ऋचीक तथा गाधि के कोई सन्तान नहीं थी। दोनों को सन्तति की प्राप्ति के लिए ऋचीक ने यज्ञ किया। वेद मंत्रों से अभिमन्त्रित चरु (खीर) तैयार की तथा अपनी पत्नी से कहा, यह खीर तुम खा लेना। यह अपनी मां को दे देना। स्त्रियों में प्रायः शंका तथा विषमता बनी ही रहती है। सत्यवती की माता के मन में विचार हुआ कि इन्होंने अपनी पत्नी के लिए विशेष मंत्रों से चरु अभिमन्त्रित किया होगा। मेरे लिये घटिया होगी। ऐसा मन में विचार कर उन्होंने पुत्री से कहा कि मेरी खीर तू ले ले। मैं तुम्हारी ले लूं। दोनों ने खीर बदल कर खा ली। ऋषि जब लौट कर आये। दोनों से पूछा पत्नी ने सारी घटना

बता दी। तब अपनी पत्नी पर बिगड़ते हुए कहा कि तुमने विपरीत क्यों किया। तुम्हारे चरु में मैंने ब्राह्मणत्व का आधान किया था। तुम्हारी माता के लिए क्षत्रियत्व का आधान किया। अब उलटा होगा। तुम्हारी माता के ब्राह्मणोचित गुणों से युक्त पुत्र होंगा तथा तुम्हारे घोर क्षत्रिय वृत्ति से युक्त पुत्र होगा। पत्नी के प्रणाम करके अनुग्रह करने की प्रार्थना की। तब उन्होंने कहा, तुम्हारे शान्त पुत्र उत्पन्न होगा किन्तु पौत्र कठोर स्वभाव का क्षत्रिय गुणों से युक्त होगा। फिर सत्यवती से जमदग्नि का जन्म हुआ तथा इनकी सास से विश्वामित्र हुए तथा ऋचीक सत्यवती के पौत्र परशुराम जी हुए। जो ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय से युक्त थे। जमदग्नि तथा परशुराम जी का त्रेता खण्ड में चरित्र लिखा जाएगा।

पुलह वंश

महर्षि पुलह यह ब्रह्मा जी के मानस पुत्र सोलह प्रजापतियों में से एक थे। इनका विवाह दक्ष प्रजापति की पुत्रियों से तथा कर्दम की पुत्री से हुआ था। उनसे इनके वंश की वृद्धि हुई। इनके वंश में अनेकों जीव जन्तु उत्पन्न हुए। इन्होंने ब्रह्मर्षि सनन्दन जी से तत्त्वज्ञान प्राप्त किया था। सन्तान दो प्रकार की होती है–देहज तथा नादज। दैहिक सन्तान की अपेक्षा नादज अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि देहज पिता माता जीव को संसार में खींचते हैं, किन्तु आध्यात्मिक पिता (गुरु) जीव को जन्म मरण से मुक्त करते हैं। इस नाते से इनके आध्यात्मिक पिता (गुरु) सनन्दन हुए। उनसे प्राप्त ब्रह्म विद्या का उपदेश इन्होंने गौतम को किया। त्रिताप की शान्ति के लिए यह स्वरूप चिन्तन में रहते थे। इनका आश्रम गण्डकी नदी के तट पर था। महाराज भरत जो दूसरे जन्म में जड़ भरत हुए, इन्हीं के आश्रम में तपस्या करते थे। यह बड़े शिव भक्त थे। काशी में इन्होंने पुलहेश्वर शिवलिंग की स्थापना की। इनका शारीरिक वंश इतना प्रसिद्ध नहीं है, किन्तु अध्यात्म में गौतम जी इनके पुत्रवत् थे, क्योंकि शिष्य और पुत्र में भेद नहीं होता।

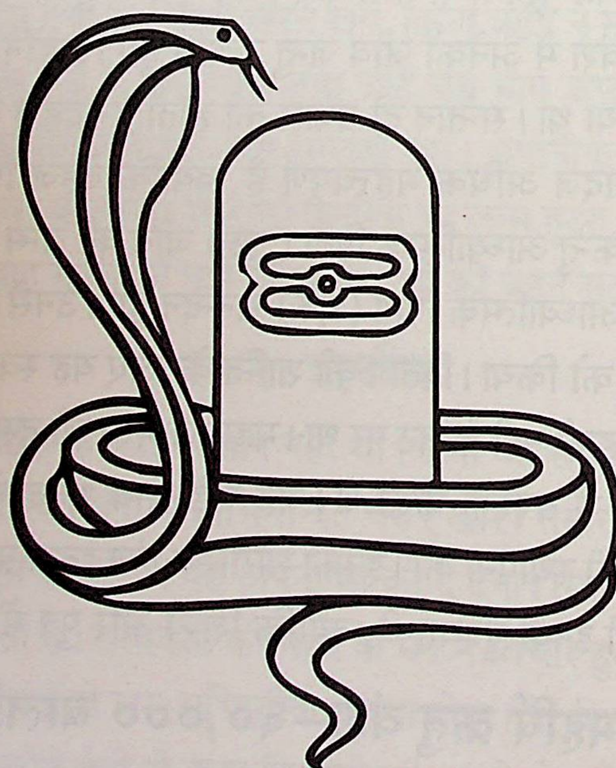
१४३. महर्षि क्रतु वंश–६०,००० बालखिल्य

आप भी ब्रह्मा जी के मानस पुत्र तथा प्रजापति थे। पिता की आज्ञा से इन्होंने देवहूति की पुत्री तथा दक्ष प्रजापति की संयाति नाम की पुत्री से विवाह किया। उनके द्वारा इनके

साठ हजार बाल खिल्य, ऊर्ध्व रेता नैष्ठिक, ब्रह्मचारी वानप्रस्थी पुत्र हुए। इनका शरीर एक बालिश्त खड़े तथा चार अंगुल बैठे है। एक स्वर्ण वृक्ष की शाखा में लटक कर सभी ने तप किया था। ये सब के सब महात्मा सूर्य के रथ के आगे-आगे सूर्य की ओर मुंह करके सूर्य की स्तुति करते हुए पीछे को चलते हैं। उन्हीं महामहिमों की तप-शक्ति सूर्य को धारण किये हुए है। महर्षि क्रतु ने वाराह कल्प के एक चतुर्युगी में वेदों का विभाजन, पुराणों की रचना व्यास के रूप में किया था। कुछ पुराणों में इनका जन्म ब्रह्मा जी की बायीं आंख से बताया है। सप्तर्षि मण्डल में महर्षि क्रतु आज भी ध्रुव की परिक्रमा करते हैं।

॥ इति सत्ययुग खण्ड के चतुर्थ परिच्छेद का बीसवां अध्याय समाप्त ॥

॥ सत्ययुग खण्ड समाप्त ॥



अथ त्रेतायुग खण्ड

॥ प्रथम अध्याय प्रारम्भ ॥

१४४. महर्षि वाल्मीकि

वाल्मीकि जी का पूर्व आश्रम का नाम 'रत्नाकर' था। इन्हें कहीं वरुण देवता के पुत्र कहीं कृणु ऋषि के, कहीं अंगिरा गोत्रीय ब्राह्मण बताया गया है। ब्राह्मण होते हुए भी दुष्टों के सम्पर्क में दुष्ट हो गये थे। आनन्द रामायण के राज्य काण्ड में भगवान् श्री राम के दरबार में बैठे हुए वाल्मीकि ऋषि से देव गुरु बृहस्पति ने पूछा कि आपने रामावतार होने से दस सहस्र वर्ष पूर्व ही एक अरब श्लोकों में राम चरित्र कैसे लिखा?

उनका प्रश्न सुनकर वाल्मीकि जी ने कहा, कि राम नाम की महा महिमा का प्रभाव है। उन्होंने अपने तीन जन्मों की कथा सुनाते हुए दो जन्म पहले का वर्णन करते हुए कहा, हे देवगुरो! आज से पहले तीसरे जन्म में मैं वत्स गोत्रीय ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ था। मेरा नाम स्तम्भ था, मेरा विवाह उच्च कुल की परम पतिव्रता कन्या से हुआ था। मैं नाम मात्र का ब्राह्मण था। कर्म से पूर्ण रूपेण भ्रष्ट था। धनुष, बाण को धारण किये हुए किरातों के साथ मिलकर यात्रियों को लूटा करता था। एक बार वैशाख में मैं धनुष को धारण किये था, इतने में एक दक्षिणी ब्राह्मण सोने के कुण्डल धारण किये हुए निकले। मैंने भयभीत करके उनकी सभी वस्तुएं छीन लीं। शरीर में एक अंगोछे को छोड़कर वस्त्र, छाता, जूता, भोजन सामग्री, कुण्डल आदि सब छीन लिये। वह नंगे पैर चलने लगा। धूप में चलने का अभ्यास नहीं था। घास पर पैर रखते हुए जैसे-तैसे चलते थे। उनकी दशा देखकर मुझे दया आई। मैंने विचार किया, यह छोटे जूते मेरे काम के नहीं हैं, वापस कर दूं तथा खाद्य पदार्थों में सूखे छोटे केले थे। इन्हें वापिस करने का विचार किया। डकैतों के सम्विधानानुसार जो वस्तु छीन ली जाती है, दया करके यदि वापस कर दी जाए, तो वह दान कहा जाता है। मैंने उसे जूते तथा फलों का दान कर दिया। ऐसा करते ही वैशाख के दान के प्रभाव से मेरी बुद्धि निर्मल हुई। पूर्व जन्म की

स्मृति हुई। मैंने महर्षि को प्रणाम करके पूछा कि किस पुण्य के प्रभाव से मुझे दया आई है। उन्होंने कहा यहां धूप में खड़ा नहीं हुआ जाता है। किसी जलाशय के किनारे पेड़ के नीचे सुस्तायेंगे। मैं मध्याह्नकालीन सन्ध्या स्नान तथा जलपान के अनन्तर तुम्हें उत्तर दूंगा। इन क्रियाओं से निवृत्त होकर जब ब्राह्मण की थकान दूर हो गई, तो उन्होंने कहा कि पूर्व जन्म में भी तुम्हारा ऐसा ही स्वभाव था। तुम लूट मार करते थे, मांस भक्षी थे। पतिव्रता स्त्री पर अत्याचार करते हुए वेश्या से तुम्हारी मित्रता थी। वह बेचारी तुम्हारी तथा वेश्या की स्नान, भोजन, बर्तन साफ करना, वस्त्र धोना आदि से सेवा करती थी। तुम जुआ भी खेलते थे। जो जीत कर लाते उसी को देते थे। खान पान का विचार नहीं था। "सब दिन जात न एक समान" इस उक्ति के अनुसार तुम अस्वस्थ हो गये। अनेकों उपचारों से ठीक न हुए। वेश्या ने सारी सम्पत्ति लेकर विदा ली। तुम्हारा रोग बढ़ता गया। तुम्हारा पत्नी मायके से बहुत सा धन लाकर उपचार तथा सेवा करने लगी। एक बार कौडिन्य ऋषि तुम्हारे घर पहुंचे। तुम संतों के परमद्रोही तथा निन्दक थे। तब तुम्हारी पत्नी ने पूछा, यदि वह एक महात्मा आये हैं ऐसा कहती तो तुम न ठहरवाते। उसने ऐसा न कहकर कहा, एक अच्छे से योग्य वैद्य आये हैं, उनकी औषधि से तुम ठीक हो जावोगे। वे रात्रि में विश्राम करना चाहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो उन्हें ठहराऊं। तुमने सहर्ष स्वीकार किया। उसने विधिपूर्वक पूजन किया तथा भिक्षा करवाई। उनका चरणोदक लेकर मस्तक पर धारण किया, घर में छिड़का तथा औषधि के बहाने पीने को दिया, कहा, वैद्य जी ने तुम्हें औषधि दी है। इसे पीने से आप निरोग हो जाएंगे। औषधि समझ कर तुमने पाप ताप नाशक चरणोदक पान किया। तुम्हारी पत्नी झूठ नहीं बोली। साधारण वैद्य शारीरिक रोग दूर करते हैं, किन्तु ऋषि लोग मानसिक तथा भवरोग दूर करते हैं। प्रातः नित्य क्रिया करने के अनन्तर ऋषि चले गये। आपका रोग बढ़ता गया। सरसाम तथा जूड़ी ताप से परेशान हुए। वैद्य जी ने काढ़ा पिलाने के लिए कहा। पत्नी काढ़ा बनाकर पिलाने लगी, किन्तु तुम्हारे दांत जकड़े हुए थे। उसने शक्ति लगाकर बड़ी कठिनाई से मुख खोला, मुख में अंगुली डालकर काढ़ा पिलाया। थोड़ा पीते ही दांत फिर बंद हो गये। पत्नी की अंगुली दांतों में दब कर कट गई। अन्तिम समय वेश्या का चिन्तन करते हुए तुमने शरीर छोड़ा। अतः "अन्ते मतिः सा गतिः"

सिद्धान्तानुसार वही वेश्या दूसरे जन्म में तुम्हारी पत्नी हुई। मरते समय अंगुली तुम्हारे मुख में थी। अतः तुम मांस भक्षी हुए हो। किस पुण्य के प्रभाव से मुझ पर तुम्हें दया आई तथा छीनी हुई वस्तुं लौटा दीं। तुमने धोखे में ऋषि का चरणोदक पान किया था। इस पुण्य के प्रभाव से तुमने मेरा सत्संग किया है। इस जन्म में दान तथा सत्संग का फल तुम्हें अगले जन्म में प्राप्त होगा। अगले जन्म में तुम कृणु के पुत्र होंगे। ऐसी ही प्रवृत्ति रहेगी, किन्तु इस सत्संग के प्रभाव से तुम को नारद सहित सप्तर्षियों का दर्शन होगा। माता-पिता आदि से पूछने पर तुम्हें वैराग्य होगा। तुम्हारे पश्चाताप करने पर ऋषि राम मन्त्र का उपदेश करेंगे, किन्तु रात दिन मार काट करने के कारण राम की जगह मरा निकलेगा। इसका उल्टा हो जाने से राम होगा।

ऐसा कहकर वह कुण्डलधर ब्राह्मण तीर्थ यात्रा को चले गये। हे ऋषे! "ऋषियों ने जाते समय साक्षी के रूप में एक सूखा बांस गाड़ दिया था तथा आज्ञा दी, जब तक हम लौटकर न आयें, तब तक तुम जप करते रहना। एक हजार चतुर्युगी के अनन्तर वे लौटकर आये। मेरे ऊपर बाल्मीक (बांबी) जम गई तथा गाड़ा हुआ बांस राम नाम के प्रभाव से हरे भरे वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। ऋषियों ने देखकर मुझ से कहा। हे महर्षे! उठिये, तुम्हारा तप सफल होगा। तब मैं प्रणाम करके जैसे कुहरे को फाड़ कर सूर्य उदित होता है, वैसे ही मिट्टी के ढेर से मैं बाहर निकला। वाल्मीक से निकलने के कारण ऋषियों ने मुझे वाल्मीकि के नाम से सम्बोधित किया। हे श्री राम! मैं आपके राम नाम की महिमा के प्रभाव से त्रिकालदर्शी हुआ हूं।" ऐसा कहकर वाल्मीकि जी मौन हो गये।

उलटे नाम जप का भाव-

उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥

संस्कृत की अनेक रामायणों में आया है कि निरन्तर मारकाट करने के कारण ऋषियों के राम मंत्र देने पर भी वाल्मीकि मरा मरा कहते थे। राम का उल्टा मरा है। इसी भाव को लेकर तुलसी दास जी ने भी लिखा कि सारा जगत जानता है कि उल्टा राम का नाम जपने से वाल्मीकि जी ब्रह्म के समान हो गये किन्तु विचार करके देखा जाए तो किसी काल में कोई कैसा भी पापी क्यों न हो, उससे कोई राम कहलवाना चाहे और

वह राम कहना चाहे तो राम ही निकलेगा मरा नहीं। इस गये बीते जमाने में भी कोई राम की जगह काम, नाम, टाम, लाम आदि कहता है, मरा नहीं कहता। अतः उल्टे जप या मरा का भाव अति गुह्य है। इसका समाधान अनेकों प्रकार से किया गया है।

१. वेद में मंत्र आता है, **वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्** अर्थात् वाणी मेरे मन में प्रतिष्ठित हो और मन वाणी में स्थित हो। वाणी चार प्रकार की है। कोई भी मनुष्य या जीव जन्तु जब किसी शब्द का उच्चारण करता है, तो वह शब्द नाभि से उठता है। नाभि में परानाम की वाणी है। पेट की अग्नि तथा वायु से मिलकर वह ध्वन्यात्मक वाणी हृदय में पहुंचती है। इसे पश्यन्ती कहते हैं। यहां से वायु के वेग से कण्ठ से टकराती है, यह मध्यमा है। फिर वहां से जीभ जब आठ स्थानों से मुड़ती है, तब स्पष्ट रूप से सुनाई देने वाली वैखरी वाणी कही जाती है। वह शब्द की उत्पत्ति का क्रम है। वैयाकरणों ने परावाणी में लय होने से मुक्ति कही है। लय का क्रम विपरीत है। वैखरी से मध्यमा में, मध्यमा से पश्यन्ती में, पश्यन्ती का परा में लय करते हुए जप किया अर्थात् ऋषियों ने वाल्मीकि से राम कहलवाया मरा नहीं, किन्तु पहले उन्होंने वैखरी वाणी से राम राम किया। फिर स्वर मध्यम हो गया अर्थात् वाचिक जप से उपांशु हो गया तथा उपांशु से मानसिक जप किया। अन्त में मन को भी पूर्ण ब्रह्म में समाहित कर दिया। यह उलटा जप है।

२. अथवा **सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि**। अपने आप को सब भूतों में तथा सब भूतों को अपने में जो देखता है। वही वास्तव में देखता है अर्थात् ओत-प्रोत भाव से उन्होंने जप किया। सूत्र में मणियों के समान परमात्म भाव से अर्थात् राम मुझ में है मैं राम में हूं इस भाव से जप किया। जैसे कपड़े में सूत ताने बाने के रूप में विद्यमान है। ताना बाने में बाना ताने में ओत प्रोत है। ऐसे ही राम मुझ में, और मैं राम में ओत-प्रोत हूं। इस प्रकार का जप ही उलटा जप है। ऐसा जप करने वाला ''ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति'' इस श्रुति के अनुसार वाल्मीकि जी ब्रह्म स्वरूप हो गये।

वाल्मीकि जी कौन थे?

वाल्मीकि जी को लेकर जन साधारण में भ्रान्ति फैली हुई है कि वे अन्त्यज थे, किन्तु इसका प्रमाण संस्कृत की हजारों रामायणों में तथा महाभारत और पुराणों में जहां-

जहां वाल्मीकि का चरित्र आया है, किसी में भी इसका संकेत नहीं मिलता। यहां तक कि श्री राम चरित मानस में भी जब वाल्मीकि के आश्रम में लक्ष्मण, सीता सहित श्री राम पहुंचते हैं तो दण्डवत् प्रणाम करते हैं। **मुनि कहं राम दण्डवत् कीन्हा। आसिरबादविप्रवरदीन्हा**। तुलसीदास जी ने भी वाल्मीकि जी को विप्रवर कहा है। पद्म पुराण में वाल्मीकि जी के अस्सी हजार शिष्यों के सम्बन्ध में आया है। इनमें सर्वप्रथम भरद्वाज ऋषि थे। जैसे गणेश जी से व्यास जी ने महाभारत लिखवाया है। वैसे ही वाल्मीकि रामायण के लिखने में भरद्वाज ने ही सहयोग किया है। वाल्मीकि के उक्त सभी शिष्य याज्ञिक ब्राह्मण थे। इनमें साठ हजार को छोड़कर बीस हजार शिष्य आश्रम में गुरु सेवा करते रहे तथा गुरु जी के नाम से इन्होंने अपना गोत्र वाल्मीकि रखा। इससे वाल्मीकि ब्राह्मण सिद्ध होते हैं। अतः शतकोटि राम चरित के रचयिता वाल्मीकि जिन्होंने बत्तीस हजार श्लोकों में योग वाशिष्ठ की भी रचना की है ब्राह्मण ही थे।

श्वपच वाल्मीकि

महर्षि जैमिनीय कृत आश्वमेधीय पर्व जिसमें महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन हुआ है, इसमें एक श्वपच वाल्मीकि की कथा आती है, जो युधिष्ठिर के राजमहल में झाड़ बुहार करते थे। वही कालान्तर में महात्मा हो गये। इस जाति का सम्बन्ध द्वापर के वाल्मीकि से है। केवल संस्कृत कवियों के ही ग्रन्थों में नहीं मिलता। बल्कि भाषा के कवियों में भक्तमाल के रचयिता नाभादास जी ने भी तथा रीवानरेश रघुनाथ सिंह की भक्तमाल में त्रेतायुग के वाल्मीकि और द्वापर के वाल्मीकि का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। अतः जिस वाल्मीकि के आश्रम में सीता जी रहीं, लव कुश का जन्म हुआ, इनका पांचवें वर्ण से कोई सम्बन्ध नहीं था।

ऋषियों के आशीर्वाद तथा राम की कृपा प्राप्त करने वे तमसा नदी के तट पर आश्रम बनाकर शिष्यों सहित रहते थे। एक दिन देवर्षि नारद जी घूमते हुए इनके आश्रम में आए। इन्होंने यथोचित पूजन सत्कार के अनन्तर पूर्ण रूपेण वेदशास्त्र की मर्यादा के पालक युग पुरुष के सम्बन्ध में प्रश्न किये। तब नारद जी ने श्री राम के सद्गुणों का संक्षेप में वर्णन करने के अनन्तर सौ वेद मंत्रों में संक्षिप्त मंत्र रामायण (मूलरामायण,

लघुरामायण) सुनाई। स्वामी नीलकंठ जी ने मंत्र रामायण की अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत तीनों पक्षों में व्याख्या की है। नारद जी चले गये। इसके कुछ दिन बाद ब्राह्म मुहूर्त में अपने शिष्यों सहित तमसा नदी में स्नान करके लौट रहे थे। उसी समय सांसारिक भोग में आसक्त एक क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक व्याध ने बाण मारकर नर पक्षी की हत्या कर दी। पक्षी का वह शोक शारदा देवी की प्रेरणा से श्लोक के रूप में प्रकट हुआ। वह शोक ही कीर्तिवर्द्धक हुआ–**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥** इस श्लोक के साधारण व असाधारण दो अर्थ निकलते हैं। हे निषाद! तू अनेकों वर्षों तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि काम से मोहित क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मार दिया है।

वाल्मीकि रामायण के टीकाकार नागेशभट्ट जी लिखते हैं कि वाल्मीकि जी को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो चुकी थी। शिकारी के रूप में साक्षात् भगवान् राम थे तथा क्रौंच के जोड़े के रूप में मन्दोदरी सहित रावण था। इनमें से राम रूपी शिकारी ने जब रावण रूपी क्रौंच की हत्या कर दी, तब मन्दोदरी रूपी क्रौंची रुदन करने लगी। अतः वाल्मीकि ऋषि शोक करते हुए से शिकारी रूप राम से कहते हैं। **मा = लक्ष्मी निषीदत्यस्मिन् तत्सम्बोधनम् इति; मानिषादए० यत् = यस्माद्धेतोः। क्रौंच मिथुनाद = मन्दोदरी रावण रूपात्। एकं काममोहितम् = रावणम् अवधीः = हतवानसि। तस्मात् त्वं शाश्वतः समाः = अनेकान् संवत्सरान्। अद्वितीयाम् प्रतिष्ठां = अखण्डैश्वर्यानन्दावाप्तिम्। अगमः = प्राप्नुहि।**

अर्थ हिन्दी में–हे लक्ष्मीपते! राम! भगवान् राम के हृदय में लक्ष्मी जी निवास करती हैं। इसलिए उनका सम्बोधन हे लक्ष्मीपते राम! मा निषाद शब्द का यह अर्थ है। क्रौच मिथुनात् = मन्दोदरी रावण रूपी जोड़े में से, एक काम मोहितम् = काम से मोहित रावण को अवधीः = मारा है। जो कि देवताओं और ऋषियों को सताता था तथा सतियों का सतीत्व नष्ट करता था। हे राम आपने उसे मारा है, इसलिए त्वंशाश्वतीः समाः = अनेकों वर्षों तक, प्रतिष्ठां = अद्वितीय अखण्ड ऐश्वर्य और आनन्द अगमः = प्राप्त करोगे। यह श्लोक वाल्मीकि द्वारा राम को आशीर्वाद के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

इस श्लोक को वाल्मीकि जी बार-बार पढ़कर आनन्दित होते थे। वेदों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य का यह प्रथम श्लोक आदि कवि वाल्मीकि के मुखारबिन्द से भगवती शारदा की प्रेरणा से निकला। जो अनुष्टुप् छन्द में था। इसके प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं। इसे तन्त्री आदि वाद्यों के साथ गाया जा सकता है। वे अपने शिष्यों सहित आश्रम में पहुंचे, इसके थोड़ी देर बाद ब्रह्मा जी पधारे। लोक पितामह ब्रह्मा जी को देखकर शिष्यों सहित उठकर खड़े हुए, प्रणाम स्तुति पूजन करने के अनन्तर उनको आसन दिया। फिर उनकी आज्ञा प्राप्त करके शिष्यों सहित बैठे। इसी घटना के सम्बन्ध में ब्रह्मा जी से चर्चा की। उन्होंने कहा हे प्राचेतस्! मेरी तथा सरस्वती की प्रेरणा से यह श्लोक तुम्हारे मुंह से निकला है। नारद जी से आपने जो सौ वेद मंत्रों में रामायण सुनी है। उसमें प्रत्येक मंत्र की व्याख्या में, तुम मेरी तथा राम की कृपा से एक एक करोड़ श्लोकों की रचना करोगे। समाधि में आपको श्री राम का तीनों भाइयों, पत्नी, भ्रातृ पत्नी, दशरथ तथा उनकी समस्तरानियों का वशिष्ठ आदि ऋषियों रावण आदि निशाचरों का गुप्त तथा प्रकट सम्पूर्ण चरित्र ज्ञात हो जाएगा। सभी भाइयों का हंसना, बोलना, खेलना आपको करामलकवत् प्रत्यक्ष होगा। यह आज्ञा देकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये।

रामायण की रचना तथा बंटवारा

ब्रह्मा जी की आज्ञा प्राप्त करके उन्होंने एक अरब श्लोकों में राम चरित की रचना की। जिस का एक-एक अक्षर महापापों को नाश करता है-

चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातक नाशनम्॥

इस रामायण में नौ हजार काण्ड तथा नब्बे लाख सर्ग हैं। रामायण की रचना करने के बाद पूरी रामायण उन्होंने सुनाई। उनकी कथन सुनने के लिए ब्रह्म लोक, विष्णु लोक, शिव लोक, मृत्यु लोक से देवता, ऋषि, मुनि, चारों वर्ण, यक्ष, राक्षस, नाग आदि उनके आश्रम में पहुंचे। कथा में सब को आनन्द आया। देव, ऋषि तथा राक्षसों की रामायण लेने की इच्छा हुई। तीनों झगड़ने लगे। अन्त में भगवान् विष्णु ने तीन से भाग

देकर रामायण का बंटवारा किया। तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख, तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस श्लोक प्रत्येक को मिला। शेष एक श्लोक को भी भगवान् ने तीन बार दिया। जिनमें १०, १० अक्षर तीनों को दिया। वही दो अक्षर 'राम' हैं। मनुष्य लोक में रामायण का जो तृतीयांश मिला, उसे सातो द्वीपों में बांटा गया। प्रत्येक द्वीप को ४, ७६, १९, ०४७ श्लोक मिले। चार श्लोक शेष बचे। उन्हें भगवान् ने ब्रह्मा जी को दिया। वही चतुश्लोकी भागवत हुई। जम्बू द्वीप के भाग को ९ वर्षों में बांटने पर भारत वर्ष को ५२९१००५ श्लोक प्राप्त हुए। शेष १ अक्षर 'श्री' बचा वह सब के लिए छोड़ दिया गया।

रामायण के दो रचनाकार

यद्यपि राम के समकालीन वशिष्ठ, नारद, अत्रि आदि अनेकों ऋषियों ने राम कथा लिखी है, किन्तु उन रामायणों का सम्पादन वाल्मीकि ने किया है। राम भक्त हनुमान जी ने भी 'हनुमन्नाटक' नाम की रामायण लिखी। अशोक वाटिका के सरोवर के कमलों के वर्णन में वाल्मीकि जी ने श्वेत वर्ण के कमल खिले हैं। हनुमान जी ने लाल वर्ण के कमलों का उल्लेख किया। वाल्मीकि जी ने समाधि में देखकर लिखा, हनुमान जी ने प्रत्यक्ष देखा। दोनों में विवाद हो गया। वाल्मीकि जी ने कहा, मेरा समाधि का यथार्थ अनुभव है, हनुमान जी ने कहा, मैंने प्रत्यक्ष आंखों से देखा है, दोनों अपनी अपनी पुस्तकें लेकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव जी के पास पहुंचे। उन्होंने निर्णय नहीं दिया। तीनों ने कहा, जिस की कथा है, उसी के पास जाओ, दोनों श्री राम दरबार में पहुंचे। दोनों की बातें सुनकर श्री राम ने कहा वाल्मीकि जी का लिखना ठीक है। हनुमान् जी बिगड़ गये। कहा कि मैंने प्रत्यक्ष देखा, वह क्यों ठीक नहीं है। उन्होंने कहा वाल्मीकि जी का समाधि का यथार्थ अनुभव है। पुष्प सफेद ही थे, किन्तु सीता जी को त्रास देते हुए रावण को तुमने देखा था। क्रोध के कारण तुम्हारी आंखें लाल थीं। अतः सफेद फूल भी लाल दिखाई दिये, जैसे कोई सफेद चश्मा लगाता है तो रंग ठीक दिखाई देता है। रंगीन शीशा वाला चश्मा लगाने से शीशा के रंग के ही अनुरूप वस्तु दिखाई पड़ती है। तुम्हारी आंखों की पुतली लाल होने से कमल लाल दिखाई पड़ते थे। हनुमान जी को सन्तोष हुआ।

दोनों प्रसन्न चित्त से चले गये। तुलसीदास जी ने वन्दना में कवीश्वर वाल्मीकि की वन्दना के बाद कपीश्वर हनुमान् की वन्दना की है।

सीता राम गुणाग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।
बन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ॥

अर्थ–सीताराम के गुण समूह रूपी पवित्र वन में बिहार करने वाले शुद्ध अनुभूतिजन्य ज्ञान सम्पन्न कवीश्वर वाल्मीकि जी तथा कपीश्वर हनुमान् जी की मैं वन्दना करता हूं।

॥ त्रेतायुग खण्ड का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ द्वितीय अध्याय प्रारम्भ॥

वाल्मीकिय रामायण में मांसाहार

श्रीमद् वाल्मीकि जी द्वारा लिखित रामायण, वेदों में वर्णित श्री राम चरित को छोड़कर सबका मूल है। इसमें गायत्री की व्याख्या करने के उद्देश्य से महर्षि ने इसकी रचना की है। गायत्री मन्त्र के प्रत्येक अक्षर की एक सहस्र श्लोकों में व्याख्या की है। प्रत्येक सहस्र के अनन्तर दूसरा वर्ण गायत्री के अगले अक्षर से आरम्भ होता है। इसका सप्रमाण इस रामायण के टीकाकार श्री पं० नागेश भट्ट जी ने अपनी रामाभिरामीयटीका में किया है।

इस रामायण में 'रामोविग्रहवान्धर्मः' साक्षात् धर्म का स्वरूप-वेद-शास्त्रानुसार मर्यादित-श्रीरामचरित वर्णित है, परन्तु कई स्थलों में श्रीराम का मांसाहार का उल्लेख है; क्या यह ठीक है? अथवा नहीं। इस विषय पर यहां सूक्ष्म रूप से विचार किया जाता है। उसके किसी ग्रन्थ में कोई शंका हो, तो पूर्वापर विचार करने पर शंका का वहीं समाधान हो जाता है। वाल्मीकि रामायण ही के अनुसार जब भगवान् श्री राम माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करके वन को जाने लगे, तब माता कैकेयी एवं पिता श्री दशरथ जी से कहते हैं,

"चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्॥"

(क० रा० २/२०/२९)

मैं वन में प्रवेश करके कन्द-मूल फलों को खाते हुए पर्वतों, नदियों तथा सरोवरों के विभिन्न वृक्षों को देखते हुए सुखी रहूंगा तथा आपको भी आनन्द मिलेगा। महर्षि भरद्वाज जी के आश्रम में आकर भी उन्होंने यही बात कही है, "**धर्म मेवाचरष्यिामस्तत्र मूलफलाशनाः।**" हम तीनों वन में फल-मूल को सेवन करते हुए स्वधर्माचरण करेंगे। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि श्रीराम मिथ्या-भाषण नहीं करते, परन्तु इसी रामायण में कुछ ऐसे प्रसंग हैं। जिनसे श्री राम के मांसादि भक्षण का मिथ्याभास होता है। जब भगवान् चित्रकूट में वास करने लगते है, तब श्री राम ने वास्तु कर्म सम्पादन हेतु लक्ष्मण जी से कहा, "**ऐणेयंमासमाहृत्यशालां यक्ष्यामहेवयम्।**" (वा० २/५६/२२)

इसका सरलार्थ है कि हे लक्ष्मण! मृग को मारकर मांस ले जाओ; मैं और सीता शाला की पूजा करेंगे।

परन्तु सूक्ष्म-बुद्धि से विचार करने पर अर्थ निकलता है कि 'ऐणे' = मृगछाला पर 'यं' = (यो वायौ इति मेदिनी) मेदिनी शब्दकोष में यो-शब्द वायु के अर्थ में आया है। अर्थात् मैं सीता सहित मृगचर्म पर बैठकर वायु को रोककर प्राणायाम करूंगा। 'या' प्राणायाम करके 'मां' लोकमाता सीता सहित 'समाहृत्य' इसमें 'मां' समाहृत्य दो पद हैं अर्थात् अर्थ है 'ऐ' हे लक्ष्मण। 'णे' (णः पानीयकलश इति मेदिनी) मेदिनी शब्दकोष में 'णे' = जलयुक्त कलश के अर्थ में आया है। अर्थात् जल से परिपूर्ण कलश के समीप 'य' =मरूत्वान्। अर्थात् वास्तुदेवता को, 'मां' दुर्गा को, 'सं' = सर्पधारीगणेश जी को, 'आहृत्य' मन्त्रों से आवाहन करके 'वयं' = हम शाला का पूजन करेंगे। यह 'यक्ष्मामहे' का अर्थ है।

इसी काण्ड के ५६वें सर्ग के २३वें श्लोक में श्रीराम लक्ष्ण जी को आज्ञा देते हैं कि 'मृंगहत्वानयक्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण।' इसका सरलार्थ है कि हे शुभ नेत्र वाले लक्ष्मण मृग को मारकर शीघ्र यहां ले आओ। परन्तु इसका वास्तविक अर्थ इस प्रकार है। 'मृगं' नाम गज के आकार वाले कन्द का है। मदनपाल-निघण्टु में कहा है 'मृग वशौ कुरंगे गजे च इति शब्दस्तोमः।' शब्दस्तोम नामक कोश में मृग शब्द पशु मृग-हिरन तथा गज

के अर्थ में आया है। गज शब्द में कन्द शब्द लुप्त है। महाभाष्यकार पतंजलि जी ने लिखा है कि 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपोवाच्यः' भाव यह है कि बिना प्रत्यय के पूर्व या उत्तर पद कहना चाहिए। अतः इस प्रमाण से 'गज' शब्द–गजकन्द का वाचक है। भाव यह है कि श्री राम जी लक्ष्मण जी के सामने मृग खड़े नहीं, जो शीघ्र मारकर ले आते। शिकार में पशुओं को ढूंढकर और मारकर लाने में समय लगता है। फिर शुभेक्षण सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है; इसका प्रयोजन लक्ष्मण जी का कन्द के पहचानने की चतुराई में है। इसी रामायण में ही श्री राम बार–बार शास्त्र विधि से बर्तने की आज्ञा देते हैं तथा स्वयं भी पालन करते हैं। वनवास काल में वे पूर्णरूपेण वानप्रस्थ धर्म का पालन करते है। श्रीराम में उन तक सूर्य–चन्द्रवंशी उनसे पूर्ववत्ती उनसे पूर्ववर्ती तथा परवर्त्ती राजाओं की अपेक्षा यह विशेषता है कि और राजा गृहस्थ के बाद बनवासी हुए, किन्तु श्रीराम वानप्रस्थी पहिले हुए गृहस्थ बाद में। यद्यपि वे पाणिग्रहण–संस्कार के समय ही गृहस्थी हो गये थे, किन्तु पूर्णरूपेण उन्होंने बनवास से पूर्व भी बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया। शास्त्रों में वानप्रस्थी के लिए कन्द–मूल की आज्ञा हुई है। इसी का उन्होंने सेवन किया। इसलिए भिक्षुक के रूप में आये रावण को सीता जी कन्द–मूल फल ही भिक्षा में देती हैं। चित्रकूट में श्री गुरुदेव के मुख से जब पिता श्री की मृत्यु का समाचार सुनते हैं, तब श्रीराम जी ने इंगुदी के फलों को पिता के निमित्त पिण्डदान किया था। इसी सर्ग के २६वें श्लोक में लिखा है कि 'स लक्ष्मणः कृष्णमृगंहत्वामेध्यं प्रतापवान्।' साधारण अर्थ में उस प्रतापवान लक्ष्मण द्वारा पवित्र काले मृग मारकर लाने की बात दीखती है। परन्तु विशेषार्थ में यहां कृष्णमृग का अर्थ काली त्वचा छिलके वाले काले गजकन्द को उखाड़ कर लाना है।

अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि।
तत्तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्॥

(वा० २/५६/२६–२७)

तथा लक्ष्मण जी ने उस काले गजकन्द को प्रचण्ड अग्नि में डाल दिया। वह एक बार में तुरन्त पक गया। यहां पर 'निसतप्त' पद है। 'स' के स्थान पर 'ष' होकर

'निष्टप्त' पद बन जाता है। बार-बार अग्नि देने से 'ष' नहीं हो सकता 'स' है। एक बार ही पक जाने के लिए 'निष्टप्त' पद आया है। कन्द एक बार में ही पक जाता है। मृगमांस पकाने के लिए उसको काटकर ऊपर की त्वचा तथा हड्डियां अलग करके घी-मसाले आदि में भून कर पात्र आदि में पकाया जाता है। वह शीघ्र नहीं पकता। अतः यहां पर मृग मांस का अर्थ कन्द का गूदा है, हिरण का मांस नहीं। पूरे मृग को कोई समूचा अग्नि में नहीं भूनता। अतः मांस भक्षण सिद्ध नहीं होता। यहां 'छिन्नशोणित' का अर्थ है नष्ट होता है। रूधिरविकार जिससे उसे ही छिन्नशोणित कहते हैं। आयुर्वेद में गजकन्द का सेवन रुधिर विकार पर होता है। यह बताया गया है। मदनपाल ने इसके सेवन से कुष्टादि रोगों की निवृत्ति कही है। **'त्वग्दोषादिः कुष्टहन्ता'** कहा है-

'अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगोमया।
देवता देव संकाशं यजस्व कुशलो ह्यासि॥'

अर्थ-लक्ष्मण जी कहते हैं, ''हे राम! यह काले छिलके वाला काला मृग = काला कन्द प्रस्तुत है; इससे आप देव पूजन करिये।'' संस्कृत व्याख्या में लिखा है, 'समस्ताङ्ग'-सम्यग् भवन्ति अस्तानि अंगानि येन स समस्ताङ्गः' जिसके सेवन करने से समस्त अंग अच्छे हो जाते हैं, वह समस्ताङ्गः है। आप इसके गूदे से आहुति दें तथा प्रसाद रूप से सेवन करें यह भावार्थ है।

शास्त्रों में मांस यक्ष-राक्षसों का अन्न बताया गया है। देवता सत्वप्रधान होने से कन्द-मूल फल से प्रसन्न होते हैं, मांस से नहीं। विशेष करके विष्णु की बलि मांस से रहित होती है। इसी रामायण में विष्णु का यजन भी कहा है। यहां चित्रकूट का प्रसंग है। आगे चलकर अरण्य काण्ड में पंचवटी निवास करते हुए श्री राम ने पुष्पों से देव बलि दी है। अरण्य काण्ड में ही जटायु के पिण्डदान प्रसंग में ६८वें सर्ग के ३३वें श्लोक में कहा है कि **''रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः। शकुनाश ददौ रामो रम्येहरित शाद्वले॥''**

इसका अर्थ करते हैं कि श्री राम ने रोहि नामक मृग के मांस की गोली का पिण्ड बनाकर जटायु को दिया। 'रोहि-मांसानि' का अर्थ मांस का पिण्ड नहीं प्रत्युत् रोहि

नामक बीज का गूदा निकाल कर श्री राम जी ने गोली बनाकर दी। संस्कृत में अकारान्त 'रोहिण' है। 'रोहि' मृग के अर्थ में कहीं नहीं आया। यदि मृग अर्थ किया जाए, तो बहुवचन के मृगों का मांस अर्थ होगा। 'शब्दस्तोम' में 'रोहिशब्दो वृक्षे बीजे चेति' वृक्ष के बीज अर्थ में आया है। मांस का अर्थ गूदा है। मदनपाल-निघण्टु में भी बेर का अर्थ 'स मांसं मधुरं प्रोक्तं' अर्थात् मांसा सहित (गूदे सहित) बेर मीठा कहा है। आगे पम्पा के प्रकरण में भी लिखा है-

धृतपिण्डोपमान् स्थूलांस्तान्द्विजान् भक्षयिष्यथ॥
रोहितांश्चक्रतुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव।
पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान्हतान्॥
निस्त्वक पक्षालयस्तप्तानकृशानेककण्टकान्।
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदायस्यति॥
भृशतान्खादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्प सञ्जये।
पद्मगन्धि शिवंवारि सुखशीतमनामयम्॥
असौ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति॥

(वा०रा० ३/७३/१३-१७)

यहां पर श्री राम जी के प्रति कबन्ध कहता है कि ''हे राघव! आप दोनों भ्राता पम्पासरोवर में आस-पास के पक्षियों को घृतपिण्ड के समान कोमल स्थूल कटहल आदि फलों के गूदा खिलायेंगे।'' हे राम! इषुभिः (इषेर्गतिकर्मणः इति निरुक्तम्)। श्री यास्काचार्य जी के निरुक्त में इष् धातु गति तथा कर्म अर्थ में कही गई है अर्थात् अपनी चालों से 'वर' सुन्दन-हस्तान् अर्थात् 'संहतान्', यहां 'स' का लोप हो गया है; क्योंकि महाभाष्य के वार्तिक में लिखा है, 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपोवक्तव्यः' अर्थात् प्रत्यय के बिना भी पूर्वोत्तर पद का लोप कहना चाहिए।

पम्पा सरोवर पर एकत्रित हुए, त्वचा पक्ष रहित, 'अयस्तप्त' (अय इव तप्त) तपे हुए लोहे के समान लाल रंग की मछलियां तथा रोहित, चक्रतुण्ड को भी आपकी भक्ति से युक्त लक्ष्मण जी फलों के गूदे डालेंगे। मछलियों द्वारा फलों के गूदे खाने के बाद,

उनको भोजन कराने वाले लक्ष्मण जी कमल पत्रों के दोनों में, कमलगन्ध से युक्त शीतल, मधुर जल पिलायेंगे। भाव यह है कि यहां मांस भक्षण का प्रकरण नहीं है, प्रत्युत लक्ष्मण जी का फलों के गूदे खिलाकर जलपान कराने में तात्पर्य है। यदि कहो कि वाल्मीकि जी ने सन्देह युक्त भाषा क्यों प्रयोग की? तो इसका उत्तर है कि देवता परोक्ष प्रिय हैं। प्रत्यक्ष उनको विषवत् है 'परोक्षप्रिया देवाः प्रत्यक्षद्विषः।' वेदों की भाषा जैसे परोक्ष है, वैसे ही वाल्मीकि जी की रामायण पुराणों तथा महाभारत में भी इस भाषा का प्रयोग हुआ है। यहां स्थली-पुलाक न्याय से दिग्दर्शन मात्र करवाया गया है। इस रामायण में अन्यत्र भी इस प्रकार उन प्रसंगों के श्लोकों का अर्थ लगाना चाहिए। अतः हमारे शास्त्रों में देवताओं तथा मनुष्यों का आसुरी भोजन नहीं था, यह सिद्ध हुआ।

(कल्याण सन् १९३० रामायण विशेषांक में प्रकाशित श्री विद्यावाचस्पति पं० श्री बालचन्द्र जी शास्त्री जी के लेख पर आधृत)

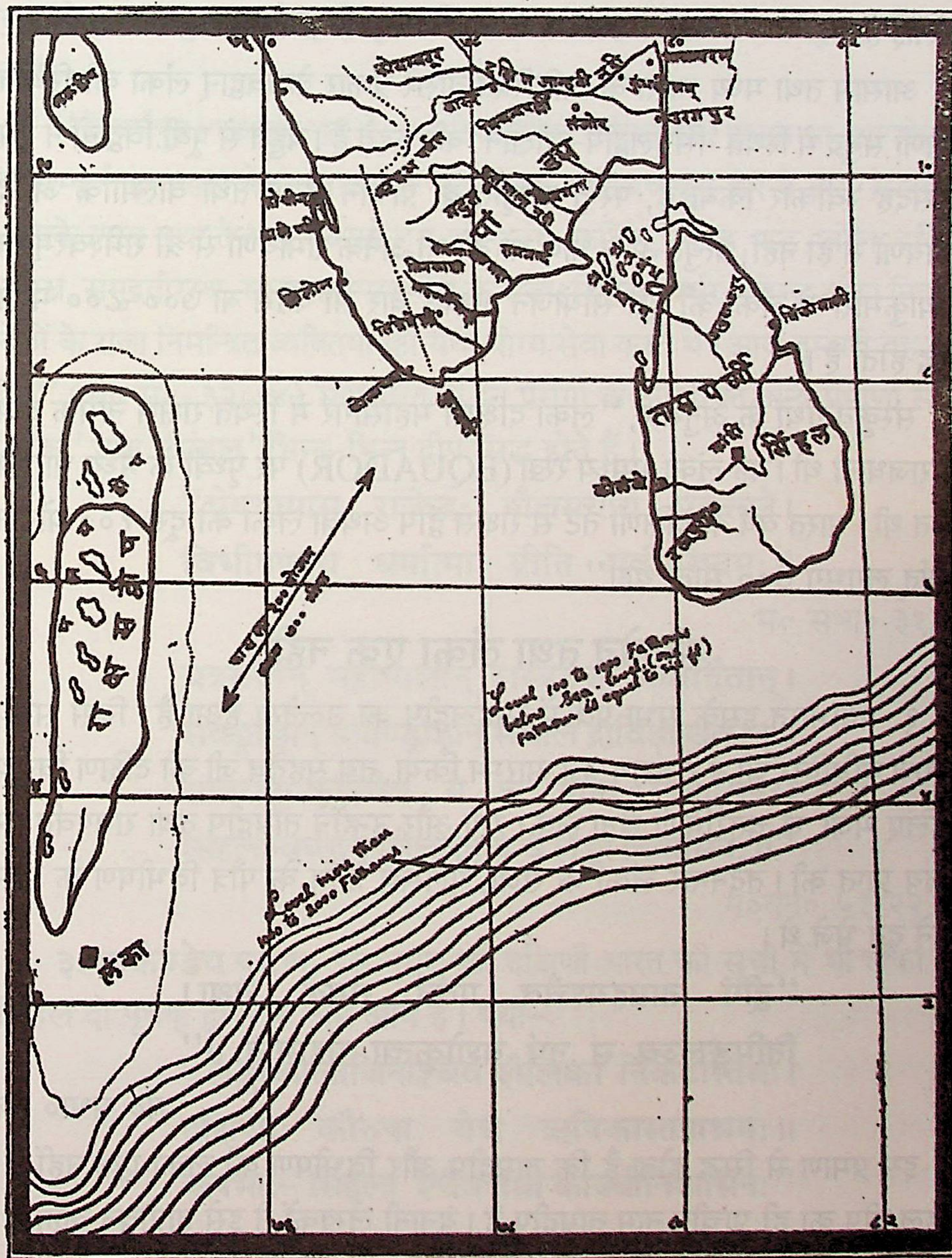
॥ त्रेता युग खण्ड का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ तृतीय अध्याय॥

रावण की लंका कहां थी?

रावण की लंका के विषय को लेकर विद्वानों में अनेक मत पाये जाते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण, आनन्द रामायण तथा अष्टादश महापुराणों में लंका तथा सिंहल दो भिन्न उपद्वीप कहे हैं। इनके शासक भी भिन्न-भिन्न व्यक्ति हुए। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् तथा उनका अन्धानुकरण करने वाले भारतीय विद्वान् सिंहल द्वीप सीलोन को ही श्री लंका लिखते हैं। अतः यहां इस विषय पर विचार किया जाता है। गीताप्रेस से प्रकाशित 'रामायणाङ्क' में 'रावण की लंका कहां थी' लेख के लेखकक श्री बी०एच वाडेर, बी०ए०एल०एल०बी०, एम०आर०ए०एस०, अपने लेख में पूर्व पक्ष को प्रस्तुत करके आरम्भ में लिखते हैं कि, सरदार माधवराव किवे ने वाल्मीकि रामायण में इसकी स्थिति मध्य प्रदेश के विन्ध्याचल पर्वत की शाखा पर्वत पर बताई है।

रामायणकालीन लंका



डॉ० प्रोफेसर जाकोबी ने इसे आसाम में बताया है। बौद्ध रामायण दशरथ जातक का भी यही मत है, ऐसे कई विद्वानों ने मध्य भारत या आसाम में लंका की स्थिति बतलाई है।

आसाम तथा मध्य भारत के अतिरिक्त तीसरे प्रकार के विद्वान् लंका की स्थिति दक्षिणी समुद्र में स्थित 'सिंघलद्वीप-सीलोन' को कहते हैं। बहुत से पूर्वी विद्वानों ने इसे निःसंदेह स्वीकार किया है, परन्तु संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों तथा वाल्मीकि आदि रामायणों से ही नहीं, प्रत्युत् अन्य भाषाओं की भी अनेक रामायणों से श्री रामेश्वरम् या कन्याकुमारी से लंका की दूरी सौयौजन अर्थात् चार सौ कोस या ७००-८०० मील सिद्ध होती है।

संस्कृत ग्रंथों के अनुसार, ''लंका दक्षिणी महासागर में स्थित राक्षस नामक द्वीप की राजधानी थी। यह लंका भूमध्य रेखा (EQUADOR) पर पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित थी। भारत वर्ष के दक्षिणी तट से राक्षस द्वीप अथवा लंका की दूरी १०० योजन अर्थात् लगभग ७०० मील थी।''

सीलोन तथा लंका एक नहीं

१. महाभारत इसके सभा पर्व में सिंहलद्वीप का उल्लेख हुआ है। जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर जी ने राजसूय यज्ञ आरम्भ किया, तब सहदेव जी को दक्षिण विजय के लिए भेजा, वे चतुरंगिणी सेना लेकर गये और उन्होंने ताम्रद्वीप तथा रामपर्वत पर विजय प्राप्त की। तदनन्तर लंका के राजा, पुलस्त्य ऋषि के पौत्र विभीषण के पास अपने दूत भेजे थे।

''द्वीपं ताम्रहयश्चैव पर्वतं रामकं तथा।
तिमिङ्गलञ्च स नृपं वशोकृत्वा महामतिः॥''

म० सभा० ६१

इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि ताम्रद्वीप और विभीषण की लंका एक नहीं है। सिंहल द्वीप का ही प्राचीन नाम ताम्रद्वीप है। यूनानी लेखकों ने इसे ताप्रोवन कहा है।

२. महाभारत वन पर्व के ५१वें अध्याय में कथा आती है कि जब पाण्डवों के वनवास की सूचना श्री कृष्ण जी को हुई, तब वे वहां जाकर पाण्डवों से मिले। उनके दुख से सन्तप्त हुए भगवान् श्री कृष्ण ने अपने हृदयोद्‌गार प्रकट करते हुए धर्मराज से कहा–

"हे धर्मपुत्र! राजसूय यज्ञ में तुम्हारी अतुलित महिमा तथा प्रभाव था; आपके यज्ञ में सम्पूर्ण भूमण्डल के राजा अनेक भेंट लेकर उपस्थिथ हुए थे। वे दास के समान आपके शस्त्र तथा तेज से घबराये हुए अंग, बंग, कलिंग, पौण्ड्र, उड्र, चोल, द्रविड़, आन्ध्र, समुद्रतीरस्थ, समुद्रसमीपस्थ देश के राजा, सिंहल, बर्बर, म्लेच्छ लंका निवासी देशों के राजा निमन्त्रित व्यक्तियों की यथा योग्य सेवा करते थे। आज तुम्हारी यह दशा है।" (म० स०-३२/७४) महाभारत के इन प्रसंगों के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी 'लंका' तथा 'सिंहल' भिन्न-भिन्न द्वीप सिद्ध होते हैं।

"प्रेषयामास राजेन्द्रः पौलस्त्याय महात्मने।
विभीषणाय धर्मात्मा प्रीति पूर्वमरिन्दमः॥

म० सभा० ३१/७४

यत्रसर्वान् महीपालान् शस्त्रतेजो मयार्दितान्।
सबङ्गाङ्गान् सपौण्ड्रोड्रान् सचोल द्राविड़ान्धकान्॥
सागरानूपकाश्चैव ये च प्रान्त निवासिनः।
सिंहलान्बर्बरान् म्लेच्छान् ये च लङ्का निवासिनः॥"

म०वन० ५१/२२-२३

३. मार्कण्डेय पुराण–इस पुराण की दक्षिणी भारत की सूची में भी लंका तथा सिंहल दो पृथक् द्वीपों के नाम आये हैं। यथा–

"लङ्काकालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा।
दक्षिणाः कौरुषा येच ऋषिकास्तपाश्रमः॥
ऋषभाः-'सिंहला' श्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः"

(-५५/५७)

४. श्रीमद्भागवत–इसके पांचवें स्कन्द में जम्बू महाद्वीपान्तर्गत आठ उपद्वीपों में 'सिंहल' तथा 'लंका' भिन्न-भिन्न द्वीप लिखे हैं। केवल भागवत में ही नहीं, किन्तु वाल्मीकि रामायण, विष्णु पुराण, देवीभागवत आदि अठारह महापुराणों में जहां भूगोल का वर्णन हुआ है वहां सर्वत्र दोनों का भिन्न नाम आया है यथा–**जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपानष्टौ उपदिशन्ति। तद्यथास्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्त्तनो रमणको मंदरहरिणः पाञ्चजन्यः 'सिंहलो'-'लङ्केति॥'**(५/१९/२९-३०)

हे राजन्! जम्बू महाद्वीप के आठ उपद्वीप हैं; उनके नाम-(१) स्वर्णप्रस्थ, (२) चन्द्रशुक्ल (इसी पर आज के वैज्ञानिक पहुंचे हैं चन्द्रमा पर नहीं), (३) आवर्त्तन, (४) रमणक (श्री कृष्ण से अभयदान पाकर कालियनाग वहीं पहुंचा था), (५) मन्दर-हरिण, (६) पाञ्चजन्य, (७) सिंहल तथा (८) लंका।

५. बृहत्संहिता–ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित वराहामिहिराचार्य कृत इस बृहत् संहिता के कूर्म विभाग में भी दक्षिण-देशीय नामों में इन दोनों द्वीपों के नाम भिन्न-भिन्न दिये गये हैं। यथा–

"लंकाकालाजिनः सौरिकीर्णः कांचीमरूचीपट्टन-चेर्यार्यक सिंहला-ऋषभः॥"
(अ० १४/११)

इस ग्रन्थ में कहा गया है कि इन नामों की गणना बांयें से दाहिनी ओर को होनी चाहिए। अतः 'सिंहल' तथा 'लंका' के मध्य में ऋषभद्वीप था और यह दोनों पृथक्-पृथक् द्वीप थे।

६. उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त भी भगवान् आद्य श्री शंकराचार्य जी के काल में केरल देश के राजशेखरकृत बालरामायण तथा बालमहाभारत नामक नाटक लिखे थे। इन नाटकों को उन्होंने भगवान् भाष्यकार को दिखलाया था। भगवान् शंकर ने इनको प्रामाणिक सिद्ध किया। सम्पूर्ण भारत का उन्होंने भ्रमण किया था तथा उनको पूर्णरूपेण भूगोल का ज्ञान था। इस नाटक के तीसरे अंक में सीता स्वयंवर का वर्णन किया गया है। जिसमें रावण पहुंचता है तथा स्वयंवर में आये हुए सिंहलाधिपति से ललकार कर पूछता है कि **'सिंहलपते, किमदं संदिह्यते? न च सन्देह देहो वीर-व्रत-निर्वाहः।'** रावण कहता है कि "हे सिंहलपते! इसमें सन्देह क्यों करते हो? अर्थात् धनुष उठाने में

क्या सन्देह है? वीरव्रती को सन्देह न करके वीरतापूर्वक महाराज जनक की धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञा का निर्वाह करना चाहिए।" इस प्रकरण में लंकापति तथा सिंहलपति दो देशों के दो भिन्न राजा सिद्ध होते हैं। इसी नाटक के दशम अंक में जब श्रीराम पुष्पक विमान से जाते हैं तो भगवान् श्री सीता जी को लंका एवं युद्ध भूमि का परिचय देते हुए मार्ग के अनेकों स्थलों का वर्णन करते हैं; फिर सीता जी पूछती है कि, "अखण्डित खण्ड धनुष् के समान आकार वाला यह कौन देश है?" विभीषण उत्तर देते हैं कि, "समुद्र में विद्यमान यह 'सिंहल' नामक द्वीप है, यह मणियों के फर्श से युक्त है, इसके चारों ओर हरी दूब चतुर्भुजाकार है; वह जल में विद्यमान सीपी के गर्भ में स्थित मोती के समान सुशोभित हो रहा है।" इन वचनों से सिंहल तथा लंका भिन्न सिद्ध होते हैं साथ ही सिंहल बहुत छोटा टापू सिद्ध होता है। संस्कृत साहित्य में किसी भी ग्रन्थ में सिंहल तथा 'लंका' को एक नहीं कहा गया है। लंकापुरी, सिंहल (सीलोन) से दक्षिण-पश्चिमी (नैऋत्य) कोण में स्थित थी।

लंका की स्थिति

लंका भारत के दक्षिण समुद्र तट से सौ योजन की दूरी पर थी। इस द्वीप की लम्बाई सौ योजन तथा चौड़ाई चालीस योजन की थी। यह परिमाण सिंहलद्वीप में घटित नहीं होता।

"भारतवर्षीय भू वर्णन" नामक पुस्तक के लेखक प्रो० एस०बी० दीक्षित ने सीलोन को ही लंका कहा है। परन्तु जब उनसे प्रश्न किया गया कि रामायणों में दक्षिणी सागर से उसकी दूरी सौ योजन कही गई है, तो उसका उत्तर नहीं दे सके।

श्री हनुमान जी सीता की खोज में जिस भाग से गये थे; उस पर विचार करने से सही पता लगेगा। इससे पूर्व वायु पुराण, श्री भास्कराचार्य जी के 'गोलाध्याय' तथा वाल्मीकिय रामायण में लिखे सुग्रीव द्वारा लंका के मार्ग पर विचार करने पर 'लंका' की स्थिति का पता चल जाएगा।

१. वायु पुराण–वायु पुराण के भुवन विन्यास प्रकरण ४८वें अध्याय में जम्बूद्वीप के चतुर्दिक् फैले हुए अंग, यम, मलय, शंख, कुश तथा वराह नामक द्वीपों का नाम

आता है। इसी अध्याय के २० से ३०वें श्लोकों में मलय के वर्णन में कहा गया है, ''इस पर्वत में मणि, रत्न, चांदी आदि की खानें हैं और यहां पर म्लेच्छ वास करते हैं। इस पर्वत की प्रत्येक चोटी पर स्वर्ग सा आनन्द मिलता है। यह द्वीप त्रिकूट नामक पर्वत पर है; यह पर्वत अति विस्तृत है। रमणीय घाटियों एवं शिखरों से युक्त है। इस पर्वत की गोद में लंका पुरी बसी हुई है। इस नगरी में स्वेच्छा रूप धारी बलगर्वित, देवशत्रु महात्मा राक्षस वास करते हैं। इस द्वीप की लम्बाई सौ योजन तथा चौड़ाई तीस योजन है। इसके पूर्व में गोकर्ण नामक पवित्र स्थान पर एक विशाल शिव मन्दिर है।''

इस वृत्तान्त से यह सिद्ध होता है जम्बू द्वीप के इन उपद्वीपों से पृथक् तीसरे मलयद्वीप में त्रिकूट पर्वत पर लंका नगरी बसी हुई थी। यह मलय द्वीप भारतीय महासागर में स्थित आधुनिक 'मालदिव द्वीप पुंज' ही है। यह द्वीप भूमध्य रेखा पर अवस्थित है। इसमें कहा हुआ गोकर्ण नामक पर्वत का जो वर्णन है, वह भारत के पश्चिमी घाट पर करवार जिले में स्थित आधुनिक गोकर्णनाथ से भिन्न है। वह लंका का 'गोकर्णनाथ' है।

२. गोलाध्याय–कर्णाटक प्रदेश के हलेबिड स्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान् जिन्होंने गणेश सहस्र नाम पर खद्योत भाष्य ललिता सहस्र नाम पर विस्तृत भाष्य एवं सौन्दर्य लहरी आदि अनेक ग्रन्थों पर टीकाएं तथा मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं, वे श्री भास्कराचार्य जी महाराज ज्योतिष शास्त्र के उद्भट् विद्वान् थे। उन्होंने गोलाध्याय भुवनकोश में लिखा है–

''लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्या प्राक्पश्चिमे रोमकपट्टनं च।
अधस्ततः सिद्ध पुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये बड़वानलश्च॥''

इस श्लोक में लंका की स्थिति बतलाते हुए कहा गया है कि ''लंका पर्वतों के मध्य में स्थित है। इस यमकोटि के पर्वत पर पश्चिम में रोमक (रोम देश) तथा पट्टन हैं; आगे जल है अर्थात् समुद्र है; सिद्धपुर में सुमेरु है। दक्षिण में बड़वानल है।'' इससे स्पष्ट होता है कि ज्योतिष शास्त्र में शून्य अक्षांश को भूमध्य कहा गया है। लंका तथा उज्जैनी में बहुत कम अन्तर पाया जाता है। अवन्तिका का अक्षांक ७०, ७५ पूर्व बतलाया गया है।

३. वाल्मीकिय रामायण की लंका–इसमें कहा गया है कि जब हनुमान जी सुग्रीव से विदा होकर श्री राम जी से मुद्रिका लेकर जाने लगे, तो सुग्रीव ने हनुमान जी से लंका का मार्ग निर्देश करते हुए कहा कि ''हे हनुमते! तुम समुद्र की ओर जाने वाली ताम्रपर्णी नदी पार करके पाण्ड्य देश सुवर्ण प्रदेश पार करने के बाद समुद्र को लांधना। बाद में एक खाई मिलेगी। उसको लांघ जाना कठिन है। महर्षि अगस्त्य जी ने लोक-कल्याण की कामना से महेन्द्र पर्वत को स्थापित करके उस खाई को भर दिया था। यह सोने का पर्वत है; इसका बहुत सा भाग अब भी समुद्र में है।''

ताम्रपर्णी ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्।
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते॥
ततः समुद्रमासाद्य संप्रधायार्थ निश्चयम्॥

वा० रा० ४/४१

अगस्त्ये नान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः॥
चित्रसानुनगाः श्री मान्महेन्द्रः पर्वत्तोत्तमः ४॥

४/४१/२०-२१

यह महेन्द्रपर्वत कलिंग महेन्द्र पर्वत से भिन्न है। यह कन्या कुमारी के पास है। इसका एक भाग आज भी समुद्र में डूबा हुआ है।

''द्वीपस्तस्या परे पारे शतयोजन विस्तृतः॥
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः॥
राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्त्राक्ष समद्युतेः॥''

(वा० रा० ४/४१/२४-२५)

''इस पर्वत के पश्चिम में कान्तिमान सौ योजन का एक द्वीप है, वहां वध करने योग्य दुष्टात्मा रावण निवास करता है।'' सुग्रीव के इन वचनों से लंका की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। रावण राक्षस द्वीप का राजा था तथा लंका उसकी राजधानी थी। लंका पाण्ड्य देश पाण्ड्यकपाट से पश्चिम में थी। सिंहल या सिलोन की स्थिति ऐसी नहीं थी। डॉ० एस०के० आयंगर ने भी अपनी पुस्तक "BEGINNING OF SOUTH-

INDIAN HISTORY" "दक्षिण भारतीय इतिहास का प्रारम्भ काल" नामक ग्रन्थ में स्पष्ट किया है कि सिंहल सिलोन पर लंका सम्बन्धी उक्त विवरण कदापि लागू नहीं होता।

आचार्य चाणक्य के अर्थ शास्त्र में भी ताम्रपार्णी तथा पाण्ड्यकपाटम् का वर्णन हुआ है। अत: रामायण में सुग्रीव ने जो हनुमान जी को मार्ग समझाया था, वही ठीक है। तब हनुमान जी कन्या कुमारी में स्थित महेन्द्र पर्वत से लंका की ओर उड़े थे।

॥ त्रेतायुग खण्ड का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्थ अध्याय प्रारम्भ ॥

लंका का स्थान

कालान्तर में वह प्राचीन लंका द्वारकापुरी के समान समुद्र में डूब गई। आजकल यहां मालदिवद्वीप समुद्र है। यही प्राचीन राक्षस द्वीप था। इसका विस्तार भूमध्य रेखा ९° उत्तर अक्षांश तथा १° दक्षिण अक्षांश तथा ७३° से ७९° के पूर्व देशान्तर बीच में फैला हुआ था। अनुमान है कि जिस समय यह राक्षस द्वीप था, वहां की राजधानी लंका जब जलमग्न हुई, तो वहां के निवासी भागकर ताम्रद्वीप में आकर बस गये होंगे। इसी प्रदेश को पुराणों में सिंहल द्वीप तथा आज कल सीलोन कहते हैं। भूगर्भ वैज्ञानिकों का कथन है कि ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व अर्थात् आज से छ: हजार वर्ष पूर्व भारतीय महासागर में 'लोमोरिया' नामक महाद्वीप था। वह भारत के दक्षिण में अफ्रीका के दक्षिणी भाग से लेकर पूर्व में दक्षिण अमरीका तक फैला हुआ था। कालान्तर में वह महाद्वीप जलमग्न हो गया और वह कई वर्तमान कालीन टापुओं के रूप में परिवर्तित हो गया। उनके नाम मालदिव, मैडागास्कर, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, एसेन्शन, फाकलैण्ड, ग्राहम और पश्चिमी अण्टार्टिका आदि हैं। यह वर्तमान द्वीप उसी प्राचीन विशाल महाद्वीप के पर्वत शिखर के उच्च भाग हैं। मलयद्वीप या मालदिव उसी स्थान पर है, जहां रावण का राक्षस द्वीप था। जिसकी राजधानी लंका थी।

यह श्री रामायणाङ्क (१९३०) का लेख है। इसी लेखक ने यह लेख सन् १९२६ में "THE MYTHIC SOCIETY'S JOURNAL" में तथा "THE

INDIAN HISTORICAL QUARTERLY" नामक पत्र में भी लिखा था।

लंका के सम्बन्ध में कलकत्ते से प्रकाशित होने वाली बंगला मासिक पत्रिका 'भारतवर्ष' के फाल्गुन तथा ज्येष्ठ के अंकों में श्री पं० राजेन्द्रनाथ विद्याभूषण जी के दो लेख प्रकाशित हुए थे, उनमें भी रावण की लंका यहीं बताई गई है।

श्री आनन्द रामायण तथा
पुराणों में लंका सिंहल आदि द्वीपों की उत्पत्ति

सिंहलद्वीप–आनन्द रामायण के सार काण्ड में कथा आती है कि जिस समय श्री राम समुद्र तट पर पहुंचे, उनके बारे में रावण को जब पता चला, रावण ने सभा में सबसे पूछा, "क्या करना चाहिए?" तब मेघनाद, कुम्भकर्ण, सारन, प्रहस्तादि ने श्री राम से युद्ध करने की सम्मति दी, परन्तु विभीषण ने सब के विचारों का खण्डन करते हुए कहा कि, "हे भ्राता! राम के धनुष्टंकार मात्र से ये सब युद्ध में ठहर नहीं पायेंगे। श्रीराम के कुपित होने पर इन्द्र, ब्रह्मा, शिव, विष्णु की शरण में जाने पर भी कोई भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा। अत: यदि अपनी तथा परिवार की रक्षा करना चाहते हो तो श्री सीता जी को आगे करके बहुत से धन सहित श्री राम की शरण में जाओ।"

विभीषण का यह परम हितकारी वचन रावण ने नहीं सुना। क्रोध में भरकर कहा कि, "तुम भाई हो, इसलिए छोड़ता हूं, मेरे अन्न से पुष्ट होकर भी शत्रु की प्रशंसा करते हो, जाओ भाग जाओ।" रावण से अपमानित विभीषण ने अग्रज के चरण पकड़े, पितृबुद्धि से प्रणाम किया और विनाश का शाप देकर अपने चार मन्त्रियों सहित श्री राम की शरण में पहुंचे। विभीषण के आने का समाचार जब सुग्रीव ने सुना, तो श्री राम से कहा कि, "यह शत्रु का भाई भेद लेने आया है यह मौका देखकर आप दोनों को मार देगा। अत: इसे दण्ड देना चाहिए।" श्री राम ने कहा कि, "यद्यपि तुमने राजनीति के अनुसार ठीक ही कहा है, परन्तु यह मेरी शरण को प्राप्त हुआ है, शास्त्रों में शरणागत के त्याग को महादोष कहा गया है, रही रक्षा की बात सो यदि लक्ष्मण जी चाहे तो आधे

निभेष, में त्रैलोक्य को भस्म कर सकते हैं। मैं शरणागत भक्तों को सभी प्राणियों से निर्भय कर देता हूं।''

सकृदेव प्रपन्नाय त्वास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेम्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

अत: जो धोखे से भी एक बार मैं आपका हूं ऐसा कह देता है, उसे मैं निर्भय कर देता हूं। फिर हनुमान जी से कहा कि ''हे हनुमते! मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता, मैं इनको लंका का राज्य देता हूं, मेरी आज्ञा से तुम समुद्र पर रावण की स्वर्ण लंका के अनुरूप छोटी सी बालू की नकली लंका बनाओ इसी समय में उस पर विभीषण का अभिषेक करूंगा। यह मेरी लंका (न्यास) धरोहर के रूप में विभीषण के पास रहेगी। युद्ध में रावण को मारकर मैं इनका स्वर्ण की लंका पर अभिषेक करने के अनन्तर इस लंका को वापिस ले लूंगा।''

श्री राम की आज्ञा प्राप्त करके श्री हनुमान जी ने रेत की लंका बनाई। श्री राम ने वहां का राज्य विभीषण को दिया। रावण को मारने के पश्चात् असली लंका पर विभीषण का अभिषेक किया, तदनन्तर वह लंका वापिस ले ली।

इस कथा से यह सिद्ध होता है कि सिंहल हनुमान जी द्वारा बनाई गई असली लंका के अनुरूप नकली लंका है। यहीं पर कलियुग के अन्त में पद्माक्ष नामक राजा होंगे। उनकी पद्मा नामक राजकुमारी के साथ श्री कल्कि भगवान् का प्रथम विवाह होगा। लोक में सिंहल द्वीप की पद्मिनी नाम की स्त्रियां प्रसिद्ध हैं; इनके श्वास से पद्म के सामान गंध आती है। अत: इन्हें 'पद्मिनी' कहते हैं। उपर्युक्त प्रमाण से सिंहल और लंका भिन्न-भिन्न द्वीप सिद्ध होते हैं।

अष्टादश महापुराणों में उपद्वीपों की उत्पत्ति

व्यास जी द्वारा सम्पादित विष्णु, भगवतादि महापुराणों में जम्बू आदि महाद्वीपों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि भगवान् स्वयम्भू मनु के 'प्रियव्रत' नाम के पुत्र महाप्रतापी थे। वे राज्य नहीं चाहते थे, किन्तु ब्रह्मा जी के समर्थन पर उन्होंने राज्य स्वीकार किया। उनकी इच्छा थी कि मेरे सम्पूर्ण भूमण्डल में कहीं रात्रि न हो। परन्तु जब सूर्य पृथ्वी की छाया में आ जाता था, वहां रात्रि हो जाती थी। तब वे सूर्य के समान

तेजस्वी रथ में बैठकर रात्रि को दिन के रूप में परिणत करने के उद्देश्य से विचरते थे। जहां-जहां उनका रथ जाता वहां सूर्य के समान प्रकाश होता। उनके रथ की लीक में जो जल भरा, वह सागर के रूप में हो गया और पृथ्वी का ऊंचा भाग महाद्वीप हुआ। प्रत्येक महाद्वीप के चारों ओर उसके परिमाण का सागर होगा। महाद्वीप की सीमा पर दो महाद्वीपों को बांटता हुआ सीमा पर्वत है।

इस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल में सप्त महाद्वीप, सात समुद्र तथा सप्त पर्वत पुराणों में कहे गये हैं। उन सप्त महीद्वीपों में प्रथम जम्बू नामक महाद्वीप हैं। इसमें आठ ऊपर कहे हुए रमणक आदि उपद्वीप हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में कथा आती है कि त्रेता युग के आरम्भ में सूर्यवंशी महाराज सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञों द्वारा यज्ञ पुरुष का यजन किया, इसमें ९९ यज्ञ तो सफल हो गये। जब सौवें यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया, उसकी रक्षा के लिए चतुरंगिणी सेना सहित साठ हजार पुत्र गये। देवराज इन्द्र को चिंता हुई कि यह राजा मेरा पद ले लेगा। अत: उसने कोहरा उत्पन्न कर दिया उसमें परस्पर हाथ को हाथ तक सूझता नहीं ता। इन्द्र ने इसी बीच घोड़े को चुरा कर कपिल भगवान् के पास बांध दिया, वे समाधिस्थ थे उनको पता नहीं चला। घोड़ा बांध कर इन्द्र स्वर्ग को चले गये। जब कोहरा दूर हो गया, तो सगर के राजकुमारों ने घोड़ा नहीं देखा। वे सगर-पुत्र घोड़े की खोज में सर्वत्र घूमे। परन्तु घोड़ा नहीं मिला। तब अपने अस्त्र-शस्त्रों से पृथ्वी पर खोदने लगे। तब पाताल में घोड़ा देखा। महाराज सगर के पुत्रों द्वारा पृथ्वी को खोदते खोदते जो गड्ढे बने उनमें जल भर गया, वह वर्तमान में सागर कहलाये। धरती का ऊंचा भाग जम्बू महाद्वीप के चन्द्रशुक्ल रमणक आदि उपद्वीप हुए। जिनका सविस्तार वर्णन अन्यत्र द्रष्टव्य है। यह कथा प्रसंग पूर्व में ही लिखा जा चुका है। यह कृत्तिवास रामायण, विष्णु पुराण तथा श्रीमद् भागवत पुराण के अनुसार ही है, उन्हीं द्वीपों में लंका एवं सिंहल द्वीप हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणानुसार चन्द्र-शुक्ल उपद्वीप

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कथा आती है कि महाराज दक्ष प्रजापति की सत्ताईस पुत्रियों का विवाह चन्द्रमा के साथ हुआ था। वही रोहिणी आदि २७ नक्षत्र कहे जाते हैं। चन्द्रमा

रोहिणी से अधिक स्नेह करते थे। अन्यों से कम। २६ पुत्रियों ने दुखी होकर अपने पिता के पास जाकर शिकायत की। पिता ने चन्द्रमा को समझाया कि आपको सभी के प्रति समान व्यवहार करना चाहिए, परन्तु चन्द्रमा के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। फिर दूसरी बार वे पुन: दुखी होकर पिता के पास गईं। इस बार प्रजापति ने महाकुपित होकर चन्द्रमा को क्षय रोग ग्रस्त होने का शाप दे दिया। चन्द्रमा दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगे। जब द्वितीया के चन्द्रमा के समान रह गये, तो आत्म रक्षा के लिए क्रमानुसार इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु की शरण में गये। परन्तु किसी ने उनको आश्रय नहीं दिया। अन्त में वह आशुतोष, भूतभावन शंकर की शरण को प्राप्त हुए। भगवान् शिव ने उन्हें मस्तक पर धारण कर लिया।

चन्द्रमा के लुप्त हो जाने से तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। औषधियों का पोषण चन्द्रमा से होता है, वे क्षीण होने लगीं। इसलिए ऋषियों व पितरों को भोजन न मिलने से वे भी क्षीण होने लगे। दक्ष सहित समस्त देवों, ऋषियों, पितरों तथा प्रजापतियों ने चन्द्रमा को छोड़ने की प्रार्थना भगवान् शंकर से की परन्तु शणागत के त्याग के दोषों को भगवान् शंकर ने विस्तार से वर्णन करते हुए चन्द्रमा को नहीं छोड़ा। जब इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु के सहस्त्रों प्रयास करने पर भी शंकर जी ने चन्द्रमा को नहीं छोड़ा, तो निराश होकर उन्होंने मिलकर नित्य गोलोक विहारी, श्री कृष्ण से अनुनय-विनय की, वे भूत भावन भगवान् शिव के पास पहुंचे। अनेकों स्तुतियों के अनन्तर उन्होने चन्द्रमा को छोड़ने की प्रार्थना भगवान् शंकर से की। परन्तु शिव जी महाराज शरणागत के त्याग के दोषों को विस्तार से पांच अध्यायों में वर्णन करते हुए अपनी दृढ़तम प्रतिज्ञा पर अटल रहे। तब लीलापुरुषोत्तम कृष्ण ने अपनी कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुम् समर्थ पूर्णमहायोगमाया का आश्रय लिया और अपने महा सुदर्शन से शिवमस्तक पर विभूषित असली चन्द्र से नकली चन्द्र खींचकर त्रैलोक्य रक्षार्थ एवं दक्ष पुत्रियों के कल्याणार्थ, दक्ष प्रजापति को दे दिया। यह दूसरा चन्द्रमा तो वृद्धि-ह्रास को प्राप्त होता है। वास्तविक चन्द्र आज भी द्वितीय के चन्द्र के समान चन्द्रशेखर भगवान् के मस्तक पर सुशोभित हो रहा है। इस चन्द्रमा पर पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी आदि तिथियों का प्रभाव नहीं पड़ता। इस विचार के अतिरिक्त भी 'चन्द्रकला विज्ञानम्' नामक संस्कृत के निबन्ध में इसी का

नाम चन्द्रशुक्ल द्वीप कहा है। जो पृथ्वी के परम उच्चतम स्थल पर विराजमान है। इसी चन्द्रमा पर वैज्ञानिक पहुंचे हैं, वास्तविक चन्द्रमा पर नहीं। पुराणों में इसे ही चन्द्र-शुक्ल नामक द्वीप कहा गया है। अनेक पुराणों में भगवान् वेदव्यास जी ने एक ग्रह से दूसरे ग्रहों की दूरी बतलाई है यथा-श्रीमद् भागवत महापुराण, श्री शिव पुराण, विष्णु पुराण आदि में इस दूरी का वर्णन है। इन ग्रन्थों में सूर्य किरणों या सूर्य मण्डल से चन्द्रमा की दूरी एक लाख ययोजन ऊपर बतायी है। 'य पिण्डे सब्रह्माण्डे' संस्कृत की इस सूक्ति के अनुसार भी हमारे शरीर में नेत्र तथा शिर दो ऊपर के अंग हैं। जेर तथा अंडे से उत्पन्न होने वाले प्रत्येक जीव के शरीर में नेत्र नीचे तथा सिर ऊपर है। सूर्य नेत्र का देवता है। इसलिए जो अंधे हो जाते हैं, उन्हें सूरदास कहते हैं। भाषा में सूर्य को सूर भी कहा है अर्थात् जिस पर सूर्य-कृपा नहीं, वह सूरदास है तथा सिर को चांद भी कह देते हैं। जिसके उस्तरे से बाल-साफ किये हुए होते हैं, उसको कहते हैं कि इसने चांद घुटाली है। .... इत्यादि तर्कों से सूर्य मण्डल की अपेक्षा चन्द्र मण्डल ऊपर सिद्ध होता है। योग से सम्बन्धित ग्रन्थों में भी जब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रित होकर सहस्त्र दल कमल में शिव के साथ मिलती है, तब ब्रह्मरन्ध्र या सहस्त्र दल कमल से अमृत गिरता है, जिसका पान करके योगी अमर हो जाता है। शिव जी ने पार्वती से कहा, ''चन्द्रात्स्त्रवति यत्सार: सवै अमर वारुणी'' चन्द्रमण्डल से जो सारामृत गिरता है, वह योगी को अमर करने वाली अमर वारुणी (मदिरा) है। उपर्युक्त प्रमाणों से सूर्यमण्डल से चन्द्र मण्डल ऊपर सिद्ध होता है। यह चन्द्र शुक्ल द्वीप की उत्पत्ति ब्रह्मवैवर्तपुराण में दिये गये वर्णन पर आधारित है। **(इति महाद्वीप-उपद्वीप वर्णन)**

॥ इति त्रेता युग खण्ड का चौथा अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ पांचवा अध्याय प्रारम्भ ॥

दशरथ कालीन अयोध्या

महाराज जी दशरथ के समय इस नगरी का विस्तार बारह योजन अर्थात् अड़तालीस कोस था। इसमें कोई शत्रु प्रवेश करके युद्ध में इसे जीत नहीं सकता था, अतः इसका नाम अयोध्या हुआ। इस नगरी को प्रथम महाराज इक्ष्वाकु ने बसाया था। सात मुक्तिदायिनी नगरियों में यह प्रथम नगरी है। अनादि सिद्ध वैकुण्ठ का ही एक भाग अयोध्या है। यहां पर महाराज इक्ष्वाकु के समय कोई नदी नहीं थी। उन्होंने यज्ञानुष्ठान करना चाहा, परन्तु जलयात्रा तथा अवभृथ स्नान कैसे करें? महाराज ने श्री गुरु वशिष्ठ जी से प्रार्थना की, उन्होंने कहा हे राजन्! आप धनुष-बाण लेकर रथ पर बैठकर उत्तराखण्ड में अवस्थित मान सरोवर पहुंचे, वहां का दिव्य जल भगवान् मत्स्य के नेत्रों का जल है। आप शर (बाण) द्वारा उसके भेदन करके यहां पर ले आवें। यह तुम्हारे रथ की लीक-शर का अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे आयेगा। शर के भेदन से तथा उसका अनुसरण करने के कारण उसे 'शरयु' कहेंगे। सर का भेदन करके लाने के कारण उसका नाम 'सरयू' भी पड़ेगा। यह कथा आनन्द रामायण के यात्रा काण्ड में आई है।

इस अयोध्या नगरी के चारों ओर नौ घेरे थे। (१) दशरथ के राजभवन के चारों ओर जल का घेरा, (२) दूसरा पक्की दीवार का घेरा, (३) शाल के वृक्षों की दीवार का, (४) चौथा कांटों का घेरा, (५) अग्नि का घेरा, (६) व्याघ्रों का, (७) घेरा सैनिकों का था जहां चारों ओर शतधनी लगी हुई थी। जो एक साथ सौ तथा हजार गोले छोड़ती थी, (८) कुत्तों का घेरा, (९) सर्पों का घेरा नगर में अनेक सुन्दर लम्बी-चौड़ी स्वच्छ सड़कें बनी हुई थीं।

उन पर चन्दन आदि का सुगन्धित जल छिड़क करके सुन्दर वस्त्र तथा सुगन्धित फूल बिछे रहते थे। राजमार्ग के दोनों ओर फलदार वृक्ष छाया करते थे। अति सुन्दर बाजार थे। अनेक प्रकार के यन्त्र तथा युद्ध के अस्त्रों-शस्त्रों के निर्माणकर्त्ता कारीगर रहते थे। अट्टारियों पर अनेक रंगों के झण्डे सुशोभित होते थे। नगर के प्रधान चारों मुख्य द्वारों पर सैनिकों का पहरा रहता था। राजाज्ञा प्राप्त किये बिना किसी भी अपरिचित व्यक्ति का प्रवेश नहीं था। नगरी देवराज इन्द्र की राजधानी अमरावती को मात करती

थी। चारों वर्णों तथा आश्रमों के लोग अपने वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण रूपेण पालन करते हुए रहते थे। सभी ब्राह्मण, वेदज्ञ, सन्तोषी, कर्मकाण्डी, ज्ञानी-ध्यानी थे। छोटी जाति के लोग उच्च वर्ण का सम्मान करते थे। कोई अहंकारी, कामी, क्रोधी, लोभी नहीं था। नगर में कोई चोर, डकैत, व्यभिचारी, वर्णसंकर, कृपण तथा मिथ्यावादी नहीं था। कोई धनहीन, आलसी प्रमादी नहीं था। नगर में सात मंजिल से कम कोई मकान नहीं था। सघन बस्ती थी। स्त्री-पुरुष पूर्ण शृंगार करते थे। पिता के आगे पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी। नगर के आठ कोने थे। राजमहल में रत्न जड़े हुए थे। भूमि समतल थी। अन्न धन प्रचुर मात्रा में था। वहां के ब्राह्मण भी दानशील अधिक थे। प्रतिग्रही नहीं थे। यजमान का आवश्यकता से अधिक कार्य करने के अनन्तर ही दान लेते थे।

उस समय की अयोध्या वीरों से वैसे ही भरी हुई थी, जैसे वनों में गुफाएं सिहों से भरी रहती हैं।

तीनों वर्णों के लोग त्रिकाल-सन्ध्या, अग्निहोत्र, सोमयाग का अनुष्ठान, पंचमहायज्ञों सहित करते थे। कोई ब्राह्मण आत्मज्ञान से रहित नहीं था। ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं था जो अंगों सहित चारों वेदों को न जानता हो। दण्डनीति चारों चरणों से युक्त थी। महाराज पक्षपात रहित, धर्म सहित राजनीति के ज्ञाता थे। प्रिय से प्रिय अपराधी को भी दण्ड मिलता था तथा अदण्डनीय शत्रु को भी दण्ड मुक्त किया जाता था। जो व्यक्ति जिस अंग से पाप करता था, उसका वह अंग काट दिया जाता था। चोर के हाथ तथा झूट बोलने वाले की जीभ काट दी जाती थी। सभी दीर्घ जीवी थे। सम्पूर्ण प्रजा राजभक्त थी। महाराज पुत्रवत् प्रजा का पालन करते थे। ऐसी सुख-समृद्धि से युक्त नगरी में महाराज दशरथ जी ने साठ हजार वर्ष तक शासन किया।

उस समय की अयोध्या से आज के नगरों भारत तथा राजा की क्या तुलना कर सकते हैं? हमारा तब से कितना पतन हो गया। भारत में पुनः वैसा समय लाने के लिए दण्ड नीति चारों पदों से युक्त होनी चाहिए, तब भारत वास्तव में भारत कहलाने के योग्य होगा। अयोध्या का विस्तार वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड में देख लें।

॥ त्रेतायुग खण्ड पांचवां अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ छठा अध्याय प्रारम्भ ॥

१४५. श्री भरद्वाज

भगवान् वृहस्पति के भाई उतथ्य के पुत्र भरद्वाज जी थे। इनकी भगवद् भक्ति लोक प्रसिद्ध है। भगवद् भक्ति के इन्हें आदि स्रोत कहें, तो अत्युक्ति न होगी। श्री रामायण जी की कथा का प्रचार तो इनके द्वारा ही हुआ। यह गंगा यमुना के परम पावन संगम पर प्रयाग राज में रहते थे।

''भरद्वाज मुनि वसहिं प्रयागा। तिनहिं राम पद अति अनुरागा॥''

प्रत्येक मकर में समस्त ऋषि मुनि कल्पवास करने आते थे और इनके आश्रम में आकर ठहरते थे। एक बार याज्ञवल्क्य ऋषि को इन्होंने आग्रहपूर्वक कुछ दिन के लिए रोक लिया। भगवान् की पावन कथा सुनने की इच्छा से उनकी विविधत् पूजा करके बोले–

''नाथ एक संसउ बड़ मोरे। कर गत वेद तत्त्व सब तोरे।
कहत सो मोहिं लागति बड़िलाजा। जौ न कहउं बड़ हो अकाजा।
एकु रामु अवधेस कुमारा। तिन कर चिरत विदित संसारा।
नारि विरह दुःखु लहेउअपारा। भयउ रोषु रन रावन मारा।''
प्रभु सोइराम कि अपर कोउ, जापि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्वज्ञ तुम कहहु विवेक विचारि॥

याज्ञवल्क्य जी सुनकर हंस पड़े। महामुनि भरद्वाज और उन्हें संदेह, यह सम्भव नहीं। जगत् के हित के लिए राम कथा सुनना चाहते हैं। जिससे सभी लोग राम कथा को बार-बार सुनें। अतः वे हंस कर बोले–

चतुराई तुम्हारि मैं जानी। चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हेहु प्रश्न मनहुं अति मूढ़ा।

सन् १९५२-५३ में पुरातत्व विभाग को भरद्वाज जी की भोजपत्र पर लिखी हुई दो पुस्तकें प्राप्त हुई थीं। जिनमें से एक वैमानिक शास्त्र था, जिसमें वायु यान के इंजन की

बनावट का सचित्र वर्णन था। वह विमान जल, स्थल तथा आकाश में चल सकता था। उस पर प्राचीन तथा आधुनिक किसी भी बम आदि का प्रभाव नहीं पड़ता था। दूसरी पुस्तक 'कृत्रिम वर्षा' सम्बन्धी थी। तब याज्ञवल्क्य जी ने समस्त कथा सुनाई। वहीं राम सुरसरि धारा रामायण प्रवाहित हुई। भगवान् श्री रामचन्द्र जी बनवास के समय सर्वप्रथम इन्हीं के आश्रम पर आये। इन्होंने प्रार्थना की कि १४ वर्ष यहीं पर निवास कीजिए। भगवान् ने कहा, यहां से अवध समीप है, रोज भीड़ लगी रहेगी। इनकी आज्ञा लेकर भगवान् इनके बताये हुए स्थल चित्रकूट पर चले गये।

भरत जी जब राम की खोज में आये, तो इन्होंने उनका ऐसा अद्‌भुत सत्कार किया कि वे आश्चर्य में पड़ गए। श्री राम से भी अधिक इन्होंने उनका सत्कार किया और स्पष्ट कह दिया–

"सुनहु भरत हम झूट न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं।
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन रामसिय दरसनु पावा।
तेहि फल कर फलु दरसु तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभागु हमारा॥"

भरत जी यह सुनकर लज्जित हो गये। मुनि ने उन पर अनन्त प्रेम दरसाया।

"राम ते अधिक राम कर दासा"

महामुनि भरद्वाज श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ऋषि थे। इनकी एक कन्या याज्ञवल्क्य को विवाही थी। दूसरी विश्रवा मुनि को जिनके कुबेर जी पुत्र हुए। यह अद्वितीय रामानुरागी थे।

१४६. दत्तात्रेय

अवधूत दत्तात्रेय महर्षि अत्रि के पुत्रों में से एक थे। अत्रि ने अपनी पत्नी अनुसूया के साथ बड़ी तपस्या के पश्चात् इन्हें पुत्र रूप में प्राप्त किया था। जब ब्रह्मा के छः पुत्र और दूसरे भी कई गृहस्थ धर्म का अवलम्बन न करके निवृत्त हो गये, तब उन्होंने अत्रि से प्रजा की सृष्टि करने के लिए कहा। अत्रि ने उनकी आज्ञा मानकर कर्दम प्रजापति तथा देवहूति की पुत्री, कपिल देव की बहन अनुसूया से विवाह किया। वे बड़ी ही

पतिव्रता थीं। रामवन गमन के अवसर पर उन्होंने सीता को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश किया। उनकी दृष्टि में अपने पति देव के अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं था।

''उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जगनाहीं॥''

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए, उत्तम सन्तान की सृष्टि करने की इच्छा से अत्रि अपनी धर्म पत्नी अनुसूया के साथ तपस्या करने लगे। अपने बड़े भाई सनत्सुजात से सांगोपांग मन्त्र रहस्य और उपासना पद्धति का ज्ञान प्राप्त करके इन्होंने बड़ी तीव्र साधना की। इनकी तपस्या और अनसूया के पातिव्रत्यसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर तीनों ही इनके सामने प्रकट हुए। महर्षि अत्रि तथा अनुसूया उस समय इस प्रकार ध्यान समाधि में मग्न थे कि इन्हें उनके आगमन का पता न चला। उन्होंने शिर स्पर्श किया। हाथ पकड़ कर खींचा। जोर से पुकारा, परन्तु इन्हें ब्रह्म ज्ञान नहीं हुआ। अन्तत: उन्होंने अन्तर में प्रवेश करके इन्हें जाग्रत किया। अपने सामने तीनों देवों को प्रत्यक्ष खड़ा देखकर इनके आनन्द की सीमा न रही। चरणों पर गिर पड़े, शरीर रोमांचित हो उठा। वाणी बंद हो गई। उठ न सके। उन्होंने अपने हाथों से उठाया इन पर अपने कमण्डलु का जल छिड़का। अब इन्हें चेतना आई। ये अंजलि बांधकर गद्गद कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे।

प्रभो, आप लोगों की महिमा अनन्त है। हमारे जैसे संसारासक्त, प्रजा की इच्छा रखने वाले और आत्म विमुख को दर्शन देकर आपने अनन्त कृपा की। हम आपकी क्या पूजा कर सकते हैं? हमारे पास है ही क्या? हम दोनों दम्पति अपने को आप के चरणों में समर्पित करते हैं। प्रभो हमें अपना लो। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने एक स्वर में कहा,

''महर्षि अत्रि और पतिव्रता अनुसूया हम तुम्हारी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हैं। हमें पहले ही पता है कि उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिए तुम दोनों तपस्या कर रहे हो। तुम दोनों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए हम तीनों ही तुम्हारे पुत्र रूप में प्रकट होंगे।'' इसके बाद दम्पति ने उनकी षोडशोपचार से पूजा की। वे अपने-अपने लोक को चले गये।

कुछ दिनों के बाद वे तीनों ही इनके घर पुत्र रूप में प्रकट हुए। शंकर के अंश से दुर्वासा, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा और विष्णु के अंश से दत्तात्रेय का जन्म हुआ। जिनकी

संकल्प शक्ति से जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय होते हैं वे ही त्रिदेव अत्रि अनुसूया की प्रेम के अधीन होकर उनके घर में साधारण बालकों की भांति खेलने लगे और ऋषि दम्पति उनकी लीला देख-देखकर अपना जीवन सफल करने लगे।

समय पर सब का उपनयन हुआ। सब ने विधिवत् गुरुकुल में रहकर वेदाध्ययन किाय। समावर्त्तन के पश्चात् दुर्वासा ऋषि हुए। इनका चरित अन्यत्र विस्तार से मिलेगा। चन्द्रमा गृहस्थ हुए। दत्तात्रेय जी तो तत्त्वज्ञान का उपदेश करने के लिए अवतीर्ण हुए थे। इसलिए उन्होंने सम्प्रदाय और गुरु मर्यादा की रक्षा करने के लिए सर्वज्ञ होने पर भी महर्षि ऋभु की शरण ग्रहण की। उन्होंने इन्हें सम्पूर्ण मन्त्र-रहस्य और उपासना की शिक्षा दी। तत्पश्चात् ये अत्रि के आश्रम के पास ही आकर रहने लगे। इन्हें बालकों के साथ खेलना बड़ा अच्छा लगता था, परन्तु उस समय भी वे आत्म-चिन्तन करते रहते। सभी बालक इनसे प्रसन्न रहते। इनकी सुन्दरता, मधुरता और शीलस्वभाव पर सभी मुग्ध थे, परन्तु उनके साथ रहने के कारण इनके योगाभ्यास में कुछ बाधा अवश्य पड़ने लगी।

एक दिन इन्होंने उनका संग छोड़ने की इच्छा की। केलते-खेलते ये एक तालाब में घुस गये और तीन दिन तक उसके बाहर नहीं निकले। यह उनके योग की एक सिद्धि थी, या यों कहें कि वे साक्षात् विष्णु ही थे, उनके लिए असम्भव ही क्या था, किन्तु सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह थी कि वे साथ खेलने वाले बालक तीन दिन तक उसी तालाब पर डटे रहे। बिना अन्न पानी के रहने पर भी उनका स्नेह कम नहीं हुआ। मगर ने खा लिया होगा। किसी ने जाकर उनके माता-पिता से यह शोक समाचार कह सुनाया, परन्तु वे उनका प्रभाव जानते थे, इसलिए वे जरा भी विचलित नहीं हुए। तीन दिन के बाद जब वे बाहर निकले, सब के सब अत्यन्त आनन्दित हुए सभी पूछने लगे, तुम भीषण तालाब में तीन दिन तक कैसे रहे। हम तो तुम्हारे वियोग से बड़े दुखी हो रहे थे। नींद नहीं आई। पानी तक नहीं पिया गया। हमारे मां-बाप ने हमें बुलाया भी, परन्तु हम नहीं गये। अब चलो खायें, पियें और मिलकर खेलें। उनकी बात सुनकर वे हंसने लगे। गूंगे की भांति हो गये, कुछ बोले नहीं। इनकी ऐसा दशा देखकर वे सब रोने गिड़गिड़ाने लगे। प्रार्थना करने लगे। दत्तात्रेय जी ने अपने मन में सोचा कि इसका

परिणाम तो उल्टा ही हुआ। कहां मैं इनका साथ छोड़ना चाहता था? कहां ये योग का प्रभाव देखकर और भी मुझे जकड़ लेना चाहते हैं। उन्होंने फिर उसी तालाब का रास्ता लिया, परन्तु वे बालक अब भी निराश नहीं हुए। तीन दिन के पश्चात् फिर दत्तात्रेय महाराज जी निकले। परन्तु इस बार विचित्र ढंग से सजकर बाहर निकले। अपने योगबल से झूठ-मूठ की एक सर्वांग सुन्दरी अनेकों भूषणों से विभूषित अप्सरा समान स्त्री को अपने वाम भाग में और मदिरा का घड़ा अपने दायें हाथ में लिए हुए अनेकों प्रकार की कुत्सित चेष्टा करते हुए प्रकट हुए।

उन्हें उस वेश में देखकर उन वैदिक संस्कार सम्पन्न ऋषि कुमारों का मन फिर गया। कोई कहता हमने अनजान में उससे मित्रता कर ली, वह तो बड़ा दुष्ट है। कोई कहता कि वे नागलोक से ही इस सुन्दरी को लाये होंगे। परस्पर खूब निन्दा करते। उसमें जो बुद्धिमान थे, वे यही कहते, "भैया, किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हम किसी के हृदय की बात नहीं जान सकते। बाह्य आचरण से अन्दर का पता लगाना कठिन है। दत्तात्रेय बड़े भारी योगी हैं। विष्णु के अवतार हैं। उनके पास स्त्री, मदिरा आदि कुछ नहीं है और न हो सकते हैं। वे सब तो योग बल से झूठ-मूठ ही उन्होंने बना रखे हैं। जिससे ये लोग उससे घृणा करें।"

बात थी भी यही। यह तो एक माया थी। कइयों ने इनकी इस लीला का रहस्य न समझकर अपनी पामरता का उन पर आरोप किया है। कई ऐसे भी थे, जिन्होंने भ्रमवश या विषयासक्ति के कारण उनके अनुकरण में अपने को उन्हीं वस्तुओं से युक्त कर लिया, परन्तु यह वास्तव में उनके नाम पर अपनी वासनाओं की पूर्ति ही है। उनके चरित्र में वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं है।

उन्होंने अलर्क, प्रह्लाद और यदु आदि को तत्त्वज्ञान का उपदेश किया था। उनके अनुसार, अपना जीवन बनाने वाले जिज्ञासु मुमुक्षुओं का परम कल्याण हो सकता है। इनका जीवन वृत्त मार्कण्डेय, स्कन्द पुराण तथा श्रीमद् भागवत् एकादश स्कन्ध में २४ गुरुओं की शिक्षा प्रद कथा आई है। आज भी वे अधिकारियों को दर्शन देते हैं। जन श्रुति है कि वे करवीर की (दक्षिण भारत) में भिक्षा मांगते हैं। गोदावरी तट पर भिक्षा करतेहैं तथा सह्य पर्वत पर शयन करते हैं।

कलिकाल में भगवान् आद्य शंकराचार्य जी की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए गिरि, पुरी, वन, अरण्य, पर्वत, सागर नाम वाले प्रशिष्यों को शंकराचार्य जी ने शाप दिया था, तब उन्होंने प्रार्थना की कि हमारा उद्धार कैसे होगा? ये सभी संन्यासी संन्यास से पतित हो चुके थे। तब आचार्य शंकर जी ने कहा, तुम अपना शरीर हिमालय पर्वत में गला दो। मार्ग में तुम्हें भगवान् दत्तात्रेय जी मिलेंगे। उनसे फिर संन्यास की दीक्षा लेकर तुम मुक्त हो जाओगे।

बत्तीस वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर भगवान् भाष्यकार हिमालय में इनकी गुफा में पहुंचे थे। इनसे वार्तालाप करते हुए, इनका हाथ अपने हाथ में लेकर वे ब्रह्मीभूत हुए।

कलि काल के जीवों का उद्धार करने के लिए देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवान् दत्तात्रेय पंचनद प्रदेश (पंजाब) में लाहौर के समीप तलवंडी नामक ग्राम में (ननकाना साहिब) में पिता कालूराम तथा माता तृप्ता के गर्भ से नानक देव के रूप में प्रकट हुए। यह बात भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व में कही गई है। इनका अवधूत गीता नामक वेदान्त का ग्रन्थ है। दत्त नाम से एक धर्म शास्त्र भी पाया जाता है। ब्राह्मणों में दत्त वंशीय ब्राह्मण इन्हीं के वंशज कहे जाते हैं। आप त्रेतायुग के आचार्य हैं–

''कृते तु भगवान् सत्यं त्रेतायां दत्तमेव च।
द्वापरे भगवान् व्यासः कलौ श्री शंकरः स्वयम्॥''

इति दत्तात्रेयोपाख्यानम्

॥ त्रेतायुग का छठा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सातवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१४७. महर्षि दुर्वासा

महर्षि दुर्वासा अनसूया अत्रि की तपस्या से शंकर के वरदान से अवतरित हुए थे। शिव पुराण में यह शंकर के सौ अवतारों में से एक हैं। इन्होंने दूब खाकर तपस्या की थी, इसलिए इनका दुर्वासा पड़ा। त्रेता में एक बार इन्होंने जल वायु का त्याग करके दस सहस्त्र वर्ष तक घोर तप किया। तदनन्तर साठ हजार शिष्यों को लेकर अन्न की इच्छा

से अयोध्या में श्री राम दरबार में पहुंचे। इनके महल में आने पर द्वारपाल ने सूचना दी। भगवान् राम ने सीता सहित इनकी अर्घ्य पाद्य आदि से यथोचित पूजा की। मार्ग में इन्होंने सोचा था कि श्री राम की कीर्ति के साथ मेरी भी कीर्ति हो। मैं ऐसा नाटक करूंगा, जिससे राम की कीर्ति में चार चांद लगेंगे। यह विचार करके अयोध्या आये थे। जब भगवान् पूजा कर चुके, तब आने का कारण पूछा, इन्होंने कहा, ''हे राम! आज मेरा दस हजार वर्ष का निराहार व्रत पूर्ण हुआ। मैं शिष्यों सहित तुम्हारे यहां पारण करूंगा। आप मुझे ऐसी भिक्षा दें, जो अग्नि, चिन्तामणि तथा कामधेनु से सिद्ध न हो। ऐसी भिक्षा मुझे एक मुहूर्त (४८ मिनट) में शिष्यों सहित प्राप्त हो। भिक्षा से पूर्व मैं अपने इष्ट देव शंकर जी का ऐसे पुष्पों से पूजन करना चाहता हूं, जिनको मृत्यु लोक में न किसी ने देखा हो। इतने समय में यदि दोनों वस्तुएं तुम दे सकता हो, तो हां कर दो। नहीं तो मना कर दो, मैं दूसरी जगह याचना करूंगा। यदि आपने वचन देकर समय पर वस्तुएं नहीं दी, तो मैं राज्य, परिवार, प्रजा, सेना सहित सम्पूर्ण अयोध्या को शाप देकर भस्म कर दूंगा।'' ऋषि के वचन सुनकर तीनों भाई, माताएं, सीता जी तथा मंत्रीगण अति दुखी हुए। श्री राम जी ने स्वीकृति दी। दुर्वासा जी स्नान सन्ध्योपासना के लिए सरयू तट पर चले गये। भगवान् ने स्वीकार कर लिया। एक शिष्य को गुप्तचर के रूप में वहीं छोड़ दिया। भगवान् ने तुरन्त ही एक पत्र देवराज इन्द्र के नाम लिखा उसमें सभी बातें लिखी थीं। अन्त में लिखा था, यदि पत्र मिलते ही तुम कल्प वृक्ष तथा परिजात दोनों को मेरे यहां तुरन्त न पहुंचाया, तो जिस बाण से मैंने रावण को मारा है, वही बाण तुम पर चलाया जाएगा। पत्र लिखकर बाण में पिरोकर इन्द्र की ओर छोड़ा, वह बाण इन्द्र की गोद में गिरा। पत्र निकलाते ही बाण लौट कर तर्कस में आ गया। पत्र पढ़कर गुरु जी से पूछा क्या करन ाचाहिए। उन्होंने कहा हे देवराज! राम साक्षात् महाविष्णु हैं। समुद्र मन्थन करने पर उन्हीं की कृपा से अमृत, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, अप्सराएं तथा दोनों वृक्ष प्राप्त हुए हैं। अतः उनका विशेषाधिकार है। अतः तुम्हें देना चाहिए, तुरन्त ही इन्द्र गुरु जी के साथ दोनों वस्तुएं को लेकर अयोध्या पहुंचे। भगवान् ने दोनों का यथोचित सत्कार किया। कल्पवृक्ष का विधिवत् पूजन करके भोजन के लिए प्रार्थना की। तुरन्त ही भोजन तैयार हो गया। भगवान् के पुष्प पूजन के लिए पुष्प उतारे। शिष्य छिप कर

यह सब लीला देख रहा था। जाकर गुरु जी को सूचना दी। गुरु जी ने शिष्यों सहित भिक्षा की। फिर राम सहस्त्र नाम स्तोत्र से श्री राम की स्तुति की। जो कि कल्प वृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान थे। क्षमा मांगते हुए दुर्वासा ने कहा कि, "दुर्वासा के कारण कल्प वृक्ष श्री राम को प्राप्त हुआ, आप की इस प्रकार कीर्ति बढ़ाने के उद्देश्य से मैंने यह काम किया है।"

एक बार अम्बरीष राजा के यहां जाकर भी विपत्ति खड़ी कर दी, किन्तु भक्त के आगे तपस्वी के तप का अभिमान नष्ट हो जाता है। एक बार दुर्योधन के बहकाने से वन में पाण्डवों के पास जाकर साठ हजार शिष्यों सहित उस समय पहुंचे थे जब भोजन समाप्त हो चुका था। द्रौपदी ने भगवान् को पुकारा। वे आये तथा द्रौपदी से भोजन मांगा। द्रौपदी ने कहा कि इसी संकट की निवृत्ति के लिए तो आप को बुलाया है। उन्होंने कहा भोजन है, तुम झूठ बोलती हो पात्र लावो। वे पात्र लाई उसमें शाक की एक पत्ती लगी थी। भगवान् ने 'विश्वात्मा तृप्यताम्' मंत्र पढ़कर खा लिया। उससे त्रिलोकी तृप्त हो गई। दुर्वासा का शिष्यों सहित पेट भर गया, वे फिर लौटकर नहीं आये।

कुन्ती देवी ने भी विवाह से पूर्व इनकी सेवा करके देवताओं को बुलाने वाली विद्या प्राप्त की थी। वे भगवान् श्री कृष्ण के भी गुरु थे। एक बार गोपियां वर्षा ऋतु में गुरु दर्शन के लिए यमुना पार दुर्वासा जी के आश्रम को भोजन लेकर चलीं, यमुना जी में बाढ़ आई हुई थीं। गोपियों ने भगवान् से कहा, "यमुना कैसे पार करें?" उन्होंने कहा कि यमुना जी से कहना कि "यदि श्री कृष्ण नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, तो मुझे मार्ग दे दो।" ऐसा ही किया। यमुना जी ने मार्ग दे दिया। पार जाकर सभी ने दुर्वासा जी को भोजन कराया। सभी का भोजन एक ही ग्रास में खा गये। उनको परमाश्चर्य हुआ। जब जाने लगीं, तो यमुना जी पूर्ववत् थीं। ऋषि से कहा, "यमुना जी बहुत गहरी है कैसे पार करें?" उन्होंने कहा, तुम आई किस प्रकार थीं। तो उन्होंने बताया कि आप के शिष्य ने कहा था, "यदि मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी हूं, तो यमुना जी मार्ग दे दें।" हमें मार्ग मिल गया। गुरु जी ने कहा कि अब कहना कि "यदि गुरु जी निराहारी है, तो यमुना जी मार्ग दे दें।" गोपियों ने यही कहा। जल कम हो गया, वे पार हो गईं। दुर्वासा जी के भय के मारे तो कुछ कह नहीं पाईं। भगवान् से कहा, तुम गुरु चेले की माया कोई नहीं जान सकता।

भगवान् ने पुन: कहा, ''मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करने वाला यति निराहारी है। अथवा उन्होंने तुम सबका सभी प्रकार का भोजन किया, उनकी रसना ने खट्टे-मीठे आदि रस का आस्वादन करने पर भी मन की आसक्ति न होने से स्वाद का अनुभव ही नहीं हुआ। अत: गुरु जी निराहारी ही हैं। मेरा आत्म मैथुन, आत्म क्रीड़ा, आत्मरति होने के कारण मैं ब्रह्मचारी हूं। अर्थात् जिसकी चराचर प्राणियों में आत्मबुद्धि है, वह ब्रह्मचारी है।''

एक बार द्वारका में भगवान् ने गुरु जी को चातुर्मास्य कराया। भिक्षा के समय भोजन नहीं करते थे। आधी रात में बच्चों की तरह भोजन के लिए चिल्लाते थे। फिर कई बार दिन या रात्रि में महलों में आग लगा देते थे। भगवान् सब सहन करते रहे। एक दिन अर्द्ध रात्रि में ही खीर का भोजन मांगा। थोड़ा सा चखने के बाद शेष खीर को रुक्मिणी सहित सारे शरीर में लगाने की आज्ञा दी। गुरु या ब्राह्मण की जूठ को पैर से नहीं छूना चाहिए। धर्मशास्त्र की इस आज्ञा के कारण पैर में नहीं लगाया। उन्होंने शाप दे दिया कि तुम्हारे पैर में छेद हो जाए। खीर लगे हुए दोनों को रथ में जोत कर घुमाया, किन्तु दोनों ने प्रसन्नता से सहन किया तब प्रसन्न होकर दुर्वासा जी ने आशीर्वाद दिया। इस चरित्र से भगवन् ने गुरु सेवा का आदर्श उपस्थित किया।

॥ इति त्रेतायुग खण्ड का सातवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ आठवां अध्याय आरम्भ ॥

१४८. विश्वमित्र

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

महर्षि विश्वामित्र के समान सतत लगन के पुरुषार्थी ऋषि शायद ही कोई और हों, इन्होंने अपने पुरुषार्थ से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया। इनकी माता के लिए बनाई गई खीर में ब्रह्म तेज का आधान किया था। अत: विश्वामित्र जन्म से ही ब्राह्मण सिद्ध होते हैं। माता से जो क्षात्रत्व आया था। वह भी साठ हजार वर्ष के गायत्री जप से दूर हो गया था। पुत्रेष्टि यज्ञ में दिव्य पायस में ही जीव रहता है। यह सन्तति स्त्री-पुरुष के

संयोग से उत्पन्न नहीं होती। राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने, सप्तर्षियों में अग्रगण्य हुए और देव माता गायत्री के दृष्टा ऋषि हुए।

प्रजापति के पुत्र कुशिक हुए। इन्हीं के वंश में महाराज गाधि हुए, उन्हीं के पुत्र महाराजा विश्वामित्र हैं। कुशिक वंश में पैदा होने से इन्हें 'कौशिक' कहते हैं। पहले ये एक बड़े धर्मात्मा प्रजापालक राजा थे। एक बार सेना साथ लेकर ये जंगल में शिकार के लिए गये। वहां पर भगवान् वशिष्ठ ने इनकी कुशल क्षेम पूछी और सेना सहित आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने की प्रार्थना की।

विश्वामित्र जी ने कहा, "भगवन्! हमारे साथ हजारों लाखों सैनिक हैं, आप अरण्यवासी ऋषि हैं, आपने जो हमें फल फूल दिए, उसी से हमारा सत्कार हो चुका है। हम इसी सत्कार से सन्तुष्ट हैं।"

महर्षि वशिष्ठ ने उनसे बहुत आग्रह किया, उनके आग्रह से इन्होंने सेना सहित आतिथ्य ग्रहण करने की स्वीकृति दे दी। वशिष्ठ जी ने अपने योगबल से कामधेनु की सहायता से समस्त सैनिकों को भांति-भांति के पदार्थों से खूब सन्तुष्ट किया। कामधेनु के ऐसे प्रभाव को देखकर विश्वामित्र जी चकित हो गये। उनकी इच्छा हुई कि यह धेनु हमें मिल जाए। उन्होंने इसके लिए भगवान् वशिष्ठ से प्रार्थना की। वशिष्ठ जी ने कहा, "इसी के द्वारा मेरे यज्ञ-याग, अतिथि सेवा आदि सब कार्य होते हैं, इसे मैं नहीं दूंगा।" इस पर विश्वामित्र जी जबरदस्ती कामधेनु को ले चले। वशिष्ठ जी सब चुपचाप शान्तिपूर्वक देखते रहे। कामधेनु ने आज्ञा चाही, कि वह अपनी रक्षा सवयं कर ले। तब उन्होंने स्वीकृति दे दी। कामधेनु ने अपने प्रभाव से लाखों सैनिक पैदा किए। विश्वामित्र जी की सेना भाग गई। वे पराजित हो गये। इससे उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने कहा, "क्षत्रिय बल, शारीरिक बल को धिक्कार है, ब्रह्म बल ही सच्चा बल है।" यह सोचकर उन्होंने राजपाट छोड़ दिया और घोर तपस्या करने लगे। तपस्या में भांति-भांति के विघ्न होते ही हैं। सबसे पहले काम के विघ्न हुए। मेनका अप्सरा ने उनकी तपस्या में विघ्न डाला, जब उन्हें होश हुआ तो पश्चाताप करते हुए फर जंगल में चले गये। वहां जाकर घोर तपस्या में लीन हो गये। काम के बाद क्रोध ने विघ्न डाला। त्रिशंकु राजा को गुरु

वशिष्ठ का शाप था, आपने भगवान् वशिष्ठ के वैर को याद करके उसे यज्ञ कराने के लिए कह दिया। सभी ऋषियों को बुलाया। सब ऋषि उनके तप के प्रभाव को सुनकर आ गये, किन्तु भगवान् वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये। इस पर क्रोध के वशीभूत होकर इन्होंने उन सब को मार डाला। इतने पर भी वशिष्ठ ने उससे कुछ नहीं कहा। तब तो उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। ओहो! यह तो मेरी तपस्या में बड़ा विघ्न हुआ। तपस्वी को क्रोध करना घोर पाप है। वे सब छोड़कर फिर तपस्या में रत हो गये। बहुत दिन की घोर तपस्या के पश्चात् उन्हें बोध हुआ कि "काम और क्रोध की तपस्या में बड़े विघ्न हैं। जिन्होंने काम, क्रोध को जीत लिया, वही महर्षि हैं, उसे ही सच्चा ज्ञान है। मैंने भगवान् वशिष्ठ का कितना अनिष्ट किया। उनकी कामधेनु को भी जबरदस्ती लेने लगा। तब भी वे चुप रहे। उनके पुत्रों को मार दिया, तब भी वे कुछ नहीं बोले। मुझ में यही दोष है, मैं भी वैसा ही बनूंगा। अब काम-क्रोध के वशीभूत न हूंगा। ऐसा निश्चय करके वे काम-क्रोध को जीतकर बड़ी तत्परता से तप करने लगे।"

उनके घोर तप से भगवान् ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए। वे इनके पास आये और वरदान मांगने को कहा, इन्होंने कहा, "यदि आप मुझे योग्य समझें तो ब्रह्मर्षि बनने का आशीर्वाद दें और स्वयं भगवान् वशिष्ठ अपने मुंह से मुझे ब्रह्मर्षि कह दें।"

इनकी तपस्या से वशिष्ठ जी पहले ही प्रसन्न हो चुके थे। उन्हें पता चल चुका था कि विश्वामित्र जी ने तपस्या के प्रभाव से काम-क्रोध को जीत लिया है। इसलिए ब्रह्मा जी के कहने पर उन्होंने बड़ी ही आदर से विश्वामित्र जी को ब्रह्मर्षि की उपाधि दी। उन्हें गले से लगाया, उनके तप की सच्ची लगन की, सतत उद्योग की प्रशँसा की और सप्तर्षियों में उन्हें स्थान दिया।

उसी के प्रभाव से जगत्पूज्य हुए। दशरथ जी के यहां से भगवान् श्री राम को ले आये, उन्हें सब प्रकार की विद्याएं दीं। मिथिला ले जाकर श्री सीता जी से विवाह कराया और अन्त में त्रैलोक्य को कंपाने वाले रावण का वध कराया। महर्षि विश्वामित्र का समस्त जीवन तपस्या और परोपकार में ही व्यतीत हुआ।

॥ त्रेताखण्ड का अष्टम अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ नौवां अध्याय प्रारम्भ ॥

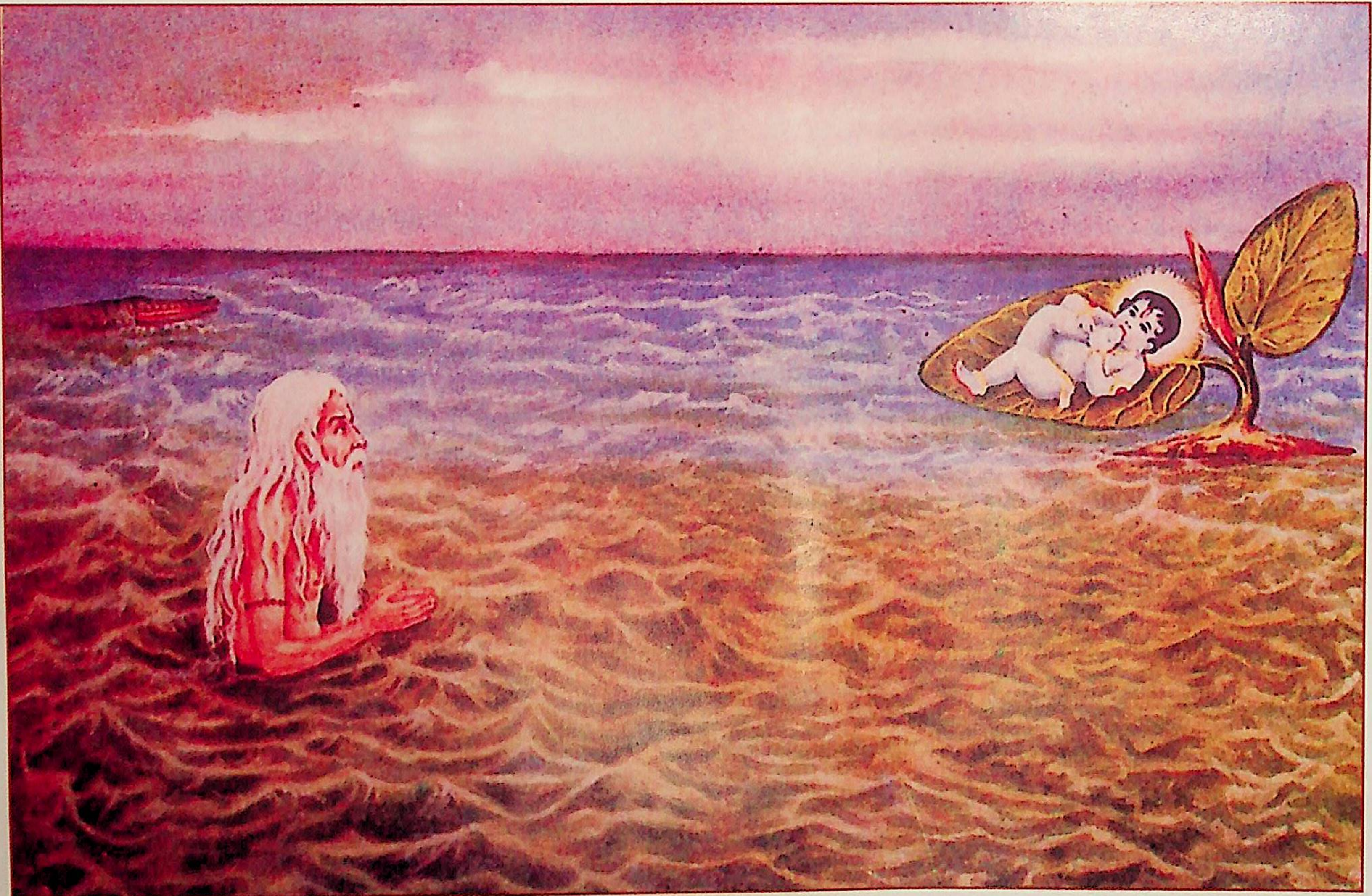
१४९. मार्कण्डेय

महर्षि मार्कण्डेय मुनि महर्षि मृकण्डु के पुत्र थे। यह भृगुकुल में उत्पन्न हुए थे। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने पर यह ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके वेदाध्ययन करने लगे और वेद में पारंगत होकर तप और स्वाध्याय में लग गये। यह ब्रह्मचारीवेश में रहकर अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मा में श्री हरि का पूजन करने लगे। वे प्रातः सायं भिक्षा मांगकर लाते और गुरु को अर्पण करके उनकी आज्ञा से मौन होकर एक समय भोजन करते थे। गुरु की आज्ञा न मिलने पर यह किसी-किसी दिन निराहार रह जाते थे। इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने दस करोड़ वर्ष पर्यन्त श्री हरि की आराधना करके दुर्जेय काल को भी जीत लिया। उनके इस प्रकार मृत्यु को जीत लेने पर ब्रह्मा, शिव, दक्ष, भृगु और नारदादि को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर तथा इन्द्रिय जय के द्वारा अन्तःकरण को रागादि दोषों से रहित कर, भगवान् अधोक्षज का ध्यान करते हुए मुनि को छः मन्वन्तर (१७०४ युग) का काल बीत गया। वैवस्वत नामक सातवें मन्वन्तर में (इस वर्तमान मन्वन्तर में) 'पुरन्दर' नामक इन्द्र ने इस भय से कि कहीं यह मेरे पद को न छीन लें, इनके तप में विघ्न करने का निश्चय किया। उसने इन्हें तप से डिगाने के लिए गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव, बसन्त ऋतु, मलयानिल तथा लोभ और मद को भेजा। यह सब हिमालय. के उत्तर की ओर पुष्प भद्रा नदी के तट पर अवस्थित मुनि के आश्रम पर पहुंचे। सब लोग मिलकर ध्यान को भंग करने की चेष्टा करने लगे। परन्तु इन सब के प्रयत्न भाग्य हीन के उद्योग की भंति सर्वथा निष्फल हो गये और सब मुनि के तेज से जलने लगे। अन्ततः जिस प्रकार किसी विषधर सर्प को छोड़कर बालक भय से पीछे हट जाते हैं। उसी प्रकार से इन्द्रदूत निराश होकर वहां से लौट गये। इन्द्र उन सब को हतप्रभ एवं म्लान मुख देखकर तथा उनसे ब्रह्मर्षि का प्रभाव सुनकर परम विस्मित हुए। ऋषिके तप से प्रसन्न होकर भगवान् श्री हरि उन पर अनुग्रह करने के निमित्त नर नारायण के रूप में उनके सामने प्रकट हुए।

उन तपो मूर्ति ऋषि प्रवरों को देखते ही मुनि उनके चरणों में लोट गये और उनकी स्तुति करने लगे। भगवान् नारायण बोले, ''हे ऋषि श्रेष्ठ! तुम्हारी भक्ति से हम अत्यन्त

प्रसन्न हुए हैं। अतः तुम हमसे इच्छित वर मांगो।'' ऋषि बोले, ''भगवन्! आपने कृपा करके मुझे अपने सुर-मुनि दुर्लभ दर्शन से कृतार्थ किया, इससे बढ़कर मैं कौन सा वर आपसे मांगू? तथापि मेरी इच्छा है कि जिस आपकी माया से यह सत् वस्तु भेद युक्त प्रतीत होती है, उस माया को मैं देखना चाहता हूं।'' नर-नारायण 'तथास्तु' कहकर बद्रिकाश्रम को चले गये। इधर ऋषि यह सोचते हुए कि उस माया का दर्शन मुझे कब होगा, अपने आश्रम में ही रहकर अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, भूमि, वायु, आकाश और आत्मा में तथा अन्यत्र सब जगह सर्वव्यापी श्री हरि का ध्यान करते हुएमानसिक उपचारों से उनका पूजन करने लगे।

सायं काल का समय है। मुनि नदी तट पर सन्ध्या कर रहे हैं। इतने में वे क्या देखते हैं कि अकस्मात् वायु बड़े जोर से चलने लगी। उस प्रचण्ड वायु के साथ ही आकाश में भयानक मेघ घुमड़ आये और उनमें बिजली की चमक के साथ कड़कड़ाहट शब्द होने लगा। देखते ही मूसलाधार वृष्टि शुरू हो गई। इधर चारों समुद्र बड़े प्रचण्ड वेग के साथ भूमण्डल को ग्रास करते हुए दिखाई देने लगे और बात की बात में सर्वत्र जल ही जल हो गया। सप्तद्वीप, नवखण्ड तथा सप्त कुलाचलों सहित समस्त पृथ्वी मण्डल ही नहीं, अपितु आकाश, स्वर्ग, तारागण और दिशाओं सहित सारी त्रिलोकी जल मग्न हो गई। उस अनन्त महार्णव में अकेले मार्कण्डेय ही रह गये। वे जटाओं को बिखेर कर बावले और अन्धे के समान इधर-उधर भटकने लगे। बड़े-बड़े मगर उनके देह को नोचने लगे तथा वायु के प्रबल झकोरों एवं उत्ताल तरंगों के थपेड़ों से उनका शरीर जर्जर हो गया। इधर भूख प्यास उन्हें अलग सताने लगी। सर्वत्र अंधकार छा जाने के कारण उन्हें कुछ नहीं सूझता था। उन्हें कभी शोक होता, कभी मोह होता, कभी सुख की अनुभूति होती और कभी मृत्यु के समान कष्ट होता। इस प्रकार विष्णु की माया से मोहित हुए मुनि को उस समुद्र में भ्रमण करते हुए दस नील शंख (१,००,००,००, ००,००,००,००) वर्ष बीत गये। इस बीच में उस महान् जलराशि के किसी कोने में पृथ्वी का कुछ भाग दिखलाई देने लगा और उस पर फलों और पत्तों से लदा हुआ बड़ का एक छोटा सा पौधा दिखाई दिया, साथ ही उस बड़ के ईशान कोण की शाखा के एक पर्णपुट (दोने) में सोया हुआ एक तेजस्वी बालक दीख पड़ा। उसके प्रकाश से



मार्कण्डेय मुनि



सभी दिशाएं आलोकित हो उठीं। उसका मरकत मणि के सदृश श्याम वर्ण, शोभायमान मुखमण्डल, शंख के समान बल पड़ी हुई ग्रीवा, विशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और धनुष के समान भौंहे मन को मोह लेती थीं, उनके दोनों कानों में दाड़िम के फूल खोसे हुए थे। वह अपने सुन्दर हाथों से अपना चरण पकड़ कर उसे चूस रहा था। ''करारविन्देन पदारविन्दं, मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्। वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि।'' उस मनोहर मूर्ति बालक को देखकर मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके दर्शन मात्र से उनकी सारी व्यथा दूर हो गई और मारे आनन्द के उन्हें रोमांच हो गया। वे खिसक कर उस बालक के समीप चले गये। ज्यों ही वे उसके समीप गये, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस बालक के श्वास के साथ वे उसके उदर के भीतर मच्छर की भांति खींचे चले जा रहे हैं। थोड़ी ही देर में उन्होंने अपने को उस बालक के उदर के भीतर पाया। वहां उन्होंने सारे जगत् को उसी रूप में पाया, जिस रूप में उन्होंने प्रलय के पूर्व उसे बाहर देखा था। यह सब दृश्य देखकर उन्हें परम विस्मय हुआ।कुछ क्षण के अनन्तर वे उसी बालक के श्वास के द्वारा प्रेरित होकर बाहर निकल आये और पुनः उसी प्रलय समुद्र में जा पड़े। बाहर निकल कर उन्होंने बालक को उसी अवस्था में अपनी ओर प्रेम पूर्ण कटाक्षों से देखते हुए पाया। उसकी मन्द मुस्कान से आकर्षित होकर वे उसके समीप जाकर उसे आलिंग्न करना ही चाहते थे कि वे योगाधिपति बाल वेशधारी भगवान् अन्तर्धान हो गये। उनके अन्तर्धान होते ही वह बढ़का वृक्ष और प्रलय समुद्र सारा का सारा क्षण भर में विलीन हो गया और मुनि अपने आश्रम में पूर्ववत् स्थिर हो गये। उन्होंने मन ही मन नारायण की माया को प्रणाम किया और हृदय से उन महेश्वर की शरण हो गये।

एक समय मुनि समाधि लगाये अपने आश्रम में बैठे थे। इतने में देवाधिदेव भगवान् शंकर जग जननी पार्वती के साथ नन्दी पर सवार होकर आकाश मार्ग से उधर की ओर निकले। मुनि को शान्त भाव से बैठे देखकर पार्वती जी भगवान् शंकर से बोलीं, ''भगवन् ये कोई महातपस्वी मुनि मालूम होते हैं। इन्हें सिद्धि प्रदान कीजिए, क्योंकि सारी तपस्याओं को सिद्ध करने वाले आप ही हैं।'' शंकर बोले, ''हे पार्वती ये मार्कण्डेय मुनि भगवान् पुरुषोत्तम के बड़े भक्त हैं। अतएव ये तप के द्वारा कोई सिद्धि

नहीं चाहते। अधिक क्या कहें इन्हें मोक्ष की भी परवाह नहीं, सांसारिक सुखों की तो बात ही क्या है? तथापि हे पार्वति, हम चलकर थोड़ी देर इनसे वार्तालाप करें, क्योंकि साधु समागम से बढ़कर संसार में कोई लाभ नहीं है।'' यह कहकर जगन्नियन्ता भगवान् शंकर मुनि के समीप गये। किन्तु मुनि की वृत्तियां ब्रह्म में लीन होने के कारण उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया था, अतएव उन्हें जगदात्मा शिव पार्वती के आने का पता नहीं लगा। यह देखकर भगवान् शंकर अपनी योग माया के प्रभाव से मुनि की हृदय गुहा में प्रविष्ट हो गये। मुनि ने देखा कि उनके हृदय में एकाएक पीली जटाओं वाली, त्रिशूल, धनुष-बाण तथा तलवार, ढाल से सुसज्जित, शरीर पर व्याघ्र चर्म लपेटे, रुद्राक्ष माला, डमरू, नरकपाल और फरसा धारण किये, तीन नेत्र और दस भुजाओं वाली मूर्ति प्रकट हो गई। इस विकराल मूर्ति को हृदय स्थित देखकर मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ और इसी आश्चर्य में उनकी समाधि टूट गई। मुनि ने आंख खोलकर देखा तो सामने भगवान् रुद्र पार्वती सहित अपने गणों को लिए खड़े हैं। मुनि ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और पार्वती सहित उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की। उनकी पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर बोले, ''हे मुने! हम तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हैं, अतः हमसे इच्छित वर मांगो। ब्रह्मा, विष्णु और मैं तीनों ही वर देने वालों में श्रेष्ठ हैं। तुम्हारी तरह जो लोग हम तीनों को समान भाव से भक्ति करते हैं तथा जो शान्त, निःसंग, निर्वैर, प्राणिमात्र के प्रति दया करने वाले और सर्वत्र समदृष्टि रखने वाले हैं। उनकी इन्द्रादि लोकपाल ही नहीं, अपितु हम तीनों भी वन्दना और पूजा करते हैं, क्योंकि आप लोग हम तीनों में, अपने में तथा जगत् के अन्य प्राणियों में अणु मात्र भी भेद नहीं देखते। अतएव हम लोग आप जैसे ब्राह्मणों का भजन किया करते हैं। तीर्थ और देवता तो चिरकाल पर्यन्त सेवा करने पर फल देते हैं; किन्तु आप जैसे साधु पुरुष तो दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं। जो तुम्हारी भांति चित्त को एकाग्र करके तप, स्वाध्याय और संयम में रत रहते हैं, उन ब्राह्मणों को हम सदा नमस्कार किया करते हैं। आप सदृश महानुभावों के दर्शन अथवा नाम सुनने मात्र से ही पातकी और चाण्डाल भी शुद्ध हो जाते हैं। फिर जिन्हें आप लोगों के साथ सम्भाषण आदि का सौभाग्य प्राप्त होता है उनकी तो बात ही क्या है।''

भगवान् शंकर के इन वचनों को सुनकर ऋषि गद्गद् हो गये। बोले, ''भगवन् मैं तो आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ हो गया और वरदान क्या मांगू? तथापि आप से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी भगवान् अच्युत और उनके भक्तों में तथा आप में अनन्य भक्ति हो।'' शंकर बोले ''हे विप्रवर! तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो। इस कल्प के अन्त तक तुम्हारी कीर्ति अटल रहेगी और तुम अजर, अमर होकर रहोगे। तुम्हें त्रिकाल विषयक ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और पुराणों का आचार्यत्व प्राप्त होगा।'' यह कहकर भगवान् शंकर वहां से चले गये और महामुनि मार्कण्डेय योग की महान् सामर्थ्य तथा भगवान् जनार्दन की एकान्त भक्ति प्राप्त कर भूलोक में विचरने लगे और अब भी उसी प्रकार विचरते हैं। वे लोक में चिरंजीव के नाम से विख्यात हुए।

वृहन्नादीय पुराण के अनुसार महर्षि मृकण्ड के तप से प्रसन्न होकर भगवान् नारायण ने ही पुत्र रूप में उनके यहां जन्म ग्रहण किया था।

प्रणाम की महिमा

मार्कण्डेय पुराण में इनके सम्बन्ध में कहा है कि इनकी आयु केवल सात वर्ष की थी। माता-पिता को चिन्ता हुई। मनुस्मृति में प्रणाम करने वाले की आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि कही है। इन्होंने माता-पिता को प्रतिदिन प्रणाम करना प्रारम्भ किया और अपने से बड़ों तथा साधु सन्तों को प्रणाम करते थे और वे 'आयुष्मान्भव' का आशीर्वाद देते थे। जब सातवां वर्ष लगने वाता था। तब यमराज आये उनके भी चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने भी यही आशीर्वाद दिया। वे ब्रह्मा जी के पास ले गये। उन्होंने भी यही आशीर्वाद दिया। यमराज ने कहा आपने तो इनकी आयु सात वर्ष की लिखी है फिर यह आयुष्मान् कैसे होंगे। तब उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, इनकी आयु मेरे सात दिनों (कल्पों) की होगी। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रणाम से आयु वृद्धि होती है।

इन्होंने क्रोष्टी नामक शिष्य को मार्कण्डेय पुराण सुनाया था तथा वन में भ्रमण करते हुए धर्म राज युधिष्ठिर को रामायण (रामोपाख्यान) सुनाया था। परीक्षित की मृत्यु के बाद इन्होंने शुकदेव जी से कल्कि पुराण सुना था।

॥ त्रेताखण्ड का नवम् अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ दसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१५०. परम गुरु भक्त कौत्स

त्रैतायुग में जिस समय अयोध्याय में सूर्य वंशीय महाराज रघु राज्य कर रहे थे। उसी समय वरतन्तु नामक ऋषि के आश्रम में कौत्स नाम के ब्रह्मचारी भी तत्परता से गुरु सेवा करते हुए वेदाध्ययन करते थे। जब उनका वेदाध्ययन पूर्ण हुआ, तो उन्होंने गुरु चरणों में दक्षिणा का प्रार्थना की। गुरु जी जानते थे, वह अत्यन्त निर्धन बालक है, मुझे दक्षिणा क्या देगा। इसने मनसा-वाचा-कर्मणा मेरे अनुकूल मेरी सेवा की है। उस समय विद्या महंगी नहीं थी, परन्तु अधिकारी के प्रति दी जाती थी। अतः गुरु जी ने कहा मुझे कुछ नहीं चाहिए। उनके मना करने पर भी शिष्य ने कहा, ''गुरु दक्षिणा के बिना मैं गुरु ऋण से उऋण नहीं हो सकता।'' उनका विशेष आग्रह देकर गुरु जी ने कुपित होते हुए कहा, ''तुमने मुझ से चौदह विद्याएं पढ़ी हैं। अतः मुझे चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएं दो।'' यह सुनकर शिष्य परम चकित हुआ। गुरु जी को प्रणाम करके महाराज रघु के भवन में पहुंचा। रघु जी अनेक बाद दिग्विजय कर जीते हुए धन से अनेकों यज्ञों में धन ब्राह्मणों को दान कर चुके थे। उनके पास कुछ नहीं था। जो भी याचक आता था, इच्छित वस्तु प्राप्त करके जाता था। उन्होंने जीवन में प्रजा के धन से एक पैसा भी नहीं लिया था। यह महाराज दशरथ के पितामह थे। अपने हाथ से कपड़ा बुनकर परिवार का भरण पोषण करते थे। कोई दास दासी नहीं था।

जिस समय ब्रह्मचारी कौत्स उनके पास पहुंचे, वे मिट्टी के पात्र में भोजन कर रहे थे। उन्हें देखकर ब्रह्मचारी उलटे पैर लौट पड़े। हाथ के संकेत से महाराज ने रोका। आचमन करने के अनन्तर प्रणाम किया तथा आने व लौटने का कारण पूछा, ब्रह्मचारी जी ने सब बता दिया। महाराज ने अयोध्या में घोषणा करवा दी कि, ''नगर में जिस धनी के पास जितना स्वर्ण हो, मेरे पास ले आवे। राजाज्ञा से यथा शक्ति स्वर्ण आने लगा। ढाई तीन करोड़ के लगभग स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त हुईं। महाराज ने विचार करके देवराज इन्द्र पर आक्रमण किया। जब महाराज रघु दस वर्ष के थे, तभी इन्द्र इनसे हार गये थे। इन्द्र को बन्दी बनाकर पिता दिलीप के पास ले आये। दस वर्ष के बाद पिता पुत्र ने समयानुसार वर्षा का वरदान लेकर मुक्त किया था।''

अतः इन्द्र भयभीत हो गये। देव गुरु बृहस्पति सहित इनका सम्मान किया। इनके साथ कुबेर के पास पहुंचे कुबेर को इन्द्र ने स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की आज्ञा दी। ब्रह्मचारी कौत्स गिनगिन कर बोरियों में भरने लगे। जब चौदह करोड़ पूरी हो गईं, तो इन्होंने रघु जी से कहा, ''मुझे गुरु जी को देने के लिए इतनी ही चाहिए, अधिक की आवश्यकता नहीं।'' महाराज ने कहा, ''यह सब तुम्हारी हैं। मेरा इनमें कुछ भी अधिकार नहीं है।'' दोनों में विवाद हुआ। अन्ततोगत्वा शेष मुद्राओं को जब दोनों में से किसी ने नहीं लिया। तब इन्द्र ने कुबेर को दे दीं। दोनों की निस्पृहता के सम्बन्ध में महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में लिखा है–

''जनस्य साकेत निवासिनस्तौ, द्वावप्यभूता विभनन्द्यसत्वौ।
गुरु प्रदेयाधिक निस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थि कामादधिक प्रदश्च॥''

उस समय साकेत अयोध्या निवासी लोगों ने वहां दोनों अभूत पूर्व वन्दनीय महापुरुषों को देखा। जिसमें एक था गुरु को देने से अधिक धन न देने वाले निस्पृह गुरु भक्त याचक कौत्स तथा दूसरे थे याचक की कामना से अधिक देने वाला महाराज रघु।

इसके पश्चात् महाराज रघु ने ब्रह्मचारी के गुरुकुल में खच्चरों ऊंट आदि द्वारा वह धन राशि पहुंचा दी। शिष्य को सफल मनोरथ देखकर अपने चरणों में गिरे हुए कौत्स को उन्होंने हृदय से लगाया और अनेकों आशीर्वाद दिये। उन्होंने धन ढोने वाले अनुचरों से कहा मैं निर्जन वन में रहता हूं। यहां से भील आदि धन लूट लेंगे। अतः धरोहर के रूप में महाराज के पास ही ले जावो। मैं सम्पूर्ण पृथ्वी की तीर्थ यात्रा के अनन्तर गृह त्याग करूंगा। उसमें यह धन विद्वान् ब्राह्मणों को दान करूंगा। अनुचरों ने ऐसा ही किया, तीर्थ यात्रा से लौटने पर महर्षि वरतन्तु जी ने वाचस्पत्य यज्ञ में सम्पूर्ण धन लगा दिया। उन्होंने अपने पास एक पैसा भी नहीं रखा।

इस प्रकार के हमारे प्राचीन भारत में गुरु भक्त शिष्य, परोपकारी गुरु तथा सर्वस्व दान करने वाले आदर्श विशाल हृदय राजा होते थे।

इनके चरित्र से हमें निष्कामता, त्याग, गुरु सेवा तथा दान की शिक्षा प्राप्त होती है।

(श्री रघुवंश महाकाव्य तथा कृत्तिवासरामायण पर आधारित)

॥ इति त्रेता खण्ड का दशवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ ग्यारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१५१. अष्टावक्र

प्रधान पुरुष व्यक्त कालानां परमं हि यत्।
पश्यन्ति सूरयः शुद्धास्तद् विष्णोः परमं पदम्॥

भगवान् अष्टावक्र के सम्बन्ध में पुराणों में ऐसी कथा आती है, कि जब ये गर्भ में ही थे, तभी इन्हें समस्त वेदों का बोध था। इनके पिता कुछ अशुद्ध पाठ कर रहे थे। तब इन्होंने गर्भ में ही कहा कि अशुद्ध पाठ क्यों करते हो? पिता को यह बात कुछ बुरी लगी। उन्होंने शाप दिया कि अभी से तू इतना टेढ़ा है तो जा, तू आठ जगह से टेढ़ा हो। पिता का वचन सत्य हुआ और ये आठ स्थान से टेढ़े ही पैदा हुए। इसलिए इनका नाम 'अष्टावक्र' पड़ा। इन्होंने फिर विधिवत् वेद वेदान्त का अध्ययन किया। इनके पिता का नाम कहोल था इनके बाबा असित तथा उनके पिता देवल थे।

उन दिनों महाराज जनक के यहां एक पुरोहित रहता था। उसने यह नियम बना लिया था जो शास्त्रार्थ में मुझ से हार जाएगा, उसे मैं जल में डुबो दूंगा। बड़े-बड़े पण्डित जाते और हार जाते। हारने पर वह पंडितों को जल में डुबा देता। अष्टावक्र के पिता आदि भी इसी तरह जल में डुबा दिये गये।

जब कुछ ये सयाने हुए तो इन्होंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी उस पण्डित से शास्त्रार्थ करने जाऊंगा। इनकी बात सुनकर इनकी माता आदि ने बहुत मना किया, किन्तु ये माने ही नहीं। सीधे महाराज की राजसभा में पहुंचे। इनको आठ स्थान से टेढ़े शरीर को देखकर सभी सभासद हंस पड़े और उन्होंने जब यह सुना कि शास्त्रार्थ करने आये हैं, तब तो वे और जोरों से हंस पड़े।

अष्टावक्र जी ने कहा, "हम तो समझते थे कि विदेह राज की सभा में कुछ पण्डित भी होंगे, किन्तु यहां तो सब चर्मकार ही निकले।" यह सुनकर सभी उनके मुख की ओर देखने लगे। राजा ने पूछा, "ब्रह्मन्! आपने सभी को चर्मकार कैसे बताया, यहां तो बड़े-बड़े श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण पंडित हैं। आप चर्मकार करने का अभिप्राय बताइए।"

अष्टावक्र जी ने कहा, "देखो, आत्मा नित्य है, शुद्ध है, निर्लेप और निर्विकार है। उसमें कोई विकार नहीं, दोष नहीं, वह मुझ में है। जिसने उसकी परीक्षा की वही ब्रह्मज्ञानी और पण्डित है, उसे न पहचान कर जो चर्म से ढके हुए इस अस्थि-मांस के शरीर को ही देखकर हंसता है, उसे उस आत्मा का तो बोध है नहीं, चर्म का बोध है, जिसे चर्म का बोध है वही चर्मकार है।"

इनकी ऐसी युक्ति युक्त बातें सुनकर महाराज को तथा समस्त सभासदों को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने इनका अभिनन्दन किया, पूजा की और आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, "मैं आपके उस पण्डित से शास्त्रार्थ करूंगा, जो सब को जल में डुबा देता है।" महाराज ने इन्हें बहुत मना किया, किन्तु ये माने ही नहीं। विवश होकर महाराज ने उस पण्डित को बुलाया। इन्होंने उससे शास्त्रार्थ किया और शास्त्रार्थ में उसे परास्त कर दिया। तब वह घबड़ाया। इन्होंने उसे पकड़ लिया और कहा, "जैसे तूने सब को जल में डुबाया है, उसी प्रकार मैं तुझे जल में डुबाऊंगा।" यह कहकर उसे जल में घसीट ले गये। उसने तब विनम्र होकर कहा, "ब्रह्मन्! मैं आपकी विद्वता और पाण्डित्य से बहुत प्रसन्न हूं। रह गई मुझे डुबाने की बात, सो मैं जल में डूब ही नहीं सकता। मैं वरुण का दूत हूं। महाराजा वरुण एक यज्ञ कर रहे हैं। उन्हें वहां पण्डितों की ज़रूरत थी, इसलिए मैंने यहां से सब पंडितों को भेजा। जिन्हें मैंने जल में डुबाया है, वे सब के सब जीवित हैं और वरुण जी के यज्ञ को करा रहे हैं। अब यज्ञ समाप्त हो गया है। मैं उन सब को आपके सामने यहां लाता हूं।" यह कह कर वह वरुण लोक में चला गया और उन समस्त पण्डितों को दक्षिणा सहित ले आया। सभी ने प्रेमपूर्वक अष्टावक्र जी का आलिङ्गन किया और कहा, "इसीलिए तो ऋषियों ने सत् पुत्र की प्रशंसा की। यदि समस्त कुल में एक ही धर्मात्मा सत्पुत्र हो जाता है, तो वह समस्त कुल का उद्धार कर सकता है।"

महामुनि अष्टावक्र जी महाराज विदेह द्वारा सत्कृत और पूजित होकर समस्त विद्वन्मण्डली के सहित अपने आश्रम में चले गये।

कल्पभेद से कथा आती है कि जब शास्त्रार्थ में हार जाने के कारण इनके पिता को बंदी बना लिया। तब इनकी माता इनको लेकर मायके आ गई। नाना की देख-रेख में

इनका भरण-पोषण तथा अध्ययन हुआ। इनकी माता उन्हें पिता जी कहती थी। अत: यह भी नाना को पिता जी कहते थे। सहपाठी ब्राह्मणों ने बताया कि "वह तुम्हारे माता के पिता हैं तुम्हारे मातामह हैं।" इन्हें आश्चर्य हुआ, माता जी से पूछा कि, "यह मेरे पिता हैं या आपके।" उन्होंने कहा, "बेटा यह तुम्हारे नाना हैं। तुम्हारे पिता, पितामह तथा अन्य विद्वानों को महाराज जनक ने जेल में बंद किया है।" बालक ने पूछा, "इन्होंने क्या अपराध किया था।" माता ने कहा, "बेटा अपराध कोई नहीं।" महाराज ने विद्वानों से प्रश्न किया था, "यह सच्चा कि वह सच्चा।" एक दिन मध्याह्न का भोजन करके राजा शयन कक्ष में सो रहे थे। उन्हें निद्रा आ गई। स्वप्न में देखा एक राजा ने मुझ पर आक्रमण किया है, महीनों युद्ध चला। युद्ध में वे हार गये। दूसरे राजा ने नगर से बाहर वस्त्र आदि छीन कर एक लंगोटी मात्र देकर निकाल दिया तथा ढिंढोरा पिटवाया कि कोई राजा को आश्रय न दे। जो शरण देगा उसे प्राण दण्ड दिया जाएगा। महाराज भूखे, प्यासे कई दिनों तक चले। एक वन में पहुंचे। भूख प्यास थकावट के कारण बोलना भी कठिन था। इतने में एक मनुष्य ने बताया कि यहां से थोड़ी दूर पर खिचड़ी बंट रही है जाकर ले लो। जनक जी बड़ी कठिनाई से वहां पहुंचे। खिचड़ी बंट चुकी थी। नीचे की जली हुई खुर्चन बची थी, किन्तु महाराज के पास कोई पात्र नहीं था। थोड़ी दूर पर ही घड़े का कपाल पड़ा था, उसे धोकर कांपते हाथों खिचड़ी ली। इतने में दो लड़ते हुए सांड आये। उनकी टक्कर से पात्र छूटकर धूल में मिल गया। वे चिल्लाने लगे। इतने में उनकी आंख खुल गई। देखा मैं तो आनन्दपूर्वक सोने के पलंग पर सो रहा हूं। पेट भरा हुआ है। अंगरक्षक अस्त्र शस्त्र लिये रक्षा में खड़े हैं। घड़ी में केवल पांच मिनट हुए थे। स्वप्न में कई महीने हो चुके थे। उन्हें आश्चर्य हुआ। जागृत का जगत् सच्चा है कि स्वप्न का। क्योंकि जागृत में स्वप्न का मिथ्या और स्वप्न में जागृत का मिथ्या सिद्ध होता है। अत: महाराज और कोई बात न कहकर विद्वानों से यह सच्चा कि वह सच्चा पूछते हैं।

माता की बात सुनकर पुत्र ने कहा, "माता जी मुझे आज्ञा दो मैं महाराज को इसका उत्तर देकर अपने पूर्वजों को मुक्त कराऊंगा।" मां ने कहा, "बेटा! बड़े दिग्गज विद्वान् तथा तुम्हारे पिता, पितामह, प्रपितामह उत्तर नहीं दे सके। उसका तुम आठ वर्ष के

बालक कैसे उत्तर दोगे।" पुत्र ने कहा, "माता जी मुझे आज्ञा दो। मैं आपके गुरु जी के तथा मातामह के आशीर्वाद से पलक मारते उत्तर दे दूंगा।" बालहठ को देखकर माता ने अपने भाई के साथ पाथेय देकर विदा किया। मामा के साथ वे जा रहे थे। जब मिथिला पुरी की सीमा पर पहुंचे, महाराज जनक की सवारी निकल रही थी। बालक थककर मार्ग में ही बैठ गया था। कहार पालकी लिये आ रहे थे। रास्ते में बालक को देखकर उठने के लिए कहा, वह नहीं उठा। सिपाहियों ने डांटते हुए कहा, वह टस से मस नहीं हुआ। बालक ने राजा को फटकारते हुए कहा कि, "मैंने तो सुना था कि यह विदेहों को नगरी है। यह तो नाम मात्र के विदेह हैं। वास्तव में यह सदेह हैं। राजा को धर्मशास्त्र का भी ज्ञान नहीं है। धर्मशास्त्र कहता है, यदि एक ओर राजा की सवारी आ रही हो, उधर से स्नातक ब्राह्मण आ रहा हो। तो राजा तुरन्त अपनी सवारी से उतर कर ब्राह्मणों को साष्टांग दण्डवत प्रणाम करे। ब्राह्मण के चले जाने के बाद जाए।" बालक की बात सुनकर जनक जी तुरन्त पालकी से उतरे। उन्हें दण्डवत प्रणाम करके क्षमा मांगी। मामा सहित उनको राजसी ठाठ-बाठ से राजमहल में ले आए। समुचित निवास दिया। दूसरे दिन महाराज ने पूछा, "यह सच्चा कि वह सच्चा।" उन्होंने कहा, "दोनों ही मिथ्या।" व्यावहारिक सत्ता जागृत अवस्था में इस लोक का सुख-दुख, सर्दी-गर्मी आदि सच्चे तथा प्रतिभासिक स्वप्नावस्था में जागृत का जगत् मिथ्या, स्वप्न का जगत् सच्चा। सुषुप्ति में दोनों ही मिथ्या। निर्विकल्प समाधि की पारमार्थिक सत्ता में तीनों ही मिथ्या। एक अद्वितीय अखण्ड चैतन्य ब्रह्म ही शाश्वत सत्य है। ऋषि के वचन सुनकर राजा का अज्ञान निवृत्त हुआ। गुरु बुद्धि से विधिवत् उनका पूजन किया। सभी ब्राह्मणों सहित उनके पिता आदिकों को मुक्त कर दिया। अपने पूर्वजों को लेकर अष्टावक्र जी घर लौट आये।

घोड़े की रकाब तथा ब्रह्मज्ञान

एक बार महाराज जनक जी ने ब्रह्म वेत्ताओं की सभा की तथा प्रस्ताव रखा कि घोड़े की एक रकाब में मेरा पैर हो और दूसरी रकाब में पैर रखने में जितनी देर लगती है, उतने समय में जो ब्रह्म साक्षात्कार कराये, वह मेरा गुरु होगा। जनक एक राजा का नाम नहीं

है। महाराज निमि पहले जनक हुए। उनके वंश में सब जनक कहलाये। अनेकों ब्रह्मवेत्ता आये, किन्तु ऐसा करने में असमर्थ रहे। महर्षि अष्टावक्र भी पहुंचे। ब्रह्मज्ञानियों से सभा खचाखच भरी हुई थी। सभा की देहली बहुत ऊंची थी। उसको पार करने में यह लुढ़क गये। इन्हें आठ स्थान से टेढ़े तथा लुढ़के देखकर सभी जोर से हंसने लगे। जनक से कहा कि तुमने चमारों की सभा एकत्र की है या ब्रह्मज्ञों की। ब्रह्मर्षि ने सभ्यों को सम्बोधित करते हुए कहा, ''नदी टेढ़ी है जल टेढ़ा नहीं। गन्ना टेढ़ा है, रस टेढ़ा नहीं। मेरा शरीर टेढ़ा है, मैं टेढ़ा नहीं, मैं शरीर आदि नहीं, आत्मा हूं, आत्मा ही ब्रह्म है।'' सभी ने क्षमा मांगी। इसके बाद राजा ने घोड़ा मंगवाकर उसकी रकाब में एक पैर रखा। राजा से ऋषि ने कहा, तुम किस भाव से पूछते हो, परीक्षा लेने के भाव से या शिष्य भाव से। जनक ने कहा, शिष्य भाव से। उन्होंने पूछा, गुरु को दक्षिणा क्या दोगे। राजा जी ने कहा जो आज्ञा हो। गुरु जी ने कहा, ''जो तुम्हारी वस्तु हो, मुझे दे दो।'' उन्होंने कहा, ''राज्य मेरा है, मैं उसे देता हूं।'' गुरु जी ने पूछा तुमसे पहले किसका था। राजा ने कहा मेरे पिता जी का। गरु जी, उनसे पहले किसका था, मेरे पितामह का। तुम्हारे बाद किसका होगा–राजा पुत्र का। तो फिर उसमें तुम्हारा क्या रहा। निजी वस्तु मुझे दो। राजा ने कहा। मैं तन मन धन सब आपके च्रणों में समर्पित करता हूं। उन्होंने तथास्तु कहकर स्वीकार किया। जनक जी से बोले, ''हे राजन्! शरीर का तुम दान कर चुके हो। इसके अंग प्रत्यंगों में तुम्हारा अधिकार नहीं रहा। तुम मन भी मुझे दे चुके हो। अतः सोचने विचारने संकल्प आदि का तुम्हारा अधिकार नहीं रहा।'' जनक जी जैसे एक पैर रकाब पर दूसरा जमीन पर रखा था, वैसे ही रखे रहे, मन से सोचना विचारना बन्द कर दिया। घंटों ऐसे ही रहे। रानी, मंत्रियों तथा अनुचरों को चिन्ता हुई हमारे महाराज पर ऋषि ने कुछ जादू कर दिया। उन्होंने उठाकर पलंग पर लिटा दिया। वे निश्चेष्ठ भाव से तीन दिन तक पड़े रहे। अष्टावक्र जी ने जब देखा, तब सोचा कि अब यह वास्तव में उपदेश के अधिकारी हैं। उन्होंने राजा से कहा कि तुम्हारा मन और शरीर मैं वापस करता हूं। अतः प्रसाद रूप में सभी वस्तुएं ग्रहण करो। तब जनक जी पूर्ववत् चेष्टा करने लगे। उन्होंने अष्टावक्र गीता के नाम से जो वेदान्त का उच्च कोटि का ग्रन्थ है, का उपदेश दिया। उसका पहला श्लोक है–''**मुक्तिमिच्छसि चेत्तात, विषयान् विषवत्त्यज।**

क्षमार्जवदया शौचमिमान् पीयूष वद्भज ॥'' हे तात ! यदि मुक्ति की इच्छा करते हो तो विषयों को विष के समान त्याग दो । क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता आदि का अमृत के समान सेवन करो । महाराज ने उनके उपदेश का मनन, निदिध्यासन करके जीवन्मुक्ति का अनुभव किया, देहान्तर में विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त की । **(इति अष्टावक्र चरित पूर्ण हुआ ।)**

॥ इति त्रेताखण्ड का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ बारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१५२. गौतम, १५३. शतानन्द, १५४. चिरकारी

मत्तेभ कुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः केचित् प्रचण्ड मृगराज बधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः ॥

अर्थ–कुछ शूर मतवाले हाथी के मारने में, कुछ सिंह के वध में कुशल हैं, किन्तु मैं बलवानों के समक्ष हठात् कहता हूं कि काम देव पर विजय कोई विरला ही प्राप्त कर सकता है ।

महर्षि गौतम सप्तर्षियों में एक ऋषि हैं । कहीं-कहीं पुराणों में ऐसी कथा मिलती है कि महर्षि अन्धतमा जन्म के अन्धे थे, उन पर स्वर्ग की कामधेनु प्रसन्न हो गई और उस गौ ने इनका तम हर लिया । ये देखने लगे । तब से इनका नाम 'गौतम' पड़ गया । ये ब्रह्मा जी की मानसी सृष्टि के हैं । पुराणान्तरो में ऐसी कथा आती है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा जी की इच्छा एक स्त्री बनाने की हुई, उन्होंने सब जगह से सौन्दर्य इकट्ठा करके एक अभूतपूर्व स्त्री बनाई । उसके नख से शिख तक सर्वत्र ही सौन्दर्य भरा था । हल कहते हैं पाप, को हल का भाव हल्य और जिसमें पाप न हो उसका नाम 'अहल्या' है । अतः उस निष्पापा का नाम भगवान् ब्रह्मा ने 'अहल्या' रखा । यह पृथ्वी पर सर्वप्रथम इतनी सुन्दर मानुषी स्त्री हुई । सब ऋषि, देवता उसकी इच्छा करने लगे । इन्द्र ने तो उसके लिए भगवान् ब्रह्मा से याचना भी की, किन्तु ब्रह्मा जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की । ऐसी त्रैलोक्य सुन्दरी ललना को भला कौन नहीं चाहेगा? उन दिनों भगवान् गौतम

बड़ी घोर तपस्या कर रहे थे। ब्रह्मा जी उनके पास गये और जाकर बोले, "यह अहल्या तुम्हें हम धरोहर के रूप में दिये जाते हैं, जब हमारी इच्छा होगी ले लेंगे।" ब्रह्मा जी की आज्ञा ऋषि ने शिरोधार्य की। अहल्या ऋषि के आश्रम में रहने लगी। वह हर तरह से ऋषि की सेवा में तत्पर रहती और ऋषि भी उसका धरोहर की वस्तु की भांति ही ध्यान रखते, किन्तु उनके मन में कभी किसी प्रकार का बुरा भाव नहीं आया।

हजारों वर्ष के बाद ऋषि स्वयं ही अहल्या को लेकर ब्रह्मा जी के यहां गये और बोले, "ब्रह्मन्! अपनी धरोहर ले लो।" ब्रह्मा जी इनके इस प्रकार के संयम और पवित्र भाव को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अहल्या का विवाह इन्हीं के साथ कर दिया। ऋषि सुखपूर्वक इनके साथ रहने लगे। इनके एक पुत्र भी हुए, जो महर्षि शतानन्द के नाम से विख्यात हैं और जो महाराज जनक के राज पुरोहित थे।

इन्द्र ने अहल्या के साथ अनुचित बर्ताव किया, न करने योग्य काम किया, तब इसमें अहल्या की भी कुछ सम्मति समझ कर गौतम जी ने उसे पाषाण होने का शाप दे दिया। तब गौतम जी ने शाप दिया कि आज से केवल अहल्या में ही सम्पूर्ण सौन्दर्य न रहकर पृथ्वी भर की स्त्री मात्र में बंट जायेगा। उन्होंने इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा पद स्थायी न रहेगा। इन्द्र सदा बदलते रहेंगे। इस प्रकार ऋषि गौतम अपनी पत्नी को त्याग कर हिमालय पर्वत पर तपस्या करने चले गये। जब स्त्री रामचन्द्र जी की चरण धूलि से अहल्या पुनः पवित्र हो गई, तब गौतम जी ने उसे स्वीकार कर लिया। महर्षि गौतम का चरित्र अलौकिक है। इनके ऐसे त्याग वैराग्य और तप कहां देखने को मिलेगा। गौतम ऋषि के शाप से इन्द्र के एक हजार भग हो गये। उनके वरदान से भग सहस्त्र नेत्रों में बदल गये। कल्प भेद से कहीं अहल्या के नदी होने का शाप भी मिलता है।

एक बार सौ वर्ष तक सूखा पड़ा। सर्वत्र हाहाकार मच गया, किन्तु गौतम जी के तप के प्रभाव से वहां उनके आश्रम में सूखे का प्रभाव नहीं हुआ। वहां अन्न फल मूल आदि की कोई कमी नहीं हुई। तब अनेक ऋषियों ने उनके आश्रम में सपरिवार जाकर शरण ग्रहण की। गौतम जी ने उनका भरण पोषण किया। उनकी ख्याति चतुर्दिक् फैल गई। ऋषियों ने नीचा दिखाना चाहा। जब अकाल समाप्त हो गया और ऋषि अपने-

अपने आश्रम में जाने लगे, तब ऋषियों ने एक मरणासन्न गाय यज्ञशाला में लाकर खड़ी कर दी। ऋषि ने देखा, तो हुंकार करके कुश का प्रहार किया, वह तुरन्त मर गई। ऋषियों ने गो हत्या का आरोप लगाकर निन्दा की। गौतम जी ने मसाधि में उनका षड्यंत्र समझ लिया। उनका कृत्य जानकर शाप दिया कि जावो, तुम कलिकाल में आसुरी स्वभाव वाले ब्राह्मण होंगे, उनके शाप से शापित वर्तमान काल के आसुरी प्रकृति के ब्राह्मण हैं। यह कथा देवी भागवत में आई है।

१५४. चिरकारी

गौतम जी के माता पिता के परम भक्त अतिबुद्धिमान, विचारशील चिरकारी नाम के एक पुत्र हुए। चिरकारी का अर्थ दीर्घ सूत्री नहीं, जो दस मिनट के काम को आधे या एक घंटे में करे वह दीर्घ सूत्री है। वहां दीर्घसूत्रता है, वहां उतावलापन भी दोष युक्त है। वे दीर्घ सूत्री नहीं चिरकारी थे। प्रत्येक आज्ञा पर विचार करके सूझ-बूझ के साथ पालन करते थे। यद्यपि इन्द्र ने गौतम ऋषि का रूप धारण करके अहल्या के साथ सम्पर्क किया था। फिर भी अहल्या इन्द्र की परछाई न होने से पलक आदि न गिरने से पहचान गई थी। अतः पिता ने चिरकारी को मातृ हत्या की आज्ञा दी। वे तलवार हाथ में लिये हुए आज्ञा के गुण दोषों का देर तक विचार करते रहे। अन्त में ऋषि ने जब समाधि में अहल्या को निर्दोष पाया, तब पुत्र द्वारा मातृ हत्या न करने से प्रसन्न होकर उन्हें अनेकों आशीर्वाद दिये। इससे शिक्षा मिलती है कि बड़ों की आज्ञा का भी सूझ-बूझ से ही पालन करना चाहिए। यद्यपि मानस में, **"मातु पिता गुरु प्रभु के बानी। बिनहिं विचार करिय शुभ जानी।"** इस चौपाई का यह अपवाद स्वरूप है।

गौतम जी न्याय दर्शन ग्रन्थ के मूल लेखक हैं तथा इन्होंने गौतम स्मृति धर्मशास्त्र की रचना की।

१५५. कणाद

भारत के छः मुख्य दर्शनों में वैशेषिक नामक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं चलता। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि

ये किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखते थे। किसान अपने-अपने खेलों में से अन्न काट ले जाते उसके बाद कणों के रूप में जो कुछ बचा रहता, उसे ही बीनकर ले आते और उसी से अपने शरीर का निर्वाह करते। इन तपस्वी ने संसार को एक विशिष्ट दर्शन शास्त्र का दान किया है। इन ऋषियों को वस्तु तत्त्व का बोध न हो ऐसी बात नहीं, किन्तु सब प्रकार के साधकों के लिए उनकी भूमिका के अनुरूप विचार प्रणाली उपस्थित करना ही इनका उद्देश्य होता है। जिन्होंने न्याय दर्शन के अनुसार पदार्थ विभाजन कर लिया है, किन्तु जो सांख्य के अनुसार प्रकृति पुरुष विवेक करने में पटु नहीं हुए हैं, उनके लिए अनन्त परमाणुओं में अनन्त विशेषों का विचार इन्होंने उपस्थित किया है। इसके फलस्वरूप अधिकारी पुरुष अमली भूमिका में बढ़ता है। कूर्म पुराण में ऐसा वर्णन आता है कि इन्होंने महर्षि नर-नारायण के पास जाकर अपनी जिज्ञासा पूर्ण की थी और भगवत्तत्व तथा भगवद् भक्ति सम्बन्धी शिक्षा दीक्षा प्राप्त की थी। काशी में अब तक इनके द्वारा स्थापित और आराधित शिवलिंग विद्यमान है। जहां स्वयं भगवान् शिव ने प्रकट होकर इन्हें दर्शन दिया था। यद्यपि महर्षि कणाद का विस्तृत जीवन उपलब्ध नहीं है फिर भी उनका वैशेषिक दर्शन उनके आन्तरिक और लोकोपकारी जीवन का साक्षात् प्रतीक है। वह चिरकाल तक हमारा कल्याण करता रहेगा।

वैशेषिक सिद्धान्त

इन्होंने पृथ्वी जल, अग्नि, वायु इन चार महाभूतों के परमाणुओं के मेल से जगत् की उत्पत्ति कही है। जब तक परमाणु मिले रहते हैं, तब तक सृष्टि रहती है। प्रलय के समय पृथ्वी के परमाणु विच्छिन्न होकर जल में लीन हो जाते हैं। जल के तेज में, अग्नि के वायु में, वायु के आकाश में लीन हो जाते हैं। आकाश पर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इनका परमाणु वाद या आरम्भवाद सिद्धान्त है। आधुनिक वैज्ञानिकों के परमाणु उद्भिजवम आदि आधुनिक अस्त्र शस्त्रों का निर्माण इनके परमाणुवाद का नवीनतम रूप है। गौतम तथा कणाद इन दोनों ने जगत् के सामान्य ज्ञान से लेकर सर्वोच्चतम जगत् की चरम सीमा का ज्ञान दिया है। गौतम जी ने एक सूत्र में कहा है कि जैसे एक माली अपने बाग की रक्षा बाड़ लगाकर करता है। वैसे ही मैंने

वेद वेदान्त रूपी बगीचे के अद्वैत सिद्धान्त की रक्षा अपने तर्क शास्त्र रूपी कांटेदार बाड़ से की है।

॥ इति त्रेताखण्ड का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तेरहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१५६. महर्षि जमदग्नि

क्षमया रोचते लक्ष्मी ब्राह्मीसौरी यथा प्रभा।
क्षमिणा माशुभगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः।

अर्थ–क्षमा से लक्ष्मी तथा ब्रह्मविद्या सूर्य की प्रभा की भांति शोभित होती हैं। क्षमा शील पर भगवान् हरि शीघ्र प्रसन्न होते हैं।

विश्वामित्र के पिता गाधि थे। इनकी सत्यवती नाम की पुत्री का विवाह महर्षि ऋचीक के साथ हुआ था।

महाराज गाधि के कोई पुत्र नहीं था। उनकी पत्नी ने एक दिन अपनी पुत्री से कहा कि, "तुम्हारे पति सर्व समर्थ हैं। उनसे अपने भाई का वरदान मांग ले।" तब पुत्री ने अपने माता की प्रार्थना पति को सुनाई और अपने लिए भी एक पुत्र की याचना की। महर्षि ऋचीक जी ने वैदिक मंत्रों से खीर तैयार की। दो पात्रों में रखकर एक में क्षात्र तेज तथा दूसरे में ब्राह्म तेज का आधान (स्थापन) किया। पत्नी से कहा, "यह तुम्हारे लिए तथा यह खीर तुम्हारा माता के लिए है।" यह कह कर ऋषि चले गये। प्रायः स्त्रियों को शीघ्र विश्वास नहीं होता। सत्यवती की माता ने सोचा, ऋषि ने अपनी पत्नी के लिए उत्तम तथा मेरे लिए घटिया चरु तैयार किया होगा। उसने अपनी पुत्री की खीर बदल ली। जब ऋषि को इस बात का पता चला। तब उन्होंने पत्नी से कहा, "तुमने अनर्थ कर दिया, अब तेरी माता के यहां ब्रह्मतेज वाला पुत्र होगा और तुम्हारे क्षात्र तेज वाला।" धर्म पत्नी ने अनुनय विनय पर ऋषि ने कहा, "तुम्हारा पुत्र ब्राह्मणोचित्त स्वभाव वाला होगा, परन्तु पौत्र क्षात्र स्वभाव वाला होगा।" सत्यवती की माता के गर्भ से मुनि विश्वामित्र का जन्म हुआ। जो क्षत्राणी के उदर से जन्म लेने पर ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए

तथा पुत्री के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। उनके पौत्र परशुराम जी ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रिय स्वभाव वाले हुए। इस कथा प्रसंग से सिद्ध होता है विश्वामित्र जन्म से ही ब्राह्मण थे। उनमें जो माता के सम्बन्ध से क्षत्रियत्व था, वह साठ हजार वर्ष की तपस्या से ब्राह्मणत्व में परिणत हो गया। अर्थात् उनके शरीर के क्षत्रियत्व के परमाणु क्षीण होकर ब्राह्मणत्व में परिणत हो गये। अतः वे जन्म से ब्राह्मण सिद्ध हुए।

महर्षि जमदग्नि सदैव तपस्या में तल्लीन रहते थे। एक बार सहस्त्रबाहु कार्त्तवीर्य अर्जुन मृगया करते हुए उनके आश्रम में पहुंचे। उन्होंने राजा का शास्त्रोक्त विधि से सत्कार किया और सेना सहित उन्हें भोज के लिए निमन्त्रित किया। महर्षि जमदग्नि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से कामधेनु द्वारा सम्पूर्ण सेना को भांति-भांति के भोजनों से सन्तुष्ट किया। कामधेनु की ऐसी करामात देखकर राजा ने उसे महर्षि से मांगा, ऋषि ने कहा, ''राजन्! मेरे समस्त यज्ञ याग के कार्य इसी कामधेनु पर निर्भर हैं। इसे मैं देकर कर्महीन बन जाऊंगा।'' राजा नहीं माना, वे गौ को जबरदस्ती लेकर चले गये। महर्षि चुपचाप बैठे रहे। जब इनके पुत्र परशुराम जी ने यह सुना, तो वे फरसा लेकर महिष्मती नगरी में गये और सहस्त्रार्जुन को मारकर गौ ले आये और आकर पिता से सब हाल सुनाया। इस बात को सुनकर महर्षि जमदग्नि बड़े दुखी हुए। उन्होंने अत्यन्त दुख के साथ कहा-

''राम राम महाबाहो भवान् पापमकार्षीत्।
अवधीन्नरदेवं यत् सर्वदेव मयं वृथा।
वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतांगता।
यया लोक गुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात् पदम्॥''

हे महाबाहो परशुराम! तुमने यह अच्छा नहीं किया कि सर्वदेवमय राजा का वध कर डाला। हम ब्राह्मणों का एक मात्र धन क्षमा ही है। क्षमा के कारण हम ब्राह्मण जगत्पूज्य हैं। इस क्षमा के ही गुण के कारण लोक पितामह ब्रह्मा जगद्गुरु होकर परमेष्ठी पद को प्राप्त हुए हैं।

परम क्षमाशील महर्षि जगदग्नि सुखपूर्वक अपने आश्रम में रहने लगे। उस समय के प्रायः समस्त राजा दुष्ट हो गये थे। राजाओं के रूप में सभी असुर उत्पन्न हुए थे।

सहस्त्रबाहु के दुष्ट पुत्रों ने तपस्या में लगे हुए महर्षि जमदग्नि का सिर काट लिया और इससे वे दुष्ट प्रसन्न हुए। ऋषि के लिए इसमें दुख की कोई बात नहीं थी। वे स्वर्ग में जाकर सप्तर्षि के साथ बड़े सुख से रहने लगे। जमदग्नि सप्तर्षियों में से ही एक ऋषि हैं।

पिता की मृत्यु की बात सुनकर परशुराम जी अपने क्रोध को रोक नहीं सके और पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए उन्होंने कई बार क्षत्रिय वंश का नाश किया।

महर्षि जगदग्नि की क्षमा, कार्य तत्परता और अतिथि सत्कार ऐसे गुण हैं, जो समस्त आदर्श ब्राह्मण तपस्वियों में होने चाहिएं, वे क्षमा की तो मूर्ति ही थे।

महर्षि जमदग्नि जी का जीवन चरित्र ब्रह्मवैवर्त्त पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण में कल्पभेद से विभिन्न प्रकार का मिलता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के जमदग्नि अति क्षमा शील, अहिंसावादी तथा समदर्शी थे। जब किसी प्रकार से भी राजा नहीं माना, कामधेनु को लेकर चला गया। उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया, किन्तु इनकी सहनशीलता को देखकर कामधेनु ने छींक दिया, उससे असंख्य चतुरंगिणी सेना प्रकट हुई। धेनु सेना को देखकर राजा की सेना का साहस नहीं हुआ। युद्ध त्याग कर चले गये। ऐसा कई बार हुआ। एक दिन जब ऋषि यज्ञशाला में समाधिस्थ थे, उस समय इनकी हत्या की गई। परशुराम जी उपस्थित नहीं थे। वन में समिधा लेने गये थे, लौट कर पिता को मरा देखा। माता ने इक्कीस बार छाती पीटी। इन्होंने आश्वासन दिया कि आपने इक्कीस बार रुदन किया है। अतः मैं इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करूंगा। इन्होंने शंकर की आराधना करके उनसे कुठार तथा अन्यान्य अस्त्र शस्त्र तथा वरदान प्राप्त कर क्षत्रियों का विनाश किया तथा कुरुक्षेत्र में स्यमन्त पंचक के पांच सरोवरों को रक्त से भरकर पितरों का तर्पण किया। वह तीर्थ रामह्रद (रामरा) के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें रेणुका तथा जमदग्नि परशुराम के कई मन्दिर हैं। वहीं प्राचीन कुरुक्षेत्र जहां पर भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता सुनाई थी। परन्तु जब से दिल्ली पंजाब रेलवे लाइन कुरुक्षेत्र होकर जाने लगी। तब से नये कुरुक्षेत्र ज्योतिसर में गीता के सुनाने के स्थान का प्रचार हुआ है।

ब्रह्माण्ड पुराण के जमदग्नि परम शूरवीर ऋषि हैं। वे डटकर शत्रुओं से युद्ध करते हैं। जब अनुनय विनय करने पर भी ऋषि ने गौ नहीं दी। तब वे जबरदस्ती ले जाने लगे। जमदग्नि की आज्ञा से गौ ने सेना उत्पन्न की। एक दिव्यरथ प्रकट किया। जमदग्नि धनुर्बाण आदि अस्त्र शस्त्र लेकर रथ में बैठे। शत्रुओं से युद्ध से पूर्व ऋषि को प्रणाम किया। उन्होंने चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। जमदग्नि ऋषि की सेना के आगे उनकी सेना रुक न सकी। इस प्रकार उसने कई बार आक्रमण किया। अन्तिम आक्रमण में उन्होंने आशीर्वाद दिया कि मेरी हार तुम्हारी जीत हो। सहस्रबाहु के हाथ से जमदग्नि मारे गये। शेष कथा पूर्ववत् है। परशुराम जी पिता के शरीर को भाइयों को सौंप कर बोले जब तक मैं लौटकर न आऊं, पिता जी का संस्कार न करना। वे पितामह के आश्रम में गये, बाबा दादी के आगे प्रणाम करके रोने लगे। वे दोनों को साथ लेकर प्रपितामह च्यवन तथा सुकन्या के पास पहुंचे। वे दोनों इन सब को लेकर महर्षि भृगु के आश्रम में पहुंचे। वृद्ध प्रपितामह भृगु अपनी पत्नी सहित दुखी हुए। इन सब को साथ लेकर जमदग्नि के आश्रम को आये तथा अमृत संजीवनी विद्या द्वारा उनको जीवित कर दिया। सब बड़े प्रसन्न होकर अपने-अपने आश्रम को चले गये। ऐसा कई बार हुआ।अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुए। परशुराम जी ने शंकर की कृपा से कार्तवीर्य तथा उनके पुत्रों का संहार किया।

शंका–एकमात्र पिता की हत्या के कारण परशुराम जी ने इतने क्षत्रियों का परिवार सहित संहार क्यों किया। जब पहली बार उन्होंने क्षत्रियों का विनाश कर दिया, तो दूसरी, तीसरी यहां तक कि बीस बार क्षत्रियों का विनाश करने पर इक्कीसवें बार कैसे हुए। आज तक कैसे जीवित रहे?

समाधान–इसमें केवल पिता की मृत्यु ही कारण नहीं थी। इससे पूर्ववर्ती क्षत्रियों के विशेषत: हैहय वंशियों के कुल पुरोहित भृगुवंशी भार्गव ब्राह्मण थे। उन्होने इनके दान दक्षिणा देकर धनाढ्य किया था। सभी क्षत्रिय महाराज एकवीर के वंशज थे। जिनका जन्म भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी के हय तथा हयी के रूप में हुआ था। अत: एकवीर हैहय कहलाये। इन्हीं के वंशजों पर कालान्तर में शत्रुओं के आक्रमण करने पर वे

राज्यच्युत हुये। मंत्रियों सहित प्राण बचाकर वन में छिप गये। इन्होंने मिलकर फिर सेना एकत्रित करने की इच्छा से तथा युद्ध में विजय की कामना से यज्ञ करना चाहा। अपने कुल गुरु पुरोहितों के पास जाकर धन की याचना करते हुए कहा, कि हमें धन दे दो। जितना दोगे उससे कई गुना करके ब्याज सहित वापस कर देंगे किन्तु इन निर्दयी तथा कृपण ब्राह्मणों ने प्रार्थना करने पर भी एक छदाम नहीं किया। तब कुपित होकर उन पर अत्याचार की चरम सीमा कर दी। यहां तक कि तत्काल पैदा हुए बच्चों और स्त्रियों को मार दिया। प्राण बचाने के लिए ब्राह्मण लोग घर छोड़कर भाग कर जंगलों में छिपे। एक गर्भवती मुनि पत्नी पकड़ी गई। उस पर प्रहार करने लगे। उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। उसने इष्टदेव का ध्यान किया। तत्काल माता का ऊरु फाड़कर एक तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। उनके तेज से वे सब लोग अंधे हो गये (कुछ भाग गये कुछ उसके तेज में जल गये। ऊरु से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम 'और्व' ऋषि हुआ। इस परम्परा में परशुराम जी का अवतार हुआ। वे इस बात को जानते थे। उन्हें पिता की मृत्यु का तो बहाना था। अतः 'शठेशाठ्यं समाचरेत्' इस उक्ति के अनुसार उन्होंने विनाश किया। भगवान् शंकर ने उन्हें आज्ञा दी थी। यह कथा देवी भागवत पुराण में आई है।

महाभारत शान्ति पर्व के राजधर्म पर्व में यही प्रश्न युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा था। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, जब गुरु जी ने पहली बार क्षत्रियों का संहार किया उस समय बहुत से राजा परिवार सहित वनों गुफाओं में छिप गये थे। उनके चले जाने पर फिर निकल आये। कुछ लोग भय के मारे जमीन खोदने लगे। उन्होंने पूछा क्या करते हो? कौन हो? भय के मारे उन्होंने कहा कि हम भूमिहार ब्राह्मण हैं भूमि खोदते हैं। उन्हें छोड़कर चले गये। जब पंजाब में पहुंचे उनसे पूछा, तुम कौन हो? उन्होने क्ष की जगह ख लगाते हुए कहा, हम तो खत्री हैं। येन केन प्रकारेण क्षत्रियों ने अपने प्राण बचाये। (श्री जमदग्नि जी का चरित्र पूर्ण हुआ।)

॥ त्रेताखण्ड का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ चौदहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१५०. भगवान् परशुराम जी

भगवान् परशुराम, विष्णु भगवान् के आवेशावतार हैं। बाल्यावस्था में ही भगवान् विष्णु की आराधना करके उनका दर्शन किया था। उन्होंने इनको वैष्णव धनुष के साथ सम्पूर्ण शक्ति का संचार किया तथा कहा, मैं त्रेता के अंत में जब पूर्णावतार धारण करूंगा, तब तेज सहित धनुष ले लूंगा। यह वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। आप जमदग्नि जी के पुत्रों में सबसे छोटे थे। माता-पिता के विशेष आज्ञाकारी थे। एक बार माता रेणुका ऋषि की पूजा के लिए गंगा जल लेने गई। एक गन्धर्वराज अपनी स्त्रियों सहित क्रीड़ा कर रहा था। रेणुका का चित्त उसमें लग गया। जल लाने में देर हुई। मुनि ने पूछा, विलम्ब क्यों किया? उन्होने भय के मारे कुछ उत्तर नहीं दिया। मुनि ने समाधि में उनके मानसिक व्यभिचार को जानकर अपने बड़े पुत्र को माता का सिर काटने की आज्ञा दी, किन्तु उन्होंने आज्ञा का पालन नहीं किया। दूसरे, तीसरे इत्यादि सभी पुत्रों से कहा। किन्तु किसी ने स्वीकार नहीं किया। तब उन्होंने अन्तिम पुत्र परशुराम जी से भाइयों सहित माता का सिर काटने को कहा इन्होंने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। पिता प्रसन्न हुए। पुत्र से वर मांगने को कहा। इन्होंने हाथ जोड़कर पिता जी से कहा, "माता सहित सभी भाई जीवित हो जाएं। हमको परशुराम ने मारा है, इसका इन्हें ज्ञान न रहे।" 'तथास्तु' कहकर ऋषि ने पत्नी सहित सभी पुत्रों को जिला दिया। भगवान् परशुराम पिता की इस महिमा को जानते थे। इसलिए उन्होंने ऐसे किया।

द्वापर के अन्त में गंगा पुत्र देवव्रत इनकी शरण को प्राप्त हुए। इनकी सेवा करते हुए वेदों सहित धनुर्विद्या प्राप्त की। जब वे काशी में जाकर अपने भाइयों के लिए काशी नरेश की तीनों पुत्रियों को जीत कर लाये, दो का विवाह चित्रांगद, विचित्रवीर्य के साथ हो गया। तीसरी रह गई। उसने भीष्म से प्रार्थना की, उन्होंने कहा मैंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा है। राजा शाल्व उसको चाहता था। उनके पास भेज दिया। शाल्व ने कहा कि भीष्म ने तुम्हें स्पर्श किया, मैं ग्रहण नहीं करूंगा। वापस आई। फिर विशेष रूप से प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब उसने इनके गुरु की शरण ग्रहण की। उसकी दयनीय दशा को देखकर परशुराम जी ने भीष्म से विवाह के लिए कहा।

उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उनके विशेष आग्रह करने पर भी यह नहीं मानें, तब इन्होंने गुरु जी के साथ तेईस दिन तक डटकर युद्ध किया। उनकी वीरता से प्रसन्न हुए साथ ही दुखी भी हुए तथा प्रतिज्ञा की आज से लेकर मैं किसी भी क्षत्रिय को धनुर्विद्या नहीं सिखाऊंगा।

जब गुरु द्रोणाचार्य ने कर्ण से कहा कि मैं केवल राजकुमारों का ही गुरु हूं। तुम्हें धनुर्विद्या नहीं सिखा सकता। तब कर्ण दुखी होकर परशुराम जी के पास ब्राह्मण के रूप में पहुंचा। इनको ब्राह्मण समझ कर वे पढ़ाने लगे। एक दिन गुरु जी उनकी जांघ पर सिर रखे सो रहे थे। एक जहरीले कीड़े ने कर्ण की जांघ में छेद कर दिया। रक्त की धारा बहने लगी। निद्रा भंग के भय से उन्होंने पैर नहीं हिलाया। जब गर्म रक्त उनकी पीठ में लगा, वे जग गये। उनकी तितिक्षा को देखकर बोले, ''सच बता तू कौन है? ब्राह्मण ने इतनी सहन शीलता नहीं होती।'' वे कुछ नहीं बोले। इन्होंने समाधि में सब कुछ जानकर क्रोध में आकर शाप दिया। अन्तिम समय में यह विद्या निरर्थक हो जाएगी।

भगवान् परशुराम आज भी उसी शरीर से सप्तचिरंजीवियों में से हैं। अधिकारी पुरुषों को आज भी कुरुक्षेत्र की अड़तालीस कोसी परिक्रमा में यदा कदा उनके दर्शन होते हैं। भगवान् के कल्कि रूप में प्रकट होने के बाद वे उनको वेदादिकों का ज्ञान करायेंगे तथा दिग्विजय में सहायता करेंगे। **(भगवान् परशुराम जी का चरित्र पूर्ण हुआ।)**

॥ इति त्रेतायुग खण्ड का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ पन्द्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१५८. अकृतव्रण ब्रह्मर्षि

महामुनि अकृतब्रण भगवान् परशुराम जी के शिष्य हैं। श्रीमद् भागवत पुराण में छः पुराणाचार्यों में से अकृतव्रण भी हैं। अन्यों के नाम कश्यप, सावर्णि, वैशम्पायन तथा हारीत हैं। इन छहों ने रोमहर्षण सूत जी से एक-एक संहिता का अध्ययन किया था। पुराणों में कथा आई है कि बाल्यावस्था में इनको एक बाघ उठा ले गया था। उसने इनको मारा नहीं, बल्कि इनका भरण-पोषण किया। यह हिंस्र जीवों में रहने पर भी इनके शरीर

में कोई घाव (व्रण) नहीं हुआ। इसलिए इनको 'अकृत व्रण' कहते हैं। बाद में इन्होंने भगवान् परशुराम जी से मन्त्र दीक्षा प्राप्त की। यह भी परशुराम जी के समान चिरंजीवी हैं। अत्यन्त गुरुभक्त हैं। गुरु जी के साथ सदैव छाया की भांति सेवा करते हुए रहते हैं।

१५९. वशिष्ठ वंश–भगवान् शक्तिदेव

वशिष्ठ नन्दन शक्तिदेव जी अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ थे। वे अपने पिता के पुत्र होने के साथ ही शिष्य भी थे। इनमें मंत्र, अध्यात्म तथा योग तीनों प्रकार की शक्तियां थीं। अतः इनका नाम 'शक्तिदेव' पड़ा। शक्ति की उपासना से वशिष्ठ जी ने पुत्र को प्राप्त किया था। **नारायणः पद्मभवो वशिष्ठः शक्तिश्च तत्पुत्र पराशरश्च। व्यसः शुकश्चेति गुरुक्रमोऽयम्। प्रसिद्ध आस्तेपितृ पुत्ररीत्या॥ ज्ञानशक्तिवलैश्वर्य वीर्य तेजोभिरन्वियात्॥१॥ भगवत् संज्ञया चेमे स्मर्यन्ते गुरु पुंगवा॥२॥** (शंकर विजय मकरन्द से)

भगवान् नारायण से लेकर ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्तिदेव, पराशर, व्यासतथा शुकदेव जी इन प्रसिद्ध पांच गुरुओं का जन्म पिता पुत्र की रीति से है। यहां पांचों भगवत् नाम से प्रसिद्ध मुनि श्रेष्ठ ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य तथा तेज से युक्त थे। अतः यह स्मरण किये जाते हैं।

शुक्तौरौप्यमिवाभाति यद्रूपं मयि कल्पितम्।
शक्त्या परिहृतं येन शक्तिं तं गुरुमाश्रये॥

(गुरुवंश काव्य)

सीपी में चांदी के समान जगत् के नाम, रूप तथा क्रिया मुझ आनन्द स्वरूप में कल्पित है। जिन्होंने भाग त्याग लक्ष्णा की शक्ति से अथवा ब्रहानुभूति–जन्य शक्ति जन्म मरण तथा त्रितापों का हरण कर लिया है। ऐसे शक्ति देव गुरु जी की मैं शरण ग्रहण करता हूं। ब्रह्मविद्या के शक्तिदेव जी महापण्डित थे। इनका जीवन चरित्र तथा उपदेश किसी ग्रन्थ में नहीं है। केवल महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत, चैत्ररथ पर्व में वशिष्ठ विश्वामित्र के युद्ध के अन्तर्गत जब वशिष्ठ जी से विश्वामित्र जी हार गये, तब १७८वें अध्याय से अतिसंक्षेप में जीवन वृत्तान्त मिलता है। यह कथा एक गन्धर्व पार्थ को सुना रहे हैं।

सूर्यवंशी परम प्रतापी महाराज सौदास जो महारानी मदयन्ती के पति थे। किसी कारण विशेष से गुरु जी को शाप देने के लिए जल हाथ में लिया था किन्तु पत्नी के विशेष आग्रह से वह अभिमन्त्रित शाप का जल इन्होंने अपने पैरों पर डाल दिया था, क्योंकि यदि धरती पर डाल देते, तो अनेकों जीव भस्म हो जाते। सत्ययुग के क्षत्रियों में सत्य संकल्प के प्रभाव से यह क्षमता थी। इनके पैर काले हो गये थे। अतः इनका नाम 'कल्मष पाद' हुआ।

एक दिन यह वन में शिकार खेलने गये। ऐसे स्थान से चल रहे थे। जो मार्ग अत्यन्त संकीर्ण था। एक ही मनुष्य निकल सकता था। उन्होंने सामने गुरु पुत्र शक्तिदेव को देखा। राजा से शक्तिदेव ने कहा, तुम मेरे रास्ते से हट जाओ, क्योंकि धर्म शास्त्रों में कहा है कि यदि आने जाने का मार्ग संकीर्ण हो, राजा एवं ब्राह्मण आ रहे हों तो राजा का कर्त्तव्य है कि ब्राह्मण के लिए मार्ग छोड़ दे, किन्तु राजा नहीं मानें, दोनों में झगड़ा हुआ। दोनों एक दूसरे को हटो-हटो कहने लगे। धर्म शास्त्र के मर्मज्ञ ऋषि मार्ग से नहीं हटे। अभिमान तथा क्रोध में आकर राजा ने मार्ग नहीं छोड़ा। गुरु पुत्र के मार्ग न छोड़ने पर राजा उन पर कोड़े बरसाने लगे। "मुनि श्रेष्ठ गुरु पुत्र पर कोड़े बरसाये हैं जा तू राक्षस होकर मनुष्य के मांस में आसक्त होकर पृथ्वी पर घूमेगा।" ऐसा कहकर मार्ग छोड़ दिया। इससे पूर्व ही उस राजा के यज्ञ को लेकर वशिष्ठ तथा विश्वामित्र में शत्रुता हो गई थी। इसलिए विश्वामित्र वशिष्ठ जी से बदला लेने के लिए उस समय राजा के पास पहुंचे जब दोनों झगड़ रहे थे।

शाप के अनन्तर राजा ने गुरु पुत्र शक्तिदेव को पहचाना। इधर विश्वामित्र अपना कार्य सफल जान कर अन्तर्धान हो गये। राजा, शक्तिदेव के शाप से पीड़ित होकर विश्वामित्र की शरण में गये। विश्वामित्र राजा के भाव को समझ गये। उन्होंने राजे के शरीर में एक राक्षस को सूक्ष्म रूप में प्रवेश करने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा पाकर असुर जो एक ऋषि के शाप से पीड़ित था। राजा के शरीर में प्रवेश किया। यह काम करके विश्वामित्र चले गये। सौदास को राक्षस के प्रवश का पता नहीं चला। सौदास वन में घूम रहे थे। एक अति क्षुधातुर ब्राह्मण ने राजा से भोजन मांगा। उसने कहा आप थोड़ी प्रतीक्षा करें। मैं भोजन दूंगा। यह कहकर अन्तःपुर में चले गये। ब्राह्मण रुके रहे।

ब्राह्मण के भोजन की बात भूल गये। जब याद आई, तब अपने रसोइये से कहा कि वन में एक ब्राह्मण को भोजन दे आवो। चूंकि राजा राक्षस हो चुका था। अत: राजा ने नर मांस का भोजन कहा था। ब्राह्मण रसोइये को मांस नहीं मिला। राजा ने कसाई के यहां से नर मांस मंगा पकवा कर ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण ने नर मांस को देखर क्रोध में कहा कि, ''यह भोजन ठीक नहीं है।'' उस ब्राह्मण ने कहा कि शक्तिदेव का शाप चरितार्थ होगा। दो के शाप से शाप की शक्ति और बढ़ गई।

इसके बाद एक दिन शक्तिदेव को राजा फिर मिले। उनको देख कर राजा बोला, तुमने मुझे अनुचित शाप दिया। अत: तुमसे ही मनुष्यों को खाना आरम्भ करूंगा। ऐसा कहकर तुरन्त ही गुरु पुत्र को मार कर खा गया। जैसे सिंह पशु का मांस खाता है। विश्वामित्र वशिष्ठ जी के बड़े पुत्र की मृत्यु देखकर राजा को बार-बार गुरु पुत्रों को खाने के लिए प्रेरित करने लगे। राजा गुरु पुत्रों को वैसे ही खाने लगा जैसे सिंह मृगों को खाता है। वशिष्ठ जी को जब पता चला कि विश्वामित्र ने मेरे पुत्रों को मरवाया है, तो उन्होंने उनके शोक को वैसे ही सहन किया, जैसे पृथ्वी महा पर्वत के बोझ को धारण करती है। उन्होंने आत्म हत्या का निश्चय किया, किन्तु बदले में विश्वामित्र के पुत्रों का नाश की इच्छा नहीं की। वे सुमेरु पर्वत की चोटी से नीचे गिरे, किन्तु पर्वतों का ढेर उन्हें रुई के समान सुखदायी हुई। जब इस प्रकार मृत्यु नहीं हुई, तो महावन में अग्नि लगाकर उसमें प्रवेश किया किन्तु अग्नि बर्फ के समान शीतल हो गई, तब भी नहीं मरे। तब समुद्र तट पर पहुंच कर गले में भारी पत्थर बांध कर गिर पड़े परन्तु डूबे नहीं। समुद्र की तरंगों के सहारे किनारे पर आ गये। जब किसी प्रकार से मृत्यु नहीं हुई तो निराश होकर आश्रम में लौट आये।

अति क्षमाशील तथा पुत्रों की जीवन मृत्यु में समबुद्धि वशिष्ठ थे। कल्प भेद से यह दूसरे वशिष्ठ प्रतीत होते हैं। आश्रम में आने पर पुत्रों को न देखकर अति दुखी हुए। तब अपने शरीर को रस्सियों में जकड़ कर नदी में कूद पड़े। तब नदी ने इनके बन्धन काटकर किनारे पर छोड़ दिया। उन्होंने इस नदी का नाम 'बिपाशा' रखा। इसको इस समय व्यास नदी कहते हैं। इस पर हेमवती नाम की नदी में जिसमे भयंकर जीव जन्तु रहते थे, कूद पड़े। नदी सौभागों में बंट गई वह 'शतद्रु' हुई। फिर आश्रम में आ गये।

जब आश्रम की ओर लौट रहे थे, उनके पीछ शक्तिदेव की पत्नी उनकी पुत्रवधू अदृश्यन्ती जिनका दूसरा नाम 'दृषद्वती' भी है जा रही थी। ऋषि ने पीछे देखा छः अंगों से अलंकृत पाठ कर रही थीं। लम्बा घूंघट निकाले थीं। उन्होंने पूछा, ''तुम कौन हो।'' उसने कहा, ''मैं आपके पुत्र की धर्मपत्नी अदृश्यन्ती हूं।'' वसिष्ठ जी ने कहा, ''हे पुत्री! मैं आश्रम में अपने पुत्र शक्तिदेव से नित्य वेद पाठ सुनता था, वह नहीं रहा। अब कौन मुझे वेद सुनाएगा। पुत्रवधू ने कहा हे मुने! आपके पुत्र का तेज मेरे गर्भ में है। वह मेरे गर्भ में बारह वर्ष से वेदाभ्यास कर रहा है। उसके वेद पाठ की ध्वनि आपको सुनाई पड़ी है।'' ऋषि अदृश्यन्ती के वचनों से प्रसन्न हुए। अब मेरा वंश जीवित रहेगा। मरने का संकल्प त्याग दिया। जिस समय वे अपनी पुत्र वधू के साथ लौट रहे थे, उस समय निर्जन वन में राजा को देखा। राजा ने वशिष्ठ जी को खाने की इच्छा की। अदृश्यन्ती भयभीत हो गई। उन्होंने वशिष्ठ जी से कहा, वह कठोर लाठी लिए यमराज के समान मेरी ओर आ रहा है। आपके अतिरिक्त गर्भस्थ बालक की रक्षा कोई दूसरा नहीं कर सकता। आप मेरी रक्षा करें, मुझे लगता है कि हम दोनों को खा जाएगा। वशिष्ठ जी बोले, ''पुत्री भयभीत न हो। जिससे तुम डरती हो, वह तो राजा कल्माषपाद है।'' ऋषि ने ऐसा कहकर उसे अपनी ओर आता देखकर हुंकार की। अभिमन्त्रित जल से राजा को स्नान करवाया। राजा शाप मुक्त हुए। उस राजा का तेज बारह वर्ष तक शक्तिदेव से उसी प्रकार ग्रसित था, जैसे सूर्य राहु से ग्रसित होता है। शाप मुक्तराजा उसी प्रकार सुशोभित हुए जैसे सूर्य के तेज से सायंकालीन बादल सुशोभित होता है। उसने ऋषि को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा, ''हे गुरुदेव! मैं महाराज सुदास का पुत्र सौदास आपका शिष्य हूं, कहिये आप की क्या इच्छा है।'' ऋषि ने कहा, ''मेरी इच्छा पूरी हो गई। तुम जाकर राज्य करो। आगे किसी ब्राह्मण का निरादर न करना।'' राजा चले गये।

(इति शक्तिदेव का चरित्र पूर्ण हुआ।)

॥ त्रेतायुग खण्ड का पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ इति त्रेयायुग सम्पूर्णम् ॥

अथ द्वापर खण्ड का प्रारम्भ

१६०. महर्षि पराशर जी

करणातीतं चिद्रूपं परिपूर्णं परायणम्।
परमानंदसन्तुष्टं पराशरमहं श्रये॥

(गुरुवंश काव्य से)

चौदह इन्द्रियों से परे, ज्ञान स्वरूप, परिपूर्ण, परायण, परमानंद स्वरूप में सन्तुष्ट पराशर जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं।

वशिष्ठ जी का वचन सुनकर राजा ने कहा, मैं अब भविष्य में ब्राह्मणों का सम्मान व पूजन करूंगा। पितृऋण से उऋण होने के लिए मुझे वरदान दें। ऋषि ने कहा, तथास्तु तम्हारे सन्तान होगी।

इधर बाहर वर्ष के पश्चात् शक्तिदेव की पत्नी ने पति के समान ही तेजस्वी वंश वृद्धि करने वाले पुत्र को जन्म दिया। वशिष्ठ जी ने स्वयं अपने पौत्र का जात कर्मादि संस्कार किया। जब बालक गर्भ में ही था, उसी समय उन्होंने प्राण त्यागने का निश्चय किया था। अतः उन्होंने इनका नाम 'पराशर' रखा। धर्मात्मा पराशर वशिष्ठ जी को पिता जी कहते थे। एक दिन माता के सामने उन्होंने तोतली बोली में बाबा को पिता जी कहा, मधुर भाषा में बाबा को पिता कहते सुनकर माता ने कहा, "हे पुत्र! यह तुम्हारे पिता नहीं हैं। तुम्हारे पिता के पिता-बाबा हैं। बेटा तुम्हारे पिता को वन में एक राक्षस ने खा लिया था।" बालक माता की बात सुनकर बहुतदुखी हुआ। उन्होंने क्रोध में आकर त्रैलोक्य नाश का विचार किया। पौत्र की ऐसी कठोर प्रतिज्ञा सुनकर वशिष्ठ जी ने पौत्र को रोका। वशिष्ठ जी तथा पुलस्त्य जी के समझाने से क्रोध त्याग दिया।

पुलस्त्य जी ने समझाते हुए कहा, "इसमें राजा का दोष नहीं है। तुम्हारे पिता जी ने उसे राक्षस होने का शाप दिया था, तभी वह उन्हें खा गया। विश्वामित्र जी केवल निमित्तमात्र हैं। तुम्हारे पिता स्वर्ग में आनन्द भोग रहे हैं तथा तुम्हारे ९९ चाचा भी देवताओं के साथ बिहार कर रहे हैं। तुम्हारे पितामह वशिष्ठ के समान त्रैलोक्य में कोई

ऋषि क्षमाशील नहीं होगा। तुम उनके पौत्र होकर ऐसा काम करते हो, जो अति निन्दनीय है। तुम्हें यह शोभा नहीं देगा।''

दोनों ऋषियों के समझाने से पराशर जी ने क्रोध शान्त किया। पितामह तथा पुलस्त्य जी के चरणों में प्रणाम किया एवं जिस यज्ञाग्नि में हवन करने का निश्चय किया था, उस अग्नि को हिमालय में डाल दिया। पितामह वशिष्ठ जी ने आशीर्वाद देते हए कहा, ''तुमने मेरी आज्ञा से क्रोध त्यागा है। अतः मैं आशीर्वाद देता हूं कि बिना पढ़े ही तुम्हें चारों वेदों का अंगों, उपाङ्गों सहित धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पुराणेतिहास का ज्ञान होगा तथा साक्षात् भगवान् विष्णु अपने ज्ञान की सम्पूर्ण कलाओं सहित तुम्हारे पुत्र के रूप में प्रकट होकर वेद व्यास के रूप में वेदों का विस्तार तथा इतिहास पुराण की रचना करेंगे। पराशर जी ने साठ हजार वर्ष तक गायत्री मंत्र जप करते हुए कठोर तपस्या की। उनको तप से विचलित करने के लिए इन्द्र ने तिलोत्तमा आदि अनेक अप्सराएं भेजीं, किन्तु वे विचलित नहीं हुए। समाधि से उठकर जब आप यमुना तट पर पहुंचे, वहां पर नौका की प्रतीक्षा की।'' यह कथा आगे दी जाएगी। **(विष्णु पुराण प्र० अंश प्रथम अध्याय)**

पराशर जी का उपदेश (पाराशर स्मृति से)

वैदिक सनातन धर्म तथा वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के लिए सत्ताईस ऋषियों ने सत्ताईस स्मृतियां रची हैं। उन्हें धर्मशास्त्र कहा जाता है। चार युगों के लिए पांच स्मृतियों की प्रधानता है।

कृते ते मानवाःधर्मास्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शंख लिखितौ, कलौ पाराशरः स्मृतः॥

सत्य युग में मनुस्मृति, त्रेता में गौतम स्मृति, द्वापर में शंख तथा लिखित स्मृति तथा कलियुग में पाराशर स्मृति के अनुसार धर्म का पालन करना चाहिए।

एक बार द्वापर के अन्त तथा कलियुग के प्रारम्भ में हिमालय पर्वत के देवदारु वन में अपने आश्रम में बैठे हुए व्यास जी से मुनियों ने पूछा हे सत्यवती नन्दन! कलिकाल में मनुष्य स्वधर्म पालन कैसे करेंगे। उनका वचन सुनकर सूर्य के समान तेजस्वी व्यास जी ऋषियों से बोले, मैं स्मार्त धर्म के तत्त्व को नहीं जानता। मेरे पिता जी जानते हैं।

उनसे पूछो। तब धर्म तत्त्व के जिज्ञासु ऋषि व्यास जी को आगे करके बद्रिकाश्रम में पराशर जी के आश्रम में पहुंचे। सबने उन्हें प्रणाम किया। व्यास जी ने पूछा, हे पिता जी, आप यदि मुझ पर विशेष स्नेह करते हैं, तो मुझे धर्म का तत्त्व समझावें। मैंने मनु, वशिष्ठ, कश्यप, गर्ग, गौतम, शुक्र, अत्रि, विष्णु, संवर्त, दक्ष, अंगिरा, शातातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, शंख, लिखित, कात्यायन, वाल्मीकि आदि ऋषियों की स्मृतियां पढ़ी हैं। आपने जो वेदों का भाष्य किया है, वह मुझे कण्ठ है, किन्तु कलियुग आने पर यह सब शास्त्र दुर्लभ हो जाएंगे। कलियुगी मनुष्य अपने धर्म का पालन कैसै करेंगे?

व्यास जी का प्रश्न सुनकर धर्म के स्थूल तथा सूक्ष्म रूप का निर्णय करने के पहले उन्होंने पूर्व मन्वन्तर के पराशर जी का ध्यान तथा प्रणाम करने के अनन्तर कहा, हे मुनियो, हे पुत्रो! मैं धर्म का निर्णय करता हूं। सुनो! प्रत्येक कल्प के अन्त में धर्म शास्त्रों के नष्ट हो जाने पर धर्म का निर्णय करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश बचे रहते हैं। वेदों की रचना कोई ऋषि देवता आदि नहीं करते, परन्तु पूर्व कल्पीय वेदों का स्मरण ब्रह्मा जी करते हैं। ब्रह्मा जी के समान ही मनु आदि ऋषि भी धर्म शास्त्रों का स्मरण करते हैं। चारों युगों के धर्म भिन्न-भिन्न हैं। सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ, कलियुग में दान विशेष धर्म हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य युग के धर्म का अनुष्ठान दूसरे युग में नहीं करना चाहिए किन्तु इन की प्रधानता रहती है। सत्ययुग में पाप करने वाले देश का त्याग कर दे। त्रेता में ग्राम, द्वापर में कुल तथा कलियुग में केवल पाप कर्म करने वाले को त्याग देना चाहिए। सत्ययुग में पापी से बात करने से पाप होता है। त्रेता में छूने से, द्वापर में अन्न खाने से तथा कलियुग में पाप करने से पतित होता है। सत्ययुग में वरदान, शाप का फल उसी समय होता है। त्रेता में दश दिन में। द्वापर में एक मास में तथा कलियुग में एक वर्ष में, किसी ग्रन्थ में तीन वर्ष माना है। सत्ययुग में दाता जाकर दान करते थे। त्रेता में बुलाकर के, द्वापर में मांगने पर, कलि में सेवा करा कर दान देते हैं। जाकर दान देना उत्तम है। बुलाकर देना मध्यम है। मांगने पर देन अधर्म है। सेवा कराके दिया हुआ दान निष्फल होता है। कलियुग में धर्म पर अधर्म की, सत्य पर झूठ की, राजाओं पर चोरों की, पुरुषों पर स्त्रियों की जीत होती है। कलियुग में अग्नि होत्र तथा गुरु पूजा समाप्त हो जाएगी। कुमारी कन्याओं के बच्चे पैदा होंगे। सत्ययुग में

हड्डियों में प्राण, त्रेता में मांस में, द्वापर में रक्त में तथा कलियुग में अन्न में प्राण होंगे। अर्थात् सत्य युग के तपस्विनों की जब तक हड्डियां नहीं गलती थीं, तब तक प्राण रहते थे। त्रेता में जब तक मांस रहता था, द्वापर में जब तक शरीर में खून रहता था तथा कलियुग में अन्न न मिलने पर प्राण निकल जाते हैं। हे ब्राह्मणों! यह चारों युगों के धर्म हैं। अतः किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। मुझ से पूर्व वर्ती पराशर जी ने चारों युगों के धर्म कहे थे। उनका स्मरण करके अब मैं कलि के उपयोगी धर्मों को कहूंगा।
(पराशर स्मृति का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ।)

॥ द्वापर युग खण्ड का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ दूसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

आदि पराशर मुनि का मत है कि पुण्य से पाप नष्ट होता है। चारों वर्ण आश्रमों का आचार मुख्य धर्म है। आचार से हीन मनुष्य धर्म विमुख हैं। कलिकाल में ब्राह्मण षट्कर्म करने वाला, नित्य देव पूजन, अतिथि पूजन, सन्ध्या, स्नान, जप, बलिवैश्व देव इन कर्मों में लगा दुखी नहीं होता। अतिथि मूर्ख हो या विद्वान्, शत्रु हो या मित्र, सब का सत्कार करना चाहिए। अतिथि का आसन, ज्येष्ठ श्रेष्ठ का पाद प्रक्षालन, मधुर वचन, अन्न दान आदि से सत्कार करें। जाने पर थोड़ी दूर छोड़ने जाए। जिसके घर से अतिथि निष्फल जाता है, उसके पितृ चौदह वर्ष तक उसका श्राद्ध पिण्ड दान ग्रहण नहीं करते। जो नित्य प्रति एक हजार मन लकड़ी से तथा सौ घड़े घी से हवन करता है, यदि उसके घर से अतिथि निराश जाता है, तो उसका वह पुण्य निरर्थक हो जाता है। **''काष्ठ भार सहस्त्रेण घृत कुम्भ शतेन च। अतिथिर्याति भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः॥''** अतिथि से उसका नाम, गोत्र, विद्या आदि नहीं पूछना चाहिए। वह सर्व देव मय है। जो कभी न आया हो, जिस के आने की तिथि न हो, वह अतिथि है। ग्राम या घर का व्यक्ति अतिथि नहीं है। यदि गृहस्थ के घर में संन्यासी आये, तो पहले जल दे, फिर भिक्षा दे, फिर जल दे, वह भिक्षा सुमेरु के समान, जल सागर के तुल्य है। यति का सम्मान इन्द्र के समान करे। जो गृहस्थ बिना बलिवैश्व देव किये भोजन करता है, वह कौवे का जन्म पाता है।

"शिरोवेष्ट्य तुयो भुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः।
वाम पाद करः स्थित्वा तद्वैरक्षांसि भुञ्जते।"

जो सिर ढककर, दक्षिण मुख को बैठकर तथा बायें पैर पर हाथ रखकर भोजन करे, उसका वह भोजन राक्षसी भोजन है। संन्यासी को स्वर्ण आदि देने वाला, ब्रह्मचारी, विधवा या कन्या को पान देने वाला, चोरों को अभय देने वाला, दाता नरकगामी होता है। संन्यासी को सफेद वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। पान न खाय, धातु का दान न ले, इसको देने लेने वाले दोनों नरकगामी होते हैं। जो गृहस्थ वेदज्ञ ब्राह्मण का सत्कार नहीं करता, विना भोजन कराय, कर लेता है, वह अन्न के रूप में पाप ही खाता है। ब्राह्मण का मुख, विना कांटो का खेत है, उनमें जैसा बीज बोता है वैसे ही फल प्राप्त करता है। नियम रहित तथा निरक्षर ब्राह्मण, जिस ग्राम में घूमता है, राजा को चाहिए उसे दण्ड दे। नमक, शहद, तेल, दही, मट्ठा, घी, दूध इनको शूद्र बेच सकते हैं, परन्तु शुद्र अभक्ष्य मांस आदि तथा अपेय मदिरा आदि न बेचें। बेचने से पतित हो जाते हैं। **"कपिला-क्षीरपानेन, ब्राह्मणी गमनेन च। वेदाक्षर विचारेण, शूद्रस्य नरकं ध्रुवम्"** शूद्र कपिलागऊ का दूध पीने से, ब्राह्मणी से सम्बन्ध करने से, वेद पढ़ने से निश्चय ही नरक प्राप्त होता है।

पराशर जी आदि पराशर के कहे हुए कलिधर्मों को कहते हैं। कलियुग में ब्राह्मण छः कर्मों में लगा हुआ कृषि करा सकता है, किन्तु भूखे, प्यासे, थके, अंगहीन रोगी तथा नपुंसक बैल को हल में न जोते। सर्वांगीण निरोगी तथा अघाये बैल को आधे दिन तक हल या गाड़ी मेंजोत सकता है। तदनन्तर मध्याह्न में स्नान, सन्ध्यादि करे। इसके बाद वेदज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराये। ब्राह्मण को घी, दूध, अन्न आदि बेचना नहीं चाहिए। हराचारा, लकड़ी न बेचे। हल चलाने वाला ब्राह्मण महादोषी है। आठ बैल का हल धर्म हल है, छः बैल का हल वृत्ति हल, चार बैलों को हल में जोतने वाला ब्राह्मण दया रहित कसाई है। दो बैलों को हल या गाड़ी में जोतने वाले ब्राह्मण को गो हत्या का पाप लगता है। यदि विवशता से दो बैलों को जोते, तो दोपहर तक काम ले। दो बैलों से दोपहर तक, चार बैलों से तीसरे पहर तक; आठ या छः बैलों से शाम तक काम लिया जा

सकता है। इस विधि से बैलों से काम लेने वाला ब्राह्मण नरकगामी नहीं होता। एक वर्ष तक मछली मारने वाले को जो पाप होता है, उतना पाप एक दिन में किसान को होता है। मछली, पक्षी का हत्यारा तथा अन्न न दान करने वाले किसान इनको बराबर पाप लगता है। किसान को वृक्षों के काटने, पृथ्वी को खोदने, कीड़ों को मारने से जो पाप होता है, वह पाप अन्न दान से छूट जाता है। जो ब्राह्मण ऐसा नहीं करता, वह चोर, पापी, हत्यारा है। आय का छठा भाग किसान राजा को दे। इक्कीसवां भाग ब्राह्मणों को, इकतीसवां भाग देवताओं को देने से किसान पाप से रहित हो जाता है। यदि क्षत्रिय कृषि करे, तो वह ब्राह्मण का पूजन करे। शूद्र आदि कृषि या व्यापार करे तो दान करे।

शुद्धि-अशुद्धि विचार

कलियुग में ब्राह्मण को सूतक जन्मना तीन दिन, क्षत्रिय को बारह दिन वैश्य को पन्द्रह दिनों तक शूद्र को एक महीना सूतक रहता है। मरणाशौच (पातक) ब्राह्मण दस दिन में, क्षत्रिय बाहर दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन तथा शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है। वेदज्ञ ब्राह्मण की शुद्धि एक दिन में, वेद पाठ से रहित कीदस दिन में, जन्म कर्म से भ्रष्ठ सन्ध्योपासना आदि से रहित की शुद्धिदस दिन में होती है। घर में बकरी, गाय, भैंस, ब्राह्मणी, भूमि पर बरसा हुआ जल दस दिन में शुद्ध होता है। सींग वाला पशु यदि अग्नि से या प्रदेश में मरता है, तो उसकी शुद्धि दस में होती है। संन्यासी की शुद्धि शीघ्र हो जाती है। प्रदेश में मरे ब्राह्मण, जिस की मृत्यु का पता न चले उसका पिण्ड दान भाद्र पद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को करे या करवाये। बिना दांत के बच्चे के मरने पर दाह न करे, उनकी अशुद्धि नहीं होती। यदि गर्भ पात हुआ हो तो जितने महीने का बच्चा हो उतने दिन तक सूतक रहता है, किन्तु जान-बूझ कर गर्भ गिराने में महादोष है। आज कल यह प्रथा चल पड़ी है। परन्तु यदि गर्भस्थ बच्चा छः महीनों से ऊपर का हो, तो दस दिन का सूतक होता है। दांत निकलने पर या मुण्डन हो जाने पर बालक की मृत्यु होने पर अवश्य दाह करे। तीन रात्रि तक अशुद्धि रहती है अथवा दांत निकलने से मुंडन तक एक रात्रि की अशुद्धि कही है। मुंडन के बाद उपनयन तक तीन रात्रि में शुद्धि होती है। यदि सन्ध्योपासना करने वाले ब्रह्मचारी की मृत्यु हो जाए, यदि उसे न छुबे तो अशुद्धि

नहीं होती। शिल्पी, कारुक, वैद्य, दासी, नाई, राजा, वेदज्ञ ब्राह्मण इनकी शीघ्र शुद्धि होती है। यदि कोई स्त्री आत्म हत्या कर लेती है, उसकी गति कहते हैं।

आत्म हत्यारा जीव साठ हजार वर्ष तक अन्धतामिस्त्र नरक में जाता है। फांसी लगाकर मरने वाले की अशुद्धि नहीं होती। उसके लिए जलदान न करे, दाह न करे, आंसू न गिराये, क्योंकि इस प्रकार मरने वाले प्राणी को ढोकर ले जाने वाले, दाह करने वाले, फंदा खोलने वाले तप्तकृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होते हैं। गौ या ब्राह्मण से मारे गये व्यक्ति को यदि ब्राह्मण छूवे, ले जाए, दाह करे तो भी यही व्रत करना चाहिए। फिर ब्राह्मणों को भोजन करावे, गौ और बैल दक्षिणा सहित दान करे। **तप्त कृच्छ व्रत की विधि**–छः पल प्रतिदिन गरम पानी तीन दिन तक तीन पल गरम दूध तीन दिन, तीन दिन गरम घी एक पल, तीन दिन केवल हवा खाकर रहे, इसे तप्त कृच्छ कहते हैं।

जो स्त्री दरिद्री, रोगी, धूर्त, पति का अपमान करेन वाली, मरने केबाद कुतिया होती है। पति की आज्ञा के बिना उसका अपमान करके जो व्रत करती है। वह पति की आयु को हरण करने वाली नरकगामिनी होती है। जो स्त्री व्यभिचार करके गर्भपात करे या करवाये उससे बात नहीं करनी चाहिए। उसका त्याग के अतिरिक्त कोई प्रायश्चित नहीं है। जो परिवेत्ती या परिवेत्ता से विवाह करती या करता है, वह कन्या और पति दोनों नरकगामी होते हैं। बड़े भाई के बिना विवाह हुए, छोटा भाई यदि विवाह करता है तो वह 'परिवेत्ता' है और वह कन्या 'परिवेत्ती' कही जाती है, किन्तु आज्ञा प्राप्त करके विवाह करने में दोष नहीं है। यदि ऐसा होता है तो उपरोक्त व्रत करे, किन्तु यदि अग्रज कुवड़ा, बौना, नपुंसक, मूर्ख, जन्मान्ध, बहरा, गूंगा हो तो छोटे को दोष नहीं है। बड़ा पुत्र ही पिता का दाह तथा धर्म कर्म कर सकता है। किन्तु यदि चचेरा बड़ा भाई हो तो छोटे को दोष नहीं है। किन्तु सगा भाई बड़े की आज्ञा प्राप्त करके कर सकता है।

"मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।
सा मृता लभते स्वर्ग यथा ते ब्रह्मचारिणः।
तिस्त्रः कोट्य्योऽर्धकोटी च यावल्लोमानि मानवे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति॥" ३१/३२

जो स्त्री पति की मृत्यु के बाद ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित है, वह ब्रह्मचारियों के समान मरने के बाद स्वर्ग प्राप्त करती है ॥३१॥ और जो स्त्री पति के वियोग को सहन न कर पाये यदि पति के साथ सती होती है, तो उसके पति के शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोयों की संख्या तक वर्षों में वह स्वर्ग लोक में वास करती है। सती प्रथा के सम्बन्ध में तथा सती होने की विधि सत्ययुग खण्ड प्रथम परिच्छेद में विस्तार से दी है, वहीं पर देखें। जैसे सपेरा सांप को बिल से जबरदस्ती निकाल लेता है। वैसे ही वह सती अपने पति को नरक से निकाल कर अपने साथ स्वर्ग ले जाती है।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तीसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

जिस ब्राह्मण को भेड़िये, कुत्ते, गीदड़ आदि ने काट लिया हो। वह स्नान करके गायत्री मंत्र जप से शुद्ध होता है अथवा गो शृंग के जल से स्नान करने से तीन दिन के उपवास से कुशा जल या घी पीकर शुद्ध होता है। अव्रती ब्राह्मणा महानदी के संगम अथवा समुद्र दर्शन स्नान से शुद्ध होता है अथवा वेदज्ञ ब्राह्मण, स्वर्ण जल या घी पीने से शुद्ध होता है। व्रती ब्राह्मण प्रणाम करके उपर्युक्त ब्राह्मणों के दर्शन से शुद्ध होता है। यदि कुत्ते ने सूंघ लिया हो, चाटा हो या नाखून का प्रहार किया हो, तो उस स्थान को जल से धोकर अग्नि से सेंककर शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मणी को कुत्ते, गीदढ़, भेड़िये ने काटा हो, तो ग्रहों तथा नक्षत्रों के दर्शन से शुद्ध होती है। कृष्ण पक्ष में या बादलों में चन्द्र दर्शन न हो तो उस दिशा में देख ले। यदि साधारण ब्राह्मण को काटा हो तो वह शीघ्र स्नान करके बैल की परिक्रमा से शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण, चाण्डाल, कुत्ते, गाय, अग्नि या विष से मरा हो, तो उस ब्राह्मण को बिना मंत्र के साधारण अग्नि में जलाना चाहिए। उसे छूने या ले जाने वाले दाह करके सपिण्डीकरण के बाद ब्राह्मणों की आज्ञा से प्राजापत्य व्रत करें। यदि अग्नि होत्री ब्राह्मण की प्रदेश में मृत्यु हो गई हो तो पृथ्वी पर मृगचर्म बिछा कर उस पर उसका पुतला बनाये और अग्निहोत्र की अग्नि से उसका दाह करे। पलाश की सात सौ डालियां लेकर चालीस से सिर, सौ से गला, दस से भुजाएं, दस से अंगुलियां, दस से जंघा, दो सौ से पेट, आठ-आठ दोनों कंधों में, पांच

से लिंग, इक्कीस से छाती, दो सौ से घुटने, जंघा, पैर अंगूठों पर छः-छः लगावें। छः शमी को गुप्तांगों पर रखकर अरणी स्थापित कर दाहिने हाथ में स्रुवा, बायें हाथ में उपभृत, पीठ में ऊखल व मूशल, हृदय में पत्थर, मुख में चावल घी तथा तिल रखे। दोनों कानों में प्रोक्षणी, आंखों में आज्य स्थाली, कान, नेत्र घ्राण में स्वर्णखण्ड रखे। इस प्रकार अग्निहोत्र की सभी सामग्री कुशा मूर्ति के पास रखकर 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इस मंत्र से पुत्र, भाई या अन्य कोई सम्बन्धी आहुति दे। इस प्रकार से मृतक प्राणी को दाह करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो इसके विपरीत कर्म हैं, वे अल्पायु, अपवित्र तथा नरकगामी होते हैं।

इति प० स्म० का पंचम अध्याय पूर्ण

पराशर जी प्राणियों की हिंसा के सम्बन्ध में कहते हैं। क्रौंच, सारस, हंस, चक्रवाक, मुर्गा तथा सर्प को मारने वाला एक दिन के उपवास से शुद्ध होता है। बगुला, तोता, टिड्डी, कबूतर मारने वाले तीसरे पहर भोजन से शुद्ध होता है। तीतर, कबूतर, तोता, मैना, भेड़िये को मारने वाला जल में खड़े होकर प्राणायाम करने से शुद्ध होता है। रीछ, बाज, खरगोश तथा उल्लू को मारने वाला वायु भक्षण से शुद्ध होता है। निर्दोष क्षत्रिय वैश्य को मारने वाला दो कृच्छ्र व्रत करके बीस गौओं के दान से शुद्ध होता है। वैश्य, शूद्र को मारने वाला चान्द्रायण व्रत करके तीस गौओं का दान करे। यदि ब्राह्मण ने चाण्डाल को मारा है, तो प्राजापत्य व्रत करके दो गोदान करे।

चाण्डाल या भंगी से बात करे, तो गायत्री जप करे। चाण्डाल के साथ सोने वाला तीन रात्रि में शुद्ध होता है। उसके साथ यात्रा करने वाला गायत्री जप करके सूर्यदर्शन करे। उसके छू लेने पर वस्त्र सहित स्नान करे। अनजान में चाण्डाल के बनाये कुयें का पानी पीने वाला एक रात्रि के उपवास से शुद्ध होता है। जिस बर्तन को भंगी, चमार ने छू लिया हो। उसे तीन दिन गोमूत्र में जौ पकाकर खाने से शुद्ध होता है। चाण्डाल के घड़े का पानी पीने वाला इक्कीस दिन का व्रत करे। जिसके पेट में जल चला जाता है, वह सान्तापन व्रत करे। इससे आधा वैश्य के लिए, चौथाई शूद्र के लिए प्रायश्चित है। यदि अन्त्यज के पात्र में रखे हुये जल, दूध दही को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रमाद से पीले,

तो पंचगव्य पीने से ब्रह्मचर्य का पालन करने से, यथा शक्ति दान देने से शुद्ध होता है। यदि अनजान में ब्राह्मण चाण्डाल का अन्न खा ले, तो दस दिन तक गोमूत्र में अन्न पकाने से शुद्ध होता है। रोज १, १ ग्रास दलिया खायें। धोखे में भी यदि कोई चाण्डाल ब्राह्मण के घर में घुसता है तो उसे निकाल कर त्रिकाल सन्ध्या स्नान करके तीन दिन दही, तीन दिन घी, तीन दिन दूध से भोजन करे, दलिया पकाकर खाये। किसी जीव जन्तु का काटा अन्न न ले। दही आदि की मात्रा तीन पल होनी चाहिए। धोबिन, चमारिन, व्याध की स्त्री, बांस का काम करने वाली की स्त्री, किसी द्विजाति के घर में रह जाये, तो उसे विदा करके, गरम घी का सेवन करे। मिट्टी के पात्र अलग रख दें। भोजन करते समय यदि ब्राह्मण पैर छू लेता है, तो भोजन झूठा हो जाता है। खड़ाऊं पहन कर, खाट पर भोजन न करे। भोजन में चाण्डाल तथा कुत्ते की दृष्टि नहीं पड़नी चाहिए। यदि अन्न से भरे हु पात्र में घी से बनी हुई वस्तुएं हैं, इन्हें यदि कौआ कुत्ता सूंघ जाता है, तो इसे फेंके नहीं, छुये या सूंघे भाग को अलग कर दें तो अन्न शुद्ध हो जाता है अथवा अशुद्ध भाग को निकाल कर धोकर पकाने से शुद्ध होता है। वेद मंत्रों से शुद्धि होती है। घी आदि मूल्यंवान वस्तु यदि थोड़ी हो, तो त्याग दे अधिक हो, तो जूठा भाग निकाल दें। घी, दूध दूसरी बार पकाने से शुद्ध हो जाता है। यज्ञपात्र तथा लकड़ी के पात्र गर्म जल से शुद्ध हो जाते हैं। अन्य पात्र मिट्टी से शुद्ध हो जाते हैं।

माता-पिता को चाहिए कि कन्या का विवाह रजो दर्शन से पूर्व कर दे, नहीं तो माता-पिता तथा कन्या का ज्येष्ठ भ्राता तीनों नरक जाते हैं। दस वर्ष से ऊपर कन्या का, ब्राह्मण पति शूद्र का पति है। ऐसी कन्या से संयोग करने वाला ब्राह्मण तीन वर्ष तक भिक्षान्न खाकर गायत्री जप करने से शुद्ध होता है जो ब्राह्मण, चाण्डाल या रजस्वला को छूता है, वह स्नान करके गायत्री जप से शुद्ध होता है। यदि दो रजस्वला ब्राह्मणियां एक-दूसरे को छूती हैं, तो तीन दिन तक निराहार व्रत करने से शुद्ध होती हैं। यदि ब्राह्मणी क्षत्राणी को छू दे, तो आधा कृच्छ्र व्रत करे। यदि ब्राह्मणी वैश्य स्त्री को छू दे, तो चतुर्थांश व्रत करे, यदि ब्राह्मणी शूद्र को छू दें तो एक दिन का व्रत करे। शूद्रा स्त्री दान से शुद्ध हो जाती है, यदि स्त्री में रोग हो, तो अशुद्धि नहीं मानी जाती। ऐसी स्त्रियां उत्तम कर्म नहीं कर सकतीं। मासिक धर्म वाली स्त्री पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी,

तीसरे दिन धोबिन तथा चौथे दिन शुद्ध होती है। मदिरा स्पर्श से युक्त पात्र अग्नि में पकाने से शुद्ध होता है। यदि कांसी के बर्तन को गौ या कुत्ते ने छू लिया हो, तो दस बार खटाई से मांजने पर शुद्ध होता है। कांसी के पात्र में कुल्ला करने से या कुल्ला कर लिया हो तो छः महीने धरती में दबाने से शुद्ध होता है। लोहे का पात्र अशुद्ध होने पर त्याग दे। चांदी, सोने या मणियों के पात्र जल में धोने से शुद्ध होते हैं। पत्थर का पात्र तराशने से शुद्ध होता है। मिट्टी का पात्र जलाने से, अन्न की शुद्धि धोने से, रूई वाले वस्त्रों की शुद्धि धूप दिखाने से होती है। बिल्ली, मक्खी, कीट, पतंग यह जीव शुद्ध अशुद्ध दोनों को छूते हैं। उनका छुवा अशुद्ध नहीं होता। बहती नदी, हवा की धूल, वृद्धा तथा बालक कभी अशुद्ध नहीं होते। छींक आने पर, थूकने में, जूठे होने पर, पतितों से बातचीत करने पर जल के अभाव में दाहिना कान छूने से शुद्धि होती है।

"अग्निरायश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा।
एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे॥३८॥
प्रभासादीनि तीर्थानि, गंगाद्याः सरित स्तथा।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुर ब्रवीत॥३९॥"

मनु जी कहते हैं कि अग्नि, जल, चारों वेद, सूर्य, चन्द्रमा, वायु प्रभास आदि तीर्थ, गंगादि नदियां ब्राह्मण के दाहिने कान में निवास करती हैं।

सर्वप्रथम अपने शरीर की रक्षा करें, पश्चात् धर्म करे, क्योंकि शरीर रहने पर ही धर्म हो सकेगा। आपत्ति काल में शुद्धि अशुद्धि का विचार न करे। **(पराशर स्मृति का छठा तथा सातवां अध्याय सम्पूर्ण।)**

॥ इति द्वापर युगखण्ड का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ चौथा अध्याय प्रारम्भ॥

यदि किसी के खूंटे पर गाय मर जाए, तो वह अपने पाप को ब्राह्मण को बताये बिना भोजन न करे। यदि करता है तो पाप होता है। इसके अतिरिक्त भी छोटा बड़ा पाप किया हो, वस्त्रों सहित स्नान करके भीगे वस्त्रों से सभा में जाए, वेदज्ञ ब्राह्मणों को प्रणाम करके अपने पाप को कहे। सन्ध्या, गायत्री, अग्निहोत्र से रहित हजारों ब्राह्मणों की

परिषद् नहीं है ऐसे मूर्ख ब्राह्मण यदि कोई उपाय बताते हैं, तो उपाय करने से शुद्ध नहीं होता, किन्तु उपाय बताने वाले को सौ गुणा पाप लगता है। अतः वेदज्ञान रहित ब्राह्मणों को उपाय नहीं बताना चाहिए। अतः वेदवित् तीन चार ब्राह्मणों की सभा परिषत् है। जैसे पत्थर पर पड़ा पानी सूर्य तथा वायु से नष्ट होता है। वैसे ही वह पाप सुनाने से नष्ट होता है। एक भी वेदज्ञ ब्राह्मण का वचन परम प्रमाण है। वेद विहीन ब्राह्मण लकड़ी के हाथी के समान, चर्म मृग, निर्जनग्राम व जलविहीन कूपवत् है। गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अशुद्ध है। गायत्री तत्त्व के जानने वाले ब्राह्मण पूजनीय हैं।

''दुः शीलो द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः।
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेत् क्षीरवतीं खरीम्॥
३३॥ अ० ८''

दुराचारी ब्राह्मण भी पूजनीय हैं, परन्तु जितेन्द्रिय शूद्र पूज्य नहीं है। कौन दुष्टा गाय को छोड़कर दूध वाली गधी को दुहेगा। पराशर जी का पहला वचन ब्राह्मण के हित में है तथा दूसरा वचन तीनों वर्णों का कल्याण करने वाला है। वेदज्ञ ब्राह्मण की आज्ञा उल्लंघन करने वाले राजा को सौ गुना पाप लगता है।

गो हत्यारा अथवा अन्य पाप करने वाला पापी देव मन्दिर में जाकर शिखा सहित बाल बनवाये। रात दिन गायों के बीच में रहे। गायों के पीछे सर्दी, गर्मी वर्षा में चले। इन उपद्रवों से अपनी रक्षा न करे। गौयें यदि अपने या दूसरे के खेत में चरें, तो मना न करे। उनके जल पीने पर जल पिये, भोजन करने पर भोजन करे, बैठने पर बैठे। यदि किसी विपत्ति कीचड़ आदि में फंस जाएं तो उनकी रक्षा करे। **''ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। मुच्यते ब्रह्म हत्यायाः गोप्ता गो ब्राह्मणस्य च'' ॥४३॥ अ० ८**

जो ब्राह्मण तथा गौओं के लिए प्राण त्यागता है। वह गो ब्राह्मण रक्षक ब्रह्म हत्या से छूट जाता है। गो हत्यारा प्राजापत्य व्रत को चार भागों में करे। विधि–एक दिन एक समय दिन में, एक दिन रात्रि में, एक दिन बिना मांगे, एक दिन हवा खाकर रहे। यह एक भाग हुआ। दूसरे भाग में दो दिन एक बार, दो दिन रात्रि में, दो दिन बिना मांगे, दो दिन

वायु खाकर रहे।तीसरे भाग में तीन दिन एक बार, तीन दिन रात्रि में, तीन दिन बिना मांगे, तीन दिन वायु खाकर रहे। चौथे भाग में चार दिन एक बार, चार दिन रात्रि भोजन, चार दिन अयाचित तथा चार दिन वायु पीकर रहे। इस प्रकार कुल चालीस दिन का प्राजापत्य व्रत है। व्रत की पूर्ति पर ब्राह्मण भोजन करा कर दक्षिणा दे। पवित्र मंत्रों का जप करे। इस उपाय के करने से गो हत्या के पास से छूट जाता है। इति अष्टमोऽध्यायः॥

चार प्रकार की गो हत्या–गौओं को रोकने, बांधने, जोतने तथा मारने से चार प्रकार की गो हत्या लगती है। रोकने में चौथाई, बांधने में आधा, जोतने में पौन तथा मारने पर पूरा प्रायश्चित करे। गोचर भूमि में ऊंचा नीचा पैर पड़ने पर, नदी तट पर, समुद्र तट पर, किसी जलाशय के समीप गौओं को रोकने से किसी की मृत्यु हो जाती है, तो पाप लगता है। यदि जोतने से रस्सी का घाव गले में हो जाता है, इस कारण से गौ मर जाए, तो यह बन्धन है। रोकने से मरे रोध कहते हैं। हल या गाड़ी में बैल को चलाने से, मारने से जो मर जाता है, वह जोतबन्ध है। क्रोध में डंडा या पत्थर मारने से गाय या बैल मरता है तो वह गो हत्या है।

चाबुक लक्षण–गौओं या बैलों को हांकने के लिए, अंगूठे के बराबर मोटा भुजा प्रमाण लम्बा, गीले पलाश (ढाक) का पत्तों सहित डंडा होना चाहिए. उसके प्रहार से यदि पशु गिर जाता है। थोड़ी देर में उठकर दस पांच कदम चल जाए और खाने पीने लग जाए, तो दोष नहीं है। यदि गर्भवती गौ के थोड़े महीनों का ही गर्भपात हो जाए, तो चौथाई, आधा हो तो आधा, पूरे दिन के बाद गर्भपात होता है, तो पूर्ण हत्या लगती है। चौथाई में हाथ पैरों के बाल कटवा दे, आधी में दाढ़ी मूंछ, पौन में शिखा छोड़कर पूरा शिर, पूरे में शिखा सहित बाल बनवाये। चौथाई में वस्त्र का जोड़ा, आधी में कांस्य पात्र, पौन में गाय या बैल का दान, पूरे में दो गायों का दान करे। पत्थर या डंडा मारने से यदि गाय बैल छः महीने जीवित रहे, तो दोष नहीं है। गऊ के शरीर पर मारने से यदि घाव हो जाता है, तो स्वयं तेल लगाये जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो। स्वस्थ होकर चारा पानी खाने लगे। तब वेदज्ञ ब्राह्मण को प्रणाम करके गाय बैल को खुला छोड़ दे। यदि उपचार करने पर भी स्वस्थ न हो, तो आधा प्रायश्चित्त करे। डंडा ढेला या पत्थर मारने

वाले का यह प्रायश्चित्त है। लकड़ी मारने वाला सान्तापन व्रत, मिट्टी का ढेले मारने वाला चालीस दिन का प्रजापत्य, पत्थर मारने वाला तृप्त कृच्छ, शस्त्र परहार करने वाला अति कृच्छ करे। सान्तापन व्रत में पांच, प्राजापत्य में तीन, तप्त कृच्छ्र में आठ, अतिकृच्छ्र में१३ गायों का दान करें। जिस जीव की हत्या हो, उसकी मूर्ति बनवा कर दान करे। यह मनु जी की आज्ञा है। अधिक बोझ लादने में, नाथने में, नदी पर्वत लांघने में प्रायश्चित करे। महाभारत में युधिष्ठिर से भीष्म जी ने बैलों को नाथने तथा गाड़ी में जोतने का महादोष कहा है। युधिष्ठिर नित्य प्रति हस्तिनापुर से कुरुक्षेत्र में पितामह के दर्शन तथा उपदेश सुनने के लिए नाथे हुए बैलों को गाड़ी में जोतकर जाते थे। जब से इसका दोष सुना, तब से बैलों को नाथना तथा गाड़ी में जोतना छोड़ दिया। अत: धर्म की बात की सुनकर हमें भी तदनुरूप आचरण करना चाहिए। रोकने से लेकर जोतने तक छः प्रकार की गो हत्या कही है।

गौ की रस्सी–नारियल, सन, मूंज, पेड़ के छालकी, लोहे की जंज़ीर से गौ को नहीं बांधना चाहिए। गाय या बैल को दक्षिणामुख करके कुश कांस की रस्सी से बांधना चाहिए। इन रस्सियों में बंधे हुए पशु की आग लगने से यदि मृत्यु हो जाती है तो पाप नहीं लगता। गऊ को कुएं, तालाब बावली में गिराने से, कटा पेड़ उस पर फेंकने से या कसाई के हाथ बेचने से गो हत्या होती है। घर गिर जाने से यदि गऊ या बैल मर जाए, तो दोष नहीं है। घेरे में बंधी गाय के पेट में बच्चा टेढ़ा हो जाने से यदि गाय मर जाए तो हत्या नहीं है।

गाय के रोगी होने पर अनाड़ी से उपचार कराने से यदि मर जाती है तो दोष है। यदि बहुत लोग गाय को घेर कर प्रहार करते हैं और मृत्यु हो जाती है, मारने वाले का पता न चले, ऐसी स्थिति में राजा या ग्राम का मुखिया यह पता लगाये। यदि कइयों के हाथ से मरी है, तो चौथाई पाप लगता है। गो हत्यारे का रंग पीला पड़ जाए, रोगी हो जाए, सूख जाए, मुख से लार टपकने लगे। जिसके हाथ में घास देखकर भी गाय खाने न, आवे तो समझ लो कि इसने गो हत्या की है। यह मनु जी ने पहचान बताई है। इसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। वह केश कटवा कर प्रायश्चित करे। यदि क्षौर न करवे,

तो दुगुना पाप होता है। यदि ऐसा नहीं करता, उसकी बात का जो समर्थन करता है, वह भी नरक गामी होता है। यदि किसी स्त्री से गो हत्या हो जाती है, तो उसके लिए पुरुषों जैसे प्रायश्चित नहीं है। वे त्रिकाल स्नान करके देव पूजन करे, घर में ही रहकर व्रत आदि करे, यह नियम उनके लिए पवित्र है। जो गो हत्यारा अपने आप को छिपाता है वह काल सूत्र नरक में जाता है। इसके बाद वह यहां पर नपुंसक दुखी तथा कुष्टी सात जन्म तक होता है। अत: अपने पाप को कह देना चाहिए। **पराशर स्मृति नवां अध्याय पूर्ण।**

॥ इति द्वापर युग खण्ड का चौथा अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ पांचवां अध्याय ॥

अगम्यागमन प्रायश्चित्त–पराशर जी ऋषियों से कहते हैं कि परस्त्री भोगी वह चान्द्रायण व्रत करके ब्राह्मण भोजन तथा दो गायों का दान करे। चाण्डाली से भोग करने वाला तीन दिन निर्जल व्रत करे। फिर वेदज्ञ ब्राह्मणों की आज्ञा से शिखा सहित क्षौर करवा कर दो प्राजापत्य व्रत करे। कुशाजल मिला कर पंचगव्य पिये। गायत्री जप करके दो जोड़ी गऊ दान करे। यदि क्षत्रिय या वैश्य चाण्डाली से सम्पर्क करे तो वह भी ऊपर लिखा प्रायश्चित करे। यदि शूद्र उससे सम्बन्ध करता है तो प्राजापत्य या कृच्छ्र व्रत करने के बाद चार जोड़ी गोदान करे। यदि कोई माता बहन या पुत्री से कुकर्म करता है तो तीन कृच्छ्र, तीन चान्द्रायण के बाद अपना सिर काटने से शुद्ध होता है। मौसी से सम्बन्ध करने वाला लिंग काट दे। यदि भूल से करता है तो दो चान्द्रायण के बाद दस जोड़ी गऊ दान करे। यदि सौतेली माता, मां की सहेली, भौजाई, गुरु पत्नी, भतीजी, भाभी या सगोत्रा से सम्बन्ध करे, तो तीन प्राजापत्य १२० दिन का व्रत करे, एक जोड़ी गोदान से मुक्त होता है। यदि कोई किसी पशु से भैंस, ऊंटनी, वानरी, गधी, शूकरी से भोग करे, तो चालीस दिन का प्राजापत्य व्रत करे। गो गामी तीन रात्रि व्रत करके एक गाय ब्राह्मण को दे। भैंस, ऊंटनी, गधी से सम्पर्क करने वाला चौबीस घंटे के व्रत से शुद्ध होता है। प्रत्येक मनुष्य को प्रतिक्षण घर में, मार्ग में, युद्ध, दुर्भिक्ष आदि में पत्नी पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए। यदि कोई स्त्री चाण्डाल से सम्बन्ध करती है, तो वह दस वेदपाठी

ब्राह्मणों को अपना पाप बताकर गले तक गऊ के गोबर के कुण्ड में चौबीस घंटे निराहार पड़ी रहे। फिर सिर के सारे बाल घुटाकर गौ मूत्र में जौ की खिचड़ी पकाकर खावे। फिर तीन दिन उपवास करके एक रात्रि जल में रहे। बाद में शंख पुष्पी जिसको पंजाबी में पोली कहते हैं, उसकी जड़, पत्ते, फूल, फल इनको सोने के जल से पीस कर उबाल कर उसका जल पिये। एक समय भोजन करे जबतक ऋतुमती न हो, तब तक यह करे। फिर ब्राह्मण भोजन कराकर एक जोड़ी गोदान दे, तब शुद्ध होती है। मदिरापान करने वाली स्त्री का आधा शरीर पतित हो जाता है। वह पंचगव्य में कुशा जल मिलाकर ब्रह्म कूर्च सेवन करे, एक रात्रि का उपवास करे। यदि स्त्री अज्ञान से, क्रोध से, भय से बिना कर्म किये लौट आती है, तो उसे दस दिन के भीतर प्रायश्चित करना चाहिए। यदि नहीं करती तो पति उसे त्याग दे। उसका पति कृच्छ्र व्रत, भाई बन्धु अर्द्ध कृच्छ्र व्रत करें। कुलटा स्त्री का पति, सास, ससुर, माता-पिता सब अशुद्ध हो जाते हैं। उस घर की शुद्धि के लिए घर की मिट्टी खोदकर पंचगव्य छिड़के, मिट्टी के पात्रों को त्याग दे, वस्त्र तथा लकड़ी के पात्रों को शुद्ध करे, फलों की शुद्धि गाय के चामर से, तांबे के तथा कांस्य पात्रों को पंचगव्य से दस बार धोकर भस्म से शुद्ध करे। फिर चालीस दिन का व्रत करके दो गायें ब्राह्मणों को दें। **पराशर स्मृति का दसवां अध्याय सम्पूर्ण।**

यदि ब्राह्मण गो मांस या चाण्डाल का अन्न खाये, तो कृच्छ्र व्रत करे। क्षत्रिय तथा वैश्य अर्द्ध कृच्छ्र, शूद्र पंचगव्य पिये। जिस अन्न को सर्प, बिल्ली, नेवला आदि छू दें तो कुशा तथा तिल के जल से छींटा देकर शुद्ध करे। पंक्ति में यदि ब्राह्मण उठ जाए, तो भोजन अशुद्ध हो जाता है। सब को त्याग देना चाहिए। यदि कोई खाता है, तो वह जूठा भोजन है। यह सान्तापान व्रत करे। यदि ब्राह्मण प्याज, लहसुन, बैंगन, गाजर तथा पेड़ों का गोंद, वर्षा में होने वाला छत्राक (खुम्ब), ऊंटनी का दूध, भेड़ का दूध भूलकर भी खा पीले, तो तीन दिन व्रत करके पंचगव्य से शुद्ध होता है। यदि क्षत्री तथा वैश्य क्रियावान् शुद्ध है तो ब्राह्मणों के दैव तथा पितृ कर्म का अन्न ले सकते हैं। ब्राह्मण घी, दूध, तेल, गुड़ की पकी वस्तुओं को नदी तट पर शूद्र के पात्र में ले सकता है। किन्तु यदि वह मधु, मांस सेवी है तो वह अन्त्यज वत त्याज्य है। परन्तु सवर्णों की सेवा में लगे हुए मद्य मांस से रहित शूद्र को ब्राह्मण न त्यागे। दास, नाई, गोप, साझीदार, शरणागत

शूद्र का अन्न ग्रहण करने में दोष नहीं है। ब्राह्मण द्वारा शूद्र कन्या से उत्पन्न संस्कारहीन पुत्र 'दास' है। संस्कार युक्त 'नाई' है। क्षत्रिय से शूद्र कन्या में उत्पन्न पुत्र 'गोप' है। वैश्या कन्या से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न संस्कार युक्त 'आर्द्धिक' है। इनका भोजन करने में कोई दोष नहीं है।

ऋषियों ने पूछा, हे महर्षे! यदि कोई अभोज्य के पात्र में जल, दही, दूध अनिच्छा से खा पी ले तौ कौन सा प्रायश्चित करे।

पराशर जी ने कहा, इन पदार्थों के खाने वाला ब्रह्मकूर्च पीने से पवित्र होता है **ब्रह्म कूर्च का प्रमाण तथा लक्षण** काली गाय का १ पल मूत्र, सफेद गाय का गोबर आधे अंगूठे के बराबर, तांबे के रंग की गाय का चारपल दूध, लाल गाय का ३ पल दही, पीली गाय का १ पल घी। यदि भिन्न-भिन्न रंग की गाय की सभी चीजें न मिलें तो कपिला गाय की सब वस्तुएं ले लें। प्रत्येक वस्तु में एक-एक पल कुशा जल मिला ले। फिर 'गायत्री मंत्र' से मूत्र, 'गन्ध द्वारा' मंत्र से गोबर, 'दधिक्राव्णों' मंत्र से दही, 'तेजोऽसि शुक्रं' इस मंत्र से घी, 'देवस्यात्वा' से कुशोदक, 'अस्यायस्व इस' मंत्र से दूध मिलाकर अग्नि के समीप रखे। फिर आपोहिष्ठा से आलोहन करे। फिर तोते के समान हरी कुशाओं को नीचे रखकर उठाये। फिर विधि विधान से हवन करे। "**ॐ इरावती, इदं विष्णु-ॐ मानस्तोके, ॐ शम्वती**" आदि मंत्रों से हवन करे। फिर शेष पंचगव्य को ॐकार से चलावे और मन्थन करे और "**यत्त्वगस्थि गतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्। ब्रह्मकूर्च दहेत् सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनाम्॥ पवित्रं त्रिषुलोकेषु देवताभिरधिष्ठितम्। वरुणश्चैव गोमूत्रे, गोमये हव्य वाहनः॥ दध्नि वायु समादृष्टः सोमः क्षीरे, घृते रविः।**" देहधारियों के शरीर में त्वचा तथा अस्थियों में स्थित पाप को जैसे अग्नि ईंधन को जलाती है, वैसे ही ब्रह्मकूर्च सब पापों को जला देता है। देवताओं द्वारा अधिष्ठित ब्रह्मकूर्च तीनों लोकों में पवित्र है। गो मूत्र में वरुण, गोबर में अग्नि, दही में वायु, दूध में चन्द्रमा, घी में सूर्य वास करता है। अतः यह पवित्र है। ब्रह्मकूर्च देशी गाय के गव्य से ही बनाना चाहिए। अतः यह पवित्र है। यदि कुयें या तालाब में कुत्ता, गीदड़, बन्दर, अस्थि, चर्म, मनुष्य, कौवा, सूअर, मोर, नील गाय, हाथी, गैंडा, भेड़िया, रीछ, सिंह आदि जीव डूब गये हों, तो इनका जल पीने वाला

ब्राह्मण तीन दिन, क्षत्रिय दो दिन, वैश्य एक दिन उपवास करने से तथा शूद्र रात्रि भोजन त्यागने से शुद्ध होता है। इनकी शुद्धि लाश को निकालने के बाद सौ घड़ा पानी निकाल कर पंचगव्य डालने से होती है। धोखे में भी ब्राह्मण को 'हुं तुं' न कहे यदि कहता है तो स्नान करके प्रणाम करके ब्राह्मण को प्रसन्न करे। यदि कोई तिनके से भी प्रहार करता है तो गले में वस्त्र डालकर क्षमा मांगे। यदि विवाद में जीते, तो प्रणाम करके प्रसन्न करे। अपमान करने वाला एक दिन का व्रत करे। यदि धक्का देकर नीचे गिरा दिया है, तो तीन दिन का व्रत, यदि खून निकला है, तो अतिकृच्छ्र, खून न निकला हो तो कृच्छ्र व्रत करे। नौ दिन तक एक मुट्ठी अन्न खाना अतिकृच्छ्र, तीन दिन तक उपवास कृच्छ्र है। द्विजातियों के लिए सभी प्रकार के पापों का सर्वोत्तम प्रायश्चित्त दस हजार गायत्री जप है। **पराशर स्मृति का ग्यारहवां अध्याय पूर्ण।**

दुःस्वप्न में वमन, क्षौर कर्म, मैथुन तथा स्मशान का धुवां देखने पर स्नान करना चाहिए। अज्ञान से यदि कोई मल, मूत्र, मदिरा के स्पर्श से युक्त वस्तु खा ले, तो करधनी, दण्ड आदि वस्तुओं को फिर से धारण करे। पंचगव्य पीने तथा प्राजापत्य व्रत से शुद्ध होता है। पांच प्रकार का स्नान है-(१) जल स्नान, इसे वारुण स्नान, (२) सर्वांग में भस्म लगाना, भस्म स्नान, (३) वायु स्नान, शुद्ध हवा ले, (४) धूप में पसीना निकलना सौर स्नान, (५) धूप तथा वर्षा दोनों साथ हो, तो दिव्य स्नान। ब्राह्मण जब स्नान करने जाता है, तब पितृ वायु के रूप में जल की इच्छा से उसके पीछे-पीछे जाते हैं। अतः स्नान करके वस्त्र निचोड़ने के पहले जल से पितृ तर्पण करना चाहिए। यदि नहीं करता, तो पितृ निराश होकर शाप देकर चले जाते हैं। यदि कोई मनुष्य रोम के छिद्रों में तिलों को रगड़ कर उनसे पितृ तर्पण करता है, तो रुधिर और मल से पिता का तर्पण करता है। स्नान के बाद केशों को फटकारना तथा आचमन नहीं करना चाहए। ऐसा करने वाला पितृ तथा देव कर्म नहीं कर सकता। सिर ढककर या गले में कपड़ा लपेट कर, शिखा को खोलकर, बिना यज्ञोपवीत, के आचमन नहीं करना चाहिए। जल में बैठकर स्थल में तथा स्थल में बैठ कर जल में स्नान न करे किन्तु दोनों को छूकर आचमन करने से बाहर भीतर शुद्ध होता है। सूर्य चन्द्र ग्रहण में सभी देवता वास करते हैं। अतः उस समय दान, जप आदि शुभ कर्म करने चाहिए। श्मशान में स्थित वृक्ष, चिता, पीव,

चाण्डाल, शराब बेचने वाला, इनको यदि छू ले, तो वस्त्रों सहित स्नान करे। अस्थि बीनने से पहले रोकर स्नान करे। सूर्य चन्द्र ग्रहण में सभी जल गंगा जल हो जाते हैं। अतः कहीं भी स्नान करे गंगाजल का फल मिलता है, कुशों के पवित्र जल से स्नान करे, वह सोम पान के बराबर है। जो ब्राह्मण सन्ध्या, अग्नि होत्र, वेद पाठ से रहित हैं वे शूद्र तुल्य हैं। अतः वेद पाठ अवश्य करे। शूद्र का अन्न खाकर वेद पाठ करने वाला ब्राह्मण सद्गति नहीं पाता है। जिस के घर में शूद्रा भोजन बनाये या शूद्रा से विवाह करे, वह रौरव नरकगामी होता है। वह देव पितृ कर्म के योग्य नहीं होता। पराशर जी कहते हैं, मृतक आदि दोनों सूतकों का अन्न खाने वाला, शूद्र का अन्न खाने वाला ब्राह्मण किन-किन योनियों में जाता है, मैं गिना नहीं सकता। प्रधान रूप में कहता हूं। वह बारह जन्म गीध, दस जन्म शूकर, सात जन्म कुत्ता होता है। ऐसा मनु जी का वचन है,

''दक्षिणार्थतु योविप्रःशूद्रस्यजुहुयाद्धविः। ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शुद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत्॥३६॥''

जो ब्राह्मण दक्षिणा के लोभ में शूद्र के हवन कराता है, वह ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है। भोजन के समय नहीं बोलना चाहिए, यदि बोले दे तो अन्न त्याग दे। आधा भोजन करने के बाद जो विप्र उसी पात्र में पानी पी लेता है। उसके देव पितृ कर्म नष्ट हो जाते हैं। अन्य ब्राह्मणों के भोजन करते हुए जो ब्राह्मण पहले पात्र छोड़ देता है, उस मूर्ख पापी को ब्रह्म हत्या लगती है। भोजन काल में जो स्वस्ति कहता है, वहां देवता नहीं आते, पितृ भी रूठ कर चले जाते हैं। भाव यह है कि जूठे मुंह कोई मंत्र नहीं बोलना चाहिए। आज कल साधु तथा ब्राह्मण जूठे मुंह मंत्र बोलते हैं, यह शास्त्र के विपरीत है, ऐसा नहीं करना चाहिए। बिना नहाये, अग्नि होत्र बिना, उल्टी पत्तल पर, रात्रि में बिना प्रकाश के भोजन न करे। अग्निहोत्री ब्राह्मण, कपिला गाय, याज्ञिक ब्राह्मण, राजा तथा समुद्र दर्शन से पवित्र करते हैं। अतः इनका नित्य दर्शन करना चाहिए। जिस स्थान पर सौ गाय तथा एक बैल बिना रोक-टोक घूमें, उससे दस गुना स्थान गौ चर्म कहलाता है। ऐसी भूमि का दान करने से शरीर, वाणी, मन द्वारा किये हुए पाप दूर होते हैं। किसी की भूमि पर कब्जा करने वाला, सैंकड़ों कुयें, तालाब बनवाने पर सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ तथा करोड़ों गौ दानों से शुद्ध नहीं हो सकता। जो ब्राह्मण हाथ होते हुए भी

पशु की तरह पानी पीता है, वह अवश्य कुत्ते का जन्म पाता है। निन्दनीय ब्राह्मण का अन्न यदि कोई खा ले, तो एक दिन उपवास करे। चतुर्वेदी ब्राह्मण से भी यदि ब्रह्म हत्या हो जाए, तो रामेश्वर में जाकर चारों वर्णों की भिक्षा करे। छाते जूते का परित्याग करे, अपने पाप को सुनाये। वह गायों में रहे या तपोवन में रहे। गर्भवती स्त्री को मारने वाला ब्रह्म हत्यारा है। मदिरा पीने वाला ब्राह्मण, समुद्र गामिनी नदी के तट पर चान्द्रायण व्रत करे। फिर ब्राह्मणों को भोजन करावे, गाय बैल का जोड़ा दान करे अथवा एक बार भी मदिरा पीने वाला खौलती हुई शराब पीकर मर जाने से ही पवित्र होता है। जो ब्राह्मण स्वर्ण चोरी करे, वह मूशल लेकर राजा के पास जाए। राजा के हाथ से मरने से उसकी शुद्धि होती है। दुष्टों के साथ बैठने, सोने, एक ही सवारी में चलने, वार्तालाप करने से, जल में छोड़े हुए तेल की बूंद के समान पाप फैल जाता है। इन पापों की निवृत्ति के लिए चान्द्रायण व्रत, यव का भोजन, तुला दान तथा गो व्रत उत्तम है।

पराशर जी ने पांच सौ बानवे श्लोकों तथा बारह अध्यायों में आदि पराशर से सुना हुआ धर्म शास्त्र कहा है, जिसको व्यास जी ने लिपिबद्ध किया है। यह कलियुग के लिए परमोपयोगी है। इसके अनुसार चलने से जीव का परम कल्याण होता है। **बारहवां अध्याय पूर्ण इति पराशर स्मृतिः समाप्ता।**

॥ इति द्वापर खण्ड का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ छटा अध्याय प्रारम्भ॥

पारमार्थिक तत्त्व निरूपणम्

विष्णु पुराण के छठे अंश में भगवान् शब्द की व्याख्या करते हु पराशर जी मैत्रेय जी से कहते हैं, हे ऋषे!

मैत्रेय भगवच्छब्दस्सर्वकारणकारणे।
सम्भर्तेतितथा भर्ता, भकारोऽर्थद्वयान्वितः॥७२॥
नेता, गमयिता, सृष्टा गकारार्थस्तथा मुने।
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसःश्रियः॥७३॥

ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णांभग इतीरिणा।
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ॥७४॥
स च भूतेष्वशेषेषु, वकारार्थस्ततोऽव्ययः।
एवमेष महान्छब्दो मैत्रेय भगवानिति ॥७५॥
परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः।
तत्र पूज्य पदार्थोक्तिः परिभाषा समन्वितः ॥७६॥
शब्दोऽयं नोपचारेण त्वन्यत्रह्युपचारतः।
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिं ॥७७॥
वेत्ति विद्यामविद्यां च सवाच्योभगवानिति।
ज्ञान शक्ति बलैश्वर्यं वीर्यं तेजोस्यशेषतः ॥७८॥
भगवच्छब्द वाच्यानि बिना हेयैर्गुणादिभिः।
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ॥७९॥
भूतेषु चस सर्वात्मा वासुदेवस्तथास्मृतः ॥८०॥

हे मैत्रेय, भगवान् शब्द में भ शब्द सारे जगत् का भरण कर्त्ता, कारणों के कारण, दोनों अर्थों से युक्त है। इसमें गकार का अर्थ ले जाने वाला, नेता, सृष्टा है। भग शब्द का अर्थ सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन छः को भग कहा गया है। सम्पूर्ण जगत् की आत्मा में सम्पूर्ण प्राणी वास करते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के नष्ट होने पर जो शेष रहता है, वह वकार का अर्थ है। हे मैत्रेय! यह इस प्रकार महान् भगवान् शब्द परब्रह्म स्वरूप वासुदेव का वाचक है दूसरे का नहीं। पूज्य पदार्थों को सूचित करने वाला, परिभाषा से युक्त भगवान् शब्द का परमात्मा में मुख्य प्रयोग है। औरों के लिये गौण है, जो समस्त प्राणियों की उत्पत्ति, प्रलय, सुगति, अगति, विद्या, अविद्या (पराविद्या, विद्या), अपराविद्या, (अविद्या) को जानता है उसे भगवान् कहते हैं। त्यागने योग्य तीन गुणों और क्लेशों को छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, पराक्रम तथा तेज आदि सद्गुणों को भगवत् शब्द से कहते हैं ॥७९॥ जिस परमात्मा में सभी प्राणी वास करते हैं और वे आत्मा रूप से सभी प्राणियों में विराजमान है, उसे वासुदेव कहते हैं ॥८०॥

हे महर्षे! प्राचीन काल में खाण्डिक्य नाम के जनक के पूछने पर केशिध्वज जनक ने भगवान् तथा वासुदेव शब्द की व्याख्या की थी। उन्हीं भगवान् की शक्ति से सारा जगत् स्थित है। वह परमात्मा समष्टि व्यष्टिरूप से व्यक्त, अव्यक्त रूप में विद्यमान है तथा सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त हैं।

केशिध्वज तथा खाण्डिक्य का चरित्र तथा संवाद

पराशर जी बोले, हे ऋषे! वह परमात्मा स्वाध्याय तथा योगाभ्यास से प्राप्त होता है। योग का वर्णन केशिध्वज ने खाण्डिक्य के प्रति किया था। मिथिला में धर्मध्वज नाम के जनक हुये। उनके अमित ध्वज तथा कृतध्वज दो पुत्र हुये। महाराज कृत ध्वज अध्यात्म ज्ञान में लगे रहते थे। उनके केशिध्वज पुत्र हुये। अमित ध्वज के पुत्र खाण्डिक्य थे। कर्मकाण्डी तथा सम्पूर्ण पृथ्वी का शासक हुआ। वे एक दूसरे को हराने में लगे थे। अन्त में केशिध्वज ने खाण्डिक्य को हराकर राज्य से निकाल दिया। वे अपने गुरु तथा मंत्रियों के साथ वन के किले में रहने लगे। केशिध्वज ब्रह्मज्ञानी थे। फिर भी अविद्या से पार पाने के लिए यज्ञ करने लगे। **'अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते–'** अविद्या (कर्मकाण्ड) से मृत्यु (अज्ञान) को जीतकर विद्या (ब्रह्मज्ञान) से अमृतं (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

एक बार जब केशिध्वज का यज्ञानुष्ठान चल रहा था, उनकी धर्म गाय को शेर खा गया। राजा ने ब्राह्मणों से इसका प्रायश्चित पूछा। उन्होंने कहा, "हम इसका उपाय नहीं जानते। भृगुवंशीय 'कसेरू' ऋषि जानते हैं।" उनसे पूछिए। उन्होंने उनसे पूछा, "उन्होंने कहा मैं भी नहीं जानता। शौनक के पिता 'शुनक' ऋषि जानते हैं।" राजा ने शुनक से पूछा, उन्होंने कहा, "इस बात को भारत में कोई नहीं जानता। तुम्हारा चचेरा भाई 'खाण्डिक्य' जानता है, उनसे पूछो, जिनका तुमने राज्य हरण किया है।" वे उनके पास गये, जाकर पूछा, यदि वे मुझे मार देंगे, तो मुझे महायज्ञ का फल मिलेगा। यदि उपाय बता देंगे, तो यज्ञ निर्विघ्न पूरा होगा।

प्राचीन काल के राजा लोग शिखा सूत्र के बिना यज्ञ नहीं करते थे। यज्ञ में सिले कपड़े, मुकुट आदि धारण नहीं करते थे। काला मृगचर्म तथा धोती पहनते थे। राज

पत्नियां वस्त्राभूषणों से युक्त होती थीं। प्राय: सभी राजाओं के सम्बन्ध में ऐसी कथा आती है। इससे आजकल के द्विजातियों को शिक्षा लेनी चाहिए। पूजा, पाठ, जप, तर्पण यज्ञ आदिकों में शिखा सूत्र धारण करें। सिला वस्त्र न पहनें। काला मृग चर्म धारण करें।

वे काला मृग चर्म धारण किये हुए उनके पास पहुंचे। खाण्डिक्य अपने शत्रु केशिध्वज को देखकर कुपित होकर धनुष चढ़ाकर बोले, ''हे राजन्! तुम काला मृग चर्म धारण करे आये हो। इससे तू क्या समझता है, मुझ पर प्रहार नहीं होगा। हे मूर्ख! शिकारी क्या काले मृग को नहीं मारता। तू आततायी है। तुझे मैं अवश्य मारूंगा।'' कोशिध्वज ने कहा, ''मैं आपस से युद्ध करने नहीं आया। संशय निवृत्ति के लिए आया हूं। अत: आपको क्रोध नहीं करना चाहिए।'' तब राजा ने एकान्त में जाकर मंत्रियों से परामर्श किया। उन्होंने कहा, ''इसे अवश्य मारो। इसे मारने से सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करोगे। खाण्डिक्य ने कहा ऐसा करने पर परलोक में उसकी विजय होगी। मैं लोक की अपेक्षा परलको को अधिक महत्त्व देता हूं। अत: वे जो पूछेंगे, मैं बताऊंगा।'' उन्होंने केशिध्वज के पास जाकर कहा, तुम जो पूछना चाहते हो, पूछो तब उसने गाय के मरने की बात बताई तथा प्रायश्चित पूछा, उन्होंने बता दिया। उन्होंने जाकर यज्ञशाला में प्रायश्चित किया। यज्ञ सम्पूर्ण हुआ। अवभृथ स्नान करने पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। उन्होंने विचार किया। धर्मशास्त्रों ने कहा कि, ''एक अक्षर बताने वाले गुरु को जो दक्षिणा नहीं देता, उसे शान्ति नहीं मिलती। मैंने खाण्डिक्य को गुरु दक्षिणा नहीं दी।'' ऐसा विचार कर राजा वन में खाण्डिक्य के पास पहुंचे। उन्होंने पूर्ववत् क्रोध किया। केशिध्वज ने समझाया। मैं कोई अनिष्ट करने नहीं आया हूं। गुरु दक्षिणा देना चाहता हूं, आप जो चाहे मांग लें। राजा ने मंत्रियों से पूछा, उन्होंने कहा पूरा राज्य मांग लो। हंसते हुए खाण्डिक्य ने कहा, ''बुद्धिमान तुच्छ वस्तु की इच्छा नहीं करते। तुम व्यावहारिक दृष्टि से ठीक कहते हो, किन्तु परमार्थ नहीं जानते।'' तब खाण्डिक्य ने केशिध्वज से कहा कि, ''आप गुरु दक्षिणा देंगे। उन्होंने कहा, हां, उन्होंने कहा, आप ब्रह्मज्ञानी हो, गुरु दक्षिणा में ब्रह्मज्ञान का उपदेश करो।''

प्राचीन काल के आदर्श शत्रु ऐसे ही होते थे। कर्त्तव्य बुद्धि से युद्ध करते थे। राज्य में आसक्त नहीं होते थे। दोनों ही विवेक शील तथा वैराग्यवान् थे। दोनों को शरीर तथा राज्य की क्षण भंगुरता का ज्ञान था, दोनों जानते थे, नश्वर शरीर से नश्वर वस्तु मिलने पर अविनाशी तत्त्व नहीं मिलता। मनुष्य शरीर अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति के लिए है। नश्वर संसार के लिए नहीं। केशिध्वज ने गुरु भाव से गोवध का प्रायश्चित्त पूछा और गुरु दक्षिणा देनी चाही। खाण्डिक्य ने ब्रह्मविद्या का उपदेश मांगा। दोनों एक दूसरे के गुरु शिष्य हुए। अतः हम लोगों को भी नश्वर वस्तु के लिए माता-पिता गुरु से द्रोह नहीं करना चाहिए। इस कथा से यह शिक्षा मिलती है। **(श्री विष्णु पुराण अंश ६ अध्याय ६)**

॥ इति द्वापर खण्ड का छठवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ सातवां अध्याय प्रारम्भ॥

केशिध्वज ने पूछा, आप ने मुझ से निष्कंटक राज्य क्यों नहीं मांगा। राजाओं को राज्य से बढ़कर अन्य प्रिय नहीं है।

खाण्डिक्य बोले, हे केशिध्वज, राज्य की इच्छा मूर्ख करते हैं। प्रजा पालन तथा राजद्रोहियों को मारना राजधर्म है। मैं शक्ति हीन होने से तुमसे हार गया। इसमें कोई दोष नहीं है, किन्तु यदि राज्य लेकर प्रजा की रक्षा न कर पाता तो दोषी होता। उत्तम क्षत्रिय किसी से याचना नहीं करते। अतः मैंने राज्य नहीं मांगा। जिन्होंने अभिमान रूपी मदिरा पी है, वे राज्य की इच्छा करते हैं। इस प्रसंग से भी आजकल के राजनैतिक नेताओं को शिक्षा लेनी चाहिए। जो कुर्सी के लिए अन्याय अत्याचार सब कुछ करने को तैयार हैं।

महाराज केशिध्वज उनका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे तथा उनसे कहा, मन लगाकर सुनो। मैं अज्ञान रूपी संसार से तरने के लिए यज्ञ करता हूं। हे राजन्! अविद्या के कारण जीव जन्मता मरता है। वह अविद्या दो प्रकार की है-(१) आत्मा में अनात्म बुद्धि, (२) अनात्मा में आत्म बुद्धि। आत्मा शरीर से परे होने पर भी अन्तःकरण के कारण जीव को देहाध्यास होता है। मनुष्य शरीर क्षेत्र है। जब शरीर ही अनात्मा है, तो पुत्र पौत्र धन-सम्पत्ति आत्मा कैसे हो सकते हैं।

अज्ञान से जीव शरीर के लिए कर्म करता है तथा जन्मता मरता है। जैसे मिट्टी का घर मिट्टी में जल मिलाकर लीपने से स्थिर रहता है। वैसे ही यह शरीर भी मिट्टी रूपी अन्न का विकार है। अन्न के सहारे टिका है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है। सुख दुख आत्मा में अज्ञान से कल्पित है। जैसे अग्नि पर रखे हुए जल पात्र का अग्नि से साक्षात् सम्बन्ध न होने पर भी पात्र के गर्म होने पर जल खौलने लगता है। वैसे ही आत्मा का प्रकृति तथा अहंकार से साक्षात् सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध सा प्रतीत होता है। अविद्या बीज है। इससे दूर होने का एकमात्र उपाय योग है। खाण्डिक्य ने पूछा, हे महावाहो! योग का स्वरूप कहिये? तब केशिध्वज ने योग का लक्षण बताते हुए कहा, हे राजन्! जिस पद को प्राप्त करने के पश्चात् मुनि पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करते, उस योग को कहता हूं, सुनो। मनुष्य का मन ही बन्धन तथा मुक्ति का कारण है। अतः विवेक वैराग्य सम्पन्न मुनि मन को परमात्मा के चिन्तन में लगाते हैं। जैसे चुम्बक लोहे की खींचती है, वैसे ही ब्रह्म चिन्तन करने वाले को परमात्मा खींचता है। अष्टांग योग के द्वारा ब्रह्म के साथ मिलना ही योग है। अथवा जीवात्मा परमात्मा की प्राप्ति के साधन को योग कहते हैं अथवा चित्तवृत्ति के रोकने का नाम 'योग' है।

अष्टांग योग

योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि यह आठ अंग हैं। इस योग का जब साधक अभ्यास करता है, तो युञ्जान योगी कहलाता है। अभ्यास परिपक्व होने पर जब मन विषय रहित होता है, तब ध्यान होता है। जब ध्याता, ध्यान, ध्येय, त्रिपुटी का लोप होने पर अपने को ध्येय रूप में अनुभव करता है, तब समाधि होती है। यदि किसी को इस जन्म में योग सिद्ध नहीं होता। तो अगले जन्म में सिद्ध हो जाता है। सकाम भाव से योगाभ्यास करने वालों को इस लोक परलोक का सुख तथा योग की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। निष्काम भाव से करने वाले को अन्तःकरण की शुद्धि सहित ब्रह्मभाव प्राप्त होता है।

यति को चाहिए कि वह दीर्घ काल तक आसन पर बैठकर प्राणायाम का साधन करे। साधारण प्राणायाम पीछे सन्धोपासना में बताया जा चुका है। विशेष प्राणायामों में

भस्त्रिका, शीतकारी, शीतली, अग्निसार, भ्रामरी, उज्जायी, केवली, कुम्भक आदि अनेकों विशेष प्राणायाम हैं। इनमें से केवली कुम्मक के अभ्यास से प्राण वायुको जीतकर योगी प्रत्याहार करे अर्थात् इन्द्रियों को अन्तर्मुख करे। खाण्डिक्य ने पूछा, किसका आश्रय लेने से चित्त के दोष नष्ट होकर चित्त परमात्मा में समाहित होता है?

केशिध्वज ने कहा, हे राजन्! ब्रह्म के साकार अथवा निराकार रूपों का ध्यान स्वरूप चित्त का आश्रय है। साधक अपनी सुविधा के अनुसार दोनों में से किसी का भी अभ्यास करे, परन्तु साकार का आश्रय लिये बिना निराकार में मन नहीं लग सकता। अतः आरम्भ में साकार का आश्रय ले। अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार कुछ लोग इस लोक की कामना के लिए, कुछ लोग परलोक के सुख के लिए अभ्यास करते हैं। कुछ लोग योग सिद्धियों के लिए अभ्यास करते हैं, परन्तु निराकार निर्गुण के स्वरूप का चिन्तन करने से मुक्ति होती है। चराचर जगत् को अर्थात् देव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तारागण, ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, नदियां आदि चेतन अचेतन जन्तु सब में ब्रह्म भावना करे। विष्णु की शक्ति तीन प्रकार की है-(१) पराशक्ति, (२) जीवशक्ति, (३) अपराशक्ति। अविद्या से जीव जन्म मरण को प्राप्त करता है। शुभाशुभ कर्म फल भोगता है। इस शक्ति से आवृत्त होने के कारण वह अपने स्वरूप को नहीं जानता। परमात्मा की ज्ञान शक्ति सबसे अधिक ईश्वर कोटि के जीवों में है। सबसे कम जड़ पदार्थों में है। उनसे अधिक पर्वतों में है। उनसे अधिक रेंगने वाले जन्तुओं में है। उनसे अधिक क्रमानुसार पक्षियों, पशुओं, मनुष्यों, नागों आदि में है। सारा जगत विष्णु का शरीर है। उन्हीं की शक्ति से व्याप्त है। विष्णु का दूसरा स्वरूप योगी लोग जानते हैं। सत् कहकर ध्यान करते हैं। जैसे अग्नि ईंधन को भस्म करती है, वैसे ही चित्त में स्थित भगवान् पापों को जलाते हैं। अतः विष्णु को सर्व शक्तिमान जानकर उनको चित्त में धारण करे।

हे राजन्! यदि मन भगवान् के निर्गुण स्वरूप में न लगे तो उनके चतुर्भुज रूप का ध्यान करे। भगवान् के चरणों से लेकर मुकुट पर्यन्त का ध्यान अथवा मुकुट से लेकर चरणों तक का ध्यान करे। फिर वही रूप जब भीतर दिखाई देने लग जाए, तब ध्यान

परिपक्व हो जाता है। चलते, फिरते, उठते, बैठते प्रत्येक कर्म तथा अवस्था में भगवान् की मूर्ति दूर नहीं होती। तब योग सिद्ध हो जाता है। भगवान् के चतुर्भुज या अष्टभुज ध्यान के परिपक्व होने पर फिर अस्त्र शस्त्रों से रहित उनके शान्त स्वरूप का चिन्तन करे। उसमें कौस्तुभ मणि, यज्ञोपवीत, वस्त्राभूषणों सहित भगवान् का ध्यान करे। अन्त में वही ध्यान समाधि के रूप में परिणत हो जाता है। समाधि भी सविकल्प और निर्विकल्प भेद से दो प्रकार की है। पहली में इष्ट के रूप में दर्शन होता है। दूसरी में चराचर जगत् ब्रह्म स्वरूप में अनुभव होता है। उसमें भेद के कारण अज्ञान के नष्ट होने पर जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। हे राजन्! संक्षेप में मैंने ब्रह्म प्राप्ति का योग तुम से कहा। अब आप और क्या सुनना चाहते हो। खाण्डिक्य बोले, हे राजन्! आप के उपदेश से मेरे मन का मैल नष्ट हो गया है। इसमें मैंने जो मेरा शब्द कहा यह भी मिथ्या है। मैं मेरा ऐसा बुद्धि का व्यवहार भी मिथ्या है। परमार्थ में न गुरु है न शिष्य है। वहां कहने सुनने की बात ही नहीं है। हे केशिध्वज! आपने मुझे यह उपदेश देकर मेरा परम कल्याण किया। आप सुखपूर्वक राजधानी में लौट जाएं। महर्षि पराशर जी शिष्य मैत्रेय के प्रति इस प्रसंग का उपसंहार करते हुए कहते हैं, हे ब्रह्मन्! खाण्डिक्य से पूजित हुए महाराज केशिध्वज अपने नगर में चले गये। खाण्डिक्य भी अपने पुत्र को राज्य देकर भगवच्चिन्तन में लग गये। यद्यपि उस समय राजा के पास राज्य नहीं था। फिर भी वन में उन्होंने जो किला बनाया था, उनके कथनानुसार साधन करके उन्होंने जीवन्मुक्ति तथा अन्त में विदेह मुक्ति प्राप्त की। **विष्णु पुरण का सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।**

॥ इति द्वापर युग खण्ड का सातवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ आठवां अध्याय प्रारम्भ ॥

भोजन करने का क्रम

पराशर जी ने विष्णु पुराण के तीसरे अंश के ग्यारहवें अध्याय में मैत्रेय के प्रति गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार का वर्णन करते हुए महर्षि और्व तथा महाराज सगर का संवाद सुनाया। महर्षि और्व ने महाराज सगर से कहा, ''मनुष्य को एकाग्रचित्त होकर भोजन करना चाहिए। प्रथम मधुर फिर नमकीन, फिर खट्टा और अन्त में कड़वा तथा तीक्ष्ण पदार्थ खाये। इन वस्तुओं में भी पहले पीने वाली वस्तु, फिर कड़ी वस्तुएं ले। अन्त में फिर मधुर वस्तु खाने वाला रोगी नहीं हो सकता। मौन रहकर सात्विक भोजन करे, अन्न की निन्दा न करे।''

नामकरण–इसी अंश में कहा है कि बालक या बालिका का छठे दिन नामकरण करे। शास्त्रानुसार अग्निहोत्र करके बालक के नाम में दो, चार या छः समसंख्या में तथा कन्या के नाम विषम संख्या में अक्षर होने चाहिए। जैसे देवदत्त कि हरिदत्त, विष्णुदत्त, कलाधर, शशिधर आदि। ब्राह्मण के नाम में विद्या या ज्ञान सूचक अर्थ हो, क्षत्रिय के वीरता सूचक, रणवीर, शूरसेन, उग्रसेन आदि वैश्य का धनपति, लक्ष्मीधर आदि धन सम्बन्धी नाम रखे। ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय के वर्मा, वैश्य के गुप्ता तथा शूद्र का दासान्त नाम हो। नाम सरल सार्थक होना चाहिए। निरर्थक नहीं, जैसे आजकल लोग टीटू, बबलू आदि नाम रखते हैं जिनका कोई अर्थ नहं होता। कन्या का नाम द्रोपदी, रुक्मिणी आदि नाम हों।

इसी पुराण के अंत में छठे अंश के आठवें अध्याय के अंत में कहते हैं, हे मैत्रेय! मैंने गुरु परम्परा से सुना हुआ पुराण आपको सुनाया है। इस आर्ष पुराण को पहले ब्रह्मा जी ने महर्षि ऋभु को सुनाया था, उन्होंने प्रियव्रत को, प्रिवग्रत ने भागुरि ऋषि को, भागुरि ने स्तम्भ मित्र को, स्तम्भ मित्र ने दधीचि को, दधीचि ने सारस्वत को तथा सारस्वत ने भृगु को, भृगु जी ने पुरुकुत्स को, पुरुकुत्स ने नर्मदा को, नर्मदा ने धृतराष्ट्र तथा पूर्णनाग को वासुकि को, वासुकि से वत्स ने, वत्स ने अश्वतर को, अश्वतर ने कम्बल को, कम्बल ने एलापुत्र को, उनसे वेदशिरा ऋषि ने पाताल में जाकर प्राप्त

किया। उन्होंने प्रमति को, प्रमति ने जातुकर्ण को, जातुकर्ण ने अनेकों महात्माओं को सुनाया। मैंने पूर्वजन्म में सारस्वत से यह पुराण सुना। पुलस्त्य जी के वरदान से स्मरण हुआ। हे मैत्रेय, इसे मैंने तुम्हारे प्रति कहा। तुम भी इस पुराण को कलियुग के अन्त में शिनीक ऋषि को सुनाओगे। कलि के दोषों को नष्ट करने वाले इस पुराण को भक्ति सहित जो सुनता है, वह पापों से छूट जाता है। देवताओं द्वारा प्रशंसनीय इस पुराण को प्रतिदिन सुनने से सम्पूर्ण तीर्थों का स्नान हो जाता है। इसके दस अध्यास सुनने वाले को कपिला दान का फल मिलता है। भगवान् विष्णु में चित्त लगाकर सुनने वाले श्रोता को अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार जो नित्य सनातन परमात्मा के प्रकृति पुरुष में विद्यमान अनेक रूप हैं, वे भगवान् हरि समस्त पुरुषों को जन्म आदि से रहित मुक्ति प्रदान करें।

इस प्रकार विष्णु पुराण जो कि पराशर जी की रचना है तथा भगवान् वेद व्यास द्वारा सम्पादित ग्रन्थ है। उसके आधार पर अति संक्षेप में पराशर जी के उपदेश का दिग्दर्शन मात्र कराया है। अष्टादश महापुराणों में भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण दोनों भगवद् भक्ति प्रधान पुराण हैं। इन दोनों ग्रन्थों में भक्ति के अतिरिक्त, ज्ञान, विज्ञान, अद्वैत तत्त्व कूट-कूट कर भरा है। बल्कि यह कहना चाहिए कि भागवत महापुराण, विष्णु पुराण की ही विशद व्याख्या है, क्योंकि इसमें आई हुई कथाएं भागवत में विस्तारपूर्वक कही गई हैं। यह महापुराण दो भागों में है। पहला भाग विष्णु पुराण पूर्वाद्ध के नाम से कहा जाता है और दूसरा विष्णु धर्णोत्तर के नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम भाग में ६००० श्लोक तथा ६ अंश हैं। इस पर श्रीधर स्वामी जी की तथा विष्णु चिति नाम की दो संस्कृत व्याख्याएं हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में १९००० श्लोक हैं। इस पर कोई संस्कृत टीका नहीं है। वह मूल रूप में वेंकटेश्वर प्रेस से छपा था। इसमें शिल्प शास्त्र का विशद वर्णन है।

इसके अतिरिक्त इनका ज्योतिष विषयक ग्रन्थ 'वृहत् पाराशर होरा' शास्त्र जातक विषय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का आठवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ नवां अध्याय प्रारम्भ ॥

सत्ताईस व्यास तथा भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास

यह गुरु परम्परा शान्ति आश्रम लड़ोई, जिला जालन्धर में पूज्य पाद महाराज श्री विष्णु आश्रम जी महाराज की आज्ञा से श्रीमान् पं० ठाकुर दत्त उपाध्याय द्वारा विक्रमी सं० १९८९ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी मंगलवार के दिन लिखी हुई भगवान् वेद व्यास जी के पूर्ववर्त्ती एवं परवर्त्ती गुरु परम्परा–

१. अविगत, २. ब्रह्मा, ३. मार्कण्डेय, ४. रोम ऋषि, ५. धूम, ६. विमल, ७. दत्तात्रेय, ८. पराशर, ९. भारद्वाज, १०. गौतम, ११. गर्ग, १२. विदेहराज जनक, १३. विदेह के व्यावहारिक गुरुभाई शुकाचार्या, १४. श्वेत, १५. केत, १६. दुर्वासा, १७. रौहिणेय, १८. जड़भरत, १९. वामदेव, २०. कपिल ऋषि, २१. ऋषि मुनि, २२. देवमुनि, २३. शिवाचार्य, २४. सन्मुखाचार्य, २५. गौड पादाचार्य, २६. वाल गोविन्दाचार्य, २७. शंकराचार्य शेष पूर्व परम्परावत् है।

यह गुरु परम्परा कहां से ली गई है, इसका कुछ पता नहीं चलता है। प्रामाणिक परम्परा प्रतीत नहीं होती, क्योंकि दत्तात्रेय के शिष्य पराशर जी का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इस ब्रह्मर्षि परम्परा में राजर्षि जनक का नाम भी असंगत प्रतीत होता है। मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण योगवाशिष्ठ तथा देवी भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्धानुसार तो जनक जी ने गुरु पुत्र शुकदेव जी को आया जानकर गुरु बुद्धि से उनका मान सम्मान किया। उन्होंने गुरु बनकर शुकदेव जी को ब्रह्मविद्या नहीं पढ़ाई। बल्कि सिंहासन पर बैठाकर व्यावहारिक शिक्षा का दान किया। शुकदेव जी के दो गुरु बाद दुर्वासा जी का क्रम भी असंग प्रतीत होता है। इनके दुर्वासा जी के एक गुरु बाद जड भरत जी सत्ययुग में हुये, इनका नाम भी असंगत प्रतीत होता है तथा इनके बाद शिवाचार्य जी शक्ति विशिष्टाद्वैतवादी हैं। वह नाम भी अद्वैतवादियों की परम्परा में नहीं होना चाहिए। इनके कई पीढ़ी बाद सत्ययुग में हुये कपिल का नाम आया है। श्री शंकराचार्य के गुरु जी का नाम सर्वत्र गोविन्द भगवत् पादाचार्य आता है। कहीं भी वालगोविन्दाचार्य नहीं आया।

अत: यह संदिग्ध परम्परा प्रतीत होती है। **(पूज्य पाद श्री स्वामी जी की स्मृति में ज्यों का त्यों लिख दिया गया।)**

वेद व्यास स्वात्मरूपं सत्यसन्धं परायणम्।
शान्तं जितन्द्रियाक्रोधं सशिष्यं प्रणमाम्यहम्॥

(गुरुवंश काव्यम्)

१६१-१८८ विष्णु पुराण के आधार पर सत्ताईस व्यासों का विवरण– प्रत्येक द्वापर के अन्त में भगवान् व्यास के रूप में अवतरित होकर ॐकार रूपी एक वेद को चार भागों में बांटकर सैंकड़ों शाखाओं में विस्तार करते हैं। इसलिए उन्हें भगवान् वेद व्यास कहते हैं। विष्णु पुराण के तीसरे अंश के तीसरे अध्याय में अट्ठाईस द्वापर युगों में कौन-कौन व्यास हो चुके हैं, उनके सम्बन्ध में पराशर जी कहते हैं, उनका विस्तार से कौन वर्णन कर सकता है। अत: संक्षेप में कहता हूं, सुनो ! प्रत्येक द्वापर के अन्त में कलियुग के आदि में जब भगवान् देखते हैं कि कलियुग में मनुष्यों का पराक्रम, तेज, बुद्धि बल कम हो गया है। तब भगवान् विष्णु वेद व्यास के रूप में द्वापर में प्रकट होते हैं। वेदों की कठिन भाषा को पुराणों के रूप में सरल करके अति मन्द बुद्धि द्विजातियों, शूद्र तथा स्त्रियों का कल्याण करने के लिए, महाभारत तथा ब्रह्मा द्वारा कहे गये पुराणों का स्मरण करते हैं तथा उन्हें संक्षिप्त करते हैं। ब्रह्मलोक में आज भी एक-एक अरब श्लोकों वाले पुराण तथा उपनिषदों के विरोधी वचनों का परिहार करते हुए ब्रह्मसूत्र की रचना करते हैं। सत्ताईस व्यासों के नाम–१. ब्रह्मा जी, २. प्रजापति, ३. उशना (शुक्राचार्य), ४. बृहस्पति, ५. सविता, ६. मृत्यु, ७. इन्द्र, ८. वशिष्ठ, ९. सारस्वत, १०. त्रिधामा, ११. त्रिशिखी, प्राचीन काल में ऋषि तीन या पांच शिखाएं रखते थे, एक ऋषि पंच शिखाचार्य हुए हैं जो कि कपिल जी के शिष्य आसुरि नाम के ऋषि के शिष्य थे, 'पंच शिखाचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके सिर पर पांच चोटियां थीं। उन्हीं के गोत्र में एक प्रकार के क्षत्रिय जिन्हें चौफले कहते हैं। उनके आज भी पांच चोटियां रखी जाती हैं। आज कल मुण्डन तो होता है, किन्तु चोटी नहीं रखी जाती। जिस चोटी को वेद मंत्रों से अभिमन्त्रित किया जाता है, जिसकी रक्षा के लिए मुस्लिम

काल में हिन्दुओं ने बोटी बोटी कटवा दी, जैसे बन्दा वैरागी, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोबिन्द सिंह तथा उनके चारों पुत्र इत्यादि, किन्तु चोटी नहीं कटवाई। किन्तु आज का हिन्दू चोटी रखने में शर्म तथा कटाने में गौरव मानता है। १२. भारद्वाज, १३. अन्तरिक्ष, १४. वरणि, १५. त्रय्यारुण, १६. धनञ्जय, १७. कृतुञ्जय, १८. जय, १९. भरद्वाज, २०. गौतम, २१. उत्तम हर्यात्मा, २२. वाजश्रवा, २३. सोमशुष्मवंशी तृण बिन्दु, २४. भृगुवंशी ऋक्ष (वाल्मीकि), २५. शक्तिदेव, २६. पराशर, २७. जातूकर्ण, २८. वर्तमान कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं। इनके बाद २९वें द्रोण पुत्र अश्वात्थामा व्यास होंगे।

"ब्रह्म सूत्र कृते तस्मै वेद व्यासाय वेधसे।
ज्ञान शक्त्यवताराय नमो भगवतो हरेः ॥१॥
व्यासं वशिष्ठं नप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे, शुकतातं तपोनिधिम् ॥२॥
व्यासाय विष्णु रूपाय, व्यास रूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्मविधये वाशिष्ठाय नमो नमः ॥३॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् वादरायणः ॥४॥"

द्वापर युग भेद से व्यासों की कथा लिखी जा चुकी है। कहीं-कहीं मन्वतर भेद तथा कल्प भेद से अनेक कथाएं आती हैं। यद्यपि विष्णु अवतार भगवान् कृष्ण द्वैपायन गुरु वशिष्ठ जी के प्रपौत्र हैं, किन्तु कल्प या मन्वन्तर भेद से योग वशिष्ठ के मुमुक्षु व्यवहार तृतीय प्रकरण में गुरु वशिष्ठ जी श्री राम जी के प्रति किसी पूर्ववर्ती, कल्प या मन्वन्तर भेद से व्यास जी तथा शुकदेव जी की कथा सुनाते हैं। जो शुक पिता की आज्ञा से जनक राज के दरबार में व्यावहारिक शिक्षा लेने के लिए गये थे।

आनन्द रामायण के बिलास काण्ड में श्री राम के दरबार में व्यास जी के आने की कथा आती है। भगवान् ने सीता सहित इनका अर्घ्य पाद्यादि से पूजन किया। उन्होंने राम को अनेकों वरदान दिये थे। एक बार काशी में पूज्य पाद धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज से काशी के विद्वानों ने शुकदेवों तथा व्यासों के सम्बन्ध में प्रश्न किया था।

तब उन्होंने कल्प भेद तथा मन्वन्तर भेद से छप्पन व्यासों तथा शुकदेवों का वर्णन किया था।

ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के परिशिष्ट काशी केदार माहात्म्य में व्यास जी की बड़ी विलक्षण कथा आई है। एक दिन भगवान् शंकर जी पार्वती को अत्यन्त प्राचीनतम कथाएं सुना रहे थे। कथा सुनने से पूर्व पार्वती ने शिव जी से कहा, इस कथा को कोई भी देव देवता न सुन पाये। इसलिए द्वार पर एक गण को नियुक्त कर दिया, किन्तु इस कथा को सुनकर लक्ष्मी जी को सुनाने की इच्छा से भगवान् विष्णु छिपकर सुन रहे थे। उस गण ने देखकर भी मना नहीं किया। जब इस बात का पता पार्वती जी को चला, तब उन्होंने विष्णु को शाप दिया, ''तुमने चोरी से छिप कर कथा सुनी है, अतः मैं तुम्हें शाप देती हूं, तुम मृत्यु लोक में एक मन्वन्तर तक मनुष्य रूप में रहोगे।'' विष्णु पार्वती के शाप से कृष्ण द्वैपायन व्यास के रूप में प्रकट हुए। इस कथा से व्यास जी की एक मन्वन्तर की आयु सिद्ध होती है। एक मन्वन्तर में अनेकों रामावतार हो जाते हैं। उस गण को भी शाप दिया, तुम भी धरातल पर काशी में क्षेमक कवि का रूप धारण करके वास करोगे। गण ने हाथ जोड़कर प्रार्थनी की कि, ''आप दोनों के चरणों का दर्शन मुझे फिर कब प्राप्त होगा।'' पार्वती जी ने कहा, ''काशी में जब तुम्हारा व्यास रूप धारी विष्णु से शास्त्रार्थ होगा। उनको जीतकर जब तुम शिव महिम्न स्थोत्र से शिव जी की स्तुति करोगे, तब शाप से मुक्त होगे।'' पार्वती जी के शाप से भगवान् विष्णु पराशर जी द्वारा सत्यवती के माध्यम से प्रकट हुए। व्यास के रूप में अवतरित हुए। काशी वास की इच्छा से वहीं पहुंचे। उधर से क्षेमक कवि जिनका दूसरा नाम 'पुष्पदन्ताचार्य' था, वे भी आये। व्यास जी ने काशी में मुक्ति मण्डप में आकर विश्राम किया। उनके दर्शनों के लिए लाखों लोग राजा, प्रजा, संन्यासी, शैव, शाक्त सब पहुंचे। साम्प्रदायिक आचार्यों ने पूछा, पंचदेवों में परम आराध्य कौन है? तब व्यास जी ने दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर कहा–

''सत्यं सत्यं पर सत्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥''

पांच बार सत्य कहकर शंकर जी को परम तत्त्व कहा था। जब भगवान् शंकर ने देखा विष्णु मेरे समान ही सर्वगुण सम्पन्न तथा मेरे अनन्य भक्त हैं, अतः मैं पूरा

अधिकार इनको देकर उपराम हो जाऊंगा। ऐसा विचार करके दिव्य महा रत्नों से मण्डित जिसमें बारह सूर्य लगे थे, उस सिंहासन पर विष्णु को बिठाकर सात समुद्रों के जल से अभिषेक करके अपने तुल्य कर दिया। तब से विष्णु शिव के तुल्य हो गये। व्यास जी काशी वास करने लगे। वहीं पर क्षेमक कवि भी रहते थे। यह व्यास जी के गुरु भाई थे। काशी में एक स्थान पर पद्मासन पर बैठी हुई व्यास जी की एक पाषाण की मूर्ति थी। उसका पेट बड़ा, नाभिगंभीर थी। उन्होंने एक लकड़ी लेकर नाभि में खोंस दी तथा कहा इसकी तोंद में चकार भरा है। मैं निकाल रहा हूं। दोनों में शास्त्रार्थ हुआ। एक कथा को श्लोक बद्ध करने को कहा। व्यास जी ने अनेकों चकारों से युक्त कविता की। क्षेमक ने उसी को चकार रहित कविता में किया। महर्षि क्षेमक गण रूप प्राप्त करके जब शिवलोक जाने लगे, तब जाते समय व्यास रूपधारी विष्णु से क्षमा मांगी। आप साक्षात् विष्णु स्वरूप हो, मुझे क्षमा करो। ऐसा कहकर शिवलोक में चले गये।
(काशी केदार माहात्म्य से उद्धृत)

स्कन्द पुराण काशी खण्ड

काशी वास करते हुए व्यास जी अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे। एक बार तीन दिन तक इनको शिष्यों सहित भिक्षा नहीं प्राप्त हुई। काशीवासियों से व्यास जी के शिष्यों ने काशी की महिमा सुनी।

''विद्यानां सदनं काशी, काशी लक्ष्म्याः परालयः।
मुक्ति क्षेत्रमिदं काशी काशी सर्वा त्रयी मयी॥''

सम्पूर्ण विद्याओं का घर काशी है, लक्ष्मी जी का परम धाम है। काशी मुक्ति क्षेत्र है। काशी सर्वत्र इन तीनों गुणों से युक्त है। इसकी महिमा को सुनकर व्यास जीं न पूछा, क्या कहते हो? शिष्यों ने इस श्लोक को दुहराया। क्षुधातुर व्यास जी ने काशी तथा काशी वासियों को शाप देते हुए कहा–

व्यास उवाच–''मा भूःत्रय पूरुषी विद्या, माभूः त्रय पूरुषं धनम्।
माः भूः त्रय पूरुषी मुक्तिः काशीं व्यासः शपन्निति॥
गर्वः परोत्र विद्यानां धनानामत्र वै महान्।
मुक्तिः गर्वेण, भिक्षां वै न प्रयच्छन्ति केचन॥''

काशी के लोग तीन पीढ़ी तक विद्या, धन तथा मुक्ति को प्राप्त न हों, काशी को इस प्रकार शाप देते हुए व्यास जी ने कहा, यहां के वासियों को विद्या, धन तथा मुक्ति का अभिमान है। इसलिए किसी को भिक्षा नहीं देते हैं। शिव जी ने काशी वास के अधिकारी की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया था। व्यास जी का शाप सुनते ही भगवान् विश्वनाथ माता अन्नपूर्णा सहित दरिद्री ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। शिष्यों सहित भिक्षा का निमन्त्रण दिया। चार प्रकार का भोजन कराया, दक्षिणा दी। फिर काशी महिमा को लेकर दोनों में शास्त्रार्थ हुआ। इसी बीच व्यास जी के सामने शिव पार्वती प्रकट हुए। व्यास जी ने शिष्यों सहित प्रणाम करके क्षमा मांगी। शिव जी ने व्यास जी से कहा, ''तुम काशी वास के अधिकारी नहीं हो। तुम्हारा शाप काशी को नहीं लगेगा। काशी के बाहर जाकर रहो।'' व्यास जी ने नम्र होकर कहा, ''आपका दर्शन कभी कभी होना चाहिए।'' शंकर जी ने कहा, ''प्रत्येक शिवरात्रि को तुम गंगा पार से आकर मेरा दर्शन कर सकते हो। तुम गंगा उस पार चले जाओ। प्रत्येक काशी वासी को आपके दर्शन किये बिना काशीवास का फल नहीं प्राप्त होगा। विशेषत: माघ में आपका दर्शन अवश्य करना चाहिए।'' यह कहकर शिवजी मौन हो गये। व्यास जी शिष्यों सहित पार्वती सहित शिव को प्रणाम करके गंगा पार राम नगर में रहने लगे। वहां पर प्रतिवर्ष माघ में मेला लगता है। व्यास जी का मन्दिर है।

सप्त चिरंजीवियों में व्यास जी का नाम आता है। आज से लगभग २४५० वर्ष पूर्व भगवान् आद्या शंकराचार्य जी को उनके दर्शन हुए। उनसे शास्त्रार्थ किया।

देवी भागवत दूसरा स्कन्द तथा महाभारत आदि पर्व, व्यास जन्म–भगवान् विष्णु ने द्वापर के अन्त में देवताओं के प्रार्थना करने पर वेदों की सरल, विशद व्याख्या करने के उद्देश्य से तथा वेदान्त की गुत्थियों को सुलझाने के लिए, वेद व्यास के रूप में अवतार लिया। प्राचीन काल में सूर्य वंश में उपरिचर वसुनाम के एक धर्मात्मा परम प्रतापी चंदेली देश के राजा थे। उनके द्वारा एक कन्या का जन्म हुआ। कन्या का जन्म मछली के पेट से हुआ। उस मछली को एक धीवर ने जाल में फांस लिया। वह मछली गर्भवती थी। उसका पेट चीरने पर एक कन्या प्राप्त हई, उसके शरीर से मछली के

समान गन्ध आने के कारण उसका नाम 'मत्स्य गन्धा' रखा गया। सत्यवती, काली तथा मत्स्योदरी भी नाम पड़ा। वह मछली पूर्व जन्म में अद्रिका नाम की अप्सरा थी। ऋषि के शाप से वह मछली हुई। रोती हुई अप्सरा से दयालु ऋषि ने कहा, "हे कल्याणी! शोक न करो। एक मानवी कन्या का जन्म देकर शाप मुक्त हो जावोगी।" केवट के द्वारा मछली काटते ही वह दिव्य रूप धारण कर स्वर्ग में चली गई।

वह कन्या वृद्धि को प्राप्त होने लगी। युवती हो गई। एक बार पराशर जी साठ हजार वर्ष की समाधि के अनन्तर जगे तथा तीर्थ यात्रा के लिए निकले। यमुना तट पर पहुंचे। निषाद से यमुना पार करने के लिए कहा। वह भोजन कर रहा था। उसने अपनी पुत्री मत्स्य गंधा से कहा ऋषि को तुम यमुना पार ले जाओ। यह नदी पार कर रहे थे। उस सुन्दर नेत्रों वाली कन्या को देखकर ऋषि ने प्रभावित होकर अपने हाथ से उसका हाथ पकड़ा। उसने मुस्कुराते हुए कहा, यह आपके कुल के अनुरूप नहीं है। आपका तप भंग हो जाएगा। आप वशिष्ठ कुल में उत्पन्न हुए हो, ऐसा नहीं करना चाहिए। आपको तप से विचलित करने के लिए इन्द्र ने रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, प्रम्लोचा आदि को भेजा, किन्तु आपको डिगा न सकीं। मेरा तो रूप भी सुन्दर नहीं है। शरीर से दुर्गन्धि आती है। यह नीच भाव आपको कैसे प्राप्त हुआ, किन्तु उनकी चेष्टा को देखकर कालिका ने कहा, "हे महाभाग! धैर्य धारण करो। मैं आपको यमुना के उस पार ले चलती हूं।" उसने कहा, "सभी लोग देखते हैं, ठीक नहीं, समान गुण वाले के साथ सम्बन्ध ठीक होता है।" मुनि ने दुर्गन्धि की जगह सुगन्धि उत्पन्न कर दी। उसके शरीर से एक योजन तक कस्तूरी की सुगन्धि आती थी। तब से उसका नाम 'योजन गन्धा' पड़ा। उसी समय उन्होंने कुहरा पैदा कर दिया। कन्या ने कहा कि, "मैं कन्या हूं आप तो चले जाएंगे। आपका तेज व्यर्थ नहीं जाएगा। मुझ को गर्भवती देखकर पिता तथा संसार क्या कहेगा।" ऋषि ने कहा, "हे कान्ते! इस क्रिया के अनन्तर तुम कन्या भाव को प्राप्त करोगी। तुम जो चाहो वर मांग लो।" सत्यवती ने कहा, "पिता जी को पता न चले यह वरदान दो। मेरे कन्या व्रत भी खण्डित न हों, ऐसा करो। मुझ से आप जैसा तपस्वी, त्यागी, ज्ञानी पुत्र हो, अद्भुत शक्ति से युक्त हो। मेरे शरीर में सुगन्धि तथा युवावस्था बनी रहे।" पराशर जी ने कहा, "तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न पुत्र विष्णु का

अंशावतार होगा। त्रैलोक्य में प्रसिद्ध होगा। किसी कारण विशेष से मैं तुम्हारे प्रति कामातुर हुआ हूं। ऐसी स्थिति कभी नहीं आई। स्वर्ग की अप्सरों मुझे डिगा नहीं सकीं, किन्तु सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु की प्रेरणा से मैं आसक्त हुआ हूं। ऐसा लगता है कि सत्य संकल्प भगवान् की सत्य संकल्प शक्ति काम कर रही है। उन्हें व्यास के रूप में अवतरित होना है। अतः तुमको निमित्त बनाया है। हे सुमुखि! तुम्हारे गर्भ से वेद का विभाग करने वाले, पुराण वेत्ता ऋषि का जन्म होगा।'' ऐसा सत्यवती से कहकर क्रिया की। फिर शीघ्रता से ऋषि यमुना स्नान करके चले गये। वह उसी समय गर्भवती हुई। पिता के पास लौटने के पहले ही उसी द्वीप में दूसरे कामदेव के समान पुत्र का जन्म हुआ। उत्पन्न होते ही अत्यन्त तेजस्वी व्यास जी माता से बोले, ''हे माता! आप अपने पिता केवट के पास चली जाएं, मैं तप करना चाहता हूं। जब तुम स्मरण करोगी, दर्शन दूंगा। जब तुम्हारे किसी उत्तम कार्य में रुकावट हो, तो मेरा स्मरण करना, तुरन्त आऊंगा। आपका कल्याण होगा। चिन्ता छोड़कर आप जाएं।'' व्यास जी माता से ऐसा कहकर प्रणाम कर पिता पराशर जी के पास चले गये। यमुना के द्वीप में माता ने छोड़ा था तथा कृष्ण वर्ण थे, अतः 'कृष्ण द्वैपायन' इनका नाम पड़ा। वन में जाकर तप किया। वेदों का विस्तार करने के कारण वेद व्यास नाम से प्रसिद्ध हुए। व्यास जी के चार प्रधान शिष्य थे। सुमन्तु तथा पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन जी को यजुर्वेद, जैमिनी जी को सामवेद, शौनक जी को अथर्ववेद पढ़ाया। इनके अतिरिक्त उनके और भी अनेकों शिष्य थे। शुकदेव जी उनके पुत्र तथा शिष्य हुए। उन्होंने महाभारत, ब्रह्मसूत्र तथा अठारह पुराणों का सम्पादन किया।

आज कल दोषदर्शी लोग शास्त्रों पुराणों में जो लाखों गुण भरे हैं, उनको नहीं देखते, किन्तु दोषों का प्रचार खूब करते हैं। कारक पुरुषों का चरित्र लीला से भिन्न होता है। लीला तथा चरित्र के रहस्य को न समझने वाले, इनको एक मानने वाले व्यामोह को प्राप्त होते हैं। जैसे कबड्डी के खूल में दो दलों के बालकों में से यदि कोई हार जाता है, तो उस जीवित को मरा घोषित कर देते हैं और जब उसके दल का कोई व्यक्ति दूसरे दल के लड़के को हरा देता है तो वह जीवित हो जाता है। यद्यपि अपने जीवन चरित्र में दोनों जीवित होने पर भी खेल मेंमरे घोषित किये जाते हैं, वैसे ही देवी देवता, भगवान्

के अवतार तथा ऋषियों का एक खेल होता है और दूसरी जीवनी है। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। व्यास के जन्म सम्बन्धी शंकाओं का समाधान नीचे किया जा रहा है-

व्यास जी की जन्म कथा की शंका का समाधान

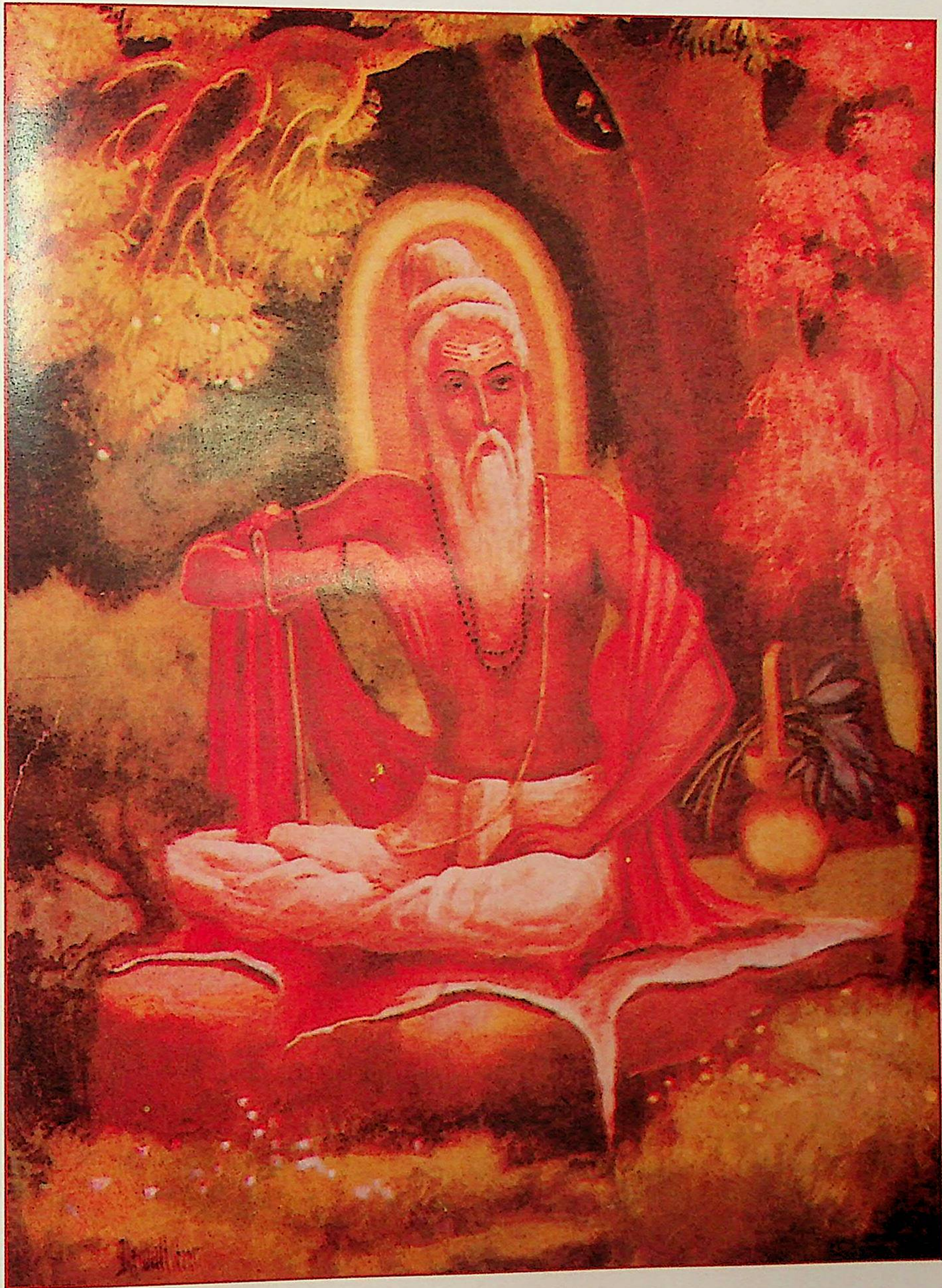
समाधान-१. वेदों में ईश्वर को सत्य संकल्प कहा गया है। उन्हीं के महा संकल्प के अधीन जीवों के छोटे-छोटे संकल्प होते हैं। जैसे सूत्रधार (नट) के संकल्प तथा इच्छा के अधीन पुतलियों का नाच तथा चेष्टा होती है। सूत्रों में बंधी हुई अनेकों कठपुतलियों को मालिक जैसे नचाता है, नाचती हैं, लड़ती, झगड़ती हैं। उनकी लड़ाई झगड़े का कारण कोई क्रोध या द्वेष नहीं है। वैसे ही पूरे ब्रह्माण्ड के एकमात्र सूत्रधार भगवान् विष्णु जिस जीव को जैसे नचाते हैं, नाचता है, मानस में शंकर जी ने पार्वती जी से कहा है, **''उमा दारु योषित की नाई। सबहि नचावत राम गोसाई॥''** हे उमा! श्री राम सभी को काठ की पुतली के समान नचाते हैं। उसी महाविष्णु ने जब देखा द्वापर बीतने वाला है, अति शीघ्र कलियुग आ जाएगा। कलि के मनुष्यों की अल्प आयु तथा मंद बुद्धि होगी। वेदों का ज्ञान लुप्त हो जाएगा। उस ज्ञान को गेहे गेहे जने जने में पहुंचाने की इच्छा से भगवान् के अपौरुषेय, अनादि, स्वतः प्रमाण, वेद ज्ञान की रक्षा के लिए तथा उसका सुगम रोचक अर्थ करने के लिए, अपनी सम्पूर्ण, ज्ञान प्रधान कलाओं से युक्त वेद व्यास के रूप में प्रकट होने की इच्छा की। फिर विचार किया कि इस अवतार में मेरे परम तपस्वी, परम वीतराग, परम यतीन्द्रिय पिता होने चाहिए। ऐसा विचार करके भगवान् ने पराशर जी के मन इन्द्रियों में प्रवेश किया। भगवान् के प्रवेश करते ही ऋषि की साठ हजार वर्ष की समाधि भंग हुई। जो समाधि किसी अप्सरा के उपद्रव से भंग नहीं हुई थी। उन्हीं की प्रबल इच्छा के कारण परम जितेन्द्रिय ऋषि के अन्तःकरण में उथल-पुथल हुई। जैसे किसी सरोवर में पत्थर डालने पर उसमें हलचल पैदा हो जाती है। वैसे ही भगवान् ने अपना सत्य संकल्प रूपी पत्थर डालकर उनके मन रूपी सरोवर में हलचल पैदा की। उधर सत्यवती का मन भी विचलित हुआ। ऊपरी मन से मना करती थी। जो मुनि तप के प्रभाव से दुर्गन्धि को सुगन्ध रूप में, दिन को रात्रि में तथा रजस्वला को रजोधर्म रहित कन्या के रूप में परिणत कर सकते हैं, उनको

काम पर विजय प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं था। भगवान् ने ही उनके मन में प्रवेश करके अपनी महासंकल्प सत्य शक्ति से बरबस यह कार्य करवाया था। अत: इसमें पराशर जी का कोई दोष नहीं है।

संसार के इतिहास में कहीं भी ऐसा नहीं मिलता कि गर्भाधान के तुरन्त बाद ही बच्चा किसी चिड़िया आदि के भी पैदा नहीं हो सकता। शारीरिक विज्ञान अथवा जीव विज्ञान से भी यह बात सिद्ध नहीं होती। आज के विज्ञान की खोज शक्ति तथा तर्क शक्ति की भी वहां तक पहुंच नहीं है, क्योंकि **'राम अतर्क्य बुद्धि मन, वानी।'** भगवान् के दिव्य लोकोत्तर जन्म, कर्म सर्वज्ञ ब्रह्मा सनकादि भी नहीं समझ पाते। **''निजच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार।''** भगवान् का शरीर अपनी संकल्प शक्ति से निमित्त होता है। माया के तीन गुणों तथा इन्द्रियों की पहुंच के परे हैं। तत्काल उत्पन्न हुआ बच्चा, उसी समय माता को प्रणाम करके तपस्या करने नहीं चला जा सकता। सत्यव्रती पराशर जी का भोग लौकिक नहीं है, किन्तु दिव्यातिदिव्य चिन्मय अविनाशी, ऐश्वर्य प्रधान भोग है।

२. हमारे वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। (१) लौकिक भाषा, (२) परकीया भाषा, (३) समाधि भाषा। इन ग्रन्थों के संस्कृत भाष्यकारों ने इन कथाओं का अधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक अर्थ किया है।

(१) लौकिक भाषा–इसमें केवल बोलचाल की भाषा में अनुवाद मात्र रहता है। **(२) परकीया भाषा**–इसमें शरीर के भीतर विद्यमान अध्यात्म सम्बन्धी विचार होता है। **(३) समाधि भाषा**–चित्त वृत्ति को समाहित करने का नाम समाधि है। समाधि लगाने वाले योगी, युञ्जान तथा युक्त भेद से दो प्रकार के होते हैं। इन्हीं को साधक तथा सिद्ध योगी भी कहते हैं। धारणा, ध्यान, समाधि रूपी संयम द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा के माध्यम से संशय तथा विपरीत भावना रहित, यथार्थ ज्ञान होता है। इस भाषा के शब्द लौकिक होने पर भी अर्थ अलौकिक निकलता है। जैसे इडापिंगला के बीच में रहने वाली सुषुम्णा नाड़ी को रण्डा कहा तथा मद्य, मांस, मछली, मुद्रा तथा मैथुन को



भगवान् व्यासदेव



योगियों की मुक्ति का कारण कहा है। यहां मद्य का अर्थ परमात्मा से जीव का मिलकर परमानन्द को प्राप्त करना। मीन का अर्थ इडापिंगला आदि नाड़ियों में प्रवाहित होने वाला स्वर। मैथुन का अर्थ शिव का शक्ति के साथ मिलकर परमानन्द का अनुभव करना इत्यादि। विस्तार से सत्ययुग खण्ड शिव चरित्र में दिया जा चुका है।

आधिभौतिक अर्थ–पंच महाभूतों से उत्पन्न हुई विशेष घटना भौतकि है।

आधिदैविक–गगन में विद्यमान् चन्द्रतारा मण्डल इन चमकीले नक्षत्र ग्रह आदिकों में जो घटनाएं घटती हैं। उन्हें आधिदैविक कहते हैं। देवलोक में घटित घटनाएं आधिदैविक हैं।

आध्यात्मिक–शरीर के भीतर पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच प्राण, अन्तःकरण चतुष्टय आदि को जिसे बोध हो। उसका आध्यात्मिक अर्थ है। पराशर तथा सत्यवती जी का मिलन तथा यमुना के द्वीप में भगवान् व्यास जी का जन्म आध्यात्मिक तत्त्व का भी प्रतिपादन करता है।

पराशर शब्द का अर्थ–पराशर शब्द में परा तथा शर दो शब्द हैं। परा = परब्रह्म परमात्मा की इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति को 'परा' शब्द से कहा है। जिस साधक या सिद्ध ने परमात्मा से उत्पन्न हुई तीनों शक्तियों को प्राप्त कर लिया है तथा माया के तीन गुणों को शर = बाण के समान बींध दिया है अथवा जिसने परब्रह्म परमात्मा का ध्यान शर के समान तन्मय होकर लक्ष्य बेधन कर लिया है। उसे 'पराशर' कहा गया है।

सत्यवती–योगी की ब्रह्माकार वृत्ति अर्थात् सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा का अवगाहन करने वाली ब्रह्माकार वृत्ति ही 'सत्यवती' है। साधक अथवा सिद्ध या योगी ब्रह्माकार वृत्ति के बिना लक्ष्य बेध नहीं सकता। इस प्रकार की वृत्ति विशेष से परम लक्ष्य ब्रह्म का सेवन सत्यवती तथा पराशर का संयोग है। यह संयोग यमुना तट पर हुआ है। यमुना में भी दो पद है यम की अनुजा। चूंकि यमुना यमराज की छोटी बहन है। अब हम यम शब्द पर विचार करेंगे। योग दर्शन में कहे हुए ५ यमों का उल्लंघन करने वालों को दण्डित करने के कारण इनको यम कहा गया है। पांच यमों का पालन करने वाला ही इस लक्ष्य को प्राप्त करता है। यही यमुना है।

इन दोनों के संयोग से भगवान् वेद व्यास, कृष्ण द्वैयायन का जन्म हुआ।

वेदव्यास का अर्थ–परमात्मा का दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान वेद है। इस वेद की विस्तृत जानकारी तब होती है, जब साधक माया की विषमतारूपी द्वैत = भेद बुद्धिपायन = पान करता है अर्थात् पूर्ण रूप में अभेद में स्थित होता है। तब उसे सच्चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति स्वयं हो जाती है।

कृष्ण–ब्रह्म वैवर्त पुराण में नारायण भगवान् नारद जी के प्रति कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं, **"कृषि र्भूवाचकः शब्दः णश्च निर्वृत्तिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्णमित्यमिधीयते॥"** कृषि शब्द उत्पन्न होने अर्थ में णकार परमानन्द का वाचक है। परमानन्द की प्राप्ति कैसे होती है इस पर कहते हैं, जीवात्मा परमात्मा की एकता परब्रह्म कृष्ण के नाम से कही गई है।

सत्यवती, पराशर, यमुना वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन का आध्यात्मिक भाव सम्पूर्ण हुआ।

तृतीय समाधान–ऋषियों द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों में चाहे उनका जीवन चरित्र हो अथवा पिता, पितामह आदि पूर्वजों का, गुरु, परम गुरु आदि गुरुओं का, शिष्य प्रशिष्य, पुत्र पौत्र आदिकों का जैसा जीवन हो बिना छल कपट के ज्यों का त्यों लिखते थे। इससे सिद्ध होता है कि साधकों को झूठ नहीं बोलना चाहिए, यह शिक्षा मिलती है। दूसरी यह शिक्षा मिलती है कि जब हमसे अधिक तपस्वी त्यागियों को भी माया घेर लेती है, तो हम तो उनके आगे कुछ भी नहीं हैं। उनके तप त्यागमय जीवन को अपनाना चाहिए। अति मानवीय जीवन को नहीं। जैसे पाण्डवों ने जुआ खेला, भगवान् ने चीरहरण किया। इन लीलाओं का साधारण पुरुष अनुकरण न करे अथवा जो ऋषि सूखे पत्ते, कन्दमूल, फल या निराहार रहकर हजारों वर्षों तक तपस्या करते रहे, वे भी चलायमान हो गये। अतः वर्तमान साधकों को सुन्दर स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर वस्त्रों तथा सुन्दरियों से सदा दूर रहना चाहिए। यह शिक्षा प्राप्त होती है।

व्यास जी ने सौ वर्ष तक, शंकर जी तथा नारायण की आराधना करके शुकदेव जी को पुत्र के रूप में प्राप्त किया। जब कुरुवंश समाप्त होने वाला था, तब माता सत्यवती

की आज्ञा प्राप्त करके धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर जी को जन्म दिया। एक दिन घूमते हुे नारद जी व्यास जी से मिले उस समय पाण्डवों को वनवास हो चुका था। व्यास जी ने नारद जी से कहा, हे देवर्षे! मैंने जब कौरव पाण्डवों के झगड़े, द्रोपदी का अपमान तथा बनवास की बात सुनी तो बड़ा दुख हुआ। जब सुख समृद्धि की बात सुनता हूं तो प्रसन्न होता हूं। इसका कारण क्या है? नारद जी ने भगवान् की माया को बताया। इस माया ने मुझे बार-बार नचाया है। व्यास जी ने शुकदेव जी को वेद, महाभारत, भागवत तथा देवी भागवत पढ़ाया। उन्होंने परीक्षित की मुक्ति के लिए देवी मख करने के लिए जनमेजय को आज्ञा दी तथा उसी में नौ दिन में देवी भागवत महापुराण सुनाया व्यास जी का जीवन वृत्तान्त महाभारत तथा पुराणों में अतिविस्तार से आया है। यहां केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

श्रीमद् भागवत महापुराण–भगवान् वेदव्यास प्रणीत है

जैसे वैदिक सनातन धर्म के चारों पूर्व कल्पों की आनुपूर्वी सहित वेद–अपौरुषेय हैं, वैसे ही शतकोटि (एक अरब) श्लोकात्मक अष्टादश महापुराण प्रत्येक कल्प की परिवर्तित आनुपूर्वी सहित, प्रत्येक कल्प के आरम्भ में ब्रह्मा जी इनका स्मरण करते हैं। प्रत्येक द्वापर के अन्त में भगवान् वेदव्यास के रूप में अवतरित होकर; ब्रह्मा जी द्वारा विस्तृत महापुराणों को संक्षेप करते हुए, वेदों का विस्तृत भाष्य करते हैं। अतः वेदों के समान पुराण भी अनादि एवं अपौरुषेय सिद्ध होते हैं; उनमें 'विष्णुपुराण' का भाष्य अथवा 'गायत्री' मंत्र का विस्तृत भाष्य या श्री बल्लभाचार्य जी के मतानुसार 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य ही 'श्रीमद् भागवत' है। इसके संग्रहकर्त्ता वेदव्यास जी हैं। यह बात भागवत की श्री हनुमन्त टीका और चित्सुखी टीका से सिद्ध होती है। अतः जो श्रीमद् भागवत को बोप देव की रचना कहते हैं। वे भ्रान्ति में हैं। बोप देव जी ने तो इसकी व्याख्या मात्र की है, यह इस लेख से सिद्ध हो जाएगा।

श्रीमद् भागवत की दो प्राचीन प्रतियां मिलती हैं। उनमें से पहली प्रति भोजपात्रों पर लिखी हुई है, जिसे स्वयं वेदव्यास जी द्वारा उनके ब्रह्मचारी को प्राप्त हुई थी, यह प्रति आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व पटियाला नरेश के राजपुरोहित जी को प्राप्त हुई थी।

दूसरी प्रति महामहोपाध्याय श्री पं० गोपीनाथ जी को महामहोपाध्याय श्री पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद जी से प्राप्त हुई; इन दोनों प्रतियों के बारे में विवरण क्रमशः दिया जाता है।

प्रथम प्रतिः–इस शरीर को 'महावाक्य' का उपदेश देने वाले तथा ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा ब्रह्मलीन अनन्त श्रीपद-वाक्य-प्रमाणज्ञत्र श्रीमद् दण्डी स्वामी श्री महादेवाश्रम जी महाराज ने जो जालन्धर (पंजाब) में रहते थे, एक कथा सुनाई थी। उनके शिक्षा गुरु कुरुक्षेत्र वाले अनन्त श्री, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीमद् दण्डी स्वामी अद्वैताश्रम जी महाराज ने श्रीमद् भागवत की प्राचीनता का वर्णन करते हुए कहा था, कि मेरा जन्म पटियाला में हुआ था। हमारे जन्म से कई वर्ष पूर्व पटियाला के महाराजा, राज परिवार एवं अपने गुरुदेव सहित उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा पर गये थे। क्रमानुसार यमुनोत्तरी, गंगोत्री तथा केदारनाथ की यात्रा करते हुए जब वे श्री बद्रीनारायण की यात्रा कर रहे थे, तब मार्ग में श्री राजगुरु जी को दस्त लग गये। सूर्यास्त होने वाला था; उन्होंने महाराज से कहा कि आप लोग धीरे-धीरे चले, मैं भी शौचादि से निवृत्त होकर आप लोगों से आकर मिल लूंगा। उन दिनों पर्वतीय क्षेत्रों में राजमार्ग पगडण्डियां भी स्पष्ट नहीं थीं, अतः वे मार्ग भूल गये और घबराकर वन में भटकने लगे। सूर्यास्त हो गया। अंधेरा छा रहा था। इतने में ही उन्होंने एक महातेजस्वी जटाजूधारी नैष्ठिक ब्रह्मचारी जी को देखा। वे मृगचर्म की कोपीन तथा व्याघ्रचर्म कमर पर बांधे हुए थे। कन्धे पर कुठार (कुल्हाड़ा) रखे हुए थे और दाहिने हाथ में पुस्तक लिये हुए थे। पण्डित जी ने देखा ही उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। अपना परिचय देने के अनन्तर पण्डित जी ने उन महापुरुष का परिचय जानने की जिज्ञासा निवेदित की, तो उन ब्रह्मचारी जी ने कहा, 'हे द्विजवर! मैं श्री वेदव्यास जी का नैष्ठिक ब्रह्मचारी हूं। मुझे श्री गुरुदेव जी से दो वस्तुएं प्राप्त हुईं। इनमें से एक तो श्री गुरु महाराज के हाथ का लिखा 'श्रीमद्भागवतमहापुराण' है; दूसरी कायाकल्प की दिव्य औषधि है। दोनों को देने के लिए अधिकारी की खोज में हूं। संयोगवशात् तुम इन दोनों के वास्तविक अधिकारी हो। इसको मैं दिव्यदृष्टि से देख चुका हूं। अब घोर कलिकाल आने वाला है। अतः साठ वर्ष पश्चात् मैं अपना शरीर छोड़ दूंगा, आप चिन्ता न करें, मैं आपको मार्ग दिखा दूंगा तथा जड़ी की पहचान करवा दूंगा। इसका सेवन विधि के अनुसार करने के लिए चालीस दिन का दुग्ध का कल्प

करना होगा तथा दुग्ध कल्पकाल में जल का स्पर्श तक वर्जित है। अतः दुग्ध से ही स्नान-पूजनादि कृत्य करने चाहिए। चालीस दिन के बाद तुम्हारे वृद्ध शरीर के भीतर एक नया सोलह वर्ष की आयु वाला शरीर बनेगा। उसके पश्चात् कुल्हाड़ा मरवाने पर यह शरीर लकड़ी के समान फटकर अलग हो जाएगा और नवीन शरीर निकलेगा।

यह कहकर ब्रह्मचारी जी ने उनको कुल्हाड़ा देते हुए कहा कि, "मेरे सिर पर जोर से एक कुल्हाड़ा मारो।" ऐसा कहकर कुल्हाड़ा पंडित जी के हाथ में दे दिया। पंडित जी घबरा गये और कहने लगे, "महाराज! मैं आपकी कोई सेवा नहीं कर सका, अब कुल्हाड़ा मारकर आपकी हत्या का पाप कैसे ले सकता हूं? यह मुझसे नहीं होगा।"

ब्रह्मचारी जी बोले, "तुम घबराते क्यों हो, कुठार के प्रहार से मेरी मृत्यु नहीं होगी; यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मेरे साथ चलो।" ऐसे कहकर ब्रह्मचारी जी पंडित जी को एक गुफा में ले गये; उन्होंने वहां पर गुफा में ब्रह्मचारी जी के साठ-साठ वर्ष के अनन्तर से कायाकल्प द्वारा छोड़े गये अनेक स्थूल शरीरों के पंजरों को देखा और बड़े विस्मय को प्राप्त हुए। तब पंडिजत जी को पूर्ण विश्वास हुआ और उन्होंने ब्रह्मचारी जी से कुल्हाड़ा लेकर बड़े ज़ोर से ब्रह्मचारी जी के मस्तक पर मारा। मारने पर उनके शरीर से एक बूंद भी रक्त नहीं निकला। सूखी लकड़ी के समान शरीर फटकर दो फांकों में हो गया। उस शरीर के भीतर से सोलह वर्षीय एक नवयुवक के समान शरीर निकला।

श्री ब्रह्मचारी जी ने पंडित जी को दिव्यौषधि की पुड़िया तथा 'श्रीमद्भागवत' प्रसाद रूप में दिये और कहा कि "एक पुड़िया को साठ वर्ष के बाद सेवन करना और इस भागवत का नित्य पाठ करना। यदि पाठ न कर पाओ तो इसका दोनों समय पूजन-आरती आदि अवश्य करना और मृत्यु से पूर्व अपने पुत्रादि को भी श्रीमद्भागवत के पाठादि की आज्ञा देना।" यह कहकर पंडित जी को मार्ग बताकर ब्रह्मचारी जी अन्तर्धान हो गये। इस घटना के साठ वर्ष बाद ब्रह्मचारी जी ने शरीर त्याग किया। उधर पंडित जी भी आकर राज परिवार से मिले तथा सारी घटना बतलाई। महाराज बड़े प्रसन्न हुए। उन कुलगुरु जी ने लौटकर अपने घर में पूर्ण विधि विधान से 'श्रीमद्भागवत' की प्रतिष्ठा की और शेष आयु श्री भागवत के अनुष्ठान में व्यतीत की। एक दोबार उन्होंने कायाकल्प किया।

हमारे परम गुरुदेव जी बतलाते थे कि उन राज पंडित जी की मृत्यु के पश्चात् वह पुस्तक राज महल में प्रतिष्ठित कर दी गई। राज परिवार उसका दर्शन, पूजन तथा पाठ करता रहा। श्री गुरुदेव महाराज कहते थे कि "मैंने इस पुस्तक का अपने पितामह (बाबा) के साथ स्वयं दर्शन किया था।" यह पुस्तक पंडित जी को कब मिली थी? कई पीढ़ी पहले की वह घटना रही। वह पुस्तक कब तक रही? अब है कि नहीं इसका कोई पता नहीं चल सका। पूज्यपाद परम गुरुदेव जी महाराज का शरीर भी विक्रमी संवत् १९९३ सन् १९३६ ई० पौष शुक्ल सप्तमी को छूटा था। उस समय महाराज श्री जी की आयु लगभग ८५-९० वर्ष की रही होगी। अतः यह पुस्तक उन राज पुरोहित जी को भगवान् वेदव्यास जी के उन नैष्ठिक ब्रह्मचारी जी से कम-से-कम ढाई सौ तीन सौ वर्ष पूर्व ही कभी मिली होगी ऐसा अनुमान ही किया जा सकता है। इस उपर्युक्त घटना से यही निष्कर्ष निकलता है कि 'श्रीमद्भागवत' भगवान् वेदव्यास जी की ही रचना है।

दूसरी प्रति—दूसरे प्रमाणानुसार—श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रारम्भ में प्रथम स्कन्ध में कथा आती है कि सरस्वती तट पर स्थित व्यास जी को जब सत्तरह पुराणों की रचना करने पर भी सन्तोष एवं शान्ति नहीं हुई, उन्हें एक अभाव सा खटकता रहा; वे इस प्रकार उदास चित्त से बैठे विचार मग्न थे कि देवर्षे नारद जी वहां आ पहुंचे। वेदव्यास जी ने देवर्षि का आतिथ्य-सत्कार किया। नारद जी के पूछने पर उन्होंने चित्त की उद्विग्नता एवं पुराणों की रचना के उपरान्त भी पूर्ण सन्तोष प्राप्त न होने की बात यथावत् देवर्षि के समक्ष प्रकट कर दी। तब नारद जी ने कहा कि, "आपने भगवत धर्मों का पूर्णतः वर्णन नहीं किया।" साथ ही देवर्षि ने ब्रह्मा एवं विष्णु की परम्परा से प्राप्त 'चतुःश्लोकी भागवत' का उपदेश व्यास जी को किया। तब वेदव्यास जी ने अठारह सहस्र श्लोकों से युक्त बारह स्कन्धों में इसकी रचना करके परमनिवृत्ति परायण, समाधिनिष्ठ, अमलात्मा, परमहंस श्री शुकदेव जी को पढ़ाया। इस परम्परा से यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ भगवान् वेदव्यास जी द्वारा रचित ही सिद्ध होता है।

शंकालुजन शंका जो कहते हैं कि श्रीमद्भागवत महापुराण की शैली व्यास जी रचित अन्य पुराणों से भिन्न है। सत्तरह पुराणों की भाषा अतिसरल है, जबकि श्रीमद्भागवत

की अतिकठिन है। अत: यह व्यासकृत नहीं है। उनका यह भी कथन है कि अन्य पुराण द्राक्षावत् है जबकि श्रीमद्भागवत नारिकेलतुल्य कठोर है अर्थात् जैसे अंगूर, किशमिश, मुनक्का खाने में कोई परिश्रम नहीं है; परन्तु नारियल को खाने के लिए उसका स्वाद प्राप्त करने के लिए पहले उसकी जटाएं खोलने में परिश्रम, फिर फोड़ने में परिश्रम, फिर गिरी-गोला निकालने में परिश्रम और तदुपरान्त उसके खाने में महापरिश्रम करना पड़ता है। इस प्रकार अन्य पुराणों के पाठ करने तथा अर्थ जानने में इतना परिश्रम नहीं, जितना भागवत के पाठ, अन्वय तथा अर्थ करने में होता है। अत: उसकी शैली एवं वृत्त कठिन होने के कारण वे लोग कहते हैं कि यह व्यासकृत नहीं है।

समाधान-यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ऋषि की रचना या आचार्य की रचना एक जैसी ही हों। उदाहरणार्थ वेदव्यास जी द्वारा रचित सभी पुराणों एवं महाभारत की संस्कृत सरल है, परन्तु उन्हीं के द्वारा रचित 'ब्रह्मसूत्र' की संस्कृत उतनी ही क्लिष्ठ है, कठिन है। भगवत्पाद आद्य श्री शंकराचार्य जी द्वारा रचित देवी-देवताओं के स्तोत्र सरल हैं, कुछ अत्यन्त कठिन हैं। जहां वेदान्त के स्तोत्र सरल हैं वहीं उनका 'ब्रह्मसूत्र' पर शांकरभाष्य अति कठिन, प्रपन्न एवं गम्भीर है। अत: केवल भाषा का सारल्य अथवा काठिन्य मात्र देखकर उनकी रचना न मानना ठीक नहीं है।

अतिसरल भाषा में रचे हुए वेदव्यास जी के अन्य पुराणों के कुछ प्रसंग तथा स्तोत्र कठिन भी हैं। उनके द्वारा रचित महाभारत के गीता, सनतसुजातीय, विष्णुसहस्र नाम आदि ग्रन्थों का भाव महागम्भीर है। महाभारत में ८८०० कूट श्लोक तो ऐसे हैं, जिनके अर्थ व्यास जी तथा शुकदेव जी समझते हैं; उनमें कुछ के अर्थ संजय जानते हैं, कुछ का नहीं। महाभारत आदि पर्व अनुक्रमणिका में व्दव्यास जी कहते हैं-

"अष्टौश्लोक सहस्त्राणि अष्टौश्लोक शतानि च।
अहंवेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा॥"

अर्थ ऊपर दिया गया है।

जो लोग भागवत को पुराणों के बाद की रचना मानते हैं, उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि भागवत पुराणों के बाद की श्री बोपदेव कृत रचना होती, तो उसका उल्लेख अन्य पुराणों में नहीं होना चाहिए था। श्रीमद्भागवत का माहात्म्य

पद्मपुराण, स्कन्दपुराण में भी वर्णित है। गर्ग संहिता में भी भागवत के माहात्म्य का वर्णन हुआ है। पुराणों में उपपुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, ईशानुकथन? पांच लक्षण हैं, परन्तु महापुराण में (१) सर्ग-सृष्टि, (२) विसर्ग-प्रलय, (३) स्थान, (४) पोषण, (५) ऊति, (६) मन्वन्तर, (७) ईशानुकथन-इष्टदेवचरित्र, (८) निरोध, (९) मुक्ति तथा (१०) आश्रय-यह दस लक्षण कहे गये हैं। जो दशों लक्षण श्रीमद्‌भागवत में विद्यमान हैं। अत: श्रीमद्‌भागवत महापुराण व्यासकृत ही सिद्ध होता है, इसमें कोई संदेह का स्थान नहीं है। बृहन्नारदीय पुराण के पुरुषोत्तम मास-माहात्म्य में भी भागवत के विषय में लिखा है-

'राजा पृष्टं शुकेनोक्तं श्रीमद्‌भागवतं परम्'

राजा परीक्षित के पूछने पर शरी शुकदेव जी ने परम भागवत सुनाया।

मत्स्य पुराण में भी लिखा है कि ''जो भागवत पुराण को भाद्रपद की पूर्णिमा को सोने के सिंहासन सहित दान करता है, वह परमगति को प्राप्त करता है।''

अत: उपर्युक्त पुराणों के वचनों से भागवत महापुराण श्री वेदव्यास जी द्वारा रचित ही सिद्ध होता है। श्रीमद्‌भागवत की उपलब्ध प्राचीनतम प्रति से भी यह व्यास जी की रचना सिद्ध होती है। 'नारद-पुराण' में अष्टादश महापुराणों की संक्षिप्त विषय सूची दी गई है, उससे भी श्रीमद्‌भागवत की महापुराण होने की पुष्टि होती है।

श्रीमद्‌भागवत महापुराण के सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामी जी ने भी अपनी टीका के आरम्भ में भागवत को व्यासकृत बतलाते हुए लिखा है-

''**अतएव भागवतं नामान्यदितिनाशंकनीयम्**'' अर्थात् इसलिए 'भागवत' नामक अन्य पुस्तक है। ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। इस पर शंका की जाती है कि श्रीधरस्वामी के ध्यान में कोई दूसरा भागवत रहा होगा, परन्तु य शंका निर्मूल है। व्याख्यान में आक्षेप करके समाधान स्थून-खनन न्याय से किया जाता है। इस से सिद्ध की पुष्टि होती है, परन्तु श्रीधर स्वामी जी के इस पाठ को बदल कर '**बोपदेव कृत मिति नाशङ्कनीयम्**' भागवत बोपदेव कृत है यह शंका नहीं करनी चाहिए। अत: यहां बोपदेव के विषय में भी विचार करना अत्यन्तावश्यक है, कि वह कब, कहां हुए और

कौन-कौन से ग्रन्थों की बोपदेव ने रचना की। किन-किन ग्रन्थों पर टीकाएं लिखीं। कुछ लोग इनको 'गीतगोबिन्द' के रचयिता पं० जयदेव जी का भाई मानते हैं; जबकि दोनों का देशकाल भिन्न-भिन्न है।

बोपदेव

श्री जयदेव जी बंगाली ब्राह्मण थे। इनका जन्म 'बिल्ब' नामक ग्राम में हुआ था। श्री गीतगोबिन्द में इन्होंने अपने पिता का नाम 'भोजदेव' तथा माता का नाम 'रामादेवी' कहा है। इनका जन्म विक्रमी संवत् १२६३ में हुआ था तथा महाराज लक्ष्मणसेन के आश्रित थे, जिनका राज्य नदिया-शान्तिपुर में था।

बोपदेव जी से शुद्धाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक श्रीमद्बल्लभाचार्य, श्री मदानन्दतीर्थ जी महाराज ने अपने गीता के लेशभाष्य में श्रीमद्भागवत के प्रमाण दिये हैं। वे स्मृत्यनुसार विक्रमी संवत् १२५७ में हुए थे।

इससे पूर्व श्री रामनुजाचार्य जी ने 'रामतापनीय' उपनिषद् भाष्य तथा सार संग्रह में भागवत के प्रमाण दिये हैं। 'चतुर्दशमतविवेक' में "**परमहंसो धर्मो भागवते पुराणे कृष्णेन् उद्धवाय उपदिष्ट**" अर्थात् श्री कृष्ण ने भागवत पुराण में उद्धव के प्रति परमहंस धर्म का उपदेश किया है।

आचार्य श्री शंकर २४६६ वर्ष पूर्व अवतरित हो चुके हैं। इसके वासुदेव सहस्त्रनाम भाष्य में भागवत के प्रमाण मिलते हैं। आद्य शंकराचार्य जी से भी पूर्व इनके परमगुरुदेव श्री गौड़पादाचार्य जी महाराज जो कि बोप से भी लगभग सोलह सौ वर्ष पूर्व हो चुके हैं, अपनी पञ्चीकरण की व्याख्या में-

"**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः**" यह भागवत का वचन उद्धृत है। इन्होंने महाभारत के अश्वमेध पर्व के अन्तर्गत वर्णित उत्तरगीता के भाष्य में श्रीमद्भागवत के प्रमाण दिये हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत महापुरण भगवान् वेदव्यास जी की ही रचना है बोप देव जी की नहीं। श्रीमद्भागवत की महिमा पर एक श्लोक देते हैं, जिनमें 'पदम', 'ब्राह्म', 'बाराह', 'ब्रह्माण्ड', 'स्कन्दादि' पुराण सिंहासनासीन

श्रीमद्भागवत रूपी सम्राट् की छत्र, चामर, पंखा लेकर सेवा तथा स्तुति करते हैं।

''पाद्म ब्राह्मगृहीत चामर युगो वाराह संवीजितो ब्रह्माण्डेन धृतातपत्र रूचिरः स्कन्दादिभिः संस्तुतः॥'' श्रीमद् वैष्णवसेवितानुगमनः सर्वेप्सितार्थप्रदः श्रीमद्भागवताभिधो विजयते सम्राट् पुराण प्रभुः॥

अर्थात् सिंहासनासीन श्रीमद्भागवत जी के ऊपर पद्म, ब्रह्म-पुराण दोनो चामर डुलाते हैं, वाराह पंखा झलता है, ब्रह्माण्ड-पुराण छत्र लिये हुए हैं, स्कन्दादि पुराणों द्वारा स्तुत श्री वैष्णवों द्वारा सेवित भागवत सभी प्रकार के मनोरथों को देने वाला सर्वपुराण प्रभु सम्राट् श्रीमद्भागवत नामक महापुराण विजय को प्राप्त हो।

कल्याण के श्रीकृष्णांक वर्ष १९३१ ई० विक्रमी संवत् १९८८ में प्रकाशित श्रीयुत् स्वामी गोस्वामी लक्ष्माचार्य जी के लेख पर आधृत। इति व्यास चरितम्।

॥ द्वापर युग खण्ड का नवां अभ्याय समाप्त॥

॥ दशवां अध्याय प्रारम्भ॥

१८९. शुकदेव

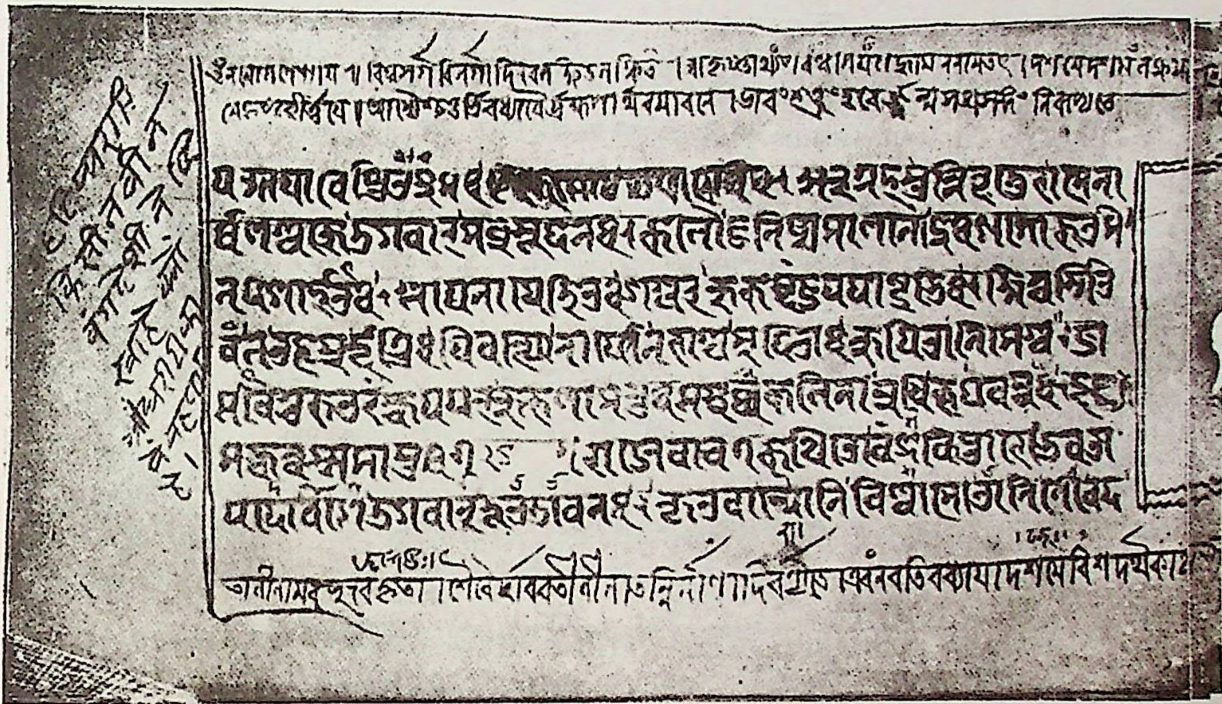
यं प्रव्रजन्त मनुपेतमपेत कृत्यं, द्वैपायनो विरहा कातरआजुहाव।
पुत्रेतितन्मयतया तरवोभिनेदुस्तं सर्वभूत हृदयं मुनि मानतोऽस्मि॥

सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले शुकदेव जी को मैं प्रणाम करता हूं, जिनको उपनयन आदि संस्कार परित्याग करके संन्यास के लिए जाते देखकर उनके विरह से आतुर द्वैपायन व्यास पुत्र, पुत्र चिल्लाते हुए पीछे-पीछे जा रहे थे। जिसका उत्तर पेड़ों ने दिया। (पद्म पुराण)

''त्रिकालातीता चिन्मात्रप्रशान्ता-सान्ता संयुतम्।
विकाराद्यैरसंसृष्टं शुकं गुरुमहं श्रये॥''

(गुरुवंश काव्यम्)

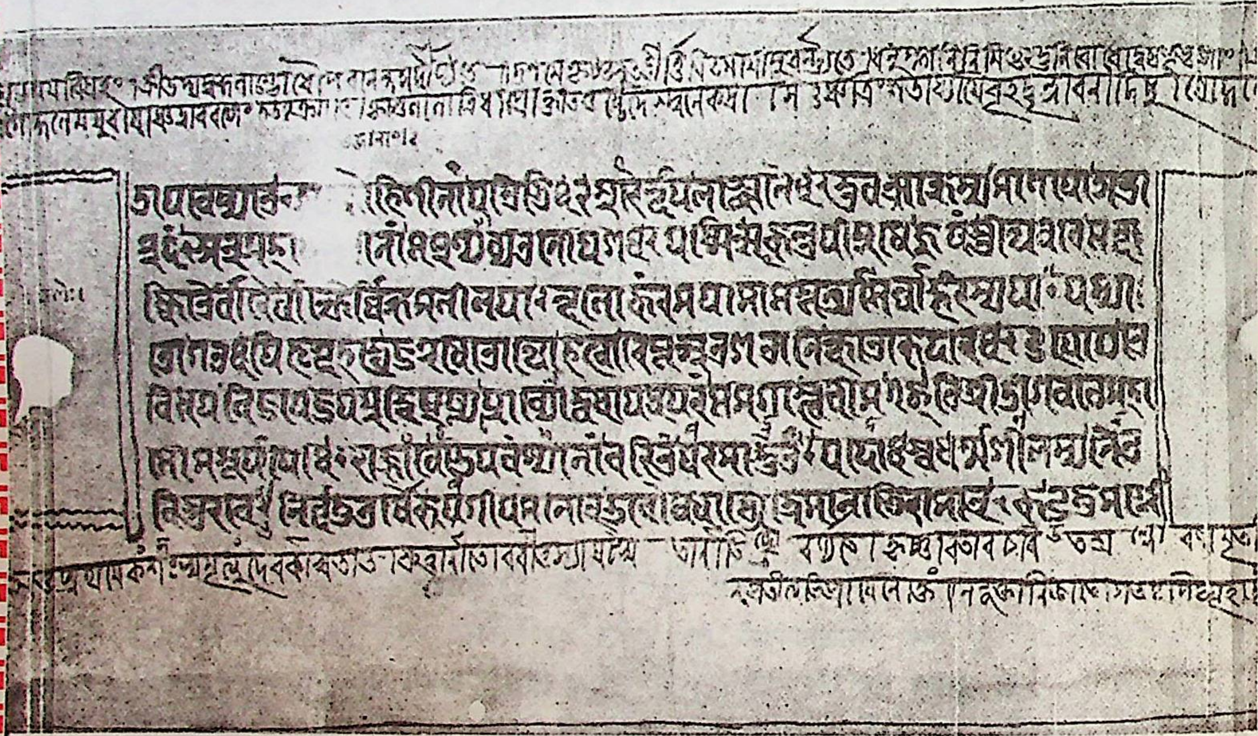
तीनों कालों से परे, चैतन्य मात्र, परमशान्त अन्तःकरण से युक्त, सम्पूर्ण विकारों से रहित, गुरुवर शुकदेव जी का मैं आश्रय लेता हूं।



यह श्रीमद्भागवतकी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकके एक पृष्ठका फोटो है। यह पुस्तक गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारसके पुस्तकालयमें गत पन्द्रह वर्षोंसे सुरक्षित है। पता नहीं, श्रीमद्भागवतकी हस्तलिखित प्रतियोंमें कोई और इतनी प्राचीन पुस्तक किसी अन्य पुस्तकालयमें है या नहीं। यह पुस्तक स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० विन्ध्येश्वरीप्रसादजी द्विवेदी महोदयको बहुत दिनों पूर्व एक बंगदेशीय पण्डितसे प्राप्त हुई थी। बहुत समय तक यह उन्हींके पास रही। अन्तमें जब ईस्वी सन् १६१६ में उन्होंने अपनी समस्त हस्तलिखित पुस्तकें युक्तप्रान्तीय गवर्नमेंटको बेचीं तो उन्हींके साथ यह अमूल्य पुस्तक भी सरकारको दे दी। जिस समय यह पुस्तक द्विवेदीजीके पास थी, उस समय इसे कुछ दिनके लिये स्वर्गीय डा० राजेन्द्रलाल मित्र ले गये थे। उस समय व्यवहारकर्त्ताकी असावधानीसे इसके कुछ पन्ने फट गये थे और नष्ट हो गये थे। इस पुस्तकमें इसके लिखे जानेका समय लिखा हुआ था, किन्तु अन्य पन्नोंके साथ वह पन्ना भी नष्ट हो गया। हमने पण्डितजीके ही मुखसे सुना था कि पुस्तकमें जो लिपि-काल दिया हुआ था, उसे ईस्वी सन्में

श्रीमद्भागवतकी हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक

(लेखक—पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए० प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस)



परिणत किया जाय तो बारहवीं शताब्दीके मध्यके लगभग होता है। उन्हें ठीक-ठीक संख्याका स्मरण नहीं रहा था, इसलिये वह उसे बतला न सके।

देशभेदसे वर्णमालाके क्रम-विकासकी आलोचना की जाय तो पं० विन्ध्येश्वरी-प्रसादजीकी बात निर्मूल नहीं मालूम होती। बारहवीं शताब्दीकी प्राचीन भारतीय अक्षर-मालासे वर्तमान लिपिकी किस-किस अंशमें कहाँतक समानता है, इस समय प्रत्येक अक्षर और इसकी आकारगत विशिष्टताको लेकर इस बातकी आलोचना करनेका अवसर नहीं है। फिर भी जो लोग हस्तलिखित पुस्तकों, ताम्रपटों और शिलालेखोंका अनुशीलन करते हैं वे बिना विशेष अनुसन्धान किये ही इस पुस्तककी प्राचीनता स्वीकार करनेमें आगा-पीछा न करेंगे।

किसी समय कुछ पुरातत्त्वविद् महानुभावोंका यह मत था कि 'मुग्धबोध' व्याकरण-प्रणेता भिषक् केशवतनय बोपदेव श्रीमद्भागवतके रचयिता हैं। बोपदेव परम वैष्णव ज़रूर थे। वे 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि'कार मन्त्रिवर हेमाद्रिके सभासद् थे। किन्तु इससे वे भागवतकार नहीं हो सकते—आज यह बात किसीको समझानेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनके 'हरिलीला'

और 'मुक्ताफल' नामक दो ग्रन्थ ॐ भागवतके आधारपर रचे हुए हैं। 'मुक्ताफल'के उन्नीस अध्यायोंमें भागवत-तत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। 'हरिलीला' तो एक प्रकारसे भागवतकी अनुक्रमणिका-विशेष ही है। यह ग्रन्थ हेमाद्रिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही रचा गया था (श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरुप्यते विदुषा बोपदेवेन मन्त्रि हेमाद्रि तुष्टये) हेमाद्रि देवगिरिके यादववंशीय राजा महादेवके 'सर्व-श्रीकरणाध्यक्ष' थे। महादेवका राज्यकाल ईस्वी सन् १२६० से १२७१ तक है। हेमाद्रि महादेवके पीछे भी जीवित रहे थे। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि बोपदेव तेरहवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत हुए थे।

वर्तमान ग्रन्थकी लिपि बोपदेवके जन्मसे भी पहलेकी है। जो लोग श्रीमद्भागवतकी आपेक्षिक प्राचीनता और प्रामाण्य स्वीकार करनेमें हिचकते हैं, उनसे हम इस पुस्तककी पर्यालोचना करनेका अनुरोध करते हैं। श्रीमद्भागवतके अंशविशेषकी प्रक्षिप्तता और प्राचीनकालके प्रचलित पाठका निर्णय करनेमें यह आलोचना बहुत सहायक होगी।

ॐ 'हरिलीला' और 'मुक्ताफल'के अन्तमें लिखा है कि बोपदेवने भागवततत्त्वके सम्बन्धमें तीन ग्रन्थ रचे थे—'भागवततत्त्वोक्तौ त्रयः।'

श्रीमद् देवी भागवत के पहले स्कन्ध के चौथे अध्याय से शुकदेव जी का जीवन चरित्र आरम्भ होता है। तीसरे अध्याय के अन्त में सूत जी ने ऋषियों से शुकदेव जी को आयोनिज कहा। तब ऋषियों ने पूछा, हे सूत जी! हमने तो सुना है व्यास जी की पत्नी के गर्भ से शुकदेव जी का जन्म हुआ। आपने उन्हें आयोनिज तथा आरणेय कैसे कहा? यह तो गर्भज्ञानी सुने जाते हैं। सदैव निर्विकल्प समाधि में रहने वाले शुक ने विस्तृत देवी भागवत कैसे पढ़ा?

सूत जी ने कहा, एक बार व्यास जी सरस्वती तट पर आश्रम में रहते थे। वहीं पर एक गौरेया पक्षी का जोड़ा देखकर विस्मित हुए। पंख विहीन बच्चे को उसकी मां चोंच से जल तथा दाना खिलाती थी, दुलार करती थी। यह देखकर व्यास जी विचार करने लगे, यह जो इतना प्रेम करती है, बड़ा होने पर यह इसको क्या सुख देगा। यह तो भाग जाएगा। इनके मरने के बाद इनका श्राद्ध तर्पण भी नहीं करेगा। पुत्र विहीन का जन्म निरर्थक है। ऐसा सोचकर व्यास जी कुछ चिन्तातुर हुए। उन्होंने सुमेरु पर्वत पर जाकर विचार किया कि मैं किसकी आराधना करूं। जब वे इस विचार में बैठे थे तभी नारद जी आ गए। व्यास जी प्रसन्न हुए। उनका यथोचित पूजन करके कुशल पूछी। व्यास जी को चिन्तित देखकर नारद जी ने कारण पूछा, उन्होंने सब बातें सुनाईं। "देवर्षे! आप कहिये, मैं किस देवता का आश्रय ग्रहण करूं, जो पुत्र दे सके।" तब नारद जी बोले, "हे पराशरनन्दन यही प्रश्न मेरे पिता ब्रह्मा जी ने भगवान् विष्णु से किया था।" विष्णु भगवान् ने कहा, मुझे सम्पूर्ण शक्ति जगदम्बा से प्राप्त हुई है, अतः आप भी उनका आराधना करें। अंत में नारद जी ने भी व्यास जी को शक्ति आराधना के लिए कहा। नारद जी ने उन्हें शक्ति मंत्र की दीक्षा दी और चले गये। व्यास जी शक्ति की आराधना में लग गये। उनहोंने निराहार रहकर सौ वर्ष तक शिव शक्ति की आराधना की। कुछ पुराणों में कथा मिलती है कि उन्होंने बद्रिकाश्रम जाकर बद्री वन में नर नारायण तथा शंकर जी की आराधना की। बद्री वन में निवास के कारण ही उनका नाम 'बादरायण' पड़ा। व्यास जी तप में तल्लीन हुए। उनके तेज से सारा जगत् व्याप्त हुआ। उनकी तपस्या से इन्द्र भयभीत हुए। शंकर जी के पास जाकर प्रार्थना की। व्यास जी तप से मेरी

गद्दी छीन लेंगे। इन्द्र से शिव जी ने कहा, ''हे सुरेश्वर! तपस्वी महात्मा से द्वेष नहीं करना चाहिए। व्यास जी शक्ति सहित मेरी आराधना करते हैं। तुम्हें इनसे कोई भय नहीं है।'' किन्तु इन्द्र को विश्वास नहीं हुआ। शिव जी ने कहा, पुत्र के लिए तप कर रहे हैं। उनको कल्याणकारी पुत्र दूंगा। इन्द्र से ऐसा कहकर शंकर जी ने व्यास जी के पास पहुंचे तथा कहा, ''हे सत्यवती नन्दन, उठो। सम्पूर्ण तेज सम्पन्न परम ज्ञानी, निष्पाप, परम प्रिय पुत्र तुम को प्राप्त होगा।'' शूलपाणि शिव का यह वचन सुनकर व्यास जी प्रणाम करके आश्रम में लौट आये।

एक दिन आश्रम में वे अरणी मन्थन कर रहे थे। उन लकड़ियों से सहसा एक दिव्य पुरुष पैदा हुआ। उसको देखकर वे विचार करने लगे। इतने में एक तरुणी रूपवती घृताची नाम की अप्सरा आकाश में दिखाई पड़ी। वे विचार करने लगे, यह मुझे ठगने आई है। इसको स्वीकार करने पर महात्मा हंसेंगे। यह मेरे योग्य नहीं है। उस अप्सरा ने देखते-देखते तोती का रूप धारण किया और वह भाग गई। व्यास जी उसके पीछे लगे। अपने को नियन्त्रित नहीं कर पाये। उनका तेज अरणी में गिरा, उससे शुक नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। बालक को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उसे स्नान कराया। देवताओं ने पुष्प वर्षा की। देवताओं ने आकाश से मृगचर्म, दण्ड तथा कमण्डलु दिया। व्यास जी ने शास्त्र विधि से उनका उपनयन संस्कार किया। वे उत्पन्न होते ही सोलह वर्ष के बालक के समान थे। तोती रूप धारिणी घृताची से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम शुकदेव पड़ा। बृहस्पति जी से इन्होंने वेदों तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। गुरु जी को दक्षिणा देकर शुकदेव जी अपने पिता व्यास के पास पहुंचे। व्यास जी ने पुत्र का आलिंग्न किया, मस्तक सूंघा तथा कुशल पूछी। व्यास जी को उनके विवाह की चिंता हुई। व्यास जी ने पुत्र से कहा, ''हे अनघ! तुम वेदों तथा धर्मशास्त्रों को पढ़ चुके हो, अब विवाह करके तीन ऋणों से उऋण हो। हे महामते! गृहस्थ होकर मुझे सुख दो। तुम्हें मैंने शिव शक्ति की आराधना से प्राप्त किया है। मेरी रक्षा करो।'' शुकदेव जी ने कहा, ''हे महामते! पिता जी आप क्या कहते हैं? मैं आपका पुत्र तथा शिष्य हूं। मुझे उचित ज्ञानोपदेश करो। जिससे मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकूं। आप तत्त्व ज्ञानोपदेश देकर मेरा कल्याण करें।''

व्यास जी बोले, ''हे शुक! शंकर जी की सौ वर्ष की आराधना से मैंने तुम्हें पाया है। तुम्हारी गृहस्थी के निर्वाह के लिए किसी राजा से धन लाकर तुम्हें दूंगा।'' शुकदेव जी ने कहा, हे पिता जी! संसार में सुख कहां है। यहां का सुख तो दुख से मिला हुआ है। हे महाभाग! मैं स्त्री के वश में कैसे होऊं। स्त्री के वश रहने वाले पति को सुख कहां? मनुष्य लोहे आदि की बेड़ी से छूट सकता है, किन्तु स्त्री पुत्र आदि के बन्धन से नहीं छूट सकता। हे पिता जी! मैं बिना किसी स्त्री के पैदा हुआ हूं। अतः स्त्री की इच्छा नहीं करता। कर्म वशात् यदि मेरा आगे भी जन्म हो, ऐसा कर्म मैं नहीं करना चाहता। मैं अद्‌भुत आत्म सुख को छोड़कर मलमूत्र से सनी हुई योनि का सुख नहीं चाहता। आत्म रत यति काम सुख की इच्छा नहीं करते। मैंने विस्तार से वेद पढ़े हैं। हिंसा प्रधान कर्म मार्ग में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। हे पिता जी! आपके ही समान गृहस्थी के सागर में डूबे हुए गुरु बृहस्पति मेरी क्या रक्षा करेंगे। जैसे रोगी वैद्य दूसरे को निरोगी नहीं कर सकता। वैसे ही गृहस्थ गुरु मुमुक्षु शिष्य का कल्याण नहीं कर सकता। यही शिक्षा गृहस्थी करने की मेरी गुरु बृहस्पति जी ने दी थी। अतः उनको प्रणाम करके मैं आपके पास आ गया। मैं संसार रूपी सर्प से डसा हुआ हूं। अतः तत्त्वज्ञानोपदेश देकर मेरी रक्षा करें। आपने ब्रह्मसूत्र में वेदान्त के गुह्य रहस्यों का उद्‌घाटन किया है। मैं जन्म मरण रूपी संसार से ग्रसित हूं। कहीं विश्राम नहीं मिला। मेरी रक्षा करें। हे पिता जी! संसार में आत्मज्ञान के बिना सुख नहीं है। मूर्खों की ही सांसारिक सुखों में भोग बुद्धि होती है, विवेकियों की नहीं। विष्ठा के कीड़े को विष्ठा में ही सुख मिलता है। विवेकियों को नहीं। सम्पूर्ण वेदशास्त्रों के रहस्यज्ञ विद्वान् भी यदि जन्म मरण रूपी रोग से नहीं छूटे, तो उनसे बढ़कर त्रिलोकी में मूर्ख और कौन है? संसार के भोग तो शूकर वत हैं। यदि परम दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त करके वेदशास्त्रों को पढ़कर भी विद्वान् संसार बन्धन से नहीं छूटा, तो इस लोक तथा परलोक में इससे बढ़कर और आश्चर्य ही क्या होगा, किन्तु संसारी जीव स्त्री पुत्र में आसक्त को पंडित कहते हैं। जिसको माया के तीन गुण नहीं फांसते। वह मूर्ख होने पर भी विद्वान् बुद्धिमान, शास्त्र का प्रकाण्ड पंडित है। जो पढ़ाई जन्म मरण के बन्धन को दृढ़ करती है, उस विद्या से लाभ ही क्या। वह विद्या पढ़नी चाहिए, जो जन्म मरण के बन्धन से मुक्त करे। ''**गृह्‌णाति पुरुषं यस्मात् गृहंतेन प्रकीर्तितम्। कः**

सुखं बन्धनागारे तेन भीतोऽस्म्यहं पिता।" हे पिता जी पुरुष को पकड़ने वाले को घर कहते हैं अर्थात् अहंता ममता ही घर है। घर के बन्धन में पड़े हुए को सुख नहीं है। अतः मैं घर करने से भयभीत हूं। मन्दबुद्धि विद्वानों को ब्रह्मा जी ने ठग लिया है। वे मनुष्य शरीर प्राप्त करके बन्धन को प्राप्तहोते हैं। (देवी भागवत से)

॥ इति द्वापर युग खण्ड का दशम अध्याय समाप्त॥

॥ अथ ग्यारहवां अध्याय प्रारम्भ॥

अन्य ग्रन्थ में शुकदेव जी ने एक कथा सुनाते हुए कहा। हे पिता जी! मैं आपकी एक कथा सुनाता हूं। इसका उत्तर आप जब देंगे, उसी के अनुसार मैं कार्य करूंगा। एक नगर में एक राज कुमार प्रातः स्नान करके सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये हुए, मुकुट, इतर फुलेल लगाये, अपने राजमहल की छत पर चढ़ा। राजा के घर के समीप ही एक नगर सेठ का मकान था। राजा नवयुवक था। सेठानी भी नवयुवती सोलहों श्रृंगार किये अपने आंगन में बैठी थी। अति रूपवती थी। राजा उसे देखकर मोहित हो गये। रात्रि में काम वासना की तृप्ति के लिए सेठ के घर पहुंचा। सेठ जी घर में नहीं थे। सेठानी को मनाने लगा, परन्तु वह परम पतिव्रता थी। राजा के भाव को देखकर अति कुपित होकर कुछ कहना ही चाहती थी, इतने में सेठ जी आ गये। सेठानी ने दरवाजा खोला, वे भीतर आ गये। उसके पति को देखकर राजा बहुत घबराये। घर में छिपने के लिए सेठानी से पूछा। उसकी दीन दशा देखकर सेठानी को दया आई। उसने कहा, "तुझ जैसे पापी के लिए मेरे यहां कोई स्थान नहीं है।" उसके बहुत अनुनय विनय करने पर अशुद्ध शौचालय में स्थान दिया। मरता क्या नहीं करता। वह अपनी लाज बचाने के लिए उसी में बैठ गया। सेठानी ने पति देव से भोजन की प्रार्थना की। सेठ ने कहा, "आज मेरा पेट ठीक नहीं है। दस्तावर गोली ली हैं। भोजन नहीं करूंगा।" शौचालय में घुसा हुआ राजा बहुत घबराया। अब तो उसका मल मूत्र मेरे ऊपर गिरेगा। रात भर में सेठ १५-२० बार शौच गये। सारी गन्दगी राजा के ऊपर पड़ती रही। दुर्गन्धि के मारे रहा नहीं जाता था। जैसे तैसे रात बिताई सूर्योदय से पूर्व मेहतरानी आई। उसने दरवाजा खोला। राजा मल मूत्र से सना उसमें पड़ा था। उसने उसको घसीट कर बाहर निकाला। द्वार संकीर्ण

होने के कारण राजा के कई अंग छिल गये। सिर झुकाये हुए राज कुमार बड़ी शीघ्रता से राज महल में पहुंचा। स्नान करके कपड़े बदले। फिर श्रृंगार करके इतर फुलेल लगाये हे अपनी छत पर टहल रहा था। सेठानी भी श्रृंगार युक्त आंगन में बैठी थी। उसने सेठानी को फिर देखा।

शुकदेव जी व्यास जी से पूछते हैं, हे पिता जी! आप बताइये कि पिछले दिन की तरह राजा क्या फिर वैसी ही चेष्टा करेगा या नहीं। व्यास जी ने उत्तर में कहा, जिसको पहले इतनी यातना और अपमान सहना पड़ा, वैसी भूल वह पुनः नहीं कर सकता। शुकदेव जी ने कहा, हे गुरुदेव फिर आप मुझ को ऐसे निन्दनीय कर्म में क्यों लगाते हैं।

इस दृष्टान्त का सिद्धान्त

जीव ही राजकुमार है। ईश्वर का अंश होने के कारण ईश्वर रूपी महाराज का जीव रूपी पुत्र है। वह देव दुलर्भ मनुष्य शरीर को पाकर कामान्ध होकर स्त्री संभोग की इच्छा करता है। पाप कर्मों के कारण वह माता के मल मूत्र से सनी हुई पेट रूपी गन्दी कोठरी में नौ मास तक वास करता है। दसवें महीने में माता के पेट से जीव को बाहर निकालने वाली प्रसूति वायु रूपी जमादारनी इस जीव को माता के गंदे पेट रूपी शौचालय से बाहर निकालती है। जीव रूपी राजकुमार इससे बाहर आकर संसार के भोग भोगता हुआ, माया रूपी सेठानी को देखता है, किन्तु जाति स्मर जीव रूपी राजकुमार माता के गर्भ के दुखों का स्मरण करके फिर दुबारा उस माता के उदर रूप गंदी कोठरी में जाने की इच्छा नहीं करता। हे पिता जी! आप मुझे स्त्री में क्यों फांसना चाहते हैं।

शुकदेव जी का विवेक वैराग्य युक्त वचन सुनकर व्यास जी ने उन्हें संन्यास की आज्ञा दे दी। कल्प भेद या युग भेद से यह कथा पुराण में आई है, परन्तु देवी भागवत महापुराण प्रथम स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में शुकदेव जी की बात सुनकर व्यास जी ने कहा, (देवी भागवत् के व्यास शुक ऊपर लिखे गये शुक जी से भिन्न हैं।) ''हे बेटा! घर बन्धन मुक्ति का कारण नहीं है। मन ही बन्धन मुक्ति का कारण है। मन के बन्धन से जो मुक्त है, वह गृहस्थ होते हुए भी मुक्त है, किन्तु मन के बन्धन में पड़ा हुआ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी भी मुक्त नहीं है। यदि विद्वान् गृहस्थ न्याय से

धनोपार्जन करके अपना तथा परिवार का भरण पोषण करते हुए नित्य नैमित्तिक कर्म करता है, तो वह मुक्त है। ब्रह्मचारी वानप्रस्थी तथा संन्यासी दोपहर में जब भूख लगती है तो गृहस्थों की उपासना करते हैं। गृहस्थ श्रद्धा से अन्न आदि दान करने वाले जो किसी की निन्दा आदि नहीं करते, वे संन्यासियों से उत्तम हैं, अतः गृहस्थ से बढ़कर कोई दूसरा धर्म या आश्रम देखने सुनने में नहीं आता। वशिष्ठ आदि ज्ञानी गुरु इसी का आश्रय लेते हैं। हे पुत्र! धर्म का तत्त्व जानने वाले गुरुओं में विवेक वैराग्य सम्पन्न ब्राह्मण के लिए ब्रह्मचर्य से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ, फिर संन्यास कहा है। अतः तुम विवाह करके आलस्य का त्याग कर देव पितृ तथा ऋषियों को तृप्त करके तीन ऋणों से उऋण होकर, पुत्र को जन्म देकर उसको गृहस्थ बनाकर तब तुम वानप्रस्थी या संन्यासी हो सकते हो। इन्द्रियों को जीतना अत्यन्त कठिन है। अतः विवाह करो। वृद्धावस्था में तपस्या कर लेना। विश्वामित्र जी ने तीन हजार वर्ष तक निराहार रहकर जितेन्द्रिय होकर तप किया। वे भी मेनका को देखकर मोहित हो गये। शकुन्तला पुत्री को जन्म दिया। अतः इन्द्रियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मेरे पिता पराशर जी धीवर की काली कलूटी पुत्री को देखकर मोहित हुए। ब्रह्मा जी अपनी पुत्री को देखकर मोहित हुए। दौड़कर शंकर जी ने ब्रह्मा को मना किया, अतः हे पुत्र! विवाह करके वेद मार्ग का आश्रय ग्रहण करो।"

पिता का वचन सुनकर शुकदेव जी बोले। हे पिता जी! मैं गृहस्थ होना स्वीकार नहीं करूंगा। गृहस्थी बिना धन के नहीं चलती। धन की चिन्ता वालों को सुख नहीं। निर्धन को माता, पिता, भाई बन्धु, स्त्री, पुत्र सभी पीड़ित करते हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या, मानसिक रोग से देवता भी पीड़ित हैं। यहां तक कि ब्रह्मा भी सुखी नहीं। इन्द्र भी थोड़ा सा तप करने वाले को देखकर चिन्तित होते हैं, विष्णु लक्ष्मी को पाकर भी सुखी नहीं। बार-बार जगत् की रक्षा के लिए उन्हें असुरों से युद्ध करना पड़ता है। मैं जानता हूं शंकर जी सुखी नहीं। जब ईश्वर कोटि के देवता भी सुखी नहीं, तो निर्धन गृहस्थ को सुख कहां मिलेगा। पिता जी! आप वेदादि शास्त्रों के मर्म को जानने वाले होने पर भी मुझे संसार में क्यों डालते हो।

"जन्म दुःखं जरा दुःखं दुखं न मरणे तथा।
गर्भवासे पुनर्दुःखं, विष्टा मूत्र मये पिता॥"

हे पिता जी! जीव को जन्मने का बुढ़ापे का, मरने का तथा विष्ठा मूत्र से सने हुए गर्भवास का बार-बार दुख मिलता है। तृष्णा का दुख मरने से भी अधिक है। वेदज्ञ होने पर भी यदि धनिकों की चापलूसी करनी पड़ी, तो क्या लाभ है। जो आपने कहा भूख लगने पर पेट भरने की चिन्ता विरक्तों को भी होती है। उसकी वे चिन्ता नहीं करते। कण्ठकूप को संयम में करके वे भूख प्यास को जीत लेते हैं। कन्द मूल अथवा फल, शाक पात से अपना पेट भर लेते हैं, किन्तु विवाह के बाद पहले स्त्री की चिन्ता, फिर पुत्र पौत्र की चिन्ता, उनके भरण पोषण, पढ़ाने लिखाने तथा विवाह आदि की चिन्ता, यदि कपूत निकल गया, तो उसकी चिंता, बीमारी, मरने आदि की चिन्ता, इस प्रकार विवाह करके अनन्त चिन्ताएं घेर लेती हैं। हे पिता जी! आप वह उपाय बताइये, जिससे संचित कर्म क्षीण हो जाए। तीनों कर्मों के क्षय का उपाय आप बतायें। जैसे जोंक खून पीती है, वैसे ही स्त्री पुत्र आदि खून पीते हैं। मूर्ख इस बात को नहीं जानते। जैसे रस से भरा हुआ ताजा गन्ना चरखी में पेरने पर सार रहित होकर टूटा-फूटा निकलता है। ऐसे ही पुरुष भी स्त्री के योनि रूपी चरखी में पिरकर गन्ने के समान निःसार हो जाता है। वह पति का वीर्य रूप धन छीनती है। उसके मन को मीठी-मीठी कपट पूर्ण बातों से हरण करती है। स्त्री से बढ़कर संसार में कोई चोर नहीं। रात्रि में वह निद्रा तथा सुख का नाश करती है। विधाता स्त्री को देकर सभी सुख छीन लेते हैं। ब्रह्मा जी ने स्त्री की रचना मनुष्य का सुख छीन कर दुख देने के लिए की है।

सूत जी कहते हैं, हे ऋषियों! शुकदेव जी के वैराग्य पूर्ण वचनों को सुनकर व्यास जी अत्यन्त चिन्तातुर हुये। विचार करने लगे, मैं क्या करूं। चतुर्वेद के व्याख्याता, वेदान्त दर्शन, अठारह पुराण तथा महाभारत के रचयिता, ज्ञान की पंचम भूमिका को प्राप्त हुए ऋषि, बच्चों के समान रुदन करते हुए अश्रुधारा बहाने लगे। अति दीन हीन चिंता करते हुए पिता को देखकर शुकदेव जी बोले, देखो तो सही महामाया का कैसा बल है, जो महाज्ञानियों को भी मोहित करती है। मैं उसी देवी की शरण को प्राप्त होता

हूं। वह हम दोनों का कल्याण करे। भगवती की स्तुति के अनन्तर शुकदेव जी ने कहा, हे स्वामिन्! आप तो सब को ज्ञान देने वाले हैं, फिर अज्ञानियों की तरह क्यों रोते हो। यदि मुझ को पुत्र समझ कर रोते हैं, तो इस जन्म में मैं आपका पुत्र हूं। पिछले जन्म में कौन था। आप कौन थे। आगे हम दोनों क्या होंगे, इसको कोई नहीं जानता। पिता पुत्र स्त्री आदि का भ्रम माया से है। हे महामते! धैर्य धारण करके होश में आवो, खेद तथा मोह का त्याग करो। हे पिता जी, पिता को भूख प्यास लगने पर उसकी निवृत्ति भोजन तथा जल से होती है, पुत्र के दर्शन से नहीं। नासिका को सुगन्धि का सुख मिलता है कान को अपनी प्रशंसा सुनने से। प्रत्येक इन्द्रिय प्रत्येक सुख को नहीं जानती। स्त्री का सुख स्त्री से मिलता है, पुत्र से नहीं। जो पुत्र माता पिता को अत्यन्त प्रिय है, उसी पुत्र को अजीगर्त नाम के ब्राह्मण से लोभ में आकर हरिश्चन्द्र के हाथ बेच दिया था। जब कोई हत्या करने के लिए तैयार नहीं हुआ। तो स्वयं और धन लेकर मारने के लिए तैयार हुआ। सांसारिक सुख धन से मिलता है, पुत्र से नहीं। हे महामते! आप तो समझदार त्रिकालदर्शी हैं। हे निष्पाप पिता जी! आप मुझे ऐसा ज्ञानोपदेश करो, जिससे गर्भवास का दुख न प्राप्त हो। सभी शरीरों में मनुष्य शरीर उत्तम है। उनमें भी ब्राह्मणत्व, उसमें भी उत्तम कुल दुर्लभ है। संसार की कामना से जकड़ी मेरी बुद्धि अपने को बन्धन में मानती है। इस बन्धन से मुक्ति का आप उपदेश करें।

महाबुद्धिमान् शुकदेव जी ने जब व्यास जी से इस प्रकार कहा तो संन्यास की इच्छा वाले शुकदेव जी से व्यास जी बोले, हे महाभाग! माया के बन्धन से छूटने के लिए वेद सम्मत देवी भागवत पढ़ो। यह पुराण पांच लक्षणों से युक्त है। आधे श्लोक में भगवती देवी ने सर्वार्थपूर्ण यह पुराण विष्णु भगवान् को सुनाया था। विष्णु ने ब्रह्मा को सुनाया। उस समय विष्णु बाल रूपधारी बरगद के पत्ते पर लेटे थे, अपना अंगूठा चूस रहे थे। ब्रह्मा जी ने नारद को तथा नारद से मैंने सुना। शुकदेव जी ने व्यास जी से देवी भागवत पढ़ा। वे एकान्त सेवी थे। किसी भोग में आसक्त नहीं थे। उपवास करते थे। उन्हें चिन्तातुर देखकर व्यास जी ने कहा, हे पुत्र! चिन्ता क्यों करते हो। (अन्य पुराणों के अनुसार कल्प भेद से किसी कल्प में शुकदेव जी ने विष्णु भागवत पढ़ा था। दोनों ही भागवतों में बारह स्कन्द तथा अठारह हजार श्लोक हैं। दोनों में कौन महापुराण कौन

उपपुराण है, इसका निर्णय श्री स्वामी नीलकण्ठ सरस्वती जी महाराज ने देवी भागवत की टीका करने से पूर्व दस पत्रों में दोनों पक्षों के प्रमाण देकर देवी भागवत को महापुराण तथा विष्णु भागवत को उपपुराण सिद्ध किया है।)

व्यास जी कहते हैं, हे शुक! मानसिक चिन्ता त्याग कर शास्त्र चिन्ता में बुद्धि करो। यदि मेरे वचनों में तुम्हें शान्ति नहीं मिली, तो मिथिला में राजा जनक के पास जाओ। उनके वचन से तुम्हारा अज्ञान निवृत्त होगा शान्ति प्राप्त होगी। वह राजा विदेह तथा सत्यवादी हैं। मेरा शिष्य है। उसके पास जाकर संदेह निवृत्त करो। वर्णाश्रम धर्म से सम्बन्धित उनसे प्रश्न करो। वह जीवन्मुक्त राजर्षि ब्रह्मज्ञानी हैं।

व्यास जी का वचन सुनकर शुकदेव जी बोले, यदि वे शरीर रहते हुए भी मुक्त हैं, तो जीवन्मुक्तों में काम क्रोधादि नहीं होते। काम क्रोध का आश्रय लिये बिना राज्य चल नहीं सकता। यदि वह राज्य करते हैं तो जीवन्मुक्त नहीं। जीवन्मुक्तत्व तथा राजा संचालन दोनों एक साथ अंधकार प्रकाश के समान नहीं रह सकते। इससे सिद्ध होता है कि वे जीवन मुक्त नहीं है, किन्तु जीवन्मुक्तों की नकल या ढोंग करते हैं। दोनों बातें तो बन्ध्या पुत्र के समान मिथ्या हैं। ऐसे राजा को मैं अवश्य देखूंगा। संसार में रहते हुए भी जल में कमल के समान कैसे निर्लिप्त है? उनके विदेह पने में मुझे सन्देह है। उनका व्यवहार कैसे चलता होगा? जीवन मुक्त की दृष्टि में तो सब ब्रह्म है। जो जीवन्मुक्त ज्ञान की छठी पदार्थाभावनी भूमिका में पहुंच गया है। उसे षट् रस का स्वाद नहीं मालूम होता। षट् रसास्वादन करने वाला जीवन्मुक्त कैसे? जीवन्मुक्त द्वन्द्वातीत होता है। क्या वे चोर को दण्ड नहीं देते तथा साधु-चोर के प्रति एक जैसा व्यवहार करते हैं। प्राण रहित शरीर जैसे शीतोष्णादि के भान से रहित है। शरीर में प्राण रहते हुए भी जिसे सर्दी गर्मी का भान न हो वह जीवन्मुक्त है। मैंने आज तक कोई जीवन्मुक्त राजा देखा सुना नहीं। हे पिता जी! ऐसे राजा के दर्शन तथा उपदेश के लिए मिथिला जाता हूं। उन्होंने पिता जी से ऐसा कहकर चरणों में प्रणाम किया। वे बिना दण्ड के कैसे राज्य करते हैं। यदि वे अपराधियों को दण्ड नहीं देते तो अराजकता होगी और यदि दण्ड देते हैं, तो जीवन्मुक्त नहीं।

सूत जी कहते हैं, हे ऋषियों! जाने वाले शुकदेव को पिता ने हृदय से लगाय। आशीर्वाद देते हुए कहा, हे शुक! तुम्हारा कल्याण हो। जनक को अपनी सारी बात ज्यों की त्यों बताना। सीधे वहीं जाना, कहीं मत अटकना। हे पुत्र! तुम्हारा मुख कमल देखकर मैं जीता हूं। तुम मेरे प्राण हो। संदेह निवृत्त होने पर शीघ्र लौटना। व्यास जी की आज्ञा प्राप्त कर शुकदेव जी ने प्रणाम तथा प्रदक्षिणा की। फिर धनुष से छूटे बाण के समान शुकदेव जी भागे। तपस्वियों के दर्शन करते हुए उन्होंने दो वर्षों में सुमेरु पर्वत को पार किया। एक वर्ष में हिमालय पार करके मिथिला पहुंचे। वहां की सारी प्रजा सुखी थी। वे नगर के मुख्य द्वार पर पहुंचे।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का ग्यारहवां अध्याय समाप्त॥

॥ अथ बारहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

द्वारपाल ने रोका, शुकदेव जी वहीं रुक गये, कुछ बोले नहीं। तब गर्म होकर द्वारपाल ने कहा कि "क्या तुम बहरे हो, कि गूंगे हो, किस काम से यहां आये हो। बिना कार्य के आप आगे नहीं जा सकते। राजाज्ञा प्राप्त कर परिचित ब्राह्मण निस्संकोच जा सकते हैं, किन्तु अपरिचित ब्राह्मण का प्रवेश नहीं है। देखने से आप वेदज्ञ तेजस्वी प्रतीत होते हैं। अपना परिचय देकर इच्छानुसार जा सकते हो।"

शुकदेव जी ने कहा, "जिस कार्य के लिए मैं आया था। वह तुम्हारे वचन से जान गया। जब विदेह राजा के नगर में प्रवेश करना ही दुर्लभ है, ऐसे देहाध्यासी राजा से मिलने से क्या लाभ होगा? मैंने बड़ी भूल की। दो महापर्वतों को पार करके राजदर्शन के लिए आया। इसमें किसी का दोष नहीं है। मेरे पिता का ही दोष है। जिन्होंने राजा की झूठी प्रशंसा करके मुझे धोखा दिया। मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। मैं भाग्य हीन हूं। निराशी को ही सुख मिलता है। आशावान् को नहीं। कहां सुमेरु पर्वत से चलकर मैं मिथिला आया। इतने परिश्रम का कोई फल नहीं। यहां न कोई तीर्थ है, न वेद पीठ ही है। यहां तो विदेह नाम का राजा है। इसमें विदेहों का गुण नहीं।" ऐसा कहकर मुनि मौन हो गये।

पहरेदार जान गया कि कोई ज्ञानी ब्राह्मण है। शान्तिपूर्वक समझाते हुए द्वारपाल ने कहा, ''आप जा सकते हो। मेरा अपराध क्षमा करो। जीवन्मुक्तों का क्षमा बल है।'' ऋषि बोले, ''हे दूत! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। तुम तो राजाज्ञा के अधीन हो। सेवक को स्वामी की सेवा तत्परता से करनी चाहिए। इसमें राजा का भी दोष नहीं है। नगर रक्षा के लिए राजा ने तुम्हें बैठाया है, क्योंकि ब्राह्मण के वेश मे ंचोर शत्रु भी आ सकते हैं। इसमें मेरा ही दोष है। दूसरे घर में महापुरुषों को भी नीचा देखना पड़ता है।'' पहरेदार ने विचार किया। इनसे कुछ लाभ उठाना चाहिए। उसने पूछा, **''किं सुखं द्विज! किं दुःखं किं कार्यं शुभमिच्छता। कः शत्रुः हित कर्त्ता को, ब्रूहि सर्व ममानघ''** हे अनघ! सुख क्या है, दुखक्या है, शत्रु कौन है, मित्र कौन है, कल्याणकामी को क्या करना चाहिए, यह सब मेरे प्रति कहो। शुकदेव जी बोले संसार में अनुरक्त व विरक्त को अपनी अपनी रुचि के अनुसार सख दुख मिलता है। संसार में रागी विरागी दो प्रकार के पुरुष हैं। रागी को शरीर इन्द्रियों को सुख देने वाले पदार्थों मे ंसुख मिलता है। इसलिए वे विषयों को सुख रूप समझते हैं, परन्तु विरक्त विषय भोग का परिणाम दुख देखते हैं। अतः वे विषयों को दुख रूप मानते हैं। वे दोनों लोकों के भोगों में दुख देखते हैं। वे भगवद् भजन में सुख मानते हैं। अतः दोनों को अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार सुख दुख है। अतः सुख दुख का उत्तर देने के पहले दो प्रकार के पुरुषों को बताते हैं। सर्वत्र दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। उनका चित्त भी दो प्रकार का है। रागी तथा विरागी। विरागी भी तीन प्रकार के हैं। एक तीव्र विरागी उनके वैराग्य को सब जान लेते हैं। दूसरे मध्यम विरागी उनके वैराग्य को कोई-कोई ही जानता है। तीसरे मन्द विरागी, उनमें वैराग्य भीतर रहता है, बाहर प्रकट नहीं होता। संसार की वासना से युक्त को रागी कहते हैं। रागी भी दो प्रकार के हैं। मूर्ख और चतुर। चतुरता भी दो प्रकार की है। शास्त्र की चतुरता तथा बुद्धि की चतुरता। बुद्धि भी दो प्रकार की है। युक्त बुद्धि, अयुक्त बुद्धि। शास्त्रानुसार बुद्धि युक्त बुद्धि, शास्त्र विरुद्ध अयुक्त बुद्धि है अर्थात् पहली शास्त्र विषयक चतुरता, दूसरी शिष्टाचार से युक्त लौकिक व्याहवर विषयक चतुरता। तीसरी अशिष्ट व्यवहार विषयक चतुरता।

शुकदेव जी का संक्षिप्त अतिगूढ़ ज्ञानोपदेश सुनकर पहरेदार बोला, ''वे विद्वान्! आपने ठीक कहा, परन्तु मैं मूर्ख इनके अर्थ को नहीं समझता। अत: विस्तार से यथार्थ उपदेश करिये।'' शुकदेव जी ने कहा, ''जो संसार में आसक्त, रागी है। जिसे वैराग्य हो, उसी विरागी कहते हैं। संसार में अनेक प्रकार का सुख-दुख है। धन, स्त्री, पुत्र, ज्ञान, विजय आदि प्राप्त करने में कुछ सुख मानते हैं। इनके न मिलने से दुखी हो जाते हैं, सुख का उपाय जानकर साधन करने से सुख मिलता है।'' क्या करना चाहिए, ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं, सुख का उपाय करना चाहिए। शत्रु कौन है? उसका उत्तर देते हैं। सुख की बजाय दुख देने वाला शत्रु है। शत्रु मित्र की पहचान बताते हुए कहते हैं। प्रेम करने वाला मित्र है, दुख देने वाला शत्रु है। मूर्ख, चतुर में भेद बताते हुए, कहा कि मोह रहित चतुर है और मोह युक्त मूर्ख है। रागी पुरुष को भौतिक पदार्थों में सुख मिलता है। विरक्त को नहीं। आत्मानुरागी विरक्त महात्मा को एकान्त सेवन करते हुए वेदान्त चिन्तन में सुख मिलता है, किन्तु रागी को नहीं। काम क्रोध आदि जीव के वास्तविक शत्रु हैं। विरागियों को सन्तोष से बढ़कर तीनों लोकों में उनका कोई बन्धु नहीं है। अत: मुमुक्षु को रागियों का व्यवहार त्याग कर विरक्तों का व्यवहार अपनाना चाहिए।

शुकदेव जी का यह वचन सुनकर द्वारपाल अति प्रसन्न हुआ। प्रणाम करके स्तुति की, क्षमा मांगी। मंत्री को सूचना दी। मंत्री सत्कारपूर्वक प्रथम ड्योढी में ले गये। वे राजमहल की ओर जाने लगे। सुन्दर बाजारों दुकानों को देखते हुए आगे बढ़े। दूसरे द्वार पर दूसरे द्वारपाल ने रोका। शुकदेव जी एकान्त में बैठकर ध्यान करने लगे। उसने दूसरे कमरे में प्रवेश करवाया। उसके आगे सुन्दर बागीचा था। काम कला में कुशल सुन्दर रमणियां उनकी सेवा करने लगीं। तीसरे मंत्री ने श्रद्धा भक्ति सहित सुन्दर पूजा तथा जलपान कराया। रूपवती स्त्रियां उनका स्वागत करने लगीं। मंत्री उनका भाव देखने लगे। निर्विकार मुनि ने काम क्रोध को जीत लिया था। वहीं पर उन्होंने सायंकालीन संध्या ध्यान तथा विश्राम किया। एक पहर रात्रि रहते ही जग गये। स्नान करके प्रात:कालीन सन्ध्या की।

शुकदेव जी को आया सुनकर महाराज जनक मंत्रियों तथा कुलगुरु के साथ गुरु पुत्र का स्वागत करने के लिए आगे आये। मणिरत्न जटित सिंहासन पर बिठाकर कुशल क्षेम पूछी एवं गुरुवत् उनका पूजन किया। गुरु पुत्र ने भी मंगल क्षेम पूछी। जनक जी ने कहा, "आपके दर्शन से मुझे व्यास जी के दर्शन तुल्य शान्ति प्राप्त हुई है। आप निरपेक्ष मुनि हैं। किस कारण से आगमन हुआ है।" शुकदेव जी ने कहा, "पिता जी ने मुझ से विवाह के लिए कहा, उन्होंने गृहस्थाश्रम उत्तम बताया। गुरु होने पर भी उनकी आज्ञा मैंने नहीं मानी।" उन्होंने कहा, "तुम्हें बन्धन नहीं होगा। मैंने स्वीकार नहीं किया। पिता जी ने मुझे आपके पास जाने की आज्ञा दी। आपको जीवन्मुक्त तथा विदेह कहकर प्रशंसा की। मुझे संदेह हुआ। अतः उसकी निवृत्ति के लिए आया हूं। हे राजन्! अतः उसकी निवृत्ति के लिए आया हूं। हे राजन्! मैं मुमुक्षु हूं। मुक्ति तप, तीर्थ यात्रा, व्रत आदि में से किससे होती है।"

जनक जी बोले! "हे मुने! वैसे तो जीव नित्यमुक्त है, किन्तु उसके मुक्त स्वरूप पर अज्ञान का आवरण पड़ा है। उस आवरण के हटाने से मुक्ति नित्य प्राप्त है। इसका सरल उपाय बताता हूं। ब्राह्मण उपनीत होकर वेदाभ्यास करे। अध्ययन के अनन्तर गुरु दक्षिणा देकर गृहस्थ में प्रवेश करे। नित्य नैमित्तिक कर्मों को निष्काम भाव से करे। बाद में पुत्र पौत्र पर गृहस्थी का भार सौंप कर वनस्थ होकर तप द्वारा छः शत्रुओं को जीत कर तीनों अग्नियों को अपने में आरोपित करके संन्यास ले। यह वेद मत है। हे शुक! वेद में गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त ४८ संस्कार हैं। जिनमें ४० गृहस्थ के तथा ८ संन्यासी के संस्कार हैं। क्रम संन्यास ले। यह वेद आज्ञा है। प्लुत संन्यास नहीं लेना चाहिए।"

शुकदेव जी ने कहा, "यदि हृदय में विवेक सहित पूर्ण वैराग्य हो, तो शास्त्र का अनुभूति जन्य बोध होने पर गृहस्थ आदि का अतिक्रमण करके संन्यास ले सकता है। मुनि के कहने का भाव है कि वेदों तथा देवी भागवत के पढ़ने से मैंने जाना है, गृहस्थ में विक्षेप अधिक है। मुझ में विवेक सहित तीव्र वैराग्य है। संन्यासी होना चाहता हूं, परन्तु पिता जी आज्ञा नहीं देते। वे कहते हैं, क्रम संन्यास लो। दोनों में मत भेद है। उन्होंने इसका निर्णय करवाने के लिए आपके पास भेजा है।" जनक जी ने व्यास जी

की बात का समर्थन किया। उन्होंने कहा, हे मुने! मन तथा इन्द्रियां बलवान् हैं। मन्द वैराग्य में मन इन्द्रियां धोखा देकर गिरा देती हैं। अतः इन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। वृद्धावस्था में इन्द्रियों के शिथिल हो जाने से गिरने का भय नहीं रहता। युवावस्था में संन्यास लेकर भोजन, विश्राम, सुखादि से विकार उत्पन्न होने से गिरने का भय है। वासनाओं को जीतना अत्यन्त कठिन है। इनके जीतने का अभ्यास ही गृहस्थाश्रम में किया जाता है।

"उर्ध्वं च परिसुप्तस्य नशयानः पतत्यधः।
परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गलभते पुनः॥२७॥
यथा पिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति।
शनैः शनैः फलं याति सुखेन पद गामिनी॥२८॥
विहंगस्तरसायाति विघ्न शंकामुदस्य वै।
श्रान्तो भवति विश्रम्य सुखं याति पिपीलिका॥२९॥"

ऊपर सोया व्यक्ति यदि असावधान होता है तो गिरने का भय है। किन्तु पृथ्वी पर सोये हुए को गिरने का भय नहीं है। यदि मन में सोचो कि पतित होने पर प्रायश्चित करके दोष रहित हो जाऊंगा। ऐसी बात नहीं है, क्योंकि संन्यास के बाद यदि स्त्री सेवन करता है, उसका कोई प्रायश्चित नहीं होता। परमात्मा को प्राप्त करने की दो गतियां हैं। पिपीलिका तथा विहंगम गति। जैसे चींटी किसी पेड़ का फल खाने के लिए उसकी जड़ से धीरे-धीरे रेंगती हुई शाखा पर पहुंच कर फल खाती है। यदि थक जाती है तो मार्ग में विश्राम कर लेती है। किन्तु पक्षी पेड़ का फल खाने के लिए उड़कर शीघ्र पेड़ पर चला जाता है। वैसे ही मनुष्य को मुक्ति की प्राप्ति के लिए गृहस्थ धर्म का आश्रय लेकर, धीरे-धीरे बढ़ना चाहिए, परन्तु परमहंस यति ब्रह्मचर्य से संन्यास में पहुंच जाते हैं। जिन्होंने मन को नहीं जीता है। वे तुरन्त मुक्त नहीं हो सकते। अतः क्रमानुसार जाना चाहिए। यदि कहो कि गृहस्थ विक्षेप प्रधान है, तो इस आश्रम में मिलने न मिलने पर सुखी दुखी नहीं होना चाहिए। यथा लाभ सन्तोषी गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है। यदि कहो कौन प्रमाण है तो मैं स्वयं प्रमाण हूं। मैं राज्य करते हुए भी जीवन्मुक्त हूं। मेरे मन

में क्षोभ नहीं है। जैसे मैं अनासक्त भाव से भोग भोगता हूं। वैसे ही आप भी करें। सुख दुख का कारण मन है। मन को वश में किये बिना निर्मल नहीं हो सकता। वासना रहित शुद्ध मन मुक्ति का कारण है तथा वासना युक्त बन्धन का। भेद बुद्धि से संसार प्रतीत होता है। जैसे बिना भूख के भोजन का आनन्द, बिना ताप के छाया का आनन्द नहीं मिलता, वैसे ही अविद्या के बिना विद्या का महत्त्व नहीं है। इन्द्रियां गुणों में वर्त्तती हैं। आत्मा निर्दोष है। वेद मर्यादा रक्षार्थ स्वधर्म का पालन करना चाहिए। आपका वैदिक मार्ग पर चलने में ही कल्याण है। ऐसा कहकर राजा मौन हो गये।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का बारहवां अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ तेरहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

शुकदेव जी बोले, हे राजन्! मेरे मन में एक बड़ा सन्देह है। शरीर के रहते हुए तथा राज्य करते हुए आप विदेह कैसे? आपने वेदोक्त धर्म पालन करने के लिए कहा। वेदोक्त धर्म में हिंसा प्रधान यागादिकों में मेरी रुचि नहीं है। संसारी पुरुष स्त्री पुत्र की प्राप्ति में सुखी और न मिलने में दुखी होते हैं। इन सब के होते हुए आप जीवन्मुक्त कैसे?

जनक जी ने कहा, **''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति यथा युद्धीय हिंसा हिंसा न भवति।''** अपने खाने के लिए की हुई पशु हिंसा हिंसा है। यागीय हिंसा हिंसा नहीं। जैसे अग्नि धूम दोष से युक्त हैं कालान्तर में वह धूम दोष से रहित हो जाती है। वैसे ही वैदिक कर्म हिंसा युक्त होने पर भी कालान्तर में दोष रहित हो जाता है। रागयुक्त हिंसा हिंसा है। राग रहित की गई हिंसा अहिंसा है। राग विहीन कर्म अहंकार से रहित होता है। वह कर्म अकर्म के समान है।

शुकदेव जी बोले, हे राजन्! माया में रहकर इच्छा रहित कैसे हो सकता है। जैसे काली कोठरी में गया व्यक्ति बिना कालिख से बच नहीं सकता। विचार विवेकशील व्यक्ति भी शास्त्र के ज्ञान से माया से बच नहीं सकता। जैसे अंधकार दिये बत्ती के बिना दूर नहीं होता। वैसे ही मात्र ज्ञान चर्चा से अज्ञान नष्ट नहीं होता। ज्ञान रूपी सूर्य के उदय हुए बिना, अज्ञानान्धकार जा नहीं सकता। गृहस्थी में राग द्वेष से रहित होना कठिन है।

हे राजन्! मैं तुम से कुछ पूछना चाहता हूं, सच कहना तुम अपने को विदेह कहते हो, जीवन्मुक्त हो, तुम्हारे मन में धन, राज्य सुख भोगने की इच्छा है य.ा नहीं। यदि इच्छा है तो जीवन्मुक्त नहीं। यदि निष्काम हो, तो राज्य धर्म का पालन नहीं करते। चोरों में तुम्हारी चोर बुद्धि है या नहीं। चोरों को दण्ड़ देते, साधुओं का पूजन करते हो कि नहीं। इन विषमताओं के रहते आप समदर्शी कैसे? हे नृप, बताइये आप में अपना पराया है कि नहीं। यदि भेद बुद्धि नहीं है। तो राज धर्म का पालन नहीं। यदि भेद नहीं गया, तो विदेह कैसे? आप को कड़ुवा मीठा, खट्टा पदार्थों का स्वाद मिलता है कि नहीं। इन अनुकूल प्रतिकूल भोगों की निन्दा स्तुति करते हो कि नहीं। जब अच्छे बुरे का आप पर प्रभाव पड़ता है तो आप जीवन्मुक्त नहीं। जीवन्मुक्त को जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थायें नहीं प्राप्त होतीं। तीनों के रहते तुरीया का आनन्द कैसे प्राप्त होगा? प्रजा, किला, चतुरंगिनी सेना आदि पदार्थों में आपकी स्वामित्व बुद्धि है या नहीं, इन द्वन्द्वों के रहते विदेह कैसे? यदि कोई भक्त आप की पूजा करके फूलों की माला पहनाता है। कोई दुष्ट फूलमाला निकाल कर गले में सांप डाल दे, तो क्या माला और सर्प में तुम्हारी सम दृष्टि है। समदृष्टि सोना मिट्टी को एक समान मानता है। हे राजन्! मेरी इच्छा ममता का परित्याग कर वन में सूखे कन्दमूल फल आदि खाकर तप करने की है। स्त्री पुत्र धन आदि की मेरी इच्छा नहीं है। हे नृप! जीवन्मुक्त के लक्षण आप में घटित नहीं होते। अत: जीवन्मुक्त का ढोंग करते हो। जीवन्मुक्त ब्रह्मचिन्तन के अतिरिक्त दूसरा चिन्तन नहीं करता, यदि कोई शत्रु आप पर आक्रमण करता है, उसको जीतने की इच्छा होते आप जीवन्मुक्त कैसे? जब वानप्रस्थी अल्पाहार करते हुए ब्रह्म चिन्तन करने पर भी माया से छूट नहीं सकते, तब तुम राजा होकर कैसे छूट सकते हो? क्या आपके वंश में सभी जीवन्मुक्त विदेह राजा हुये हैं। विदेह नाम के तो आपके पूर्वज हुये हैं। विदेह एक नाम है जैसे किसी मूर्ख का पिता उसका नाम विद्याधर, रख दे तो वह विद्वान् नहीं हो जाता। दरिद्र लक्ष्मीधर नाम से धनी नहीं हो जाता। ऐसे ही आपका वंश आपके आदि पुरुष महाराज निमि गुरु वशिष्ठ जी के शाप से देह रहित हो गये। सन्तान हीन राजा को मरा देखकर ऋषियों ने शरीर का मन्थन किया। मन्थन से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम 'मैथिल' पड़ा। मृतक शरीर से उत्पन्न होने के कारण 'विदेह' नाम पड़ा। यदि

निमि विदेह होते, तो गुरु को शाप क्यों देते। जब आदि विदेह में विदेह के गुण नहीं पाये गये, तो तुम विदेह कैसे हो सकते हो?

शुकदेव जी की बात सुनकर जनक ने कहा, "आप सत्य कहते हो। मेरे पूर्वजों और मुझ में जीवन्मुक्त के लक्षण नहीं हैं। हे विपेन्द्र! मेरे गुरु पुत्र होने कोरण आप पूजनीय हैं। तब भी मैं आपसे एक बात पूछता हूं, तुम अपने वृद्ध पिता का संग तथा सेवा त्याग कर बन जाना चाहते हो, तो क्या वहां के पशु पक्षियों से तुम्हारी मित्रता होगी या नहीं। संग युक्त होने पर असंग कैसे? यदि कहो कि मैं उदासीन चित्त से रहूंगा। तो पंचभूतों से हुए शरीर के साथ रहते असंग कैसे? हे मुने! जैसे राज काज की मुझे चिंता है वैसे ही तुम्हें भोजन की चिन्ता है। आप संकल्प रहित हो या संकल्प युक्त हो। आपने यहां आने से पहले संकल्प किया है। तब यहां आये, संकल्प त्यागे बिना कोई संन्यासी हो नहीं सकता। आपको यह अभिमान है कि मेरे मन में संकल्प नहीं। सुख से सोता हूं। मुझे तो इस शंका से युक्त दुखी दिखाई देते हो। अतः शंका त्याग कर समाहित हो जाओ, यह मेरे शरीर आदि बन्धन है। यह नहीं है, यही मुक्ति है। मैं राज्य करते हुए इसको अपना नहीं समझता।"

मुनि राजा के वचन सुनकर प्रसन्न हुए। राजा द्वारा पूजित होकर उनसे विदा लेकर पिता जी के पास आश्रम में पहुंचे। उन्होंने गुरु चरणों में प्रणाम किया। कुशलता से लौटे पुत्र को देखकर आलिंग्न कर मस्तक सूंघा, परमानन्द को प्राप्त हुए। फिर विवाह के लिए राजी हो गये। उनका विवाह पितरों की मानसी कन्या 'पीवरी' के साथ हुआ। योग मार्ग में स्थित होकर विवाह किया। उससे उनके कृष्ण, गौर, प्रभ, भूरि नाम के चार पुत्र हुए। कूर्म पुराण में पांच पुत्र कहे गये। पांचवें का नाम 'शंभू' आया है। एक कीर्तिमती नाम कन्या हुई, उसका विवाह विश्वपाद के पुत्र अणी के साथ हुआ। उनसे ब्रह्मदत्त नाम का पुत्र हुआ। गृहस्थ के अनन्तर शुकदेव जी ने नारद जी से उपदेश प्राप्त करके परमयोग का आश्रय लेकर ज्ञान प्राप्त किया। शुकदेव जी पिता का साथ छोड़कर कैलाश पर्वत पर पहुंचे। निस्संग होकर ध्यान करते हुए शरीर त्याग कर विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त की। सूर्य के समान तेज से युक्त होकर पर्वत की चोटी पर दो रूप धारण किये। उस पर्वत से देवलोक में जाते समय पृथ्वी पर अनेकों उत्पात हुए। अन्तरिक्ष में

देवता तथा ऋषि स्तुति करने लगे। इधर व्यास जी पुत्र वियोग में पुत्र-पुत्र चिल्लाते हुए उनके पास पहुंचे दूसरे रूप से उसी चोटी पर थे। भगवान् शंकर प्रकट हुए। व्यास जी को समझाते हुए शिव जी ने कहा, ''हे पराशरनन्दन! आप शोक न करें। आप के पुत्र ने परम गति प्राप्त की है। अतः शोक नहीं करना चाहिए।'' व्यास जी ने कहा, ''हे जगत्पते! मैं क्या करूं। मेरा शोक दूर नहीं होता। पुत्र दर्शन की लालसा से नेत्र तृप्त नहीं होते। शिव से पुत्र मिला था, उन्हीं में लय हो गया।'' शिव जी ने कहा, ''हे परन्तप शुकदेव जी का परम मनोहर रूप छाया रूप में देखो। उनकी छाया में गुण कर्म स्वभाव रहेगा। उसे देखकर शोक दूर करो। ऐसा कहकर शंकर जी ने शुक छाया दिखाई।'' शंकर जी अन्तर्धान हो गये। व्यास जी अपने आश्रम में आ गये। देवी भागवत नीलकण्ठीटीका के आधार पर।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का तेरहवां अध्याय समाप्त॥

॥ अथ चौदहवां अध्याय प्रारम्भ॥

छाया शुक

विष्णु भागवत महपुराण के नवम स्कन्ध में व्यास जी के वंश के सम्बन्ध में जब शुकदेव जी जन्म लेते ही बिना उपनयन के ही विरक्त होकर जा रहे थे, व्यास जी पुत्र-पुत्र कहते हुए पीछे आ रहे थे। पिता को अत्यन्त व्याकुल देखकर शुकदेव जी ने योग शक्ति के प्रभाव से अपने ही समान दूसरे शुकदेव का रूप धारण किया था एक स्त्री की रचना की, जिसका नाम 'छाया' था। दोनों को उत्पन्न करके कहा तुम दोनों पिता के वंश की रक्षा करो। शुकदेव जी को प्रणाम करके शुक तथा छाया पिता जी के साथ चले आये। उन्हीं से व्यास जी के वंश की वृद्धि हुई। हरियाणा में व्यास वंशी ब्राह्मण आज भी पाये जाते हैं। भगवान् वेद व्यास जी के शुकदेव के अतिरिक्त वेदपाठी शिष्यों में असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु आदि अनेक शिष्य थे। इतिहास पुरण के वक्ता शिष्य सूत जी थे। वे व्यास जी को सान्त्वना देने लगे। सत्यवती ने अपने पौत्र के शोक में व्यास जी का स्मरण किया। तब व्यास जी माता के पास जन्म भूमि में पहुंचे। नाना निषाद से पूछा, तुम्हारी कन्या कहां है? निषाद ने कहा उसका विवाह महाराज

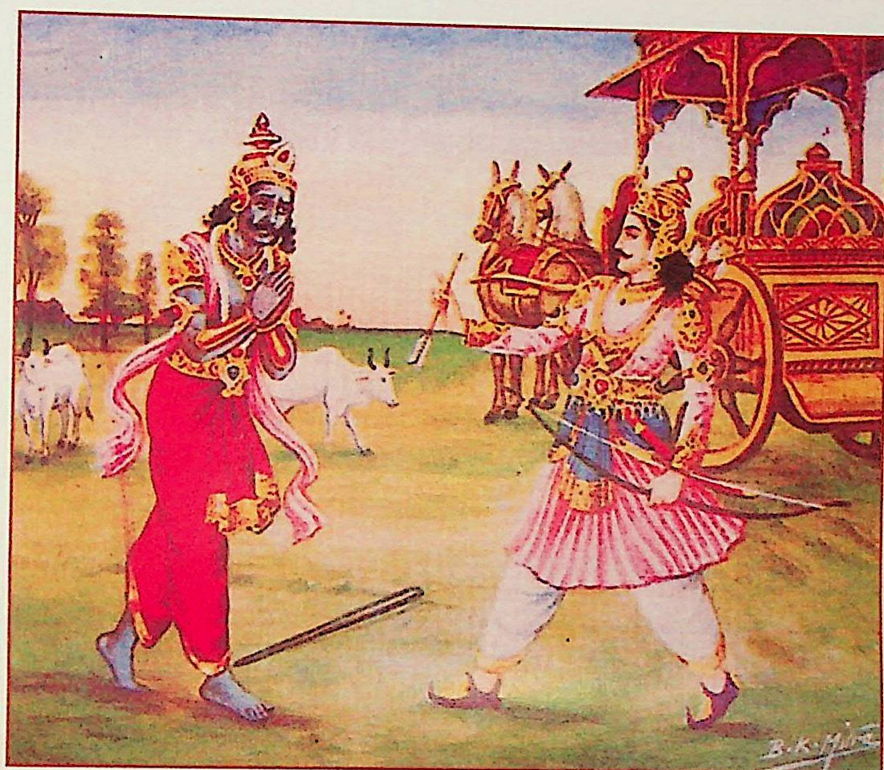
शान्तनु से हो गया है। उसने व्यास जी का पूजन किया और कहा, हे मुने! आपने दर्शन देकर मुझे पवित्र कर दिया। आप किस लिये आये हैं। उन्होंने कहा कि मैं तपस्या के लिए आया हूं। उस समय शान्तनु से सत्यवती के दो पुत्र हो गये थे। कल्प भेद से वहीं पर शुकदेव जी का शरीर शान्त हुआ। उनकी यति धर्म के अनुसार क्रिया की गई।

कल्प, मन्वन्तर तथा युग भेदानुसार कथा

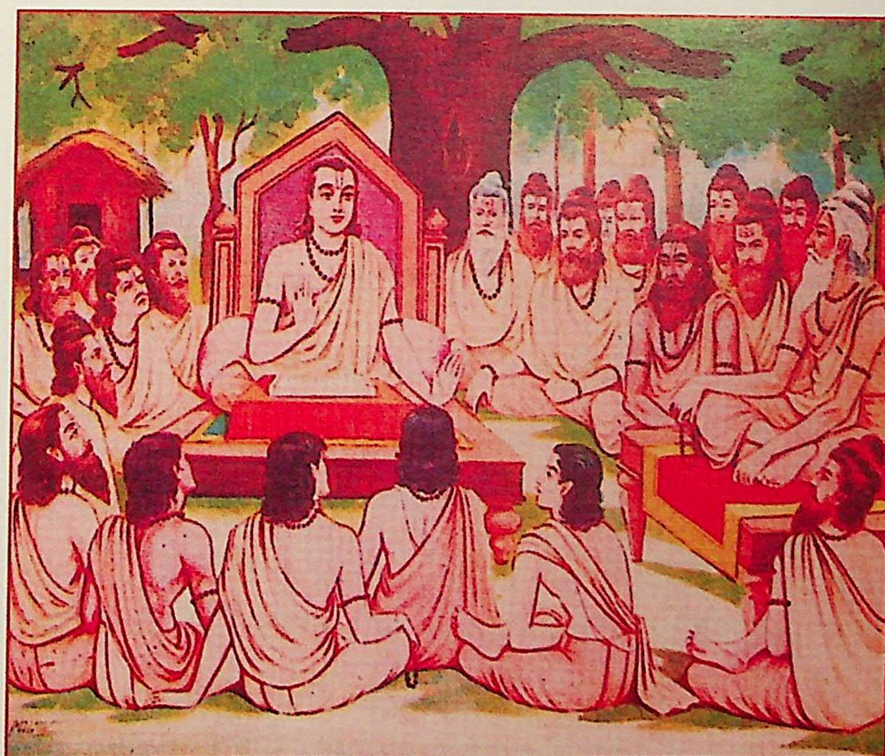
कल्प, मन्वन्तर अथवा युग भेद से व्यास जी तथा शुकदेव जी का चरित्र अनेक प्रकार से उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत के शुकदेव तथा परीक्षित तथा देवी भागवत एवं महाभारत के शुकदेव तथा परीक्षित के चरित्रों में बड़ा अन्तर पाया जाता है। महाभारत तथा देवी भागवत की कथा एक जैसी है। इन दोनों ग्रन्थों में शुकदेव जी ने विवाह के पश्चात् संन्यास लिया। उनके कई सन्तान हुईं, परन्तु श्रीमद्भागवत के शुकदेव जी जन्म से ही संन्यासी हुए। देवी भागवत तथा महाभारत के परीक्षित की मृत्यु हस्तिनापुर में गंगा तट पर नये सात मंजिल बने राजभवन की सातवीं मंजिल में तक्षक के काटने पर हाय-हाय चिल्लाते हुए मृत्यु हुई। वे नरक को प्राप्त हुए। व्यास जी ने उनके पुत्र जनमेजय से कहा, ''तुम्हारे पिता नरक में पड़े हैं। वास्तव में वहीं पुत्र है, जो पिता की नरक से रक्षा करे।'' तब रोते हुए जनमेजय ने ऋषि से पूछा, किस उपाय से पिता जी की सद्गति होगी। उन्होंने कहा नौ दिन में तुम दुर्गा मख करो तथा नौ दिन 'देवी भागवत पुराण' सुनो। तब तुम्हारे पिता मणिद्वीप देवी लोक में जाएंगे. राजा की प्रार्थना से व्यास जी ने नौ दिन में देवी भागवत सुनाया। इनका फल पिता को अर्पण करने पर पुत्र को आशीर्वाद देकर परीक्षित परमगति को प्राप्त हुए।

श्रीमद् भागवत के परीक्षित

इस पुराण के परीक्षित को शमीक ऋषि के ब्रह्मचारियों से पता चला कि उनके पुत्र श्रृंगी ऋषि ने सातवें दिन तक्षक के काटने का शाप दिया है। यह सुनकर तुरन्त ही उन्होंने अपनी गद्दी पर जनमेजय को बिठाया। परम विरक्त होकर अन्न जल त्याग कर गंगा के पूर्वी तट पर पहुंचे। राजा को आया सुनकर सहस्त्रों ऋषि वहां पहुंचे। शुकदेव जी भी पहुंचे। राजा ने निर्जल रहकर सात दिन तक भागवत पुराण सुना। शुकदेव जी ने अन्तिम



कलियग और परिक्षित



सूतजी भागवत की कथा सुना रहे हैं



उपदेश देते हुए कहा, "**त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।**" हे राजन्! मैं मर जाऊंगा यह पशु बुद्धि त्याग दो। तुम तीन शरीर, तीन गुणष तीन अवस्था, पंच कोश, पंच प्राण पंच कर्मज्ञानेन्द्रियां नहीं हो। सर्प से अपनी मृत्यु का भय त्याग दो। एक तक्षक तो क्या अरबों खरबों तक्षक मिलकर भी तुमको नहीं मार सकते। मुनि के शाप से प्रेरित क्रोध से आंखें लाल किये हुए लपलपाती हुई जीभ से तक्षक डंक मारकर शरीर को जला देगा। शरीर जलेगा, तुम नहीं, तुम परम पवित्र, परम धाम, परात्पर ब्रह्म हो। इसमें पूर्ण स्थिति करो। निश्चय ही तुम्हें परम गति प्राप्त होगी। ऐसा कहकर शुकदेव जी मौन हो गये। परीक्षित ने प्रणाम किया। अनेकों उपचारों से उनका पूजन स्तुति की। पद्मासन पर बैठकर, मूलाधार से वायु को ऊपर खींचा। कुण्डलिनी जागृत कर छहों चक्करों का बेधन कर ब्रह्मरन्ध्र में प्राण स्थापित किये। "**नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहंसनातनः।**" इस ज्ञान रूपी अग्नि से उन्होंने संचित कर्मों तथा शरीरों को भस्म कर विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त की। इस प्रसंग से सिद्ध होता है कि महाभारत तथा देवी भागवत के परीक्षित से भिन्न श्रीमद्भागवत के परीक्षित हैं। जिनको परमगति प्राप्त हुई।

॥ इति द्वापर खण्ड का चौदहवां अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ पन्द्रहवां अध्याय आरम्भ ॥

कल्प भेद से शुकदेव जी की जन्म कथा

स्कन्द पुराण में कथा आती है कि एक दिन भगवान् शंकर तथा पार्वती जी एकान्त में बैठे थे। शंकर जी अपने सारे शरीर में चिता की भस्म लगाये हुए थे। व्याघ्र चर्म धारण किये थे, मस्तक पर गंगा तथा चन्द्रमा सुशोभित थे। गले में मुण्ड माला थी। पार्वती जी ने पूछा आप गले में किसके मुण्डों की माला धारण किये हो। शिव जी ने कहा, "तुम्हारे ही कई जन्मों के मुण्डों की माला है। तुमने कई बार जन्म लेकर मुझे प्राप्त किया।" पार्वती बोली, "क्या आप का जन्म नहीं होता है?" शिव जी ने कहा कि, "मैं अमर कथा सुनने से अमर हो गया हूं।" देवी ने प्रार्थना की मुझे भी कथा सुनायें, जिससे मैं

अमर हो जाऊं। शिव जी ने कहा कि अमर कथा सुनने के सभी अधिकारी नहीं हैं। तब अमर कथा सुनाने के लिए शिव जी उत्तराखण्ड में श्रीनगर से ६४ मील दूरी पर पहलगांव पहुंचे। प्रथम शंकर जी यहां रुके थे। इससे इसका नाम पहल गांव पड़ा। वहां सुनाने का विचार किया, किन्तु वहां भी बहुत जीव जन्तु सुनने वाले थे। वहां से नौ मील ऊपर चन्द्रवाड़ी पहुंचे। वहां भी अनेक पेड़ पौधे चन्द्रमा आदि थे। वहां से ऊपर शेषनाग झील में पहुंचे वहां पर शेष भगवान् थे। वहां से पंचतरणी आए। वहां पर गंगा की पांच धाराएं हैं। बर्फ से जले हुए पहाड़ हैं। वहां का पत्थरजले हुए कोयले के समान सफेद है। जैसे पत्थर के कोयलों की राख दबाने से फूट जाती है, ऐसा वहां का पत्थर है। वहां पहुंचे। वह स्थान भी जंचा नहीं। वहां से और आगे चले। चारों तरफ बर्फीले पहाड़ चांदी की तरह चमकते थे। पहाड़ों के नीचे अमर गंगा बहती थी। उसके ऊपर हजारों मन बर्फ जमी थी। अमर गंगा पर बर्फीला पुल था। उस मार्ग से होते हुए अमर नाथ की गुफा में पहुंचे। वहां पर बर्फ के अतिरिक्त कोई बूटी पशु पक्षी लता औषधि कुछ नहीं था। उसी गुफा में पद्मासन लगाकर शंकर जी नेत्र बंद करके कथा सुनाने लगे। दुर्भाग्य से पार्वती जी को निद्रा आ गई, किन्तु संयोगवश एक तोता तथा कबूतर का जोड़ा हुंकारी भरता रहा। कथा पूर्ण होने पर शिव जी ने देखा, पार्वती जी सो रही हैं, चारों ओर देखा, कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। गुफा में घोंसले में बैठे हुए एक तोता तथा कबूतर का जोड़ा देखा। तब शंकर जी त्रिशूल लेकर मारने को दौड़े, तीनों छिप गये। तोता पूरे ब्रह्माण्ड में घूमा, किन्तु कोई रक्षक नहीं मिला। तब उसने शक्ति की आराधना की। शूल पाणिशंकर पीछे ही थे। मृत्यु लोक में व्यास पत्नी घृताची अपने घर में जम्हाई ले रही थी। तोता दिव्य रूप धारण करके उनके मुख में प्रवेश कर गया। भगवान् शंकर निराश होकर लौट गये। बारह वर्ष तक माता के गर्भ में ही रहे माता को अति दुखी देखकर व्यास जी ने गर्भस्थ शिशु से कहा, "तुम माता को इतना कष्ट क्यों देते हो, बाहर क्यों नहीं आता।" तोते ने कहा, "बाहर आने पर त्रिगुणात्मिक माया मुझे जन्म मरण में डालेगी। अतः बाहर नहीं आऊंगा।" व्यास जी ने पूछा, "किस उपाय से बाहर आवोगे।" शुक ने कहा, "आप भगवती जगदम्बा से प्रार्थना करो। वे त्रिगुणात्मिका माया को कुछ क्षणों के लिए अपने में लीन कर लें। तब मैं जन्म लूंगा।" व्यास जी की

स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने कुछ क्षमों के लिए माया समेट ली। उसी समय शुक का जन्म हुआ। इनके साथ उसी समय नौ नाथों तथा चौरासी सिद्धों ने भी जन्म लिया। इसी कारण वे त्रिगुणातीत हैं। शंकर जी से अमर कथा सुनने के कारण वे कई सहस्र वर्ष के होने पर भी सोलह वर्ष के नवयुवक हैं। यह अमर कथा का प्रभाव है। उसी शरीर से आज भी हैं। अधिकारी पुरुषों को उनके यत्र तत्र दर्शन भी होते हैं। प्रत्येक कार्तिकी पूर्णिमा में जहां उन्होंने परीक्षित को भागवत सुनाया था। वहां शुकताल में अब भी आते हैं।

अमर कथा

१. अमर कथा के विषय में विद्वानों में कई प्रकार का मतभेद है। कुछ विद्वानों का कथन है कि अमृत संजीवनी मंत्र, महामृत्युञ्जय मंत्र अथवा मृत्युञ्जय मंत्र अमर कथा है, क्योंकि तीनों के जप से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। इन्हीं का विस्तार से ऋषि छन्द, विनियोग, करन्यास, हृदयन्यास, दिङ्न्यास, पद तथा अक्षरन्यास, ध्यान तथा स्तोत्र बताया। यह तीनों ही वैदिक मंत्र हैं।

२. कुछ विद्वान् कहते हैं कि चारों वेदों के पांचों महावाक्यों का वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ का प्रतिपादन करते हुए, भाग त्याग लक्षणा से जीव तथी ईश्वर के विरोधी अंशों के त्याग पूर्वक लक्ष्यार्थ में एकता का प्रतिपादन ही अमर कथा है। उसी लक्ष्यार्थ में अभेद चिन्तन करते हुए जीव 'भृंगी कीट न्याय' से ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। अमर होने का अर्थ शरीर के अमर होने से नहीं। शरीर किसी का अमर नहीं है। ब्रह्मा विष्णु त्रिदेवों का शरीर भी आयु पूर्ण होने पर नहीं रहता। अमर होने का अर्थ है–संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण तीनों कर्मों, स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों के नाश के अनन्तर व्यष्टि जीव चैतन्य का समष्टि ब्रह्म चैतन्य में लय होना ही अमर होना है। यह निरपेक्ष अमरत्व है।

३. कुछ विद्वान् कहते हैं कि शिव जी ने पार्वती को बयालीस सौ श्लोकों, ६४ सर्गों तथा सात काण्डों में अध्यात्म रामायण सुनाई। यही अमर कथा है। इस कथा के आरम्भ में पार्वती जी ने रामतत्त्व को समझने के लिए प्रश्न किया था। तब श्री हनुमान जी के

प्रति सीता जी तथा श्री राम जी ने 'राम हृदय' नामक सर्ग में राम तत्त्व बताया। बालकाण्ड के दूसरे सर्ग में पार्वती जी ने विस्तार से शंकर जी से राम कथा सुनाने की प्रार्थना की। शिव जी ने श्री राम के राज्याभिषेक पर्यन्त छः काण्ड सुनाए। बीच में पार्वती जी ने कहीं प्रश्न नहीं किया। उत्तरकाण्ड के आरम्भ में पार्वती जी ने श्री शंकर जी से प्रश्न किया। इससे अनुमान होता है कि सम्भवतः बीच में पार्वती जी सो गई हों, यही अमर कथा प्रतीत होती है क्योंकि इससे प्रत्येक सर्ग में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य भरा पड़ा है। शंकर जी ने ब्रह्म तत्त्व का प्रतिपादन करने में हजारों उपनिषद् मंत्रों की विस्तृत व्याख्या की है। इस रामायण के मूल अखण्ड पाठ करने में दस घंटे लगते हैं। इतने दीर्घ काल में पार्वती जी का सो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। अतः यही अमर कथा सिद्ध होती है।

४. कुछ विद्वानों का कथन है कि शंकर जी ने प्राणायाम विशेष करके मूलाधार चक्र में सोई हुई कुण्डलिनी को जागृत करने की विधि तीनों बंध लगाकर (मूलबंध, जालन्धर बंध, उड्डियान बंध) अनेकों विशेष प्राणायामों द्वारा जो विशेष रूप से गुरु मुख द्वारा सीखे जा सकते हैं, छः चक्रों का भेदन करके ब्रह्मरन्ध्र में कुण्डलिनी को पहुंचाने की विधि बतलाई। ब्रह्मरन्ध्र में स्थित कुण्डलिनी का शिव से संयोग होने पर चन्द्र मण्डल से अमृत योगी की जीभ पर गिरता है। उसको पान करके योगी अमर हो जाता है अर्थात् मृत्यु को जीत लेता है, इच्छा मरण होता है। क्योंकि खेचरी मुद्रा के सिद्ध होने पर सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। बुढ़ापा नहीं आता। सिद्धों से बातें करत ाहै। आकाश गमनादि सिद्धियां प्राप्त होती हैं। शिव का शक्ति के साथ सम्बन्ध होने पर क्या होता है इस पर कहते हैं–

"कुल कुण्डलिनी शक्तिः देहिनां देहधारिणीम्।
तया शिवस्य संयोगः मैथुनं परिकीर्तितम्॥"

कुल कुण्डलिनी शक्ति (कुण्डलिनी का मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त आने जाने के मार्ग को 'कुल' कहते हैं इसीलिए इसके विशेषज्ञों को 'कौल मार्गीय' कहा जाता है।) शरीर धारियों के शरीर को धारण करने वाली है। इसका ब्रह्मरन्ध्र में शिव के

साथ सम्बन्ध मैथुन कहा गया है। इस योग मार्ग के द्वारा अभ्यासशील साधक पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है। अतः यही अमर कथा है।

चित्त की एकाग्रता की परीक्षा

जनक शुकदेव के संवाद से संबंधित अन्यत्र भी एक कथा आई है। जब व्यास जी के अनेक प्रकार से समझाने पर भी शुकदेव जी विवाह के लिए तैयार नहीं हुये, तो उन्होंने इन्हें अपने शिष्य जनक के यहां भेजा। वहां पहुंचने पर जनक जी ने पूर्ववत् स्वागत किया। जब विश्राम करने से उनकी थकावट दूर हो गई, तब राजा ने मुनि से आने का कारण पूछा। शुकदेव जी ने आद्योपान्त सब बातें बताई। उन्होंने कहा, "कुछ दिन विश्राम करो। नगर घूम आवो, तब मैं उत्तर दूंगा। मैं ब्रह्म में स्थित हुआ भी कैसे राजपाट तथा गृहस्थ का कार्य करता हूं, बताऊंगा। एक दिन उनके लिए नगर दिखाने के लिए रथ मंगवाया और रथ में बैठाकर जनक ने कहा हे मुनिवर मेरे यहां जो अतिथि आता है, उसे नगर दिखाते हैं तथा दूध से भरा सोने का कटोार हाथ पर रख दिया जाता है। पर शर्त यह रहती है कि पूरा नगर देखो, दूध की एक बूंद भी न गिरने पाये। आप मेरी यह शर्त पूरी कर दें। तब आप के प्रश्न का उत्तर दूंगा।" ऋषि ने तथास्तु कह कर स्वीकार किया। शुकदेव जी पूरा नगर देखने लगे, सुन्दर बाजार, बागीचे, महाराज का मोती महल आदि सब कुछ देखा, परन्तु उनकी चित्तवृत्ति कटोरे के दूध में एकाग्र थी। अतः देखने पर भी नहीं देखा। दूध की एक बूंद भी गिरने नहीं दी। लौटकर रथ से उतर कर राजा के पास पहुंचे। राजा ने कहा, "हे मुने! मैंने बहुत अच्छा मोती महल बनवाया था। उसमें सुन्दर नक्काशी की हुई है। कौन-कौन फूल उसमें बने हुए हैं? बगीचे में किन-किन फलों को देखा? जन्तुशाला में कौन से पशु पक्षी देखे।" ऋषि बोले "हे राजन्! मेरी आंखें खुली थीं, आंखों ने सब कुछ देखा। पर मन पूर्ण रूप से कटोरे के दूध में था। अतःदेखने पर भी नहीं देखा।" जनक जी ने कहा, हे मुनीन्द्र! आपके मन में जो शंका थी कि मैं राज्य सुख, स्त्री, पुत्र आदि का सुख भोगते हुए भी विदेह कैसे हूं, इसका उत्तर मैंने तुम्हें दिया। जैसे तुमने सब कुछ देखने पर भी कुछ नहीं देखा, सुनते हुए भी नहीं सुना, क्योंकि आप का मन कटोरे के दूध में था। मैं इन्द्रिय तथा मन से राज्य

करता हूं। राज्य करते हुए अपराधियों को दण्ड देते हुए, सन्तों की पूजा करते हुए भी लिप्त नहीं होता हूं। सदैव मन ब्रह्म में लगा रहता है। प्रत्येक मनुष्य का मन स्थूल सूक्ष्म भेद से दो प्रकार का होता है। जैसे किसी को गीता रामायण आदि का पाठ कंठ हो, तो उसका स्थूल मन पाठ करता है। सूक्ष्म मन पाठ में न होकर अन्यत्र घूमता है, पाठ शुद्ध होने पर भी पता नहीं चलता कि अध्याय कब खत्म हो गया। वैसे ही मैं भी स्थूल मन से संसार का व्याहवर राजकाज करता हूं, किन्तु मेरा सूक्ष्म मन सदैव भगवान् में लगा रहता है। हे मुने! आप भी लौटकर पिता की आज्ञा मान कर विवाह करें। स्थूल मन से जगत् का व्यवहार करें। सूक्ष्म मन को भगवान् में लगावें। ऐसा करने से तुम्हें अति दुर्लभ गति प्राप्त होगी।" राजा का उपदेश सुनकर शुकदेव जी प्रसन्न हुए।

उनसे विदा लेकर पिता व्यास जी के पास पहुंचे। पुराने समय की माताएं दूर से पानी लाती थीं। तीन तीन घड़े नीचे ऊपर रखकर सिर पर लाती हुई खेलते हंसते बोलते आती थीं, किन्तु घड़े नहीं गिरते। इसी प्रकार ज्ञानी जिनका कर्म का प्रारब्ध है, वे कर्म करते हुए भी आसक्त न होने के कारण अकर्मी हैं। पंचदशी में विद्यारण्य स्वामी जी ने कहा भी है, "आत्म ज्ञानियों में ज्ञान समान होने पर भी ज्ञानियों की प्रारब्ध विभिन्न प्रकार की होने के कारण अनेकों प्रकार के ज्ञानी देखे जाते हैं।"

"कृष्णः भोगी, शुको योगी, राजानौ जनकराघवौ।
वसिष्ठः कर्म कर्त्ता च पंचैते ज्ञानिनः समाः॥"

भगवान् कृष्ण का भोग का प्रारब्ध, शुकदेव जी का योगाभ्यास का तथा जनक और राम का राज्य भोग का तथा वशिष्ठ का कर्म का प्रारब्ध होने पर भी पांचो समान ज्ञानी हैं। ऋषिकेश में मैंने एक महात्मा को देखा, वे गंगा स्नान करके लोटे में गंगा जल भरकर सिर पर नारियल के ऊपर लोटा था। वे करताल बजाते कीर्तन करते जा रहे थे। नारियल तो क्या लोटे का एक बूंद जल भी नहीं गिरा क्योंकि उनकी चित्त वृत्ति उसी में लगी थी। इसी प्रकार से कार्य करते हुए भगवान् का भजन करना चाहिए। इति शुक चरितम्।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का पन्द्रहवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ अथ सोलहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

१९०. वैशम्पायन, १९१. याज्ञवल्क्य

महामुनि वैशम्पायन जी वेदों के आचार्य थे। उनके यहां बहुत से छात्र वेदाध्ययन करते थे। याज्ञवल्क्य जी भी उन्हं के समीप पढ़ते थे। ब्रह्मरात के पुत्र याज्ञवल्क्य जी इनकी बहन के लड़के थे और मिथलापुरी में रहते थे। एक बार समस्त ऋषियों ने मिलकर मेरु के समीप एक सभा स्थापित की। उस सभा में यह नियम था कि निश्चित तिथि को जो ऋषि उस सभा में उपस्थित न होगा उसे सात दिन तक वाचिक ब्रह्म हत्या का पातक लगेगा। इस नियम के अनुसार सब ऋषि वहां उपस्थित होते थे। एक बारउसी तिथि को वैशम्पायन जी के पिता जी का श्राद्ध था, उन्होंने सोचा श्राद्ध तो आवश्यक है इसका प्रायश्चित सब विद्यार्थी मिलकर कर लेंगे। तदनुसार वे सभा में नहीं गये। नियमानुसार उन्हें वाचिक ब्रह्म हत्या का पाप लगा। उन्होंने अपने समस्त विद्यार्थियों से कहा, "तुम सब मिलकर इस अपराध का प्रायश्चित कर लो।" याज्ञवल्क्य जी ने कहा, "अभी ये छात्र छोटे हैं, ये सब क्या प्रायश्चित करेंगे। सबके बदले मैं ही कर लूंगा।" वैशम्पायन जी ने बहुत कहा, "नहीं भाई सब को मिलकर ही करना चाहिए।" किन्तु याज्ञवल्क्य जी हठ पकड़ गये कि मैं अकेला ही करूंगा। तब गुरु को कुछ क्रोध आया और उन्होंने कहा, "तू बड़ा अभिमानी है। अतः मेरे द्वार पढ़ी हुई यजुर्वेद की शाखा को उगल दे।" गुरु की आज्ञा पाकर याज्ञवल्क्य जी ने अन्न रूप में वे सब ऋचाएं उगल दीं। उन्हं उनके शिष्यों ने तित्तिर (तीतर) बनकर ग्रहण कर लिया, वही यजुर्वेद में कृष्ण यजुः के नाम से प्रसिद्ध शाखा हई। इसी से इस कृष्ण यजुः और शुक्ल यजुः ये दो भेद हुए। उस शाखा के पढ़ने वाले ब्राह्मण 'तैत्तिरीय' कहलाये।

तब याज्ञवल्क्य जी ने निश्चय किया कि अब कभी किसी मनुष्य को गुरु नहीं बनाऊंगा। यह निश्चित करते वे सूर्य भगवान् की आराधना करने लगे। सूर्य भगवान् ने अश्व का रूप धारण करके उन्हें उपदेश दिया, वही 'माध्यन्दिन वाजसनेय' के नाम से शाखा प्रसिद्ध हुई।

इनके दो स्त्रियां थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ने भगवान् याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविद्या प्राप्त करके परमपद प्राप्त किया और दूसरी भरद्वाज की कन्या कात्यायनी से चन्द्र कान्त, महामेघ, विजय नामक तीन पुत्र हुए। भगवान् याज्ञवल्क्य कर्मकाण्ड में बड़े ही प्रवीण थे। इन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ कराये और उनमें आचार्य बने। श्रोत्रिय होने के साथ ही साथ वे ब्रह्मनिष्ठ भी थे। एक बार महाराज जनक की इच्छा हुई कि किसी ब्रह्मनिष्ठ ऋषि की परीक्षा करूंगा। उन्होंने एक युक्ति सोची समस्त बड़े-बड़े ऋषियों को उन्होंने बुलाया और सभा में बछड़े सहित हजार सुवर्ण की गौएं खड़ी कर दीं। तदनन्तर उन्होंने समस्त ऋषियों के सामने घोषणा की, जो कोई ब्रह्मनिष्ठ हो, वे इन गौओं को सजीव बनाकर ले जाए। सभी की इच्छा हुई कि हम लें, किन्तु पहले उठकर हम ऐसा करते हैं, तो और लोग समझेंगे, ये तो अपने मुंह ही अपने को ब्रह्मनिष्ठ बताते हैं, ऐसा सोचकर शिष्टाचार और लोकापवाद के भय से कोई भी न उठे। तब याज्ञवल्क्य जी ने अपने एक शिष्य से कहा सब गौओं को ले चलो। इस पर उनका समस्त ऋषियों से तथा गार्गी से शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने सभी के प्रश्नों का विधिवत् उत्तर दिया। सभी सन्तुष्ट हुए। गौएं भी सजीव हो गईं। राजा जनक जी ने उनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की।

याज्ञवल्क्य ब्रह्मज्ञानी कर्मकाण्डी, स्मृतिकार आदि थे। इनके 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' प्रतिज्ञासूत्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, शतपथ ब्राह्मण और योगि याज्ञवल्क्य ये ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में उनके शास्त्रार्थ का बहुत लंबा वर्णन है। ब्रह्मवादिनी गार्गी के साथ इनका जो शास्त्रार्थ हुआ, वह बड़ा ही अपूर्व है।

वैशम्पायन जी कर्मकाण्ड के आचार्य होने के साथ ही भगवल्लीलाओं के बड़े रसिक थे। महाराज जनक के यज्ञ में इन मामा भानजों में कुछ कहा सुनी भी हो गई थी, किन्तु उन्होंने जब सूर्य भगवान् से संहिता प्राप्त कर ली, तब वैशम्पायन जी परम प्रसन्न हुए और अपने शिष्यों को भी उन्होंने याज्ञवल्क्य जी से वह संहिता पढ़ावाई। इन्होंने अंत में घर छोड़कर विद्वत्संन्यास ग्रहण कर लिया था। याज्ञवल्क्य के पन्द्रह शिष्यों के नामों से शुक्ल यजुर्वेद की पन्द्रह शाखाएं प्रसिद्ध हुईं। वैशम्पायन जी ने व्यास जी से विस्तृत

महाभारत पढ़ा था। उनकी आज्ञा प्राप्त करके उसका संक्षेप किया। राजा जनमेजय को सुनाकर उनका अठारह प्रकार का कुष्ठ दूर किया था।

१९२-१९७. महर्षि व्यास के शिष्य समन्तु, पैल, जैमिनि, पिप्पलाद, असित, देवल

ऊपर लिखे हुए व्यास जी के शिष्यों में जैमिनि जी के अतिरिक्त अन्यों का चरित्र नहीं मिलता। पैल ने ऋग्वेद, वैशम्पायन जी ने कृष्ण यजुर्वेद, जैमिनि जी ने सामवेद, शौनक, पिप्पलाद ने अथर्ववेद का अध्ययन किया।

पैल–इन्होंने ऋग्वेद रूपी वृक्ष के दो भाग किये तथा अपने शिष्यों इन्द्र प्रमिति तथा वाष्कल को पढ़ाया। आगे वाष्कल जी ने अपने शाखा के चार भाग किये। उन्होंने बोध्य आदि शिष्यों को पढ़ाया। अग्नि माढक, पराशर, याज्ञवल्क्य यह याज्ञवल्क्य वैशम्पायन शिष्य से भिन्न हैं तथा पराशर भी व्यास पिता पराशर से भिन्न हैं। पैल के दूसरे शिष्य इन्द्र प्रमिति ने प्रमिति शाखा को अपने पुत्र माण्डूक्येय को पढ़ाया। इस प्रकार शिष्य प्रशिष्य क्रम से पैल की शाखाओं का पुत्र और शिष्यों में प्रचार हुआ। इस शिष्य परम्परा में दीक्षित होकर शाकल्य वेदमित्र ने संहिता को पढ़ा। उन्होंने अपनी शाखा के पांच भाग करके पांच शिष्यों को पढ़ाया। मुद्गल, गोमुख, वात्स्य तथा महामति शरीर शालीय। शाकल्य वेदमित्र के दूसरे शिष्य शाक पूर्ण थे। इन्होंने तीन वेद संहिताओं तथा चौथे निरुक्त ग्रन्थ की रचना की। उन संहिताओं के अध्ययन करने वाले उनके शिष्य महामुनि क्रौंच, वैतालिक तथा बलाक थे। निरुक्त का अध्ययन करने वाले चौथे शिष्य वेद, वेदांग के पारंगत विद्वान् निरुक्तकार हुए। वाष्कल ने भी तीन संहिताओं को अपने शिष्य कालायनि, गार्ग्य तथा कथाजव को पढ़ाया। यह सब ऋषि ऋग्वेद के अध्येता बह्वृचि कहलाये।

पैल की शिष्य परम्परा में इन्द्र प्रमिति तथा वाष्कल से लेकर कथा जब पर्यन्त २० शिष्य प्रशिष्य हुये। जो वह्वृचि ऋग्वेदी ब्राह्मण कहलाये। (१७८ से २१७)

महर्षि वैशम्पायन की शिष्य परम्परा

व्यास जी के शिष्य वैशम्पायन ने कृष्ण यजुर्वेद को २७ भागों में बांटा।

जैमिनि की शिष्य परम्परा–व्यास शिष्य जैमिनि जी ने अपने पुत्र सुमन्तु तथा सुमन्तु के पुत्र सुकर्मा को पढ़ाया। इन दोनों ने अपने पिता पितामह से सामवेद की एक शाखा पढ़ी। तदनन्तर सुमन्तु पुत्र सुकर्मा ने अपनी शाखा के एक हजार भेद किये। उनसे, उनके शिष्य कौशल्य हिरण्य नाभ, पौष्पिञ्जि इन दो शिष्यों ने पढ़ा। हिरण्य नाभ के पांच सौ उदीच्य सामवेदी शिष्य हुए। यह सब सामग कहलाये। इनके अतिरिक्त हिरण्य नाभ के अन्य शिष्य हुए। यह सब सामग कहलाये। इनके अतिरिक्त हिरण्य नाभ के अन्य शिष्यों ने इनसे इतनी ही संहिताएं पढ़ीं। वे पांच सौ सामग हुए।

पौष्पिञ्चि की परम्परा–इनके लोकाक्षि, नौधमि, कक्षीवान्, लाङ्गलि, यह चार शिष्य हुए। उनके आगे अनेकों शिष्य प्रशिष्यों में इसका विस्तार हुआ। महामुनि हिरण्य नाभ के एक शिष्य ने अपनी संहिता के २४ भाग करके २४ शिष्यों को पढ़ाया।

महर्षि सुमन्तु की परम्परा–इन्होंने व्यास जी से अथर्ववेद पढ़कर कबन्ध नामक शिष्य को पढ़ाया। उन्होंने दो भाग करके देवदर्श तथा पथ्य नामक शिष्यों को दिया। देवदर्श के शिष्य मेघ, ब्रह्मबलि, शौल्कायनि तथा पिप्पलाद हुए। पथ्य ने जावालि, कुमुदादि तथा शौनक तीन शिष्यों को पढ़ाया तथा शौनक ने अपनी संहिता के दो भाग करके वभ्रु तथा सैंधव को पढ़ाया। सैन्धव से मुञ्जिकेश ने पढ़कर उसके पांच भाग करके, नक्षत्र, कल्प, वेद कल्प, संहिता कल्प, आंगिरस कल्प तथा शान्ति कल्प रचे। यह पांचों कल्प ऋग्वेदीय संहिताओं में सर्वोत्तम हैं।

सामवेदीय व्यास शिष्य जैमिनि जी की परम्परा में ११ प्रधान सामवेदीय हुये। (२१८ से २२८ तक गुरु हुये)

व्यास जी के पौराणिक शिष्य

पुराणार्थ के विशेषज्ञ व्यास जी ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्प शुद्धि सहित पुराणों का स्मरण किया। इन्होंने रोम हर्षण नामक शिष्य को पढ़ाया। सूत जी से सुमति, अग्निवर्चा, मित्रांशु, शांसपायन, अकृतव्रण, सावर्णि इन छः संहिताओं के कर्त्ता हुए। इन

तीनों संहिताओं का आधार रोम हर्षण जी की संहिता है। इन चारों संहिताओं का सार विषणु पुराण संहिता पराशर जी की रचना है। व्यास जी ने इसका संपादन किाय। अठारह महापुराण हैं। इनमें सबसे प्राचीनतम ब्रह्म पुराण है।

रोमहर्षणसूत जी से लेकर सावर्णि तक सात शिष्य हुये कुल मिलाकर गुरु सं० (२४२ से २४८ तक)

इति वेद व्यास जी की वैदिक तथा पौराणिक शिष्य परम्परा पूर्ण हुई।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का सोलहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सत्रहवां अध्याय प्रारम्भ ॥

२४९. गार्गी

महर्षि गर्ग के वंश में 'बचक्नु' नाम के एक ऋषि थे। उनकी पुत्री 'वाचकन्वी' गार्गी हुई। वृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य जी से इन्होंने शास्त्रार्थ किया। एक बार महाराज जनक ने ब्रह्मज्ञानियों की परीक्षा के लिए एक सभा की थी। इसमें एक सहस्त्र गायें स्वर्ण की बनाई गईं और सभी ऋषियों से कहा, इनमें जो ब्रह्मज्ञानी हो वह इनमें प्राण डालकर ले जा सकता है। सब की इच्छा हुई, किन्तु आत्म प्रशंसा तथा शास्त्रार्थ के भय से किसी का साहस नहीं हुआ। याज्ञवल्क्य जी ने शिष्यों से गायें ले जाने को कहा, इतने में सभी शास्त्रार्थ करने लगे। उन्होंने सब के प्रश्नों का उत्तर दिया। तब गार्गी ने उनसे पूछा पृथ्वी तत्त्व किसमें ओत-प्रोत है? उन्होंने कहा जल में। जल किसमें? अग्नि में। अग्नि किसमें? वायु में। वायु किसमें है? आकाश में। अन्तरिक्ष किसमें है? गन्धर्व लोक में। गन्धर्व लोक किसमें है? आदित्य में। आदित्य किसमें हैं? नक्षत्रों में। नक्षत्र किसमें हैं? देवलोक में। देवलोक किसमें है? प्रजापति लोक में। प्रजापति लोक किसमें है? ब्रह्मलोक में। फिर याज्ञवल्क्य जी ने गार्गी से कहा, इसके आगे न पूछना। आगे पूछने पर तुम्हारी गर्दन झुक जाएगी। अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओं में तुम्हारी हंसी होगी कि इसे प्रश्न करने का ज्ञान भी नहीं है। इन ऋषियों में तुम्हें नीचा देखना पड़ेगा। ब्रह्मलोक अपनी महिमा में स्थित है। ब्रह्म की महिमा किसमें है यह मत पूछना।

अथवा आकाश किसमे है? शब्द तन्मात्रा में। शब्द तन्मात्रा किसमें है तामस अहंकार में। तामस अहंकार किसमें है? महत्तत्व में। महत्तत्व किसमें है? मूल प्रकृति में। मूल प्रकृति किसमें है? ब्रह्म में। ब्रह्म किसमें है? अपनी महिमा में। याज्ञवल्क्य जी का उत्तर सुनकर गार्गी अत्यन्त प्रसन्न हुई। भरी सभी में बोली, ''महर्षि याज्ञवल्क्य वास्तव में पूर्ण ब्रह्मवेत्ता हैं। उन्हें गायें ले जाने का अधिकार है। गार्गी नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी थी।''

२५०. मुद्‌गल

द्वापर युग में महात्मा मुद्‌गल नाम का एक आदर्श ब्राह्मण परिवार कुरुक्षेत्र में निवास करता था। मुद्‌गल पूर्ण जितेन्द्रिय, सत्यवादी, वेदपारङ्गत, सहनशील, दयालु, उदार और धर्मात्मा थे। ये शिलोञ्छवृत्ति से ही अपना जीवन निर्वाह करते थे। शिलोञ्छ वृत्ति का अन्न भी ३४ सेर से अधिक कभी इकट्ठा नहीं करते। घर में जो कुछ होता, सो दीन दुखी अतिथि-अभ्यागतों की सेवा में खुले हाथों लगाते थे, जैसे धर्मात्मा ब्राह्मण थे, वैसी ही उनकी धर्मपत्नी और सन्तान भी थी। मुद्‌गल जी सपरिवार महीने में केवल दो ही बार अमावस्या और पूर्णिमा के दिन भोजन किया करते थे, सो भी अतिथि अभ्यागतों को भोजन कराने के बाद। मुद्‌गल की कीर्ति सारे देश में फैल रही थी। एक बार दुर्वासा जी के मन में परीक्षा करने की आ गई। दुर्वासा महाराज जहां-तहां व्रतशील उत्तम पुरुषों को व्रत में पक्का करने के लिए ही क्रोधित वेश में घूमा करते थे। मुद्‌गल के घर आकर दुर्वासा जी अतिथि हुए। पूर्णिमा का दिन था। मुद्‌गल ने आदर-सत्कार के साथ ऋषि की अभ्यर्थना-पूजाकर उन्हें भोजन करने बैठाया। तीन आचमन में समुद्र सुखा देने वाले दुर्वासा जी के लिए मुद्‌गल के घर का थोड़ा सा अन्न उड़ा जाना कौन सी बड़ी बात थी? बात-ही-बात में सब कुछ जीम गये, बचा-खुचा शरीर में चुपड़ लिया। मुद्‌गल सपरिवार भूखे रहे। दुर्वासा जी हर पन्द्रहवें दिन आने लगे, यों छः बार आये। इस प्रकार मुद्‌गल ९० दिन भूखे रहे। पन्द्रह दिन में एक बार भोनज करने वाले तपस्वी कुटुम्ब तीन महीनों से भूखों मर रहा है, परन्तु किसी के मन में भी दुख, क्रोध, क्षोभ या अपमान का विकार नहीं है। दुर्वासा जी की परीक्षा में ब्राह्मण उत्तीर्ण हो गया। दुर्वासा ने प्रसन्न होकर कहा-

"इस लोक में तुम्हारे समान मत्सरता रहित दाता और कोई नहीं है। भूख ऐसी चीज़ है कि यह चमकते हुए धर्म व ज्ञान और धैर्य का नाश कर डालती है। रस लम्पट जीभ मनुष्य को रस की ओर खींच लेती है। तुमने भूख और रस दोनों को जीत लिया। प्राण भोजन के अधीन है। आहार के अभाव में प्राण नष्ट हो जाते हैं। मन बड़ा दुर्निग्रह है। इस संचल मन और इन्द्रियों को वश में करने का नाम ही तप है। फिर बड़े परिश्रम से मिली हुई वस्तु का निष्काम भाव और प्रसन्न मन से सत्कार पूर्वक दान कर देना भी बड़ा ही कठिन है, परन्तु हे साधो! तुमने सब कुछ सिद्ध कर लिया।"

२५१-२५२. महर्षि शंख-लिखित

शंख तथा लिखितदोनों सगे भाई थे। दोनों ने शंख स्मृति तथा लिखित स्मृति दो धर्मशास्त्र ग्रन्थों की रचना की थी। द्वापर युग के लिए दोनों की स्मृतियां परमोपयोगी हैं। दोनों ने अपने धर्मग्रन्थों में सत्य-अस्तेय आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। यह दोनों केवल धर्म गुरु ही नहीं थे, बल्कि धर्म का पूर्ण पालन भी करते थे। एक बार छोटा भाई बड़े भाई से मिलने गया। संयोग से अग्रज आश्रम में नहीं थे। आश्रम में बगीचे में फल लगे हुए थे। इनको बड़ी भूख लगी थी। बिना किसी की आज्ञा के अपना ही आश्रम समझ कर फल ख ालिये। भाई जब लौट कर आये। प्रणाम किया तथा फल खाने की बात कही, अग्रज ने डांटते हुए कहा, "धर्माचार्य होते हुए भी तुमने चोरी का अपराध किया। अतः राजा के पास जाकर इसका दण्ड भोगो।" वे तुरन्त राजा के पास गये। अपना अपराध बताया, राजा ने कहा, "मैं ब्राह्मणों को दण्ड नहीं देता। क्षमा करता हूं। भाई की वस्तु लेना कोई अपराध नहीं है।" इन्होंने कहा, "यदि आप दण्ड नहीं देंगे। तो परलोक में यमराज के यहां मुझे अपार दण्ड भोगना पड़ेगा। अतः मैं आज्ञा देता हूं कि मुझे अवश्य दण्डित करें।" उन दिनों चोरों के हाथ कटवा लिये जाते थे। राजा ने हाथ कटवा दिये। वे कटे हाथ भाई के पास पहुंचे। दोनों सन्ध्योपासना करने नदी के तट पर गये। जब सूर्योपस्थान करने के लिए हाथ खड़े करने की इच्छा की। तब उनकी सत्यवादिता, न्यायप्रियता तथा अस्तेय गुण पर भगवान् भुवन भास्कर सूर्य नारायण

प्रसन्न हुए। दोनों हाथ पूर्ववत् निकल आये। ऐसे ऐसे सत्यनिष्ठ, न्याय प्रिय हमारे धर्म गुरु हैं। इनके चरित्र में हमें यम, नियम पालन की शिक्षा मिलती है। अतः देश वासियों को घूस खोरी, चोर बाजारी छोड़कर उक्तगुणों को अपनाना चाहिए। देवता लोग बाजे बजाते हुए दोनों पर फूलों की वर्षा करने लगे। **(इति महर्षि शंखलिखित चरित्र पूर्ण हुआ।)**

२५३. महर्षि धौम्य, २५४. शिव भक्त उपमन्यु

शिव भक्त उपमन्यु परम शिव भक्त, वेदतत्त्व के ज्ञाता महर्षि व्याघ्रपाद के बड़े पुत्र थे। एक दिन उपमन्यु ने माता से दूध मांगा। घर में दूध था नहीं, माता ने आटा जल में घोलकर दे दिया। उपमन्यु मामा के घर दूध पी चुके थे। अतएव उन्होंने यह जानकर कि यह दूध नहीं है, माता से कहा, "मां यह दूध तो नहीं है। ऋषि पत्नी झूठ बोलना नहीं जानती थीं।" उन्होंने कहा, "बेटा! तू सत्य कहता है, यह दूध नहीं है। नदी किनारे वनों और पहाड़ों की गुफाओं में जीवन बिताने वाले हम तपस्वी मनुष्यों के यहां दूध कहां से मिल सकता है। हमारे तो सर्वस्व श्री शिव जी महाराज हैं। तू यदि दूध चाहता है, तो उन जगन्नाथ श्री शिव जी को प्रसन्न कर, वे प्रसन्न होकर तुझे दूध भात देंगे।"

माता की बात सुनकर बालक उपमन्यु ने पूछा, "मां! भगवान् श्री शिवजी कौन हैं? कहां रहते हैं? उनका कैसा रूप है, मुझे वे किस प्रकार मिलेंगे और उन्हें प्रसन्न करने का उपाय क्या है?"

बालक के स्नेहिल वचनों को सुनकर माता के आंखों में आसू आ गये। माता ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए 'शिवाय नमः' महामन्त्र बताया।

माता से उपदेश पाकर उपमन्यु शिव को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करके घर से निकल पड़े।

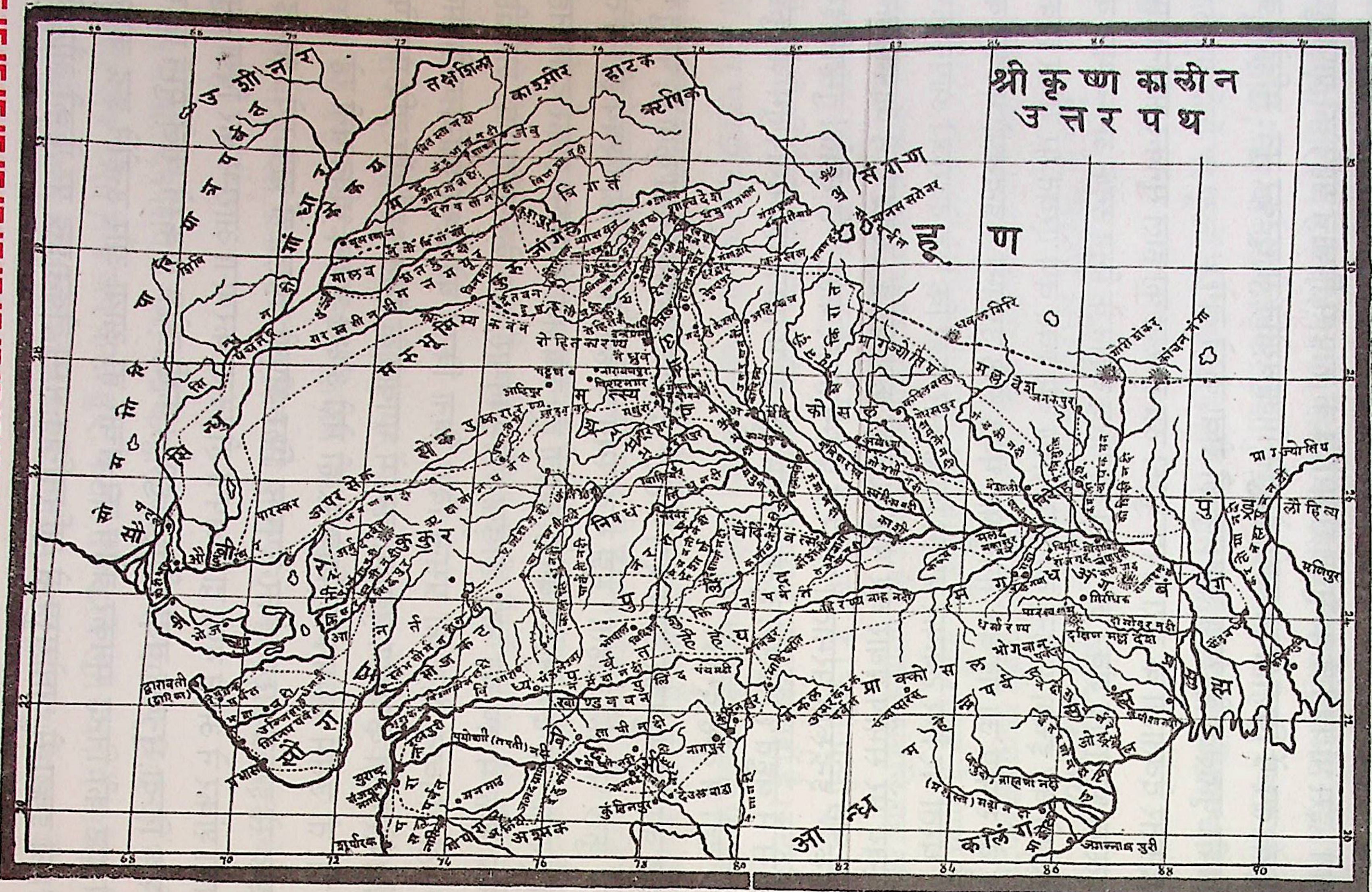
वन में प्रतिदिन शिवाय नमः मन्त्र के द्वारा पत्र पुष्पों से भगवान् शिव जी की पूजा करते और शेष समय मन्त्र जप करते हुए, कठोर तप करने लगे। वन में अकेले रहने वाले तपस्वी उपमन्यु को पिशाचों ने बहुत सताया। परन्तु उपमन्यु के मन में न भय

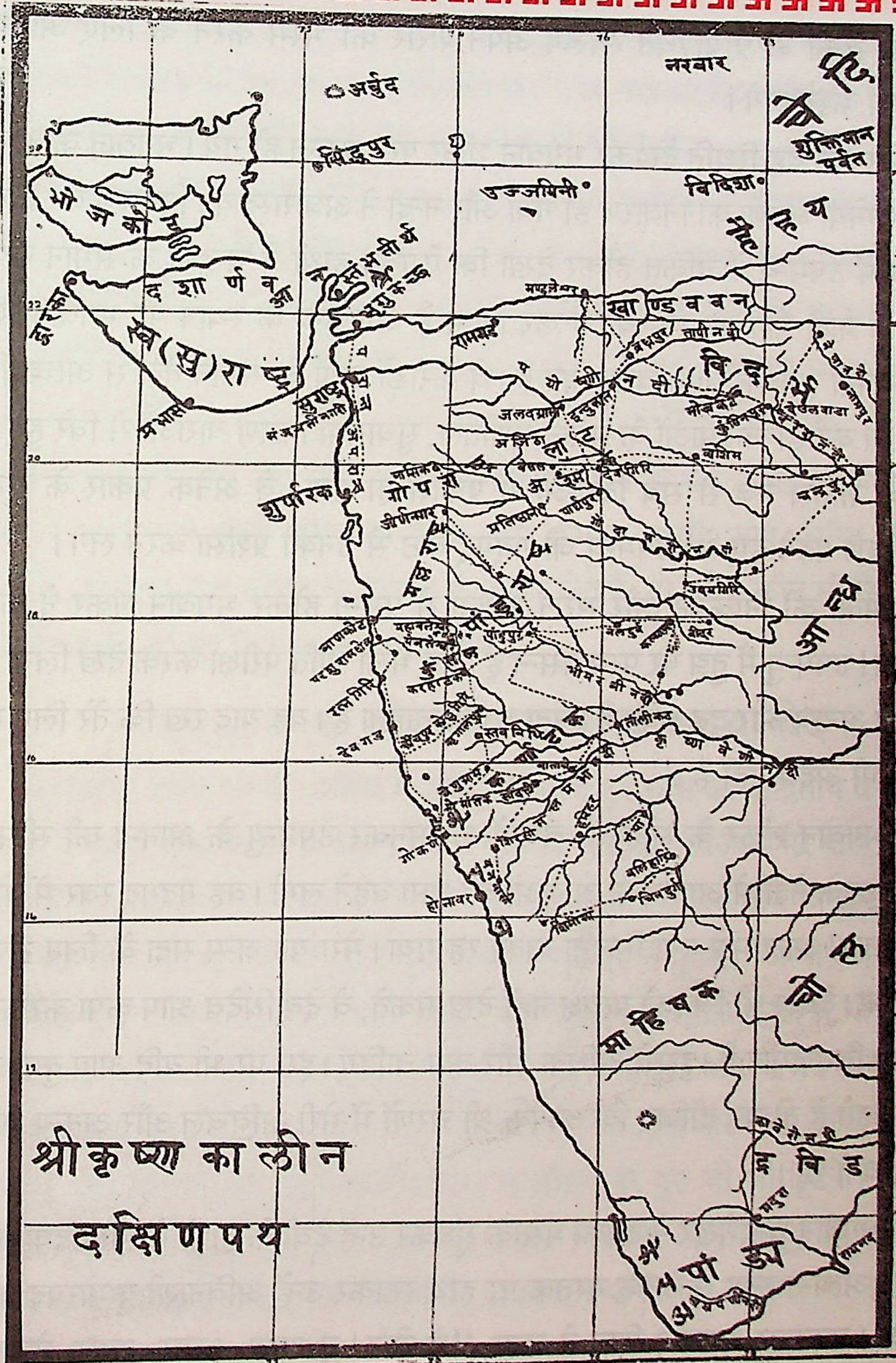
हुआ, न विघ्न डालने वालों के प्रति क्रोध ही हुआ। वे उच्च स्वर से मन्त्र का कीर्तन करने लगे। इस पवित्र मंत्र के सुनने से मरीचि के शाप से पिशाच योनि को प्राप्त हुए, उपमन्यु के तप में विघ्न करने वाले वे मुनि पिशाचयोनि से छूटकर पुनः मुनिदेह को प्राप्त होकर कृतज्ञता के साथ उपमन्यु की सेवा करने लगे।

तदनन्तर देवताओं के द्वारा उपमन्यु की उग्र तपस्या का हाल सुनकर सर्वान्तयामी भक्त वत्सल भोलेनाथ शंकर जी, भक्त का गौरव बढ़ाने के लिए उनके अनन्य भाव की परीक्षा करने की इच्छा से इन्द्र का रूप धारण कर श्वेत वर्ण ऐरवत पर सवार होकर उपमन्यु के समीप जा पहुंचे। मुनिकुमार भक्त श्रेष्ठ उपमन्यु ने इन्द्ररूपी भगवान् को देखकर धरती पर सिर टेककर प्रणाम किया और कहा कि "हे देवराज! आपने कृपा करके स्वयं मेरे समीप पधार कर मुझ पर बड़ी कृपा की है। बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूं?" इन्द्ररूपी परमात्मा शंकर ने प्रसन्न होकर कहा, "हे सुव्रत! तुम्हारी इस तपस्या से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूं। तुम मुझ से मनमाना वर मांगो। तुम जो कुछ मांगोगे, वही मैं तुम्हें दूंगा।"

इन्द्र की बात सुनकर उपमन्यु ने कहा, "देवराज! आपकी बड़ी कृपा है, परन्तु मैं आप से कुछ भी नहीं चाहता। मुझे न तो स्वर्ग चाहिए, न स्वर्ग का ऐश्वर्य ही। मैं तो भगवान् शंकर का दासानुदास बनना चाहता हूं। जब तक वे प्रसन्न होकर दर्शन नहीं देंगे, तब तक मैं तप को नहीं छोड़ूंगा। त्रिभुवनसार, सब के आदिपुरुष, अद्वितीय अविनाशी भगवान् शिव को प्रसन्न किए बिना किसी को स्थिर शान्ति नहीं मिल सकती। मेरे दोषों के कारण मुझे इस जन्म में भगवान् के दर्शन न हों और यदि मेरा फिर जन्म हो, तो उसमें भी भगवान् शिव पर ही मेरी अक्षय अनन्य भक्ति बनी रहे।"

इन्द्र से इस प्रकार कहकर उपमन्यु फिर अपनी तपस्या में लग गये। तब इन्द्र रूपधारी शंकर ने अपने गणों द्वारा अपनी ही निन्दा करवाना आरम्भ कर दिया। मुनि को शिव निन्दा सुनकर बड़ा ही दुख हुआ। कभी क्रोध न करने वाले मुनि के मन में भी इष्ट की निन्दा सुनकर क्रोध का संचार हो आया और उन्होंने इन्द्र का वध करने की इच्छा से अघोरास्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लेकर इन्द्र पर फेंकी और शिव


श्री कृष्ण कालीन
उत्तर पथ
हूण
तक्षशिला
काश्मीर
हाटक
कपिक
मगध
कलिंग
आन्ध्र
लौहित्य
मणिपुर
जगन्नाथ पुरी
मानचित्रकार श्रीविष्णु हरि वडेर एम० ए०, एल एल० बी०,



मानचित्रकार श्रीविष्णु हरि वडेर एम० ए०, एल-एल० बी०,

निन्दा सुनने के प्रायश्चित स्वरूप अपने शरीर को भस्म करने के लिए आग्नेयी धारणा करने लगे।

उनकी यह स्थिति देखकर भगवान् शंकर परम प्रसन्न हो गये। भगवान् के आदेश से आग्नेयी धारणा का निवारण हो गया और नन्दी ने अघोरास्त्र का निवारण कर दिया। इतने में उपमन्यु ने चकित होकर देखा कि ऐरावत हाथी ने चन्द्रमा के समान सफ़ेद कान्ति वाले बैल का रूप धारण कर लिया है और इन्द्र के स्थान पर भगवान् शिव जगजननी उमा के साथ विराजमान हैं। वे करोड़ों सूर्यों के समान तेज से आच्छादित और वे करोड़ों चन्द्रमाओं के समान सुशीतल, सुधामयी किरण धाराओं से घिरे हुए हैं। उनके शीतल तेज से सब दिशाओं में प्रकाश हो गया। वे अनेक प्रकार के सुन्दर आभूषण पहने हुए थे। उपमन्यु जी गद्‌गद् कंठ से उनकी प्रशंसा करने लगे।

भक्त की निष्कपट और सरल प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने कहा, "बेटा! उपमन्यु मैं तुझ पर परम प्रसन्न हूं। मैंने भली भांति परीक्षा करके देख लिया कि तू मेरा अनन्य और दृढ़ भक्त है। बता तू क्या चाहता है। यह याद रख कि तेरे लिए मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।"

भगवान् शंकर के स्नेह भरे वचनों को सुनकर उपमन्यु के आनन्द की सीमा न रही। उनके नेत्रों से आनन्द के आंसुओं की धारा बहने लगी। वह गदगद स्वर में बोले, "हे नाथ! आज मुझे क्या मिलना बाकी रह गया। मेरा यह जन्म सदा के लिए सफल हो गया। देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते, वे देवाधिदेव आप कृपा करके मेरे सामने विराजमान हैं। इससे अधिक और क्या चाहिए। इस पर भी यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो यह दीजिए कि आपके श्री चरणों में मेरी अविचल और अनन्य भक्ति सदा बनी रहे।"

भगवान् चन्द्रशेखर ने उनका मस्तक सूंघकर उन्हें देवी के हाथों में सौंप दिया। देवी जी ने अत्यन्त स्नेह से उनके मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् शिव ने कहा, "हे बेटा! तू आज, अजर, अमर, तेजस्वी,

यशस्वी और दिव्य ज्ञान युक्त हो गया। तेरे सारे दुखों का सदा के लिए नाश हो गया। तू मेरा अनन्य भक्त है। यह दूध भात की खीर ले।'' यह कहकर शिव जी अन्तर्धान हो गये। इन्होंने ही भगवान् श्री कृष्ण को शिव मन्त्र की दीक्षा दी।

इन्होंने आठ ईंटों का शिव मन्दिर बनवाकर पत्थर के महादेव को रखकर शिवाराधन किया था। कहां तो यह एक बूंद दूध को तरसते थे। कहां भगवान् शंकर ने इन्हें क्षीर सागर का दान किया था। शिव पुराण वायवीय संहिता में इन्होंने भगवान् श्री कृष्ण को शिव मंत्र की दीक्षा देकर विरजा होम करके सारे शरीर में भस्म लगाकर रुद्राक्ष धारण करके मंत्र जपने की आज्ञा दी थी। इस मंत्र का जप करने से पूर्व ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी को लोम अनुलोम विलोम क्रम से कर न्यास, हृदय न्यास समझाया तथा जब योगी योग धारणा के द्वारा क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, महतत्त्व तथा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, तो कौन-कौन सी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इसका विस्तार से वर्णन किया।

२५५-२५६. धौम्य शिष्य आरुणि तथा वेद

महाभारत आदि पर्व के आरम्भ में इनकी उपमन्यु गुरु सेवा का अद्वितीय वर्णन है, गुरु जी ने गऊएं देकर कहा कि जब यह दस गुनी हो जाएं तब लौटकर मेरे पास आना। तब तुम्हें वेद पढ़ाऊंगा। गो सेवा करने लगे। मध्याह्न काल में जब गौवें विश्राम करती तब भिक्षा मांग कर खा लेते थे। इन्हें पुष्ट देखकर गुरु जी ने पूछा, ''अन्नाभाव में तुम पुष्ट कैसे हो?'' तो इन्होंने सब बातें बताईं। गुरु ने कहा, ''भिक्षा काल में गौओं पर विपत्ति पड़ जाती, तो क्या होता तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।'' तब भोजन छोड़ दिया क्रमशः पहले दूध पीते, मना करने पर, फेन चाटते, फिर मना करने पर आक के पत्ते खाने से अंधे हो गये और कुएं में गिर गए। न लौटने पर गुरु जी भी ढूंढने निकले। उन्होंने पुकारा तो कुएं में से बोले। वहां से उनको निकाला और सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत होने का आशीर्वाद दिया। वाजपेयी, अवस्था तथा त्रिवेदी ब्राह्मणों का उपमन्यु गोत्र है। **इति उपमन्यु चरित्रम्**

प्राचीन काल में धौम्य ऋषि के उपमन्यु आरुणि तथा वेद तीन शिष्य प्रसिद्ध थे। गुरु जी स्वयं परिश्रमी थे तथा शिष्यों से भी परिश्रम लेते थे। उनका शासन तथा नियम कठोरतम होने के कारण अधिक विद्यार्थी नहीं थे। यह तीनों ही शिष्य आदर्श हुए। एक दिन मूसलाधार वर्षा में गुरु जी ने पांचाल देशीय आरुणि से कहा, "खेत की मेड़ बांध आवो। खेत से पानी निकल जाने पर फसल अच्छी नहीं होगी। गुरु आज्ञा प्राप्त कर फावड़ा लेकर मेड़ बांधने लगे। वर्षा तेज होने के कारण जो मिट्टी रखते, बह जाती थी। अति परिश्रम करने पर भी पानी का बहाव जब नहीं रुका। गुरु की आज्ञा थी पानी न निकलने पाये। जहां से मेड़ कटी थी, वे स्वयं वहीं पर लेट गये। लेटने से पानी रुक गया। वर्षा भी बन्द हो गई। उनके उठ जाने पर पानी सब निकल जाता। अतः वहीं पर पड़े रहे। रात्रि हो गई।"

रात्रि में गुरु जी ने सब शिष्यों को बुलाया। उनमें आरुणि नहीं थे। गुरु जी के पूछने पर बालकों ने कहा, "गुरु जी आपने उन्हें मेड़ बांधने के लिए भेजा था।" गुरु जी चिन्तातुर हुये। शिष्यों को तथा प्रकाश साथ लेकर खोजने गये, किन्तु कहीं दिखाई नहीं दिये। गुरु जी ने जोर से आवाज़ दी कि, "तुम कहां हो।" तब आरुणि ने लेटे-लेटे कहा कि, "मैं यहां हूं। मेड़ रोके पड़ा हूं।" उनके शब्द के सहारे गुरु जी वहां पहुंचे। आरुणि मेड़ पर स्वयं पानी रोके पड़े थे। गुरु जी ने कहा, "बेटा! अब निकल आवो।" आकर गुरु चरणों में प्रणाम किया। उनका मन भर आया। शिष्य को हृदय से लगाकर प्रेम से सिर सूंघकर आशीर्वाद दिया। मैं तुम्हारी गुरु भक्ति से प्रसन्न हूं। बिना पढ़े सब विद्याएं आ जाएंगी। तेजस्वी ज्ञानी भक्त होंगे। आज से तुम्हारा नाम उद्दालक होगा। इन्हीं की ज्ञान चर्चा उपनिषदों में आती है। छान्दोग्योपनिषद् में इन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतु को महावाक्य का उपदेश किया था। जो आगे लिखा जाएगा।

२५७. श्वेत केतु

महामुनि उद्दालक के श्वेत केतु इकलौते पुत्र थे। उपनयन होने के बाद भी बारह वर्ष की आयु पर्यन्त खेल कूद में लगे रहे। वेद विद्या में कम रुचि थी। एक दिन पिता ने बुलाकर इनसे कहा, बेटा! अब तुम बड़े हो गये हो। तुम्हें पढ़ने में मन लगाना चाहिए।

मैंने नीति शास्त्र के विरुद्ध आज तक तुम्हारा बहुत दुलार किया है। तुम बिगड़ते जा रहे हो। इसमें मेरा ही दोष है, क्योंकि "**लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥**" पिता को पुत्र का पांच वर्ष तक दुलार करना चाहिए। फिर पांच से पन्द्रह वर्ष तक ताड़ना देनी चाहिए औ सोलह वर्ष का हो जाने पर पुत्र से मित्रवद् व्यवहार करना चाहिए। पिता की आज्ञा प्राप्त करके यह गुरुकुल में वेदाध्ययन करने लगे। अति कुशाग्रबुद्धि होने के कारण थोड़ी ही काल में चारों वेदों का अध्ययन कर लिया। छात्रों में सर्वोत्तम थे। विद्या के साथ-साथ इनका अभिमान भी बढ़ता गया। वेदाध्ययन के अनन्तर गुरुओं को प्रणाम करके, दक्षिणा देकर पिता के पास आये। उन्हें प्रणाम नहीं किया। उन्होंने इनकी तथा इनके गुरु की प्रशँसा करतेहुए कहा, "बेटा तुमने गुरु जी से ऐसी भी विद्या पढ़ी है, जिस एक के पढ़ने से सभी विद्याएं आ जाती हैं, जिस विद्या से अश्रुत भी श्रुत हो जाता है। अविज्ञात विज्ञात हो जाता है।" इस विद्या को सुनकर आश्चर्य में पड़े। श्वेत केतु ने कहा, "पिता जी इसका तो मैं नाम भी नहीं जानता। सम्भव है कि गुरु जी जानते हों। उन्होंने न पढ़ाई हो।" जाकर गुरु जी से पूछा, "उन्होंने कहा कि मैं तो इसका नाम भी नहीं जानता हूं।" पुत्र के अभिमान का नशा उतर गया। पिता के पास जाकर प्रणाम करके उस विद्या के पढ़ने की इच्छा की। पिता ने "**अन्नं ब्रह्म इति उपासीत्**" सर्वप्रथम 'अन्न' ब्रह्म है, इसकी उपासना करने को कहा अर्थात् अन्न तथा अन्न से बना हुआ स्थूल शरीर की ब्रह्मबुद्धि से उपासना का उपदेश किया। फिर मन ब्रह्म, प्राण इत्यादि उपदेश करते हुए अन्त में कहा जैसे एक मिट्टी तत्त्व के जान लेने पर मिट्टी के बने हुए अनेकों घट कसोरा आदि मृत्तिका ही है, घटादि का नाम रूप मिथ्या है, इनमें मृत्तिका ही सत्य है। जैसे एक लौह तत्त्व के ज्ञान से लोहे की बनी हुई तलवार, हसिया, कुदाल आदि का ज्ञान हो जाता है इनके नाम रूप मिथ्या हैं। लोहा ही सत्य है। वैसे ही एक ब्रह्म तत्त्व का बोध हो जाने पर उसी के विकार जगत् के नाम रूप वाली वस्तुएं ब्रह्म स्वरूप ही हैं। हे सौम्य श्वेत केतो! खाया हुआ अन्न तीन भागों में बंटता है। इसका स्थूल रूप विष्ठा मल है। इसके मध्यम भाग से मांस बनता है। इसके सूक्ष्म भाग से मन बनता है। श्वेत केतु ने पूछा, "पिता जी! अन्न

से तो स्थूल शरीर बनता है। मन नहीं। मन तो सूक्ष्म शरीर में है, अनादि है। इससे मन कैसे बना।'' पिता ने कहा, ''आज से तुम अन्न का त्याग कर दो। भूख-प्यास लगने पर यथेष्ठ जल पीना, किन्तु सोलह दिन अन्न मत खाना, सोलहवें दिन मेरे पास आना। तब मैं बताऊंगा कि अन्न से मन कैसे बनता है?''

गुरु की आज्ञा प्राप्त कर श्वेत केतु ने यही किया, सोलहवें दिन ऋषि के पास पहुंचे। शरीर अति शिथिल हो गया था। बोल नहीं पाते थे। जाकर पिता को प्रणाम किया। ऋषि ने आशीर्वाद देते हुए कहा, ''भाष्य सहित चारों वेदों के मन्त्र तुम्हें कंठ हैं। उनमें से कुछ मन्त्र मुझे सुनाओ।'' पुत्र ने कहा, ''पिता जी अन्न त्यागने से वे सब विस्मृत हो गये हैं।'' उन्होंने समझाते हुए कहा जैसे वन में लगी हुई प्रचण्ड अग्नि और ईंधन प्राप्त न होने से एक चिंगारी मात्र जब रह जाती है। तो वह मोटी लकड़ी को जला नहीं सकती। वैसे ही सोलह दिन अन्न त्यागने से तुम्हारी चेतना की पन्द्रह कला क्षीण हो गई हैं। चिंगारीवत् एक कला अवशिष्ट है। अब मेरी आज्ञा से सोलह दिन तक अन्न जल का खूब सेवन करो। सोलहवें दिन मेरे पास फिर आना। उन्होंने ऐसा ही किया। पिता की आज्ञा प्राप्त कर चारों वेदों के मन्त्र भाष्य सहित सुना दिये। अन्न न खाने से जो भूल गया था। अन्न खाने से सब याद आ गया। पिता ने कहा, ''हे वत्स! जैसे छोटी चिंगारी थोड़ी घास फूस को प्राप्त करके बढ़ने लगती है तथा प्रचण्ड होकर सारे वन को भस्म कर देती है, वैसे ही तुम्हारी मन की चेतन कला में अन्न रूपी ईंधन प्राप्त करके विस्मृत वेदों की फिर से स्मृति हो गई। अतः हे सौम्य! मन अन्नमय है। जल प्राणमय है। पिया हुआ जल तीन भागों में बंटता है। इसके स्थूल भाग से मूत्र, मध्यम भाग से रक्त और सूक्ष्म भाग से प्राण बनते हैं। तुम सोलह दिन केवल जल पीकर अनुभव कर चुके हो कि तुम्हारे प्राण नहीं निकले। वाणी तेजोमयी है। जो हम घी तेल चिकनी वस्तु खाते हैं उसके भी तीन भाग होते हैं। स्थूल भाग से हड्डी, मध्यम से मेद तथा सूक्ष्म से वाणी बनती है। इसीलिए जोर से चिल्लाकर गाने वाले संगीतज्ञ घी आदि का सेवन करते हैं।''

इस प्रकार आनन्दमय कोश पर्यन्त ब्रह्म कहने के अनन्तर इनका बाध करके 'बाध समानाधिकरण' न्याय से निरूपाधिक ब्रह्म का उपदेश करते हुए कहा, "हे श्वेत केतु! जो निराकार, निर्गुण निरूपाधिक शुद्ध ब्रह्म है, वह तुम ही हो। तत्त्वमसि श्वेत केतो।" इसका उद्दालक ऋषि ने उन्हें नौ बार अनेकों दृष्टान्तों से उपदेश किया। यह कथा प्रसंग छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में आया है। श्री सद्गुरु देव की सेवा तथा कृपा से उन्होंने आत्म ज्ञान अपने गुरु धौम्य ऋषि से प्राप्त करके अपने पुत्र श्वेत केतु के प्रति उपदेश दिया।

॥ इति द्वापर युग खण्ड के

प्रथम परिच्छेद का सत्रहवां अध्याय समाप्त॥

॥ अथ अठाहरवां अध्याय प्रारम्भ॥

२५८-२५९. महर्षि जरत्कारू तथा आस्तीक

द्वापर युग में यायावर कुल में जरत्कारु जी का जन्म हुआ था। यह माता पिता के एकमात्र पुत्र थे। उनकी मृत्यु के बाद वन में तपस्या करने लगे, हजारों वर्षों तक उन्होंने तप किया। एक दिन वे वन में घूम रहे थे। वहां के एक सूखे कुएं में दुखी पुरुषों की आवाज सुनाई दी। इन्होंने कुएं में झांक कर देखा। वहां घास के तिनके को पकड़े हुए कुछ पितर लटक रहे थे। घास की जड़ को एक चूहा काट रहा था। मुनि ने दुखी होकर पितरों से पूछा, "हे महानुभाव आप कौन हैं, इसमें क्यों लटके हैं?" पितरों ने कहा, "हे ब्रह्मन्! हम यायावर ऋषि तुम्हारे पितर हैं। हम पितृलोक प्राप्त किया था, किन्तु अब हमारे वंश में कोई श्राद्ध तर्पण करने वाला नहीं रहेगा, हम नीचे गिरने वाले हैं। हमारे कुल में जरत्कारु नाम की एक ही सन्तान है। जब तक वह है, लटके हैं, बाद में गिर जाएंगे। यदि वह शास्त्रानुसार विवाह करके वंश वृद्धि करे तो हम बच सकते हैं। हे ब्रह्मन्! यदि जरत्कारु तुम्हें मिले, तो उसे विवाह करने की शिक्षा देना।" जरत्कारु ने कहा, "हे पितरो! मैं ही जरत्कारु हूं। मेरे कारण आपकी यह दशा हुई है। मैं योग्य कन्या से अवश्य

विवाह करूंगा।" पितर प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया। उन्होंने प्रण किया कि मैं अपने ही नाम वाली कन्या से विवाह करूंगा। पूरी पृथ्वी पर ऐसी कन्या नहीं मिली। जंगल में रोते घूम रहे थे।

उनके रुदन को सुनकर नागों के राजा वासुकि अपनी बहन को लाकर बोले। हे ब्रह्मन्! यह धर्म परायणा, सर्वगुण सम्पन्न है। ऋषि के नाम पूछने पर कन्या का नाम 'जरत्कारु' बताया। उस कन्या से इनका विवाह हो गया और वे नाग लोक में चले गये। वहां उनकी सेवा होने लगी। ऋषि ने कहा, "जब तक मेरी आज्ञा मानेगी। तब तक इसके साथ रहूंगा। इच्छा के विरुद्ध काम करने पर इसे त्याग दूंगा।" कालान्तर में वह गर्भवती हुई। एक दिन जरत्कारु पत्नी की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। ऋषि ने जीवन पर्यन्त समय पर त्रिकाल सन्ध्या की थी। उस दिन सूर्यास्त होने वाला था। ऋषि नहीं जगे। पत्नी ने सोचा–समय पर सन्ध्या न करने से इनका नियम भंग होगा। यदि जगाती हूं, तो यह मुझे त्याग देंगे। पति देव मुझे भले ही त्याग दें, परन्तु स्वधर्म की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। ऐसा सोचकर उसने ऋषि को जगाया। ऋषि बोले हे देवि! तूने मुझे जगाकर मेरा अपमान किया। अतः मैं तुम्हें त्याग दूंगा। पत्नी ने कहा, "आप के नित्य कर्म की रक्षा के लिए मैंने धृष्टता की। क्षमा करें।" उन्होंने कहा, "मैंने जीवन पर्यन्त समय पर अर्घ्य दिया है। मेरा अर्घ्य लिये बिना सूर्यदेव अस्त नहीं हो सकते।" उस पतिव्रता ने अपना त्याग स्वीकार किया, किन्तु पति को धर्म से गिरने नहीं दिया। जब वे जाने लगे, तब नाग कन्या बोली, विवाह का उद्देश्य तो पूरा ही नहीं हुआ। ऋषि ने कहा, 'अस्ति, गर्भे बालकमस्ति'। ऐसा कहकर चले गये। मुनि ने अस्ति कहा था, इसलिए बालक का नाम 'आस्तीक' रखा गया।

आस्तीक

आस्तीक ऋषि बड़े प्रभावशाली, शान्त तथा दो दलों में शान्ति स्थापित करके मैत्री करा देते थे। अपने पिता परीक्षित की मृत्यु होने पर जनमेजय ने दुखी होकर सर्पसत्र किया था। लाखों सर्प हवन कुण्ड में गिरकर भस्म हो गये थे। यहां तक कि तक्षक भी जो प्राण बचाने के लिए इन्द्र के सिंहासन से लिपटा था। सिंहासन सहित जब गिरने

लगा, तब इन्होंने समझौता कराया था। सर्पों से यह प्रतिज्ञा करवाई थी कि मेरा नाम लेने वाले को सांप न काटे, बल्कि मेरा नाम सुनकर सांप भाग जाए।

''सर्पासर्प भद्रन्ते दूरं गच्छ महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीक वचनं स्मर॥''

इस मंत्र के पढ़ने से यदि सांप ने काट लिया है तो विष नहीं चढ़ता। आस्तीक ऋषि कर्मकाण्डी, तपस्वी तथा पूर्ण ज्ञानी थे। स्वरूप चिन्तन करते हुए हजारों वर्ष की समाधि में योग निद्रा में शयन करते थे। इस निद्रा में शयन करने वाले ऋषियों में इनका भी नाम आता है।

''अगस्ति माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पंचैते सुख शायिनः॥''

॥ इति जरत्कारु, आस्तीक चरितम्॥

२६०. महर्षि मैत्रेय

महर्षि मैत्रेय पुराण वक्ता ऋषि हैं। मित्र ऋषि के पुत्र होने के कारण इनका नाम 'मैत्रेय' पड़ा। आप पराशर जी के शिष्य तथा व्यास जी के गुरु भ्राता या सखा हैं। पराशर जी ने इनको विष्णु पुराण सुनाया है। यह पूर्ण ज्ञानी और शास्त्र के मर्मज्ञ थे। दुर्योधन से अपमानित होकर तीर्थ यात्रा के निमित्त निकले हुए विदुर जी ने हरिद्वार में इनका दर्शन किया था। इन्होंने विदुर जी के पुराण सम्बन्धी प्रश्न करने पर श्रीमद्भागवत पुराण का तीसरा तथा चौथा स्कन्ध सुनाया था। इनके वचनामृत सुनने से विदुर को पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई।

भगवान् श्री कृष्ण जब परमधाम को जाने लगे, तब उद्धव जी खोजते हुए भगवान् के पास पहुंचे। वे एक पीपल वृक्ष के नीचे प्रभास क्षेत्र में सरस्वती तट पर विराजमान थे। उद्धव जी ने भगवान् के दर्शन किये। उसी सयम महामुनि मैत्रेय जी भी पहुंचे। भगवान् ने उन्हें ज्ञानोपदेश किया। उस समय उद्धव जी के साथ मैत्रेय जी भी उपस्थित थे। महर्षि भगवल्लीला के परम रसिक हैं। व्यास आदि चिरंजीवियों के समान मैत्रेय जी भी चिरंजीवी हैं।

सम्भवतः महर्षि याज्ञवल्क्य जी की दूसरी पत्नी 'मैत्रेयी' इन्हीं की पुत्री थी।

२६१. महर्षि शौनक

नैमिषारण्य वासी ८८,००० ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी ऋषियों में वे प्रधान कुल पति थे। इनका जन्म भृगुवंश में हुआ था तथा यह शुनक के पुत्र थे। अतः इन्हें भार्गव तथा शौनक कहते हैं। महाभारत सहित समस्त पुराणों को इन्होंने सूत जी से सुना था। इन्होंने कलियुग आया देखकर १००० वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ किया। इसमें यह सब पुराण इतिहास सुने। पुराण किस विधि नियम संयम का पालन करते हुए सुनना चाहिए, इसकी शिक्षा शौनक जी से मिलती है।

२६२. उत्तंक

महर्षि आयोदधौम्य के उपमन्यु वेद तथा आरुणि तीन शिष्यों का उल्लेख पीछे हो चुका है। वेद ऋषि विद्याध्ययन के अनन्तर गृहस्थ हुये। इनके तीन शिष्य हुए। इनमें एक उत्तंक, राजा जनमेजय तथा पौष्य थे। गुरु की अनुपस्थिति में घर का काम काज उत्तंक देखते थे। एक बार वेद मुनि ने बाहर जाने से पहले शिष्य से कहा, बेटा मैं बाहर जा रहा हूं। कोई घर में आवश्यकता हो, तो पूरी करना। वेद के जाने के बाद शिष्य की परीक्षा के लिए गुरु पत्नी ने सहेलियों से कहलवाया, मैं ऋतु स्नान से निवृत्त हो चुकी हूं। गुरु जी तुम को अपनी अनुपस्थिति में सब काम सौंप गये हैं। अतः ऐसा काम करो, जिससे मेरा ऋतु काल व्यर्थ न जाए। उत्तंक ने कहा, गुरी जी अनुचित कार्य को नहीं कह गये। ऐसा मैं नहीं करूंगा। कालान्तर में गुरु जी लौटे, इनके सदाचार को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। सम्पूर्ण वेद शास्त्रों के ज्ञान का आशीर्वाद दिया।

वेदाध्ययन की समाप्ति पर गुरु जी से गुरु दक्षिणा के लिए प्रार्थना की। उन्होंने कहा, तुमने सभी प्रकार से मेरी सेवा की है। मुझे कुछ नहीं चाहिए। विशेष आग्रह करने पर उन्होंने पत्नी के पास भेजा। गुरु पत्नी से पूछने पर उसने कहा, "राजा पौष्य की रानी के कुण्डल मुझे चाहिए। चार दिन के भीतर लौट आना। उसी को पहन कर मैं पुण्यक व्रत करूंगी।" वे राजधानी में गये। मार्ग में धर्म रूपी बैल पर चढ़े हुए इन्द्र मिले। इन्द्र ने कहा, उत्तंक तुम बैल का गोबर खा लो। तुम्हारे गुरु ने भी खाया था। उनकी आज्ञा

प्राप्त कर ब्रह्मचारी ने गोबर, मूत्र दोनों सेवन किये। शीघ्रता से आचमन करके राज दरबार में पहुंचे। राजा के स्वागत सत्कार को स्वीकार किया तथा आने का कारण पूछा। ब्रह्मचारी ने गुरु दक्षिणा में रानी के कुण्डल मांगे। राजा ने रनिवास में जाकर लेने की प्रार्थना की। ब्रह्मचारी रनिवास में पहुंचे। वहां रानी नहीं दिखाई दी। लौटकर राजा से कहा, "आप मेरी हंसी करते हो, रानी तो वहां नहीं है।" राजा ने कहा, "ब्रह्मन्! रानी अन्दर ही है। आप जूठे मुंह गये होंगे। सती स्त्रियां उच्छिष्ट तथा दुष्टको नहीं दीखती।" उत्तंक को अपनी गलती का आभास हुआ। वे हाथ पैर धोकर, आचमन, प्राणायाम करके गये। उन्हें रानी का दर्शन हुआ। रानी ने सत्कार के अनन्तर आने का कारण पूछा, उत्तंक ने गुरु पत्नी के लिए उनके कुण्डलों की याचना की।

इस कथा से शिक्षा मिलती है। जब द्वापर के परम वेदज्ञ शुद्ध ब्रह्मचारी को पतिव्रता क्षत्राणी का दर्शन नहीं होता, तो भगवान् का दर्शन जूठे रहकर, एक दूसरे का जूठा खाकर कैसे होगा। रानी ने सत्पात्र ब्रह्मचारी समझकर कुण्डल देते हुए कहा, "बड़ी सावधानी से इन्हें ले जाना। तक्षक इन कुण्डलों की खोज में घूमता है।" ब्रह्मचारी राजा रानी को आशीर्वाद देकर मार्ग में एक नदी तट पर नित्यकर्म कर रहे थे। इतने में तक्षक मनुष्य के रूप में कुण्डल उठाकर भागा। उत्तंक उसके पीछे गये। वह सर्प के रूप में पाताल में चला गया। उत्तंक इन्द्र की सहायता से पाताल पहुंचे तथा नागों को जीतकर कुंडल ले लिये। वे व्रत से पूर्व ही गुरु पत्नी के पास पहुंचे। गुरु पत्नी प्रसन्न हुई। उन्होंने कहा, "यदि तुम विलम्ब से आते,तो मैं शाप दे देती। मेरे आशीर्वाद से तुम्हें समस्त सिद्धियां प्राप्त होंगी।"

ब्रह्मचारी कुण्डल देकर गुरु के पास गये। सारा समाचार सुनाया। गुरु जी ने कहा, "इन्द्र मेरे मित्र हैं, बैल का गोबर अमृत था, उसी के प्रभाव से तुम पाताल में जा सके।" ब्रह्मचारी ने प्रणाम करके गुरु तथा गुरु पत्नी का आशीर्वाद प्राप्त किया और घर आये। महर्षि उत्तंक पराक्रमी, तपस्वी तथा ज्ञानी थे। भगवान् श्री कृष्ण ने महाभारत युद्ध के पश्चात् द्वारका लौटते समय इनको विराट स्वरूप दिखाया था। इति उत्तंक चरितम्।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का अठारहवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ उन्नीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

२६३. महर्षि अणी माण्डव्य

प्राचीन काल में माण्डव्य नाम के ऋषि परम शान्त, तपस्वी, तेजस्वी तथा तितिक्षु थे। वे आश्रम में एक वृक्ष के नीचे ऊपर हाथ करके तप करते थे। उन्हें शरीर का भान नहीं होता था। एक बार कुछ चोरों ने राजमहल में चोरी की। माल लेकर भाग खड़े हुए। सिपाही पीछे लगे। वे वन में चले गये। चोरी का माल इनके आश्रम में डालकर जंगलों में छिप गये। कर्मचारियों ने इनके आश्रम में माल पड़ा हुआ देखा। ऋषि से पूछा, हे ब्रह्मन्! यहां चोर तो नहीं आये। हमने देखा था अभी कहीं छिप गये हैं। ऋषि मौन थे, कोई उत्तर नहीं दिया। कर्मचारियों ने आश्रम में चोरों तथा माल को देखा। चोरों को बांधकर धन लेकर महर्षि के पास आये। सिपाहियों ने कहा, ''हम समझ गये तुम चोरों के सरदार हो। ऋषि वेश में तपस्या का ढोंग करते हो।'' ऋषि को बांध कर राजा के पास ले गये। राजा ने ऋषि सहित चोरों को शूली की आज्ञा दी। चोरों की मृत्यु हो गई, परन्तु माण्डव्य ऋषि नहीं मरे। उसी पर तप करने लगे। उनके जीवित होने का वृत्तान्त राजा से बताया। राजा भागते हुए आये। ऋषि से क्षमा याचना की। मुनि ने प्रसन्न होकर क्षमा कर दिया। राजा ने ऋषि को नीचे उतारा। शूली को शरीर से निकालने पर भी नहीं निकली। राजा भयभीत हुए। उन्होंने शूली के फाल को कटवा दिया किन्तु शूली की नोक उनके शरीर में घुसी रही। इसलिए उनका नाम 'अणि माण्डव्य' हुआ। अणि के रहते उन्होंने घोर तप किया। तप के प्रभाव से उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया। वहां से वे यमराज के पास गये। यमराज ने इनका सत्कार किया। ऋषि ने धर्मराज से पूछा, ''हे धर्मराज! किस पाप के फल से मुझे इतना शरीर कष्ट हुआ। मैं उस पाप को जानना चाहता हूं।'' यमराज ने कहा, ''हे ब्रह्मन्! आपने बाल्यावस्था में एक कीड़े को सुई की नोक से छेद लिया था। सुई चुभाने से जितना कष्ट आपको हुआ, उतना ही उसे भी हुआ होगा। जैसे थोड़ा पुण्य बढ़ता है, वैसे ही पाप भी बढ़ता है। आपने कीड़े को सुई से बींधा था। इसलिए आपको भी वैसा ही कष्ट मिला।'' ऋषि ने पूछा, ''मैंने कब पाप किया था।'' यमराज ने कहा, ''उस समय आप बहुत छोटे थे।'' ऋषि ने कहा, ''उस समय

में पुण्य पाप का ज्ञान नहीं होता है। उस पाप का आपने घोर दण्ड दिया। अत: मैं शाप देता हूं। आप पृथ्वी पर सौ वर्ष तक शूद्र योनि में जन्म लेंगे।'' यमराज ने सहर्ष स्वीकार किया। वही विदुर के रूप में अवतीर्ण हुए। इसे सिद्ध होता है कि जीव को कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। **अणिमाण्डव्य चरित्र पूर्ण।**

द्वापर के इन ऋषियों के अतिरिक्त (१) सुदामा, (२) गोकर्ण, (३) शाण्डिल्य, (४) मौद्गल्य, (५) तृणबिन्दु, (६) कच, (७) गालव, (८) विभाण्डक, (९) शमीक, (१०) श्रृंगी, (११) कृष्णानुभौतिक, (१२) धौम्न, (१३) भास्करी, (१४) पूर्ण कृष्ण, (१५) औडुलोमि, (१६) आत्र्स्न कृष्ण इत्यादि बहुत से ऋषि हो चुके हैं। जिनकी पुरणों तथा इतिहास ग्रन्थों में कथाएं आई हैं। वहीं देखें। २६४ से २७९ तक।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ द्वापर युग खण्ड समाप्त ॥



परिशिष्ट

प्रथम अध्याय

महर्षि ऐत्रेय (महिदास)

(महर्षि महिदास जी का जीवन चरित्र सायाणाचार्य जी के भाष्य '**ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य भूमिका में**' श्रीनाथद्वारा के पुस्तकालय में उपलब्ध '**वंशब्राह्मण**' की पुस्तक में लिङ्ग पुराण तथा स्कन्द पुराण के महेश्वर खण्ड में वर्णित है।)

भाष्यमूमिका में आचार्य लिखते हैं कि पर्वत महर्षि की अनेकों पत्नियों में से 'इतरा' नाम की एक पत्नी थी। इनके पुत्र का नाम 'ऐत्रेय' था। इनकी कुल देवी 'पृथ्वी' थी। अतः इनका दूसरा नाम 'महिदास' भी था, परन्तु इनके पिता का दूसरी पत्नियों के पुत्रों से अधिक स्नेह था, इनसे नहीं।

एक बार किसी यज्ञ सभा में ऋषि के अनेक पत्नियों के पुत्र महिदास सहित उपस्थित थे। वे खेलते हुए ध्रुव के समान 'ऋषि' की गोद में बैठना चाहते थे, परन्तु ऋषि ने महिदास का तिरस्कार करके अन्य पत्नियों के पुत्रों को गोद में बैठाया। बालक महिदास रोते हुए अपनी मां 'इतरा' के पास गये। उनकी माता ने अपने कुलदेवी 'पृथ्वी' का स्मरण किया। पृथ्वी माता दिव्य रूप धारण कर यज्ञ सभा में ही सिंहासन सहित प्रकट हुई; उन्होंने 'महीदास' को दिव्य सिंहासन पर बैठाया। अन्य भाइयों की अपेक्षा उन्हें अनेक विद्याओं की प्राप्ति हो, ऐसा आशीर्वाद देकर 'महादेवी' अन्तर्धान हो गयी। उनकी कृपा से 'ऐतरेय-महिदास' के मन में चालीस अध्याय युक्त **एतरेयब्राह्मण** का प्रादुर्भाव हुआ।

'लिङ्गपुराण' के उत्तर भाग के दो सौ अठ्ठावनवे अध्याय में कथा आती है कि महर्षि महाबुद्धिमान् ऋषि थे। उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। आठ वर्ष की आयु में ऋषि ने उनका उपनयन संस्कार किया। गुरुजी ने उस बालक को गायत्री-सन्ध्या तथा वेद पढ़ाना आरम्भ किया, परन्तु वह समर्थन हो सका। जिह्वादोष के कारण शुद्ध उच्चारण

नहीं हो पाता था। पिता ने दु:खी होकर दूसरी स्त्री से विवाह कर पुत्र उत्पन्न किये तथा उन सबको वेद विद्या सम्पन्न बना दिया।

'ऐतरेय' की माता अत्यन्त दु:ख एवं क्षोभ से मूर्छित होकर रुदन करने लगी। उसने कहा–'हे पुत्र! तुम्हारी विमाता के पुत्र विद्वान् होकर लोक में पूजनीय हो रहे हैं, तुम मुझ भाग्यहीन से उत्पन्न होकर निरक्षर हो, ऐसे जीवन से तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है।' ऐसा कहकर वह यज्ञशाला से चली गयी। उन्होंने अत्यन्त करुण भाव से 'पृथ्वी देवी' का स्मरण-आवाह्न किया और फिर उनकी कृपा से वाणी (सरस्वती) प्रकट हुई और बालक के द्वारा वासुदेव शब्दोच्चारण एवं कीर्तन होने लगा और वह परम विद्वान् हो गये। उसने ब्राह्मणों को प्रणाम कर यज्ञ कार्य सम्पन्न किया। उस बालक (ऐतरेयमहिदास) के मुख से अङ्गों सहित वेदों की ऋचाओं को सुनकर ब्राह्मण परम प्रसन्न हुए। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, द्विजोत्तम लोग पुष्पों की वर्षा करने लगे। 'ऐतरेय' ने माता का पूजन कर विष्णुलोक प्राप्त किया।

'वंशब्राह्मण' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि महर्षि महिदास कण्व वंश में उत्पन्न हुए और ये पर्वत ऋषि के पुत्र थे। उनके 'रात्रि' तथा 'इतरा' नाम की दो पत्नियां थीं। इनमें 'इतरा' प्रथम पत्नी थी। बालक के शुद्ध उच्चारण न कर पाने के कारण उन्होंने दूसरा विवाह किया, जिससे विशुद्ध वेदमन्त्रों की रक्षा हो सके।

'स्कन्दपुराण' में कथा आती है कि यह बाल्यावस्था से ही जड़ थे। इस ग्रन्थ में उनको शुद्ध ब्राह्मण बालक ही कहा है, बाद में द्वादशाक्षर मन्त्र से इनको बुद्धि प्राप्त हुई। इस ग्रन्थ में उनकी विमाता का नाम 'पिङ्गा' आया है। उससे इनके वेद-वेदाङ्ग-विद् कर्मकाण्डी चार भाई उत्पन्न हुए थे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, भगवान् विष्णु ने उन्हें दर्शन दिये थे। ये 'जातिस्मर' ब्राह्मण थे। अर्थात् इनको पूर्व जन्म का ज्ञान था। इन्होंने जन्म लेते ही प्रसन्न होकर अपनी माता से कहा था कि 'मैं पूर्वजन्म में शूद्र था। जन्म-मरण से छूटने के लिये उस जन्म में कृपालु गुरुजी से विष्णु भगवान् का द्वादशाक्षर मन्त्र प्राप्त किया। इसी के प्रभाव से मैं आपका पुत्र हुआ हूँ।'

शंका–क्या 'ऐतरेय-महिदास' शूद्र थे?

कुछ विद्वान् उनका ऐतरेय तथा महिदास नाम देखकर इनको शूद्र बताते हैं। उनका कहना है कि इनकी माता शूद्रा थी। अतः 'ऐतरेय' शूद्र थे, क्योंकि उनके 'महिदास' नाम के अन्त में 'दास' शब्द आता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण के नाम के अन्त में 'शर्मा', क्षत्रिय के 'वर्मा' वैश्य के 'गुप्त' तथा शूद्र के नाम के अन्त में 'दास' लगाया जाता है। अतः इनका नाम दासान्त होने के कारण ये शूद्र सिद्ध होते हैं।

समाधान–वेद पुराणादि ग्रन्थों में इतरा नाम की इनकी माता कही गयी है। यह शब्द जाति वाचक न होकर व्यक्ति वाचक है। जैसे बाल्मीकी रामायण में 'शबरी' यह जाति नहीं थी, 'शबरी' उसका नाम था।

वैसे ही इनकी माता का नाम इतरा था। इनके माता–पिता शुद्ध ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुये थे। ऋषि की पत्नी ब्राह्मणी इतरा थीं। निरुक्तालोचन में कहा है कि–**'इतरा इति प्रसिद्धायाः कस्यश्चिपदि ऋषि रमणयाः।'** 'किसी ऋषि की इतरा नाम प्रसिद्ध पत्नी थी।' जैसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तीनों को कुन्ती पुत्र होने से उन्हें कौन्तेय कहते हैं। कुन्ती का पहला नाम पृथा था। अतः इनके पुत्रों को पार्थ भी कहते हैं। जैसे सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण को सौमित्रेय, सुभद्रा–पुत्र अभिमन्यु को सौभद्रेय, द्रौपदी के पांचों पुत्रों को द्रौपदेय कहा जाता है, वैसे ही 'इतरा' पुत्र होने के कारण इन्हें 'ऐतरेय' कहते हैं।

महिदास–कुछ विद्वान् उनका महिदास नाम दासान्त होने के कारण इनको शूद्र कहते हैं। विचार करने पर सिद्ध होता है कि किसी भी पुरुष का स्त्रीलिङ्ग से युक्त नाम होता है। महि उनकी कुल देवी थी। उनकी यह दासवत् सेवा करते थे। अतः उनका नाम महिदास था। यदि दास शब्द से ही जाति का निर्णय होता हो, तो कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, नंददास, रामदास, विष्णुदास–ये भी शूद्र हो जाते। इनका एक नाम महिदास भी था। यदि इस नाम में केवल महि शब्द रहने दें और दास जाति वाचक मान लिया जाए तो किसी भी पुरुष का स्त्रीलिङ्ग वाला नाम नहीं हो सकता। ऐसे ही किसी ब्राह्मण के नाम में विष्णु, शर्मा, शिववर्मा, चन्द्रवर्मा इत्यादि नाम होने मात्र से वह क्षत्रिय नहीं हो जायेगा। परन्तु यदि किसी के पूर्ण नाम के बाद शर्मा, वर्मा, गुप्त या दास शब्द आता है तो वे शब्द जाति वाचक शब्द हैं, जैसे विष्णुदास शर्मा, गंगादास वर्मा इत्यादि।

अतः उनका 'महि' मात्र नाम नहीं था। अतः पूर्णनाम महिदास था। ये ऐतरेय ब्राह्मण के मन्त्रद्रष्टा होने के कारण ऋषि थे।

कुछ लोग शंका करते हैं कि यदि ये ब्राह्मण थे तो उनके दोनों नामों के अन्त में ऐतरेय शर्मा या महिदास शर्मा होना चाहिये था। इनको विद्वान् कहा है। विद्वान् तो प्रत्येक शास्त्रवित् पुरुष को कहा जा सकता है।

समाधान–स्कन्दपुराण तथा लिङ्गपुराण में इन्हें द्विजोत्तम कहा है द्विजोत्तम कहने पर वे ब्राह्मण ही सिद्ध होते हैं शूद्र नहीं। यदि कहो कि शर्मा शब्द क्यों नहीं आया तो उत्तर है कि वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, नारदादि किसी भी ऋषि के नाम के अन्त में शर्मा शब्द नहीं आता। इसका कारण है कि सत्य, त्रेता, द्वापर आदि तीनों युगों के चारों वर्ण तथा चारों आश्रम अपने धर्म का पालन करते थे। कोई भी व्तक्ति अपने धर्म को छोड़कर दूसरे वर्ण धर्म का कर्म नहीं करता था। इसलिये शर्मा आदि लिखने की आवश्यकता नहीं थी। यह परम्परा कलियुग में भी बहुत वर्षों तक चलती रही, परन्तु कालान्तर में लोग अपने वर्ण धर्म को छोड़कर दूसरे कर्मों को करने लग गये। इसलिये नाम के अन्त में शर्मादि शब्द का प्रयोग करना पड़ा।

शंका–आपका यह वचन ठीक नहीं क्योंकि सन्ध्योपासना तथा किसी भी देव पूजन कर्मादि में संकल्प करते हुए अपने नाम के अन्त में शर्मा, वर्मा आदि शब्दों का प्रयोग अनादि काल से चला आ रहा है। अतः कलियुग में भी इसका प्रयोग आरम्भ हुआ, यह बात शास्त्र विरुद्ध है।

समाधान–प्राचीन ग्रन्थों में सध्ययोपासना तथा कर्मकाण्ड में संकल्प में ही शर्मा, वर्मा आदि प्रयुक्त होते थे। आमतौर पर आजकल के समान इनका प्रचलन नहीं था। अतः वशिष्ठादि के तुल्य महिदास के नाम के अन्त में शर्मा शब्द नहीं लगा है।

उपर्युक्त प्रमाणों से महिदास मन्त्रद्रष्टा, ब्रह्मर्षि महिदास ब्राह्मण ही सिद्ध होते हैं, शूद्र नहीं।

विस्तृत विवेचन हेतु पं. दीनानाथ शास्त्री सारस्वत द्वारा लिखित श्री सनातनधर्मालोक नामक ग्रन्थ के तृतीय पुष्प में पृष्ठ २१० से २४४ तक प्रस्तुत सामग्री देखें।

॥ परिशिष्ट का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ दूसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

महर्षि ऐलूष कवष

एतरेय ब्राह्मण में कथा आती है कि भृगु अङ्गिरा आदि ऋषियों ने सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ आरम्भ किया। इस यज्ञ में भाग लेने के लिये ऐलूष के पुत्र कवष भी पहुंचे, परन्तु ऋषियों ने उनके जुआरी समझकर उनसे कहा–'(दास्याः पुत्रः) कितवः अब्राह्मणः कथं नो मध्ये अदीक्षिष्ट इति)'–अर्थात् दासीपुत्र, जुआरी, अब्राह्मण, अदीक्षिष्ट–हम लोगों के बीच कैसे दीक्षित हो सकता है? यहां 'दासी, नीच, अब्राह्मण, वेदज्ञान से रहित निन्दनीय ब्राह्मण।' ऐसा कहकर उन्होंने यज्ञशाला से बाहर सरस्वती नदी से अत्यन्त दूर निर्जन स्थान पर छोड़ दिया जिससे वह सरस्वती का जल न पी सके और प्यासा ही मर जाये। वे प्यास से अत्यन्त व्याकुल थे और पूर्व जन्म की तपस्या तथा पुण्य कर्म के प्रभाव से ऋग्वेद दशमण्डल के तीसवें सूक्त (वरुण-सूक्त) का उन्हें ज्ञान था। उनके वरुणसूक्त के जप के प्रभाव से वरुण देवता ने उनपर कृपा की। वरुण जी की कृपा से सरस्वती का जल प्रवाह उनकी ओर बहने लगा। उन्होंने यथेष्ट जल पीकर अपनी प्यास शान्त की। देवताओं ने प्रसन्न होकर ऋषियों को कवष की शुद्धि का परिचय दिया। ऋषियों ने अपने उपास्य देवता के द्वारा कवष की प्रशंसा सुनकर पश्चाताप किया। ऋषि आपस में कहने लगे कि जिसकी उपास्य देव स्तुति करते हैं, वह अनादर के योग्य नहीं तथा निकालने के योग्य नहीं। अतः ऋषियों ने उन्हें बुलाकर यज्ञ में दीक्षित किया। –(ऐतरेयब्राह्मण–२, २, १९)

शंका–आजकल के सुधारवादी तथा वर्णाश्रम को न मानने वाले मन्त्र में आये हुये दास्यः पुत्रः, कितवः तथा अब्राह्मण शब्द को देखकर इनको शूद्र कहते हैं।

समाधान–श्री सायणाचार्य वेद भाष्यकार इन तीनों शब्दों को निन्दार्थक मानते हैं। ऐलूष कवष जन्म से ब्राह्मण होने पर भी जुआ खेलना वर्जित है, इस बात का उसे ज्ञान नहीं था। वेद ज्ञान से रहित होने से ऋषियों ने दास्यः पुत्रः अब्राह्मण-शब्द से अति कटु वचन कहे (गालियां दीं)। ऋषियों ने दास्यः पुत्रः जुआरीपन को दूर करने के लिये उसे

दण्ड देने तथा सुधार के लिये कटूक्तियां (गालियां) दीं जैसे कोई माता-पिता अपने पुत्र को जो अधिक खेलता हो, पढ़ाई नहीं करता, उसकी निन्दा करते हुए स्वयं माता-पिता अपने पुत्र को सूअर, गधा, बन्दर कहकर डांटते हुए गाली देते हैं, तो जैसे वह बालक ऐसा कहने पर गधा, सूअर नहीं हो जाता; वैसे ही ऋषियों के द्वारा उसे दासी पुत्र तथा अब्राह्मण कहने से वह शूद्र नहीं होता। 'दास्य पुत्रः' में अलुक् समास वाला शूद्र का पुत्र अर्थ नहीं है, किन्तु कवष जुआरी की निन्दार्थ गाली है। इसलिये इस पर भाष्यकार सायणाचार्य भाष्य में लिखते हैं-"**दास्यःपुत्रः इत्युक्ति-रधिक्षेपार्थः।**" दासीपुत्र वचन आक्षेपार्थ है। शूद्रापुत्र के अर्थ में नहीं है, इससे कवष शूद्र सिद्ध नहीं होते हैं।

'आक्षेपार्थक विवेचन'-व्याकरण शास्त्र में षष्ट आक्रोशे (६/३/२१) अर्थात् षष्ठी विभक्ति आक्रोश अर्थ में आई है। वे ब्राह्मण होने पर भी जुआ खेलते थे, इससे आक्रोशित होकर उन्हें दासी पुत्र कहा गया। दासीपुत्र केवल व्याकरण से ही सिद्ध नहीं होता, बल्कि साहित्य में भी गाली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाकवि कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलं' नाटक में द्वितीयांक में सेनापति के लिये कहा है कि-'गच्छ! भो दास्यःपुत्रः। ध्वंसितस्ते उत्साह वृत्तान्त।' इसी नाटक के तीसरे अंक में भी -'किमत्र उज्जैन्याम् कोऽपि चोरो नाऽस्ति, य एतद् दास्याः पुत्रं (स्वर्णभाण्डम्) नापहरति' इस वाक्य में स्वर्ण के पात्र की दासी पुत्र कहकर निन्दा की गयी है। यही शब्द शूद्रक प्रणीत 'मृच्छकटिक' नाटक आदि अनेक ग्रन्थों में आया है।

'अब्राह्मण शब्द पर विचार'-पीछे बताया जा चुका है कि कोई जन्म से ब्राह्मण होने पर भी गुण, कर्म तथा स्वभाव से विपरीत धर्मों को करने वाले को भी अब्राह्मण कह देते हैं। जैसे कोई माता-पिता पुत्र की निन्दा करते हुए उसे डांटते हुए भंगी या चमार कह देते हैं। जैसे शास्त्र में अन्य पशु-पक्षियों के अपेक्षा गाय तथा घोड़ों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है-'अपशवोवा अन्ये गवाश्वेभ्यः।' गौ तथा घोड़ों के अतिरिक्त अन्य सब अपशु हैं। जैसे गौ तथा घोड़ों को छोड़कर यहां पर अन्य पशु-अपशु नहीं हो जाते, किन्तु उसका तात्पर्य गौ तथा घोड़ों की प्रशंसा में है। वैसे ही 'अब्राह्मण' निन्दार्थक है।

सायणाचार्य जी ने भी अब्राह्मण का अर्थ 'वृषलकर्मा' शूद्र कहा है। संस्कृत में निषेधात्मक छह अर्थों में कहा गया है-

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः।

अर्थात् समानता, अभाव, सद्चित्र, अल्पनिंदा तथा विरोध इन छह अर्थों में 'नञ्' कहा जाता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं-

१. तद्सदृश अब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मणेतर स्वभाव वाले ब्राह्मण की निन्दा वाले अब्राह्मण, २. अभावः, अपापम्, ३. तद्भिन्न, घोड़े से अतिरिक्त अनश्व, ४. अल्प-अनुदराकन्या-बहुत पतली कन्या को अनुदरा कहा गया, ५. अप्राशस्तय-अपशवोवा-अन्ये गो अश्वेभ्यः। गो तथा घोड़ों के अतिरिक्त अन्य पशु प्रशंसनीय नहीं हैं। ६. विरुद्ध-अधर्म अर्थात् प्रशंसा रहित धर्म वाला 'कवष' जुआरी होने के कारण उन्हें अब्राह्मण कहा है।

जो ब्राह्मण का जन्म पाकर भी पशुओं के समान खड़े होकर पेशाब करता है। 'नञ्' (२/२/६) इस सूत्र के यहां भाष्य में गुणहीन ब्राह्मण का उदाहरण देते हुए पतञ्जलि ने लिखा है।

'अब्राह्मणोऽयं यस्तिष्ठन् मूत्रयति अब्रह्मणोऽयं यस्तिष्ठन् भक्षयति'-यह ब्राह्मण जो जन्म से ब्राह्मण होने पर भी धर्म से रहति होने पर अब्राह्मण है, इसकी व्याख्या करते हुए श्री कैयट लिखते हैं-'तपः श्रुतयोरभावाद् निन्दया अत्र अब्राह्मणः शब्द प्रयोगः। तत्र जाति भावे अवयवे समुदाय-रूपारोपाद् ब्रह्मण शब्द प्रयोगः।' अर्थात् वहां ब्राह्मण शब्द तपस्या तथा श्रोत्र के अभाव वाले ब्राह्मण में प्रयुक्त हुआ है, वहां पर जाति मात्र अङ्ग में समुदाय के आरोप से ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त हुआ है। अब्राह्मण के नञ् शब्द से ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त हुआ है। अब्राह्मण के नञ् शब्द से ब्राह्मण के स्वभाव की तपस्या तथा शास्त्र ज्ञान की निवृत्ति प्रकट होती है।

कुछ विद्वान् कल्पना करते हैं कि जब याज्ञिक ब्राह्मणों ने 'कवष' को अपमानित करके सरस्वती नदी के उस पार निर्जल एवं निर्जन स्थान पर छोड़ दिया। तब उसने

तपस्या करके ऋग्वेद का पूर्णज्ञान प्राप्त किया। परन्तु उसका यह वचन भी युक्ति संगत नहीं है क्योंकि उस स्थान पर कोई गुरुकुल नहीं था। चार-पांच मिनट के अन्दर कोई भी व्यक्ति वेद नहीं पढ़ सकता। उन पर सरस्वती देवी की कृपा हुई तथा उनको चालीस अध्याय वाला 'अपोनप्त्रीय सूक्त' का प्रत्यक्ष हुआ। इस सूत्र के मन्त्रद्रष्टा कवष ऋषि जन्म से ही ब्राह्मण सिद्ध होते हैं, शूद्र नहीं। देवी-देवताओं की कृपा से जुआ खेलना भी छूट गया। ऋग्वेद (१०/३४/१३) में ब्राह्मण के लिये 'अक्षैर्मादीव्य:' अर्थात् ब्राह्मण को पासा से नहीं खेलना चाहिए।

शास्त्रज्ञान से रहित कुछ लोग इनकी माता का नाम इलुष दासी बताते हुए इन्हें दासी पुत्र कहते हैं। उनका यह कथन असत्य है, क्योंकि स्त्री का नाम अकारान्त न होकर आकारान्त होता है। जैसे रमा, कृष्णा, सत्या आदि। वास्तव नें इनके पिता का नाम एलूष था। उनके पुत्र होने के कारण इन्हें ऐलूष-कवष कहते थे।

॥ परिशिष्ट का द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ तीसरा अध्याय प्रारम्भ ॥

मतङ्ग ऋषि:

संस्कृत साहित्य में रामायण, महाभारत तथा पुराणों में जिस प्रकार दो बाल्मीकि, दो श्रृङ्गी-ऋषियों का जीवन चरित्र आया है। उसी प्रकार दो मतङ्ग-ऋषियों की कथा आयी है। तात्पर्य यह है कि वाल्मीकीय रामायण के रचयिता महर्षि बाल्मीकि, जिनके आश्रम में बनवास काल में सीता जी रही थीं, जिन्होंने लव-कुश को उपनीत करके गायत्री-दीक्षा सहित चारों वेदों को उपवेदों, अङ्गों तथा उपाङ्गों सहित पढ़ाया था; वे वाल्मीकि वरुण देव के दशमपुत्र प्राचेतस-वाल्मीकि के नास से आद्यकवि हुए। वे जन्म से ब्राह्मण थे। उन्होंने गायत्री मंत्र का विस्तृत व्याख्यान करने के उद्‌देश्य से रामायण की चौबीस हज़ार श्लोकों में रचना करके लव-कुश को पढ़ाया। पाठक पीछे इनका विस्तृत जीवन चरित्र देखें।

जैमिनी ऋषि द्वारा रचित आश्वमेधीयपर्व में द्वापर युग के श्वपच बाल्मीक की

कथा आती है। वे गृहस्थाश्रम में महाराज युधिष्ठिर के राजभवन में झाड़-बुहार का कार्य करते थे। कालान्तर में वह महात्मा हो गये थे। पांचवें वर्ण अन्त्यजों के वे पूर्वज थे। हिन्दी-साहित्य में भी दोनों बाल्मीकियों की कथा सन्त नाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल' में तथा रीवां नरेश महाराज रधुराज सिंह द्वारा रचित 'भक्तमाल' में भी पायी जाती है।

संस्कृत साहित्य में शृंगी ऋषि भी दो हुए हैं। पहले शृंगी त्रेता में महर्षि विभाण्डक के पुत्र हुए, जिनके आगमन से महाराज रोमपाद के राज्य में बारह वर्ष का अकाल वर्षा होने से दूर हुआ। महाराज रोमपाद जी ने प्रसन्न होकर महाराज दशरथ की दत्तक पुत्री शान्ता का विवाह इनके साथ किया था। महाराज दशरथ ने भी गुरु वशिष्ठ की आज्ञा पाकर उनको अयोध्या बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। उन्हीं की कृपा से दशरथ जी को चार पुत्र हुए। आप त्रेता युग में हुए थे।

दूसरे शृंगी ऋषि द्वापर युग में शमीक ऋषि के पुत्र थे। जब ये पांच वर्ष की अवस्था में ही गुरुकुल से विद्या प्राप्त कर मित्रों के साथ घर लौट रहे थे, तब उनको सहपाठियों से पता चला, कि महाराज परीक्षित जी ने समाधि में बैठे हुए इनके पिता के गले में मृतक सर्प डालकर उनका अपमान किया है। वे अपने पिता के अपमान को सहन नहीं कर सके। उन्होंने कुपित होकर महाराज परीक्षित को शाप दिया कि 'जिसने मेरे पिता का यह अपमान किया है, उसकी आज के सातवें दिन सर्प के काटने से मृत्यु हो जाये।'

जैसे सर्वसाधारण लोगों में दो वाल्मीकि तथा दो शृंगी होने का ज्ञान नहीं है, वैसे ही त्रेतायुगीय शबरी के गुरु मतङ्ग एवं द्वापर युगीय महाभारत के मतङ्ग दो भिन्न व्यक्ति हैं, इसके विषय में भी पता नहीं है। अनुशासनपर्व में युधिष्ठिर जी के द्वारा भीष्मपितामह के प्रति पूछे गये मतङ्ग त्रेतोयुगीनमतङ्ग जी से भिन्न थे। त्रेता के मतङ्ग जन्म से ब्राह्मण थे तथा द्वापर के मतङ्ग पंचम वर्ण में उत्पन्न हुए थे। दोनों का संक्षिप्त चरित्र प्रस्तुत है।

प्रथम मतङ्ग ऋषिः-आप महातपस्वी, योगी, त्यागी, वीतराग एवं सिद्ध महात्मा थे। हज़ारों वर्षों तक समाधि में रहते थे। इनकी ख्याति सर्वत्र व्याप्त थी। इनकी संकल्पशक्ति के प्रभाव से शबरी नाम की ब्राह्मणी इनकी शिष्या थी। इन्होंने जीवन में ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी दूसरे वर्ण को मंत्र दीक्षा न देने का संकल्प लिया था। अतः यह जन्म से ही ब्राह्मण सिद्ध होते हैं। अज्ञानतावश कुछ लोगों का कथन है कि यह

मतङ्ग (हाथी) मारकर खाते थे। इसलिये इनका नाम 'मतङ्ग' हुआ, परन्तु यह नितान्त असत्य है। यह बात त्याज्य है। आप परम अहिंसा व्रत का पालन करते थे। इनके अहिंसा व्रत के प्रभाव के कारण आश्रम के चारों ओर विरोधी स्वभाव वाले जीव-जन्तु भी परस्पर विरोध का परित्याग करके सद्भाव से रहते थे। इनका विशेष जीवन चरित्र बाल्मीकीयरामायण के अरण्य काण्ड के ७३-७४वें सर्ग में वर्णित है। भगवान् श्रीराम का लक्ष्मण सहित कन्दमूल फल से स्वागत करने के अनन्तर शबरी वन में जाकर गुरु जी का आश्रम उन्हें दिखाते हुए, मतङ्ग ऋषि का चरित्र सुनाते हुए कहती है कि-'हे राम! जिस समय आप सीता लक्ष्मण सहित चित्रकूट में पधारे थे, उस समय मैं अपने गुरु महाराज की सेवा करती थी। वे अति वृद्ध थे। योग समाधि द्वारा अपने शरीर का त्याग कर जाने की इच्छा उन्होंने की। तब मैंने भी शरीर का त्याग कर जाने की इच्छा प्रकट की।' इस पर गुरु जी ने मुझे मना करते हुए कहा-'हे धर्मज्ञे! तुम इसी आश्रम में रहो, इसी पवित्र आश्रम में पूर्ण परमब्रह्म, श्री राम के रूप में, लक्ष्मण सहित पधारेंगे। तुम दोनों का आतिथ्य सत्कारपूर्वक दर्शन करते हुए अपने अविनाशी रूप को प्राप्त होगी।' हे पुरुष श्रेष्ठ! ऐसा कहकर गुरु जी ने शरीर त्याग दिया। उनके अनन्तर मैं आपकी प्रतीक्षा करते हुए आश्रम में ही रहने लगी। शबरी ने श्रीराम को उनका आश्रम दिखाते हुए कहा-'हे रघुनन्दन! इस स्थान पर स्नानादि करने के अनन्तर गुरुजी बैठकर सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र करने के उपरान्त अपने वृद्ध कांपते हाथों से स्वयं पुष्प तोड़कर तथा उनका सुन्दर हार बनाकर देवताओं को समर्पित किया करते थे। रे रघुराम! उनकी तपस्या के प्रभाव से जिस चबूतरे पर बैठकर वे पूजन करते थे, उस चबूतरे से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला अतुलित प्रकाश आज भी निकल रहा है। मेरे गुरुदेव के द्वारा चढ़ाये हुए पुष्प तेरह वर्ष व्यतीत हो जाने पर, आज भी ज्यों के त्यों हैं, वे मुरझाये नहीं हैं।' अब आप गुरु जी का दूसरा चमत्कार देखें। गुरु जी अत्यन्त वृद्ध होने के कारण जब सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा करने में असमर्थ हुए, तब उन्होंने यहीं पर बैठे ही बैठे सात समुद्रों तथा नदियों का आवाहन किया, तो उनके स्नान के लिये सातों समुद्र यहां आये हुए देखे गए। वे अपने वृद्ध हाथों से जिन पेड़ों की सिंचाई करते थे, उनके तप के प्रभाव से वह जल आज तक भी नहीं सूखा है। इतना कहने के पश्चात्

शबरी ने स्तुति करने के अनन्तर कहा–'मैं अब आपका दर्शन करते हुए इस शरीर को त्यागना चाहती हूँ।' भगवान् की आज्ञा से शबरी ने योगाग्नि से शरीर त्याग कर गुरुजी का ब्रह्मलोक प्राप्त किया।

बाल्मीकि रामायण में शबरी द्वारा कहे हुए मतङ्गऋषि का चरित्र निष्कलंक, आदर्श एवं तपोत्यागमय सिद्ध होता है।

द्वापर के मतङ्ग–महाभारत अनुशासनपर्व में धर्मराज युधिष्ठिर भीष्मपितामह से प्रश्न करते हैं कि–

'स्थाने मतङ्गे ब्राह्मण्यं नालभेद्। चाण्डालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मणमाप्तवान्॥'

'हे भारत श्रेष्ठ! चाण्डाल योनि में उत्पन्न हुये मतङ्ग ऋषि ने कैसे ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त किया?' इस प्रश्न को लेकर ही विद्वान् शंका करते हैं कि उन्होंने तपस्या करके चाण्डाल से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया, परन्तु कथा प्रसंग से यह बात सिद्ध नहीं होती।

धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा भीष्मपितामह से पूछे गये उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में भीष्मपितामह कहते हैं। मतङ्गऋषि ने श्वपच से ब्राह्मण होने के लिये इन्द्र की तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र ने वर मांगने को कहा। उसने चाण्डाल से ब्राह्मण होने का वर मांगा। उत्तर में इन्द्र ने कहा कि कई जन्मों की तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है। महाभारत के अनुशासन पर्व के २८वें अध्याय के श्लोक ६ से १२वें श्लोक तक कहा गया है कि अनेक जन्मों में पशु–पक्षी की योनि के पश्चात् चाण्डाल का जन्म होता है। १००० चाण्डाल का जन्म पाने के अनन्तर एक शूद्र, तीस जन्म शूद्र के बाद वैश्य, साठ जन्म वैश्य के बाद क्षत्रिय, साठ जन्म क्षत्रिय के बाद ब्राह्मण का जन्म होता है। अतः तुम इस जन्म में ब्राह्मण नहीं हो सकते। हरि का अनन्य भक्त चाण्डाल भी शरीर छोड़कर दूसरे जन्म में ब्राह्मण होता है। उसी जन्म में नहीं। जिसका मन भगवान् के अतिरिक्त शरीर, धन, स्त्री, पुत्रादि की चिन्ता न करके रात–दिन जो श्री हरि का चिन्तन करता है, उसे ही अनन्य भक्त कहते हैं।

''ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात, प्रार्थमानो न लप्स्यसे। वृणीष्व काममन्यं त्वं ब्राह्मण्यं हि सुपुलर्भम्॥

'चाण्डालयोनौ जातेन (ब्राह्मण्यं) नावाप्यवं वै कथञ्चन।'

(श्लोक२८/२६)

'अन्य कामं वृणीष्व त्वं मा वृथा ते ऽस्त्वयंश्रमः॥ तदङ्गस्तु ब्राह्मणत्वं ते विरुद्ध मिह हश्यते तङ्गस्तु संतिशनक योनीजयिमानः पुनः पुनः।

(श्लोक २९/४)

'पर्यायेतात। कस्मिंश्चिद् ब्राह्मणमिहविन्दीति तदुत्सृज्येहदुष्प्रापं–ब्राह्मण्यम कृतात्मभिः॥'

'अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हिते वरः।

एवमेतत् परंस्थानं ब्राह्मण्यं नाम भारतः॥' (श्लोक २९/११-१२)

'तच्च दुष्प्राप्यं वै महेन्द्र वचनं यथा। ब्राह्मण्यं तात। दुष्प्राप्यं वर्णैः क्षत्रादि भिस्त्रिभिः॥

(२९/२६-२७/५)

अर्थात्! मतङ्ग ऋषि के प्रार्थना करने पर इन्द्र ने कहा–'हे तात! तुम्हारे प्रार्थना करने पर भी ब्राह्मण शरीर की प्राप्ति की इच्छा पूर्ण नहीं होगी। अतः तुम सुदुर्लभ ब्राह्मणत्व को छोड़कर दूसरा कोई वर मांगो। चाण्डाल शरीर की योनि में जन्म लेकर तुम किसी भी प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं करोगे। अतः तुम ब्राह्मणत्व के वर के अतिरिक्त दूसरा वर मांगो, जिससे तुम्हारा श्रम, तपस्या वृथा न जाये। हे तात्! ब्राह्मणत्व का वर इस लोक के विरुद्ध है। जीव अनेक योनियों में बार बार जन्म लेने पर बड़ी कठिनाई से कोई एक को ब्राह्मण का जन्म प्राप्त होता है। अकृतात्म द्वारा पूर्व शरीर त्यागे बिना ब्राह्मण का जन्म अत्यन्त कठिन है। अतः तुम इस दुर्लभ वर को छोड़कर दूसरा वर मांगो।'

भीष्मपितामह–इन्द्र और मतङ्ग के संवाद का उपसंहार करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर से कहते है कि 'हे भारत! ब्राह्मण का परम स्थान अत्यन्त कठिनता से प्राप्त होता है।' इन्द्र के इस वचन से यह सिद्ध हुआ। 'क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि तीनों वर्णों के लिये ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है।'

इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि द्वापर युग के चाण्डाल मतङ्ग ऋषि ने इस जन्म में ब्राह्मणत्व की प्राप्ति नहीं की।

इस उपर्युक्त प्रकरण से यह सिद्ध नहीं होता कि जीव ब्राह्मण शरीर को पाकर दुरुपयोग करते हुए अपने वर्णाश्रम का कर्म त्याग करके मनमाना आचरण करते हुए मांस, मदिरा का सेवन करने लग जाये, वेश्यागमन करने लग जाये। ऐसा ब्राह्मण मरने के बाद कई कल्पों तथा मन्वन्तरों तक नरकों की यातनाएं भोगने के अनन्तर छियासी लाख योनियों में भटकता है। इसके विपरीत शूद्र अथवा अन्त्यज यदि मनुष्य शरीर पाकर स्वधर्म का पालन करते हुए भगवान् की आज्ञा को मानकर भजन करता है तो वह शरीर छोड़ने के बाद अपने इष्टदेव के लोक को प्राप्त करता है।

॥ परिशिष्ट का तृतीय अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ चौथा अध्याय प्रारम्भ ॥

मतङ्ग शिष्या शबरी

श्री राम भक्ता शबरी त्रेतायुगीयमतङ्ग ऋषि जी की विशेष कृपा पात्रा ब्राह्मणी थी। इनका नाम शबरी थी। शबरी नाम होने के कारण बहुत से लोग इनको भीलनी कहते हैं। शबरी शब्द भीलजाति वाचक भी है, परन्तु श्रीराम के समकालीन आदि कवि वाल्मीकि जी द्वारा रचित बाल्मीकीयरामायण से यह ब्राह्मणी सिद्ध होती है। शेष रामचरित्रप्रतिपादक ग्रन्थ इसी रामायण के उपजीवक हैं। उन ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध अंश माननीय नहीं हैं। रामचरित्र के लेखक भगवान् वेदव्यास जी, कालिदास, काकभुशुण्डि आदि अनेकों ऋषि श्रीराम को मर्यादापुरुषोत्तम मानते हैं। महाराज दशरथ, भरत तथा रामराज्य में मनुस्मृति के अनुसार सभी लोग चलते थे। भगवान् श्रीराम स्वयं भी उसके अनुसार चलते हुए उपदेश करते थे।

उनके राज्य में जो मर्यादा भंग करता था, उसे मृत्यु दण्ड दिया जाता था। चाहे वह सर्वपूज्य वेदज्ञ ब्राह्मण रावण हो, चाहे अवध्य ताड़कादि स्त्रियां। किसी मर्यादा को भंग करने के कारण अपने सेवाधर्म के विरुद्ध तपस्या में लगे हुए शम्बूक नामक शूद्र को मारकर ब्राह्मण बालक को जीवित किया। धर्म शास्त्र में तीन वर्णों की सेवा के अतिरिक्त शूद्र का तपस्या में अधिकार नहीं है। यदि शबरी भील जाति की होती, तो भगवान् उसे भी बिना मारे न छोड़ते। अत: शबरी भील जाति की सिद्ध नहीं होती।

जो राम शूद्र की तपस्या सहन नहीं कर सकते, वे शूद्रा शबरी की तपस्या कैसे सहन कर सकते थे। महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण में इनके लिये तपोधना, तापसी, धर्मचारिणी, धर्मनिपुणा, सिद्धा, धर्मसंस्थिता इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। यथा–

''तामुवाच ततोरामः श्रमणी धर्म संस्थिताम्। कच्चित्ते निर्जिताविघ्नाः कच्चितेवर्धते तपः। कच्चित्ते नियतः कोपः आहारश्च तपोधने॥ कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चिते मनसः सुखम्। कच्चित्ते गुरु शुश्रूषा सफला चारु भाषिणी॥ रामेण तापसी दृष्टा सा सिद्धा सिद्ध संमता। शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता॥

अर्थ–तब श्री राम जी ने अपने धर्म में स्थित तपस्विनी से पूछा कि क्या तुमने विघ्न बाधाओं को जीत लिया है। क्या तुम्हारी तपस्या की वृद्धि होती है। हे तपोधने! तुम्हें निश्चित समय पर भोजन मिलता है कि नहीं? क्या तुम नियमों का पालन करती हो? क्या तुम्हारा मन सुखी है? ऐ सुन्दर भाषण करने वाली! क्या आपकी गुरुसेवा सफल हुई कि नहीं? राम के द्वारा इस प्रकार पूछने पर प्रशंसा करते हुए वृद्धा शबरी ने कहा– 'हे राम! आपका दर्शन करने से मेरी तपस्या सफल हो गयी। मेरा जन्म तथा गुरुओं की सेवा सफल हुई है। निश्चय ही मैं ब्रह्मलोक प्राप्त करूंगी।

ऊपर दिये गये शबरी के विशेषणों से वह 'संन्यासिनी' ब्राह्मणी सिद्ध होती है। शबरी को ही श्रमणी (संन्यासिनी) कहा गया है और संन्यास का अधिकारी ब्राह्मण को ही कहा गया है।

यद्यपि शास्त्रों में पुरुष–ब्राह्मण का ही संन्यास में अधिकार बताया गया है। स्त्री, ब्राह्मण का संन्यास नहीं। यहां पर वेदों की कही हुई गार्गी, घोषा आदि ब्रह्म ब्रह्मवादिनियों के समान शबरी अपवाद रूप में है। स्त्री को उपनयन का विधान नहीं। संन्यास में तो यज्ञोपवीत एवं शिखा का परित्याग होता है। उपनयनादि संस्कार स्त्री के न होने के कारण उसका संन्यास नहीं होता। हज़ारों लाखों में से किसी एक आदि स्त्री यदि ऐसी हो, तो वह सामान्य नहीं होती।

शबरी यदि भील जाति की होती तो भी वह शूद्रा नहीं मानी जा सकती, किन्तु पांचवें वर्ण की मानी जाती है। अमरकोश में स्त्री, शूद्र, हूण, चाण्डाल के भेदों में शबर

जाति का नाम आता है। मनुस्मृति में लिखा है कि दिवाकीर्ति, रजस्वला, पतित, सूतकी की दृष्टि पड़ने से छूने पर स्नान करने से शुद्ध होती है। यदि शबरी भील जाति की होती तो मनुस्मृति का अनुसरण करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम शबरी से अपने पैर नहीं छुआते। रामायण में आया है कि–

'तौ दृष्ट्वा तु तदा शुद्धा समुत्थाय कृताञ्जलि॥'
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य धीमतः।
पाद्यमाचमनीयम् च सर्व प्रादाद् यथा विधिः॥

अर्थ–सिद्धा शबरी ने दोनों भाइयों को देखकर, उठकर, हाथ जोड़कर आचमन करके, बुद्धिमान् राम सहित लक्ष्मण जी के चरणों में प्रणाम किया। तब दोनों भाइयों ने शास्त्रीयविधि से दिये हुए चरण धोने के पाद्य जल, मुखशुद्धि के लिये उत्तम जल ग्रहण किया। यदि शबरी भील जाति की होती तो दोनों भाई न प्रणाम करवाते और न ही पाद्य-अर्घ स्वीकार करते। अतः शबरी ब्राह्मणी सिद्ध होती है।

शंका–भगवान् श्री राम ने गंगा तट पर स्थित निषादराज, जो चाण्डाल था, उसका र्स्पश क्यों किया? जब श्री राम निषाद को छू सकते हैं तो शबरी भी चरण स्पर्श कर सकती है। यह होने पर मनुस्मृति से उत्तर दिया जाता है कि शास्त्रों में अनुलोमज तथा प्रतिलोमज दो प्रकार के निषाद कहे गये हैं–इनमें प्रतिलोमज निषाद अस्पृश्य है और अनुलोमज निषाद स्पृश्य है। अर्थात् जिसका पात्र लिया जा सकता है वह स्पृश्य और जिसका पात्र नहीं लिया जा सकता वह अस्पृश्य है। मनुस्मृति में लिखा है कि–अनुमोमज निषाद शूद्र कन्या से उत्पन्न होने वाला जीव है और नौका जीवी है। अतः निषाद राज छूने योग्य था, श्रीराम ने उससे चरण स्पर्श करा लिये। दूसरा निषाद मृतक पशुओं को उठाने वाला होता है, जो अस्पृश्य होता है।

वस्तुतः रामायण में अयोध्या काण्ड में निषाद के सद्शूद्र होने पर भी उसकी कोई कन्द, मूल, फल आदि की भेंट स्वीकार नहीं की और मित्रता के नाते इतना ही कहा–

यत्त्विदं भवता किञ्चित् प्रीत्या समुपकल्पितम्।
सर्वम् तदनुजानामि नहि वर्तेत प्रतिग्रहे॥

ततश्चीरोत्तर सङ्ग सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्॥

अर्थ–'हे मित्र! जो आपने प्रीतिपूर्वक मुझे दिया है। तुम्हारे सब भावों को मैं जानता हूँ, परन्तु मैं वनवास काल में किसी की कोई भेंट स्वीकार नहीं करूँगा।' (कन्दमूल की तो बात दूर रही, भगवान् ने तो उनका गंगाजल भी स्वीकार नहीं किया और लक्ष्मण के हाथ से गंगाजल ग्रहण किया, (सायंकाल की सन्ध्या करने के उपरान्त राम ने लक्ष्मण के हाथ का गंगाजल पान किया।)

भगवान् श्रीराम मानव धर्म शास्त्र के (मनुस्मृति) परम समर्थक तथा रक्षक थे। जब उन्होंने शुद्धशूद्र से कोई वस्तु ग्रहण नहीं की, यदि शबरी भील जाति की होती, तो उसके फल तथा जल कैसे ग्रहण कर सकते थे। जैसे संस्कृत के मृच्छकटिक ग्रन्थ के प्रणेता का नाम शूद्रक था, उसकी जाति शूद्र नहीं थी।

उनके गुरु मतङ्ग का नाम था, जाति नहीं। मीमांसा दर्शन के भाष्यकार का नाम शबराचार्य था, शबर उनकी जाति नहीं थी। पञ्जाव में इनके वंशज ब्राह्मण छिब्र-ब्राह्मण कहे जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में श्लोक है–'श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्यथ चिरजीवनी।' इस श्लोक में शबरी नाम कहा गया है। बल्कि जाति नहीं।

अब प्रश्न होता है कि शबरी यदि ब्राह्मणी थी तो अध्यात्म रामायण में उन्हें 'हीन जाति समुद्भवः' अधम जाति अघ जन्मा–जाति हीन, हीन जन्मा आदि क्यों कहा?

इसका उत्तर है कि स्त्री जाति पुरुष जाति की अपेक्षा अधम होने के कारण उसे उपर्युक्त वचनों से हीन जाति समुद्भवा आदि कहा है, क्योंकि पुरुष की अपेक्षा स्त्री में बल कम होता है, इसलिये उसे अबला कहते हैं। भाव यह है कि पुरुष के शरीर में पिता के अंश हड्डी, मेद मज्जा की प्रधानता अधिक होती है, जो कि स्त्री के शरीर के त्वचा, रक्त तथा मांस की अपेक्षा बलवान् है। इसलिये तुलसीदास ने भी मानस रामायण में शबरी के मुख से 'अधमते अधम अधम अति नारी। ता मे मैं अति मन्द गँवारी।' शूद्र के समान स्त्रियों का यज्ञोपवीत नहीं होता; इसलिये उसे शूद्रा या शूद्र सदृशहीन जाति कहा है। गीता के नवम अध्याय में भगवान् ने भी स्त्री, वैश्य तथा शूद्र को पाप योनियां कहा है। इन्हीं कारणों से शबरी को अघजन्मा कहा है।

इसका प्रमाण कृष्णयजुर्वेद कै तैत्तिरीय संहिता के ६/५/८/२ में लिखा है। 'तस्मात् स्त्रियो निरिन्द्रिया अदाया दीरपि पापात् पुंसः उपस्तितरं वदन्ति॥' स्त्रियां पाप की अधिकता तथा इन्द्रियरहित होने का कारण पुरुष की अपेक्षा निम्न कही जाती हैं। इस मंत्र के भाष्य में श्री सायणाचार्य जी लिखते हैं–

''तस्माल्लोके स्त्रियः सामर्थ्यरहिता अपत्येषु दायभाजी न भवन्ति।
पापात् पतितादपि पुंसोपि उपस्तितरं–क्षीणतरं स्त्रीस्वरूपं वदन्ति॥''

क्योंकि संसार में स्त्रियां सामर्थ्य रहति हैं, इसलिये पुत्रों के समान पिता की सम्पत्ति में स्त्रियां सामर्थ्य रहित हैं। इसलिये पुत्रों के समान पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं होती और पतित होने से स्त्रियों का स्वरूप पुरुषों की अपेक्षा निर्बल हो जाता है। इसलिये शबरी ब्राह्मणी होने पर भी उनके लिये 'अघजन्मा' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया।

परन्तु भक्ति मार्ग की कई आधुनिक ग्रन्थों में शूद्रों में भक्ति भाव के प्रचार–प्रसार के लिये कई ब्राह्मणों को शूद्र बताया है। कुछ लोग तो वेदज्ञ अजामिल को भी शूद्र कहते हैं, परन्तु श्री मद्‌भागवत पुराण में अजामिल ब्राह्मण सिद्ध होते हैं।

लोक में कथा प्रसिद्ध है कि श्री राम ने शबरी के जूठे बेर खाये थे। इस प्रकार के हिन्दी के कई भजन में बनाये गये हैं, परन्तु किसी भी रामायण में या पुराण में यहां तक कि रामचरित मानस में भी शबरी के बेरों का नाम नहीं आता। बाल्मीकीय रामायण में भी शबरी भगवान् श्रीराम से कहती है कि–

मया तु सञ्चितंवन्यं विविधं पुरुषर्षभः।
तवार्थे पुरुषव्याग्र पम्पायाः तीर सम्भवम्॥

(३/७४/१७)

हे पुरुष श्रेष्ठ! हे पुरुषव्याघ्र राम! मैंने आपके लिये पम्पातीर पर उत्पन्न हुए फलों को एकत्रित किया है। उसमें जूठे का लेशमात्र भी नहीं है। अध्यात्मरामायण में भी जूठे की गन्ध तक नहीं मिलती। उसमें लिखा है–

संगृहीतानि दिव्यानि रामार्थ शबरी मुदा।
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तिः॥

शबरी ने प्रसन्न चित्त से एकत्रित किये अमृत के समान मीठे दिव्य फल भक्तिपूर्वक राम को दिये। इन दोनों रामायणों में कहीं भी जूठे फलों का लेश मात्र भी नहीं है, परन्तु पद्म पुराण में रामचरित में लिखा है कि–

फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च।
स्वयमासाद्य माधुर्यं परिभक्ष्य परीक्ष्य च॥
पश्चान्निवेदयामास राधवाभ्यां दृढ़व्रता।
फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थ स्तस्यै मुक्तिं परां ददौ॥

दृढ़व्रता शवरी ने सुन्दर पके हुए मधुर फलों तथा मूलों को स्वयं स्वाद लेकर मधुरता की परीक्षा की। पश्चात् राम-लक्ष्मण को निवेदित किये।

काकुत्स्थश्रीराम ने फलों का स्वाद लेकर उसे मुक्ति दी, परन्तु यहां विचार करने की आवश्यकता है कि शबरी ने एक एक फल को काटकर तथा चखकर श्रीराम को नहीं दिया, क्योंकि दांतों से कटा हुआ फल या चखा हुआ फल अति शीघ्र बिगड़ जाता है, उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। पर यहां जूठे फलों का अर्थ है कि भगवान् राम के आने से पूर्व अनेक पेड़ों के फलों को खाकर देखा था। एक फल के खाने से निश्चय किया कि इसके सभी फल मीठे हैं। उन मीठे फलों को श्रद्धा भक्ति सहित नित्यप्रति धोकर श्रीराम की प्रतीक्षा में रखती थी, क्योंकि गुरु जी ने भगवान् के आने का वर्ष, महीना या तिथि निश्चित नहीं की थी।

जैसे घर में किसी ने ब्राह्मण, सन्तों का या भगवान् का भोग बनाना होता, बहुत ही शुद्धता से भोज्य पदार्थ बनाया जाता है। घर में छोटे बच्चे जब रोते हुए भोजन मांगते हैं, तो माता रात का बचा भोजन बच्चों को देकर कहती है कि 'बेटा! तुम रसोई से बाहर भोजन करो, रसोई में भोजन करने पर रसोई जूठी हो जायेगी।' वैसे ही शबरी ने उन पेड़ों के फलों को पहले चखा था। इसलिये वे जूठे कहे गये हैं। अथवा पुराने समय में भयानक गर्मी में किसी गांव में यदि कोई आ जाता था और गृहस्थ उसकी ठण्डे जल से सेवा करना चाहता है, तो वह रस्सीडोर लेकर अपने पास के पांच छह कुओं का पानी निकालकर स्यवं पीकर उसकी शीतलता तथा मधुरता को ज्ञात करता था। जिस कुएं का जल अतिशीतल तथा मुधर होता था, उसकी से अतिथि का सत्कार करता और

अतिथि को देने से पूर्व उसे चखता था। उच्छिष्ट होने पर भी वह जल वास्तव में उच्छिष्ट नहीं होता। श्रीराम चरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है–

कन्दमूल फल सरस अति दिये राम कहं आन।

प्रेम सहित प्रभु खाइहों बारहिं बार बखान॥

दूसरा विचार–भगवान् श्रीराम भाइयों सहित त्रिकाल संन्ध्या करते थे। यह समस्त रामायणों से सिद्ध होता है। सन्ध्योपासना में एक मंत्र आता है–'यदुच्छिष्टं यदभोज्यं' अर्थात् मैंनो जो जान में या अनजान में किसी जूठन खायी हो अथवा अभोज्य वस्तुओं का सेवन किया हो, तो मेरा वह पाप दूर हो जाये। ऐसे मंत्रों के द्वारा प्रायश्चित करने या करवाने वाले भगवान् राम जानबूझकर या अनजान में किसी स्त्री या पुरुष का जूठा कैसे खा सकते थे। उनका तो अवतार ही शास्त्र की मर्यादा की रक्षा के लिये हुआ था।

यदि कोई कहे कि वेद में तो मन्त्र आया है कि–

'सहनाववतु सहनौ भुनक्तु।' कि यह परमात्मा हम दोनों (गुरु–शिष्य) की रक्षा करे। हम दोनों एक ही साथ भोजन करें। इस मंत्र में दोनों का एक–दूसरे का जूठा खाने का अर्थ नहीं है। धर्मशास्त्र अनुसार शिष्य गुरु जी जूठन खा सकता है। पत्नी, पति का जूठन खा सकती है, परन्तु शिष्य की जूठन लेने वाला गुरु तथा पत्नी की जूठन लेने वाला पति दोनों ही नरकगामी होते हैं।

परन्तु आजकल अनेक फैशनों में एक–दूसरे की जूठन खाने से परस्पर प्रेम बढ़ता है। यदि जूठन खाने से प्रेम की वृद्धि होती है, तो एक–दूसरे की जूठन कुत्ते भी खाते हैं। जब उनमें प्रेम नहीं हो सकता तो मानव में प्रेम कहां हो सकता है। शास्त्र विरुद्ध आचरण करने से प्रेम तथा सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, वह तो शास्त्र अनुसार चलने पर ही हो सकती है। इसी बात को भगवान् ने गीता में कहा है–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ १६/२३

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणंते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ १६/२४

'जो शास्त्र की विधि को छोड़कर इच्छानुसार कार्य करता है वह सफलता, सुख और परांगति को प्राप्त नहीं करता। अतः क्या करना चाहिये क्या नहीं करना चाहिए, इसमें शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र के विधान को जानकर तुम इस लोक में कर्म कर सकते हो।'

'सहनौभुनक्त' का अर्थ एक-दूसरे की जूठा खाना नहीं हो सकता, किन्तु एक साथ संसार के सुख-दुख भोगते हुए प्रेमपूर्वक रहना तथा दुःख-सुख में परस्पर सहायता करना।

मनुष्यों की तो बात ही क्या, सन् १९४७ में हमारे गांव में एक बकरी थी। वह ऐसी संस्कारी थी कि किसी दूसरी बकरी या पशु का जूठा चारा आदि खाना तो दूर रहा, वह किसी मनुष्य का जूठन भी नहीं खाती थी। हम लोगों के बचपन में शुद्ध मक्की या चने के दाने भुने हुये दिये जाते थे तो उन्हें खा जाती थी। यदि कोई बालक अपने जूठे जितने दाने उस बकरी को देते थे, तो वह उन सभी को छोड़ देती थी।

संस्कारी कुत्ता-कुतिया-पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित दण्डी स्वामी कमल नाभ आश्रम जी महाराज (मस्ताना बाबा) जी के कलकत्ता में कुठालिया नामक आश्रम में एक कुतिया कुत्ता रहते हैं। दोनों ऐसे योग भ्रष्ट जीव हैं कि प्रत्येक एकादशी का व्रत रखते हैं। उस समय उन्हें अन्न दिया जाता है तो वे उसे नहीं खाते हैं। बंगाल में मांस मछली का अधिक प्रचलन है, परन्तु वह कितने भी भूखे क्यों न हों, उसे कभी नहीं खाते अपितु जिस घर में मांस मछली पक रहा हो वहां से तुरन्त दूर भाग जाते हैं। दूर खड़े हो जाते हैं। ऐसे जीवों से आजकल के मांस आदि का भक्षण करने वाले तथा एक-दूसरे की जूठन खाने वाले (सुसभ्य) लोगों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जब इस घोर कलियुग में पशु आदि योनि में उत्पन्न हुए जीव भी एक-दूसरे की जूठन नहीं खाते, तो त्रेतायुग में अवतरित हुए साक्षात् (धर्म-विग्रह) मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के द्वारा शबरी के जूठे फल खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

आयुर्वैदिक-दृष्टि

ऊपर हमने धर्मशास्त्र की दृष्टि से जूठे फलों की समीक्षा की। अब आयुर्वेद, ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक तथा यूनानियों के उपचार से भी अछूत के रोगों के रोगियों को छूने से, उनके वस्त्रों से, बातचीत करने से, उनके पात्र लेने से, उनकी जूठन खाने से निरोगी व्यक्ति भी रोगी हो जाता है। अतः इस दृष्टि से भी जूठी वस्तु एक-दूसरे को नहीं खानी चाहिए, परन्तु कलिकाल में सब वेद तथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध आचरण हो रहा है। उसका वर्णन करते हुए रामायण में गोस्वामी तुलसी दास जी ने लिखा है-

'झूठे ही लेना झूठहि देना, झूठहि भोजन झूठ चबेना'-इत्यादि

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शबरी ब्राह्मणी थी। ब्राह्मणी होने पर भी उनकी जूठ राम-लक्ष्मण ने नहीं ली।

॥ चौथा अध्याय समपूर्ण ॥

॥ पांचवां अध्याय प्रारम्भ ॥

सत्यकाम जाबाल

जाबाल ऋषि की कथा प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्य-उपनिषद् तथा शतपथ ब्राह्मण-दस पांच व पांच-छह में आई है। यह महर्षि व्यग्रपाद के पौत्र उपमन्यु के पुत्र थे। इनका जन्म वशिष्ठ वंश में हुआ था। इनका बौधायन कल्प सूत्र था। इनकी माता का नाम जाबाला था, जो पति की आज्ञा प्राप्त करके रात दिन अतिथियों की सेवा करती रहती थी। अतः उन्हें परिचारिणी कहा जाने लगा था। वे सेवा में व्यस्त होने के कारण पति से उनका नाम व गोत्र भी नहीं पूंछ पायीं। अतिथियों की सेवा में इतना तल्लीन रहती, कि इन्हें भोजन करने का भी समय नहीं मिलता था। जाबाल के उपनयन से पूर्व ही इनके पति की मृत्यु हो गयी। पिता के अन्त्येष्ठि-क्रिया-कर्मों के अनन्तर ब्राह्मचारी गौतम के गुरुकुल में भेजे गये। गुरु जी ने उनसे उनका नाम व गोत्र पूछा। उस बालक ने अपना तथा माता का नाम तो बता दिया, परन्तु अपना गोत्र इत्यादि नहीं बता पाये। उस समय के ऋषि कुलों में पिता का नाम तथा गोत्र बतलाये बिना बालकों का उपनयन तथा वेदराम्भ नहीं होता था। वैखानस धर्मप्रश्न में कहा है कि-

'ब्रह्मर्षिवंश्याना वार्षेय गोत्र स्मृतिर्नान्येषाम् यस्मात् किं गोत्रो नु सौम्य! असि? इति सत्यकाम ब्राह्मणं वक्तुं गौतमैच्छायाः छान्दोग्यस्तुति।'

ब्रह्मऋषियों के ऋषि गोत्र पूछा जाता है। इसलिये गौतम ऋषि के पूछने पर सत्यकाम बताने में असमर्थ हुए। यह छान्दोग्य-उपनिषद का प्रशंसा पर्व कहा है। इस मंत्र के शाङ्करभाष्य की व्याखाय करते हुए आनन्दगिरी ने लिखा है-

'अतिथ्यभ्यागतादि-अधिकृत्य परिचर्याजातं ब हु चरन्तो भर्तृगृहे।
यतोऽहं स्थिता, तेन परिचरणाचित्ता तथा गोत्रादीन् नापृच्छम्॥
यौवने लज्जया प्रथम पति प्रति न प्रश्नः पुनश्चतस्य उपरत (मृत) त्याद् दुखबाहुल्याच्च॥'

अर्थात जब ब्रह्मचारी सत्यकाम गुरु जी से पूछने पर अपने पिता का नाम तथा गोत्रादि बता नहीं सके, तो गुरुजी ने कहा कि तुम अपनी माता से पूछकर आओ। गुरु आज्ञा प्राप्त कर सत्यकाम ने घर आकर माता को प्रणाम करके गोत्र आदि पूछा। माता ने उत्तर देते हुए बालक से कहा-'हे पुत्र! मैं युवावस्था में पति के घर में अतिथि अभ्यागतों की सेवा करती रही, क्योंकि मैं सेवा में निरत थी, इसलिये मैं उनसे गोत्रादि नहीं पूछ सकी। युवावस्था में लज्जा से पति से प्रश्न नहीं कर सकी। उनकी मृत्यु के बाद में महान् दुःख से युक्त होकर अन्य लोगों से नहीं पूछ सकी।'

माता का वचन सुनकर ब्रह्मचारी फिर गुरुजी के पास पहुंचे। उन्होंने तोते रटन्त के समान माता के शब्दों को दोहरा दिया।

गौतम जी ने बालक तथा माता की सरलता तथा सत्य निष्ठा से प्रसन्न होकर अनुमान लगाया कि ब्राह्मण के अतिरिक्त निश्चिल तथा सत्य वचन कौन बोल सकता है, अतः उन्होंने सत्यकाम का उपनयन करने के अनन्तर उसे वेदाध्ययन कराया।

इस कथा प्रसंग से सत्याकाम शुद्ध माता-पिता से उत्पन्न हुए लगते हैं, परन्तु वेदों में शूद्र स्त्री का अधिकार सिद्ध करने वालों को वे वेश्यापुत्र दीखते हैं और वे उन्हें वेश्यापुत्र कहते हैं। मूल में आये हुए परिचर्यादि शब्दों को देखकर उनको शूद्र तथा वेश्यापुत्र कहते हैं, जोकि प्रमाण रहित है। कोई भी वेश्या स्त्री अपने पुत्र को वेश्या हूं

ऐसा नहीं कहती है। सत्यकाम तथा उनकी माता ज्वाला दोनों ही शुद्ध कुल के सिद्ध होते हैं। यदि कोई अन्य जाति की स्त्री-पुरुष सत्य बोलने से ब्राह्मण हो जाता है तो महाराज हरिश्चन्द्र, तुलाधार वैश्य तथा धर्म व्याध ब्राह्मण हो जाते, परन्तु ऐसा कहीं भी नहीं लिखा। अतः जाति जन्म से सिद्ध है, कर्म से नहीं।

"जन्म-से-जाति"

प्रत्येक जड़-चेतन वस्तु की स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, देव-दानव, पेड़-पौधा, लता-औषधि की जन्म से जाति है, कर्म से नहीं। जाति शब्द जन्म का वाचक है, कर्म का नहीं। 'जायमानत्वात् इति जातिः।' संस्कृत में 'ज' शब्द उत्पत्ति के अर्थ में आया है। जैसे जेर से पैदा होने वाले जीव 'जरायुज'; अण्डे से उत्पन्न होने वाले 'अण्डज', पसीने से पैदा होने वाले जीव 'स्वेदज', धरती को फोड़कर निकलने वाले पेड़-पौधे 'उद्भिज'-इन चारों शब्दों के अन्त में 'ज' शब्द उत्पत्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, उत्पत्ति स्थूल शरीर को होती है। इसलिये व्यास जी ने 'पाताञ्जलि-योगदर्शन' के 'सति मूले तद् विपाको जात्यादि आयुर्भोगः'-इस सूत्र के व्याख्यान में जाति का अर्थ स्थूल शरीर किया है। यह शरीर पैदा होता है, इसलिये जाति जन्म से सिद्ध होती है, कर्म से नहीं। आजकल के नेता सरकार, जनता से जाति का कर्म ढोल तो पीटते हैं, परन्तु आरक्षण जन्म जाति वालों का होता है, कर्म से नहीं। अतः सभी लोग जन्म से ही जाति मानते हैं, कर्म से नहीं।

परन्तु कर्म से जाति मानने वाले लोगों ने एक नया श्लोक बनाया है और नया श्लोक बनाकर धर्म शास्त्रों में प्रक्षिप्त कर दिया है। वे कहते हैं-

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारद्विजउच्यते।
वेदपाठाद् भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

जन्म से सब शूद्र होते हैं, उपनयन संस्कार से द्विज कहलाते हैं, वेद पाठ से विप्र होता हैं। ब्रह्म को जानने वाला 'ब्राह्मण' है, परन्तु वास्तव में स्कन्दपुराण की सूत संहिता में श्लोक निम्नलिखित है-

जन्मना ब्राह्मणोज्ञेय: संस्काराद्विजउच्यते।
वेद पाठाद् भवेद्विप्र: त्रयविधं श्रोत्रिय मुच्यते॥

शुद्ध ब्राह्मण के द्वारा शुद्ध ब्राह्मणी से उत्पन्न जन्म से ब्राह्मण है। उस बालक का जब पांच या आठ या १६वें वर्ष की अवधि में उपनयन हो जाता है, तो वह 'द्विज' कहलाता है। अपने वेद संहिता अथवा २, ३ या चार वेदों का पाठ करने से वह 'विप्र' होता है। जिस ब्राह्मण में तीनों विशेषताएं पायी जाएं, उसे 'श्रोत्रिय ब्राह्मण' कहते हैं। इस प्रमाण से तथा पुरुषसूक्त के प्रमाण से जब शिष्य ने गुरु जी से पूछा-

मुखङ्किमस्कयासीत्किम्बाहू किमूरूपादाऽउच्च्येते?
ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद् बाहू राजन्य कृत:।
ऊरू तदस्य यद् वैश्य: पदभ्यां शूद्रोऽजायत॥

विराट पुरुष का मुख, भुजा, पेट तथा चरण कौन है? उत्तर में कहा है कि ब्राह्मण भगवान् का मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य पेट तथा शूद्र चरणों से उत्पन्न हुआ। यद्यपि प्रश्न-मन्त्र तथा उत्तर में विराट् पुरुष के मुख, बाहू, उरू तथा चरण पूछे गये। उत्तर में भी ब्राह्मण को मुख, क्षत्रिय को बाहू, वैश्य को उरू कहने के बाद अन्तिम पाद में 'पदभ्यां शूद्रोऽ जायत' से विराट के चरणों से शूद्र की उत्पत्ति कही है। इससे तीनों की उत्पत्ति भी भगवान् मुख, भुजा तथा पेट से होती है।

'सूतसंहिता' के बारहवें अध्याय के श्लोक ८, ९ में कहा गया है-

"ब्राह्मणा ब्राह्मणस्त्रीभि: सह जातास्तपोधना:।
तस्यहस्तात्सह स्त्रीभिर्जज्ञिरे पृथिवीभुज:॥
ऊरुभ्यां सहिता: स्त्रीभिर्जाता वैश्या: शिवाज्ञया।
पद्भ्यां शूद्रा सह स्त्रीभिर्जज्ञिरे वेद वित्तमा:॥"

श्री सूत जी ऋषियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे तपोधन ऋषियो! भगवान् के मुख से स्त्री सहित ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रियाणी सहित क्षत्रिय, पेट से वैश्याणी सहित वैश्य और चरणों से शूद्रा सहित शूद्र उत्पन्न हुआ। जैसे पशु-पक्षियों, पेड़-पौधा, लता-औषधि आदि की जाति जन्म से है, कर्म से नहीं है, वैसे ही मनुष्यों की जातियां

जन्म से हैं, कर्म से नहीं। जन्म स्थूल शरीर का होता है। अतः जाति शब्द स्थूल शरीर का वाचक है।

गौतम जाबालि के प्रकरण में भी जो बालक अथवा स्त्री अपना गोत्र नहीं जानते, वे विजातीय नहीं हो जाते। गौतम जी ने जावाल सत्यकाम से गोत्र पूछा था, वर्ण नहीं। वर्ण तथा गोत्र में भेद है। गोत्र कई जातियों का एक होता है, किन्तु जाति भिन्न होती है।

गोत्र न जानने वाले ब्राह्मण को 'ब्राह्मण शूद्र' कहते हैं, किन्तु ऋषियों ने माता तथा पुत्र का सत्य वचन सुनकर एवं समाधि में उनके शुद्ध वर्ण-गोत्र को जान कर के उपनयन के अनन्तर वेद का अध्ययन कराया। यदि सत्याकम की माता जन्म से शूद्रा होती तो अपने पुत्र को उपनयन तथा वेदाध्ययन के लिये गुरुकुल में न भेजती, किन्तु द्विजों की सेवा में भेजती।

सत्यकाम की ब्राह्मणजाति–'प्रश्न छान्दोग्य उपनिषद्' 'शतपथ ब्राह्मण' के अतिरिक्त 'ब्रह्मसूत्र' के १/३/३६ सूत्र में तथा 'बाल्मीकीयरामायण' के अयोध्याकाण्ड के ११८वें सर्ग में प्रथम श्लोक में भी इनको ब्राह्मणोत्तम कहा है।

'तदभाव निर्धारणे च प्रवृत्तेः'–३६

इसकी व्याख्या में श्री शङ्कराचार्य जी लिखते हैं–

"इतश्च न शूद्रस्याधिकारः। यत् सत्यवचनेन शूद्रत्वाभावे निर्द्धारिते ते जावालं गौतम उपनेतुमनुशासितुं च प्रवृतेः। नैतद् ब्राह्मणोविवक्तुसर्हति। समिधं सौम्याऽऽरहोपत्वा नेष्ये न सत्यादगाः"

क्योंकि उपनयन तथा वेदाध्ययन में शूद्र का अधिकार नहीं हैं। गौतम ऋषि ने सत्यकाम जाबाल के सत्य वचन से उनमें शूद्रत्व का अभाव निश्चित होने पर उनको उपनीत करके वेदादि शास्त्र पढ़ाने में प्रवृत्त हुए।

ब्राह्मण के अतिरिक्त ऐसा सरल एवं सत्यवचन कोई बोलने में समर्थ नहीं है; ऐसा निश्चय करके गौतम जी ने उनका उपनयन किया तथा समिधा लाने का आज्ञा दी।

॥ परिशिष्ट का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण॥

॥ छटा अध्याय प्रारम्भ ॥

ब्रह्मर्षि कक्षीवान्

कक्षीवान जी के पिता का नाम 'दीर्घतमा' ऋषि था। यह दीर्घतमा ऋषि कलिङ्ग महाराज के कुल पुरोहित थे। महाराज कलिङ्ग अति वृद्ध होने पर भी उनके कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने गुरु जी से सन्तान प्राप्ति की याचना की। फिर भवन में आकर अपनी महारानी से कहा, परन्तु लज्जा के कारण एवं अत्यन्त वृद्ध होने के कारण वह महारानी ऋषि के पास नहीं गयी। अपनी 'उशिका' नाम की दासी को वस्त्र अलंकारों से अलंकृत करके दीर्घतमा ऋषि के पास भेजा। ऋषि युक्तयोगी थे। योग की मधुमती भूमिका को प्राप्त थे। उन्होंने वेद मंत्रों से अभिमन्त्रित जल का छींटा देकर उस दासी को ऋषिपुत्री बनाकर उनसे 'कक्षीवान्' नाम के ऋषि को जन्म दिया। श्री सायणाचार्य जी ने इसका विस्तार से वर्णन 'ऋग्वेद' के प्रथम मण्डल के १२४वें अध्याय में किया है। ऋषि का क्षत्रिया से सम्बन्ध होने के कारण इनका नाम 'कक्षीवान्' हुआ। संस्कृत में घोड़े को बांधने वाली रस्सी को 'कक्षी' कहते हैं। उसको धारण करने वाला क्षत्री कक्षीवान् है।

दीर्घतमा ऋषि के विषय में श्री सायणाचार्य जी अन्यत्र लिखते हैं कि अङ्ग देश के महाराज ने सर्वज्ञ ऋषि के पास जाकर प्रार्थना की कि 'हे भगवान्! मेरे पुत्र नहीं है। इस रानी से पुत्र उत्पन्न करिये।' ऋषि ने स्वीकार किया। रानी ने विचार किया कि अति वृद्ध मेरे योग्य नहीं है–ऐसा विचार कर 'उशिका' दासी को भेज सर्वज्ञ ऋषि ने मन्त्र से पवित्र जल के द्वारा 'उशिका' को सती ऋषि पत्नी के रूप में परिणत करके उससे 'कक्षीवान्' नामक ऋषि को जन्म दिया। (ऋग्वेद सं. १-५, ११३)

श्री सायणाचार्य जी के पूर्वोक्त भाष्यों के अतिरिक्त महाभारत की साक्षी है। इसके शान्ति पर्व के २०८वें अध्याय के ३०वें श्लोक में कहा है–'कक्षीवान् के मित्रावरुण के तेज से प्रतापवान् अगस्त्य जी का जन्म हुआ।' इन दोनों को ब्रह्मर्षि कहा है। 'एते ब्रह्मर्षियोनित्यमास्थिता दक्षिणां दिशम्।' ऋग्वेद ४/२६/१ में कक्षीवान् ऋषि अपना अनुभव कहते हैं–'अहं मनुर्भव सूर्यश्चाहंकक्षीवान् ऋषिरस्मि विप्रः।' अर्थात् मैं पहले

मनु था, फिर सूर्य हुआ, अब विप्र कक्षीवान् नाम का ऋषि हूं । इन चारों प्रमाणों से कक्षीवान् ब्राह्मण सिद्ध होते हैं। उनके ही पुत्र मीमांसा के भाष्यकार शबरस्वामी तथा वेदमन्त्र ऋषिका 'घोषा' हुई। संस्कृत में शबर भील जाति को भी कहते हैं, परन्तु इनकी जाति शबर नहीं थी, अपितु 'शबर' इनका नाम था। जैसे ब्राह्मणों का 'चूहड़मल' नाम रख दिया जाता है, परन्तु इससे उसकी जाति तो ब्राह्मण ही रहती है।

महाभारत आदि पर्व १०४वें अध्याय में भी कथा आती है कि जान्मांध महर्षि वेदज्ञ विद्वान् दीर्घतमा ऋषि ने प्रद्वेषिणी नाम की यौवन तथा रूप से सम्पन्न ब्राह्मणी से विधि विधानपूर्वक विवाह कर गौतम आदि महायशस्वी पुत्रों को जन्म दिया। पाठक मूल देखें–

'जात्यन्धो वेदवित् प्राज्ञः पत्नीं लभे स विद्यया। तरुणीं रूप सम्पन्नां प्रद्वेषीं नाम ब्राह्मणीम्। स (दीर्घतमाः) पुत्रान् जनयामास गौतमादीन महायशा' (महा० १/१०४/ २३-२४)

इसी बात को स्कन्द पुराण के सह्याद्रि खण्ड में कहा गया है।'या भार्या दीर्घतमसः प्रद्वेषी परिकीर्तिता। तस्या पुत्रास्त्रयश्चासन् गौतमः कक्षिवान् कलिः। सर्वे वेदस्य द्रष्टारोवभूवर्वेदपारगाः पुत्रान् तपस्विनो दृष्ट्वा प्रद्वेषी मुमुदेभृशम्।'–(३५-२९, ३०)

अर्थात् दीर्घतमा ऋषि की जो प्रद्वेषी नाम की पत्नी कही गयी है, उससे उनके वेद के दृष्टा वेदज्ञ गौतम, कक्षीवान् तथा कलि तीन पुत्र थे। प्रद्वेषी अपने तपस्वी पुत्रों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उशिका का ही दूसरा नाम 'प्रद्वेषी' है। यह दोनों नाम एक ही के हैं।

शंका–आजकल पूर्वपक्षी विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुये अनेक ऋषियों को शुद्र सिद्ध करके शूद्रों का भी वेद में अधिकार सिद्ध करते हैं। अपने मत की पुष्टि में वे सायणाचार्य जी का प्रमाण देते हैं, परन्तु इसी भाष्य के अनुसार उनके पिता दीर्घतमा ऋषि शूद्र नहीं, अपितु ब्राह्मण थे। मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में क्षेत्र और बीज इन दोनों में बीज की प्रधानता रहती है। भाव यह है कि स्त्री का शरीर क्षेत्र माना गया है, पुरुष का तेज बीज स्थानीय है। एक ही प्रकार की भूमि में जो बीज बोया जाता है; उसके अनुरूप

ही उसके गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त पेड़-पौधा फलता है। जैसे एक ही खेत की क्यारी में किसान मिर्च, गन्ना, नींबू का बीज बोता है। धरती एक होने पर भी मिर्च में तीक्ष्णता, गन्ने में मिठास, नींबू में खटाई उसके बीज से प्राप्त होती है, अतः स्त्री रूपी खेत की अपेक्षा बीज की प्रधानता से सन्तान भी पिता के अनुरूप होती है। जैसे एक कन्या का जन्म गौतम गोत्र में हुआ, यदि उसका विवाह वशिष्ठ गोत्र में होता है तो विवाह के बाद कन्या का गोत्र बदल जाता है, वर का नहीं। कक्षीवान् के प्राण में भी ऋषि के तेज की प्रधानता होने के कारण यह ब्राह्मण ही हुए। मनु ने भी जाति निर्णय करते हुए ८वें अध्याय में ३५वें श्लोक में लिखा है कि-'वीजस्य चैव योन्यश्च बीचमुत्कृष्टमुच्यते' (मनु० ९/३५) बीज योनि माता इन दोनों में बीज की श्रेष्ठता कही गयी है।

अमोघवीर्य तपस्वियों ब्रह्मतेज सम्पन्न ऋषियों के आगे मातृदोष नष्ट हो जाता है, इसीलिये क्षत्राणी के पेट से उत्पन्न होने वाले विश्वमित्र तथा महर्षि ऋचीक के वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित चरुओं से उत्पन्न होने के कारण क्षत्राणी का दोष नष्ट हो गया।

ऐसे पुराणों में अनेकों दृष्टान्त हैं। जिन ऋषियों के योग एवं तपोबल के प्रभाव से स्त्री भी पत्थर हो सकती है, उनके प्रभाव से क्या एक दासी पुत्री ऋषिपुत्री नहीं हो सकती। त्रेता युग की बात जाने दो, इसी कलियुग में आज से २००, २५० वर्ष पूर्व योगबल के प्रभाव से कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुमसमर्थ परम योगिराज, योग की समस्त भूमिका को प्राप्त किये अनन्त भी पूज्यपादसंन्यस्त दण्डी श्री स्वामी श्यामबिहारी आश्रम महाराज ने आसाम तथा बिहार की पहाड़ियों के बीच में जंगली शेर तथा जंगली भैंसे को योग शक्ति के प्रभाव से पत्थर रूप में परिणत कर दिया।

यदि नाम मात्र से जाति का निर्णय होता तो ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार तुलसीराम, दयानन्द आदि नाम वालों का शूद्र वर्ण होता। भगवदाचार्य नाम का वर्गमूषक होने से वह चूहा नहीं होता। इसकी योनि 'श्व' कुत्ता नहीं हो जाती, वैसे ही पूर्वोक्त ऋषियों में जाबालि, ऐतरेय, महीदास, कवष आदि शूद्र नहीं हो सकते।

श्री श्वेताश्वर ऋषि

सत्य युग में बहुत से ऋषि (संन्यासी एक स्थान पर एकत्रित होकर आपस में विचार करने लगे कि-

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥१॥
कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनि पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥२॥
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिचष्ठत्येकः ॥३॥

ब्रह्मवादी शिष्य अपने परम गुरुदेव श्वेताश्वर ऋषि के चरणों में एकान्त स्थान पर बैठकर विचार करने लगे कि जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कारण ब्रह्म है या प्रकृति, कर्म, नियति, परमाणु है। हम कहां से आए हैं, कहां जाएंगे। किसकी शक्ति के द्वारा हम जी रहे हैं। जगत का मूल आधार कौन है? किससे शक्ति प्राप्त करके हम सुख-दुःख से प्रेरित होकर संसार में जीवन यात्रा कर रहे हैं ॥१॥

वे विचार करने लगे क्या काल, स्वभाव, प्रारब्ध या ईश्वर की इच्छा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी मंचमहाभूत या पुरुष जगत का कारण है। सुख-दुःख का कारण जीव के अच्छे-बुरे कर्मों का संयोग है या सुख-दुःख का कारण जीव है ॥२॥

बहुत देर तक ब्रह्मवेत्ता विचार करने लग गए। सभी ऋषि अपना-अपना मतभेद करने लग गए। पर उनकी समझ में कुछ नहीं आया। तब श्वेताश्वर ऋषि की आज्ञा प्राप्त करके सभी शिष्य ध्यान में स्थित होकर उन्होंने सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के द्वारा छिपी हुई परमात्मा की शक्ति का दर्शन किया। उस परमात्मा को देखा, जो अकेले ही काल से लेकर आत्म पर्यन्त सभी कारणों के मूल कारण थे ॥३॥

वह परमात्मा ईश्वरों का भी ईश्वर परम महेश्वर है। समस्त देवताओं का देवता है। सभी रक्षकों का रक्षक है। उन्हीं ईश्वर की हम शरण ग्रहण करते हैं। वह परमात्मा अपने संकल्प शक्ति के प्रभाव से बिना किसी औज़ार और मसाले के सारे जगत को बना देता

है। उस परमात्मा की शक्ति एक होने पर भी अनेक रूपों में दिखाई देती है। वह शक्ति ज्ञान, बल तथा स्वभाव वाली है। वह सबका स्वामी है। उसका पति कोई नहीं है। उसकी कोई भी पहचान नहीं है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥११॥

।६। ॥११॥

परमात्मा एक सभी प्राणियों के भीतर छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी सब प्राणियों के भीतर रहकर जीव के अच्छे-बुरे कर्म को देखने वाला कर्मों का स्वामी निराकार निर्गुण है। ।॥११॥

उस परमात्मा को सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली तथा अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकती। वह इन सब को प्रकाशित करता है अर्थात् उसी का प्रकाश सबके अन्दर है। जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को चारों वेदों का ज्ञान देता है। सब के मन, बुद्धि को प्रकाशित करने वाले प्रकार परमात्मा की मैं मुमुक्षु शरण ग्रहण करता हूं।

यथा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥२०॥
तपः प्रभावद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रवोच सम्यगृषिसंघ जुष्टम्॥२१॥
वेदान्त परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः॥२२॥
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥२३॥

।६। ॥२३॥

जब मनुष्य पूरे आकाश मंडल को मृग चर्म के समान लपेट करके बगल में दबा ले। तब ब्रह्म ज्ञान के बिना मेरे दुःखों का अंत हो जाएगा। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा परमात्मा की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव किए बिना जीव जन्म-मरण के दुःखों से नहीं

छूट सकता। वह परमात्मा आकाश के समान रूप रहित है। चर्म के लपेटने के समान उसका ज्ञान सरल नहीं है ॥२०॥

श्वेताश्वर नाम के ऋषि ने तप के प्रभाव से तथा परमात्मा की कृपा से सुप्रसिद्ध ब्रह्म को जाना था। इसके अनन्तर उन्होंने अपने ही समान परम पवित्र परमहंस संन्यासी शिष्यों को उपदेश भाष्य किया था। भगवान् शंकराचार्य अपने भाष्य में लिखते हैं कि मन सहित इन्द्रियों को एकाग्र करने को तप कहते हैं। श्वेताश्वर ऋषि ने कई जन्मों से परमात्मा की आराधना की थी। तब परम्परा से प्राप्त ज्ञान उन्होंने अपने ऋषि शिष्यों को उपदेश किया ॥२१॥

यह वेदान्त के पिछले कल्प में उपनिषदों का गुप्त ज्ञान जो गुरु परम्परा से प्राप्त था। अपने शिष्यों को दिया। इसका उपदेश चंचल मन वाले पुत्र और शिष्यों को नहीं करना चाहिए ॥२२॥

कौन शिष्य इसका अधिकारी है इस पर कहते हैं–जिस शिष्य की जैसे देवता के प्रति भक्ति है, वैसे गुरुओं के प्रति है, उसी महात्मा को गुरुओं के कहे हुए अर्थों का पूर्ण प्रकाश होता है। प्रकाशन्ते: महात्मनः यह दो बार अध्याय की समाप्ति तथा आदर के लिए है। ।६। ॥२३॥

श्वेताश्वर अर्थ–श्वेत माने अत्यन्त निर्मल जिस का अन्तः करण, मल, विक्षेप, आवरण से रहित हो स्वच्छ शीशे के समान चम-चमाता हो उसे 'श्वेत' कहते हैं तथा जिसके पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय घोड़े अपने वश में हो, उसे 'श्वेताश्वर' कहते हैं।

॥ परिशिष्ट का छटा अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ बीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

२८०. अवतारी सिद्ध बाबा बालक नाथ जी महाराज का काल निर्णय

अद्वितीय सिद्ध योगी बाबा बालक नाथ जी के विषय में अनेक प्रकार के पंजाबी कवियों की मान्यताएं हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह श्री गुरु नानक देव के समय में हुये थे। कुछ का कथन है कि शुकदेव जी के जन्म के समय, चौरासी सिद्धों में एक सिद्ध थे। इनके पूर्व जन्म का सम्बन्ध, शंकर जी के द्वारा पार्वती जी को सुनाई गई अमर कथा से है, किन्तु यह इतने प्राचीन सिद्ध नहीं होते। वह संस्कृत युग था, शुकदेव जी के परवर्ती अनेकों आचार्य जैसे श्री गौड पादाचार्य, श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य, श्री शंकराचार्य आदि हुये तथा उनका जीवन वृत्त तथा साहित्य मिलता है। परन्तु संस्कृत तथा हिन्दी में इनसे सम्बन्धित कोई साहित्य नहीं मिलता। इनकी ख्याति पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली तक ही है। इनका जन्म स्थान गुजरात बताया जाता है। वहां इनको कोई जानता है कि नहीं, कह नहीं सकते। पद्म पुराण की अमर कथा से इनका सम्बन्ध है। आज से पांच सौ वर्ष पूर्व आप गुफा में लीन हो गये थे। कई पंजाबी कवियों ने इनकी जीवनी लिखी है। थोड़ी हिन्दी जानने वाले, संस्कृत साहित्य से अनभिज्ञ होने के कारण कुछ गुरुमुखी कवियों ने शुक का अर्थ तोता, कुछ ने कबूतर अर्थ किया है, परन्तु श्री दरबारा सिंह कवि ने अपनी जन्म साखी में पंजाबी कविता जो देवनागरी लिपि में है, उन्होंने शुक का अर्थ तोता कहा है। यह कुछ संस्कृतज्ञ प्रतीत होते हैं। पंजाबी साहित्य के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि आपका जन्म द्वापर के अन्त में हुआ था तथा आज से पांच सौ वर्ष पूर्व पंडित बनारसी जी को अपनी मूर्ति दी तथा पूजा का भार सौंपकर गुफा में लीन हो गये, परन्तु अधिकारी भावुक भक्तों को यदा कदा आपका दर्शन होता है। प्रकट होकर उनके काम भी करते हैं। श्री शुकदेव जी के समान आप चिरंजीवी सिद्ध पुरुष थे।

पूर्वजन्म की कथा–द्वापर तथा कलियुग की सन्धि में एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी, शिव जी के अनन्य भक्त थे। माता पिता आदि का परित्याग करके, मान सरोवर की यात्रा

के लिए अनेकों कठिनाइयों को सहन करते हुए सरोवर के समीपवर्ती पर्वत पर पहुंचे। उसी समय वर्षा तथा बर्फ पड़ने लगी। चारों ओर अंधकार छा गया। सूर्यास्त होने वाला था। मार्ग नहीं दिखाई पड़ता था। इतने में एक वृद्धा 'धर्मो' नामक माता, जो परम धर्मनिष्ठा थीं, दिखाई दीं। बालक ने माता को प्रणाम करके मार्ग पूछा। उसने पुत्रवत् स्नेह करते हुए कहा, "बेटा रात्रि में कहां भटकोगे. रात्रि में मेरी कुटी में विश्राम, भोजन करके प्रातःकाल चले जाना।" ब्रह्मचारी माता की बात मान गये। स्नान करके सन्ध्योपासना भोजन विश्राम किया। प्रातः कर्म से निवृत्त होकर माता को प्रणाम करके बोले, "मैं शिव दर्शन चाहता हूं कैसे होगा?" मां ने कहा, "बेटा यहां से थोड़ी दूर पर एक झील है। उसमें नित्य प्रति माता पार्वती स्नान के लिए आती हैं। वे तुम्हें शिव दर्शन कराएंगी।"

उधर भगवान् शंकर से पार्वती जी बोली, "हे देव! आज द्वापर की अन्तिम अमावस्या है। अगली अमावस्या कलियुग में आयेगी। आप आज्ञा दें तो स्नान कर आवें।" शंकर जी ने आज्ञा दे दी। पार्वती जी ने आकर स्नान किया और चलने लगीं। बालक ने दण्डवत् प्रणाम करके परिचय देते हुए कहा, "मुझे शिव के दर्शन कराइये।" देवी बोली, "बेटा मुझे पति की आज्ञा नहीं है। अतः कल पति आज्ञा प्राप्त करके तुम्हें ले चलूंगी।" इससे सिद्ध होता है कि पति की आज्ञा के बिना पत्नी कुछ न करे। बालक ने हठ किया कहा, "यदि आप न ले जाएंगी तो मैं यही प्राण त्याग दूंगा। मुझे शिव दर्शन बिना एक क्षण वर्ष के समान बीतता है।" बालक का विशेष हठ देखकर उन्होने अनुमति दी तथा आकाश में उड़ने की शक्ति दी। वहां जाकर शिव चरणों में बालक ने प्रणाम किया, शिव जी ने हृदय से लगाया। अपनी शक्ति, भक्ति तथा अमरता का वरदान देते हुए कहा, "तुम अगले जन्म में ज्ञानी शिरोमणि तथा सिद्ध होंगे। तुम्हारी अपार पूजा प्रतिष्ठा होगी। तुम्हें अष्टसिद्धि, नव निधियां प्राप्त होंगी। तुम्हारे स्थान पर मेले लगेंगे। अगले जन्म में भी तुम मेरे दर्शन करोगे।" बालक शिव पार्वती को प्रणाम करके वहीं साधना करने लगा। कालान्तर में शरीर त्याग कर स्वर्ग में कुछ काल रहकर कलियुग में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तपस्या, गो सेवा परोपकार के लिए जन्म लिया।

जन्म तथा बाल लीला–जिस समय शुकदेव का जन्म हुआ, उसी समय ८४ सिद्ध, ९ नाथ, ५२ वीरों का जन्म हुआ। उसी गुजरात कठियाबाड़ में गौड़ ब्राह्मण पं०

विष्णुयश की पत्नी लक्ष्मी देवी के गर्भ से इनका जन्म हुआ। इनका नाम बालक देव रखा। इनके चरण में मणि के समान चमकीला पद्म था, उपनयन के बाद थोड़े काल में संस्कृत का अध्ययन किया। वेद पढ़ाने वाले गुरु जी को पढ़ाने लगे। इनकी मेधा शक्ति देखकर गुरु आश्चर्य में पड़ गये। माता-पिता परम धनाढ्य तथा विष्णु भक्त थे। बालक देव को पढ़ने के लिए काशी भेजा। बारह वर्ष की आयु में नौ प्रकार का व्याकरण, षड्दर्शन, अठारह पुराण तथा चारों वेद पढ़कर जन्म भूमि में लौट आये। श्रवण के समान माता-पिता की सेवा करने लगे। सैंकड़ों वर्ष की आयु होने पर भी, बारह वर्ष के बच्चे ही रहे। काल का इन पर प्रभाव नहीं पड़ा। सभी प्रकार से योग्य देखकर माता-पिता ने विवाह की इच्छा की। इन्होंने कहा, इस आज्ञा को छोड़कर आप की सभी आज्ञाओं का पालन करूंगा। दोनों ने अनेक प्रकार से समझाया, पर नहीं माने। माता-पिता दिन रात चिन्ता में रोने थे।

गृह त्याग–जब आपने देखा माता-पिता के हठ के कारण रहना कठिन होगा। तब एक दिन प्रात: चार बजे सोते हुए पिता को प्रणाम करके दबे पावों से घर से निकल गये तथा जीवन में कभी न लौटने की भीष्म प्रतिज्ञा की। जगने पर न मिलने पर दोनों खोजने लगे। जिस सरोवर पर स्नान करते थे, वहां देखा। वनों, पर्वतों पर कहीं न मिलने पर मन मारकर बैठ गये। दोनों रोया करते थे। एक दिन स्वप्न में दर्शन देकर धीरज दिया तथा कहा कि, ''एक रूप से मैं आपके पास रहूंगा।'' तब उनका शोक दूर हुआ।

वृन्दावन में–घर छोड़कर वह मथुरा, वृन्दावन, गोकुल गये। वृन्दावन में बारह वर्ष रहे गौवें चराई। उन दिनों गायों पर बड़ा अत्याचार होता था। गो माता ने भगवान् से पुकार की। तब भगवान् ने बालक नाथ को वहां भेजा। आप भगवत् भजन में, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म आदि का प्रचार करते थे। इनकी ख्याति सर्वत्र फैली थी। एक दिन त्रेतायुग के आचार्य भगवान् दत्तात्रेय गिरनार पर्वत से शिष्यों सहित ब्रज की यात्रा में पहुंचे। वे इनके स्वभाव से प्रभावित हुए। इनके प्रार्थना करने पर, विधि, विधान से इन्हें दीक्षा दी। उनके साथ जूनागढ़ आये। वहीं पर उनकी संन्यास दीक्षा हुई। उन्होंने इनका नाम बालक देव से 'बालकनाथ' रखा। इन्हें काषाय वस्त्र, कोपीन, चिमटा, त्रिशूल,

झोली, खड़ाऊं कमण्डलू मंत्र सहित दिये। संन्यास के बाद यह गुरु की मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा करते हुए समाधि का अभ्यास करने लगे।

एक माता के पुत्र को जीवन दान–संन्यास के बाद एक दिन एक माता गुरु दत्तात्रेय जी के दर्शन के लिए जा रही थी। मार्ग में एक राक्षस सिंह के रूप में बच्चे को खा गया। मां रोती हुई दोनों के पास पहुंची। गुरु आज्ञा प्राप्त करके यह सिंह के पास पहुंचे। उसके पेट में त्रिशूल मारकर पेट से बच्चे को निकला कर अमृत छिड़क कर जीवित कर दिया।

मां को बच्चा दे दिया। बाद में अघोरी को जीवित करके कहा, भविष्य में ऐसा काम मत करना। उसने कान पकड़ कर क्षमा मांगी। यह घटना जूनागढ़ जाते समय हुई थी। उस माई ने कृतज्ञता प्रकट की। संन्यास के बाद इन्होंने अन्न नहीं खाया। दूध ही पीते रहे। अतः इनका दूसरा नाम 'दूताधारी' हुआ।

हरिद्वार कुम्भ स्नान–अनपे गुरु जी के साथ इन्होंने हरिद्वार का कुम्भ स्नान किया। वहां पर सत्संग योगाभ्यास करते थे। हरिद्वार से गुरु आज्ञा लेकर, १६ सिद्धों के साथ धर्म प्रचार के लिए निकले। वहां से कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण स्नान किया तथा धर्म प्रचार किया।

शाहतलाई की यात्रा–बाबा बालक नाथ जातिस्मर सन्त थे। पूर्व जन्म की माई 'धरमू' जिसने पार्वती जी तथा शिव का दर्शन कराया था। उसने बड़ी सेवा की थी। वही इस समय लोहारों के घर में जन्म लेकर माई 'रतनों' के रूप में शाहतलाई में रहती थी। अतः उसकी बारह घंटे की सेवा के बदले में बारह वर्ष उसकी सेवा करके ऋण से उऋण होऊंगा। यह मेरा अन्तिम जन्म है। इस जन्म में मुझे पाप पुण्य का लेखा-जोखा करके शेष संचित कर्मों को ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म कर देना चाहिए। ऐसा विचार करके गुरु आज्ञा लेकर शाहतलाई पहुंचे, जो आज कल हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जिले में है। उन्होंने बरगद के नीचे आसन लगाया तथा कठोर साधना करने लगे। इसके साथ-साथ गो सेवा परोपकार भी करते थे। वहां से यह सम्पूर्ण भारत के तीर्थों की यात्रा करके फिर लौट आये। इनके केस सुनहरे थे। माई रतनों के द्वार पर जाकर अलख जगाई। माई हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी। इन्होंने कहा, मां मैं आपका बच्चा हूं, मुझे

प्रणाम मत करो। मुझे अपना गोरक्षक बना लो। मैं वेतन नहीं चाहता। प्रत्येक आज्ञा का पालन करूंगा। माता ने कहा, "तुम्हारी आयु अभी कम है सर्दी, वर्षा, धूप कैसे सहन करोगे। तुम पर मुझे दया आती है। तुम कहां से आये, तुम्हारे माता-पिता कौन हैं।" बालक ने सब बातें बता दीं। फिर कहा, कि मैं इतना सुकुमार नहीं कि गाय न चरा पाऊं। मैं तुम्हारा धर्म का पुत्र तुम माता हो। मां ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। मैं तुम्हारे लिये प्रतिदिन रोटियां तथा लस्सी लाया करूंगी। वे केवल दूध पीते थे। भोजन तथा छाछ अतिथियों को दे देते थे। बारह वर्ष तक बरगद के नीचे रहे। गायें चराना छोड़कर आप ध्यान में बैठ जाते थे। यह सब गायें बांझ थीं, पर वे जिस गऊ को थापी देकर कमण्डलु रख देते थे, बिना हाथ लगाये दूध की अखण्ड धार बहने लगती थी। इन्हं ग्यारह वर्ष बीत गये। बारहवां लगा। उस माई के कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन दोनों को शिव पार्वती ने दर्शन दिया। बालक ने प्रणाम किया। शिव जी भक्ति, शक्ति जन्म मरण की अत्यान्तिक निवृत्ति, अष्ट सिद्धि, नव निधि का वरदान देकर अन्तर्धान हो गये।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का बीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ इक्कीसवां अध्याय प्रारम्भ ॥

चमत्कार

एक दिन बाबा जी ने गायों को चरने छोड़ दिया। आप समाधि में बैठ गये। गायें खेतों में जाकर खेत उजाड़ने लगीं। कृषक ने उनको समाधि में देखकर पत्नी सहित जाकर रतनों से शिकायत की। अनेकों गंदी गालियां देते हुए बुरा भला कहा। माई कुपित होकर इनके पास पहुंची तथा फटकारा। मैंने तुम्हें बारह वर्ष रोटियां खिलाई तथा लस्सी पिलाई है। आज तक कोई शिकायत नहीं आयी। आज आई है, इन्होंने शान्त चित्त से माई से कहा, यह झूठ बोलते हैं। इनका कुछ नहीं बिगड़ा। जाकर देख लो। माई किसानों के साथ गई पहले से खेत चौगुना लहहरा रहे थे। किसानों ने क्षमा मांगी तथा उनके भक्त हो गये। फिर शान्त भाव से माई से कहा, "तुझे अपनी रोटियां तथा लस्सी का अभिमान है। मैं तो केवल दूध पीता हूं। लस्सी रोटी तो अतिथियों को खिलाता हूं। तू अपनी बारह वर्ष की रोटियां तथा लस्सी ले ले। वह जो रोटियां लाती थी। बरगद की

खोड में रख देते थे। ऐसा कहकर बरगद में चिमटा मार कर बारह साल की रोटियां का ढेर लगा दिया। लस्सी मिट्टी की चाटी में डलवा देते थे। फिर त्रिशूल जमीन में मार कर लस्सी की धार बहा दी। फिर कहा मैंने तेरे भोजन के लिए घर माता-पिता का त्याग नहीं किया है। कौपीन नहीं बांधी है। तूने मन दुखाने वाली बातें की हैं। अपनी गायें सम्हाल, मैं जाता हूं।'' तब रतनों अति दुखी होकर बोली, ''मेरा अपराध क्षमा कर दो। तुम्हारा वियोग मुझे बाण की तरह चुभता है आगे आज्ञा उल्लंघन नहीं करूंगा। तेरे बिना और कौन सहारा है। एक बार की भूल को भगवान् भी क्षमा कर देते हैं।''

बाबा ने कहा-यदि तुम रखना चाहती हो तो मैं पूर्ववत् गो सेवा करूंगा, परन्तु आज से मेरे लिये रोटियां तथा लस्सी मत लाना। माता ने विवश होकर मान लिया। पूर्ववत् सब काम होने लगा। माता ने अनेकों आशीर्वाद दिये। उस समय उनकी सत्तर वर्ष की व्यवस्था थी।

बाबा जी की महिमा-श्री बालक नाथ जी शाहतलाई के वन में गरने के पेड़ के नीचे रहते थे। इतने में एक दिन सवा लाख शिष्यों सहित गुरु गोरखनाथ जी महाराज, जो गुरु मछन्दर नाथ के शिष्य थे तथा जलन्धरी नाथ के प्रशिष्य थे तथा इनसे राजाभरतरी ने दीक्षा ली थी, आए। जिस दिन से गोकाण्ड हुआ था, उसी दिन वह बरगद को छोड़कर वन में एक कांटेदार पेड़ के नीचे आसन लगाकर समाधिस्थ होते थे। वह पेड़ आज भी है। श्री गोरखनाथ जी ने बालकनाथ जी की महिमा सुनी थी। उन्होंने शिष्यों सहित बरगद के नीचे आसन लगाया। वहां लोगों ने बालक नाथ जी की प्रशंसा करते हुए उनकी सिद्धियां चमत्कार सब बताये। गोरखनाथ जी ने कहा-वह कहां है। मैं उसकी भक्ति-शक्ति की परीक्षा करूंगा। सेवक उनको शिष्यों सहित उनके पास ले गये। बालक ने दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया। गोरखनाथ जी ने कहा-मैं शिष्यों सहित भूखा, प्यासा और थका मांदा हूँ। भोजन कराओ। बालक ने कहा-मैं अन्न नहीं लेता। दूधाधारी हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो दूध पिला सकता हूँ। उन्होंने आज्ञा दे दी। बाबा जी ने एक बांझ गाय को पुकारा, वह न व्याती थी न बच्चा देती थी। उसके थापी देकर उसके नीचे तूँबा रखकर बैठ गये। उसके स्तनों से बिना हाथ लगाये अखण्ड दूध की धारा बहने लगी। सभी शिष्यों ने गुरु जी सहित पचास पचास तक

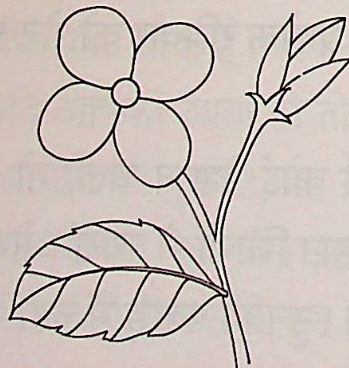
कमण्डल भर कर पिये। सब अघा गये किन्तु पात्र में एक बूंद भी कम नहीं पड़ा। गोरखनाथ जी उनका चमत्कार देखकर परम चकित हुए। उनको अपनी प्रसिद्धि का जो अभिमान था, नष्ट हो गया। शोक से उनका चेहरा पीला पड़ गया। इतनी कम आयु में इसने किस गुरु से शक्ति प्राप्त की है। वे ऊपर से मीठी बातें करते थे। भीतर से द्वेष था। ऐसे बालक को अवश्य चेला बनाना चाहिये। उन्हें शिष्य बनने के लिये बार-बार आग्रह किया। इन्होंने स्पष्ट शब्दों मे कहा-मुझे शिव जी की कृपा तथा दत्तात्रेय जी से गुरु दीक्षा मिल चुकी है। जब बालक नाथ जी किसी प्रकार नहीं माने, तब जबर्दस्ती शिष्य बनाने लगे। बाबा जी ने कहा, चेला बनाने के लिये कुश्ती लड़ना आपको शोभा नहीं देता। यदि आप में विशेष शक्ति है तो चमत्कार दिखाओ। उनकी बात सुनकर गोरखनाथ जी मृगचर्म पर बैठकर आकाश में बहुत ऊँचा उड़कर स्थित हुये तथा बोले, देख मैं संसार में सबसे ऊँचा हूँ। सारा संसार मुझसे नीचे है। तुझ में कोई शक्ति है तो दिखा। यह सुनकर बालक नाथ जी चिमटा लेकर उड़े। चिमटे से उनकी मृगचर्म के कई टुकड़े करके नीचे गिरा दिया। उनसे ऊपर होकर युद्ध करने लगे। गोरखनाथ जी ने पूरी योग शक्ति लगाई। उन्हें नीचे नहीं गिरा पाये। उन्हें लज्जा आई, दोनों नीचे आ गए। ऊपरी मन से प्रसंसा करने लगा। भीतर टीस भरी थी। गोरखनाथ ने फिर शिष्य बनने को कहा। बालक ने कहा, अपनी इच्छा पूरी कर लो। यह कहकर बैठ गये। गोरखनाथ जी जब उनका कान फाड़ने लगे तो रक्त की जगह दूध निकला। कान का छेद कई बार फाड़ने पर मिल जाता था। शोर सुनकर सभी ग्रामीण तथा रतनों भी आ गई। बाबा ने उन्हें गायें सैंप दीं। वह बहुत रोयी। तब उनको एक पुत्र का वरदान दिया, कहा मुझ जैसा ही करामाती होगा। उसका नाम औघड़नाथ होगा। वह तुम्हारी सेवा करेगा तथा गौयें चरायेगा। तुम्हारा नाम चमकायेगा। अन्त में कहा, कभी-कभी स्वप्न में तुम्हें दर्शन दिया करूँगा। मेरी मूर्ति स्थापित कर प्रत्येक रविवार को रोट चढ़ाओ। तुम्हारी तथा सब भक्तों की कामनायें पूर्ण होंगी।

इधर जब गोरखनाथ की कोई पेश न चली तो उन्होंने चारों ओर से चेलों को लगाकर पकड़ने के लिये कहा। शिष्यों ने चारों ओर से घेर लिया। मोर पर बैठकर धवल गिरि पर्वत पर चले गये। उनकी पकड़ में नहीं आये। तब उन्होंने जलान्धरीनाथ

के शिष्य भरथरीनाथ को भेजा। उन्होंने चारों ओर देखा, कहीं दिखाई नहीं दिये। बालकनाथ जी धवलगिरी पर्वत की गुफा में समाधि लगाने लगे।

अघोरी राक्षस से युद्ध–जब बालक नाथ जी गुफा में ध्यान कर रहे थे। इतने में एक अघोरी राक्षस के रूप में आया। उसने कहा कि यह मेरी गुफा है, तू कैसे आया। यहां से निकल भाग। बाबा ने कहा कि यह स्थान सन्तों का है, तू चला जा, नहीं तो दुर्दशा होगी। यह सुनते ही वह उन पर आंधी-तूफान की तरह पत्थर बरसाने लगा। पृथ्वी कांपने लगी। यद्यपि बाबा शान्त रहते थे। कभी क्रोध नहीं किया, किन्तु "अति संघर्ष जो कर कोई। प्रकट अनल चन्दन ते होई।" जोश में आकर उन्होंने उसकी नाक में चिमटा डाल दिया। वह मूर्च्छित हो गया। जगने पर बोला, मैं मारा गया। मुझे अपने चरणों में र ख लो, यहां से न निकालो। आप में महती शक्ति है। अब मैं स्वप्न में भी ऐसी भूल नहीं करूँगा। सेवक के रूप में सेवा करूँगा। दया करके बाबा ने छोड़ दिया। पहरे पर नियुक्त किया। उसी गुफा में आकर भरथरी जी ने दर्शन किया तथा कहा–गोरखनाथ जी ने आपको बुलाया है। एक बार आप उन्हें अवश्य दर्शन दें। उन्होंने कहा, उनको शिष्यों तथा सिद्धि का अभिमान है। अभिमान सिद्ध साधक सभी का पतन करता है। उनके दर्शन से अभिमान के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा। ऐसा कहकर उन्हें रोक लिया और कहा तुम भी मत जाओ। दोनों साधना करने लगे। दोनों पर समाधि का रंग चढ़ा। भरथरी जी कुछ काल गुफा में रहने के बाद गुफा से दो मील की दूरी पर पीर नगाहे में जाकर साधन भजन करने लगे। दोनों की बराबर ख्याति हुई। वहां से दोनों ही नासिक गोदावरी के कुम्भ स्नान के लिये गये।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥



॥ अथ बाईसवां अध्याय आरम्भ ॥

भरथरी (भर्तृहरि) जी की कथा

संस्कृत, हिन्दी सथा पंजाबी साहित्य में इनका नाम प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि यह महाराज विक्रमादित्य के अनुज थे। इनके एक भानजा गोपीचन्द्र भी था। इनके अतिरिक्त एक भर्तृहरि प्रपंचाचार्य नाम के आचार्य भी हुये हैं। उन्होंने शब्दाद्वैत का प्रतिपादन किया है। भगवान् भाष्यकार शंकराचार्य जी ने अपने प्रस्थानत्रयी के भाष्यों में जो इन भरथरी से बहुत पहले हुए हैं, इनके शब्दाद्वैत का खण्डन किया है, पर इस कथा के चरित्र नायक भरथरी से वे भिन्न थे। इस कथा के भर्तृहरि ने नीति, श्रृंगार तथा वैराग्य नामक तीन शतक लिखे। इनके संस्कृत हिन्दी में टीकाएं भी उपलब्ध हैं। तीसरा शतक इन्होंने राज्य त्याग के बाद लिखा।

पंजाबी साहित्य में भरथरी–पंजाबी कवियों ने इनका नाम 'भरथरी' लिखा। थोड़ी ही आयु में इनका पिंगला नामक राजकुमारी से विवाह हुआ था। उसमें इनकी विशेष आसक्ति थी। वह उनकी विशेष सेवा करती थी। इनके राज्य में प्रजा सुखी थी। दण्डनीय दण्डित होते थे। अन्याय कहीं नहीं था। भेड़ तथा शेर एक घाट पर पानी पीते थे।

अमर फल की कथा–एक बार एक सदाचारी, धर्मनिष्ठ, भगवद् भक्त ब्राह्मण ने भगवान् विष्णु की आराधना की। उन्होंने भक्त को अमर फल दिया। उन्होंने लेकर विचार किया कि यदि हमारा राजा इस फल को खायेगा तो युवा होकर धर्मानुसार शासन करेगा। ब्राह्मण ने ऐसा विचार कर राजा को वह फल दिया। राजा को रानी बहुत प्रिय थी। उन्होंने वह फल रानी को दे दिया। पिंगला का महावत से सम्बन्ध था। फल रानी ने महावत को दिया। चारों ओर पहरे लगे थे। रानी ने खिड़की खोलकर फल दिया। महावत का एक वेश्या से सम्बन्ध था। उसने वेश्या को दिया। वेश्या को धन तथा यश का लोभ था। उसने वह फल राजा को लाकर दिया। रानी को दिये गये फल को देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। राजा ने जाकर रानी से पूछा कि यह फल वेश्या को कैसे प्राप्त हुआ। पहले वेश्या से राजा पूछ चुके थे। उसने कहा मुझे महावत से मिला

है। उससे पूछा, वह झूठ बोलने लगा। फिर दण्ड के भय से भेद खोल दिया। राजा ने दोनों के बुलाकर फटकार की। संसार में सब धोखा है। यह सोचकर राज्य पाट त्याग दिया। मन्त्रियों तथा प्रजा के विशेष आग्रह करने पर भी स्वीकार नहीं किया और अपने उद्‌गार निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किये–

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यासक्तः॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मांच॥

नीति शतक

राजा ने कहा कि मैं निरन्तर जिस के लिये (स्वपत्नी) चिन्ता किया करता हूँ, वह मुझसे विरक्त रहती है। वह किसी अन्य में अनुरक्त है और वह पुरुष भी अन्य स्त्री में आसक्त है। मुझसे कोई अन्य ही स्त्री सन्तुष्ट है। इस प्रकार यह अमर फल आसक्ति की परम्परा से एक-दूसरे के पास होता हुआ मेरे पास फिर आ गया। अतः उस मेरी स्त्री को, उस पुरुष को, काम देव को, इस स्त्री (वेश्या को) तथा मुझ को भी धिक्कार है।

वे सीधे काशी चले गये। वहां गुरु मछन्दर नाथ को प्रणाम किया। दीक्षा की याचना की। उन्होंने अनेकों तर्क वितर्क किये। जांच पड़ताल की। विवेक सहित पूर्ण वैराग्य देखकर नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित कर मुद्रायें, माला, शंखी, लौकी का तूँबा, कौपीन तथा खड़ाऊँ दीं। कुछ समय गुरु सेवा करके आज्ञा प्राप्त करके तीर्थ यात्रा की। रास्ते में इनकी अग्रजा मैनावन्ती का घर पड़ा। प्रणाम करके सब समाचार बताया। उनका आशीर्वाद लेकर प्रयाग कुम्भ पहुंचे। वहां गुरु गोरखनाथ जी भी आये हुए थे। उन्हें प्रणाम करके शिष्य भाव से सेवा करने लगे। वहां से अलवर की गुफाओं में बारह वर्ष तप किया, वहां पर एक भक्त कुम्हार तन, मन, धन से इनकी सेवा करता था, परन्तु उसकी स्त्री जलती थी। बरतन पकाने के लिये जब उसने आंच लगाई, अग्नि ठंडी होने पर देखा आधे बर्तन सोने के आधे मिट्टी के निकले। दोनों को तथा जनता को आश्चर्य

हुआ। सब ने जाकर सन्त जी से कारण पूछा। उन्होंने कहा, पति ने श्रद्धापूर्वक सेवा की, पत्नी ने नहीं। इसलिये आधे सोने के हो गये। आधे मिट्टी के रह गये। यदि दोनों एक भाव से सेवा करते तो सभी सोने के हो जाते। वहां से आगे चले गये। गोपी चन्द्र भी महात्मा हो गये। इनके समान ही भजन साधन करते थे।

सिद्ध गुरु गोरखनाथ जी महाराज का परिचय

संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में इनका विशेष चरित्र मिलता है। यह परम योगिराज थे। इनका शुद्ध नाम गोरक्ष था। उत्तर प्रदेश का गोरख पुर नगर इन्हीं का बसाया है। इसका पुराना नाम गोरक्ष पुर था। उसी का भाषा में गोरख पुर नाम हो गया। गोरख पुर में इनका संगमरमर का दिव्य मन्दिर बना हुआ है। यहां के भूतपूर्व महन्त दिग्विजय नाथ के गुरु का यह मन्दिर बनवाया हुआ है। वहां के वर्तमान महन्त ने एक हाल कमरा बनवाया है, जिसमें छः चक्रों, कुण्डलिनी अध्यात्मयोग से सम्बन्धित अद्‌भुत चित्र बने हैं। अनेक सिद्ध नाथों के चित्र हैं। इनमें शिष्य बनाने की वासना, इनके साहित्य को देखने से सिद्ध नहीं होती। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि बालक नाथ के अनन्य भक्त कवियों ने व्यास शैला का अनुसरण करते हुए, अपने इष्ट देव का उत्कर्ष दिखाने के उद्‌देश्य से गोरखनाथ का अपकर्ष दिखाकर अपने इष्ट की भक्ति में दृढ़ता के लिये किया है। गौतम जी का सूत्र है–**''नहि निन्दनीयं निन्दयितुं प्रवर्तते, किन्तु विधेयं स्तोतुं।''** निन्दक निन्दनीय वस्तु की निन्दा, निन्दा के उद्‌देश्य से नहीं करता, किन्तु इष्ट वस्तु की प्रशंसा के लिये निन्दा मालूम पड़ती है। जैसे बाजार में एक ही प्रकार का माल रखने वाले दुकानदार दूसरे के वैसे ही माल की निन्दा तथा अपनी प्रशंसा करते हैं। वे अपने माल की अधिक विक्री के उद्‌देश्य से पर निन्दा करते हैं। यही सिद्धान्त यहां भी लागू होता है। यदि गोरखनाथ की निन्दा न होती तो बालक नाथ की इतनी ख्याति न होती। जैसे व्यास जी ने जो पुराण जिस देवता से सम्बन्धित लिखा है, उस देवता की प्रशंसा तथा दूसरे की निन्दा की है। अतः इन बातों का ध्यान रखते हुए ही सन्तों के चरित्र पढ़ने समझने चाहिये। श्री गोरखनाथ जी भी बाबा बालक नाथ जी के समान सिद्ध तथा अवतारी पुरुष थे। अतः बाबा बालक नाथ के भक्तों को बालक नाथ

को अंगी तथा भरथरी एवं गोरखनाथ आदि सन्तों को उनका अंग मानकर उनको भी प्रणाम स्तुति तथा सम्मान करना चाहिये।

बालक नाथ जी की बनारसी दास पुजारी पर कृपा

जिस समय बाबा जी धवल गिरि गुफा में रहते थे, उस समय चक मोहन नगर के एक ब्राह्मण बनारसी दास जी तथा एक जाट उमीद सिंह लोहारी नगर का था। यह दोनों अपनी गायें भैंसें चराते थे। बालक नाथ जी, छोटी-छोटी गौओं तथा भैंसों का थापी मारकर दूध पी लेते थे। एक बार इन दोनों के पशु खो गये। चार-पांच दिन ढूंढ़ने पर भी नहीं मिले। ब्राह्मण ने विचार किया कि यह अवतारी महात्मा लगते हैं, हिंसक जीवों में निर्भय घूमते हैं। इनसे पूछना चाहिये। ऐसा विचार कर दोनों गुफा में पहुंचे। समाधि खुलने पर दोनों ने हाथ जोड़कर प्रणाम करके पशुओं के खोने की बात कही। बाबा जी ने कहा तुम्हारे पशु मिलेंगे। एक काम करो। मैं धराधाम पर सनातन धर्म का प्रचार करने के लिये आया हूँ। तुम दोनों श्रद्धा से मेरी मूर्ति बनाकर स्थापित करो। नित्य पूजन करो। सवा मन आटे का रोट बनाकर भोग लगाकर ब्राह्मणों, बच्चों तथा कन्याओं की खिला दो। तुम्हारे पशु मिल जाएंगे। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। सब पशु चरते-चरते अपने आप ही आ गये। दोनों प्रसन्न हुए। श्रद्धा से पूजन करने लगे तथा पूरे क्षेत्र में खूब प्रचार किया। एक दिन रात्रि के अन्धकार में ब्राह्मण को बिना दीपक के प्रकाश दिखाई दिया। पास जाकर देखा, बालक नाथ जी के चरणों में कमल चमक रहा था। उस दिन से उस पहाड़ का नाम डीयुट् (दीपक) पड़ा।

॥ इति द्वापर युग खण्ड बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तेईसवां अध्यायारम्भ ॥

बाबा जी की शिक्षा

१. किसी जीव को दुःख न दो। २. गो ब्राह्मण के सेवा करो। ३. पुनर्जन्म से छूटने के लिये वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए भगवदाराधन करो। अन्तःकरण शुद्ध होने पर ज्ञान द्वारा मुक्त हो जावोगे। ४. सन्तों की सेवा करो। ५. देवी देवताओं का पूजन

करने से गृहस्थों के मनोरथ पूर्ण होते हैं। निष्काम पूजा करने से ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है। निष्काम कर्म से बुद्धि शुद्ध होती है। ६. नित्य कर्म तथा शुभाचरण करने से सद्बुद्धि मिलती है। ७. देव मन्दिरों तथा संतों के आश्रम में जाकर सत्संग करो। ८. तीर्थों की अपेक्षा सन्तशरण में जाने, दर्शन करने, सत्संग करने तथा आचरण करने से अनन्त गुना फल मिलता है। ९. जब तक मनुष्य प्रेम-भक्ति नहीं करता है, तब तक भगवत्प्राप्ति नहीं होती। प्रभु का सच्चा प्रेम सन्तों की निष्काम सेवा से प्राप्त होता है। १०. प्रत्येक जाति का संन्यास में अधिकार है। बाबा जी की सभी शिक्षाएं वेद शास्त्रानुसार हैं, किन्तु दसवीं शिक्षा शास्त्र विरुद्ध है, क्योंकि श्रुतियों तथा स्मृतियों में विवेक वैराग्य सम्पन्न ब्राह्मण का ही संन्यास में अधिकार है अथवा उनका संन्यास से तार्त्प वासना के त्याग में है। वासना का त्याग ही संन्यास है और इसमें सबका अधिकार है। ११. प्रत्येक वर्ण को स्वधर्म का पालन करना चाहिये।

उन्होंने अपना अन्तिम उपदेश भक्तों को किया। फिर कहा कि भविष्य में इस मूर्ति की पूजा करते रहो। जब भी किसी को कुछ संकट पड़े, मेरे स्थान पर आकर सन्त ब्राह्मण तथा गो सेवा करो। सभी कष्ट दूर हो जाएंगे। अब मैं तप करूँगा। ऐसा कहकर गुफा में चले गये तथा लुप्त हो गये। उनको ५०० वर्ष हो चुके हैं। भक्त बड़े प्रेम से वहां दर्शन करते हैं। अनेक धनियों ने मिलकर पहाड़ खुदवा कर उनका मन्दिर बनवाया।

लोप होने के बाद बाबा जी की लीलाएं (एक माई को दर्शन)

इनके गुफा में लोप होने के बाद एक माता प्रतिदिन इनका पूजन, आरती, भोग लगाने आती थी। बच्चों को प्रसाद बांटती थी। बाबा जी नित्य प्रति छोटे बच्चे के रूप में आते, आरती प्रसाद लेकर चले जाते। एक दिन माता ने सोचा, जितने बच्चे आते हैं, मैं सबको जानती हूं। इस बालक का पता नहीं, किसका है। दूसरे दिन उस माता ने उस बच्चे से पूछा बेटा! बताओ तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, कहां रहते हो। वे हँस पड़े। बोले-माई, तुम नित्य मुझे बुलाती हो। तुम्हारे प्रेम में आता हूं। अब तुम पूछती हो, इतनी बात कहकर बालक लुप्त हो गया। वह देखती रही।

कृपण वैश्य की कथा

एक दिन बाबा जी घूमते हुए, एक ग्राम में भिक्षा के लिये गये। उस ग्राम में एक मक्खीचूस बनियां दूध की दुकान करता था। उन्होंने दूध मांगा। उसने कहा, भाग यहां से दूध पीना हो तो पैसा दो। उन्होंने कहा कि मैं फक्कड़ महात्मा हूं। मेरे पास पैसे कहां हैं। उसने कहा, बिना पैसे के दूध नहीं मिलेगा। यदि दूध पीना चाहते हो तो झोली बेचकर दूध पी लो, बनिये ने झोली देखकर कहा। यह पुरानी मैली कुचैली झोली दो पैसे की है। इन्होंने कहा, मेरी कीमती झोली के तुमने केवल दो पैसे लगाये। उसने धिक्कारा। धक्का दिया। लात मारकर नीचे गिरा दिया। उधर इन्द्र का सिंहासन तथा कैलाश कांपने लगा। इतने में ही बनिये के घर से भागकर आते हुये लोगों ने सूचना दी कि तुम्हारा इकलौता बेटा मर गया। वह रोता और सिर पीटता हुआ घर में पहुंचा ही था कि दूसरे आदमी ने सूचना दी, तुम्हारी दुकान में आग लग गयी। सारा सामान जलकर भस्म हो गया। जब वह भागता हुआ दुकान पर पहुंचा ही था कि इतने में लोगों ने आकर कहा कि तुम्हारी भैंस मर गयी। गाय भी खूंटा तोड़कर भाग गयी। उसके घर तथा बाहर हाहाकार मच गया। रोने के अतिरिक्त और क्या करता। गांव के सब लोग आये। सब के सामने बनिये ने कहा, मैंने एक सन्त का अपमान किया है। उसी का फल भोग रहा हूँ। वह पुत्र की लाश को लेकर सम्बन्धियों तथा गांव वालों के साथ दाह करने श्मशान भूमि में पहुंचा। इतने में बाबा की माया से वर्षा होने लगी। बन्द नहीं हो रही थी। वह बनियां सिर झुकाकर रोता हुआ भगवान् से प्रार्थना करने लगा। हे प्रभो कृपा करो। मैं महापापी, अपराधी हूँ। वर्षा बन्द कर दीजिये। बाबा जी आ गये। बरगद के पेड़ के नीचे बैठे थे। उनको प्रणाम करके सारी विपतियां सुनायीं। लाला बड़ा अभिमानी था। जब दण्ड मिला तो बुद्धि ठिकाने लगी। किसी ने सच ही कहा है–**लातों के भूत बातों से नेहीं मानते। भय बिन प्रीति न होई गुसाई।** उसकी दशा देखकर बाबा जी द्रवीभूत हुए और बोले मेरे कमंडल का जल बालक, भैंस, दुकान तथा गऊ के खूंटे पर छिड़क दो। सब पूर्ववत् हो जायेगा। स्वामी जी को प्रणाम करके वह जल लेकर चला उसमें उसे पूरी त्रिलोकी दिखाई दी। सब पहले के समान हो गया। फिर उसने दूध का

कमण्डल भरकर मीठा डालकर दिया। प्रार्थना की, मैं महापापी हूं। आप ऋद्धि सिद्धि से सम्पन्न क्षमाशील हैं, क्षमा करें। वह जीवन पर्यन्त भजन करता रहा।

बच्चों के साथ खेल एवं भण्डारा

बाबा जी शाहतलाई में बच्चों के साथ खेला करते थे। एक दिन उन्होंने भण्डारे की इच्छा की। सब बच्चे मान गये। उन्होंने एक-एक बच्चे को सेवा सौंपी। किसी को आटा, किसी को चावल, किसी को घी, लकड़ियां आदि लाने को कहा। बच्चों ने कहा कि आप क्या देंगे। उन्होंने कहा मैं दूध दूंगा। बच्चे अपना-आपना सामान ले आये। वे भजन ध्यान में बैठे थे। उन्होंने कहा कि हम तो अपना सामान ले आये। आपका दूध नहीं आया। उन्होंने एक बांझ गाय को लगाकर कमण्डलु भर दूध दिया। लड़कों ने कहा, इतने दूध से क्या बनेगा। उन्होंने कहा, तुम भोजन बनाना आरम्भ करो, दूध की चिन्ता मत करो। जब कमडण्लु का दूध बड़े पात्रों में डालने लगे, सभी पात्र दूध से लवालव भर गये। कमण्डलु में दूध ज्यों का त्यों रहा। भोजन बना। भोग लगाकर सब ने खाया। बच्चों ने घर जाकर दूध की चर्चा की। माता-पिता ने आकर देखा। एक छोटा बालक झाड़ियों के नीचे बैठा था। बादल छाया कर रहे थे। उसी वन में एक हिरणी रहती थी। एक शिकारी ने उसे पकड़ने के लिये जाल बिछाया। दूसरी ओर आग लगा दी, तीसरी ओर शिकारी कुत्ते छोड़ दिये। चौथी ओर स्वयं धनुषबाण लेकर खड़ा हो गया। मृगी को चारों ओर मृत्यु दिखाई दी। वह बहुत घबरायी। फिर विचार किया कि मारने वाले से बचाने वाला बलवान् होता है। उसने बाबा जी का ध्यान किया। वह ध्यान में तल्लीन हो गयी। उधर बाबा जी भी ध्यान में बैठे थे। वे समाधि में सब कुछ जान गये। मृगी कह रही थी। मेरे मरने से आपकी कोई हानि नहीं होगी। किन्तु मेरे वच्चों के मरने का दोष आपको लगेगा। वे धुएं पर से वायु रूप में उड़े। मृगी के पास पहुंचे। शिकारी बाण छोड़ने ही वाला था। वे गुप्त रूप से उसके पीछे खड़े हो गये। उसका हाथ स्तम्भित कर दिया। उसने बाण चलाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु निष्फल रहा। उन्होंने व्याध के सिर पर हाथ रखकर बेहोश कर दिया। फिर धरती पर पैर मारकर अपनी माया से खरगोश पैदा कर दिया। वह भाग रहा था। उसे देखकर शिकारी कुत्ते

खाने को दौड़े। फिर बाबा जी ने आकाश की ओर देखा और बादल पैदा किया। वर्षा होने लगी। अग्नि शान्त हो गयी। इस प्रकार मृगी सहित बच्चों की रक्षा की। उससे निर्भय होकर भ्रमण की आज्ञा दी। वह उनका गुणगान करती चही गयी।

इस कथा से सिद्ध होता है कि यदि पशु-पक्षी योनियों में उत्पन्न जीव भी श्रद्धा भक्ति, विश्वास तथा प्रेम सहित भगवतच्चिन्तन करे, तो उसके सभी संकट दूर हो जाते हैं। फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है। रही उनके माया के चमत्कार की बात, जैसे पैर मारकर खरगोश पैदा करने की, कमण्डलु के जल छिड़कने मात्र से जीवित करने की। यह मधुमती आदि भूमिकाओं को प्राप्त सिद्ध योगियों के लिये कोई असम्भव नहीं है। वेदों में ईश्वर को सत्य संकल्प कहा है, तथा सर्वरूप कहा है। सर्वरूप, सत्य संकल्प ईश्वर के स्वरूप पर आवरण भंग होने पर धारणा ध्यान समाधि के रूप संयम के अभ्यास से युक्त योगी सिद्ध पुरुष भी सर्वरूपता को प्रकट कर देते हैं। सर्व सिद्धि प्राप्त, बाबा बालक राम, पूर्ण ब्रह्मस्वरूप ही थे। अतः ऐसे महापुरुषों की गुरु बुद्धि से निष्काम भाव से उनकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। यह उनके चरित्र से शिक्षा मिलती है। साथ में यह भी बोध होता है कि जीव भजन के प्रभाव से ईश्वर के समान सर्व समर्थ हो जाता है।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का तेईसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चौबीसवां अध्यायारम्भ ॥

ज्ञानोपदेश

एक दिन बाबा जी भिक्षा के लिये किसी के घर में पहुंचे। एक माता ने इनको भिक्षा दी। फिर कहा, कि महाराज! भिक्षा ले ली, शिक्षा नहीं दी। इन्होंने कहा, कल शिक्षा दूंगा। दूसरे दिन उस माता ने उत्साह सहित अनेक उत्तम उत्तम भोजन बनाये। अपने-अपने पात्र में मिट्टी, गोबर, घास, फूस डाला हुआ था। जब माई भिक्षा देने लगी तो उनका पात्र अशुद्ध देखा। तब माई ने कहा कि आपका पात्र गन्दा है। इसे जल से साफ कर दें, तब भिक्षा लें। स्वामी जी ने कहा, नहीं तुम इसी में भिक्षा रख दो। माई ने कहा

कि इसमें प्रेम से बनाया भोजन बिगड़ जायेगा। इन्होंने कहा, यही ज्ञानोपदेश है। तुम्हारा जब तक मन रूपी पात्र गन्दा रहेगा, तब तक मेरा तथा शास्त्रों का उपदेश भी बिगड़ जाएगा। कोई शिक्षा, दीक्षा या ज्ञानोपदेश शुद्ध मन रूपी पात्र में ही ठीक रहता है। नहीं तो उस ज्ञान से कुछ लाभ नहीं होता। माता बड़ी प्रसन्न हुई। उसके ज्ञान रूपी नेत्र खुल गये।

धान की मशीन तथा चमत्कार–शाहतलाई में एक सेठ ने गरने के पेड़ के नीचे जहां यह समाधि ध्यान का अभ्यास किया करते थे, वहीं इनका मन्दिर बना हुआ था। वहां इनके अनुयायी भक्त रहते थे। वहीं धान की मशीन लगाई। सेठ ने उसको चलाने के लिये कई दिन तक लगातार प्रयास किया, किन्तु वह थोड़ा खटखट करके बन्द हो जाती थी। एक महीने तक नहीं चली। बडे-बड़े कारीगरों को दिखाया, तब भी नहीं चली। सेठ सोचने लगा, क्या करना चाहिये। वह लाला एक दिन वहीं सो रहे थे। स्पप्न में बालक नाथ जी ने दर्शन दिया। उससे कहा, यदि तुम आपना भला चाहते हो तो मशीन को पीछे ले जाओ। तुम यहां रोज़ खटपट करोगे। हमारे ज्ञान ध्यान में विघ्न पड़ेगा। उसकी आंख खुली। मशीन उठाकर शाहतलाई से एक फर्लांग पीछे लगाई। तब साधारण चाबी लगाने से चलने लगी। वहां मशीन ले जाने से उसे कई गुना लाभ हुआ। जितना उसे लाभ होता, उतना वह ध्यान भजन में मन लगाता।

रोट की महिमा–एक व्यक्ति बाबा के दरबार में गया। एक छोटा-सा रोट का टुकड़ा प्रसाद रूप में खाया। उसे बारह वर्ष तक भूख नहीं लगी।

इस प्रकार की योग शक्ति सम्पन्न, युगावतारी सिद्धा बाबा बालक नाथ जी की कीर्ति आज भी अमर है। अधिकारी प्रेमी भक्तों को बारह वर्ष के बालक के रूप में आज भी दर्शन होते हैं। बाबा जी का चरित्र सम्पूर्ण।

सिद्ध बाबा बालक नाथ की जी जय हो।

॥ इति द्वापर युग खण्ड का चौवीसवां अध्याय सम्पूर्ण॥

उपसंहार

देश काल एवं वस्तु के परिच्छेद से रहित अनन्तानन्द, अखण्ड मण्डलाकार, सर्वव्यापी, स्वयं प्रकाश निरोपाधिक परिपूर्ण, अवच्छेद्य, अभेद्य, अशोष्य अपाहय, सच्चिदानन्दरूप महासागर रूपी परमात्मा की ही सृष्टि से प्रारम्भ होकर अधावधि अनेक गुण कर्म स्वभाव वाले अनन्त गुरु हो चुके हैं। मनुष्य ब्रह्मा के समान दीर्घायु प्राप्त करके आकाश के तारों को, समुद्र की बूंदों को एवं पृथिवी के कणों को गिन सकता है। परन्तु अनन्तान्त कोटि गुरुओं की कोई गणना नहीं कर सकता है। मैंने सद्गुरुओं की प्रेरणा से सत्य युग में भगवान् शङ्कर से लेकर द्वापरान्त में, शुक देव, सुमन्त, पैल, वैशम्पायन, शौनक, पिपलाद, तुम्वरु, करु आदि पर्यन्त अनेक गुरुओं का अपनी गति मति के अनुसार उनके चरित्र, उपदेश, कृतित्व तथा सिद्धान्त का यथा सम्भव उल्लेख किया इसके द्वितीय भाग में कलियुग के गुरुओं के चरित्रों कृत्यों, उपदेशों तथा सिद्धान्तों का वर्णन करूंगा।

समस्त ब्रह्म विद्या प्रवर्तका चार्योभ्यो नमः।

दण्डी स्वामी श्री शिवबोधाश्रम जी महाराज

दण्डी आश्रम प्रभात नगर, जालन्धर, पंचनद प्रदेश,

पंजाब प्रदेश

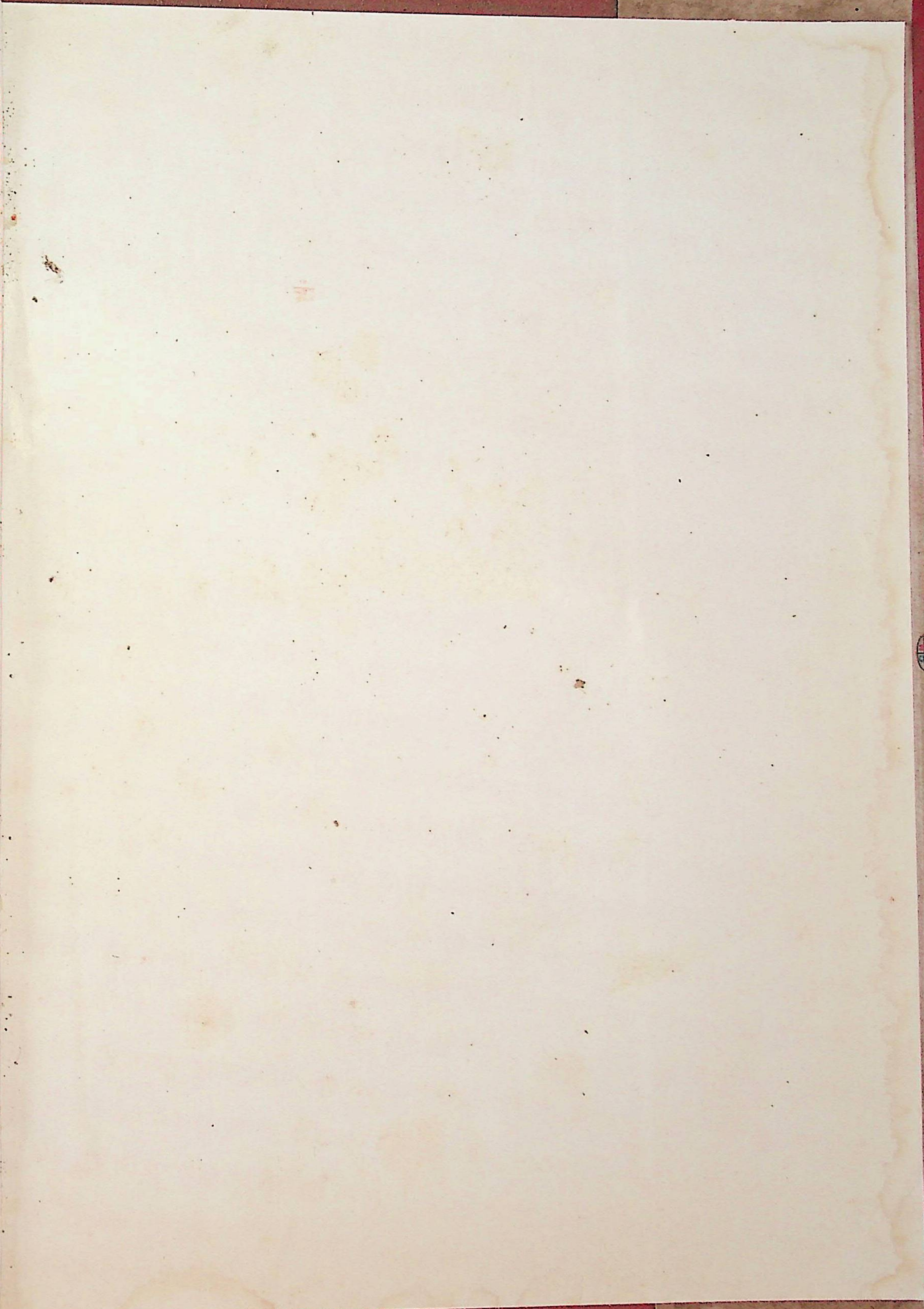
सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

१. स्वायम्भु-आगम
२. श्री रेणुक दिग्विजय
३. श्री शंकरानन्दी गीता
४. श्री माधवीय शांकर दिग्विजय
५. यति सन्ध्या
६. शिव महिम्न स्तोत्र, मधुसूदिनी व्याख्या
७. श्रीमद् भागवतम पुराण, वंशीधर व्याख्या
८. श्री शांकर दिग्विजय, धनपति सूरि
९. सदाचार संग्रह
१०. आत्मानात्म विवेक:

७३. पुरुष सूक्त
७४. ईशावास्योपनिषद्
७५. गर्ग संहिता
७६. नित्य कर्म गीता
७७. भक्त माल
७८. भगवद् भक्ति रसायनम्
७९. नारायणोपनिषद्
८०. त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद्
८१. अनुस्मृति:
८२. गरुड़ पुराण
८३. न्याय दर्शन

११. श्री गुरु गीता
१२. मनुस्मृति
१३. योगदर्शन व्यासभाष्यम्
१४. कूर्म पुराण
१५. पातंजलि योग प्रदीप
१६. दीक्षा प्रकाश
१७. कुलावर्णव तन्त्र
१८. योगिनीतन्त्र
१९. भैरव तन्त्रसार
२०. श्रीमद् भागवद् गीता-मधुसूदनी टीका
२१. श्री स्कन्द पुराण, काशी खण्ड
२२. वामन पुराण
२३. वृहद्धर्म पुराण, पूर्वखण्ड
२४. कल्याण-शिवाङ्क
२५. काशी केदार माहात्म्य ब्रह्मवैवर्त पुराण का परिशिष्ट
२६. दैवी मीमांसा
२७. पद्मपुराण
२८. शिवपुराण, विद्येश्वर संहिता
२९. मीमांसा दर्शन कुमारिलभट्ट वार्तिक
३०. महाभारत, उद्योग पर्व
३१. ब्रह्माण्ड पुराण
३२. प्रायश्चित्त तत्त्व विवेक
३३. तिथि तत्त्व निर्णय
३४. निर्णय सिन्धु
३५. सूत संहिता
३६. रुद्राक्ष जावालोपनिषद्
३७. भस्म जाबालो पनिषद्
३८. काशी मोक्ष निर्णय
३९. काशीरहस्य
४०. काशी खण्ड
४१. सर्वसार संग्रह
४२. पंच क्रोशी यात्रा विधि
४३. वीर लैंग्योपनिषद्
४४. पंचाचार्योत्पत्ति प्रकरण
४५. श्री करभाष्य
४६. सिद्धान्त शिखा मणि
४७. वीर शैव चिन्ता मणि
४८. श्री गुरुवंश काव्यम्
४९. श्री सनातन धर्मालोक छठा पुष्प
५०. वैशेषिक दर्शन
५१. रामचरित मानस
५२. हठयोग प्रदीपिका
५३. सनातनधर्मालोक तीसरा पुष्प
५४. पञ्चीकरण
५५. माण्डूक्योपनिषद् कारिका
५६. क्रिया सार
५७. वेदान्त सिद्धान्त सार
५८. शम्भु गीता
५९. शिव गीता वाला नन्दिनी व्याख्या
६०. लिङ्ग पुराण
६१. दश कर्म पद्धति
६२. वृहदारण्यकोपनिषद्, शांकर भाष्य आनन्द गिरि व्याख्या
६३. ब्रह्मसूत्र
६४. छान्दोग्योपनिषद्, शांकरभाष्य
६५. वायुपुराण
६६. जाति भास्कर
६७. ध्यान बिन्दूपनिषद्
६८. यतिधर्म निर्णय
६९. आनन्द रामायण
७०. कल्कि पुराण
७१. भविष्य पुराण
७२. श्रीमद् भागवत पुराण श्रीधरी टीका

८४. वृहत्स्तोत्ररत्नाकर
८५. गायत्री रहस्योपनिषद्
८६. देवी भागवत पुराण नीलकण्ठी टीका
८७. अनुष्ठान प्रकाश
८८. शारदा तिलक
८९. गायत्री पटल
९०. नारद पारिव्रजाकोपनिषद्
९१. अत्रि स्मृति
९२. पीठाधीश्वर अधिकार मीमांसा
९३. परमहंस बाह्य अर्चनमीमांसा
९४. रेणुकातन्त्र
९५. महानुशासम्
९६. अध्यात्मरामायण, रामगीता
९७. कल्याण उपनिषपाङ्क
९८. अव्यक्त बोध:
९९. प्रणवकल्प:
१००. मुक्तिकोपनिषद्
१०१. संन्यासोपनिषद्
१०२. संन्यास गीता
१०३. आत्म पुराण
१०४. महानिर्वाण तन्त्र
१०५. जीवन्मुक्ति विवेक:
१०६. संन्यास ग्रहण पद्धति
१०७. विश्वेश्वर पद्धति
१०८. जैमिनीय अश्वमेघीयपर्व
१०९. जावालिस्मृति
११०. कपिल स्मृति
१११. व्यास स्मृति
११२. पराशर माधवीय
११३. तुरीय सन्ध्या
११४. प्रणव मीमांसा
११५. भीष्मस्तव राज
११६. योगियाज्ञवल्क्य
११७. यतिधर्मसमुच्चय:
११८. कात्यायन स्मृति
११९. मेधा तिथि स्मृति
१२०. मार्कण्डेय पुराण
१२१. शातातप स्मृति
१२२. यमस्मृति
१२३. आपस्तम्ब स्मृति
१२४. अत्रि संहिता
१२५. कालिका पुराण
१२६. गीता माहात्म्य
१२७. यति धर्म प्रकाश
१२८. बौधायन
१२९. कठोपनिषद्
१३०. ब्रहानानुचिन्तम्
१३१. कल्याण वेदान्त अंक
१३२. कल्याण सन्तांक
१३३. योगवाशिष्ठ
१३४. कृत्तिवासरामायण
१३५. रघुवंश महाकाव्यम्
१३६. वाल्मीकीय रामायण
१३७. वालरामायण नाटकम्
१३८. बृहत्संहिता
१३९. अष्टावक्र गीता
१४०. श्री शंकर विजय मकरन्द:
१४१. कल्याण श्री रामायणांक
१४२. कल्याण श्री कृष्णांक
१४३. आत्मदर्शन
१४४. पंजाबी पुस्तक बाबा बालक नाथ तथा भरथरी
१४५. नीति शतकम् भर्तृहरिकृत
१४६. यति धर्म समुच्चय
१४७. यति धर्म संग्रह
१४८. सुमेरु तन्त्र





श्री कोठारी बंधु शौर्य स्मृति ट्रस्ट

रजत जयंती वर्ष तक की

शौर्य गाथा

